अथातो भक्ति जिज्ञासा, भाग 2

प्रवचन-क्रम

21..भगवान को नहीं, भक्ति को खोजो 2

22..परमात्मा के प्रति राग है भक्ति
.... 23

23................................गौणी-भक्ति में लगो, पराभक्ति की प्रतीक्षा करो
.... 45

24...प्रार्थना निरालंब दशा है
.... 68

25..सब जागरण उसका है
.... 92

26..संसार जड़ है, अध्यात्म फूल है
.... 116

27..विराट से मैत्री है भक्ति
.... 141

28..सुख से चुकाओ मूल्य परमात्मा को पाने का
.... 164

29..भक्ति अकर्मण्यता नहीं, अकर्ताभाव है
.... 188

30...धर्म है मनुष्य के गीत का प्रकट हो जाना
.... 214

31...पदार्थ: अणुशक्ति; चेतना: प्रेमशक्ति
.... 240

32..........................अभीप्सा व प्रतीक्षा की एक साथ पूर्णता--प्रार्थना
.... 262

33...विकास, क्रांति और उत्क्रांति
.... 285

34..जागरण है द्वार स्वर्ग का
.... 308

35...सदगुरु शास्त्रों का पुनर्जन्म है
.... 330

36...मौजूदगी ही उसकी है
.... 353

37...ऊर्ध्वगति का आयाम है परमात्मा
.... 378

38..जगत की सबसे बड़ी बुद्धिमत्ता: प्रेम
.... 400

अथातो भक्ति जिज्ञासा, भाग 2
इक्कीसवां प्रवचन

भगवान को नहीं, भक्ति को खोजो

सूत्र

द्यूतराजसेवयोः प्रतिषेधाच्च।। 51।।
वासुदेवेऽपीति चेन्नाकारमात्रत्वात्।। 52।।
प्रत्यभिज्ञान्नाच्च।। 53।।
वृष्णिषु श्रेष्ठत्वमेतत्।। 54।।
एवं प्रसिद्धेषु च।। 55।।

अथातोभक्तिजिज्ञासा!
अब भक्ति की जिज्ञासा।
भक्ति की क्यों? भगवान की क्यों नहीं?
साधारणतः लोग भगवान की खोज में निकलते हैं। और चूंकि भगवान की खोज में निकलते हैं इसलिए ही भगवान को कभी उपलब्ध नहीं हो पाते। भगवान की खोज ऐसी ही है जैसे अंधा आदमी प्रकाश की खोज में निकले। अंधे को आंख खोजनी चाहिए, प्रकाश नहीं। आंख का उपचार खोजना चाहिए, प्रकाश नहीं। प्रकाश तो है, उसकी खोज की जरूरत भी नहीं है; आंख नहीं है। इसलिए जो व्यक्ति भगवान की खोज में निकला, वह भटका। जो व्यक्ति भक्ति की खोज में निकलता है, वह पहुंचता है।
भक्ति यानी आंख। भक्ति यानी कुछ अपने भीतर रूपांतरित करना है। भक्ति
का अर्थ हुआ, एक क्रांति से गुजरना है।
अथातोभक्तिजिज्ञासा!
साधारणतः कोई विचार करेगा तो लगेगा सूत्र शुरू होना चाहिए था--अब भगवान की जिज्ञासा। लेकिन सूत्र बड़ा बहुमूल्य है। सूत्र भगवान की बात ही नहीं उठाता। भगवान से तुम्हारा संबंध ही कैसे होगा? भगवान से संबंधित होने वाला हृदय अभी नहीं, अभी वह तरंग नहीं उठती भीतर जो जोड़ दे तुम्हें। अभी आंखें अंधी हैं, अभी कान बहरे हैं। इसलिए भगवान को छोड़ो। उस चिंता में न पड़ो। भक्ति को जगा लो! इधर भक्ति जगी, उधर भगवान मिला। इधर आंख खुली, उधर सूरज के दर्शन हुए। इधर कानों का बहरापन मिटा कि नाद ही नाद है, ओंकार ही ओंकार छाया हुआ है। सारा जगत अनाहत की ही अभिव्यक्ति है। इधर हृदय में तरंगें उठीं कि जो नहीं दिखाई पड़ता, वह दिखाई पड़ा।
एक तो बुद्धि है, जो विचार करती है; और एक हृदय है, जो अनुभव करता है। हमारे अनुभव की ग्रंथि बंद रह गई है। खुली नहीं; गांठ बनी रह गई है। हमारे अनुभव करने की क्षमता फूल नहीं बनी। इसलिए प्रश्न उठता है--भगवान है या नहीं? लेकिन प्रश्न अगर जरा ही गलत हुआ तो उत्तर कभी सही नहीं हो पाएगा। भक्ति की जिज्ञासा करो!
मेरे पास लोग आ जाते हैं। वे कहते हैं, भगवान कहां है?
मैं उनसे पूछता हूं, भक्ति कहां है? भक्ति पहले होनी चाहिए।
लेकिन उनके प्रश्न की भी बात विचारणीय है। वे कहते हैं, जब तक हमें भगवान का पता न हो, तब तक भक्ति कैसे हो? किसकी भक्ति करें? कैसे करें? कहां जाएं? किसके चरणों में झुकें? भगवान का भरोसा तो पहले होना चाहिए। तभी तो हम झुक सकेंगे।
चूंकि भगवान की खोज की उन्होंने गलत जिज्ञासा उठा ली है, अब इस गलत जिज्ञासा के कारण बहुत से गलत समाधान उठते रहेंगे। भक्ति के लिए भगवान की कोई जरूरत ही नहीं है। आंख के उपचार के लिए सूरज की क्या जरूरत है? भक्ति के लिए सिर्फ तुम्हारे प्रेम के, भाव के बढ़ने की जरूरत है, भगवान की कोई जरूरत नहीं है। प्रेम को इतना बढ़ाओ कि अहंकार उसमें डूब जाए, लीन हो जाए। जहां प्रेम निर-अहंकार को उपलब्ध हो जाता है, वहीं भक्ति बन जाता है। भक्ति का भगवान से कुछ भी संबंध नहीं है। भक्ति तो प्रेम का ऊर्ध्वगमन है। प्रेम को मुक्त करो क्षुद्र से। प्रेम को बड़ा करो। प्रेम

3

की बूंद को सागर बनाओ। जिससे भी प्रेम करते हो, गहनता से करो। जहां भी प्रेम हो, वहीं अपने को पूरा उंडेल दो। कंजूसी न करो। अगर प्रेम कृपण हो, तो काम हो जाता है; और प्रेम अगर अकृपण हो, तो भक्ति हो जाता है। प्रेम अगर मांगता हो, तो वासना हो जाता है; और प्रेम अगर देना ही जानता हो, तो भक्ति हो जाता है।
लुटाओ प्रेम। उसी लुटने में तुम भक्त हो जाओगे। और जहां तुम भक्त हुए, वहीं भगवान का दर्शन है।
तुमसे कहा गया है बार-बार कि भगवान पर भरोसा करो ताकि भक्ति हो सके।
मैं तुमसे कहना चाहता हूं, भक्ति को जगाओ ताकि भगवान पर भरोसा हो सके। और शांडिल्य के सूत्र मेरे पक्ष में खड़े हैं।
शांडिल्य कहते हैंः अथातोभक्तिजिज्ञासा! अब भक्ति की जिज्ञासा करें।
और जिसने भक्ति की जिज्ञासा नहीं की, वह आया तो संसार में, आ नहीं पाया; जीया और जी नहीं पाया; हुआ और हो नहीं पाया। उसकी कथा दुर्दिनों की कथा है और दुर्घटनाओं की। अवसर मिले, लेकिन कोई भी अवसर फला नहीं। जो भक्ति के बिना जी लिया, जो भगवान को बिना जाने जी लिया, उसके जीवन को क्या खाक जीवन कहें!
श्री अरविंद ने कहा हैः जब मैं जागा तब मैंने जाना कि जीवन क्या है। उसके पहले तो जो जाना था, वह मृत्यु ही थी। उसे भ्रांति से जीवन समझ बैठा था। जब आंख खुली तब पहचाना रोशनी क्या है। उसके पहले जिसे रोशनी समझी थी, वह तो अंधेरा निकला। जब हृदय खुला तो अमृत की पहचान हुई। उसके पहले तो मृत्यु को ही अमृत समझ बैठे थे।
अंधा आदमी पत्थर को हीरा समझ ले, आश्चर्य क्या? अंधे को परख भी कैसे हो पत्थर की और हीरे की? अंधे को दोनों पत्थर हैं। आंख फर्क लाती है। आंख में जौहरी छिपा है।
तो ख्याल रखना, अगर भक्ति की जिज्ञासा नहीं उठी है तो समझना कि अभी तुम जन्मे ही नहीं। अभी तुम गर्भ में ही पड़े हो। अभी तुम बीज ही हो। अभी अंकुरण नहीं हुआ। अभी जीवन की जो परम संपदा है, उसकी भनक भी तुम्हारे कानों में नहीं पड़ी।
दिल में सोजे-गम की इक दुनिया लिए जाता हूं मैं
आह तेरे मैकदे से बेपिए जाता हूं मैं
जो बिना भक्ति के चला गया है, वह इस मधुशाला में आया और बिना पीए चला गया।
आह तेरे मैकदे से बेपिए जाता हूं मैं
इस जगत को पीने की कला है भक्ति। और जगत को जब तुम पीते हो तो कंठ में
जो स्वाद आता है, उसी का नाम भगवान है। इस जगत को पचा लेने की कला है भक्ति। और जब जगत पच जाता है तुम्हारे भीतर और उस पचे हुए जगत से रस का आविर्भाव होता है--रसो वै सः। उस रस को जगा लेने की कीमिया है भक्ति।
शांडिल्य ने ठीक ही किया जो भगवान की जिज्ञासा से शुरू नहीं की बात। भगवान की जिज्ञासा दार्शनिक करते हैं। दार्शनिक कभी भगवान तक पहुंचते नहीं; विचार करते हैं भगवान का। जैसे अंधा विचार करे प्रकाश का। बस ऐसे ही उनके विचार हैं--अंधे की कल्पनाएं, अनुमान। उन अनुमानों में कोई भी निष्कर्ष कभी नहीं। निष्कर्ष तो अनुभव से आता है।
शांडिल्य के सूत्र दर्शनशास्त्र के सूत्र नहीं हैं, प्रेमशास्त्र के सूत्र हैं। इसलिए पहले सूत्र में ही शांडिल्य ने अपनी यात्रा का सारा संकेत दे दिया--मैं किस तरफ जा रहा हूं।
इसके पहले कि मौत तुम्हारे द्वार पर दस्तक दे--और मौत दस्तक देगी ही-- तुम भक्ति की जिज्ञासा करो। मौत आए, उसके पहले भक्ति आ जाए, ऐसे जीवन का नियोजन करो। इसी को मैं संन्यास कहता हूं। जीवन का ऐसा नियोजन कि मौत के पहले भक्ति आ जाए, तो तुम कुशलता से जीए, तो तुम होशियार थे, तो तुम्हारे भीतर बुद्धिमत्ता थी।
वक्त की सईए-मुसलसल कारगर होती गई
जिंदगी लहजा-ब-लहजा मुख्तसर होती गई

सांस के परदों में बजता ही रहा साजे-हयात
मौत के कदमों की आहट तेजतर होती गई
सुन रहे हो? यह सांस की वीणा बजती ही रहेगी और मौत करीब आती जा रही है। सांस के परदों में बजता ही रहा साजे-हयात
यह जिंदगी का गीत सांस के बाजे पर बजता ही रहेगा। इसी में मत भटके रहना।
सांस के परदों में बजता ही रहा साजे-हयात
मौत के कदमों की आहट तेजतर होती गई
जरा गौर से सुनो, मौत के कदम रोज-रोज करीब आते जा रहे हैं। मौत फासला
कम कर रही है। जिस दिन से तुम पैदा हुए हो, उसी दिन से मौत फासला कम करने में लग गई है, तुम रोज मर रहे हो। सांसों में बहुत भटके मत रहना। इनका बहुत भरोसा नहीं। अभी आ रही है सांस, अभी न आएगी तो कुछ भी न कर सकोगे। अवश पड़े रह जाओगे। तब बहुत पछताओगे।
आह तेरे मैकदे से बेपिए जाता हूं मैं
रोओगे फिर, लेकिन तब बहुत देर हो चुकी। कहते हैंः सुबह का भूला सांझ
भी घर आ जाए तो भूला नहीं कहाता। लेकिन सांझ भी आ जाए तो! अगर मौत आ गई तो सांझ भी आई और गई। फिर लौटने का उपाय न रहा, समय न रहा।
मौत का अर्थ क्या होता है? इतना ही कि जितना समय तुम्हें दिया था, चुक गया। मौत का अर्थ होता हैः जितना अवसर तुम्हें दिया था, तुमने गंवा दिया। मौत का अर्थ होता हैः अब और समय नहीं बचा। अब करने का कोई उपाय नहीं। एक आह भी न भर सकोगे। एक प्रार्थना भी न कर सकोगे। राम का नाम भी न ले सकोगे।
सांस ही न लौटी तो राम का नाम अब कैसे ले सकोगे? एक नाम लेने की भी सुविधा नहीं बचती है। और मौत रोज करीब आ रही है। और तुम जिंदगी की सांसों में उलझे पड़े रहते हो।
अथातोभक्तिजिज्ञासा! अब भक्ति की जिज्ञासा करो।
इसके पहले कि हम आज के सूत्रों में उतरें, कुछ पिछले सूत्रों का थोड़ा
सा स्वाद ले लेना जरूरी है।
पूर्व-सूत्रः
सूर्य को देखने के दो उपाय हो सकते हैं। एक तो सीधा सूरज को देखो और एक दर्पण में सूरज को देखो। हालांकि दर्पण में जो दिखाई पड़ता है वह प्रतिबिंब ही है, असली सूरज नहीं। प्रतिबिंब तो प्रतिबिंब ही है, असली कैसे होगा? वह असली का धोखा है। वह असली की छाया है। इसलिए सूरज को देखने के दो ढंग हैं, यह कहना भी शायद ठीक नहीं, ढंग तो एक ही है--सीधा देखो। दूसरा ढंग कमजोरों के लिए है, कायरों के लिए है।
जो लोग शास्त्र में सत्य को खोजते हैं, वे कायर हैं। वे दर्पण में सूरज को देखने की कोशिश कर रहे हैं। दर्पण में सूरज दिख भी जाएगा तो भी किसी काम का नहीं। छाया मात्र है। दर्पण के सूरज को तुम पकड़ न पाओगे। शास्त्र में जो सत्य की झलक मालूम होती है, झलक ही है। लेकिन लोगों ने शास्त्र सिर पर रख लिए हैं। कोई गीता, कोई कुरान, कोई बाइबिल। लोग शास्त्रों की पूजा में लगे हैं। यह दर्पण की पूजा चल रही है; सूरज को तो भूल ही गए। और दर्पणों पर इतने फूल चढ़ा दिए हैं पूजा के कि अब उनमें प्रतिबिंब भी नहीं बनता। उन पर व्याख्याओं की इतनी धूल जमा दी है, सिद्धांतों का इतना जाल फैला दिया है कि अब शास्त्रों से कोई खबर नहीं आती सत्य की।
सत्य को देखना हो, सीधा ही देखा जा सकता है। इसलिए शांडिल्य कहते हैंः भक्ति की जिज्ञासा करें हम। शांडिल्य के पहले भक्त हो चुके थे, बहुत हो चुके थे, ज्ञानी हो चुके थे, शास्त्र निर्मित हो चुके थे। शांडिल्य ने नहीं कहा कि चलो अब शास्त्र में चलें और सत्य को खोजें, चलो अब शास्त्र में चलें और भगवान की छवि को तलाशें। नहीं, शांडिल्य ने कहा, हम अपने हृदय को साफ करें। भगवान मिलेगा तो वहां मिलेगा। शब्दों में नहीं, परायों के शब्दों में नहीं, अपने अनुभव में मिलेगा।
अनुभूति पर यह जोर ठीक-ठीक पकड़ लेना।

परमात्मा की झलक तो सब तरफ मौजूद है। और अगर तुम्हें वृक्षों में उसकी झलक नहीं दिखाई पड़ती तो तुम्हें शास्त्रों में उसकी झलक कभी भी दिखाई नहीं पड़ेगी। क्योंकि शास्त्र में तो मुर्दा शब्द हैं। न तो बढ़ते, न घटते; न उनमें नये पत्ते लगते, न नई शाखें उमगतीं, न पक्षी बसेरा लेते। शास्त्रों में तो थोथे शब्द हैं। वहां फूल कहां खिलते हैं? वहां सुगंध कहां उठती है? शास्त्र तो कागज पर खींची गई लकीरें हैं। मगर खूब धोखा आदमी ने खाया है। उन्हीं लकीरों की पूजा करता रहता है। या तो यह धोखा है, या यह चालबाजी है। चालबाजी यह है कि इस तरह भगवान से बचता रहता है। कहता है, देखो तो तुम्हारे शास्त्रों को पूजते हैं।
कभी-कभी भगवान को और-और झलकों में भी पकड़ने की कोशिश करता है। पुराने दिनों में राजाओं को, महाराजाओं को भगवान मान लिया जाता था। पद को परमपद समझ लिया जाता था। तो लोग राजाओं की पूजा करते रहे; पद की प्रतिष्ठा करते रहे। बात अब भी समाप्त नहीं हो गई है। राजा तो अब नहीं के बराबर रहे, न के बराबर रहे। कहते हैं अंत में दुनिया में केवल पांच ही राजा रह जाएंगे, एक इंग्लैंड का राजा और चार ताश के पत्तों के राजे; बाकी सब तो चले जाएंगे। इंग्लैंड का राजा भी ताश का पत्ता ही है, इसलिए बचेगा। और तो कोई बच सकता नहीं। लेकिन राजनीति का अब भी बल है। अब भी राजपद का बल है। राजा न रहे हों, लेकिन राजनेता है। तुम उसी की पूजा में लग जाते हो। देखते हो, राजनेता के आस-पास लोग कैसी पूंछ हिलाते हैं? किस तरह गजरे पहनाते हैं? किस तरह फूल बरसाते हैं?
धन की पूजा में लग जाते हो। जिसके पास धन है, वहां पूजा में लग जाते हो। या तो कुछ लोग शास्त्रों के मुर्दा शब्दों को पूजते रहते हैं, या मंदिरों में रखी हुई पत्थर की मूर्तियों को पूजते रहते हैं, या पंडित-पुजारी को पूजते रहते हैं, जिन्हें खुद भी परमात्मा की कोई झलक नहीं मिली, जो तुम्हारे नौकर-चाकर हैं, जिन्हें तुमने नियुक्त कर रखा है, जो पूजा के नाम पर केवल आजीविका कमा रहे हैं। या लोग पद में देख लेते हैं परमात्मा को और पद की पूजा में लग जाते हैं, या धन में।
मगर ये सब मुर्दा हैं खेल। अगर परमात्मा को देखना हो तो सीधा देखो। परमात्मा सीधा उपलब्ध है--इन पक्षियों के गीत में, इन वृक्षों की हरियाली में, आकाश के चांद-तारों में, मनुष्यों की आंखों में। और जहां भी तुम प्रेम की कुदाल से खोदोगे, वहीं तुम पाओगे कि परमात्मा का झरना मिलना शुरू हो गया। झलकों में मत भटको।
इसलिए पूर्व-सूत्रों ने कहा कि विभूतियों में मत उलझ जाना। विभूतियां तो झलकें मात्र हैं प्रतिभा की। कोई आदमी बड़ा गणितज्ञ है, यह प्रतिभा है। और कोई आदमी बड़ा संगीतज्ञ है, यह प्रतिभा है। और कोई आदमी बड़ा होशियार है और धन इकट्ठा कर लिया है, कोई आदमी बड़ा चालबाज है और राजपद पर पहुंच गया है, ये सब प्रतिभाएं हैं। इनका कोई धार्मिक मूल्य नहीं है। इनके होने से कोई धर्म का संबंध नहीं है। इसलिए पूर्व-सूत्रों में कहा गया कि प्रतिभा, विभूति, इनमें मत उलझ जाना।
इनका प्रभाव पड़ता है। कोई आदमी अच्छा बोलता है, इससे मत उलझ जाना, क्योंकि अच्छे बोलने से सत्य का कोई संबंध नहीं है। हो सकता है अच्छा बोलता हो, लेकिन झूठ ही बोलता हो। और इतने अच्छे ढंग से बोलता हो कि झूठ भी सच जैसा मालूम पड़ता हो। यह भी हो सकता है, कोई आदमी सुंदर गीत गा सकता है-- ऐसे सुंदर कि आकाश की उड़ान लें, ऐसे सुंदर कि लगे सत्य के लोक से उतरा है यह आदमी। मगर इससे उलझ मत जाना। यह सिर्फ हो सकता है गीत की कला हो, यह मात्रा बिठाने की कुशलता हो, यह आदमी कवि हो।
बहुत तरह की विभूतियां हैं। विभूतियां श्रम से अर्जित हैं, चाहे इस जन्म की हों, चाहे पिछले जन्म की हों। विभूति श्रम से उत्पन्न होती है। किसी ने पश्चिम के बहुत बड़े संगीतज्ञ मोझर्ट से पूछा। मोझर्ट अदभुत प्रतिभा का धनी था। कहते हैं जब सात साल का था तभी से संगीत में उसकी कुशलता ऐसी थी कि बड़े-बड़े संगीत के पंडित उस छोटे से बच्चे से हार गए थे। सारे जगत में उसकी ख्याति थी। किसी ने पूछा कि तुम्हारी प्रतिभा का राज क्या है? तो उसने कहा, श्रम। उसने जो शब्द उपयोग किए... पूछने वाले ने उससे

पूछा था, तुम्हारी प्रतिभा की प्रेरणा क्या है? तुम्हारी प्रतिभा का इंस्पाइरेशन क्या है? मोझर्ट हंसा और उसने कहा, इंस्पाइरेशन तो बहुत थोड़ा है, पर्सपाइरेशन बहुत ज्यादा है। पसीना बहुत है, श्रम बहुत है। प्रतिभा कहां? प्रेरणा कहां?
पूछने वाला चौंका। उसने कहा, मैं समझा नहीं।
मोझर्ट ने कहा कि अगर मैं एक दिन भी अभ्यास न करूं तो मुझे समझ में आता
है कि फर्क पड़ गया। और अगर दो दिन अभ्यास न करूं तो मेरे जो आलोचक हैं उनको समझ में आ जाता है कि फर्क पड़ गया। और तीन दिन अगर अभ्यास न करूं तो सभी को समझ में आ जाता है कि फर्क पड़ गया। आठ-दस घंटे श्रम करता हूं, उसका फल है। फिर चाहे यह फल इस जन्म का हो, या पिछले जन्म का हो, या जन्मों-जन्मों
का हो। प्रतिभा तुम्हारे प्रयास का फल है।
तो शांडिल्य ने पूर्व-सूत्रों में कहाः प्रतिभा को या विभूति को परमात्मा मत समझ लेना।
फिर उन्होंने एक फर्क किया जो बड़ा बहुमूल्य है, जिसे ख्याल में ले लोगे तो ही आज के सूत्र समझ में आ सकेंगे। उन्होंने यह कहा फिरः लेकिन कृष्ण प्रतिभावान हैं, इतना ही नहीं; या राम प्रतिभावान हैं, इतना ही नहीं; राम या कृष्ण या बुद्ध या क्राइस्ट या महावीर या जरथुस्त्र, ये प्रतिभाएं ही नहीं हैं, ये अवतार हैं। क्या फर्क है अवतार और प्रतिभा का?
प्रतिभा मिलती है प्रयास से, श्रम से, अर्जित करनी होती है; और अवतरण होता है प्रसाद से, तुम्हारे प्रयास से नहीं। तुम मिट जाते हो तो परमात्मा का अवतरण होता है। प्रतिभा तो अहंकार की ही खोज है। परमात्मा का अवतरण निर-अहंकार की दशा में फलता है। तुम जब शून्य मात्र हो जाते हो तब परमात्मा तुममें उतरता है।
इसलिए तुम प्रतिभाशाली आदमी को बड़ा अहंकारी पाओगे। चित्रकार, मूर्तिकार, संगीतज्ञ, कवि, कलाकार अहंकारी होते हैं, अति अहंकारी होते हैं। कलह ही चलती रहती है उनमें। उनमें कभी तुम सामंजस्य न पाओगे। एक-दूसरे की गर्दन घोंटने में लगे रहते हैं। आमतौर से प्रतिभाशाली आदमी स्थूल या सूक्ष्म अर्थों में अहंकारी होता है। उसकी सारी प्रतिभा का खेल अस्मिता का खेल है। मैं महत्वपूर्ण हूं, यह सिद्ध करने की चेष्टा में लगा रहता है। मुझसे ज्यादा महत्वपूर्ण कोई भी नहीं, यही उसके जीवन की पूरी तलाश है। मैं विशिष्ट हूं, यही उसकी दौड़ है, यही उसका लक्ष्य है।
अवतार का अर्थ होता हैः जिसने अपने अहंकार को जाने दिया। जिसने कहा, मैं तो हूं ही नहीं, प्रभु तू है। जो बांस की पोंगरी बन गया। जिसने परमात्मा को पूरी जगह दे दी, सारा स्थान खाली कर दिया। जो इस तरह से मेजबान बन सकता है, इस तरह से आतिथ्य कर सकता है परमात्मा का, कि स्वयं को बिल्कुल पोंछ डाले, मिटा डाले, जरा भी जगह न घेरे, बांस की पोंगरी हो जाए, परमात्मा के स्वर को पुकारे और प्रतीक्षा करे, और जब परमात्मा का स्वर उतरे तो स्वभावतः... यह व्यक्ति और प्रतिभाशाली व्यक्ति में फर्क कर लेना, यह फर्क सूक्ष्म है... अगर तुम्हें अवतार के पास होने का मौका मिल जाए, तो तुम दर्पण में नहीं देख रहे हो परमात्मा को, तुम परमात्मा को ही देख रहे हो--झरोखे से।
फर्क समझ लेना। अवतार है--झरोखा, खिड़की। उससे तुम जो देख रहे हो वह परमात्मा ही है, झरोखे से देख रहे हो। शायद परमात्मा को सीधा देखने के योग्य तुम्हारी क्षमता भी न हो, शायद उतना बड़ा सत्य तुम सम्हाल भी न पाओ, सह भी न पाओ; शायद उतनी अग्नि से तुम गुजर भी न पाओ। सूरज को सीधा देखना कठिन भी तो है। थोड़ी आड़ हो तो सुविधा मिल जाती है। थोड़ा झीना सा पर्दा हो तो सुविधा मिल जाती है। आंख पर काला चश्मा हो तो थोड़ी सुविधा मिल जाती है, थोड़ी सुरक्षा हो जाती है। आंख कोमल है। अवतार परमात्मा में झरोखा है, छोटा सा झरोखा। विराट आकाश में खुलता है, लेकिन झरोखा छोटा है।
पंडित, ज्ञानी, विद्वान झरोखा नहीं हैं, दर्पण हैं। और हो सकता है दर्पण में सीधा सूर्य का बिंब न ही बन रहा हो, यह दर्पण और दर्पणों का प्रतिबिंब बना रहा हो--दर्पण, दर्पण, दर्पण। पंडित और पंडितों की छाया बन जाते हैं। वे किसी और पंडित की छाया थे। और ऐसे सदियों-सदियों तक छाया से

छाया, छाया से छाया पैदा होती है। धीरे-धीरे सत्य तो खो ही जाता है, छाया ही रह जाती है।
मैंने सुना है, मुल्ला नसरुद्दीन के घर एक मित्र आया और साथ में एक बतख लाया। गांव से आया था। मुल्ला बहुत प्रसन्न हुआ। उसने बतख मुल्ला को भेंट की। बतख का शोरबा बनाया गया। मुल्ला ने उसका खूब आथित्य-सत्कार किया।
कुछ दिनों बाद एक दूसरा आदमी गांव से आया। उसने पूछा, आप कौन हैं? मैंने कभी देखा नहीं, मुल्ला ने पूछा। उसने कहा, मैं उसका मित्र हूं जो बतख लाया था। उसका भी स्वागत-सत्कार किया गया।
एक दिन एक तीसरा आदमी आया, उसने कहा कि मैं उस मित्र का मित्र हूं।
ऐसे लोग आते ही चले गए। फिर तो हिसाब रखना ही मुश्किल हो गया। मुल्ला
भी थक गया स्वागत करते-करते। यह बतख महंगी पड़ गई। एक दिन एक आदमी आया। मुल्ला ने कहा, आप कौन हैं? उसने कहा, आप मुझे नहीं पहचानेंगे। जो मेरे पहले आया था, मैं उसका मित्र हूं। अब तो बात बहुत लंबी हो गई थी। मुल्ला ने सिर्फ गर्म पानी उसे पीने को दिया। उसने गर्म पानी पीया, उसने कहा, यह किस तरह का शोरबा है? मैं तो शोरबे की तारीफ सुन कर आया था। उसने कहा, यह बतख के शोरबे के शोरबे के शोरबे का शोरबा है। अब तो यह कुनकुना पानी ही बचा है। ऐसा ही हुआ है। वेद में, किसी ने जाना था, उसने कहा। फिर वेद पर टीकाएं हैं, टीकाओं पर टीकाएं हैं, टीकाओं पर टीकाएं हैं--शोरबे के शोरबे के शोरबे का शोरबा। फिर पांच-दस हजार साल के बाद कोई पंडित उस गरम पानी को लिए बैठा है। उसमें बतख तलाश रहा है। वह बतख मिलती नहीं। लेकिन बतख होनी तो चाहिए, क्योंकि पहले ज्ञानी कह गए हैं। इसलिए बतख को कल्पित करता है। होनी तो चाहिए ही, नहीं तो सारी परंपरा गलत होती है। और सारे लोग गलत नहीं हो सकते। इतने लोग गलत कैसे हो सकेंगे? इतने पूज्यों की परंपरा पीछे खड़ी है, इतने जाने-माने प्रसिद्ध लोग पीछे खड़े हैं--कतार है हजारों साल की--तो गलत तो नहीं हो सकता। तो यही हो सकता है कि मेरी ही कुशलता नहीं है। इसलिए अनुमान करता है, भरोसा करता है, कल्पना करता है; जो नहीं मिलता है, उसको बना लेता है कि है, उसको दोहराए चला जाता है। यह तो दर्पण भी नहीं है।
प्रतिभा कितनी ही महत्वपूर्ण हो, चूंकि अहंकार से भरी होती है, इसलिए परमात्मा का दर्पण उसमें नहीं बन पाता।
शांडिल्य ने कहा कि विभूतियों में परमात्मा को मत देखना, अन्यथा उलझ जाओगे। या तो परमात्मा को सीधा देखना, और अगर सीधे देखने की आंख न हो, या आंख कमजोर हो, या भय लगता हो--जो बिल्कुल स्वाभाविक है--तो फिर किसी ऐसे आदमी के पास से देखना जिसने देखा हो, जो यह न कहता हो कि वेद कहते हैं इसलिए परमात्मा है; जो कहता हो, मैं कहता हूं इसलिए परमात्मा है; जिसने देखा हो, जिसने पहचाना हो, जिसने अनुभव किया हो। उसके उठना पास, बैठना पास, उसका सत्संग करना, उसकी आंखों में झांकना, उसकी तरंगों में डूबना। क्योंकि बहुत बार तो कहने वाले लोग भी झूठ होते हैं। पहचान कैसे करोगे कि जो कह रहा है वह सच ही कह रहा है कि मैंने जाना है, मैंने देखा है?
पहचान इस तरह होगी कि उसके पास बैठ कर अगर तुम्हारा चित्त रूपांतरित होने लगे, तो समझना कि उसने जाना है। उसके पास बैठ कर अगर तुम्हारा मन शांत होने लगे, तुम्हारे बिना कुछ किए शांत होने लगे, उसके पास बैठते-बैठते ही तुम्हारे भीतर कुछ धुन बजने लगे, कुछ नये द्वार खुलने लगें, कुछ नये संगीत का अनुभव होने लगे, कुछ नये तार छिड़ने लगें, कुछ नये रंग तुम्हारे भीतर बिखरने लगें, उसकी मौजूदगी तुम्हारे भीतर रूपांतरकारी होने लगे, तो समझना।
अवतार से संबंध जोड़ लेना। और ऐसा मत सोचना कि अवतार कृष्ण और बुद्ध और राम में समाप्त हो गए हैं। जब भी कोई व्यक्ति परमात्मा के प्रति शून्य-भाव से खड़ा हो जाता है, परमात्मा अवतरित होता है। हालांकि हर व्यक्ति में अवतरण भिन्न तरह का होता है। होगा ही। कृष्ण में उतरेंगे तो एक ढंग से उतरना होगा। और बुद्ध में उतरना होगा तो दूसरे ढंग से उतरना होगा।
अवतार शब्द को समझ लेना। अवतार का अर्थ होता हैः उतरना, अवतरण; ऊपर से आता है कोई। तुम जगह खाली करो, कोई रोशनी उतरती है, कोई बाढ़ आती है, सब कूड़ा-

कर्कट बहा ले जाती है। फिर पीछे जो शेष रह जाता है वही भगवत्ता की अनुभूति है।
तो अभी भक्ति की जिज्ञासा का क्या अर्थ होगा? अभी परमात्मा को तो जाना नहीं, इसलिए भक्ति परमात्मा का प्रेम तो अभी हो नहीं सकती।
चार प्रेम की सीढ़ियां कही हैं शांडिल्य ने। एक है, स्नेह। अपने से छोटे के प्रति--बेटे के प्रति, बेटी के प्रति, शिष्य के प्रति, विद्यार्थी के प्रति--अपने से छोटे के प्रति। फिर दूसरे को प्रेम कहा है। अपने से समान के प्रति--मित्र के प्रति, पत्नी के प्रति, पति के प्रति। फिर तीसरे को श्रद्धा कहा है। अपने से श्रेष्ठ के प्रति--पिता के प्रति, मां के प्रति, गुरु के प्रति। और चौथे को भक्ति कहा है। परम के प्रति।
तो उठो! स्नेह से उठो प्रेम में, प्रेम से उठो श्रद्धा में। श्रद्धा
तक जाना बिल्कुल सुगम है। अधिक लोग प्रेम पर ही अटक गए हैं, उनके जीवन में श्रद्धा का सूत्र नहीं है। और जिनके जीवन में श्रद्धा का सूत्र नहीं है, उनके जीवन में भक्ति का जन्म न हो सकेगा। यह सबशृंखलाबद्ध प्रक्रिया है। श्रद्धा के बाद भक्ति है। इसलिए गुरु की इतनी महिमा शास्त्रों ने कही है। गुरु का अर्थ हैः जिसके पास श्रद्धा जन्मे। गुरु का अर्थ हैः जिसके पास जाकर झुकने का सहज मन हो। झुकना पड़े तो बात गलत हो गई। परंपरागत रूप से झुकना पड़े तो बात व्यर्थ हो गई। औपचारिक रूप से झुकना पड़े तो बात व्यर्थ हो गई। दूसरे लोग झुक रहे हैं इसलिए झुकना पड़े तो भी बात व्यर्थ हो गई। जब तुम्हारे भीतर सहज झुकाव आ जाए, किसी व्यक्ति के प्रति तुम्हारे मन में सहज ही झुकाव आ जाए, तुम अपने को रोक ही न पाओ और झुक जाओ, झुक जाओ तब पाओ कि अरे मैं झुक गया हूं, तो समझना कि गुरु मिला।
गुरु के पास बैठ कर श्रद्धा को उमगने देना। इसी श्रद्धा की सघनता में भक्ति का पहला अंकुर उठता है। इसलिए शास्त्रों ने, ज्ञानियों ने गुरु को परमात्मा का प्रतीक कहा है--सिर्फ इस अर्थ में कि उसके पास श्रद्धा उमगती है, श्रद्धा की सघनता ही भक्ति बनती है।
भक्ति की जिज्ञासा करें, तो इसका अर्थ हुआ, गुरु की तलाश करें। परमात्मा का तो पता नहीं है। सूरज का तो पता नहीं है। आंखें अंधी हैं। इसलिए वैद्य की तलाश करें; जो उपचार करेगा, जो आंख पर जमे जाले को काटेगा, जो औषधि देगा।
बुद्ध ने अपने को वैद्य कहा है। नानक ने भी अपने को वैद्य कहा है। ठीक कहा है, वे वैद्य ही हैं। गुरु उपचार करता है; उपदेश नहीं, उपचार। अगर उपदेश भी करता है तो उपचार के निमित्त। बोलने में उसका रस नहीं है, जगाने में उसका रस है। बोलने में उसका रस नहीं है, खोलने में उसका रस है।
तो इस सूत्र को ख्याल में रखना। प्रतिभा अर्जित की जाती है, प्रतिभा अहंकार का उपाय है। अवतरण निर-अहंकार समाधि में फलित होता है; जब मैं मिट जाता है, तब परमात्मा उतरता है।
आज के सूत्र--
द्यूतराजसेवयोः प्रतिषेधात च।
"धर्मशास्त्रों में जुआ और राजा की सेवा का निषेध है।"
इसके पहले के सूत्र में शांडिल्य ने कहा था, राजा में भगवान मत देखना;
पद में परमपद मत देखना; धन में ध्यान मत देखना। अब वे इसकी व्याख्या कर रहे हैं। वे कह रहे हैं कि धर्मशास्त्रों ने जुआ और राजा की सेवा का निषेध किया है। इसलिए राजा में भगवान तो कैसे हो सकता है!
बड़े हिम्मतवर धर्मशास्त्र रहे होंगे, जिन्होंने राजा की सेवा को जुए
के साथ गिना है। राजनीति है ही जुआ। चालबाजों, धोखेबाजों, पाखंडियों के लिए ही वहां उपाय है। राजनीति सबसे बड़ा जुआ है। अगर जुआरी देखने हों तो दिल्ली में! सब तरह के पागल और सब तरह के जुआरी और सब तरह के शराबी। हालांकि कभी-कभी ऐसा हो जाता है कि ये शराबी शराब के खिलाफ होते हैं; नशाबंदी के पक्ष में होते हैं। मगर धर्मशास्त्र कहते हैं, पद का नशा सबसे बड़ा नशा है और सबसे घातक।

अब मोरारजी देसाई कहते हैं, नशाबंदी होनी चाहिए। और मोरारजी देसाई से ज्यादा नशे में डूबा हुआ आदमी पाओगे? मौत करीब आने लगी, आखिरी दिन करीब आ रहे हैं, लेकिन नशे की दौड़ है।
पद की दौड़ को मद कहा है शास्त्रों ने। लेकिन अक्सर ऐसा हो जाता है कि जिसको पद का नशा चढ़ गया, उसे फिर और नशे की जरूरत नहीं रहती। उसने सबसे कीमती और सबसे पुरानी और महंगी शराब पा ली। अब उसको क्या जरूरत है? वह नशाबंदी के पक्ष में हो सकता है।
ये जो राजनीति की दौड़ में दौड़ने वाले पागलों की जमात है, इनको चिकित्सा की जरूरत है; इनको मानसिक व्याधियां हैं। सच तो यह है, जो आदमी पद की तलाश में निकलता है वह किसी हीनग्रंथि के कारण ही निकलता है, इनफिरिआरिटी कांप्लेक्स से ही निकलता है। जिस व्यक्ति के भीतर हीनता की ग्रंथि नहीं होती, वह पद की तलाश में नहीं निकलता। पद की तलाश अपनी हीनता की ग्रंथि को छिपाने का उपाय है। पद पर पहुंच कर आदमी अपने सामने यह सिद्ध कर लेना चाहता है कि कौन कहता है कि मैं ना-कुछ हूं! सिद्ध कर दिया मैंने कि मैं कुछ हूं। लेकिन जरूर इसके भीतर कहीं डर रहा होगा कि अगर मेरे पास पद न हो, धन न हो, तो दुनिया कहेगी कि तुम ना-कुछ हो, और मैं भी जानता हूं कि ना- कुछ तो हूं। इसको भर कर दिखला देना है; दुनिया को समझा देना है कि मैं कुछ हूं।
मगर दुनिया को समझाने से तुम कुछ होते नहीं। दुनिया समझ भी ले तो भी कुछ फल हाथ नहीं आता। कितना ही धन इकट्ठा कर लो, भीतर तुम निर्धन ही रह जाते हो। क्योंकि भीतर का धन तो और ही है। और कितने ही ऊंचे पद पर बैठ जाओ, तुम पदहीन रह जाते हो। क्योंकि भीतर का पद तो और ही है। उसके लिए बाहर की यात्रा नहीं करनी पड़ती। उसके लिए राजधानियों की ओर नहीं जाना पड़ता। उसके लिए तो अंतर्धानी खोजनी पड़ती है, भीतर की यात्रा करनी पड़ती है। उसके लिए दूसरों पर जीत करने की कोई जरूरत नहीं है, अपने को जीतना होता है, आत्मविजय करनी होती है।
धर्मशास्त्र कहते हैंः "जुआ और राजा की सेवा का निषेध है।"
राजा बनने की तो बात ही छोड़ो, धर्मशास्त्र कहते हैं, राजा की सेवा का
भी निषेध है। उसकी सेवा से भी बचना। क्योंकि जुआरियों, पागलों, नशे में डूबे हुए लोगों से जितने दूर रहो उतना ही अच्छा है। दुष्ट-संग से बचना चाहिए। सत्संग करना चाहिए। राजा की सेवा स्वभावतः तुम्हें बदलेगी, तुम्हें निकृष्ट करेगी। राजा की सेवा में तुम और-और झूठ में निष्णात होते जाओगे। राजा की सेवा में तुम्हारी अंतरात्मा तो मर ही जाएगी।
बड़ी प्रसिद्ध कथा है। चीन का एक महाज्ञानी--भारत की भाषा में कहें तो अवतार--च्वांगत्सु, एक नदी के किनारे बैठा मस्ती से नदी में उठती लहरों को देख रहा था। सुबह का सूरज निकला था, फूल खिले थे, पक्षी गीत गा रहे थे। मछलियां सुबह की ताजी रोशनी में छलांगें भर रही थीं। तभी सम्राट के दो वजीर च्वांगत्सु को खोजते हुए आए और उन्होंने च्वांगत्सु से आकर प्रार्थना की कि सम्राट ने आपकी प्रतिभा की बड़ी खबरें सुनी हैं और सम्राट उत्सुक है और वह चाहता है कि आप उसके प्रधान वजीर बन जाएं। च्वांगत्सु खूब हंसा। वे वजीर थोड़े हतप्रभ भी हुए, उन्होंने पूछा कि आप इस तरह हंस रहे हैं, मामला क्या है? आप हां कहें, यह तो बड़े सौभाग्य का क्षण है। लोग तो दीवाने होते हैं, जिंदगी भर मेहनत करते हैं तब भी नहीं हो पाते हैं। हम भी मेहनत करते-करते थक गए हैं और अभी तक प्रधान वजीर नहीं हो पाए, आपके लिए सौभाग्य अपने आप आया है; यह तो वरदान है। आपकी हंसी से हमें शक होता है। च्वांगत्सु ने कहा, एक बात का मुझे उत्तर दो। देखते हो, वह पास एक कीचड़
के गड्ढे में एक कछुआ मस्ती से अपनी पूंछ हिला रहा है, कीचड़ में मजा ले रहा है। पूछा च्वांगत्सु ने, देखते हो इस कछुए को कीचड़ में मस्त होते? मैंने सुना है कि सम्राट के महल में एक कछुआ है।
उन वजीरों ने कहा, निश्चित है, अति प्राचीन है, तीन हजार साल पुराना है। सोने के संदूक में बंद है, हीरे-जवाहरात जड़े हैं, उसकी पूजा की जाती है वर्ष में एक दिन। वह बड़ा पवित्र कछुआ है, वह धरोहर है। जब पहली दफा सम्राट के पूर्वज सम्राट बने थे तब से वह चला आया है।

च्वांगत्सु ने पूछा कि मैं तुमसे यह पूछता हूं, अगर इस कछुए से, जो कीचड़ में मजा ले रहा है, तुम पूछो कि तुम सोने की पेटी में बंद होना चाहोगे? हीरे-जवाहरात जड़ी होगी और वर्ष में एक दिन तुम्हारी पूजा भी होगी, तो यह सोने की पेटी में बंद होने के लिए राजी होगा? या इसी कीचड़ में मजे से पूंछ हिलाना पसंद करेगा?
वजीरों ने कहा कि कछुए की बात करते हो तो कछुआ तो कीचड़ में ही पूंछ हिलाना पसंद करेगा, कछुआ जाना पसंद नहीं करेगा सोने के महल में और सोने की पेटी में।
च्वांगत्सु ने कहा, तुम मुझे कछुआ से ज्यादा मूढ़ समझते हो? तुम मुझे कछुआ से ज्यादा बुद्धू समझते हो? भाग जाओ! और दुबारा कभी इस तरफ मत आना। मैं अपनी कीचड़ में मस्त हूं, मुझे राजमहल नहीं चाहिए।
कहते हैं च्वांगत्सु ने वह गांव छोड़ दिया, वह राज्य छोड़ दिया, क्योंकि राजा उसके फिर-फिर पीछे पड़ा।
राजनीति विषाक्त करती है। एक्टन का प्रसिद्ध वचन हैः पावर करप्ट्स एंड करप्ट्स एब्सोल्यूटली। सत्ता विकृत करती है और समग्र रूप से विकृत करती है।
यह चमत्कार तुम रोज देखते हो, फिर भी तुम देख नहीं पाते। तुम जब भी चुनते हो, अच्छे से अच्छे आदमी को चुन कर भेजते हो। लेकिन पद पर पहुंचते से ही वह आदमी वही नहीं रह जाता। पद पर पहुंचते ही सब बदल जाता है। जिसको भेजा था वह बड़ा विनम्र था, झुक-झुक कर नमस्कार करता था। शायद इसीलिए झुक-झुक कर नमस्कार करता था, शायद इसीलिए विनम्रता का आरोपण किए हुए था कि तुम उसे भेजो। पहुंचते से ही सब आरोपण समाप्त हो जाते हैं, सत्ता अपनी नग्न स्थिति में प्रकट होनी शुरू होती है, सब आश्वासन झूठे सिद्ध होते हैं। लेकिन तुम सदा यह आशा रखते हो कि इसने धोखा दे दिया तो कल किसी और को चुनेंगे, परसों किसी और को चुनेंगे। और ऐसा सदियों से तुम लोग चुनते रहे। सदियों से तुम क्रांतियां करते रहे। और हर क्रांति में तुमने बड़ी आशा मानी। और कोई क्रांति कभी पूरी नहीं हुई। और किसी ने कभी कोई आशा पूरी नहीं की।

जो पद पर जाता है वह तुम्हारी आशा पूरी करने को जाता ही नहीं। वह तो तुम्हारी आशा पूरी करने की बात करता है, क्योंकि उसके बिना तुम उसे भेजोगे नहीं। और एक दफे पद पर पहुंच जाता है तो उसकी फिर एक ही चेष्टा होती है-- कैसे पद पर बना रहे। क्योंकि अब पद से उतरना बड़ा महंगा सौदा है। क्योंकि जो लोग फूलमालाएं पहना रहे हैं, ये ही कल जूते फेंकेंगे।
जो आदमी पद पर बैठ गया उसकी तकलीफ यह है कि अब वह उतर नहीं सकता। उसने
रस ले लिया अहंकार का, अब वहां से पद से उतरने में सारा अहंकार खो जाता है। लोग नमस्कार सिंहासन को कर रहे थे, लेकिन उसने समझा कि मुझे कर रहे हैं। अब वह उतर नहीं सकता। क्योंकि उतरा तो लोग फिर नमस्कार नहीं करते। तुमने देखा, जो लोग पद से खो जाते हैं, जिनके हाथ से पद चले जाते हैं, उनकी हालत क्या रह जाती है? लोग उनसे बदला लेने लगते हैं। लोग कहते हैं कि खूब नमस्कार करवाई थी, खूब चरण दबवाए थे, खूब आदर-सम्मान लिया था हमसे, अब उसका बदला भी लेना होगा। ये ही लोग पत्थर फेंकते हैं, जूतों की माला पहनाते हैं। और ये ही लोग उपेक्षा करने लगते हैं। जो कल एकदम आकाश में था, वह कहां भीड़ में खो जाता है, कुछ पता नहीं चलता।
जो व्यक्ति पद पर पहुंचा, उसको पद को पकड़ रखने की आकांक्षा होती है। फिर वह सब उपाय करता है, सब कुटिलताएं करता है--किसी तरह पद पर बना रहे।
उसके पास जो लोग होंगे, उन्हें भी उसकी कुटिलताओं में भागीदार होना पड़ेगा। उसे उसके शड्यंत्रों में हिस्सा बंटाना पड़ेगा।
शास्त्र कहते हैंः "जुआ और राजा की सेवा का निषेध है।"
द्यूतराजसेवयोः प्रतिषेधात च।
इसलिए राजा को भगवान तो कहा ही कैसे जा सकता है? अगर राजा भगवान होता,
तो शास्त्र कभी यह न कहते कि उसकी सेवा बुरी है। शास्त्र तो कहते हैंः साधु की सेवा करो। सेवा का अर्थ हैः उसके पास होने के बहाने खोजो। कभी पैर दबाने के बहाने उसके पास हो लिए। कभी भोजन कराने के बहाने उसके पास हो

लिए। बहाने खोजो। क्योंकि जितनी देर तुम उसके पास हो लो, उतना तुम्हारा सौभाग्य है! जितनी वे किरणें तुम्हारे ऊपर पड़ जाएं, उतनी ही तुम्हारी आंखों के खुलने की संभावना बढ़ती है; उतना ही तुम्हारा हृदय विकसित होगा। इसलिए राजा पराभक्ति का आश्रय नहीं है।
वासुदेवः अपि इति चेत न आकारमात्रत्वात्।
लेकिन फिर सवाल उठता है, वासुदेव अर्थात श्रीकृष्ण में विभूति की आशंका करनी चाहिए या नहीं करनी चाहिए? क्योंकि कई शास्त्र कहते हैं कि कृष्ण विभूतिसंपन्न हैं।
शांडिल्य कहते हैंः "वासुदेव में विभूति की आशंका नहीं करनी चाहिए,
वे आकार मात्र से ही मनुष्य हैं।"
यह सूत्र बहुमूल्य है।
विभूतियां तो अहंकार से भरे हुए लोग हैं। कुशल हैं, प्रतिभाशाली हैं, मेधावी हैं, कुछ करने की कला जानते हैं, लेकिन अहंकार से भरे हुए लोग हैं। कृष्ण को विभूति नहीं कहा जा सकता। और अगर शास्त्रों ने कहा है तो उपचार मात्र से कहा है। कृष्ण तो अवतार हैं, विभूति नहीं।
शांडिल्य कहते हैंः "वे आकार मात्र से ही मनुष्य हैं।"
तुममें और कृष्ण में फर्क क्या है? आकार तो दोनों का एक जैसा है। उसी हड्डी-मांस-मज्जा से तुम बने हो, जिससे कृष्ण बने हैं। भेद क्या है? भेद इतना ही है कि तुम हो और कृष्ण नहीं हैं। तुम आकार के भीतर अहंकार भी हो और कृष्ण सिर्फ आकार मात्र हैं, अहंकार नहीं। वहां भीतर कोई विराजमान नहीं है। वहां भीतर सन्नाटा है, शून्य है। उस शून्य के कारण ही परमात्मा उतर पाता है। उस शून्य में ही उतर पाता है। कृष्ण आकार से तो तुम्हारे जैसे हैं, लेकिन अगर आकार को छोड़ कर जरा भीतर जाओगे तो निराकार को पाओगे। और जहां, जिस आकार में निराकार मिल जाए, वहीं सदगुरु है।
शास्त्रों में मत भटकना, सदगुरु तलाशना। जहां मिल जाए। फिर इसकी फिकर
न करना कि वह हिंदू है, कि मुसलमान है, कि ईसाई है, कि बौद्ध है। इसकी फिकर ही मत करना, क्योंकि ये सब आकार की दुनिया की बातें हैं। अगर तुम्हें कभी सौभाग्य से ऐसा आदमी कहीं मिल जाए जिसमें तुम्हें दिखे कि आकार के भीतर निराकार विराजमान है, जिसकी आंखों में तुम झांको और अहंकार न पाओ, तो छोड़ना मत संग-साथ, फिर सब दांव पर लगा देना, फिर मौका देना कि उसका शून्य तुम्हारा शून्य भी बन जाए। शून्य संक्रामक है।
ध्यान रखना, जिस तरह बीमारियां संक्रामक होती हैं, वैसे ही स्वास्थ्य
भी संक्रामक होता है। और जिस तरह दुख संक्रामक होता है, उसी तरह आनंद भी संक्रामक होता है। दुखी आदमी के पास बैठ कर तुमने अनुभव किया ही होगा, अचानक तुम उदास हो जाते हो। चार लोग दुखी बैठे हों, तुम हंसते हुए आए थे और उनके पास बैठ कर तुम्हें अचानक लगता है तुम भी उनके दुख में डूब गए। वहां दुख की तरंग थी, उसने तुम्हारे भीतर भी दुख का साज छेड़ दिया। वहां दुख की हवा थी, उसमें तुमने श्वास ली कि तुम भी दुख पी गए। कभी तुमने यह भी अनुभव किया होगा कि तुम दुखी थे और चार हंसते हुए लोगों में जा बैठे, और तुम भूल ही गए कि दुख कहां था, कहां गया! तुम हंसने लगे। तुम उनके साथ गीत गुनगुनाने लगे। बाद में तुम्हें याद आएगा कि अरे, मैं इतना दुखी गया था, मेरे दुख का क्या हुआ? तुम एक नई तरंग में पड़ गए।
प्रत्येक व्यक्ति की तरंग है। और हम सब अनुभव से जानते हैं यह, कि किसी व्यक्ति के पास जाओ तो लौट कर ऐसा लगता है कि उसने चूस लिया। और किसी व्यक्ति के पास जाओ तो लौट कर ऐसा लगता है कि उसने जीवन दिया। किसी व्यक्ति के पास बैठ कर ऐसा लगता है, और बैठे रहें, और बैठे रहें। और कोई व्यक्ति आ जाता है तो ऐसा लगता है कि महानुभाव कब जाएं, कैसे इनसे छुटकारा हो! ये तुम्हारे सामान्य अनुभव हैं, लेकिन तुमने इन अनुभवों पर बहुत विचार नहीं किया है। अगर इन अनुभवों को तुम थोड़ा सजग होकर समझो तो तुम्हें सदगुरु खोजना कठिन नहीं होगा। जिसके पास बैठ कर सुख-दुख दोनों भूल जाएं, शांति का अनुभव हो... शांति का अर्थ होता हैः जहां न सुख है न दुख है। ध्यान रखना इस भेद को। किसी के पास बैठ कर तुम उदास हो जाते हो, किसी
के पास बैठ कर प्रसन्न हो जाते हो, ये दोनों ही संसार की अवस्थाएं हैं।

सदगुरु कौन? जिसके पास बैठ कर तुम दुख भी भूल जाते हो, सुख भी भूल जाते हो। तुम अपने को ही भूल जाते हो--कहां सुख, कहां दुख! जिसके पास बैठ कर एक परम शांति की झंकार सुनाई पड़ने लगती है, एक सन्नाटा छा जाता है; जिसके पास बैठ कर शून्य होने लगते हो; जिसके पास बैठ कर निराकार फैलने लगता है तुम्हारे प्राणों में।
लोग शांति शब्द का प्रयोग करते हैं, लेकिन अर्थ भी नहीं जानते। लोग शांति से यही अर्थ लेते हैं--सुख। शांति का अर्थ सुख नहीं होता। सुख भी एक उपद्रव है, जैसे दुख एक उपद्रव है। दुख प्रीतिकर उपद्रव नहीं है, सुख प्रीतिकर उपद्रव है। दुख का भी तनाव होता है, सुख का भी तनाव होता है। एक तनाव को तुम पसंद करते हो इसलिए सुख कहते हो, एक तनाव को तुम नापसंद करते हो इसलिए दुख कहते हो, मगर दोनों तनाव हैं। और दोनों विक्षुब्ध चित्त की अवस्थाएं हैं। दोनों थकाते हैं।
तुमने ख्याल किया, सुख से भी तुम थक जाते हो। रोज ही रोज तमाशा चलता रहे! एकाध दिन मिल जाए तुम्हें लाटरी तो ठीक है, मगर रोज मिलने लगे तो तुम थक जाओगे। और तुमने सोचा है कभी कि कभी-कभी दुख भी इतना नहीं तोड़ता जितना सुख तोड़ देता है! कभी-कभी लोग सुख के कारण मर जाते हैं; इतने सुख में इतने उद्विग्न हो जाते हैं। राह चलते तुम्हें अचानक एक लाख रुपये की थैली मिल जाए, भले-चंगे चले जा रहे थे, कोई बीमारी न थी, कुछ न था, एकदम हार्ट अटैक हो जाए, वहीं गिर पड़ो थैली के साथ, इतना सुख एकदम से न झेल पाओ। कहते हैं, किसी को सुख की खबर भी देनी हो तो धीरे-धीरे देनी चाहिए।
मैंने सुना है, ऐसा हुआ, एक आदमी को पांच लाख की लाटरी मिल गई। वह घर नहीं था। उसकी पत्नी बहुत घबड़ाई। क्योंकि वह आदमी तीस साल से लाटरी की टिकटें खरीद रहा था। धीरे-धीरे तो भूल ही गया था कि लाटरी मिलेगी भी। लेकिन आदतवश हर महीने खरीद लेता था। पत्नी बहुत घबड़ा गई। घर में कभी पांच सौ रुपये भी इकट्ठे नहीं आए थे। पांच लाख! पत्नी समझदार थी, उसने कहा, ये पांच लाख तो जान ले लेंगे मेरे पति की। वह भागी हुई पड़ोस में गई। एक पादरी पास में ही रहता था। उसने पादरी से कहा, आप ही कुछ उपाय करें। अब मैं क्या करूं? यह पांच लाख की लाटरी मिल गई है, वे दफ्तर से आते ही होंगे; पांच लाख की खबर मिल कर उन्हें क्या हो जाए!
पादरी ने कहा, घबड़ाओ मत, मैं आता हूं।
पादरी आया, उसने कहा, मैं धीरे-धीरे खबर दूंगा। पति लौटा। पादरी ने कहा, सुनते हो, तुम्हें एक लाख रुपया लाटरी में मिला। पांच हिस्से करके, उसने सोचा कि जब यह एक लाख सम्हाल लेगा, इसकी धकधक वापस सामान्य हो जाएगी, तो फिर कहूंगा कि एक लाख नहीं, दो लाख मिला है। लेकिन मामला बड़ा गड़बड़ हो गया। उस आदमी ने कहा, एक लाख! सच कह रहे हो?
उस पादरी ने कहा, बिल्कुल सच कह रहा हूं, एक लाख।
तो उसने कहा, अगर एक लाख मिला होगा तो पचास हजार तुमको देता हूं।
वह पादरी वहीं मर गया। उसने सोचा ही नहीं था, पचास हजार एकदम से! वह तो सहायता करने आया था।
सुख की भी अपनी उत्तेजना है, जैसे दुख की उत्तेजना है। और शांति शब्द
को लोग समझते नहीं। शांति का अर्थ हैः जहां न सुख, न दुख।
मैंने सुना है, एक पति महोदय चारों धाम की यात्रा पर निकल पड़े। जाते- जाते पत्नी से बोले, मैं शांति की खोज में जा रहा हूं। कर्कशा पत्नी ने छाती पीट ली और बोली, रुक! अब किस मरी शांति के पीछे जा रहे हो? दस शांतियां दफ्तर में बैठी हैं, एक मैं घर में पड़ी हूं!
प्रत्येक व्यक्ति की अपनी समझ का तल है।
शांति का अर्थ होता हैः एक निर्विकार चित्त की दशा, जहां कोई उत्तेजना नहीं है। सब चुप है। बिल्कुल चुप है। न इस तरफ, न उस तरफ। सब मध्य में ठहर गया है। सब संतुलन है। संतुलन का नाम शांति।
जिस व्यक्ति के पास तुम्हें धीरे-धीरे शांति का स्वाद मिले, समझ लेना
कि वह द्वार आ गया जहां झुक जाना है। श्रद्धा का मंदिर आ गया। झरोखा यहां से खुलेगा भक्ति का।
"वासुदेव श्रीकृष्ण में विभूति की आशंका नहीं करनी चाहिए।"

वे केवल विभूतिसंपन्न ही नहीं हैं। ऐसा तुम सोचोगे तो गलती करोगे। फिर तुम चूक ही जाओगे।
"वे आकार मात्र से ही तुम जैसे हैं, मनुष्य हैं।"
जो व्यक्ति आकार से तुम जैसा और आत्मा से परमात्मा जैसा है, उसका नाम सदगुरु। कृष्ण या बुद्ध, जरथुस्त्र या मोहम्मद, जीसस या महावीर, आकार से ही तुम जैसे हैं। उनके भीतर जो उतरेगा, जरा सीढ़ियां पार करेगा, महावीर के कुएं में जाएगा गहरा, या मूसा के कुएं में जाएगा गहरा, अचानक पाएगा--आकार तो पीछे रह जाता है, निराकार खुल जाता है। द्वार में आकार होता है, लेकिन द्वार से तुम निकले कि आकाश, निराकार मिल जाता है। गुरु तो द्वार है। इसलिए नानक ने ठीक ही कहा, मंदिर को नाम दिया--गुरुद्वारा। वह द्वार ही मात्र है। और नानक का बहुत जोर था गुरु पर। समस्त ज्ञानियों का रहा है। प्रत्यभिज्ञानात च।
"इस विषय में प्रत्यभिज्ञा भी उपलब्ध है।"
शांडिल्य कहते हैंः ऐसा मैं कहता हूं इसलिए मत मान लेना। इस विषय में तुम स्वयं का अनुभव भी कर सकते हो, प्रत्यभिज्ञा भी हो सकती है। तुम खुद इस प्रतीति में जा सकते हो। ये सूत्र किसी विचारक के द्वारा कहे गए सूत्र नहीं हैं। ये किसी अनुभव के वचन हैं, अनुभवी के जीवन का सार हैं। शांडिल्य कहते हैंः प्रत्यभिज्ञानात च।
और मैं तुमसे इतना ही नहीं कहता कि ऐसा है, मैं तुमसे कहता हूं, ऐसे अनुभव को तुम भी पा सकते हो। तुम भी ऐसे व्यक्ति को खोज सकते हो जो सिर्फ विभूति नहीं है वरन अवतार है। जो अपने प्रयास से, अपनी अस्मिता से, अपनी खोज से कुछ विशिष्ट नहीं हो गया है, बल्कि अपने को मिटा दिया है और विशिष्ट हो गया है। जिसने अपने को पोंछ डाला है और परमात्मा को जगह दे दी है। कुफ्र क्या, तस्लीस क्या, इल्हाद क्या, इस्लाम क्या,
तू ब-हरसूरत किसी जंजीर में जकड़ा हुआ
तोड़ सकता हो तो पहले तोड़ दे यह कैदो-बंद
बेड़ियों के साज पर नग्माते-आजादी न गा
सबसे बड़ी चीज यही है कि किसी तरह तुम अपनी बेड़ियों को तोड़ दो। लेकिन लोग बेड़ियों को पकड़े बैठे हैं। लोगों ने बेड़ियों को आभूषण समझा है। हिंदू हूं, मुसलमान हूं, ईसाई हूं, जैन हूं, बौद्ध हूं--बेड़ियां हैं। जब तक तुम्हें सदगुरु नहीं मिला, तब तक तुम सिर्फ एक कैदी हो, और कुछ भी नहीं। न हिंदू, न मुसलमान, न ईसाई, न बौद्ध; तब तक यह सब बातचीत है। सदगुरु मिले तो कुछ हो। तो प्रत्यभिज्ञा हो।
तोड़ सकता हो तो पहले तोड़ दे यह कैदो-बंद
बेड़ियों के साज पर नग्माते-आजादी न गा
लेकिन तुम अपनी बेड़ियों को ही बजा कर स्वतंत्रता का गीत गा रहे हो। तुम बेड़ियों पर ताल बजा रहे हो, स्वतंत्रता का गीत गा रहे हो। स्वतंत्रता ऐसे नहीं फलती। मोक्ष ऐसे नहीं मिलता। भगवत्ता ऐसे उपलब्ध नहीं होती। कुछ दांव पर लगाना पड़ेगा। और मजा यह है कि सिर्फ बेड़ियों के अतिरिक्त और तुम्हारे पास है भी क्या दांव पर लगाने को? लेकिन लोग बेड़ियां भी दांव पर नहीं लगाते। मार्क्स का प्रसिद्ध वचन है किसी और संदर्भ में कि दुनिया के मजदूरो, एक हो जाओ, तुम्हारे पास खोने को है क्या सिवाय बेड़ियों के! यह किसी और संदर्भ में कही गई बात है, लेकिन आध्यात्मिक अर्थों में बड़ी बहुमूल्य हो सकती है। मैं तुमसे कहता हूंः इकट्ठे हो जाओ, एकजुट हो जाओ, आत्मकेंद्रित हो जाओ और एक बार दांव पर लगा ही दो! तुम्हारे पास है भी क्या दांव पर लगाने को, सिवाय तुम्हारी बेड़ियों के! और बेड़ियों को दांव पर लगाने से जो मिलती है, वह है आजादी।
प्रत्यभिज्ञा हो सकती है। पहचान हो सकती है। आंख में आंख डाल कर मुलाकात हो सकती है। आमने-सामने हो सकती है बात। अनुभव हो सकता है। शांडिल्य कहते हैंः मेरी मान मत लेना, प्रत्यभिज्ञा करो।
प्रत्यभिज्ञानात च।
तुम ऐसे व्यक्ति को सदा पा सकते हो। यह पृथ्वी कभी भी अवतार से खाली नहीं है। लेकिन तुम्हें अवतार मिलता नहीं, उसका भी कारण है। तुम किसी

पुराने अवतार को खोज रहे हो जो कि अब नहीं है। कोई कृष्ण को खोज रहा है, कृष्ण अब नहीं हैं। कोई क्राइस्ट को खोज रहा है, क्राइस्ट अब नहीं हैं। और मजा यह है कि जब क्राइस्ट थे तब तुम किसी और को खोज रहे थे। तब तुम मूसा को खोज रहे थे। तब मूसा जा चुके थे। जब बुद्ध थे, तब तुम राम को खोज रहे थे। तब राम जा चुके थे। और जब राम थे, तब तुम्हें राम से कुछ लेना-देना नहीं था। तब तुम किसी और को खोज रहे थे, किसी और प्राचीन पुरुष को, ब्रह्मा, विष्णु, महेश, तुम कुछ और खोज रहे थे।
तुम सदा अतीत को खोजते हो, इसलिए चूकते हो। अन्यथा पृथ्वी पर जैसे रोज सूरज आता है, ऐसे ही रोज परमात्मा भी आता है। लेकिन तुमने एक धारणा बना रखी है कि जब तक तुम मोरमुकुटधारी, हाथ में बांसुरी लेकर कृष्ण की तरह न आओगे, मैं तुम्हें स्वीकार करने वाला नहीं। और परमात्मा तुम्हारी अपेक्षाएं पूरी करे, इसकी कोई जरूरत नहीं है। पुनरुक्ति होती ही नहीं इस जगत में। कृष्ण बस एक बार आते हैं, दुबारा नहीं। हालांकि कृष्ण ने कहा है कि जब संकट होगा तब मैं आऊंगा। लेकिन ध्यान रखना, कृष्ण की शक्ल में नहीं, वहीं भूल हो रही है। नहीं तो संकट तो काफी है, कृष्ण को आ जाना चाहिए। अब और क्या संकट ज्यादा होगा? और क्या अधर्म ज्यादा होगा? और नास्तिकता क्या ज्यादा होगी? या तो कृष्ण ने झूठा वचन दिया था, कि अब आते नहीं, कि भूल-भाल गए, कि वचन ऐसे ही था जैसे राजनीतिज्ञ देते हैं, बहलावा था, भटकावा था, धोखा था, या फिर कुछ बात और है।
बात यह है कि जो एक दफा व्यक्ति पैदा हुआ, दुबारा वैसा व्यक्ति पैदा नहीं होता। परमात्मा रोज नये व्यक्ति गढ़ता है। नये ढंग से गढ़ता है। जरूरतें बदल जाती हैं। तो वही अवतार काम नहीं आते। नई देहों में उतरता है, नये शब्दों में बोलता है, क्योंकि भाषा बदल जाती है, लोग बदल जाते हैं, रीति-रिवाज बदल जाते हैं। अब कृष्ण अगर अचानक प्रकट हो जाएं एम.जी.रोड पर तो पुलिस उनको ले जाएगी पकड़ कर कि आप यहां क्या कर रहे हैं? मोरमुकुट क्यों बांधा? समझेगी कोई हिप्पी है। और बांसुरी किसलिए लटकाए हुए हो? जो कृष्ण की पूजा करते हैं वे भी नहीं पहचानेंगे। वे भी कहेंगे कि कोई चालबाज है। यह कोई बात है! यह कोई ढंग है एम.जी.रोड पर खड़े होने का! और अगर गोपियां भी नाच रही हों पास, तब तो तुम सभी खिलाफ हो जाओगे। वह तो तुम कहानी में पढ़ लेते हो, एक बात है। स्त्रियां नहा रही हों और कृष्ण उनके कपड़े लेकर झाड़ पर चढ़ जाएं, तो तुम क्या व्यवहार करोगे उनसे?
परिस्थिति बदल जाती है, संदर्भ बदल जाता है, अर्थ बदल जाते हैं। फिर वही कहानियां दोहराने का कोई अर्थ नहीं है। अब रामचंद्रजी आ जाएं लिए धनुषबाण, तो लगेंगे कोई भील इत्यादि। शायद गणतंत्र-दिवस पर दिल्ली जा रहे हैं, प्रदर्शन करेंगे वहां कुछ। तुम पहचान न पाओगे।
परमात्मा उस रूप में उतरता है जिस रूप में तुम हो। और तुम्हारी अड़चन
यह है कि तुम्हारा अपने प्रति कोई सम्मान नहीं है। इसलिए अगर परमात्मा को तुम अपनी ही शक्ल में पाते हो तो तुम अंगीकार नहीं कर पाते। तुम कहते हो कि यह व्यक्ति तो हमारे जैसा ही है। और तुम्हारा अपने प्रति बड़ा अपमान है। तुम अपने को परमात्मा मान ही नहीं सकते। और जब तक तुम यह न स्वीकार करो कि तुम्हारे भीतर भी परमात्मा की संभावना है, तब तक तुम अवतार को न पहचान पाओगे। कम से कम संभावना तो स्वीकार करो। संभावना से समझ का द्वार खुलता है।
प्रत्यभिज्ञा हो सकती है, पहचान हो सकती है, लेकिन तलाशो आस-पास; तलाशो यहां, अभी; तलाशो इस जगत में जो वर्तमान है। जरूर तुम पा लोगे। पृथ्वी कभी खाली नहीं है। किसी न किसी घट में परमात्मा का अमृत भरता ही रहता है। क्योंकि कोई न कोई कहीं न कहीं शून्य होता ही रहता है।
और ध्यान रखना, व्यर्थ की बातों में मत पड़ना कि यह कलियुग है। व्यर्थ
की चिंताओं में मत पड़ जाना कि कलियुग में कहां भगवान! कि भगवान सतयुग में होते थे! समय में कोई भेद नहीं है। परमात्मा के लिए समय एक जैसा है, एक ही वर्तुलाकार है। जो व्यक्ति भी सरल हो जाता है उसका सतयुग में प्रवेश हो जाता है। सतयुग और कलियुग समय के नाम नहीं हैं, व्यक्तियों की चित्तदशाओं के नाम हैं। तुम्हारे पड़ोस में बैठा हुआ आदमी सतयुग में हो सकता है, तुम

कलियुग में हो सकते हो। सतयुग का अर्थ इतना ही होता है--श्रद्धावान, सत्य की खोज में लगा; सत्य पर जिसका भरोसा है। सभी बच्चे सतयुगी होते हैं और सभी बूढ़े कलियुगी हो जाते हैं। कलियुग बुढ़ापे का नाम है, वह चौथी अवस्था है। लेकिन जरूरी नहीं है कि सभी बूढ़े कलियुगी हो जाएं। अगर कोई चाहे तो बुढ़ापे तक सतयुगी रह सकता है, बच्चे जैसा निर्दोष रह सकता है। मत दो तर्क को जगह, मत दो संदेह को जगह, भरोसे पर भरोसा करो। तुम भी भरोसा करते हो, लेकिन तुम भरोसा संदेह पर करते हो। तुम्हारा भी भरोसा है, लेकिन तुम्हारा भरोसा गलत पर है, नकार पर है; तुम भरोसा कांटों पर करते हो, फूलों पर नहीं करते। इसलिए अगर फूल तुम्हारे लिए खो गए हैं तो कुछ आश्चर्य नहीं है। और अगर तुम्हें कांटे ही कांटे मिलते हैं तो भी कुछ आश्चर्य नहीं है, क्योंकि जिस पर तुम्हें भरोसा है, वही तुम्हें मिलेगा। तुम्हारा भरोसा ही तुम्हारा जीवन बन जाता है। तुम्हारा भरोसा ही तुम्हारी नियति हो जाता है। तुम्हारा भरोसा ही तुम्हारा भाग्य है। इसलिए सोच-समझ कर भरोसा करना। गलत पर भरोसा किया, गलत हो जाओगे। और अधिक लोग गलत पर भरोसा किए बैठे हैं।
मेरे पास एक व्यक्ति आया। उसने कहा, मैं तो नास्तिक हूं, मैं तो संदेह
को मानता हूं। अगर आप कुछ प्रत्यक्ष प्रमाण दे सकें ईश्वर के तो मैं भरोसा कर सकता हूं।
मैंने उस व्यक्ति को पूछा, संदेह से कभी किसी को कुछ मिला है, इसका तुम प्रमाण दे सकते हो? अगर प्रमाण नहीं दे सकते कि संदेह से कभी किसी को कुछ मिला है, तो तुम संदेह पर भरोसा क्यों करते हो? संदेह पर तुम्हारा भरोसा कहां से आया? तुमने जीवन में संदेह से कुछ पाया है?
उसने कहा, मिला तो कुछ भी नहीं।
तो फिर मैंने कहा, यह कैसा भरोसा? श्रद्धा पर भरोसा करने के लिए प्रमाण मांगते हो, संदेह पर भरोसा करने के लिए प्रमाण नहीं मांगते। यह तो बड़ी ज्यादती हो गई। गलत पर भरोसे के लिए इतनी तत्परता, सही पर भरोसे के लिए इतना विरोध! तुमने तय ही कर रखा है गलत में जीने के लिए? अगर तुमने तय कर रखा है, तो तुम्हें कोई भी नहीं बदल सकता।
परमात्मा मौजूद है, अनेक-अनेक रंगों, अनेक-अनेक रूपों में। हर पड़ोस में मौजूद है, देखने वाली आंख चाहिए। और देखने वाली आंख श्रद्धा से उत्पन्न होती है, समर्पण से उत्पन्न होती है, थोड़ा अहंकार गलाने से उत्पन्न होती है।
खिरमने-दिल जला रहा हूं मैं
नक्शे-हस्ती मिटा रहा हूं मैं
तू न मग्मूम हो मगर ऐ दोस्त!
तेरी ही सिम्त आ रहा हूं मैं
तुम इधर मिटते हो कि उधर तुम परमात्मा के करीब पहुंचने लगते हो। उस आखिरी मित्र के करीब पहुंचने लगते हो। जितने मिटोगे, उतने उसके पास हो जाओगे। जितने तुम रहोगे, उतना वह दूर रहेगा। परमात्मा और तुम्हारे बीच की दूरी तुम्हारे होने की सघनता पर निर्भर है। अगर कोई व्यक्ति कहता है कि मुझे परमात्मा नहीं दिखाई पड़ता, तो उसका केवल इतना ही मतलब है कि वह इतना सघन हो गया है कि बिल्कुल पत्थर हो गया है। परमात्मा तरलता में मिलता है। बिखरो, पिघलो, मिटो।
प्रत्यभिज्ञानात च।
शांडिल्य कहते हैंः चाहो तो तुम्हें प्रत्यभिज्ञा हो सकती है। ऐसा आदमी मिल सकता है जो आकार मात्र से आदमी हो और भीतर निराकार हो और भीतर परमात्मा हो। ऐसी अपूर्व घटना घटती है। उस अपूर्व घटना का नाम ही अवतार है।
कृष्ण को फिर क्यों विभूति कहा है?
वृष्णिषु श्रेष्ठत्वम एतत्।
यह वृष्णि वंश की मर्यादा बढ़ाने के अर्थ में कहा है। यह साहित्यिक उक्ति है, अस्तित्वगत नहीं। अस्तित्व को ध्यान में रखें तो कृष्ण परमात्मा हैं। उनके निराकार को ध्यान में रखें तो कृष्ण परमात्मा हैं। अगर उनके आकार को ध्यान में रखें तो विभूति हैं। अपूर्व हैं। जिन्होंने

उनकी देह भी देखी, जिन्होंने उन्हें ऊपर-ऊपर से देखा, जो उनके भीतर नहीं भी गए, उन्हें भी तो उनका थोड़ा सौंदर्य अनुभव हुआ, उन्होंने उन्हें विभूति कहा है। जिन्होंने बुद्ध को बाहर से देखा, कभी बुद्ध के शिष्य नहीं बने--और ध्यान रखना, शिष्य बने बिना भीतर से देखने का कोई उपाय नहीं है; सिर्फ शिष्य ही अंतरंग में प्रवेश करता है--जो बुद्ध के पास बाहर से देख कर लौट गए, उन्हें भी लगा कि अपूर्व विभूति हैं। वह शांति, वह शून्य, वह प्रसाद, वे प्यारे वचन, उनका उठना-बैठना, वह सब अपूर्व है। जो बाहर से आए, वे सोच कर गए विभूति हैं। जिन्होंने भीतर झांका, उन्होंने जाना कि भगवान हैं।
एवं प्रसिद्धेषु च।
"और-और प्रसिद्ध अवतारों में भी ऐसा ही है।"
फिर शांडिल्य कहते हैं कि यह कृष्ण के संबंध में ही सच नहीं है, जितने
भी अवतार हुए हैं, और जितने भी अवतार पहचाने गए हैं, उन सबमें ऐसा ही है। बहुत से अवतार पहचाने नहीं गए। जो नहीं पहचाने गए, उन्हें लोगों ने केवल विभूति जाना। जो पहचाने गए, जो प्रसिद्ध हो गए, जिनके अंतरंग में कुछ लोग उतर गए, उन्होंने ये दोनों बातें देखीं।
यहूदियों ने जीसस को सूली पर चढ़ाया सिर्फ इस वजह से कि जीसस ने घोषणा
की अवतार होने की। यहूदियों में ऐसी कोई धारणा न थी अवतार होने की। पैगंबर हो सकता था कोई, अवतार नहीं। जीसस के पहले पैगंबर हुए थे, प्रोफेट। पैगंबर का अर्थ होता है, जो केवल संदेश लाता है। है तो मनुष्य ही, भगवान नहीं है। अवतार की यह अपूर्व धारणा भारत में ही जन्मी। क्योंकि भारत ने जितनी खोज की है इस अंतर्लोक में, किसी और देश ने नहीं की। तो यहूदियों में तो पैगंबर होता था। लेकिन जीसस ने बड़ी अड़चन खड़ी कर दी। और जीसस को यह अड़चन भारत से ही मिली।
इस बात के अब काफी प्रमाण इकट्ठे हो गए हैं कि जीसस अठारह वर्ष तक भारत में रहे। बाइबिल में केवल बारह वर्ष की उम्र तक का उल्लेख मिलता है और फिर तीस साल के बाद का उल्लेख मिलता है, अठारह साल बिल्कुल नदारद हैं। बाइबिल में कोई खबर नहीं है--उन अठारह सालों में जीसस का क्या हुआ? यह लंबा अंतराल है। इस संबंध में एक भी घटना का उल्लेख न होना सिर्फ इस बात की सूचना है कि जीसस यहूदियों के बीच नहीं थे। और इसके बहुत प्रमाण हैं अब उपलब्ध कि जीसस भारत में थे। ये अठारह वर्ष जीसस का भारत में रहना, यहां उन्होंने बहुत सी बातें सीखीं, उनमें एक बात थी अवतार की धारणा। न केवल धारणा सीखी बल्कि उस धारणा का अनुभव भी किया। वे अवतार बन गए। उन्होंने अपने को पोंछ डाला, मिटा डाला। उन्होंने परमात्मा को अपने भीतर उतरता देखा।
जीसस का यहूदियों द्वारा सूली पर लटकाया जाना सिर्फ इस बात का सबूत
है कि जीसस ने कुछ ऐसी बातें कहीं जो यहूदी परंपरा में बिल्कुल ही नहीं थीं। इतनी विजातीय बातें कहीं कि परंपरा उनको लेने को राजी नहीं हुई। परंपरा ने कहा, यह तो हद की बात हो गई। परंपरागत पुरोहितों ने, पंडितों ने कहा कि यह तो हो ही नहीं सकता। कोई व्यक्ति परमात्मा होने का दावा करे!
अब यह बड़े मजे की बात है कि कई बार कैसे उलटे अर्थ हो जाते हैं। परमात्मा का दावा जीसस इसीलिए कर रहे हैं कि अब अहंकार नहीं रहा है, लेकिन दूसरों को ऐसा समझ में आता है कि यह तो महाअहंकार की बात हो गई कि कोई व्यक्ति परमात्मा का दावा करे। यह दावा जीसस नहीं कर रहे हैं, यह दावा परमात्मा ही कर रहा है जीसस के भीतर। जीसस ने तो अपना गीत बंद कर दिया। अब तो वे बांसुरी मात्र हैं, जो भी गीत गाया जा रहा है वह परमात्मा का है। लेकिन बाहर से तो यही दिखाई पड़ेगा कि यह आदमी बड़ा अहंकारी है। इससे बड़ा अहंकार और क्या होगा, यह आदमी कहता हैः मैं भगवान! मैं ईश्वर!
भारत में जीसस रहे होते तो हमने सूली न लगाई होती। हमने किसी को सूली नहीं लगाई। हम इस सत्य के ज्ञाता रहे हैं। हमें इसकी प्रत्यभिज्ञा है। हमने इसे हजारों-हजारों तरह से पहचाना है। हमने कृष्ण में देखा, बुद्ध में देखा, महावीर में देखा, पार्श्व में देखा, नेमि में देखा, जैनों के चौबीस तीर्थंकरों में देखा, हिंदुओं के अवतारों में देखा, हमने न मालूम कितने लोगों में देखा इस घटना को घटते, यह घटना अनहोनी नहीं है, यह घटना नई नहीं

है। हमने जीसस को भी आत्मसात कर लिया होता। हमने उन्हें स्वीकार कर लिया होता। वे हमारे एक अवतार हो गए होते। हमारी छाती बड़ी है। हम अंगीकार करना जानते हैं। और फिर हमें इस बात की प्रत्यभिज्ञा है, इसे हम झुठला नहीं सकते।
लेकिन यहूदी बरदाश्त नहीं कर सके, जीसस को सूली लगी। मंसूर को सूली लगी, मुसलमान बरदाश्त नहीं कर सके। क्योंकि मुसलमान भी यहूदी विचारधारा की ही धारा हैं, उसी की प्रशाखा हैं। मुसलमान-ईसाई, दोनों ही यहूदी धर्म से ही पैदा हुई शाखाएं हैं। मुसलमानों में भी पैगंबर की धारणा है। मोहम्मद को भी वे अवतार नहीं कह सकते हैं। मोहम्मद भी संदेशवाहक हैं--खबरें लाने, ले जाने वाले, चिट्ठीरसा, इससे ज्यादा मूल्य नहीं है। तो मंसूर ने जब घोषणा की--अनलहक! मैं परमात्मा हूं! तो मुसलमान बरदाश्त नहीं कर सके। और मंसूर ठीक ही कह रहा था। और ऐसा नहीं है कि मोहम्मद को यह अनुभव नहीं हुआ था। मोहम्मद को भी यह अनुभव हुआ था, लेकिन मोहम्मद ने कभी यह कहा नहीं। मोहम्मद ज्यादा व्यावहारिक व्यक्ति हैं, मंसूर पागल है, व्यावहारिक नहीं है।
मंसूर के गुरु ने, जुन्नैद ने मंसूर से कहा था, देख, यह बात मत कह! मुझे
भी मालूम है, मुझे भी इसकी प्रत्यभिज्ञा है, मैं भी जानता हूं कि मैं परमात्मा हूं, मगर तू यह बात कह मत, जैसे मैं चुप हूं, ऐसे ही तू भी चुप रह। क्योंकि तू देखता है, आस-पास जो भीड़ है, अज्ञानियों की है। वे मार डालेंगे तुझे। जुन्नैद चुप ही रहा। और जब मंसूर नहीं माना--मंसूर की भी मजबूरी थी, वह जब अपनी मस्ती में आ जाता, अपनी समाधि में आ जाता, तो बस घोषणा कर देता-- अनलहक! अहं ब्रह्मास्मि! मैं ईश्वर हूं! जब होश में लौटता तो वह माफी भी मांगता जुन्नैद से कि क्षमा करो, आपकी आज्ञा का उल्लंघन हो गया, आपने मना किया था, आप मेरे गुरु हैं। मगर मैं भी क्या करूं? वह मेरे भीतर से बोलता है। और जब बोलता है, तब मैं रोक नहीं सकता। जुन्नैद ने कहा कि देख, अगर तू रुका नहीं तो तू अपने हाथ से अपनी सूली निश्चित करवा रहा है। यह देश तुझे स्वीकार न करेगा। ये लोग तुझे स्वीकार न करेंगे। इनकी ऐसी प्रत्यभिज्ञा नहीं है। ये तेरा आकार ही देखते हैं; ये तेरे भीतर जो निराकार फल रहा है, नहीं देखते। मैं देखता हूं, लेकिन ये तुझे नहीं पहचानेंगे, ये तुझे मार डालेंगे।
और यही हुआ। जुन्नैद की बात सही हुई, मंसूर मारा गया। लाखों लोगों की भीड़ इकट्ठी हुई थी उस घटना को देखने के लिए जब मंसूर को काटा गया। और उसे बड़ी बेरहमी से मारा गया, जीसस को भी इस बेरहमी से नहीं मारा गया था। पहले उसके पैर काट दिए, फिर उसके हाथ काट दिए, फिर उसकी जबान काटी, एक-एक टुकड़े कर-कर के उसको मारा--और वह अभी जिंदा है, और उसके एक-एक टुकड़े किए जा रहे हैं। लेकिन वह हंसता रहा, वह प्रसन्न रहा, वह अनलहक की घोषणा करता रहा। लोग पत्थर फेंक रहे हैं। जुन्नैद भी आया था उस भीड़ में। लोग जब पत्थर फेंक रहे थे तब जुन्नैद ने एक गुलाब का फूल उसकी तरफ फेंका।
यह बड़ी प्यारी घटना है। मंसूर हंस रहा था। लोग पत्थर फेंक रहे थे, सिर
से खून बह रहा था, पैर काट डाले गए थे, हाथ काटे जा रहे थे, और हंस रहा था, पत्थरों को ऐसे झेल रहा था जैसे फूल हों। लेकिन जब जुन्नैद ने एक फूल फेंका गुलाब का, तो रोने लगा। किसी ने, पास खड़े भक्त ने पूछा, यह मामला क्या है? इतने लोग पत्थर फेंक रहे हैं और तुम नहीं रोए और जुन्नैद ने एक फूल फेंका और तुम रोए!
मंसूर ने कहा, क्योंकि ये लोग तो जानते नहीं कि मैं कौन हूं और जुन्नैद जानता है। इसलिए उसका फूल भी मुझे पत्थर जैसा लग रहा है। जुन्नैद पहचानता है, उसको प्रत्यभिज्ञा है कि मैं जो कह रहा हूं ठीक कह रहा हूं। ये लोग तो नासमझ हैं, ये पत्थर भी फेंक रहे हैं तो क्षमा योग्य हैं; लेकिन जुन्नैद का फूल भी कष्टदायी है। जुन्नैद तो जानता है।
लेकिन जुन्नैद व्यावहारिक आदमी था। ऐसे ही मोहम्मद व्यावहारिक व्यक्ति थे, बात को छिपा गए। जीसस मंसूर जैसे ही अव्यावहारिक व्यक्ति थे। और मैं तुमसे यह कहना चाहता हूं, मूसा को भी पता था; और जो पैगंबर यहूदियों में हुए, उनको भी पता था; लेकिन उन्होंने यह बात कही नहीं। इसको पचा गए।

इसको छुपा गए। कबीर ने अपने भक्तों से कहा है कि जब हीरा मिल जाए तो जल्दी से गांठ गठिया कर चुपचाप अपने भीतर छिपा लेना, बताना मत, किसी को कहना मत, क्योंकि लोग नासमझ हैं।
लेकिन इस देश में हजारों साल की बहुमूल्य परंपरा है कि हमने आकार में निराकार देखा है। और जो एक बार हुआ है, वह बार-बार हो सकता है। जो एक व्यक्ति में हुआ है, वह सभी में हो सकता है। जो एक में घटा है, वह सभी की नियति है। जो एक बीज खिला है और फूल बना है, तो सभी बीज खिल सकते हैं और फूल बन सकते हैं। इस स्वीकृति से ही तो बीज की हिम्मत बढ़ेगी।
तो मैं तुमसे कहता हूंः स्वीकार करना, इसकी प्रत्यभिज्ञा करना, खोजना।
एवं प्रसिद्धेषु च।
शांडिल्य कहते हैंः "और-और प्रसिद्ध अवतारों में भी ऐसा ही है।"
फिर वे अवतार कोई भी हों, किसी भी परंपरा के हों। हर मनुष्य की यह स्वभावसिद्ध क्षमता है कि वह अपने आकार के भीतर निराकार को आमंत्रित कर सकता है। तुम आतिथेय बन सकते हो, अतिथि को बुला सकते हो। इस आतिथेय बनने और अतिथि को बुलाने का नाम भक्ति है। अथातो भक्ति जिज्ञासा।

चाहे पाहन की हो, चाहे पनघट की
असली पूजा तो विश्वासी मन की है
फिर चाहे पत्थर की ही क्यों न हो।
चाहे पाहन की हो, चाहे पनघट की
असली पूजा तो विश्वासी मन की है

अक्सर ऐसा होता है सभ्य आवरण में
खो जाते हैं भाव शब्द की बन-ठन में
चाहे मधुबन में हो, चाहे मरुथल में
भाषा उर को छू लेती चितवन की है
आंख चाहिए, हरी-भरी आंख चाहिए। आंख में भाव चाहिए, भक्ति चाहिए। चाहे मधुबन में हो, चाहे मरुथल में
भाषा उर को छू लेती चितवन की है

पावन पल जब जग में प्यार मिले
ज्यों कोहरे के बीच धूप का फूल खिले
चाहे बस्ती में हो, चाहे निर्जन में
उस क्षण की आरती धूप-चंदन की है

सुख का नहीं ठहरता चंचल मौसम है
जीवन की सरगम में केवल सम कम है
चाहे हो निर्धन, चाहे धनवान कोई
कभी नहीं घटती जागीर सपन की है

आयु बिता देते कुछ यों ही उलझन में
बिना छिद्र की वंशी के अन्वेषण में
पाप-पुण्य क्या, निर्णय का अधिकार किसे
जब कि बात अपने-अपने दर्पण की है

ध्यान रखना, परमात्मा तो मौजूद है, दर्पण चाहिए। तुम कोरे होओ तो झलक बने। तुम झील की तरह शांत होओ तो प्रतिबिंब बने चंद्रमा का।

पाप-पुण्य क्या, निर्णय का अधिकार किसे
जब कि बात अपने-अपने दर्पण की है

बीती बाढ़ वक्त की रेत बची केवल

मिट जाते माटी में कल के विंध्याचल
काहे की खिड़की फिर कैसे दरवाजे
सिर्फ जरूरत मुक्त खुले आंगन की है

चाहे पाहन की हो, चाहे पनघट की
असली पूजा तो विश्वासी मन की है

श्रद्धायुक्त, भाव से भरा हुआ हृदय--बस सब पूरा हो जाता है। भगवान को
मत खोजो, भक्ति को खोजो। भक्ति मिली, भगवान अपने से मिल जाता है। जो भगवान को खोजने निकला बिना भक्ति को खोजे, खोजे कितना ही, पहुंचेगा कभी नहीं, पाएगा कभी नहीं। प्रेम हो तो प्रेमी मिल जाता है। भक्ति हो तो भगवान मिल जाता है। आंख हो तो सूरज सदा मौजूद है।
अथातोभक्तिजिज्ञासा!
आज इतना ही।

अथातो भक्ति जिज्ञासा, भाग 2 बाईसवां प्रवचन

परमात्मा के प्रति राग है भक्ति

पहला प्रश्नः मैं सदा भयभीत रहता हूं--खासकर लोगों की मेरे प्रति क्या धारणा होगी, इससे। अब संन्यास भी लेना है, लेकिन भय के कारण रुका हूं। क्या करूं?

भय नहीं है मूल में, मूल में अहंकार है। दूसरों की धारणा क्या होगी मेरे प्रति, इसका इतना ही अर्थ है कि दूसरे मुझे ऐसा समझें, वैसा न समझें; बुद्धिमान समझें, विक्षिप्त न समझ लें। लोगों की धारणा मेरे प्रति इस ढंग की ही होनी चाहिए तो ही मेरा अहंकार सधेगा। अगर लोगों की धारणा बदल गई तो मेरे अहंकार का क्या होगा?
अहंकार दूसरों पर निर्भर है। उनके हाथ में है तुम्हारी कुंजी। अहंकार
के प्राण तुम्हारे हाथ में नहीं हैं, दूसरों के हाथ में हैं; जब चाहें तब दबा देंगे तो तुम मर जाओगे। इससे भय है। तुमने अपने प्राण दूसरों में रख दिए हैं। तुमने बच्चों की कहानियां पढ़ी हैं? कोई सम्राट है, उसने अपने प्राण तोते में रख दिए हैं। सम्राट को नहीं मारा जा सकता, लेकिन कोई तोते की गर्दन मरोड़ दे तो सम्राट मरेगा। ऐसे ही अहंकार ने अपने प्राण दूसरों के मंतव्यों में रख दिए हैं। भीड़ क्या कहेगी? इसीलिए भीड़ के अनुकूल चलो, ताकि भीड़ तुम्हारे अनुकूल रहे। जैसा भीड़ कहे, वैसे उठो, वैसे बैठो, भेड़-चाल चलो। अपनी चाल मत चलना; भीड़ पसंद नहीं करती तुम्हारी चाल। क्योंकि तुम्हारी चाल का मतलब होता है, तुम बगावती हो, विद्रोही हो; तुम अपने होने की घोषणा कर रहे हो। यह भीड़ बर्दाश्त नहीं करती। भीड़ कायरों की है। कायर किसी हिम्मतवर को बर्दाश्त नहीं करते। क्योंकि उस हिम्मतवर के कारण उन्हें अपना कायरपन दिखाई पड़ता है। वे तुमसे बदला लेंगे। वे तुम्हें पागल कहेंगे, विक्षिप्त कहेंगे, सिरफिरा कहेंगे। सो डर लगता है, क्योंकि तुम्हारी प्रतिष्ठा उनके हाथ में है।
गौर से समझना, यह भय नहीं है। भय गौण है, मूल में अहंकार है। और जब तक किसी प्रश्न को ठीक-ठीक न पकड़ लिया जाए, तब तक उसका हल नहीं होता। तुम भय समझ कर रहे तो तुम इसका हल कभी भी न कर पाओगे। क्योंकि भय सिर्फ लक्षण है, मूल रोग नहीं। रोग का उपचार किया जा सकता है, लक्षणों का उपचार नहीं होता। और जो लक्षणों का उपचार करता रहेगा, ऊपर-ऊपर उपचार में उलझा रहेगा, भीतर-भीतर रोग बढ़ता रहेगा।
क्यों डरते हो किसी से? लोग तुम्हें पागल ही समझेंगे न! समझने दो। लोग तुम्हारी प्रतिष्ठा न करेंगे। न करने दो। उनकी प्रतिष्ठा का मूल्य भी कितना है? यह नासमझों की भीड़ अगर तुम्हें बुद्धिमान भी समझती है, तो इन नासमझों के समझने का कितना मूल्य है? इनकी प्रतिष्ठा दो कौड़ी की भी तो नहीं है! और बदले में ये तुमसे सब ले लेते हैं, तुम्हारी आत्मा ले लेते हैं। तुम्हें फिर इनके अनुसार चलना पड़ता है, लकीर के फकीर होकर चलना पड़ता है। फिर न कभी तुम मस्ती में डोल सकते हो, न परमात्मा को खोज सकते हो, न सत्य को खोज सकते हो। क्योंकि भीड़ कहती है, सत्य मिल ही चुका है, कृष्ण ने गीता में दे दिया है, अब तुम्हें और खोज की क्या जरूरत है? गीता पढ़ो, गीता गुनगुनाओ, गीता रटो, तोते हो जाओ। या भीड़ कहती है, बाइबिल में सत्य है, अब तुम्हें और क्या करना है? ईशु मसीह ने सारे संसार के लिए दुख झेल लिया, अब तुम्हें किसी और तपश्चर्या की जरूरत नहीं है। ईशु मसीह ने सूली पर अपने को लटका दिया, अब तुम्हें सूली पर लटकने की जरूरत नहीं है। तुम तो ईशु का नाम जपो, ईशु का गुण गाओ।
भीड़ तुम्हें इस तरह की बातें कहती है कि हम जो मानते रहे हैं, वैसा मान
कर चलो। भीड़ कहती है, शंका मत उठाना, संदेह मत उठाना। भीड़ कहती है, अपना सिर मत उठाना, गुलाम रहो। भीड़ गुलामी आरोपित करती है। और जो जितनी सुगमता से गुलाम होने को राजी होता है उसे उतना आदर देती है, उसी अनुपात में आदर देती है।

अब यह बड़े मजे की बात है, जीसस को तो सूली लगी, लेकिन जीसस के पीछे चलने वाले पादरी को सूली नहीं लगती, सम्मान मिलता है। जीसस बगावती थे। भीड़ ने उन्हें बरदाश्त नहीं किया। पादरी-पुरोहित बगावती नहीं है, भीड़ के बड़े काम का है। वह भीड़ को बांध कर रखता है। उसका लोग सम्मान करते हैं। असली संतों को सूली लग जाती है, गालियां मिलती हैं, अपमान मिलता है, नकली संत पूजे जाते हैं। यह तुम देख सकते हो।
नकली क्यों पूजा जाता है?
नकली में खतरा नहीं है। आग नहीं है, राख ही राख है। उसे तुम छुओगे तो जलोगे नहीं, उससे तुम्हारे जीवन में चिनगारी नहीं पड़ेगी। उससे तुम्हारे जीवन में कोई रूपांतरण नहीं होगा। नकली सांत्वना है, संक्रांति नहीं। इसलिए नकली को आदर दिया जाता है, असली का अपमान किया जाता है, निंदा की जाती है, हजार लांछन लगाए जाते हैं। सत्य सदा सूली पर रहा है, और असत्य सिंहासन पर।
अगर तुम सिंहासन चाहते हो, तो फिर तुम्हें गुलाम होना पड़ेगा। अगर तुम सत्य चाहते हो, तो तुम्हें साहस... और एक ही साहस है इस जगत में, अपने अहंकार को छोड़ देने का साहस। फिर तुम मुक्त हो गए। फिर दुनिया में तुम्हें कोई बांध नहीं सकता। तुमने जड़ ही काट दी; तुमने सारी गुलामी के आधार गिरा दिए। और यह तुम्हारे हाथ में है; जिस दिन तुमने सोच लिया कि ठीक है, अब भीड़ को जो सोचना हो सोचे; मुझे जैसे जीना है, वैसे जीऊंगा। यह मेरी जिंदगी है और मुझे मिली है, और ईश्वर के सामने मैं उत्तरदायी होऊंगा।
हसीद फकीर झुसिया मर रहा था। यहूदी फकीर था। एक बूढ़े यहूदी ने उसके पास आकर कहा, परमात्मा से सुलह कर ली न? झुसिया ने आंख खोलीं और कहा, परमात्मा से मेरा कोई झगड़ा ही नहीं था, झगड़ा तो भीड़ से था। बगावती फकीर था! बूढ़े ने दया से कहा होगा कि परमात्मा से सुलह कर ली न! झुसिया ने कहा, परमात्मा से मेरा कभी झगड़ा ही नहीं हुआ, झगड़ा भीड़ से था। और भीड़ से क्या सुलह करनी है? चार दिन की जिंदगी में क्या भीड़ से सुलह करनी है? सम्मानित जीए कि अपमानित जीए, फूल मिले कि पत्थर मिले, क्या फर्क पड़ता है? यह दो दिन की कहानी है। यह तो पानी पर खींची लकीर है, मिट जाएगी। रही परमात्मा की बात, उससे मेरा कोई झगड़ा नहीं है।
उस बूढ़े ने फिर भी करुणावश कहा, मो.जे.ज का स्मरण करो, वही रक्षक हैं, मृत्यु करीब है।
झुसिया हंसने लगा। और झुसिया ने कहा कि मैं मर रहा हूं, अब तो मो.जे.ज
को मेरे बीच में मत लाओ, अब तो मुझे परमात्मा के आमने-सामने सीधा होने दो। मरने के बाद परमात्मा मुझसे यह नहीं पूछेगा कि तुम मो.जे.ज क्यों नहीं थे? वह मुझसे पूछेगा, झुसिया, तुम झुसिया क्यों नहीं थे? उत्तर मुझे देना पड़ेगा--तुझे जीवन दिया था, इसका तुमने क्या किया? तुम इस जीवन में क्या फल लेकर आए? कौन सी परिपक्वता तुमने पाई? कौन सी गरिमा जानी? कौन से सत्य का उदघाटन किया? कौन सा अनुभव लाए हो? वह मुझसे यह नहीं पूछेगा कि तुम मो.जे.ज क्यों नहीं बन गए? मो.जे.ज बनने उसने मुझे भेजा नहीं था, उसने मुझे भेजा है झुसिया बनने। मो.जे.ज को मेरे बीच में मत लाओ। मरते वक्त तो मुझे अकेला मरने दो।
भीड़ न तुम्हें अकेले जीने देती है, न अकेले मरने देती है। तुम मर रहे हो, और भीड़ तुम्हें गंगाजल पिला रही है। तुम मर रहे हो, और भीड़ तुम्हारे कान में राम-नाम जप रही है। तुम मर रहे हो, और सत्यनारायण की कथा सुनाई जा रही है। तुम्हें मरने भी नहीं देती अकेले में भीड़, तुम्हें जीने भी नहीं देती भीड़।
संन्यास का केवल इतना ही अर्थ है--इस बात की घोषणा कि अब मैं इसकी चिंता नहीं करूंगा कि भीड़ सम्मान देगी कि अपमान देगी, अब मैं अपने ढंग से जीऊंगा। गलत तो गलत सही, ठीक तो ठीक सही, लेकिन जो जीवन मुझे मिला है उसे मैं अपने ढंग से जीऊंगा। और मैं तुमसे कहता हूंः अगर कोई अपने ढंग से गलत भी जीए तो ठीक तक पहुंच जाता है और दूसरों के ढंग से ठीक भी जीए तो ठीक तक नहीं पहुंचता। क्योंकि दूसरों के ढंग से ठीक जीने में कोई प्राण नहीं होते, तुम्हारा अंतर का साथ नहीं होता; बोझ की तरह तुम जीते हो। हिंदू भीड़

में पैदा हुए हो तो जाते हो मंदिर, राम की पूजा कर आते हो, लेकिन तुम्हारे हृदय की यह उमंग नहीं है। नाचते तुम वहां नहीं गए हो। ईसाई घर में पैदा हुए हो तो चर्च में चक्कर लगा आते हो। लगाना पड़ता है। एक औपचारिकता है, एक कर्तव्य है, निभाना है। मां-बाप ने थोप दिया है तुम्हारे सिर पर, उसे पूरा करना है।
लेकिन इसका क्या मूल्य हो सकता है? जो आदमी मंदिर में गया है, और केवल देह से गया है, और जिसकी आत्मा बाजार में भटकती है; जो प्रार्थना दोहरा रहा है, लेकिन जिसके चित्त में और हजार तरंगें और विचार उठ रहे हैं; जो झुक रहा है मंदिर की मूर्ति के सामने, लेकिन पीछे लौट कर देख रहा है कि कोई जूता न चुरा ले जाए!
मैंने एक आदमी को झुकते देखा मंदिर में, और पीछे लौटते देखा कि वह पीछे लौट-लौट कर देख रहा है। मैंने पूछा, तुम लौट कर क्या देखते हो? उसने कहा कि नये जूते पहन कर आ गया हूं, कोई ले न जाए। तो मैंने कहा कि तुम सिर भी उसी तरफ कर लो, क्योंकि तुम झुक जूते के लिए रहे हो; प्रार्थना तुम्हारी बिल्कुल झूठी है! तुम जूते को ही सामने रख कर क्यों नहीं झुक लेते? तुमसे मुसलमान बेहतर! नमाज पढ़ने जाते हैं, देखा, जूते को सामने रख लेते हैं। जूता कोई ले न जाए! खुदा के लिए झुक रहे हैं! अभी कल ही मैं एक चित्र देख रहा था, कोई दस हजार आदमी नमाज पढ़ रहे हैं, दस हजार जूते अपने-अपने सामने रखे हुए हैं। वहीं झुके हैं, जूतों में झुके हैं।
यह झूठ है। इसमें सत्य की सुगंध नहीं। यह व्यवहार होगा, इससे समाज चलता होगा, लेकिन इससे सत्य की यात्रा नहीं होती।
भीड़ को पता भी क्या है कि संन्यास क्या है? संन्यास पूछना है, उनसे पूछो जो संन्यासी हैं। संगीत समझना है, उनसे समझो जो संगीत जानते हैं। और ध्यान की खबर लेनी है, तो उनसे लो जिन्होंने ध्यान में उतरने का साहस किया है, जिन्होंने ध्यान की गहराइयां छुई हैं। बाजार में एक किरानी बैठा है, वह कहता है, संन्यास में मत उलझ जाना, यह सब सम्मोहन है। न वह कभी उलझा, न उसने कभी जाना; इस दुकान से कभी उठा नहीं, इस दुकान से बाहर गया नहीं। यह दुकान सम्मोहन नहीं है, यह रुपये इकट्ठे करते जाने में सम्मोहन नहीं है, यह सत्य है! यह रुपये इकट्ठे करना और मर जाना, यह सत्य है। और ध्यान की चिंता में लगना, व्यर्थ की बातों में पड़ना है! तुम किससे पूछते हो?

सांस तेजाब की तरह जल कर
ऐसी कौंधी है सारे सीने में
छाले-छाले-से पड़ गए जैसे
जर्ब-सी चिर गई है सीने में
सुनके नादान दोस्त का ताना
"क्यूं न गम रास आएंगे उसको
जिसको दौलत मिले बदौलते-दिल"

ऐसे लोगों का क्या करे कोई
नोंच देते हैं जर्द चंपा को
जर्रे सोने के ढूंढ़ा करते हैं
और खुशबू--वह उनकी चीज नहीं

जिसको फूल की पहचान हो उससे फूल की बात करना।
ऐसे लोगों का क्या करे कोई
नोंच देते हैं जर्द चंपा को
जर्रे सोने के ढूंढ़ा करते हैं
और खुशबू--वह उनकी चीज नहीं
जिन्होंने फूलों से प्रेम न किया हो, उनके आधार पर तुम फूलों को खोजने निकलोगे, तो वे तुम्हें पागल कहेंगे ही। यह बिल्कुल स्वाभाविक है। जिन्होंने सोने के अतिरिक्त और किसी चीज में मूल्य नहीं जाना, जिन्होंने सोने में ही सारा सार देखा, उनसे तुम सत्य की बातें करोगे, संन्यास की

बातें करोगे, वे तुम्हें पागल न समझेंगे तो और क्या समझेंगे? इसमें कुछ एतराज की बात भी नहीं है, यह बिल्कुल ठीक है, यह जैसा होना चाहिए वैसा ही है।
ऐसे लोगों का क्या करे कोई
नोंच देते हैं जर्द चंपा को
जर्रे सोने के ढूंढ़ा करते हैं
और खुशबू--वह उनकी चीज नहीं
भय नहीं है, भीतर अहंकार है। अहंकार ही डरता है। इसे तुम समझ लो, बहुत ठीक से समझ लो। जब तुम मृत्यु से भी डरते हो तब भी अहंकार के कारण ही डरते हो। मृत्यु का कोई डर नहीं होता। मृत्यु तक का कोई डर नहीं होता। मृत्यु को जाना ही नहीं है, उससे डरोगे कैसे? डर तो जानी-पहचानी चीज से होता है। कहावत है, दूध का जला छाछ भी फूंक-फूंक कर पीता है। लेकिन कम से कम दूध का जला तो होना चाहिए। तुमने मृत्यु जानी ही नहीं, तुम मृत्यु में जले ही नहीं, तुम्हें मृत्यु की कोई खबर ही नहीं; वह अज्ञात, वह अनजान, सुखद है या दुखद, इसका भी कुछ पता नहीं, डरोगे कैसे? भयभीत कैसे होओगे? कौन जाने वरदान हो। अभिशाप है, इसका निश्चय क्या है?
एक भी मरे हुए आदमी ने लौट कर तो कहा नहीं कि मृत्यु दुख देती है, कि मृत्यु तुम्हें पीड़ाएं देगी, संताप देगी; कि मृत्यु तुम्हारी छाती में भाले भोंकेगी, एक ने भी तो लौट कर नहीं कहा है। मृत्यु तो अपरिचित है। अपरिचित का भय कैसे? देखा नहीं तुमने, छोटा बच्चा सांप से नहीं डरता। उसे पता ही नहीं है कि सांप क्या करेगा! वह सांप को पकड़ कर खेलने लगेगा। छोटा बच्चा आग से नहीं डरता। उसे पता नहीं है! पता हो तो भय होता है।
तो जब लोग कहते हैं, मुझे मृत्यु का भय है, तो वे असल में कुछ और कहते हैं, ठीक-ठीक समझ नहीं पा रहे हैं कि क्या स्थिति है। वे यह नहीं कहते कि मुझे मृत्यु का डर है, वे सिर्फ इतना ही कहते हैं, मुझे मेरे मिट जाने का डर है।
लेकिन तुम्हारे भीतर जो मिट सकता है तत्व, वह अहंकार है--और तो कोई मिटने वाली चीज नहीं। देह मिट्टी में मिल जाएगी, मिटेगी नहीं। श्वास हवा में लीन हो जाएगी, मिटेगी नहीं। आग आग में चली जाएगी, पानी पानी में, मिटेगा कुछ भी नहीं। और तुम्हारे भीतर जो अंतरात्मा है, उससे तुम्हारी पहचान नहीं है, वह भी मिटने वाली नहीं है। जिन्होंने उसे जाना, उन्होंने निरपवाद रूप से सदियों-सदियों में एक ही बात कही है कि वह शाश्वत है, अमृत है। कृष्ण ने कहा हैः न हन्यते हन्यमाने शरीरे। शरीर के मरने से उसका मरना नहीं है। नैनं दहति पावकः। नैनं छिंदन्ति शस्त्राणि, नैनं दहति पावकः। नहीं जलती जलाने से, नहीं छिदती शस्त्रों के भोंक देने से। वह अमर है। फिर मरता कौन है?
सिर्फ यह झूठा अहंकार। यह जो तुमने अपनी धारणा बना ली है कि मैं कौन हूं--यह नाम, यह रूप, यह यश, यह पद-प्रतिष्ठा, यह मैं, बस यही मरता है।
मृत्यु के भय में भी छिपा अहंकार है। समस्त भय के भीतर छिपा हुआ अहंकार है। और अगर तुम इसी भय और अहंकार में जीए तो निश्चित तुम बड़ी भयभीत दशा में जी रहे हो। तुम कुछ भी न जान पाओगे जो मृत्यु के पार है।
जोखिम तो उठानी होगी! और संन्यास जोखिम है।

नजरनवा.ज नजारा बदल न जाए कहीं
जरा सी बात है, मुंह से निकल न जाए कहीं
वो देखते हैं तो लगता है नींव हिलती है
मेरे बयान को बंदिश निगल न जाए कहीं
यूं मुझको खुद पे बहुत ऐतबार है लेकिन
ये बर्फ आंच के आगे पिघल न जाए कहीं चले हवा तो किवाड़ों को बंद कर लेना
ये गर्म राख शरारों में ढल न जाए कहीं तमाम रात तेरे मैकदे में मय पी है तमाम उम्र नशे में निकल न जाए कहीं

कभी मचान पे चढ़ने की आरजू उभरी
कभी ये डर कि ये सीढ़ी फिसल न जाए कहीं

जब भी नया कदम उठाओगे, जब भी अज्ञात में उतरोगे, अनजान सागर में नाव खोलोगे, तो थोड़ा कंपन तो स्वाभाविक है। क्योंकि ज्ञात छूटता है, ज्ञात किनारा छूटता है, अज्ञात सागर में चले। लेकिन इसी कंपन के कारण रुक जाओगे? तो यही किनारा तुम्हारी कब्र बन जाएगा। उस किनारे को कब पाओगे? फिर यही क्षुद्र जगत तुम्हारा सब कुछ हो जाएगा। फिर विराट की खोज पर कब निकलोगे? फिर इन्हीं सीमाओं में दबे-दबे समाप्त हो जाओगे। असीम से पहचान करनी है, नहीं करनी है? और असीम में ही सुरक्षा है। अज्ञात को जान लेने में ही अमरत्व का स्वाद है।
संन्यास तो केवल एक भाव-भंगिमा है कि मैं यात्रा पर जाता हूं, कि मैं
जो ज्ञात है उसे दांव पर लगाता हूं, अज्ञात की तलाश में जाता हूं। जान लिया इस किनारे को, पहचान लिया, कुछ पाया नहीं। देख लिए नाते-रिश्ते, देख ली धन-दौलत, देख ली पद-प्रतिष्ठा, सब राख ही राख है। ऐसी प्रतीति जब तुम्हें सघन हो जाती है तो फिर यहां रोकने को क्या है? फिर तुम यात्रा पर जा सकते हो। संन्यास यात्रा है। और जो संन्यास की यात्रा पर जाता है वही जीवित होता है। नहीं तो लोग मुर्दे की तरह जीते हैं।

फिर धीरे-धीरे यहां का मौसम बदलने लगा है
वातावरण सो रहा था, अब आंख मलने लगा है
पिछले सफर की न पूछो, टूटा हुआ एक रथ है
जो रुक गया था कहीं पर, फिर साथ चलने लगा है
हमको पता भी नहीं था, वह आग ठंडी पड़ी थी
जिस आग पर आज पानी सहसा उबलने लगा है
जो आदमी मर चुके थे, मौजूद हैं इस सभा में
हर एक सच कल्पना से आगे निकलने लगा है

ये जिनको तुम संन्यासियों की तरह देख रहे हो, ये भी तुम्हारी तरह मरे हुए थे। इन्होंने हिम्मत की है, राख झाड़ दी है। इसीलिए तो संन्यास के लिए गैरिक रंग चुना है। गैरिक अग्नि का रंग है, जो राख झाड़ देता है और अंगारे को उभार लेता है; जो व्यर्थ को अपने से झाड़ता जाता है और सार्थक को उभारता जाता है; जो धीरे-धीरे सांयोगिक को छोड़ देता है और शाश्वत को पकड़ लेता है। हिम्मत तो चाहिए ही, साहस तो चाहिए ही।
एक ही भूल है जगत में, सत्य की खोज न करना; डरो तो उससे डरो। और तो कुछ भूल नहीं है। और थोड़ा कम कमाया कि ज्यादा कमाया, दस लोगों ने नमस्कार की रास्ते पर कि सौ लोगों ने नमस्कार की, इसका मूल्य क्या है? सारा गांव तुम्हें नमस्कार करता रहे, इसको तुम कहां ले जाओगे? इससे संपदा नहीं बनेगी। जब मौत आएगी, तो इससे तुम अपना बचाव न कर सकोगे। यह सब तो यहीं पड़ा रह जाएगा--ये नमस्कारें, यह धन, यह दौलत, ये लोगों के ख्याल तुम्हारे संबंध में।
मैं एक फकीर को जानता हूं। बूढ़े आदमी थे। अब तो मर गए। मैं जब छोटा था
तब उनसे मेरी पहचान हुई। उनकी एक बात मुझे रुच गई, इसी से मेरा उनसे संबंध बना। वे जब सभा में बोलते थे तो किसी को ताली नहीं बजाने देते थे। अगर कभी लोग ताली बजा दें तो वे बड़े नाराज हो जाते थे। जब मैंने पहली दफा यह देखा तो मैं बहुत हैरान हुआ, क्योंकि बोलने वाला चाहता है कि लोग ताली बजाएं। बोलता ही इसलिए है कि लोग ताली बजाएं। तालियां बजें, इसका इंतजाम करके आता है। स्टैलिन तो अपनी सभा में अपना छपा हुआ व्याख्यान बंटवा देता था, उसमें जगह-जगह कहां-कहां तालियां बजानी हैं, उसका भी संकेत रहता था। तो लोग पढ़ लेते थे और जहां-जहां ताली बजानी है, वहां ताली बजानी पड़ती थी। इस फकीर को मैंने नाराज होते देखा तो मैंने पूछा, मैं उत्सुक हो गया, मैंने पूछा, बात क्या है?

तो उन्होंने कहा, बात यह है कि नासमझों की ताली का मूल्य कितना? अगर ये ताली बजाते हैं तो इसका मतलब है, मैंने जरूर कोई गलत बात कही होगी। सही बात में तो ये ताली बजा ही नहीं सकते हैं, सही का इन्हें पता ही नहीं है।
यह बात मुझे रुच गई; यह बात बड़ी प्यारी लगी। यह आदमी कुछ जानता है। उन्होंने कहा कि ये नासमझ जब भी ताली बजाते हैं तो मुझे नाराजगी होती है। नाराजगी यह होती है कि जरूर मैंने कोई गलत बात कह दी। इन पर नाराज नहीं होता, अपने पर नाराज होता हूं, कि जरूर कोई बात कह दी जो इनकी बुद्धि को भी जंच रही है। जिनके पास बुद्धि है ही नहीं, इनको जंच रही है, तो मैंने जरूर कोई बुद्धिहीनता की बात कह दी। उससे दुखी होता हूं; उससे नाराज होता हूं। सत्य तो इनकी समझ में आएगा क्या? असत्य में पगे हैं, असत्य ही समझ में आता है।
छोड़ो इनकी फिकर। और ख्याल से समझ लो, भय ऊपर-ऊपर है, भीतर अहंकार है। जिस दिन अहंकार को उतार कर रख दोगे, फिर क्या फिकर है? लोग पागल ही कहेंगे न, तो कहने दो। इन्होंने बुद्ध को पागल कहा है। इन्होंने कबीर को पागल कहा है। इन्होंने सुकरात को पागल कहा है। तुम सौभाग्यशाली हो, अगर ये तुम्हें भी पागल कहें। तुम धन्यभागियों की परंपरा के हिस्से हो जाओगे। तुम बुद्ध, महावीर और कृष्ण कीशृंखला में खड़े हो जाओगे। वे सब पागल थे। इस भीड़ ने उन सबको ही पागल कहा है।
और यह भीड़ बड़ी अदभुत है। पहले पागल कहती है, फिर जब आदमी मर जाता है तो पूजा करती है। यह भीड़ मुर्दों की पूजा करती है, जीवंत का विरोध करती है। यह इसकी सदा की आदत है।

दूसरा प्रश्नः गीता में कृष्ण ने कहा है कि जब-जब धरती पर संकट आता है, मैं अवतार लेता हूं। अवतार लेने के तीन कारण बताए हैं। पहला, साधुओं की रक्षा करना। दूसरा, धर्म की स्थापना करना। तीसरा, पापियों को दंड देना। अर्थात ये तीन कार्य करने के लिए भगवान धरती पर आते हैं। आप अपने को भगवान कहते हैं। क्या आप ये तीनों कार्य कर रहे हैं?

पहली बात, पूछा तुमनेः "गीता में कृष्ण ने कहा कि जब-जब धरती पर संकट आता है... "
धरती पर कभी भी ऐसा कोई समय है जब संकट नहीं है? धरती संकट है। यहां होना संकट में होना है। कब ऐसा समय था जब संकट नहीं था? ऐसी कोई किताब आज तक नहीं पाई जा सकी है दुनिया के इतिहास में जिसमें लिखा हो कि इस समय धरती पर संकट नहीं है। सभी किताबें कहती हैं कि बड़ा संकट है। हालांकि सभी किताबें कहती हैं कि पहले संकट नहीं था। लेकिन वह पहले कब था? क्योंकि उस समय की किताबें कहती हैं कि संकट था। तुम चकित होओगे यह जान कर, संकट सदा से रहा है।
संकट धरती का स्वभाव है। होना ही चाहिए। क्योंकि धरती छोड़नी है; धरती
से मुक्त होना है। यहां अगर संकट न होगा तो धरती छोड़ोगे किसलिए? धरती से मुक्त किसलिए होओगे? यहां अगर संकट न होगा तो धर्म की कोई जरूरत ही न रह जाएगी। बीमारी ही न होगी तो औषधि की क्या जरूरत होगी?
थोड़ा सोचो। धर्म की सदा जरूरत है, क्योंकि संकट सदा है; आदमी सदा बीमार है। तुम सोचते हो कभी कोई ऐसा युग था, सतयुग, जब लोग बीमार नहीं थे? कोई युग था, राम-राज्य, जब लोग बीमार नहीं थे? जरा राम की कहानी देखो! राम के पिता खुद ही बीमार मालूम पड़ते हैं। एक जवान औरत के प्रेम में बेटे को निकाल दिया। अन्याय किया। यह सतयुग था? रावण ही तो नहीं था उस दिन अकेला, बहुत रावण थे; रावण के संगी-साथी भी थे। स्त्रियां उस दिन भी चुराई जाती थीं। झगड़े उस दिन भी खड़े होते थे। युद्ध उस दिन भी होते थे। कौन सी हालत बेहतर थी? क्या था जिसके गुणगान करते हो? अगर गौर से देखने जाओगे और ईमानदारी से जांच करोगे तो तुम पाओगे, राम-राज्य भी राम-राज्य नहीं था। राम-राज्य इस धरती पर कभी रहा ही नहीं, कल्पना में है आदमी के। होना चाहिए, आशा है, मगर फलता कभी नहीं।

कृष्ण जब थे, तब कौन सा इस जगत में आनंद था? युद्ध था; भयंकर युद्ध हुआ। तुम कोई स्मरण कर सकते हो? और पीछे लौटो--परशुराम! तो कोई दुनिया में शांति रही होगी? परशुराम ने फरसा लेकर पृथ्वी को अनेक बार क्षत्रियों से समाप्त कर दिया, खाली कर दिया; विधवाएं ही विधवाएं छोड़ीं। बुरे आदमी तो बुरे होते ही होंगे, भले आदमी भी बहुत भले नहीं थे। परशुराम कोई बहुत भले आदमी नहीं मालूम पड़ते हैं! तुम किस जमाने की बात कर रहे हो?
बुद्ध को गालियां मिलीं, पत्थर मिले। महावीर को गांव-गांव से हटाया गया, निकाला गया, कानों में कीले ठोंके गए। ये भले लोग थे? दुनिया में संकट नहीं था?
मेरे देखे, पृथ्वी संकट है। इसलिए यह बात तो फिजूल है। किसने कही, मुझे कुछ प्रयोजन नहीं है। और ध्यान रखना, कृष्ण ने कुछ कहा हो तो कृष्ण को खोजो, उनसे उत्तर लो। मैं उनके लिए उत्तरदायी नहीं हूं। मैं कौन हूं जो उनके लिए उत्तर दूं? कृष्ण को पकड़ो, उन पर अदालत में मुकदमा चलाओ। मैं जो कह रहा हूं, उसके लिए उत्तरदायी हूं। मैं जो कह रहा हूं, उसके लिए कृष्ण कैसे उत्तरदायी हो सकते हैं? लेकिन लोग इस ढंग से पूछते हैं जैसे कि कृष्ण ने कुछ कह दिया, तो उसके लिए मैं उत्तरदायी हूं, या कोई भी उत्तरदायी है। कृष्ण ने जो कहा वह कृष्ण जानें। तुम उनसे झगड़ लेना, कहीं मिल जाएं। शायद इसीलिए मिलते भी नहीं, तुमसे डरते होंगे; तुमसे भयभीत होते होंगे कि हजार सवाल तुम खड़े करोगे।
तुम कहते होः "गीता में कृष्ण ने कहा है कि जब-जब धरती पर संकट आता है... "
मैं तुमसे कहता हूं, धरती पर सदा संकट है। आता नहीं, जाता नहीं, धरती संकट है। छह हजार साल पुरानी चीन में किताब मिली है, जो ऐतिहासिक आधार पर सबसे ज्यादा पुरानी है, उसमें जो भूमिका है, वह तुम पढ़ोगे तो चकित हो जाओगे। भूमिका ऐसी लगती है, जैसे आज के सुबह के अखबार में निकली हो। भूमिका को... शब्द अगर सुनोगे तो तुम मान ही न सकोगे कि छह हजार साल पुराने हैं! भूमिका में लिखा है कि बेटे अपने मां-बाप का आदर नहीं करते हैं। यह कैसा दुखद युग आ गया है! शिष्य गुरु की नहीं मानते। यह किन पापों का फल मनुष्य भोग रहा है! स्त्रियां सती नहीं रहीं, व्यभिचार फैला है। अनाचार है, झूठ है, रिश्वतखोरी है। ये सारी बातें हैं! तो ऐसा लगता है जैसे दिल्ली का कोई अखबार आज ही सुबह छपा हो! राजा भी भरोसे योग्य नहीं रहा, तो प्रजा का क्या होगा? यह छह हजार साल पुरानी किताब!
आदमी वैसा का वैसा है। तुम्हें भ्रांति इसलिए पैदा होती है कि तुम सोचते हो कि वैसा कैसे है? आज का आदमी कार चाहता है। यह बात सच है कि कार आज से छह हजार साल पहले नहीं थी, लेकिन छह हजार साल पहले जो था, उसकी चाह इतनी ही थी; फर्क क्या पड़ता है? बैलगाड़ी चाहता था आदमी, शानदार छकड़े की गाड़ी चाहता था। आज फियेट गाड़ी चाहता है; तब एक छकड़ा गाड़ी चाहता था। चाह तो वही है। कल हवाई जहाज चाहने लगेगा, उससे क्या फर्क पड़ता है? चाह के विषय बदल गए हैं, चाह नहीं बदल गई है। वेश्याएं आज ही तो नहीं होती हैं, तब भी होती थीं। और जमीन पर ही नहीं होती हैं, स्वर्ग में भी होती हैं--उनको तुम अप्सराएं कहते हो। जिन ऋषि-मुनियों ने स्वर्ग की कल्पना की है, वे स्वर्ग में भी वेश्याओं को नहीं छोड़ सके; वेश्या ऐसा अनिवार्य अंग थी कि होनी ही चाहिए। और यहां ही लोग एक-दूसरे से प्रतिस्पर्धा नहीं करते हैं। तुम कहानियां पढ़ते हो पुराणों में कि जब भी कोई ऋषि-महर्षि ज्ञान की गहराई में उतरता है, तप में उतरता है, इंद्र का सिंहासन डोलने लगता है। क्यों इंद्र का सिंहासन डोलने लगता है? क्यों इंद्र बेचैन हो जाता है?
यह वही की वही कथा है, इसमें फर्क कहां है? जो रोज हो रहा है। और फिर इंद्र करता क्या है? इंद्र वही करता है जो राजनीतिज्ञ अभी कर रहे हैं। इंद्र भेज देता है दो खूबसूरत औरतों को कि जाकर नाचो, ऋषि को भड़काओ, उपद्रव, और फोटो निकलवा लेना, अखबार में छपवा देना कि भ्रष्ट है। रिश्वत दे दो। किसी तरह लालच-लोभ, किसी तरह इसमें कामवासना जगा दो।
अब यह बड़े मजे की बात है कि जो इंद्र भेजता है इन वेश्याओं को, अब इस पर कोई पाप नहीं लगता। पुराण इसकी कोई बात ही नहीं करते कि इस पर कुछ पाप लगता

है कि नहीं लगता। ये ऋषि तो भ्रष्ट हो गए, लेकिन भ्रष्ट जिसने करवाया, उसका जिम्मा? और ये ऋषि भी खूब हैं कि दो स्त्रियां आकर नाचने लगती हैं कि भ्रष्ट हो जाते हैं। जैसे भ्रष्ट होने को ही बैठे थे। प्रतीक्षा ही कर रहे थे कि हे इंद्र, अब भेजो! इतनी देर क्यों हो रही है? अब भेजो! अभी तक तुम्हारा सिंहासन नहीं कंपा?
आदमी वैसा का वैसा है। वही स्पर्धा विश्वामित्र और वशिष्ठ में है, जो
आज चलती है। वही संघर्ष अहंकार का, वही दौड़, वही हिंसा, सब वही का वही है। तुम जरा पुराने शास्त्रों में जो शिक्षाएं दी गई हैं, उनको गौर से देख लो। सब शास्त्र कहते हैं, चोरी मत करो। इसका मतलब है कि तब चोरी होती थी जब शास्त्र लिखा गया। नहीं तो पागल थे शास्त्र लिखने वाले कि चोरी मत करो? सब शास्त्र कहते हैं, झूठ मत बोलो। साफ है कि लोग झूठ बोलते थे। सब शास्त्र कहते हैं, हिंसा मत करो। साफ है कि लोग हिंसक थे। सब शास्त्र कहते हैं, व्यभिचार मत करो। साफ है कि लोग व्यभिचारी थे। और क्या साफ होगा? जो लोग करते हैं उसी को तो रोकने के लिए शास्त्र सूचना देता है। अगर लोग व्यभिचारी थे ही नहीं, लोग चोर थे ही नहीं, झूठ बोलते ही नहीं थे, तो ये शास्त्र लिखने वालों का दिमाग खराब था, ये पागलों ने लिखे होंगे। चिकित्सक तभी तो औषधि का नाम लिखता है, प्रिस्क्रिप्शन देता है तुम्हें, नुस्खा देता है, जब तुम बीमार होते हो।
कौन सा फर्क पड़ा है? वही की वही बात है।
तुम कहते होः "गीता में कृष्ण ने कहा है, जब-जब धरती पर संकट आता है... " संकट, मैं तुमसे कहता हूं, सदा है। धरती संकट है। यहां होना संकट है।
आता नहीं, जाता नहीं।
"... तब-तब मैं अवतार लेता हूं। अवतार लेने के तीन कारण बताए हैं।
साधुओं की रक्षा करना।"
पहली बात, साधुता में ही रक्षा है, किसी और के आने की जरूरत नहीं है।
जो साधुता अपने आप अपनी रक्षा न कर सके, वह साधुता नहीं है। साधुता का मतलब क्या होता है? बड़ी नपुंसक साधुता हुई कि कृष्ण को आना पड़े साधुओं की रक्षा करने। फिर साधुता का अर्थ क्या हुआ? साधुता में बल क्या है? यह तो असाधु से कमजोर हुई। असाधु तो अपनी रक्षा खुद कर लेता है और साधु के लिए कृष्ण को आना पड़ता है! ये साधु बड़े नपुंसक रहे होंगे। साधुता में रक्षा है। सत्य में बल है। सत्यमेव जयते। अगर यह सच है कि सत्य जीतता है तो कृष्ण की क्या जरूरत है? सत्य बलशाली है, असत्य कमजोर है, अपने आप हारता है। हार ही जाता है। हारेगा ही। उसके असत्य होने में ही उसकी हार छिपी है। प्रेम जीतता है, घृणा हारती है। मैत्री जीतती है, वैर हारता है। ये साधुता के सूत्र हैं। तुम कह रहे हो कि कृष्ण तब अवतार लेते हैं जब साधुओं की रक्षा करने का सवाल उठता है।
असल में ये बातें साधुओं ने लिख रखी हैं--नपुंसक साधुओं ने। ये साधु- वाधु नहीं हैं। ये असाधु से भी कमजोर हैं। इनका सत्य बिल्कुल लचर है, दो कौड़ी का है। सच्चाइयां कुछ और हैं। रामायण कहती है कि रामचंद्रजी साधुओं की रक्षा के लिए दक्षिण भारत गए।
बकवास है। वे साधु-वाधु नहीं थे, सब पोलिटिकल एजेंट। वे राम की सेवा में संयुक्त थे और वहां जासूसी कर रहे थे दक्षिण में रावण के खिलाफ। साधु- वाधु उसमें कुछ नहीं थे। साधुओं के लिए क्या रक्षा की जरूरत है? कृष्ण की तो कोई जरूरत नहीं आने की। उसका सत्य ही उसकी रक्षा है।
लेकिन ये तरकीबें हैं, ये बहुत पुरानी राजनीति की तरकीबें हैं। ईसाइयत का इतिहास कहता है कि ईसाई पहले अपने पादरी को भेजते हैं किसी देश में बाइबिल लेकर, फिर उसकी रक्षा के लिए तलवार लेकर आ जाते हैं। जब वह बाइबिल लेकर आता है उनका पादरी, तब तुम्हें लगता है, कोई हर्जा नहीं है। लेकिन फिर उसकी रक्षा के लिए तलवार लेकर पीछे सिपाही आ जाते हैं, कि साधु की रक्षा करनी है! इस तरह की भी खबरें उपलब्ध हैं कि ईसाइयों ने अपने साधुओं को भेज कर वहां लोगों को भड़का कर अपने साधुओं पर चोट भी करवाई है, ताकि फिर वे सैनिक भेज सकें। और पीछे सैनिक आकर सफाया करता है।

वस्तुतः जो साधु है, उसे कृष्ण के आने की कोई प्रतीक्षा नहीं, न कोई जरूरत है। वस्तुतः जो साधु है, उसके भीतर तो परमात्मा का अवतरण हो गया, अब और कृष्ण की क्या जरूरत है? साधु का मतलब क्या होता है? जिसको प्रभु का साक्षात हुआ। जिसको प्रभु का साक्षात हुआ वही तो साधु है। जिसने सत्य जाना वही तो साधु है। जो सरल हुआ वही तो साधु है।
तो मैं तुमसे नहीं कहता कि साधु की रक्षा के लिए किसी कृष्ण के आने की जरूरत है। नाहक कष्ट न करें। कोई आवश्यकता नहीं है। साधु अपनी रक्षा है। और तुम कहते होः "धर्म की स्थापना करने।"
धर्म की स्थापना नहीं की जाती। और न कभी धर्म स्थापित होता है, न अस्थापित होता है। धर्म तो वही है जो शाश्वत है। कृष्ण थोड़े ही धर्म की स्थापना करते हैं। धर्म तो इस जगत का नियम है। धर्म ने तो इस जगत को धारण किया है, इसीलिए उसको धर्म कहते हैं। जैसे आग जलाती है और गर्म है, ऐसा ही इस अस्तित्व का स्वभाव धर्म है। धर्म यानी स्वभाव। किसी को आकर स्थापना थोड़े ही करनी पड़ती है। तो कृष्ण के पहले क्या मामला था? धर्म नहीं था? कृष्ण ने स्थापना की? फिर कृष्ण के बाद क्या हुआ? धर्म समाप्त हो गया? धर्म तो इस जगत को सम्हालने वाले सूत्र का नाम है।
लेकिन तुम्हारे मन में कुछ और बातें हैं--हिंदू धर्म की रक्षा!
हिंदू धर्म धर्म नहीं है, और न मुसलमान धर्म धर्म है, ये तो सब राजनीतियों के जाल हैं। धर्म तो एक ही है, न वह हिंदू है, न मुसलमान है, न ईसाई है, न जैन है, न बौद्ध है। धर्म तो वह है, जब तुम अपने भीतर परिपूर्ण शांति में उतरते हो तो अनुभव करते हो, उस अनुभूति का नाम धर्म है। जब तुम अपने अंतरतम में डूब जाते हो तो जिसका तुम्हें स्वाद मिलता है, उसका नाम धर्म है।
लेकिन हिंदू धर्म को रक्षा की जरूरत मालूम होती है; इस्लाम को रक्षा
की जरूरत मालूम होती है; ईसाई को रक्षा की जरूरत मालूम होती है। ये धर्म नहीं हैं।
तो मैं तुमसे कहता हूंः धर्म तो सदा है। जो सदा है उसी का नाम धर्म है। उसकी न कोई स्थापना करनी होती है, न कभी कोई उसे मिटा सकता है। उसका मिटना संभव ही नहीं है। अगर धर्म मिट जाए तो हम सब बिखर जाएं। अगर धर्म मिट जाए तो चांद-तारे न चलें, सूरज न निकले, पानी न बहे, हवा न उठे, फूल न खिलें, पक्षी न गाएं, लोग न हों। धर्म टूटा कि सब टूट जाए। धर्म तो सबको जोड़े हुए है। धर्म तो वह धागा है जिसने सब, सारे फूलों को अपने में गूंथा हुआ है और माला बनी है। यह सारा अस्तित्व गुंथा है। जिससे गुंथा है, उस सूत्र का नाम धर्म है। कृष्ण इत्यादि की कोई जरूरत नहीं है कि इसको स्थापित करें। कृष्ण धर्म को स्थापित करने नहीं आते हैं; जो धर्म है उसको जानने से कोई कृष्ण होता है; जो धर्म है उसको पहचान लेने से कोई कृष्ण होता है; जो धर्म है उसके साथ पूरा-पूरा संगीतबद्ध हो जाने से कोई कृष्ण होता है। कृष्ण को धर्म की स्थापना करने की जरूरत नहीं है। यह पंडित-पुरोहितों ने लिखा होगा। कृष्ण ऐसा नहीं कह सकते।
तीसरी बात तुम कहते होः "पापियों को दंड देना।"
पाप में स्वयं ही दंड निहित है। जब तुम पाप करते हो, उसी करने में तुम्हें दुख मिल जाता है। दुख के लिए प्रतीक्षा थोड़े ही करनी पड़ती है, कि कृष्ण आएंगे जब तुम्हें दंड देंगे। चोरी तुम करोगे, बेईमानी तुम करोगे, झूठ तुम बोलोगे, हिंसा-हत्या तुम करोगे, फिर कृष्ण आएंगे डंडा लेकर और तुमको दंड देंगे? इसमें तो बड़ी झंझट होगी। और उन पर भी तो कुछ दया करो। कृष्ण यही धंधा करते रहेंगे? कृष्ण कोई पुलिसवाले हैं? कृष्ण पर थोड़ा तो सदभाव लाओ।
नहीं, इस जगत की व्यवस्था ऐसी है कि तुमने गलती की कि दंड मिला। आग में हाथ डालते हो, जल जाता है न! ऐसा थोड़े ही है कि आग में हाथ डाला, फिर बैठे हैं हाथ डाले, फिर आए कृष्ण, उन्होंने कहा, क्यों जी, तुमने आग में हाथ क्यों डाला? अब हम तुम्हें जलाएंगे। अगर ऐसा होता हो तब तो बड़ी झंझट हो जाए, बड़ी मुश्किल हो जाए। आग में हाथ डालने से जलना हो जाता है। तुम जरा

सोचो, जब तुम क्रोध करते हो तो जल जाते हो या नहीं? और क्या दंड चाहिए? क्रोध में आग है और क्रोध में नरक है। भोग लिया नरक तुमने।
तो मैं तुम्हें यह कहना चाहता हूं कि मेरी दृष्टि में पुण्य का फल पुण्य में छिपा है, पाप का दंड पाप में छिपा है। यही धर्म है। यहां जो शुभ करता है, शुभ पाता है। और यहां जो अशुभ करता है, अशुभ पाता है। जहर पीओगे, मर जाओगे। अमृत पीओगे, अमृत हो जाओगे। बीच में किसी की कोई आवश्यकता नहीं है। ये जो नियम हैं, यह जो ऋत है, इसी का नाम धर्म है।
तो तुम पूछ रहे होः "अर्थात ये तीन कार्य करने के लिए भगवान धरती पर आते हैं।"
तो यह भगवान तुम्हारे वहीं से नहीं कर सकते ये कार्य? इनमें इतनी भी अकल नहीं है कि टेलीफोन लगवा लें? अकल बिल्कुल बेच बैठे हैं? इसके लिए धरती पर आना पड़ता है?
ये तुम्हारी धारणाएं हैं। इसलिए मैंने कहा, तुम कृष्ण से मिलना हो तो उनसे पूछ लेना। मेरी कोई जिम्मेवारी नहीं है। मैं अपनी बात कहता हूं, और अपनी बात के लिए उत्तर देने को तैयार हूं।
अब तुम पूछते हो कि आप अपने को भगवान कहते हैं; क्या आप ये तीनों कार्य
कर रहे हैं?
मैं इन तीनों कार्यों को करने योग्य मानता ही नहीं। और अपने को भगवान इसलिए नहीं कहता हूं कि मैं भगवान हूं और तुम भगवान नहीं हो। अपने को भगवान इसलिए कहता हूं कि यहां सब भगवान हैं, यहां भगवान होने के अतिरिक्त उपाय ही नहीं है। भगवान होने में मैं किसी विशिष्टता की घोषणा नहीं कर रहा हूं। उसी से तुम्हें कष्ट होता है; तुम्हें पीड़ा यही है कि एक आदमी ने अपने को भगवान कह दिया, फिर हमारा क्या होगा? तो हम आदमी ही रह गए और आप भगवान हो गए! जब मैं भगवान कह रहा हूं तो मैं यही कह रहा हूं कि आदमी भगवान है, पौधे भगवान हैं, पक्षी भगवान हैं, पशु भगवान हैं; भगवत्ता हमारा सहज स्वभाव है। भगवान होना हमारी कोई विशिष्ट बात नहीं है। यह हमारा सामान्य गुणधर्म है। तुम इसे पहचानो; मैंने इसे पहचान लिया है, बस इतना ही फर्क होगा। तुम भी इसमें जागो; मैं इसमें जाग गया हूं।
और जो मैं तुमसे कहता हूं कि मैं भगवान हूं, इसमें कुछ घोषणा नहीं है,
न कोई दावा है। यह सिर्फ इसलिए कहता हूं ताकि तुम्हें भी याद दिला सकूं कि देखो, तुम्हारे जैसे ही हड्डी-मांस-मज्जा का व्यक्ति भगवान हो सकता है, तुम क्यों नहीं हो सकते? तुम्हारे जैसे ही भूख लगती है मुझे, प्यास लगती है मुझे। तुम्हारे जैसे ही जीवन है, तुम्हारे जैसे ही मेरी मौत होगी। बिल्कुल तुम जैसा हूं, तुमसे जरा भी भिन्नता की घोषणा नहीं कर रहा हूं। भगवान कहने के पीछे इतना ही राज है कि तुम्हें याद दिला रहा हूं कि तुम झूठी बातों में पड़ गए हो।
तुम कहते होः भगवान वह है जो आकर ये तीन काम करता है।
तो कृष्ण आए थे, साधुओं की रक्षा हुई? कहां हैं वे साधु जिनकी रक्षा हुई? धर्म की स्थापना हुई? कृष्ण के बाद जितना अधर्म इस देश में फैला, कभी नहीं फैला था। क्योंकि भयंकर युद्ध हुआ। और दूसरों की तो छोड़ दो, कृष्ण के अनुयायी, यदुवंशी, इस भयंकर तरह से लड़े एक-दूसरे से, उन्होंने सब विनाश कर डाला। कृष्ण के द्वारा पापियों को दंड मिला? कौन से पापियों को दंड मिल गया?
तुम कहोगे कि मिला, कौरवों को मिला।
कौरव पापी थे! और तुम्हारे धर्मराज युधिष्ठिर? ये जुआ खेल रहे हैं, ये पापी नहीं हैं? और ऐसे ही जुआ नहीं खेल रहे हैं, अपनी औरत तक को जुए में दांव पर लगा रहे हैं, ये पापी नहीं हैं? इनको दंड कब मिला? कैसे मिला? इनको धर्मराज कह रहे हो तुम! जरा जाकर अपनी औरत को दांव पर तो लगा कर देखो। जेल में सड़ोगे। वहां यह नहीं कह सकोगे कि हम धर्मराज हैं, हम युधिष्ठिर हैं, यह हमारे साथ क्या अन्याय हो रहा है? हे भगवान! आओ, हमारी रक्षा करो! धर्मराज की रक्षा तो करनी ही चाहिए।
यह तुम देखते हो, यह जो कौरवों-पांडवों के बीच झंझट थी, इस झंझट में तुम सोचते हो कौरव ही जिम्मेवार थे? तो तुम गलत सोचते हो। इसमें पांडव

उतने ही जिम्मेवार थे। धर्मराज में धर्म जैसा कुछ नहीं मालूम होता। और ये पांच पुरुष एक स्त्री के पति बन गए हैं, इसमें तुम्हें कुछ धर्म मालूम होता है? इन्होंने एक अबला को बिल्कुल वेश्या में रूपांतरित कर दिया, इसमें तुम्हें कुछ धर्म मालूम होता है? और ये किसलिए इतने आतुर थे? राज्य के लिए आतुर थे। जैसा दुर्योधन आतुर था, वैसे ही ये भी आतुर थे कि राज्य हमारा हो। राज्य हमारा हो, इसमें तुम्हें कुछ धर्म मालूम होता है? वही बल, वही अहंकार, वही मालकियत, वही कब्जे की आकांक्षा! इसमें तुम्हें धर्म जैसा क्या मालूम होता है? ये कोई साधु थे? ये एक ही जैसे थे। ये निश्चित ही चचेरे भाई थे। इनमें कुछ फर्क नहीं था।
तुम अगर अपनी कथाओं को ठीक से समझोगे तो तुम बड़े हैरान हो जाओगे।
और फिर उसके बाद हुआ क्या? महाभारत के बाद इस देश का ऐसा पतन हुआ कि यह अभी तक नहीं सम्हला है। महाभारत के बाद यह देश सम्हला ही नहीं। महाभारत के बाद इस देश ने वह ऊंचाई कभी पाई ही नहीं। और तुम सोचते हो, कृष्ण जब आते हैं तो साधुओं की रक्षा होती है, धर्म की स्थापना होती है, पापियों को दंड मिलता है। यह तो जब कृष्ण आए थे तब भी नहीं हुआ, आगे की व्यर्थ आशाओं में मत पड़ो।
मैं जब कहता हूं तुमसे, तो मेरे कहने का प्रयोजन बहुत ही भिन्न है। लेकिन तुमने और बातें सुनी हैं, उनसे तुम्हारा मन भरा है, इसलिए तुम मेरी बात नहीं समझ पाते। कृष्ण जब कहते हैं कि मैं भगवान हूं, तब तुम्हें अड़चन नहीं होती। क्यों तुम्हें अड़चन नहीं होती?
पहली तो बात यह है, कृष्ण से इतना फासला हो गया है कि अब तुम उन्हें हड्डी-मांस-मज्जा के मनुष्य की तरह नहीं देख पाते। इतनी कहानियां जुड़ गई हैं उनके आस-पास, इतनी भव्य प्रतिमा निर्मित कर ली गई है कि अब तुम उनमें मनुष्य नहीं देख पाते। लेकिन कृष्ण तुम जैसे मनुष्य थे। तुम मान लेते हो वे भगवान हैं, लेकिन अर्जुन ने भी मान नहीं लिया था। दुर्योधन ने तो कभी नहीं माना था। नहीं तो युद्ध ही न होता। लाखों लोग कृष्ण को भगवान नहीं मानते थे; चालबाज, कूटनीतिज्ञ मानते थे। जो मौजूद थे उन्होंने कृष्ण को भगवान नहीं माना। तुम मान लेते हो, क्योंकि तुम्हें अब असली कृष्ण का कुछ हिसाब नहीं है। तुम भी मौजूद होते तो न मान पाते। तुम्हारी स्त्री से छेड़खानी करते कृष्ण तो न मान पाते कि ये भगवान हैं। किसी और की स्त्री से की होगी, तुम्हें लेना-देना क्या है? तुम्हारी पत्नी नहा रही होती और उसके कपड़े उठा कर झाड़ पर बैठ जाते तो तुम पूजा और ही अर्थ में करते उनकी! मराठी अर्थ में शिक्षा देते उनको! वही किया था जो लोग मौजूद थे उन्होंने। लेकिन तुम्हारे लिए भगवान हैं। अब बात बहुत दूर हो गई। पांच हजार साल बीत गए, पांच हजार साल में हजारों कहानियां बीच में खड़ी हो गईं, पर्दे पर पर्दे हो गए। अब तुम कृष्ण को देख सकते हो दिव्य।
मैं तुमसे यह कहना चाहता हूं, कहानियों के आधार पर किसी को दिव्य देखने से कुछ लाभ नहीं होता, क्योंकि वे कहानियां झूठी हैं। दिव्यता को यहां देखो, अभी देखो, सामान्य में देखो। क्योंकि सामान्य में दिव्यता को देख सको, तो ही तुम्हारी दिव्यता मुक्त हो सकती है। मैं अगर तुमसे कह रहा हूं कि मैं भगवान हूं, तो इसमें मेरा कोई दावा नहीं है; इसमें मुझे कोई रस ही नहीं है। अगर रस है तो तुममें है। और जब तक तुममें मेरा रस है तब तक मैं कहूंगा कि मैं भगवान हूं। जिस दिन मैं देखूंगा कि कोई सार नहीं है तुममें रस लेने में, तुम्हें ही रस नहीं है तुममें तो कब तक मैं रस लूं, उसी दिन भगवान कहना बंद कर दूंगा। उसमें कोई प्रयोजन नहीं है। मुझे कुछ लेना-देना नहीं। मैं जो हूं, हूं। भगवान कहूं, न कहूं, इससे क्या फर्क पड़ता है? लेकिन अभी मुझे तुममें रस है। अभी और थोड़ी कोशिश करूंगा। अभी तुम्हें और याद दिलाने की चेष्टा करूंगा। शायद इसी बहाने तुम्हें याद आ जाए।
लेकिन तुम यह मान नहीं सकते कि तुम भगवान हो। यही तुम्हारे जीवन में भगवत्ता और तुम्हारे बीच बाधा है कि तुम मान नहीं सकते कि तुम भगवान हो। तुम्हें लगता है, मुझ जैसा पापी और भगवान! मुझ जैसा जुआरी और भगवान! मुझ जैसा शराबी और भगवान! मैं तुमसे कहता हूं कि तुम शराब पीते हो तब इतना ही फर्क पड़ता है कि भगवान शराब पी रहे हैं, और कुछ फर्क नहीं पड़ता। जब तुम जुआ

खेलते हो तो इतना ही है कि भगवान जुआ खेल रहे हैं। तुम्हारी भगवत्ता अछूती रहती है। तुम्हारे कृत्य तुम्हारी भगवत्ता को नहीं छूते हैं। तुम्हारे सब कृत्य स्वप्न जैसे हैं। जैसे रात स्वप्न देखा तुमने और तुम भिखारी हो गए; लेकिन जब आंख खुलती है सुबह तो तुम पाते हो कि तुम भिखारी नहीं हो, अपने बिस्तर पर सोए हो। तुम्हारे सारे कृत्य स्वप्न जैसे हैं, यही माया के सिद्धांत का अर्थ है। तुमने चोरी की, तुमने शराब पी, तुमने अच्छा किया, तुमने बुरा किया, तुमने मंदिर बनवाया, तुमने पुण्य किया, दान किया--सब, सबके सब तुम्हारे भीतर उठे एक स्वप्न की भांति हैं। जागोगे जिस दिन उस दिन तुम पाओगे, भगवत्ता तुम्हारी है। तुम भगवान हो।
कुछ और बातें इस प्रश्न के संबंध में।
पहली बात, तुमने कहा है कि अवतार तब होता है जब ये तीन काम उसे करने होते हैं।
परमात्मा का अवतरण होता है, अवतार नहीं होता। अवतार का तो मतलब होता
है कि बस एक कृष्ण में हुआ, राम में हुआ--गिनती का। तो दस अवतार हुए, कि चौबीस, या जितनी गिनती तुमने मान रखी हो उतने अवतार होंगे। फिर बाकी? बाकी वंचित रह जाएंगे। इसलिए मैं कहता हूंः परमात्मा का अवतार नहीं होता, अवतरण होता है। जो भी समाधि में पहुंचता है, वही परमात्मा का अवतार हो जाता है। करोड़ों लोग पहुंचे हैं। करोड़ों लोग पहुंचेंगे। और प्रत्येक व्यक्ति का यह स्वरूपसिद्ध अधिकार है, जिस दिन चाहे और अपने भीतर समाधि को जन्मा ले, उस दिन वह भी अवतार हो जाएगा।
फिर अवतार का कारण कोई हेतु नहीं होता, कि यह काम करने के लिए। जब तक कर्ता का भाव है, तब तक कहां कोई अवतार? यह तो कर्ता का ही भाव हुआ कि ये काम करने हैं, इसलिए। इसमें तो हेतु हुआ, इसमें तो वासना हुई।
नहीं, अवतरण तब होता है जब सब हेतु समाप्त हो जाते हैं; सब वासनाएं गिर जाती हैं; भीतर कोई करने का कारण ही नहीं रह जाता। जहां कर्ता समाप्त हो जाता है, वहां अवतरण होता है।
तो मेरी धारणाएं अलग हैं। तुम और शास्त्रों को मेरे बीच में मत लाओ।
और जब मैं इन शास्त्रों पर भी बोलता हूं, तब भी तुम ध्यान रखना कि मैं अपने पर ही बोलता हूं। मेरी धारणाएं मेरी हैं। मैं तुम्हें अपनी धारणाएं समझा रहा हूं। मुझे इससे कुछ प्रयोजन नहीं है कि कृष्ण का क्या अर्थ था, क्या नहीं था। इसमें माथापच्ची करने में मुझे रस ही नहीं है। मैं कोई पंडित नहीं हूं, न कोई व्याख्याकार हूं। मेरे पास अपना अनुभव है, वह मैं तुम्हें दे रहा हूं। इसमें कोई हेतु नहीं है। न तो किसी साधु की रक्षा करनी है मुझे। क्योंकि जिसको अभी साधु-असाधु में फर्क हो, वह अभी अवतार ही नहीं है। द्वंद्व जिसके मन में हो, वह कहां अवतार? मैं उस व्यक्ति को कहता हूं परमात्मा, जिसके भीतर से द्वंद्व गया, न अब साधु है कोई, न असाधु; न कुछ पाप, न कुछ पुण्य; न कुछ धर्म, न कुछ अधर्म। यह द्वंद्व गया, यह विरोध गया, यह द्वैत गया, सब अद्वय हो गया। सब लीला है, सब एक है।
मेरे देखे, राम के बिना रावण नहीं हो सकता और रावण के बिना राम नहीं हो सकते। अगर रावण को नष्ट कर दोगे तो राम को भी नष्ट कर दोगे।
इसे समझ लेना।
जरा सोचो, रावण को अलग कर लो राम की कथा से, फिर कितने राम बचेंगे? क्या बच रहेगा? रावण को अलग करते ही कथा गिर जाएगी। रावण के बिना राम की कथा खड़ी नहीं हो सकती। राम के बिना रावण की कथा खड़ी नहीं हो सकती। दोनों एक-दूसरे पर निर्भर हैं। अगर दोनों एक-दूसरे पर इतने निर्भर हैं, तो तुम उनको अलग-अलग मत करो। पाप और पुण्य एक ही सिक्के के दो पहलू हैं; धर्म और अधर्म भी, साधु-असाधु भी। जैसे दिन और रात हैं, जैसे कांटा और फूल हैं, जैसे स्त्री और पुरुष हैं, ऐसे सारे द्वंद्व एक-दूसरे को सम्हाले हुए हैं। इस जगत में कभी ऐसा नहीं होगा कि सिर्फ भलाई बचे। भलाई अकेली नहीं बच सकती है; बुराई बचेगी। बुराई के साथ ही भलाई बच सकती है।
और बड़े चमत्कार की बात है कि दोनों में सदा संतुलन रहता है। जितनी भलाई होगी, उतनी बुराई होगी। जितनी बुराई होगी, उतनी भलाई होगी। संतुलन कभी नहीं टूटता। यहां राम और रावण दोनों सदा हैं। यही तो जगत का द्वंद्व

है। इसी को तो मैंने पृथ्वी का संकट कहा। लेकिन अगर अवतार भी देखता है कि यह साधु, इसको बचाना, यह असाधु, इसको मारना, तो वह अभी अवतार नहीं है। अभी उसे असली बात दिखाई नहीं पड़ी। अभी उसे यह नहीं दिखाई पड़ा कि दोनों के पीछे एक ही परमात्मा छिपा है। उसे अभी एक का अनुभव नहीं हुआ है।
मुझे न तो साधु को बचाना है, न असाधु को मिटाना है। न पुण्य फैलाना है,
न पाप को मिटाना है। न धर्म की स्थापना करनी है, न अधर्म को उखाड़ना है। फिर मुझे क्या करना है?
मुझे तुम्हें याद दिलानी है कि दो जब तक हैं, तब तक भ्रांति है, सपना है, माया है, द्वंद्व है। इन दो के बीच एक को देख लो। एक को देखते ही मुक्ति है, निर्वाण है।

तीसरा प्रश्न भी उन्हीं मित्र का है, वैसा का वैसा है। पूछने वाले हैं, देवराज खुराना, पंजाब। ऐसे प्रश्न पंजाब में से ही आ सकते हैं। पंजाबियों की बुद्धिमत्ता तो जग-जाहिर है।

तीसरा प्रश्न हैः नानक अपने को प्रभु का दास कहते थे। कबीर भी प्रभु
के भक्त थे। बुद्ध और महावीर ने भी कभी भगवान होने का दावा नहीं किया। ईशु मसीह ने भी अपने को ईश्वर का इकलौता बेटा कहा था। आप भी उन्हीं की तरह एक पूर्ण संत हैं, फिर आप अपने को भगवान क्यों कहते हैं? भगवान तो वह है जो सबको पैदा कर रहा है। क्या आप सबको पैदा कर रहे हैं?

देखा! इसलिए मैंने कहा कि ऐसा प्रश्न पंजाब से ही आ सकता है। थोड़ा समझने की कोशिश करो। शायद नानक ने इसीलिए अपने को भगवान नहीं कहा होगा, पंजाबियों के डर के कारण! कि इन मूढ़ों से सिर कौन मारेगा? जरा नानक पर दया करो। नानक कोई भले आदमियों के बीच में नहीं थे। झगड़ा-फसाद खड़ा हो जाए, लट्ठ निकल आएं। नानक ने अपने को नहीं कहा कि मैं भगवान हूं, इसका यह अर्थ नहीं है कि नानक ने नहीं जाना कि मैं भगवान हूं। नानक ने जाना, खूब जाना; उसी को जान कर तो वे नानक हुए, उसी को जान कर तो वे गुरु हुए।
गुरु का अर्थ क्या होता है? जिसने अनुभव कर लिया है कि मैं भगवान के साथ एक हूं। जिसने अनुभव कर लिया, वही तो तुम्हें अनुभव करवा सकता है उस एकता का। लेकिन कहा नहीं कि मैं भगवान हूं; यह दुर्दिन की बात है। कहा नहीं, सुनने वालों का ख्याल रखा होगा, उनकी जड़ता को देखा होगा।
लेकिन कृष्ण ने तो कहा कि मैं भगवान हूं। क्यों कृष्ण कह सके? कारण था सुनने वाला अर्जुन, एक सुसंस्कृत प्रतिभा, एक मेधावी व्यक्ति, जो समझ सकेगा। गंवारों से नहीं बोल रहे थे। गीता की जो ऊंचाइयां हैं वे इसीलिए हैं कि जिससे बोल रहे थे, वह एक समझने वाला मित्र था, समझने के लिए चेष्टा कर रहा था, सहानुभूतिपूर्ण था। नानक भीड़-भाड़ में घूम रहे थे, गांव-गांव घूम रहे थे, लोगों से बोल रहे थे।
मैं भी कोई पंद्रह वर्षों तक गांव-गांव घूमा हूं। उसमें पंजाब भी मेरा हिस्सा था घूमने का। पंजाब मैं काफी गया हूं। गांव-गांव घूम कर मुझे यह लगा कि जिस तरह के लोगों से बोलना हो, उस तरह से बोलना पड़ता है; समझौते करने पड़ते हैं। इसलिए मैंने जाना बंद कर दिया। अब मुझे जो बोलना है वह बोलूंगा, जिसे सुनने आना है, उसे आना चाहिए। समझौता उसे करना हो तो कर ले, अब मैं समझौता नहीं करूंगा। क्योंकि जो तल होता है लोगों का उस तल की ही बात करनी पड़ेगी। इसलिए मैं पसंद नहीं करता हूं कि मेरे सामने गैर-संन्यासी बैठें। इसलिए गैर-संन्यासियों को पीछे बिठाता हूं। उसका कारण है। उसका कुल कारण इतना है, जो मुझे सुनते रहे हैं, जिन्होंने मुझे समझा है, जिन्होंने मुझे चाहा है, जिनसे मेरा हृदय जुड़ा है, वे मेरे सामने हों, तो मैं ज्यादा ऊंचाइयां ले पाता हूं; तो मैं वही कह पाता हूं जो कहने का मेरा मन है। अगर सामने ऐसे लोग बैठे हों जो जम्हाइयां ले रहे हैं, इस तरह बैठे हों कि पता नहीं क्यों आ गए हैं, कि कहां फंस गए, कि इतनी देर तो दुकान ही कर ली होती, या बार-बार घड़ी देख रहे हैं कि दफ्तर चले जाएं, उस तरह के लोग अगर मेरे सामने बैठे हों तो मुझे बार-बार नीचे खींच ले आते हैं। फिर मैं

उड़ान नहीं ले पाता, फिर उन पर मुझे ध्यान रखना पड़ता है, नहीं तो उनका डेढ़ घंटा व्यर्थ जाएगा। उनके मतलब की कुछ बात कहूं, उनकी बुद्धि में आ सके, ऐसी कुछ बात कहूं।
तुम पूछते होः "नानक ने अपने को भगवान क्यों नहीं कहा?"
तुम्हारी वजह से। देवराज खुराना, तुम रहे होओगे। तुम्हें देख कर उन्होंने कहा होगा, अब क्या कहना? अब किससे कहना?
"कबीर भी अपने को प्रभु का भक्त कहते थे।"
नहीं, तुम्हें पता नहीं है। कबीर अपने को प्रभु का भक्त कहते थे, जब खोज कर रहे थे; जब खोज पूरी हो गई, तब नहीं। तब तो कहा हैः
हेरत हेरत हे सखी, रह्या कबीर हेराई।
बुंद समानी समुंद में, सो कत हेरी जाई।।
फिर तो और ऊंची उड़ान लीः
हेरत हेरत हे सखी, रह्या कबीर हेराई।
समुंद समाना बुंद में, सो कत हेरी जाई।।
समुंद! विराट आकर बूंद में समा गया! और क्या मतलब होता है भगवान का? बुद्धि इतनी जड़ है कि तुम सिर्फ शब्द को ही समझोगे, इशारे न समझोगे? कबीर कहते हैंः बूंद में सागर आकर समा गया है; कबीर तो गया, अब सागर ही बचा है। और क्या अर्थ होता है भगवान को खोज लेने का? कबीर ने कहा हैः एक दिन था कि मैं परमात्मा को खोजता घूमता था, अब ऐसा दिन आ गया है कि परमात्मा मेरे पीछे-पीछे चलता है, कहता हैः कबीर! कबीर! और क्या मतलब होता है?
तुम पूछते होः "बुद्ध और महावीर ने कभी भगवान होने का दावा नहीं किया।"
तुम्हें पता नहीं है। महावीर ने कहा हैः अप्पा सो परमप्पा। आत्मा परमात्मा है। और क्या कहना है? जिसने आत्मा को जाना उसने परमात्मा को जाना। महावीर ने तो कहा है, और कोई परमात्मा है ही नहीं। इसलिए महावीर ने भगवान को नहीं माना, कि कोई दुनिया को बनाने वाला भगवान है। महावीर ने तो कहा है, जो स्वयं को जान लेता है, वह भगवान है। भगवत्ता आत्म-अनुभूति का नाम है।
और तुम्हें बुद्ध का भी कुछ पता नहीं है। क्योंकि बुद्ध ने कहा है कि मैंने वह सब पा लिया जो पाया जा सकता है, अब पाने को कुछ भी नहीं बचा। मैंने परिपूर्ण सम्यक संबोधि पा ली। मैं उस जगह आ गया, जहां सब जान लिया गया है। भगवान का और क्या अर्थ होता है? संक्षिप्त शब्द में इन्हीं सारी बातों को कहने का ढंग है।
तुम कहते होः "ईशु मसीह ने भी अपने को ईश्वर का इकलौता बेटा कहा है।"
उससे मैं राजी नहीं होता। इकलौता बेटा कहना गलत बात है। क्योंकि फिर तुम किसके बेटे हो? नाजायज? अगर जीसस ईश्वर के इकलौते बेटे हैं, तो तुम किसके बेटे हो? वह तो बात गलत है। उससे मैं राजी नहीं हूं। वह तो उन्होंने गलत बात कही। उससे तुम भी राजी मत होना। क्योंकि उसका मतलब यह होता है कि जीसस भर उनके बेटे हैं। और तुम?
मैं कहता हूंः तुम सब उसके बेटे हो।
लेकिन बेटे में थोड़ा फासला रह जाता है। उतना फासला भी क्यों रखना? बेटा बाप नहीं है, फासला है। इतना फासला भी क्यों बचाना चाहते हो? तुम उस परमस्रोत के साथ एक क्यों नहीं होना चाहते?
जीसस को भी कहने का कारण था। इतना फासला बना कर रखा था, यहूदियों की वजह से। यहूदी तो यह भी बर्दाश्त नहीं कर सके कि जीसस ईश्वर के बेटे हैं। ईश्वर हैं, यह तो कहने पर बिल्कुल बर्दाश्त नहीं कर सकते थे। यह लोगों की जड़ताओं के कारण इस तरह की बातें कहनी पड़ी हैं। लेकिन बहुत जगह जीसस ने सूचना दे दी है अपने शिष्यों को कि मेरा पिता और मैं एक हैं। तुमने अगर मुझे देख लिया तो मेरे पिता को देख लिया। यह वचन है। जिसने मुझे चाहा, उसने परमात्मा को चाह लिया।
लेकिन इकलौता बेटा शब्द मुझे पसंद नहीं है। वह जीसस ने कहा भी नहीं है। ईसाइयों ने गढ़ा है। ईसाइयों को गढ़ना पड़ा। क्योंकि ईसाइयों को डर लगा कि अगर कई बेटे हों, तो फिर झंझट-झगड़ा होगा; फिर बंटवारा होगा, फिर पूंजी

बंटेगी। और ईसाइयों का दिल है कि सारी दुनिया ईसाई हो जाए। अगर कृष्ण भी ईश्वर के बेटे हैं, और बुद्ध भी, और महावीर भी, और मोहम्मद भी, तो फिर झंझट होगी। फिर यह जमीन बंटेगी। फिर तुम यह नहीं कह सकते कि सारी जमीन ईसाई हो जाए। फिर हिंदू भी रहेंगे, मुसलमान भी रहेंगे, बौद्ध भी रहेंगे। इनको इनकार करने के लिए ईसाइयों ने यह कहानी गढ़ी कि ईश्वर का इकलौता बेटा! इस तरह की कहानियां सभी धर्मों ने गढ़ी हैं। वे मनुष्य के ओछेपन से पैदा होती हैं। जैसे हिंदू कहते हैं, ईश्वर ने बस एक ही किताब लिखी है--वेद। वह भी वही की वही बात है; ताकि बाइबिल गलत हो जाए, कुरान गलत हो जाए, धम्मपद गलत हो जाए। वही की वही तरकीब है। ईश्वर का बेटा एक ही है, ताकि बाकी सब बेटे नाजायज हो गए।
ये तरकीबें चालबाजियां हैं, इनसे सावधान हो जाओ। कुरान भी उसकी किताब है, बाइबिल भी उसकी किताब है, वेद भी उसकी किताब है। असल में तो जब भी सत्य उतरेगा, उसी का होगा। किस और का हो सकता है? और कृष्ण भी उसी के बेटे हैं, और बुद्ध भी। और कृष्ण और बुद्ध और क्राइस्ट ही नहीं, तुम भी उसी के बेटे हो, उसी की बेटी हो। क्योंकि और कहां से आओगे? वही मूलस्रोत है।
लेकिन एक और ऊंची ऊंचाई है, जो उपनिषदों ने छुई, जब कहाः अहं ब्रह्मास्मि! मैं ब्रह्म हूं। बेटा बाप में लीन हो गया। बुंद समानी समुंद में, समुंद समाना बुंद में। कब तक दूरी रखोगे? लीन क्यों नहीं हो जाते? "ईशु मसीह ने भी अपने को ईश्वर का इकलौता बेटा कहा था। आप भी उन्हीं की तरह एक पूर्ण संत हैं।"
न तो मैं पूर्ण हूं और न मैं संत हूं। मैं ठीक तुम जैसा अपूर्ण आदमी हूं। मैं इस बात को दोहराना चाहता हूं, तभी तुम मेरी बात समझ पाओगे। पूर्ण हूं, संत हूं--बस तुमने दूर करना शुरू किया। तुमने कहा, हम हम हैं, आप आप हैं। आपकी बातें सुनेंगे, आपकी पूजा कर लेंगे, आपके चरणों में सिर झुका देंगे, मगर आपकी बातें मानेंगे नहीं--आप आप हैं, हम हम हैं। हम तो अपने ही ढंग से जीएंगे। हम तो कीड़े-मकोड़े की तरह ही सरकेंगे। हम आकाश में नहीं उड़ सकते। आप पूर्ण संत हैं।
नहीं, मैं पूर्ण संत नहीं हूं। मैं ठीक तुम जैसा हूं। मेरा सारभूत संदेश यही है कि मैं ठीक तुम जैसा हूं और फिर भी मैं कहता हूं, मैं भगवान हूं। ताकि तुम्हें याद मैं दिला सकूं कि तुम भी भगवान हो। और यह याद तुम्हारे भीतर सघन हो जाए तो क्रांति हो जाएगी, आग जलेगी, सब भस्मीभूत हो जाएंगे तुम्हारे स्वप्न। यह आग इतनी बड़ी है।
लेकिन तुम पूर्णता थोपना चाहोगे मेरे ऊपर, तुम संतत्व थोपना चाहोगे।
ये तुम्हारी तरकीबें हैं; तुम्हारे दूर करने के उपाय हैं। जितना दूर बन सके तुम करना चाहोगे।
अभी तुम कह रहे हो, पूर्ण संत हो। जब मैं मर जाऊंगा, तुम कहोगे--भगवान!
तब बिल्कुल फासला कर दिया। ईश्वर के अवतार! बात खत्म कर दी। तुमने छुटकारा कर लिया। तुम भागे अपनी दुकान में, कि अब ईश्वर के अवतार से अपना क्या लेना-देना? मंदिर में बिठा दो, कभी पूजा कर लेंगे वर्ष में एक दिन; कभी जाकर प्रसाद चढ़ा देंगे, बांट देंगे; लेकिन बस छुटकारा हो गया। तुमने कृष्ण की सुनी? तुमने राम की सुनी? तुमने बुद्ध की सुनी? तुमने उनको भगवान कह कर छुटकारा पा लिया।
और मरने के बाद तुम भगवान कह कर छुटकारा पाते हो। इसलिए मैं खुद अभी जिंदा में तुमसे कह रहा हूं कि मैं भगवान हूं। छुटकारा पाने का मैं उपाय नहीं छोड़ रहा हूं। और तुमसे जिंदा में कह देना चाहता हूं, ताकि यह बात कायम, रिकार्ड पर रहे, कि मैं संत नहीं हूं, मैं पूर्ण नहीं हूं, मैं ठीक तुम जैसा आदमी हूं; और फिर भी कहता हूं--मैं भगवान हूं। और चाहता हूं कि तुम भी उदघोषणा करो कि तुम भी भगवान हो।
भगवान होने के लिए न तो पूर्ण होना जरूरी है, न संत होना जरूरी है। भगवान हम हैं। सिर्फ जानना जरूरी है। इस भेद को ख्याल में लो। भगवान कोई लक्ष्य नहीं है आगे, भविष्य में, कि चढ़ेंगे, पहुंचेंगे, बड़ी यात्रा करेंगे, तपश्चर्या, यह, वह, फिर एक दिन पहुंच पाएंगे। भगवान कोई गौरीशंकर का शिखर

नहीं है। भगवान तुम्हारी अंतर्दशा है। तुम भगवान हो। इसका तुम्हें बोध नहीं है। बस इसकी प्रत्यभिज्ञा करनी है, इसकी पहचान करनी है।
मंजिलों के करीब होकर भी
मंजिलों की है जुस्तजू बाकी
तुम करीब हो, तुम वहीं विराजमान हो, मंजिल मिली हुई है। मगर तुम तलाश रहे हो। तलाश रहे हो इसलिए खो रहे हो। रोको तलाश, झांको भीतर, और पा लो।
और ध्यान रखना, ऐसा नहीं है कि कभी-कभी किसी एकाध को भगवान होना है। यहां कुछ कंजूसी नहीं है; यह अस्तित्व कंजूस है ही नहीं। तुम इतने घबड़ाओ मत।
तुम कहते हो कि अब सभी भगवान हो जाएंगे, ऐसा कैसे हो सकता है?
यहां सभी वृक्षों में फूल खिल रहे हैं, ऐसा कैसे हो रहा है? यहां सभी प्राणों में हृदय धड़क रहा है, ऐसा कैसे हो रहा है? ऐसे ही तुम सब भगवान भी हो जाओगे।
लेकिन कई अड़चनें हैं। हिंदू को डर लगता है, अगर मैं कहूं कि मैं भगवान हूं तो वह कहता है, फिर हमारे कृष्ण और हमारे राम! उनका दावेदार पैदा हो गया! उनके भीतर राजनीति पैदा होती है। जैन को अड़चन होती है, कि तीर्थंकर तो चौबीस ही हुए, बस उसके बाद खत्म कर दिया उन्होंने सिलसिला, उसके बाद कोई तीर्थंकर हो नहीं सकता, कोई भगवान हो नहीं सकता। पच्चीसवां वे कैसे स्वीकार करें? और मैं कहता हूंः पच्चीसवें पर रुकने की जरूरत नहीं है, कहीं रुकने की जरूरत नहीं है, हर दीया जलना चाहिए, सब दीये जलने चाहिए। मैकदे पर तश्नगी छा जाएगी
एक मैकश भी अगर प्यासा रहा
यह मधुशाला में कोई प्यासा नहीं रहना चाहिए; एक भी प्यासा नहीं रहना चाहिए। जिस दिन यह सारा जगत भगवत्ता में होकर नाचेगा, उस दिन आएगा राम-राज्य; जिस दिन सब राम होंगे, उस दिन आएगा राम-राज्य। किसी राम के आने से नहीं आता। राम तो कई बार आए और गए। उससे राम-राज्य नहीं आता। जब तुम्हारे सबके भीतर राम की सुगंध उठेगी! राम का मंत्र नहीं जपो, राम की सुगंध उठने दो। भगवान-भगवान कह कर मत पुकारो, भगवान हो जाओ।
जहां आंसू गिरे, इक चश्मए-जमजम वहां उबला
पड़ी बुनियाद काबे की, जहां मैंने जबीं रख दी
तुम जिस दिन इस भगवत्ता के भाव से भरोगे, जहां तुम्हारे आंसू गिर जाएंगे, वहां चश्मए-जमजम, वहां अमृत का झरना फूट पड़ेगा। और जहां तुम सिर झुका दोगे, वहां काबा बन जाएगा; जहां तुम बैठोगे, वहां तीर्थ! इस उदघोषणा को करने के लिए ही मैं कुछ कह रहा हूं।
तुम पूछते हो कि भगवान तो वह है जो सबको पैदा कर रहा है।
भगवान वह नहीं है जो सबको पैदा कर रहा है। जरा उस पर भी तो दया करो! अब
तक घबड़ा गया होगा। अब तक परेशान हो गया होगा। अब तक थक गया होगा। तुम्हें पैदा करते-करते कितना समय हो गया? हार गया होगा; उदास हो गया होगा; या पागल हो गया होगा।
भगवान वह नहीं है जो तुम्हें पैदा कर रहा है। भगवान स्रष्टा नहीं है,
वह धारणा छोड़ो। भगवान इस सृष्टि का आधार है। भगवान सृष्टि है। वही फूल में खिल रहा है; वही मनुष्य में बोल रहा है; वही पत्थर में सो रहा है। भगवान अलग नहीं है। ऐसा नहीं है भगवान जैसे मूर्तिकार मूर्ति बनाता है। फिर मूर्ति बन गई तो मूर्तिकार अलग हो गया, मूर्ति अलग हो गई। भगवान ऐसे है जैसे नृत्यकार, नर्तक। नाचता है तो नृत्य रहता है, नाच बंद हुआ कि नृत्य भी गया। नृत्य को और नर्तक को अलग नहीं कर सकते हो। इसलिए तो हमने नटराज की प्रतिमा बनाई। जो लोग कहते हैं, भगवान कुम्हार की तरह है, घड़े की तरह तुम्हें ढाल रहा है, उन्हें कुछ पता नहीं है। भगवान नटराज है। तुम उसका नृत्य हो। उससे अलग नहीं हो। तुम्हें पैदा नहीं कर रहा है, तुम्हारे भीतर पैदा हुआ है।
इस भेद को ख्याल में लेना। यह भेद बुनियादी है। जो मुझे समझना चाहते हैं, उन्हें यह समझ लेना पड़ेगा। भगवान ने तुम्हें पैदा नहीं किया है, भगवान तुम्हारे भीतर पैदा हुआ है; तुम्हें बनाया नहीं है, तुम बना है। और

तुम्हारे भीतर ही नहीं, इतना विराट है कि तुममें कैसे चुक जाएगा? इसलिए वृक्षों में, पौधों में, पत्थरों में, चांद-तारों में, सबमें वही हुआ है, अनेक-अनेक रूपों में, अनेक-अनेक ढंगों में।
सागर के किनारे जाओ, सागर में उठती लहरों को देखो। सागर लहरों को पैदा नहीं कर रहा है, सागर लहरा रहा है। अगर सागर लहरों को पैदा करता हो, तो दो- चार लहरों को बीन कर और गट्ठर बांध कर घर ले आना। न ला सकोगे। सागर से लहरें अलग नहीं की जा सकतीं। इसलिए यह कहना ठीक नहीं है कि सागर लहरों को पैदा कर रहा है; ठीक यही होगा कहना कि सागर लहरों में लहरा रहा है। ठीक ऐसा ही अस्तित्व है। यहां स्रष्टा सृष्टि में लहरा रहा है। यह दृष्टि तुम्हें साफ हो तो ही मेरी बातें तुम्हें समझ में आ सकेंगी। अन्यथा तुम बचकाने प्रश्न पूछते रहोगे।

तुम पूछ रहे हो कि क्या आप सबको पैदा कर रहे हैं?
मैं ऐसी झंझट क्यों लूंगा? मुझे क्या लेना-देना किसी को पैदा करने से? कोई पैदा नहीं कर रहा है, कोई कर्ता की तरह अलग नहीं बैठा है। यह जो विराट ऊर्जा है अस्तित्व की, यही भगवत्ता है। सृष्टि की क्रिया हो रही है, लेकिन स्रष्टा कोई भी नहीं है। सृजन की क्रिया घट रही है, लेकिन घटा कोई भी नहीं रहा है। यही तो इसका रहस्य है, यही तो इसकी अपूर्व गरिमा है। यहां कोई बनाने वाला नहीं है, और चीजें बन रही हैं। स्रष्टा स्वयं अनेक-अनेक रूपों में ढल रहा है। सृजन शक्ति है परमात्मा, स्रष्टा नहीं। वह भाषा गलत है। लेकिन तुम्हें दिखाई नहीं पड़ रहा है, क्योंकि तुम धारणाओं में जकड़े बैठे हो। तुम सोच रहे हो, ऊपर कहीं कोई बैठा है, वह सारा काम चला रहा है--कोई बड़ा इंजीनियर, कि कोई बड़ा यंत्रविद। तुम्हारी धारणा बच्चों की धारणा है। हैरान हूं क्यों मुझको दिखाई नहीं देते
सुनता हूं मेरी बज्म में वह आए हुए हैं
दिखाई दे नहीं सकता, जब तक तुम्हारी ये धारणाएं न गिर जाएं। ये धारणाएं जाएं तो तुम्हें दिखाई दे। बुद्ध का बड़ा प्रसिद्ध वचन है कि जब मेरी दृष्टि बिल्कुल निर्मल हुई तो मुझे कुछ दिखाई नहीं पड़ा; बस दृष्टि निर्मल रह गई, कोई दिखाई नहीं पड़ा, कोई परमात्मा नहीं, कोई विषय नहीं। दृष्टि जब मेरी निर्मल हुई, शुद्ध हुई, तो कोई दिखाई नहीं पड़ा। फिर क्या हुआ? दृष्टि की इस शुद्धता में दृष्टि ने अपने को जाना। द्रष्टा को कोई दिखाई नहीं पड़ा, द्रष्टा को द्रष्टा का अनुभव हुआ। इसको आत्मज्ञान कहा है, समाधि कहा है, निर्वाण कहा है।
तुम जिस दिन अपने भीतर छिपे हुए द्रष्टा को देख लोगे, उसी दिन तुम हंसोगे कि तुम कहां खोजने चल पड़े थे! दूर जाने की जरूरत न थी। कहीं जाने की जरूरत न थी। जाने की ही जरूरत न थी। सिर्फ शांत होकर भीतर देख लेने की जरूरत थी।
मैंने देखा और पाया। मैं तुमसे कहता हूं, तुम भी देखो और पा लो। तुम सिद्धांतों में मत उलझे रहो।

चौथा प्रश्नः क्या इस जगत में प्रेम का असफल होना अनिवार्य ही है?

इस जगत का प्रेम तो, चैतन्य कीर्ति, असफल होगा ही। उसकी असफलता से ही
उस जगत का प्रेम जन्मेगा। बीज तो टूटेगा ही, तभी तो वृक्ष का जन्म होगा। अंडा तो फूटेगा ही, तभी तो पक्षी पंख पसारेगा और उड़ेगा। इस जगत का प्रेम तो बीज है। पत्नी का प्रेम, पति का प्रेम; भाई का, बहन का, पिता का, मां का, इस जगत के सारे प्रेम बस प्रेम की शिक्षणशाला हैं। यहां से प्रेम का सूत्र सीख लो। लेकिन यहां का प्रेम सफल होने वाला नहीं है, टूटेगा ही। टूटना ही चाहिए। वही सौभाग्य है! और जब इस जगत का प्रेम टूट जाएगा, और इस जगत का प्रेम तुमने मुक्त कर लिया, इस जगत के विषय से तुम बाहर हो गए, तो वही प्रेम परमात्मा की तरफ बहना शुरू होता है। वही प्रेम भक्ति बनता है। वही प्रेम प्रार्थना बनता है।
हमारी इच्छा होती है कि कभी टूटे न।

कभी तिलिस्म न टूटे मेरी उम्मीदों का
मेरी नजर पे यही परदाए-शराब रहे
हम तो चाहते ही यही हैं कि यह परदा पड़ा रहे, टूटे न। यह जादू न टूटे! लेकिन यह जादू टूटेगा ही, क्योंकि यह जादू है, सत्य नहीं है। कितनी देर चलाओगे? जितनी देर चलाओगे, उतना ही पछताओगे। जितनी जल्दी टूट जाए, उतना सौभाग्य है। क्योंकि यहां से आंखें मुक्त हों तो आंखें आकाश की तरफ उठें; बाहर से मुक्त हों तो भीतर की तरफ जाएं।
हद्दे-तलब में गम की कड़ी धूप ही मिली
जुल्फों की छांव चाह रहे थे किसी से हम
यहां कोई जुल्फों की छांव नहीं मिलती, यहां तो कड़ी धूप ही मिलती है। यहां तो तुम जिसको प्रेम करोगे उसी से दुख पाओगे। यहां प्रेमी दुखी ही होता है। सुख के सपने देखता है! जितने सपने देखता है, उतने ही बुरी तरह सपने टूटते हैं। इसीलिए तो बहुत से लोगों ने तय कर लिया है कि सपने ही न देखेंगे। प्रेम का सपना न देखेंगे, विवाह कर लेंगे। न रहेगा सपना, न टूटेगा कभी। इसीलिए तो लोग विवाह पर राजी हो गए। समझदार लोगों ने प्रेम को हटा दिया, उन्होंने विवाह के लिए राजी कर लिया लोगों को।
लेकिन विवाह का खतरा है एक--सपना नहीं टूटेगा, यही खतरा है। सपना टूटना ही चाहिए। सपना होना चाहिए और टूटना चाहिए। बड़ा सपना देखो, डरो मत; मगर टूटेगा, यह याद रखो। रूमानी सपने देखो; मगर टूटेंगे, यह याद रखो। यहां जुल्फों की छांव मिलती ही नहीं, यहां हर जुल्फ की छांव में धूप मिलती है, कड़ी धूप मिलती है।
दागे-दिल से भी रोशनी न मिली
यह दिया भी जलाके देख लिया
जलाओ दीया। जलाना उचित है। इसलिए मैं प्रेम के खिलाफ नहीं हूं। और इसलिए मेरी बातें तुम्हें बड़ी बेबूझ मालूम पड़ती हैं। तुम्हारे तथाकथित संतों ने तुमसे कहा हैः प्रेम के विपरीत हो जाओ। मैं प्रेम के विपरीत नहीं हूं। मैं कहता हूंः प्रेम करो, देखो, जानो, जलो! हालांकि प्रेम का सपना टूटेगा।
और अगर ठीक से तोड़ना हो सपना, तो ठीक से उसमें जाना जरूरी है। भोग में उतरोगे तो ही योग का जन्म होगा; राग में जलोगे तो विराग की सुगंध उठेगी। जो राग में नहीं जला, वह विराग से वंचित रह जाएगा। और जिसने भोग की पीड़ा नहीं जानी, वह योग का रस कैसे पीएगा?
इसलिए मेरी बातें तुम्हें बहुत बार उलटी मालूम पड़ती हैं। मैं कहता हूं, अगर योगी बनना है तो भोगी बनने से डरना मत। भोग ही लेना। उसी भोग के विषाद में से तो योग का सूत्रपात है। जब तुम देखोगे, देखोगे, देखोगे, दुख पाओगे, जलोगे, तड़फोगे, जब सब तरह से देखोगे...
दागे-दिल से भी रोशनी न मिली
यह दिया भी जलाके देख लिया
जब रोशनी मिलेगी नहीं, अंधेरा बना ही रहेगा, बना ही रहेगा, एक दिन तुम सोचोगे कि मैं जो दीया जला रहा हूं वह दीया जलने वाला दीया नहीं है, अब मैं तलाश करूं उस दीये की जो जलता है। और वह दीया सदा से जल रहा है। जरा लौटोगे पीछे और उसे जलता हुआ पाओगे। वह दीया तुम हो।
बुझ गए आरजू के सब चिराग
एक अंधेरा है चार सू बाकी
और जब वासना के सब चिराग बुझ जाएंगे तो निश्चित गहन अंधकार में पड़ोगे। उसी गहन अंधकार में से तलाश पैदा होती है, आदमी टटोलना शुरू करता है।
इसलिए डरो मत। कच्चे मत प्रार्थना में उतरना, अन्यथा तुम्हारी प्रार्थना भी कच्ची रह जाएगी। प्रार्थना का गुणधर्म तुम्हारे अनुभव पर निर्भर होता है। जिसने संसार को ठीक से देख लिया, और कांटों में चुभ गया है, और.जार-.जार हो गया है, और घाव-घाव हो गया है, और जिसने सब तरफ से अनुभव कर लिया और अपने अनुभव से जान लिया कि संसार असार है--शास्त्रों में लिखा है, इसलिए नहीं; कोई ज्ञानी ने कहा है, इसलिए नहीं; नानक-कबीर ने दोहराया

है, इसलिए नहीं; अपने अनुभव से गवाह हो गया कि हां, संसार असार है--बस, इसी क्षण में क्रांति घटती है, संन्यास का जन्म होता है।

कहीं पे धूप की चादर बिछाके बैठ गए
कहीं पे शाम सिरहाने लगाके बैठ गए
खड़े हुए थे अलावों की आंच लेने को
सब अपनी-अपनी हथेली जलाके बैठ गए
दुकानदार तो मेले में लुट गए यारो
तमाशबीन दुकानें लगाके बैठ गए
ये सोच कर कि दरख्तों में छांव होती है
यहां बबूल के साए में आके बैठ गए

इस संसार को तुम बबूल का वृक्ष पाओगे। देर-अबेर यह अनुभव आएगा ही।
ये सोच कर कि दरख्तों में छांव होती है
यहां बबूल के साए में आके बैठ गए
लेकिन तुम्हारे अनुभव से ही यह बात उठनी चाहिए। उधार अनुभव काम नहीं आएगा। उधार ज्ञान कूड़ा-कर्कट है, उसे जितनी जल्दी फेंक दो उतना बेहतर! अपना थोड़ा सा ज्ञान पर्याप्त है--एक कण भी अपने ज्ञान का पर्याप्त है-- रोशनी के लिए! और शास्त्रों का बोझ जरा भी काम नहीं आता। शास्त्र से बचो! शास्त्र को हटाओ। जीवन को जीओ।
यह जीवन सपना है, यह टूटेगा। इसके टूटने में ही हित है। इसके टूटने में सौभाग्य है, वरदान है। क्योंकि यह सपना टूटे, तो परमात्मा से मिलन हो। यह विराग जगे संसार से, तो परमात्मा से राग जगे।
दो तरह के लोग हैं। जिनका संसार से राग है, उनका परमात्मा से विराग होता है; क्योंकि राग और विराग एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। जिन्होंने संसार की तरफ मुंह कर लिया, परमात्मा की तरफ पीठ हो गई। संसार के सम्मुख हो गए, परमात्मा से विमुख हो गए। संसार के प्रति राग, परमात्मा के प्रति विराग। जिस दिन संसार के प्रति विराग होगा, उस दिन तुम एकदम रूपांतरित हो जाओगे। उस दिन तुम पाओगे, परमात्मा के प्रति राग का जन्म हो गया। उस राग का नाम ही भक्ति है।
अथातो भक्ति जिज्ञासा!
आज इतना ही।

अथातो भक्ति जिज्ञासा, भाग 2
तेईसवां प्रवचन

गौणी-भक्ति में लगो, पराभक्ति की प्रतीक्षा करो

सूत्र

भक्त्या भजनोपसंहाराद्गौण्या परायैतद्धेतुत्वात्।। 56।।
रागार्थे प्रकीर्त्तिसाहचर्याच्चेतरेषाम्।। 57।।
अंतराले तु शेषाः स्युरुपास्यादौ च काण्डत्वात्।। 58।।
ताभ्यः पाविष्यमुपक्रमात्।। 59।।
तासुप्रधान योगात फलाऽधिक्यमेके।। 60।।

भक्ति की यात्रा को दो खंडों में बांटा जा सकता है। एक तो भक्त के हृदय में विरह की अवस्था है--वियोग की, रुदन की। और फिर दूसरी भक्त के हृदय में योग की अवस्था है--मिलन की, हर्षोन्माद की। एक तो जब भक्त तलाश रहा है, भगवान की कोई झलक नहीं मिलती; अंधेरे में टटोल रहा है; गिरता है, उठता है, फिर गिरता है, फिर-फिर उठता है; कई बार भरोसे का धागा हाथ से छूट-छूट जाता है; कई बार अंधेरा आत्यंतिक मालूम होता है कि सुबह कभी भी नहीं होगी; लेकिन ये क्षण संदेह के आते हैं और चले जाते हैं; सुबह की यात्रा, सुबह की खोज जारी रहती है। इन सारी स्थितियों के बावजूद भक्त तलाशता रहता है। यह आधी यात्रा है। फिर आधी यात्रा आनंद-उत्सव की है, जब मिलन हो गया, मिलन की घड़ी घट गई। पहले क्षणों में भक्त प्रमुख है, भगवान गौण है। जिसे जाना नहीं, वह गौण होगा ही। जिसे पहचाना नहीं, वह प्रमुख कैसे हो सकता है? भक्त मिटना चाहता है, मगर किसमें मिटे, उसकी तलाश करता है। जैसे गंगा तलाश करती है सागर की--मिटना चाहती है, खोना चाहती है।
इस जगत में वे ही धन्यभागी हैं जो मिट पाते हैं, जो उस शरण को उपलब्ध
हो जाते हैं जहां मिटना सुगम है। वे ही धन्यभागी हैं और वे ही हैं जो मिट गए हैं। विरोधाभास लगेगा। लेकिन जीवन का अंतरंग विरोधाभासों से भरा है। यही तो अर्थ है कहने का कि अस्तित्व रहस्यपूर्ण है। यहां जो हैं, वे नहीं हैं; और जो मिट गए हैं, वे ही हैं। यहां जिसने अपने को बचाया, उसने गंवाया; और जिसने अपने को गंवाया, उसने पाया। यहां जीत हार में बदल जाती है, यहां हार जीत हो जाती है।
भक्त मिटने चला है। मगर अभी उस जगह का भी पता नहीं है, उस द्वार का भी पता नहीं है जिस द्वार पर मिटना हो जाएगा। तलाश रहा है। भक्त अपनी मौत खोज रहा है। इसलिए भक्त होने के लिए साहस चाहिए।
साधारणतः लोग सोचते हैं, कायर लोग धार्मिक हो जाते हैं। गलत है उनकी धारणा। कायर कभी धार्मिक नहीं हो पाते; कायर तो धार्मिक हो ही नहीं सकता।
दुस्साहसी चाहिए। मिटने की क्षमता चाहिए।
भक्ति तो आत्मघात की कला है। तुम मिटोगे तो ही परमात्मा हो सकेगा।
तुम जरा भी बचे तो उतनी ही बाधा शेष रह जाएगी। तुम्हारे होने में बाधा है। तो भक्त रोता है, पुकारता है, चीखता-चिल्लाता है, छाती पीटता है, गिर-गिर पड़ता है, सारा हृदय विषाद से भरा होता है। इस विषाद में कभी-कभी दूर के तारे भी ऊग आते हैं। और इस विषाद में कभी-कभी फूल की सुगंध भी नासापुटों तक आ जाती है। इस विषाद में कभी-कभी उस परम की ध्वनि भी सुनी जाती है, उसका तैरता संगीत भी कभी-कभी आ जाता है। पर ऐसी घड़ियां बहुत कम होती हैं; और जब होती भी हैं तो प्यास को बुझाती नहीं और जलाती हैं, और जगाती हैं। क्योंकि जरा-जरा सा जो स्वाद लगता है, वह और तड़पाता है। एकाध बूंद प्यासे के कंठ में पड़ जाए तो प्यास बढ़ जाती है, घटती नहीं। भरोसा बढ़ता है, प्यास भी बढ़ती है।
इस प्रथम अवस्था को जो पार कर सके, वही दूसरी अवस्था को पाता है--मिलन की। विरह की अग्नि में जो जले, वही मिलन के योग्य हो पाता है। विरह की यह अवस्था परीक्षा की अवस्था है। अगर दिल भर कर रोए न, पुकारा न, तो कभी पा न सकोगे। पहली अवस्था में कंजूसी की, दूसरी से दूर रह जाओगे। यह मार्ग कृपण

के लिए नहीं है, कायर के लिए नहीं है। साहस चाहिए और अकृपण-भाव चाहिए। सब भांति सर्वस्व चरणों में रख देने की क्षमता चाहिए।
इस अवस्था में भगवान तो दूर होता है--दूर की ध्वनि की भांति; दूर से आती सुगंध की भांति--भगवान तो एक प्रतिशत होता है, भक्त निन्यानबे प्रतिशत होता है। दूसरी घड़ी जब घटती है तो भक्त एक प्रतिशत रह जाता है और भगवान निन्यानबे प्रतिशत हो जाता है।
ये दो अवस्थाएं तो शब्दों में कही जा सकती हैं। तीसरी अवस्था है, जिसको कहा नहीं जा सकता--जब भक्त बचता ही नहीं और भगवान ही बचता है। वह परम फल है।
आज के सूत्र इस दिशा में तुम्हारे लिए सहयोगी होंगे।
भक्त्या भजनोपसंहारात गौण्या पराय एतद्धेतुत्वात्।
"भक्ति शब्द यहां गौणी-भक्ति का प्रतिपादक है; भजन और सेवा ही गौणी- भक्ति है, और यह गौणी-भक्ति पराभक्ति की भित्तिरूप है।"
शांडिल्य इन दो अंगों को दो नाम देते हैंः एक को गौणी-भक्ति, एक को पराभक्ति। गौणी-भक्ति नाममात्र को ही भक्ति है। अभी भगवान ही नहीं मिला तो भक्ति क्या? मगर जरूरी अंग है। गौणी-भक्ति में उपचार है, विधि-विधान है, पूजा-प्रार्थना, आराधना है। गौणी-भक्ति में द्वैत है। भक्त और भगवान दूर हैं, बीच में बड़ा फासला है। अभी सेतु भी नहीं बना। लेकिन भक्त ने इस किनारे से उस किनारे को पुकारना शुरू किया है। आवाज उसकी पहुंचती भी है या नहीं, यह भी कुछ पता नहीं। पहुंचेगी भी या नहीं, यह भी कुछ पता नहीं। वहां कोई है भी दूसरे किनारे पर सुनने को, यह भी पता नहीं। दूसरा किनारा होता भी है, यह भी पता नहीं। जिसमें इतना साहस हो, इतनी श्रद्धा हो... हजार संदेह खड़े होंगेः क्यों समय व्यर्थ करते हो? किसे पुकार रहे हो? आकाश चुप मालूम होता है, उत्तर तो आता नहीं। उस किनारे से कोई इशारा तो मिलता नहीं। हजार संदेह उठेंगे, स्वाभाविक है। इतनी श्रद्धा चाहिए कि तुम उन संदेहों को पार कर जाओ। इतनी श्रद्धा चाहिए कि उन संदेहों के बावजूद तुम आगे बढ़ जाओ।
यह श्रद्धा कहां से आएगी?
इसलिए शांडिल्य ने कहा हैः यह श्रद्धा गुरु से मिलेगी। यह गुरु के पास मिलेगी। अगर तुम्हें कोई ऐसा व्यक्ति मिल जाए जो उस किनारे खड़ा है, या उस किनारे से आया है, जिसने उस किनारे को जाना है, जिसके आस-पास उस किनारे की कुछ हवा है, और जिसकी आंखों में उस किनारे की कुछ झलक है, और जिसका हाथ छुओ तो उस किनारे से जुड़ जाते हो, और जिसमें झांको तो आकाश के द्वार खुल जाते हैं। ऐसा व्यक्ति न मिले, तब तक मरुस्थल में भटकना होता है। गुरु का अर्थ हैः मरुस्थल में तुम्हें कोई मरूद्यान मिल गया। अज्ञानियों की भीड़ में तुम्हें कोई जागा पुरुष मिल गया। सोए हुए लोगों में तुम्हें कोई मिल गया जो सोया हुआ नहीं है।
सोया हुआ जो नहीं है वही तुम्हें जगा सकेगा। शास्त्रों से काम नहीं चलने का। शास्त्र तो कमजोर पकड़ लेते हैं। कायर शास्त्रों को पकड़ लेते हैं। साहसी शास्ता को खोजते हैं--जिसके भीतर अभी शास्त्र का जन्म हो रहा हो, जिसके भीतर उस दूर के प्रकाश की किरण उतर रही हो, अभी नाचती हो, अभी जीवंत हो, अभी धड़कती हो, अभी श्वास लेती हो--ऐसे व्यक्ति के पास ही श्रद्धा का आविर्भाव होता है। फिर इसी श्रद्धा के सहारे तो परमात्मा की तरफ जाना है।
इसलिए गुरु पाथेय है। बिना गुरु के पाथेय को पकड़े हुए तुम जा न सकोगे। यात्रा बहुत खतरनाक है। बड़े से बड़ा खतरा तो यही है कि तुम जाओगे कहां? किस दिशा में खोजोगे? कैसे खोजोगे? तुम अपने से इतने ग्रसित हो! और तुम्हारा सारा अतीत अज्ञान का है, तुम्हारा सारा अतीत गलत आदतों से भरा है, उन्हीं आदतों को सिर पर लिए जाओगे, वे आदतें तुम्हें वापस-वापस अतीत की तरफ मोड़ती रहेंगी।
आदतों का एक नियम है कि वे पुनरुक्त होना चाहती हैं। तुमने कल शराब पी थी, आदत आज भी कहेगी--पीओ। तुमने कल गाली दी थी, आदत आज भी कहेगी--दो। तुमने जो कल किया था, और-और अतीत में किया था, वह सब दोहरना चाहता है। कोई भी आदत आसानी से नहीं छूट जाती। और ध्यान रखना, तुम्हारे पास आदतों के सिवाय कुछ

भी नहीं है; तुम्हारे पास अतीत के सिवाय कुछ भी नहीं है, भविष्य तुम्हारे पास नहीं है। ऐसे किसी व्यक्ति को खोज लेना जिसके पास भविष्य हो। उसके साथ जुड़ोगे तो द्वार खुलेगा, क्योंकि भविष्य द्वार है। उसके साथ जुड़ोगे तो धीरे-धीरे भरोसा बढ़ेगा, धीरे-धीरे उसकी तरंगें तुम्हारे हृदय की भी बंद कलियों को खोलेंगी। उसकी हवाएं तुम्हारे भीतर प्रवेश करेंगी; तुम्हारे वृक्षों को स्पर्श करेंगी, तुम्हारे वृक्षों में से दौड़ेंगी, तुम्हारी धूल झाड़ेंगी, तुम्हारे सूखे पत्ते गिराएंगी, तुम्हारी पुरानी आदतों को उखाड़ेंगी; और धीरे-धीरे तुम्हारे भीतर भी नये पत्ते ऊगने शुरू हो जाएंगे। तुम समर्थ हो, सिर्फ तुम्हें अपने सामर्थ्य का पता नहीं है।
पहली को शांडिल्य ने कहा गौणी-भक्ति। लेकिन गौणी से तुम यह अर्थ मत ले लेना कि उसका कोई मूल्य नहीं है। क्योंकि उसके बिना पराभक्ति होगी ही नहीं। गौणी उसे इसलिए कहते हैं कि उस पर रुक मत जाना, ध्यान रखना। श्रद्धा पर रुक नहीं जाना है, गुरु पर रुक नहीं जाना है; गुरु से पार होना है। लेकिन दुनिया में दो तरह के नासमझ हैं। एक हैं जो कहते हैंः जब गुरु
से पार ही होना है तो फिर गुरु से जुड़ें ही क्यों? और दूसरे हैं जो कहते हैंः जब गुरु से जुड़ना ही है और गुरु के बिना मिलन होगा ही नहीं, तो जुड़ गए, अब छूटें क्यों? ये दोनों नासमझ हैं। गुरु तो सीढ़ी है। एक दिन उसे पकड़ना पड़ता है, एक दिन उसे छोड़ देना पड़ता है। तो ही तो सीढ़ी का उपयोग हो पाएगा। चढ़ भी गए सीढ़ी से और आखिरी सोपान पर जाकर सीढ़ी को पकड़ कर बैठ रहे, तो सार क्या हुआ? सीढ़ी तो गंतव्य नहीं है।
तो कुछ हैं जो अपने अहंकार के कारण गुरु को नहीं पकड़ पाते, और कुछ हैं
जो अपने लोभ के कारण गुरु को पकड़ तो लेते हैं लेकिन छोड़ नहीं पाते। लोभ और अहंकार, दो बातों से सावधान रहना।
गौणी इसीलिए कहा है कि यह अंत नहीं है, यात्रा का प्रारंभ है। अनिवार्य प्रारंभ है। इससे बचा नहीं जा सकता है।
"गौणी-भक्ति में भजन और सेवा।"
भजन उसका, जिससे अभी मिलन नहीं हुआ, जिससे अभी पहचान नहीं हुई। उसकी पुकार! पुकारो-पुकारो, तो एक दिन जरूर यह अस्तित्व उत्तर देता है। यह अस्तित्व बहरा नहीं है। यह अस्तित्व संवेदनशील है। लेकिन तुम्हारी पुकार हार्दिक होनी चाहिए। तुम पुकारते हो और कोई नहीं सुनता--उसका सिर्फ इतना ही अर्थ है कि तुम्हारी पुकार के पीछे तुम्हारा हृदय नहीं धड़कता था। और कुछ अर्थ नहीं है। इससे यह मत सोच लेना कि वहां कोई उत्तर देने वाला नहीं है। उत्तर तो दिया जाएगा, लेकिन अभी तुम उत्तर के योग्य नहीं। अभी तुमने प्रश्न भी ठीक से नहीं पूछा, तुम्हारा प्रश्न भी उधार है, तुम्हारा प्रश्न भी अपना नहीं है, तुम्हारे प्रश्न में भी प्राण नहीं हैं, तुम्हारा प्रश्न कचरा है। कचरा प्रश्नों के उत्तर नहीं आते अस्तित्व से।
लेकिन जब भी तुम ऐसा कोई प्रश्न पूछोगे, जिस पर तुम अपने जीवन को लगाने को तैयार हो; जब तुम कोई ऐसा प्रश्न पूछोगे, ऐसी पुकार करोगे कि तुम उस पर सब निछावर करने की तैयारी रखते हो, तुम कीमत चुकाने के लिए राजी हो, तुम मुफ्त उत्तर नहीं पाना चाहते और जो भी मांगा जाएगा, जो भी शर्त होगी, पूरी करोगे--चाहे जीवन ही क्यों न देना पड़े--उसी दिन तुम उत्तर पाओगे। उसी दिन तुम पाओगे, सारा अस्तित्व जो कल तक बहरा मालूम पड़ता था, बहरा नहीं है। वृक्ष बोलने लगे, तारे बोलने लगे, पत्थर-पहाड़ बोलने लगे। अचानक तुम पाओगे, तुम एक दूसरे जगत में प्रवेश कर गए, एक संवेदनशील जगत का जन्म हुआ। कुछ भी नहीं हुआ, जगत वही का वही है, सिर्फ तुम्हारी संवेदना जग गई; तुम्हारी संवेदना के स्रोत खुल गए; तुम्हारा हृदय अनुभव करने लगा।

मेरी तो हर सांस मुखर है, प्रिय, तेरे सब मौन संदेशे
एक लहर उठ-उठ कर फिर-फिर
ललक-ललक तट तक जाती है,
किंतु उदासीना युग-युग से
भाव-भरी तट की छाती है,
भाव-भरी यह चाहे तट भी

कभी बढ़े, तो अनुचित क्या है?
मेरी तो हर सांस मुखर है, प्रिय, तेरे सब मौन संदेशे

भक्त ऐसा अनुभव करेगा।
मेरी तो हर सांस मुखर है...
पुकारेगा, आवाज देगा, और वहां से कोई उत्तर न पाएगा।
मेरी तो हर सांस मुखर है, प्रिय, तेरे सब मौन संदेशे
एक लहर उठ-उठ कर फिर-फिर
ललक-ललक तट तक जाती है,
किंतु उदासीना युग-युग से
भाव-भरी तट की छाती है,
तुम्हारी छाती उदासीन है। लहर आती भी है उस तरफ से, तो तुम पकड़ नहीं पाते। तुम्हारी आंखें अंधी हैं। उस तरफ से हाथ बढ़ता भी है आशीर्वाद बरसाने को, तो तुम देख नहीं पाते। तुम कुछ का कुछ देख लेते हो। तुम कुछ का कुछ समझ लेते हो। तुम्हारी समझ ही बाधा बन रही है। तुम नासमझ हो जाओ, तुम अपनी सारी समझ छोड़ दो, तो शायद समझ भी जाओ। लेकिन तुम्हारा पांडित्य, तुम्हारा ज्ञान, तुम्हारी व्याख्याएं, तुम्हारी टीकाएं, तुम्हारे शास्त्र; तुमने जो सीखा, पढ़ा, गुना है--वह सब बीच में बाधा बन जाता है। उस सबको पार करके प्रभु की आवाज तुम तक नहीं पहुंच पाती।
मेरी तो हर सांस मुखर है, प्रिय, तेरे सब मौन संदेशे
परमात्मा मौन नहीं है, परमात्मा प्रतिपल बोल रहा है। उसके बोलने के ढंग और हैं। कभी-कभी मौन से भी बोलता है, मौन उसकी भाषा है। लेकिन बोलता है, निश्चित बोलता है।

बंद कपाटों पर जा-जा कर
जो फिर-फिर सांकल खटकाए,
और न उत्तर पाए, उसकी
लाज-व्यथा को कौन बताए,
पर अपमान पिए पग फिर भी
उस ड्योढ़ी पर जाकर ठहरें,
क्या तुझमें ऐसा जो तुझसे मेरे तन-मन-प्राण बंधे से
मेरी तो हर सांस मुखर है, प्रिय, तेरे सब मौन संदेशे

फिर भी भक्त पुकारता रहता है। हारता है और पुकारता है। जल्दी सफलता नहीं मिलती है। इसलिए जो जल्दबाजी में हैं वे परमात्मा से वंचित रह जाते हैं। यह हमारी सदी अगर परमात्मा से वंचित है तो उसका और कोई कारण नहीं है; न तो पाप बढ़ा है, न लोग भ्रष्ट हुए हैं, न नास्तिकता फैल गई है। अगर कोई एक चीज बढ़ी है तो वह जल्दबाजी बढ़ी है। आदमी तत्क्षण चाहता है। प्रतीक्षा की क्षमता चुक गई है। घड़ी भर भी राह देखने को कोई तैयार नहीं।
बंद कपाटों पर जा-जा कर
जो फिर-फिर सांकल खटकाए,
और न उत्तर पाए, उसकी
लाज-व्यथा को कौन बताए,
बहुत बार होगा। सांकल खटखटाओगे, कोई उत्तर न आएगा। बार-बार लौट आओगे-- थके, उदास, हारे, पराजित। प्रतीक्षा चाहिए ही। जब हारे लौट आओ, तो ऐसा मत सोचना कि परमात्मा नहीं है; और ऐसा भी मत सोचना कि परमात्मा कठोर है; और ऐसा भी मत सोचना कि परमात्मा संवेदनशून्य है। इतना ही जानना कि अभी मेरी पुकार पूरी नहीं; अभी मेरी प्यास अधूरी है। अभी मैंने द्वार तो खटखटाया था, लेकिन पूरे प्राण खटखटाने में संयुक्त न हुए थे। ऐसे डरते-डरते खटखटाया था। सोचा था, शायद हो--इस तरह खटकाया था। श्रद्धा पूरी न थी। मेरे संदेह ही बाधा बन गए।

जाहिर और अजाहिर दोनों

विधि मैंने तुझको आराधा,
रात चढ़ाए आंसू, दिन में
राग रिझाने को स्वर साधा,
मेरे उर में चुभती प्रतिध्वनि
आ मेरी ही तीर सरीखी
पीर बनी थी गीत कभी, अब गीत हृदय के पीर बने से
मेरी तो हर सांस मुखर है, प्रिय, तेरे सब मौन संदेशे

प्रारंभ में ऐसा होगा। लगेगा तुम किसी पत्थर से बातें कर रहे हो। मगर अगर बातें करते ही रहे, तो पत्थर पिघले हैं, तुम्हारे लिए भी पिघलेंगे। थकना मत, चोट किए जाना। किसी को भी पता नहीं है, किस चोट पर द्वार खुल जाएगा। द्वार खुलता है, इतना पक्का है। औरों के लिए खुला है, तुम्हारे लिए भी खुलेगा। मगर किस चोट पर खुलता है, कोई भी नहीं कह सकता। कितनी प्रार्थनाएं संयुक्त हो जाती हैं तब हृदय इस योग्य होता है, कोई भी नहीं कह सकता। फिर प्रत्येक व्यक्ति अलग-अलग है।
पुकारो! नये-नये रास्ते खोजो पुकारने के। शब्द से पुकारो, मौन से पुकारो; आंसुओं से पुकारो, नृत्य से पुकारो, पुकारो! नये-नये मार्ग खोजो पुकारने के। एक हारे तो दूसरा तलाशो। थको मत! हारो मत! जीत सुनिश्चित है। देर हो सकती है, अंधेर नहीं है।

क्या गाऊं जो मैं तेरे मन को भा जाऊं
नये-नये गीत गाओ। एक गीत सफल न हो, दूसरा गीत गाओ। एक द्वार न खुले, दूसरा द्वार खटखटाओ। उसके द्वार अनंत हैं।

क्या गाऊं जो मैं तेरे मन को भा जाऊं
प्राची के वातायन पर चढ़
प्रात किरण ने गाया,
लहर-लहर ने ली अंगड़ाई
बंद कमल खिल आया,
मेरी मुस्कानों से मेरा
मुख न हुआ उजियाला
आशा के मैं क्या तुझको राग सुनाऊं
क्या गाऊं जो मैं तेरे मन को भा जाऊं
कमल खिल जाता है, तुम क्यों न खिलोगे? कली फूल बन जाती है, तुम क्यों न बनोगे? पक्षी गा उठते हैं, तुम क्यों न गा उठोगे? अपने पर थोड़ी श्रद्धा चाहिए।
और बड़ी हानि हुई है कि जिनसे तुमने सोचा था तुम्हें श्रद्धा मिलेगी, उनसे सिर्फ तुम्हें स्वयं के प्रति अपमान मिला है। तुम्हारे धर्मगुरु, तुम्हारे पंडित-पुरोहित, तुम्हारे तथाकथित साधु-संत अगर कोई एक बात तुम्हें पकड़ा दिए हैं, तो वह तुम्हारे प्रति निंदा का भाव है। तुम्हें उन्होंने गर्हित घोषित कर दिया है। तुम अपात्र हो, पापी हो और तुम सदा ऐसे ही रहने वाले हो--ऐसी धारणा तुम्हारे चित्त में बिठा दी है। उन्होंने तुम्हें इतना क्षुद्र कर दिया है कि तुम अब विराट की तरफ आंखें उठाने में समर्थ नहीं रह गए। तुम आंखें झुकाए जमीन में गड़े-गड़े चल रहे हो।
प्राची के वातायन पर चढ़
प्रात किरण ने गाया,
लहर-लहर ने ली अंगड़ाई
बंद कमल खिल आया,
तुम भी खिलोगे। सुबह की किरण तुम्हें भी जगा सकती है। लेकिन थोड़ा आत्म-सम्मान सम्हालो। तुम फूलों से गए-बीते नहीं हो। कौन कमल तुमसे ज्यादा मूल्यवान है? तुम सहस्रार हो, तुम्हारे भीतर सहस्रदल कमल है। तुम्हारी झील में जो कमल खिल रहा है, वैसा किसी झील में न कभी खिला है, न

खिल सकता है। झीलों के कमल साधारण हैं। तुम्हारे भीतर चेतना का कमल खिलने को तत्पर बैठा है।
लेकिन अगर एक मार्ग से हार जाओ तो हताश मत हो जाना।

पकी बाल, बिकसे सुमनों
से लिपटी शबनम सोती,
धरती का यह गीत, निछावर
जिस पर हीरा-मोती
सरस बनाना था जिसको
वे हाय, गए कर गीले,
कैसे आंसू से भीगे साज सजाऊं
क्या गाऊं जो मैं तेरे मन को भा जाऊं

पूछो! खोजो!! तलाशो!!!

क्या गाऊं जो मैं तेरे मन को भा जाऊं

सौरभ के बोझे से अपनी
चाल समीरण साधे,
कुछ न कहो इस वक्त उसे,
वह स्वर्ग उठाए कांधे,
बंधी हुई मेरी कुछ सांसों
से भी मीठी सुधियां,
जो बीत चुकी क्या उसकी याद दिलाऊं
क्या गाऊं जो मैं तेरे मन को भा जाऊं

छोड़ो अतीत को। जो बीता, बीता! अनबीते को तलाशो। जो हुआ, हुआ। अनहुए को तलाशो। और अनहुआ बड़ा है। हुआ तो बहुत क्षुद्र है। तुम जो रहे हो वह तो ना- कुछ है, तुम जो हो सकते हो वह सब कुछ है। तुम्हारा भविष्य विराट है। तुम अतीत के बोझ से अपने को दबा मत लो। तुम छोटी-छोटी बातों में मत पड़ जाओ। लोग छोटे-छोटे अपराधों से दब गए हैं। पंडितों ने, पुरोहितों ने, संतों
ने तुम्हें इतने अपराधों से भर दिया है कि तुम यह मान ही नहीं सकते कि मेरा और प्रभु से मिलन हो सकता है। तुमने यह स्वीकार ही कर लिया है कि तुम अंधेरे के कीड़े हो और अंधेरे में ही जीओगे, प्रकाश से तुम्हारा मिलन नहीं हो सकता। इसीलिए प्रकाश से मिलन नहीं हो रहा है। यह सबसे बड़ी दुर्घटना है जो मनुष्य के जीवन में घटी है।
अब चाहिए ऐसा धर्म जो लोगों को भरोसा दिलाए कि तुमने जो किया है, वह कुछ भी नहीं है। तुम्हारा होना तुम्हारे किए से अछूता है। तुम्हारे पाप और पुण्य सब सपने हैं। तुमने जो बुरा किया, भला किया, उसका कोई बड़ा मूल्य नहीं है। तुम जो हो सकते हो, उसका मूल्य है। और तुम्हारे भीतर परम मूल्यवान बैठा है। तुम्हारा कोई कृत्य उसे दूषित नहीं कर पाया है।
कबीर ने कहा हैः ज्यों की त्यों धरि दीन्हीं चदरिया।
मैं तुमसे कहता हूं कि तुम्हारी चादर भी वैसी की वैसी है। इसमें कुछ कबीर ने किया नहीं था कि जैसी की तैसी चदरिया रख दी। चदरिया मैली होती ही नहीं। यह चदरिया तुम्हारे भीतर जो है, ऐसी है, मैला होना इसका गुण नहीं।
तुम कितनी ही अंधेरी रातों से गुजरे होओ, तुम्हारी चादर में अंधेरा नहीं चिपक जाता है। और तुम कितने ही नरकों से गुजर गए होओ, तुम्हारी चादर का स्वर्ग सदा सुरक्षित है।
तुम अतीत को देखते हो तो अपराध के भाव से दब जाते हो। भविष्य को देखो।
संभावना को देखो। वास्तविक का कोई मूल्य नहीं है, जो हो सकता है उसे देखो।
तब तुम्हारे भीतर उमंग उठेगी। वही उमंग भजन बनती है।
"भजन और सेवा।"

सेवा का क्या अर्थ है? शांडिल्य के सूत्रों पर जिन्होंने टीकाएं लिखी हैं, उन्होंने लिखा है--सेवा का अर्थ हैः मंदिर में भगवान की जो मूर्ति है उसकी सेवा। यह झूठा अर्थ है। मूर्ति को सेवा की कोई जरूरत नहीं है। तुम नाहक समय खराब कर रहे हो। जीवित परमात्मा चारों तरफ मौजूद है, सेवा करनी हो इसकी करो।
मैं तुमसे यह कहना चाहता हूंः जब तुम अपने बच्चे की सेवा कर रहे हो, अपनी पत्नी की, अपने पति की, अपने पिता की, अपनी मां की, अपने पड़ोसी की, अपनी गाय की, अपने घोड़े की, अपने पौधे की--तब तुम परमात्मा की सेवा कर रहे हो। मंदिर की मूर्ति ने तुम्हें खूब धोखा दे दिया। वह सस्ती सेवा है। और मंदिर की मूर्ति को तुम जानते हो कि पत्थर है; इसलिए सेवा भी कर आते हो और भीतर तुम जानते हो--पत्थर पत्थर है। इसे झुठलाओगे कैसे? इसलिए तुम्हारी सेवा कभी भी हार्दिक नहीं हो पाती।
जीवंत चारों तरफ मौजूद है, तुम कहां जा रहे? किस मंदिर में? किस मस्जिद में? किस मूर्ति की तलाश कर रहे हो? परमात्मा तुम्हारे घर आया हुआ है और तुम मंदिर जा रहे हो? परमात्मा तुम्हारे बेटे में मौजूद है, तुम्हारी मां में, तुम्हारे पिता में, तुम्हारी पत्नी में। लेकिन नहीं, पत्नी, पिता, मां, बेटा--यह तो जंजाल है, यह तो माया है। यह बड़े मजे की बात है, यह माया है और वह पत्थर की मूर्ति जो मंदिर में रखी है, वह सत्य है! आदमी कैसे धोखे खड़े कर लेता है! जीवंत झूठा है और मुर्दा सच है। और वह मुर्दा भी इन्हीं जीवंतों ने बनाया है; किसी मूर्तिकार ने गढ़ा है; किसी पुजारी ने फूल चढ़ाए हैं। इन मुर्दों के द्वारा, इन झूठों के द्वारा बनाया गया परमात्मा सच हो गया है, और बनाने वाले झूठ हो गए हैं।
नहीं, मैं तुम्हें सेवा का वही अर्थ देना चाहता हूं जो शांडिल्य का रहा होगा। भजन करो, खोजो, गीत गाओ, पूछो कि मैं किस तरह गाऊं कि तुझे लुभा लूं, कि तुझे भा जाऊं? नये नृत्य सीखो। नये ध्यान सीखो। और चारों तरफ जो परमात्मा मौजूद है, इसकी सेवा में लग जाओ।
यह गौणी-भक्ति है।
"और यह गौणी-भक्ति पराभक्ति की भित्तिरूप है।"
और जिसने गौणी को न साधा, वह पराभक्ति को न साध सकेगा। यह बुनियाद है, भित्ति है। इसी बुनियाद पर यह मंदिर उठेगा। पराभक्ति का अर्थ होता हैः वहां भजन भी खो जाएगा; वहां वार्ता बंद हो जाएगी; वहां सन्नाटा हो जाएगा। वहां अंततः भक्त भी खो जाएगा, भगवान भी खो जाएगा; वहां द्वैत खो जाएगा, वहां एक ही बचेगा। इतना एक कि उसको एक भी न कह सकेंगे हम। क्योंकि एक कहो तो दो का भाव पैदा होता है। वहां जो बचेगा उसको शब्द न दिया जा सकेगा। अनिर्वचनीय होगा वह। अव्याख्य होगा। उसकी कोई शब्द में परिभाषा नहीं होगी। न तो वहां बचेगा जानने वाला और न जाना जाने वाला। एक शून्य विराजमान होगा, और उस शून्य में पूर्ण का नृत्य होगा।
वह अलौकिक है। उसकी अलौकिकता की घोषणा के लिए उसको "परा" कहा है। वह पार और पार! वह हमारे सारे अनुभवों का अतिक्रमण कर जाता है। हमारा कोई अनुभव उसके संबंध में सूचना नहीं दे सकता। हमने अब तक जो जाना है, जो अनुभव किया है, वह सब उसके सामने व्यर्थ हो जाता है। हमारी भाषा पंगु होकर गिर जाती है। हमारी बुद्धि अवाक होकर ठिठक जाती है। हमारा हृदय नहीं धड़कता। वहां अपूर्व सन्नाटा है। उस पराभक्ति को पाने के लिए गौणी-भक्ति केवल भित्तिरूप है।
गौणी-भक्ति पर रुक मत जाना। गौणी-भक्ति से गुजरना जरूर है, मगर गुजर जाना है।
अब दो तरह के लोग हैं। अधिक लोग गौणी-भक्ति में उलझे रह गए हैं। वे भजन-कीर्तन ही करते रहते हैं। वे पराभक्ति की बात ही भूल गए हैं। उन्होंने मंदिर की बुनियाद तो भर ली है, लेकिन बुनियाद भरने में ही इतने मस्त हो गए हैं कि उन्होंने मंदिर उठाना है, मंदिर उठाया जाना है, इसकी बात ही विस्मृत कर दी है। बस अपनी बुनियाद भरे बैठे हैं! उसी बुनियाद की पूजा कर रहे हैं! मंदिरों में मूर्तियों की जो पूजा में लगे हैं, वे बुनियाद में ही उलझे हैं। एक तो इस तरह के लोग हैं, जो गौणी-भक्ति में ही उलझ कर रह गए हैं।

गौणी-भक्ति उनके लिए पराभक्ति का आधार नहीं बनी, पराभक्ति के लिए अवरोध बन गई है। और दूसरे कुछ ऐसे लोग हैं, जो जरा सोच-विचार वाले हैं, जिनमें बुद्धि की थोड़ी प्रखरता है, वे कहते हैं, गौणी में हम जाएं क्यों? हम सीधे परा में जा रहे हैं। वे वेदांत की बड़ी ऊंची चर्चा करते हैं, अद्वैत की बातें करते हैं। लेकिन उनकी बातें फिजूल हैं। वे मंदिर उठाने की बातें करते हैं, मंदिर के शिखर की बातें करते हैं, स्वर्ण-शिखरों की चर्चा करते हैं, लेकिन बुनियाद नहीं रखी गई है।
तुम दोनों का ध्यान रखना। दोनों को साधने से बात सधेगी। और मजा ऐसा है
कि दोनों ही आधे-आधे सही हैं। लेकिन आधा सत्य झूठ ही है। आधे सत्य का कोई मतलब नहीं होता। और आधा सत्य अक्सर तो झूठ से भी खतरनाक होता है। क्योंकि झूठ तो किसी दिन पकड़ में आ जाएगा कि झूठ है, तो छोड़ दोगे, आधा सत्य कभी पकड़ में न आएगा कि झूठ है। क्योंकि उसका आधा सत्य तो मौजूद है। वह आधा सत्य तुम्हें लुभाए रखेगा। वह आधा सत्य तुम्हें भरमाए रखेगा। वह आधा सत्य कहेगा, कौन जाने पूरा भी छिपा हो! और दोनों आधे सत्य हैं।
तो एक तो साधारण आदमी है, जो मंदिर पूजा कर आता है, कभी घर में फूल लगा देता है भगवान को, धूप-दीप जला देता है, और सोचता है कि बात पूरी हो गई। और फिर एक पंडित है, वह जो वेदांत की चर्चा करता रहता है; वह समझता है, चर्चा करने से बात पूरी हो गई।
दोनों को जीवन में आने दो। गौणी को आधार बनाओ। और गौणी का भी मजा है, चूकने जैसा नहीं है। और गौणी का भी बहुत सा काम है, जो नहीं हो पाएगा तो परा असंभव है।
गौणी-भक्ति में तुम किसी को देखोगे तो तुम्हारा मन होगा कहने का कि पागल है। कोई आदमी एकांत में बैठा भगवान से बातें कर रहा है, तो तुम पागल ही कहोगे न! वहां कोई भी तो नहीं है। इसी तरह तो पागल बातें करते रहते हैं; कोई भी नहीं है और बातें करते रहते हैं। और यह आदमी भी बातें कर रहा है, और कोई दिखाई तो पड़ता नहीं।
तुम्हें दिखाई नहीं पड़ता! ऐसे निष्कर्ष मत लेना। ऐसे निष्कर्ष घातक हैं। ऐसे निष्कर्षों से उस आदमी का कोई नुकसान नहीं होता, तुम्हारा नुकसान हो रहा है। क्योंकि ऐसे निष्कर्षों के कारण अगर तुमने यह सोचा कि यह पागलपन है, तो तुम कभी इस दिशा में द्वार न खटखटाओगे। और वहीं से मार्ग जाता है।
सुनते ही मुस्कुरा उठी गुलशन में हर कली
बादे-सबा ने उससे खुदा जाने क्या कहा
जब तक तुम भी कली की तरह मुस्कुराओगे न, खिलोगे न, तब तक तुम जान भी न पाओगे कि सुबह की हवा क्या कह जाती है कली को कि कली एकदम मुस्कुराने लगती है, कि कली के ओंठों पर एकदम मुस्कुराहट फैल जाती है! तुम्हें हवा तो दिखाई नहीं पड़ती, हवा का संदेश भी समझ में नहीं आता। उस संदेश को समझने के लिए कली होना जरूरी है। उसके बिना कोई उपाय नहीं। कली ही जानती है उस भाषा को। कली ही खोल पाती है उस राज को जो हवा उसके कानों में गुनगुना जाती है। तुम तो बाहर से खड़े हो। पत्थर की तरह तुम देख रहे हो, चट्टान की तरह तुम पड़े हो। तुम्हें चौंकना होगा ही, तुम्हें विस्मय होगा ही--पता नहीं क्या मामला चल रहा है! यह कली क्यों हंसने लगी? पागल होगी!
अगर भक्त को तुम मुस्कुराते देखोगे, अगर भक्त को तुम हंसते देखोगे, खिलखिलाते देखोगे, भक्त को रोते देखोगे, तो तुम्हें बड़ी अड़चन होगी। सुनते ही मुस्कुरा उठी गुलशन में हर कली
बादे-सबा ने उससे खुदा जाने क्या कहा
तुम यही सोचोगे, पागल हो गया यह व्यक्ति। गौणी-भक्ति में स्थिति पागल जैसी हो जाती है। और तुम उससे पूछोगे कि क्या तुझे हुआ है, तो जैसे कली चुप रह जाती है वैसे वह भी चुप रह जाएगा। क्योंकि जो उसे हो रहा है वह कुछ ऐसा है, कहे तो कैसे कहे! और कहता है तो सदा पाता है कि जो कहा, वह गलत हो गया; कहते ही गलत हो गया। जो कहना चाहा था, वह पीछे ही छूट गया; कुछ का कुछ कह दिया। इसलिए चुप रह जाता है।
सवाल सुनके किसी ने जवाब तक न दिया

तेरी गली में हर एक बेजुबां लगे है मुझे
उसकी गली में जो प्रवेश किया, वह बेजुबां हो जाता है। तुम पूछोगे भी किसी से तो लोग हंसेंगे, वे कहेंगे, तुम भी चखो; तुम भी गुनो; तुम भी आओ, हमारे साथ बैठ जाओ!
जीसस से उनके शिष्यों ने एक दिन पूछा कि हम प्रार्थना कैसे करें? जीसस
ने कहा, देखो! वे घुटनों पर झुक गए। उन्होंने आकाश की तरफ उठा ली आंखें और प्रार्थना में लीन हो गए। उनकी आंख से आंसू झरने लगे। मगर शिष्य तो खड़े हैं, वे समझ ही नहीं पा रहे हैं कि यह मामला क्या है! हमने पूछा, प्रार्थना कैसे करें? हमने यह थोड़े ही कहा कि तुम प्रार्थना करके बताओ। हमने तो पूछा था, हम कैसे करें, हमें बताओ। इससे तो कुछ हल नहीं होता।
और जब जीसस प्रार्थना से उठे--वह स्निग्ध, सद्यःस्नात रूप, वे सुंदर आंखें; आंसू धो गए उन आंखों को, वह कोमल भाव, वह पारलौकिक आभा! उन्होंने फिर पूछा कि इससे कुछ हल नहीं होता। हमने यह नहीं कहा था, आप प्रार्थना करो; हमने कहा था, हम प्रार्थना कैसे करें? जीसस ने कहाः बस मैं प्रार्थना करके बता सकता हूं। तुम भी ऐसे ही करो; और कुछ भी नहीं कहा जा सकता।
प्रार्थना करने वाले से प्रार्थना सीख लो। प्रार्थना करने वाले के पास बैठ-बैठ कर तुम भी प्रार्थना में धीरे-धीरे डूबो, डुबकी लगाओ। प्रार्थना को संक्रामक होने दो। अन्यथा--
तेरी गली में हर एक बेजुबां लगे है मुझे
वहां कुछ कोई बताने वाला नहीं मिलेगा। भक्ति के मार्ग पर जो गया है,
वह धीरे-धीरे बेजुबां हो जाता है।
और भक्त चाहता भी नहीं कि बुद्धि की बकवास में पड़े। क्योंकि भक्त को
एक अनुभव रोज-रोज होने लगता हैः जब भी वह बुद्धि के खेल में पड़ता है, तभी उसकी प्रार्थना टूट जाती है, खंडित हो जाती है। जब भी वह बुद्धि के जाल में उलझ जाता है, तभी परमात्मा से दूर पड़ जाता है। फिर प्रार्थना पुकारे- पुकारे नहीं उठती, बुलाए-बुलाए नहीं आती। फिर बड़ी मेहनत करनी पड़ती है, तब कहीं प्रार्थना खुलती है। क्योंकि प्रार्थना और बुद्धि बड़े अलग केंद्र हैं। प्रार्थना उठती है हृदय से, बुद्धि चलती है सिर में। सिर को प्रार्थना का कोई पता नहीं है, हृदय को तर्क का कोई पता नहीं है।
इसलिए अगर तुम भक्त से पूछोगे भी कि तू यह क्या करता है, क्या है तेरा भजन, तो वह चुप रहेगा, मुस्कुराएगा, हंसेगा, इधर-उधर की बातें करेगा, लेकिन भजन के संबंध में कुछ कहेगा नहीं। ज्यादा होगा तो भजन गाकर सुना देगा। वही जीसस ने किया।
खुदा करे कि न टूटे तिलिस्मे-जौके-नजर
जुनूं पे अक्ल अगर छा गई तो क्या होगा
वह चाहता नहीं है कि उसकी मस्ती टूट जाए। और मस्ती में कहीं बुद्धिमत्ता छा गई तो फिर क्या होगा? क्योंकि ये दोनों बातें बड़ी विपरीत हैं। बुद्धिमान मस्त नहीं हो पाता, और मस्त को सब बुद्धिमानी छोड़ देनी पड़ती है। मगर यही तो मैं तुमसे कहना चाहता हूंः इस जगत में बुद्धिमानी जो छोड़ दे, वही बड़े से बड़ा बुद्धिमान है।
क्या है भजन? बहुत सी बातें हैं भजन--हृदय का भाव है; आंसुओं की वर्षा है; पैरों का नृत्य है। मगर जानोगे तो ही। नाचोगे तो पता चलेगा, नाच क्या है। नाचने वाले को नाचते देख कर भी तुम बाहर ही बाहर हो, तुम्हें वह तो कभी पता नहीं चल सकता जो नाचने वाले को पता चल रहा है। तुम ज्यादा से ज्यादा भाव-भंगिमाएं देख लोगे बाहर से।
यहां लोग आ जाते हैं कुछ दर्शकों की भांति। जो दर्शक की भांति यहां आता है, वह बड़ा मूढ़ है। मेरे पास आकर वे कहते हैं कि यह मामला क्या है? लोग नाचते हैं, गाते हैं, शोरगुल मचाते हैं, इससे क्या होगा? उसकी भी बात ठीक है। बाहर से देखेगा तो उसे लगेगा, इससे क्या होगा? दूर से खड़े होकर देखेगा तो उसे लगेगा, यह सब पागलपन है। इसमें बुद्धिमानी कहां है!
इसमें एक और ही तरह की बुद्धिमानी है जिसका तुम्हें अनुभव नहीं है। इसमें मस्ती है, मादकता है। इसकी अपनी शराब है। यह पीने वाले को ही पता है।

तुम जब शराबी को शराब पीते देखते हो तो तुम्हें बाहर से लगता है, क्यों पागल हुआ जा रहा है? ऐसा क्या हो सकता है इसमें? क्यों इतना मस्त हुआ जा रहा है?
पीओगे तो जानोगे। स्वाद के अतिरिक्त अर्थ नहीं खुलता।
भजन क्या है?
ठहरते ही नहीं आंखों में आंसू
चमक कर टूटते हैं आबगीने
क्या है भजन?
आवाज दी है तुमने कि धड़का है दिल मेरा
कुछ खास फर्क तो नहीं दोनों सदाओं में क्या है भजन?
क्या बुझाएंगे अश्क दिल की आग
वो तो खुद आतशीं शरारे हैं
क्या है भजन?
वो दूर से ही हमें देख लें यही है बहुत
मगर कुबूल हमारा सलाम हो जाए
परमात्मा एक दफा देख ले, दूर से सही, अनंत दूरी से सही--क्योंकि उसकी नजर अगर पड़ गई तो सेतु बन गया, फिर दूरी कहां! उसकी नजर से जुड़ गए कि सेतु बन गया।
वो दूर ही से देख लें यही है बहुत
मगर कुबूल हमारा सलाम हो जाए
बस इतना भरोसा आ जाए कि हमने पुकारा था, वह पुकार पहुंच गई, हमारा सलाम स्वीकार हो गया है।
नाचो! गाओ! गुनगुनाओ! बहो! पिघलो! आंसुओं में अमृत है। और जो विरह में डूबेगा, वही मिलन को उपलब्ध होता है। विरह की कीमत चुकानी पड़ती है। रागार्थे प्रकीर्त्तिसाहचर्यात च इतरेषाम्।
"नमस्कार और नाम-कीर्तन आदि अनुराग के अर्थ हैं।"
क्या जरूरत है नमस्कार की और नाम-कीर्तन की? इनसे अनुराग पैदा होता है। इनसे प्रेम उमगता है। जैसे पानी सींचते हो वृक्ष पर तो वृक्ष में नये पल्लव आते हैं, नये फूल खिलते हैं। ऐसा जो प्रेम का पौधा है, उसको भी पानी की जरूरत है। वह भी सूख जाता है अगर पानी न मिले। उसे भी पोषण चाहिए। नाम-संकीर्तन, नमस्कार इत्यादि उसका पोषण है। जब तुम बार-बार झुकते हो परमात्मा की तरफ, झुकते ही चले जाते हो, झुकना ही तुम्हारे जीवन की कला हो जाती है, झुकना तुम्हारा स्वभाव हो जाता है, तो कुछ चीजें तुम्हारे भीतर ऊगेंगी, जो उन्हीं में ऊगती हैं जो झुकना जानते हैं।
अकड़ गई, अकड़ के साथ तुम्हारे जीवन में जो पड़े हुए पत्थर थे वे हटे। अकड़ यानी तुम्हारे मार्ग में पड़े पत्थर। जैसे बीज पत्थर में दबा हो, ऐसी तुम्हारी अकड़ में तुम्हारा बीज दबा है। तुम्हारे अहंकार ने तुम्हारे भीतर छिपे हुए झरने को रोक रखा है, चट्टान की तरह।
झुको! नमस्कार का अर्थ होता हैः झुको। जहां जितने मौके मिल जाएं झुकने के, झुको। झुकने का मौका न खोओ।
तुम देखते हो, यह अकेला देश है सारी दुनिया में, जहां नमस्कार में हम भगवान के नाम का उपयोग करते हैं। दुनिया में कहीं वैसा नहीं है। उसका कारण है। क्यों मौका खोते हो? रास्ते पर एक अजनबी मिल गया, तुमने कहा, राम-राम! तुम क्या कह रहे हो? तुम शायद होश में भी नहीं हो। तुमने तो सिर्फ इसको एक उपचार बना लिया है। लेकिन जिन्होंने खोजी थी बात, बड़े अदभुत लोग थे। तुम यह कह रहे हो कि अजनबी हो तुम भला, मगर भीतर तो तुम राम ही हो। तुम्हें देख कर मैंने फिर राम की याद कर ली। यह मौका क्यों छोडूं? तुम्हें देख कर फिर मैं राम के लिए झुक लिया। यह मौका मैं क्यों छोडूं?
अब इस हिसाब से दुनिया में जो और नमस्कार की विधियां प्रचलित हैं, वे बहुत बचकानी मालूम पड़ती हैं। अंग्रेजी में हम कहते हैं कि शुभप्रभात, गुड मार्निंग! इसका कोई खास मतलब नहीं है। एक शुभाकांक्षा है। लेकिन जब हम कहते हैं जयरामजी, तो हम यह कहते हैंः भगवान की जय हो। तुम्हें देख कर मुझे

भगवान की जय की याद आ गई। तुममें मैंने भगवान को फिर देखा; इस बहाने देखा, इस रूप में भगवान आया। नमस्कार का अर्थ हैः जहां मौका मिल जाए, झुकना। झुकने का कोई मौका मत छोड़ना।
अभी हालत उलटी है। लोग अकड़ने का कोई मौका नहीं छोड़ते हैं। राह पर भी तुम किसी को मिल जाते हो तो तुम देखते हो कि पहले वह नमस्कार करे। तुम कैसे किसी को पहले नमस्कार करो? तुम राह देखते हो, तुम इधर-उधर देखते हो, तुम बहाना करते हो कि मैंने तुम्हें अभी देखा नहीं, कि पहले तुम नमस्कार करो; कि मैं हेड क्लर्क हूं, तुम क्लर्क हो; कि मैं हेड मास्टर, तुम सिर्फ मास्टर, मैं कैसे नमस्कार करूं? कि मैं शिक्षक, तुम विद्यार्थी, मैं कैसे नमस्कार करूं? मैं और तुम्हें हाथ जोडूं!
तुम अकड़े होते हो। अकड़े होते हो, इसलिए चूक रहे हो। अकड़ को जाने दो। नमस्कार का कुल इतना ही अर्थ हैः अकड़ को गलाओ, अकड़ को मिटाओ। जितना बन सके, जहां बन सके, जो चरण भी बहाने बन जाएं वहीं झुक जाओ।
"नमस्कार और नाम-कीर्तन आदि अनुराग के अर्थ हैं।"
अनुराग के लिए हैं, ताकि प्रेम उमगे, ताकि तुम्हारे भीतर प्रेम का पौधा बड़ा हो। क्योंकि प्रेम का पौधा ही बड़ा हो, तो उसी में एक दिन प्रार्थना की सुगंध उठेगी। प्रेम को फैलाओ! कैसे प्रेम फैलेगा? झुकने से फैलता है। अहंकारी आदमी प्रेम नहीं कर सकता। जीवन का साधारण प्रेम भी अहंकारी आदमी नहीं कर सकता, क्योंकि प्रेम के लिए झुकना अनिवार्य शर्त है।
तुम तो प्रेम में भी दूसरे को झुकाने की कोशिश में लगे होते हो। यही पति-पत्नी का संघर्ष है सारी दुनिया में, दोनों एक-दूसरे को झुकाने की कोशिश में लगे होते हैं। पति चाहता है पत्नी को झुका ले, पत्नी चाहती है पति को झुका ले। उनकी सारी कूटनीति, प्रत्यक्ष-परोक्ष में एक ही होती है, कैसे दूसरे को झुका लो। अच्छे-अच्छे बहाने खोजे जाते हैं दूसरे को झुकाने के लिए। पत्नी अपने ढंग से खोजती है; उसके ढंग स्त्रैण होते हैं। लेकिन वह भी झुकाने की तरकीबें खोजती रहती है। स्त्रैण होने के कारण उसके ढंग बड़े परोक्ष होते हैं, प्रत्यक्ष नहीं होते।
पति को अगर पत्नी को झुकाना है तो वह कभी-कभी पत्नी को सीधा मार देता है। पत्नी को अगर पति को झुकाना है तो वह अपने को पीट लेती है। फर्क जरा भी नहीं है। प्रयोजन एक ही है। और निश्चित ही पत्नी ज्यादा जीतती है, क्योंकि परोक्ष, उसके मार्ग सूक्ष्म हैं। पति के जरा आदिम हैं, ज्यादा सुसंस्कृत नहीं हैं, स्त्री का मार्ग ज्यादा सुसंस्कृत है। इसलिए वह जीतती है। उसका मार्ग ज्यादा कोमल है। उसको अगर पति को जीतना है तो वह रोने लगती है। पति को अगर पत्नी पर कोई विरोध हुआ है, तो वह क्रोधित होता है। पत्नी उदास होती है। उदासी क्रोध का छिपा हुआ ढंग है।
यह तुम चकित होओगे जानकर कि उदास आदमी क्रोध को दबा रहा है, इसलिए उदास है। वह दबा हुआ क्रोध है, वह पी गया क्रोध है। लेकिन जब कोई उदास होता है तो दया ज्यादा आती है। कोई क्रोध कर रहा हो तो उससे तो लड़ने की भी सुविधा है, लेकिन कोई क्रोध न कर रहा हो, सिर्फ रो रहा हो, तो उससे कैसे लड़ोगे? इसलिए सौ में निन्यानबे पुरुष हार जाते हैं। जो एकाध जीतता है, वह एकदम बिल्कुल ही हिंस्र प्रकृति का हो तो ही जीत पाता है, एकदम पाशविक वृत्ति का हो तो ही जीत पाता है। नहीं तो सभी हार जाते हैं।
तुमने वह प्रसिद्ध कहानी सुनी है न कि अकबर ने एक दिन अपने दरबारियों
से कहा कि बीरबल मुझसे कहता है कि तुम्हारे दरबार में सब अपनी औरतों के गुलाम हैं। यह बात मुझे जंचती नहीं; यह मैं मान नहीं सकता। मेरे बहादुर सिपाही, मेरे बहादुर सेनापति, मेरे बहादुर वजीर, ये सब औरतों के गुलाम हैं, यह मैं मान नहीं सकता। तो आज मुझे यह परीक्षा लेनी है। जो-जो अपनी स्त्रियों के गुलाम हों, एक तरफ खड़े हो जाएं। और कोई झूठ न बोले, क्योंकि इसका पता लगाया जाएगा, तुम्हारी स्त्रियों को भी बुलवाया जाएगा, फिर पीछे फजीहत होगी; इसलिए जो-जो अपनी स्त्रियों के गुलाम हों, चुपचाप एक लाइन में खड़े हो जाएं। और जो अपनी स्त्रियों के मालिक हों, वे एक लाइन में खड़े हो जाएं।

सिर्फ एक आदमी उस लाइन में खड़ा हुआ जो अपनी स्त्रियों का मालिक था और बाकी सब उस लाइन में खड़े हो गए जहां स्त्रियों के गुलामों को खड़ा होना था। बादशाह बड़ा हैरान हुआ। फिर भी उसने कहा कि चलो, यह भी क्या कम है! क्योंकि बीरबल तो कहता था सौ प्रतिशत, मगर एक आदमी तो कम से कम है। मैं तुमसे पूछता हूं कि तुम उस लाइन में क्यों खड़े हो? तुम्हें पक्का भरोसा है?
उस आदमी ने कहा, भरोसा इत्यादि कुछ नहीं है, जब मैं घर से चलने लगा, मेरी औरत ने कहा, भीड़-भाड़ में खड़े मत होना। मुझे कुछ पता नहीं है, मैं तो सिर्फ उसकी आज्ञा का पालन कर रहा हूं।
सदा ही कोमल जीत जाएगा कठोर पर। पानी जीत जाता है चट्टान पर। मगर जीत
की चेष्टा चल रही है, संघर्ष चल रहा है। पति-पत्नी के बीच जो शाश्वत कलह है, वह यही है। प्रेम में यह कलह? फिर प्रेम कैसे फलेगा? इसलिए प्रेम कहां फलता है? पति-पत्नी लड़ते रहते हैं और मर जाते हैं; प्रेम कहां फलता है? बाप-बेटे में संघर्ष चलता है, भाई-भाई में संघर्ष चलता है, प्रेम कहां फल पाता है?
प्रेम वहीं फलता है जहां कोई अपने अहंकार को स्वेच्छा से विसर्जित करता है। हार कर नहीं, स्वेच्छा से; स्वयं अपने से। कहता है, मुझे तुमसे प्रेम है तो तुमसे लड़ना क्या? तुमसे मुझे प्रेम है तो तुम्हारे लिए मैंने अपना अहंकार छोड़ा। तुमसे मेरा कोई संघर्ष नहीं है।
साधारण प्रेम में भी झुकने से ही प्रेम फलता है, तो फिर उस परम प्रेम में, परमात्मा के सामने तो पूरी तरह झुक जाना होगा। इस झुकने की कला का नाम है, नमस्कार, नाम-कीर्तन, उसकी याद, उसका गुणगान। जिन्होंने उसे जाना है, उनसे सुनना उसकी याद। जिन्होंने थोड़ी-बहुत उसकी झलक पाई है, उनके पास बैठ कर उसकी झलक की चर्चा करना। जहां चार दीवाने बैठ जाएं वहां उसकी याद करनी चाहिए।
लेकिन तुम क्या करते हो? तुम व्यर्थ की बातें करते हो। पड़ोसियों की निंदा में लगते हो। कौन ने चोरी की, कौन किसकी स्त्री को भगा ले गया, कौन ने रिश्वत ले ली, कौन चुनाव हार गया, कौन जीत गया; तुम इस व्यर्थ में ही अपना जीवन खराब कर रहे हो। और ध्यान रखना, ये सब बातें महंगी हैं, क्योंकि तुम्हारे ओंठ जिन बातों को कहते हैं, तुम्हारे प्राण भी उन्हीं बातों जैसे हो जाते हैं। तुम्हारे ओंठ और तुम्हारे प्राणों में संबंध है। पुराने दिनों में लोग सुबह उठ कर प्रभु का स्मरण करते थे--दिन की यात्रा शुरू करने को। भरी दोपहरी में थोड़े से क्षण खोज लेते थे कि फिर प्रभु का स्मरण कर लें बीच बाजार में। रात सोने के पहले, थके-मांदे, लेकिन फिर भी प्रभु का स्मरण करके सोते थे। ऐसे प्रभु की याद से सब तरफ से अपने को घेरे रखते थे। अब वह सुबह उठते से ही, अभी मुंह भी नहीं धोया, अखबार मांगते हैं। कहते हैं, अखबार आया कि नहीं? जैसे रात भर अखबार की प्रतीक्षा करते रहे। और अखबार में तुम भलीभांति जानते हो कि क्या होगा। वही कूड़ा- कर्कट। वही का वही रोज-रोज।
मैं एक नगर में कुछ महीनों तक रहा था। मेरे पड़ोस में एक पागल आदमी था। उससे मेरी दोस्ती हो गई। मेरे पागलों से नाते हैं! उससे मेरी दोस्ती हो गई। वह रोज मेरे पास आता, अखबार पढ़ने का उसे बड़ा शौक था। लेकिन वह इसकी फिकर ही नहीं करता था कि तारीख कौन सी है अखबार पर। दस साल पुराना अखबार, वह बैठा है मजे से उसको पढ़ रहा है! मैंने उससे पूछा कि भई, और सब तो ठीक है, और सब पागलपन मेरी समझ में आता है, दस साल पुराना अखबार! उस पागल ने क्या कहा, मालूम है? उसने कहा, दस साल पुराना हो कि आज का, सबमें बात तो वही होती है।
मुझे बात उसकी लगी! वह कह तो ठीक ही रहा है, बात तो वही होती है। अगर तुम्हें तारीख का पता न हो तो दस साल पुराना अखबार उठा कर पढ़ना और तुम्हें कोई अड़चन नहीं मालूम होगी कि कुछ नया दुनिया में हो रहा है। वही हो रहा है। बदलाहटें सब थोथी हैं, ऊपर-ऊपर हैं, अन्यथा सारी बात वही की वही है। लेबल बदल जाते हैं; कुछ अंतर नहीं आता।
कुछ बाहर की दुनिया में अंतर होता ही नहीं कभी। वही पिटी-पिटाई दुनिया चलती रहती है, वही लकीर की फकीर दुनिया चलती रहती है। वही मुकदमे,

वही अदालतें, वही चोरियां, वहां बेईमानियां, वही राजनीतिज्ञ, वही मुखौटे, वही आश्वासन, वही धोखेधड़ियां, सब वही चलता रहता है। लेकिन सुबह से उठ कर तुम्हें जो पहली आकांक्षा जगती है वह यही, अखबार? इससे तुम्हारी आत्मा का पता चलता है। तुम्हारी आत्मा अखबार हो गई है। तुम्हारी आत्मा अब कुरान नहीं है, गीता नहीं है, वेद नहीं है; तुम्हारी आत्मा अखबार हो गई है। प्रभु का स्मरण करो। उसके स्मरण से ही तो धीरे-धीरे, धीरे-धीरे तुम्हारा हृदय उसकी तरफ डोलेगा, आंदोलित होगा। उसकी खबर रोज-रोज सुनोगे, उसकी बात रोज-रोज करोगे, कितनी देर तक रुके रहोगे? एक न एक दिन खोज शुरू करनी ही पड़ेगी।
रोज कहता हूं न आऊंगा कभी घर उसके
रोज उस कूचे में एक काम निकल आता है
अगर प्रेम होता है तो आदमी रास्ता बना ही लेता है। कई दफे आदमी कह देता है कि अब नहीं, बस, बहुत हो गया।
रोज कहता हूं न आऊंगा कभी घर उसके
रोज उस कूचे में एक काम निकल आता है
निकालते रहो काम। उसके कूचे में ही अंतिम पड़ाव डालना है। उसके कूचे में ही आखिर में बसना है। निकालते रहो काम। कोई भी बहाने, प्रभु का स्मरण करो। मंदिर को ही क्यों झुकते हो? रास्ते में गुरुद्वारा पड़ जाए, उसको भी झुको। याद के लिए एक मौका मिला, उसको क्यों छोड़ते हो? मस्जिद मिल जाए, उसको भी झुको। और गिरजा मिल जाए, उसको भी झुको। क्यों मौका छोड़ते हो?
मैं एक बार यात्रा पर था, और एक जैन महिला मेरे साथ यात्रा पर थी। उसकी बड़ी तकलीफ थी। जब तक वह जाकर जैन मंदिर में भगवान महावीर को स्मरण न कर ले, उनके चरणों में सिर न झुका ले, भोजन न ले। मैं बड़ी मुश्किल में पड़ा। किसी गांव में मंदिर नहीं भी था, तो उसने भोजन नहीं किया। उसकी वजह से मुझे जल्दी गांव छोड़ना पड़े, दूसरे गांव में जहां मंदिर हो। ऐसा दो दिन हो चुका था कि उसे भोजन नहीं मिला था। मैं भी परेशान था। उसको लाख समझाओ, वह सुनती नहीं थी। तीसरे गांव में हम पहुंचे। राह से गुजरते थे तो मुझे मंदिर दिखाई पड़ा। तो मैंने जो मित्र मुझे ड्राइव कर रहे थे उनसे कहा कि भई, जैन मंदिर मालूम होता है।
उन्होंने कहां, हां, जैन मंदिर है।
मैंने कहा, चलो अच्छा हुआ। जिस देवी को मैं ले आया हूं साथ, वह भोजन नहीं करती। और उसकी वजह से मेरी तक मुसीबत हो गई है। यह अच्छा हुआ।
मैंने देवी को कहा कि अब तू स्नान कर और जाकर मंदिर में पहले स्मरण कर
आ।
वह गई और वापस आ गई। उसने कहा, वह तो श्वेतांबर जैन मंदिर है; मैं दिगंबर हूं।
आदमी ने कैसी-कैसी झूठी और व्यर्थ की बातें बना रखी हैं। वही महावीर
की मूर्ति दिगंबर मंदिर में है, वही महावीर की मूर्ति श्वेतांबर मंदिर में है। लेकिन महावीर-महावीर की मूर्ति में फर्क हो गया। वह दिगंबर एक महावीर, एक महावीर श्वेतांबर।
मस्जिद में भी वही बैठा है, वहां अमूर्त है। मंदिर में भी वही बैठा है, वहां मूर्ति में विराजमान है। गुरुद्वारे में भी वही है, गिरजे में भी वही है, गिरजे के बाहर भी वही है, सब तरफ वही है। जिसको यह बात समझ में आ गई कि जितना झुकना हो सके, झुको, वह यह कहां छोटी-छोटी बातों की फिकर करेगा कि तुम किस रूप-रंग में मिले। जिस रूप-रंग में मिले, वह कहता है--जयरामजी! वह झुकता है। इसी झुकने से धीरे-धीरे पत्थर टूट जाता है, तुम्हारे भीतर की अकड़ मिट जाती है।
यह विरह का तूफान जितना जोर से उठ आए, यह याद जितनी सघन हो, उतना शुभ है।
ऐ नाखुदा, यह देखा है दरिया का मोजिजा
साहिल पे फेंक देते हैं तूफां कभी-कभी
यह चमत्कार भी घटता है।
ऐ नाखुदा, यह देखा है दरिया का मोजिजा

यह चमत्कार देखा है कभी?
साहिल पे फेंक देते हैं तूफां कभी-कभी
तूफान सदा ही नहीं डुबाते, कभी-कभी साहिल पर फेंक देते हैं, किनारे पर फेंक देते हैं। नाव तूफान की वजह से किनारे पर आकर लग जाती है।
यह विरह का तूफान ही मिलन के किनारे पर ले आता है। मगर तूफान को उठाओ, कंजूसी मत करो! सब तूफान में लगा दो। उठने दो अंधड़!
अंतराले तु शेषाः स्युः उपास्यादौ च काण्डत्वात्।
"गीता में भी इस उपासनाकांड रूप गौणी-भक्ति का वर्णन है।"
शांडिल्य कहते हैंः जो मैं कह रहा हूं, उसकी गवाही शास्त्रों में भी है। गीता में भी कृष्ण ने यही कहा है।
कृष्ण का वचन हैः
सततं कीर्तयंतो मां यतंतश्च दृढ़व्रताः
नमस्यंतश्च मां भक्तया नित्ययुक्ता उपासते
ज्ञानयज्ञेन चाप्यन्ये यजंतो मामुपासते
एकत्वेन पृथक्त्वेन बहुधा विश्वतोमुखम्
"कोई-कोई भक्त मेरा गुण-कीर्तन करके, कोई-कोई दृढ़ नियमयुक्त तपस्या करके, कोई-कोई भक्तिपूर्वक मुझे प्रणाम करके, कोई-कोई सर्वदा एक मन होकर ध्यान करके, कोई ज्ञानयज्ञ द्वारा मेरी उपासना करके, कोई-कोई अहंकाररहित होकर दास रूप से मेरी पूजा करके और कोई-कोई भक्त मुझे सर्वात्मक जान कर नाना रूप से ही मेरी उपासना किया करते हैं।"
लेकिन ये सभी मार्गों से चलने वाले लोग उसी एक गंतव्य पर पहुंच जाते हैं। तुमने कैसे पुकारा, इससे कोई संबंध नहीं है; पुकारा! और हृदय से पुकारा! तुमने किस भाषा में पुकारा, इससे भी कोई संबंध नहीं है--अरबी में, कि संस्कृत में, कि हिंदी में, कि जापानी में; तुमने कौन सी विधि का उपयोग किया--कुरान की या उपनिषद की; तुम बुद्ध को मान कर पुकारे, कि महावीर को मान कर पुकारे; इन सब बातों का कोई अर्थ नहीं है। अर्थ सिर्फ एक बात का है, जिस पर सारी बात निर्भर होती हैः तुमने जो किया, वह हृदय से किया या नहीं? बस वहीं सारी बात निर्णय होती है। हृदय से पुकारो तो सब भाषाएं उस तक पहुंच जाती हैं। और बिना हृदय के पुकारते रहो तो फिर तुम चाहे शुद्ध संस्कृत में बोलो, चाहे शुद्ध अरबी में, कुछ भी नहीं पहुंचता। टूटी-फूटी भाषा भी उस तक पहुंच जाती है।
टॉल्सटॉय की बड़ी प्रसिद्ध कहानी है। रूस का जो सबसे बड़ा पुरोहित था, उसे खबर मिली-- खबर रोज मिलने लगी थी, बढ़ने लगी थीं खबरें--कि पास की एक झील के किनारे तीन फकीर रहते हैं, जो बिल्कुल बेपढ़े-लिखे और गंवार हैं, जिन्हें प्रार्थना करना भी नहीं आता, उनके लोग दर्शन करने जाते हैं, वहां बड़े चमत्कार होते हैं। वह तो बड़ा नाराज हुआ। उसने एक दिन नाव ली, नाव में बैठ कर उस किनारे गया। वे तीनों फकीर वहां बैठे थे एक झाड़ के नीचे। बड़े मस्त हो रहे थे! कोई कारण नहीं दिखाई पड़ता था मस्ती का। डोल रहे थे आनंद में! उसने कहा कि बंद करो यह डोलना! जानते हो, मैं कौन हूं?
उन्होंने कहा कि हमें कुछ पता नहीं आप कौन हैं। मगर आप बताएं तो हम जान लेंगे कि आप कौन हैं।
उसने कहा कि मैं सबसे बड़ा पुरोहित हूं।
उन तीनों ने उसके चरणों में सिर रख दिया। तब तो वह निश्चिंत हो गया कि
ये मूढ़, इनको क्या चमत्कार आता होगा! और क्या इनको भक्ति आती होगी! लोग इनके पीछे नाहक पागल हो रहे हैं, ये तो मेरे चरणों में सिर रख रहे हैं।
उसने पूछा कि तुम्हारी क्या साधना है? तुम्हारे पीछे भीड़ क्यों आती है? उन्होंने कहा, हम साधना जानते ही नहीं।
तुम प्रार्थना क्या करते हो? उस पुरोहित ने पूछा।
उन्होंने कहा, प्रार्थना भी अब आपसे हम क्या कहें, शर्म आती है।
शर्म आती है? फिर भी तुम कहो।
उन्होंने एक-दूसरे की तरफ देखा कि भई तू कह दे! मगर वह कोई कहने को राजी नहीं। आखिर एक ने हिम्मत की। उसने कहा, अब आप मानते नहीं तो हमें कहना

पड़ेगा। असल में प्रार्थना हमें आती नहीं थी, हम तीनों ने अपनी प्रार्थना गढ़ ली है। हमने ही बनाई है, इसलिए क्षमा करना आप।
फिर भी उस पुरोहित ने कहा, तुमने क्या प्रार्थना बनाई है? वह तो नाराज होने लगा कि तुमने प्रार्थना बनाई कैसे? प्रार्थना तो चर्च का अधिकार है बनाना। उसका तो ऊपर से निर्णय होता है। तुमने कैसे प्रार्थना बना ली? फिर चर्च की निश्चित प्रार्थना है। क्या है तुम्हारी प्रार्थना?
वे तीनों एक-दूसरे की तरफ देखने लगे। फिर उन्होंने कहा कि अब नहीं मानते तो हम आपको कह देते हैं। हमने सुना है कि ईश्वर के तीन रूप हैं, त्रिमूर्ति; या जैसा ईसाई कहते हैं, ट्रिनिटी, उसके तीन रूप हैं। और हम भी तीन हैं। सो हमने एक प्रार्थना बना ली है कि तुम भी तीन, हम भी तीन, हम पर कृपा करो! बस इतनी हमारी प्रार्थना है। हम भी तीन, तुम भी तीन, हम पर कृपा करो!
वह पुरोहित तो हंसने लगा। उसने कहा, तुम बिल्कुल मूढ़ हो। यह कोई प्रार्थना हुई? मैं तुम्हें प्रार्थना बताता हूं। अब तुम यह बंद करो प्रार्थना, यह असली प्रार्थना तुम्हें देता हूं। तो उसने ईसाई धर्म की जो स्वीकृत प्रार्थना है, प्रामाणिक, वह कही।
लेकिन वे तीनों बोले कि यह तो बड़ी लंबी है और हम भूल जाएंगे। यह संक्षिप्त नहीं हो सकती?
उसने कहा कि यह संक्षिप्त नहीं हो सकती, इसमें एक शब्द नहीं बदला जा सकता, न एक जोड़ा जा सकता है।
तो उन्होंने कहा, आप फिर एक दफा और कह दें। फिर तीसरी दफे भी कहा कि एक दफा और बस, ताकि हमें याद हो जाए।
इधर पुरोहित कहने लगा, उधर वे उसे दोहराने लगे। उन्होंने कहा कि ठीक,
हम कोशिश करेंगे।
पुरोहित बड़ा प्रसन्न होकर नाव में बैठ कर वापस लौटा। जब वह बीच झील में था, तब उसने देखा, एक बवंडर की तरह चला आ रहा है। वह तो बड़ा हैरान हुआ कि यह क्या है? कोई तूफान नहीं है, कोई आंधी नहीं है, यह बवंडर कैसे आ रहा है? और तब उसने गौर से देखा तो पाया कि वे तीनों पानी पर भागते चले आ रहे हैं। उन्होंने कहा कि रोको! रोको! हम भूल गए। एक दफा और कह दो। वह प्रार्थना एक दफा और बता दो।
तब उस पुरोहित को थोड़ी बुद्धि आई कि जो पानी पर चल कर आ गए हैं, इनकी ही प्रार्थना ठीक होगी, इनकी प्रार्थना पहुंच गई है। उसने उनके चरण छुए और कहा, मुझे क्षमा करो, मैंने बड़ा अपराध किया है। तुम्हारी प्रार्थना पहुंच गई है; तुम अपनी प्रार्थना जारी रखो। मेरी प्रार्थना भूल जाओ। क्योंकि मैं वह प्रार्थना जिंदगी भर से कर रहा हूं, अभी भी मुझे नाव में बैठना पड़ता है। अभी मुझे इतनी श्रद्धा नहीं कि उस प्रार्थना के सहारे मैं पानी में चल जाऊंगा। तुम वापस जाओ, मुझे माफ कर देना! मैंने तुम्हारे और तुम्हारे परमात्मा के बीच बड़ी बाधा डाली। मैंने पाप किया।
भाषा का मूल्य नहीं है, न शास्त्र का मूल्य है। मूल्य है हृदय का, हार्दिकता का। इसलिए कृष्ण कहते हैंः कोई किसी ढंग से आए, किसी बहाने आए, किसी मार्ग से आए, किसी दिशा से आए, सब मुझ तक पहुंच जाते हैं।
परमात्मा परम शिखर है। पहाड़ पर बहुत रास्ते शिखर की तरफ जाते हैं, तुम किसी भी रास्ते से चल पड़ो, बस चलते रहना, पहुंच जाओगे। रास्तों की इतनी मूल्यवत्ता नहीं है, जितना लोग समझ बैठे हैं। लोग इतना झंझट मचा कर रखते हैं कि कौन सा रास्ता ठीक? रास्ता ठीक नहीं होता, चलने वाला ठीक होता है या गलत होता है। रास्ते तो बस रास्ते हैं। रास्ते तो मुर्दा हैं। चलने वाला हो तो गलत रास्तों से पहुंच जाता है और न चलने वाला हो तो ठीक रास्तों पर भी मकान बना लेता है, वहीं बैठ कर रह जाता है। ठीक और गलत रास्ते क्या होंगे!
मैं तुम्हारी दृष्टि बदलना चाहता हूं। मैं तुमसे कहना चाहता हूंः चलने वाला ठीक होता है या गलत होता है। कब ठीक होता है? जब वह जो कर रहा है, उसके पीछे उसका हृदय होता है। और कब गलत होता है? जब वह ऊपर-ऊपर करता है और

पीछे हृदय का साथ नहीं होता, तब गलत होता है। हृदयपूर्वक जो भी किया जाए, वह परमात्मा के चरणों तक पहुंच जाता है।
कठिनाइयां आती हैं। कठिनाइयां स्वाभाविक हैं। उनसे भयभीत मत होना। उनको चुनौती समझना।
जो जिद है बर्के-चमनसोज को तो जिद ही सही
हम आज अपना नशेमन बनाके देखेंगे
अगर बिजलियों ने जिद बांध रखी है कि आज गिर कर रहेंगी, तो यह भी सही, मगर हम तो अपना घोंसला बना कर रहेंगे। बिजलियां गिरें तो गिरें, तूफान आएं तो आएं, हम तो यात्रा पर चल पड़े हैं तो चल कर रहेंगे।
सारी विपरीत अवस्थाओं को चुनौती समझना। उन्हीं चुनौतियों को स्वीकार कर-कर के तुम्हारे भीतर दृढ़ता पैदा होती है। उन्हीं चुनौतियों से गुजर कर तुम निखरते हो। तुम कुंदन बनते हो आग से गुजर कर। और कोई उपाय नहीं है। ताभ्यः पाविष्यम उपक्रमात्।
"गौणी-भक्ति के द्वारा पवित्रता लाभ होती है।"
गौणी-भक्ति का क्या फल है? नाम-स्मरण, भजन-कीर्तन, सेवा, नमस्कार, नर्तन, इस गौणी-भक्ति का क्या परिणाम है? इन सबके माध्यम से हृदय पवित्र होता है, शुचिता आती है, सारल्य आता है, सरलता आती है, निष्कपटता आती है, निर्दोषता आती है। और वे ही पा सकते हैं प्रभु को जो निर्दोष हैं। पराभक्ति उन्हीं में उमगेगी जिनका हृदय पवित्र है। ये सारे गौणी-भक्ति के आयोजन तुम्हारे हृदय से कीचड़ को अलग करने के उपाय हैं।
प्रार्थना के इन क्षणों में कई बार जैसे बादल छंट जाएंगे, आकाश खुल जाएगा, सूरज चमक आएगा; फिर बादल घिर जाएंगे। ऐसा बहुत बार होगा, अनंत बार होगा। लेकिन एक बात निश्चित होने लगेगी कि बादल कितने ही घिरें, अंधेरा फिर-फिर आ जाए, सुबह होती है। और बादल कितने ही घिर जाएं, सूरज नष्ट नहीं होता। और मैं कितना ही परमात्मा को भूल-भूल जाऊं, तो भी याद वापस लौट आती है। बहुत बार भूलोगे, बहुत बार भटकोगे। कोई एक ही कदम में नहीं पहुंच जाता है। कई बार रास्ता चूक-चूक जाएगा, लेकिन अगर हृदय खोजने के लिए तत्पर है, अगर तुमने तय ही कर रखा है कि--
जो जिद है बर्के-चमनसोज को तो जिद ही सही
हम आज अपना नशेमन बनाके देखेंगे
--तो नशेमन बनेगा।

दश्ते-तनहाई में ऐ जाने-जहां लरजां हैं
तेरी आवाज के साये, तेरे ओंठों के सराब दश्ते-तनहाई में, दूरी के खसो-खाक तले खिल रहे हैं तेरे पहलू के समन और गुलाब

उठ रही है कहीं कुरबत से तेरी सांस की आंच अपनी खुशबू में सुलगती हुई मद्धिम-मद्धिम दूर--उफक पार चमकती हुई कतरा-कतरा
गिर रही है तेरी दिलदार नजर की शबनम

इस कदर प्यार से ऐ, जाने-जहां! रक्खा है
दिल के रुखसार पे इस वक्त तेरी याद ने हाथ
यूं गुमां होता है, गर्चे है अभी सुबहे-फिराक
ढल गया हिज्र का दिन, आ भी गई वस्ल की रात

साधारण प्रेमियों को तो ऐसा होता ही है, असाधारण प्रेमियों को भी ऐसा
ही होता है। प्रेम के अनुभव एक ही जैसे हैं। साधारण प्रेम का अनुभव बूंद जैसा है, परमात्मा के प्रेम का अनुभव सागर जैसा है। लेकिन मौलिक रूप से कुछ भेद नहीं है। मात्रा का भेद है। करोड़-करोड़ गुना है परमात्मा का प्रेम। लेकिन तुमने अगर प्रेम कभी जाना है, अगर तुम किसी स्त्री की याद में तड़पे

हो, या किसी पुरुष की याद में रोए हो, तो तुम जानोगे कि प्रार्थना क्या है, पूजा क्या है।
इस कदर प्यार से, ऐ जाने-जहां! रक्खा है
दिल के रुखसार पे इस वक्त तेरी याद ने हाथ
जब उसकी याद तुम्हें घेर लेगी, जब उसकी याद तुम्हें स्पर्श करेगी--
यूं गुमां होता है, गर्चे है अभी सुबहे-फिराक
अभी तो विरह की सुबह है, लेकिन ऐसा संदेह होता है--
यूं गुमां होता है, गर्चे है अभी सुबहे-फिराक
ढल गया हिज्र का दिन...
अभी सुबह ही है विरह की, अभी मार्ग पर चले ही हैं, लेकिन ऐसा एहसास होने लगता है कि--
ढल गया हिज्र का दिन...
विरह के दिन समाप्त हुए।
... आ भी गई वस्ल की रात
और मिलन की रात आ गई। ऐसा बहुत बार होगा। और जब-जब ऐसा होगा तब-तब तुम्हारे जीवन में एक नया पहलू प्रकट हो जाएगा, एक ऊंचाई आ जाएगी। ऐसा बहुत बार होगा, परमात्मा से मिलने के पहले बहुत बार एहसास होगा कि आ गई मंजिल, आ गई मंजिल। फिर-फिर चूक जाएगी।
यह चूकना भी तुम्हारे जीवन को निखारने का उपाय है। इसे सौभाग्य समझना। यह परीक्षा है, यह कसौटी है। और तुम हर बार पाओगे कि जब भी तुमने एक चुनौती को अंगीकार किया और एक आग से गुजरे, तुम और पवित्र हो गए, कुछ कचरा और जल गया।
तासु प्रधान योगात फलः अधिक्यम एके।
"कोई-कोई आचार्य गौणी-भक्ति की प्रधानता के कारण अधिक फल मानते हैं।" गौणी-भक्ति का इतना मूल्य है कि कुछ आचार्यों ने ऐसा भी मान लिया है
कि गौणी-भक्ति पराभक्ति से भी ज्यादा मूल्यवान है।
उनकी बात में भी थोड़ी सचाई है, क्योंकि बिना गौणी-भक्ति के पराभक्ति
तो होगी नहीं। बिना बुनियाद के मंदिर तो उठेगा नहीं। तो बुनियाद महत्वपूर्ण है कि मंदिर महत्वपूर्ण?
इस फिजूल झंझट में पड़ना ही मत; क्योंकि यह विवाद ऐसा ही है जैसे कोई कहे कि मुर्गी पहले कि अंडा पहले? कोई कह सकता है, अंडा पहले, क्योंकि बिना अंडे के मुर्गी कैसे होगी? और कोई कह सकता है, मुर्गी पहले, क्योंकि बिना मुर्गी के अंडा कौन रखेगा? और यह विवाद चलता रह सकता है। दार्शनिक इस पर लड़ते रहे हैं। पांच हजार सालों में न मालूम कितना विवाद इस बात पर हुआ है कि कौन पहले? और एक छोटी सी बात दिखाई नहीं पड़ती कि मुर्गी और अंडा दो नहीं हैं। मुर्गी में अंडा समाया हुआ है, अंडे में मुर्गी बैठी हुई है। उनको दो मानना गलत है। वे एक ही यात्रा के दो पड़ाव हैं। मुर्गी ही तो अंडा हो जाती है। अंडा ही तो मुर्गी हो जाता है। इसलिए एक ही घटना है, उसके दो रूप हैं, दो ढंग हैं, दो कदम हैं।
तुम बच्चे थे, तुम्हीं तो जवान हो गए! तुम जवान हो, तुम्हीं तो बूढ़े हो जाओगे। तुम्हीं जीवन हो, तुम्हीं कल मृत्यु हो जाओगे। ये दोनों एक ही बात हैं। इनके बीच अंतर मानना और इनको दो मानने से झंझट खड़ी हो जाती है। एक दफा दो मान लिया तो फिर कोई हल नहीं हो सकता।
शांडिल्य कहते हैंः कुछ आचार्य कहते हैं कि गौणी-भक्ति प्रधान है, उसको गौण कहना ठीक नहीं, क्योंकि उसके बिना पराभक्ति कभी होगी ही नहीं। ठीक ही कहते हैं। मगर दूसरे हैं जो कहते हैं, पराभक्ति परा है, गौणी तो गौण है। वे भी ठीक कहते हैं। क्योंकि पराभक्ति के लिए ही तो गौणी-भक्ति की जाती है, वह साधन रूप है। हम राह चलते हैं मंजिल पर पहुंचने के लिए। मंजिल का मूल्य है। राह चलने के लिए तो कोई राह नहीं चलता, मंजिल पर पहुंचने के लिए चलता है। इसलिए असली मूल्य तो मंजिल का है। लेकिन कोई यह भी कह सकता है, बिना राह चले मंजिल पहुंचोगे? कैसे पहुंचोगे? और जब मंजिल मिल नहीं सकती बिना राह के, तो राह मंजिल से भी ज्यादा मूल्यवान है।
ये दोनों ही बातें ठीक हैं। इनमें विवाद व्यर्थ है।

गौणी-भक्ति को हृदय में बिठा लो, स्वागत से, उसे मेहमान बना लो। उसके बड़े रंग हैं, बड़े रूप हैं! भगवान जब करीब आने लगता है भक्त के--पुकारता है भक्त कि मेरे करीब आओ, कि मुझे करीब लो, लेकिन जब आने लगता है तो डरने भी लगता है। कभी-कभी कहता है, बस और पास मत आ जाना! इससे ज्यादा पास आए तो घबड़ाहट होती है।
लाऊंगा मैं कहां से जुदाई का हौसला
क्यों इस कदर करीब मेरे आ रहे हो तुम
डरने लगता है कि इतने करीब आ गए और फिर जाओगे, तो फिर बहुत दुख होगा, फिर और विरह होगा। जरा दूर ही रहो। नहीं आता परमात्मा करीब तो पुकारता है। करीब आता है तो कहता है--
लाऊंगा मैं कहां से जुदाई का हौसला
क्यों इस कदर करीब मेरे आ रहे हो तुम
शिकायतें हजार उठती हैं। शिकायतें सोचता भी है, फिर सोच-सोच कर यह भी सोचता है कि सार क्या है शिकायतों में?
शिकायत किस जुबां से मैं करूं उनके न आने की
यही एहसान क्या कम है कि मेरे दिल में रहते हैं
ऐसे समझाता है, सांत्वना देता है। सांत्वना में, समझाने में अपने को सम्हालता है। प्रतीक्षा करता है, धैर्य रखता है, पुकारता है। परमात्मा का आगमन न हो, तो जानता है, मेरी पात्रता अभी न होगी। और जब परमात्मा का आगमन होता है, तो ऐसा नहीं जानता कि अब मेरी पात्रता है। इसको ख्याल में रखना। जब तक परमात्मा नहीं आता, जानता है कि मेरी पात्रता नहीं है। लेकिन जब परमात्मा आता है तो जानता है, उसका प्रसाद है।
गौणी-भक्ति प्रयास है। फिर भी भक्त का भाव सदा इसका ही होता है कि तेरी अनुकंपा के कारण तू मिला है, मेरे प्रयास के कारण नहीं। तेरा प्रसाद है। तेरी करुणा है।
करो प्रयास, ध्यान रखना प्रसाद पर। इन दो शब्दों के बीच सारा राज है। प्रयास पर बहुत भरोसा कर लिया तो चूक जाओगे। और प्रयास किया ही नहीं तो भी चूक जाओगे। प्रयास करना भरपूर, और भरोसा रखना प्रसाद पर। इसमें विरोधाभास लगता है, मगर यह विरोधाभास भक्त को समझना ही पड़ता है।
फिर से तुम्हें कह दूं। चेष्टा पूरी करना, जितनी तुम कर सको, उसमें कुछ कंजूसी नहीं लेना, अपने को बचाना मत, अपने को पूरा दांव पर लगा देना; और फिर भी जब मिलन हो, तो भूल कर भी यह भाव मत उठने देना कि मेरी पात्रता से मिला। क्योंकि अगर यह भाव उठा, उसी क्षण तुम इतने दूर पड़ जाओगे जितने दूर परमात्मा से कोई हो सकता है। क्योंकि यह तो अहंकार ही है। फिर अहंकार लौट आया नये रास्ते से। फिर उसने तुम्हारी गर्दन दबा दी। तुम फिर हार गए अहंकार से, फिर अकड़ आ गई।
तो भक्त प्रसाद की याद रखता है। जब परमात्मा मिलता है तो वह कहता हैः मेरी कोई पात्रता नहीं है। मुझ जैसे अपात्र को तुम मिले, जरूर तुम्हारी अनुकंपा होगी! इसका यह अर्थ नहीं है--जैसा कि कुछ काहिलों ने और सुस्तों ने ले रखा है। उन्होंने यह ले रखा है कि जब प्रसाद से ही मिलना है, तो हमारे किए से क्या होगा? प्रार्थना भी क्या करनी, पूजा भी क्या करनी, नमस्कार भी क्या करना! जब उसकी कृपा होगी तब होगी, हमारे किए से क्या होता है! जब भाग्य में होगा तब होगा। वे प्रयास ही नहीं करते हैं। और जो प्रयास नहीं करता, वह प्रसाद के योग्य नहीं बनता।
तुम अपना पूरा प्रयास करो। तुम्हारा प्रयास जब पूर्णता पर पहुंच जाएगा तभी प्रसाद की किरण उतरती है। और जैसे ही प्रसाद की किरण उतरी, गौणी- भक्ति विदा हो गई। फिर पराभक्ति का प्रारंभ है। वहां भक्त और भगवान एक हैं। वहां एक ही ऊर्जा का नृत्य है। फिर वहां कोई भेद नहीं, कोई द्वैत नहीं। जहां तक भेद है, जहां तक द्वैत है, वहां तक द्वंद्व भी रहेगा, दुख भी रहेगा। दुख की समाप्ति है द्वैत की समाप्ति पर। उस लक्ष्य पर ध्यान रखना कि एक दिन भगवान में लीन हो जाना है, भगवान को अपने में लीन हो जाने देना है। एक दिन सब सीमाएं मिटा देनी हैं।

गौणी-भक्ति में लगो और पराभक्ति की प्रतीक्षा करो। यह घटना घटती है।
जब घटती है तभी तुम जानोगे कि जीवन कैसा अपूर्व अवसर है! गुलाब की झाड़ी, जिसमें कभी गुलाब के फूल नहीं खिले, उसे पता भी नहीं हो सकता कि जब फूल खिलेंगे तो कैसी सुगंध बिखरेगी! उसे यह भी ख्याल नहीं हो सकता कि मैं कैसी सुंदर हो जाऊंगी जब फूल खिलेंगे! कि कैसी महिमा का जागरण होगा! कि कैसा गौरव मेरे भीतर उठेगा! कि कैसी दुल्हन सी मैं सज जाऊंगी! फिर हवाओं में नाचूंगी, एक गरिमा होगी! फिर हवाओं में सुगंध लुटाऊंगी, एक सौरभ उठेगा! एक संगीत मुझसे जन्मेगा! उसे कुछ पता भी नहीं हो सकता जब तक गुलाब के फूल नहीं खिले हैं; तब तक तो वह कोरी बांझझाड़ी है।
तुम भी, जब तक परमात्मा तुम्हारे भीतर न उतरे, बांझझाड़ी हो। तुम्हारे भीतर फूल नहीं खिले हैं, तुम्हें अपनी सुगंध का भी कोई पता नहीं है। तुम्हें पता नहीं तुम किस महत संगीत को लिए भीतर चल रहे हो। तुम्हें पता नहीं, तुम्हारी हृदय की वीणा कैसे अपूर्व नाद को उठा सकती है।
मगर उतरे परमात्मा, उसकी अंगुलियां तुम्हारे हृदय पर पड़ें, तो ही संगीत उठ सकता है। उस संगीत का नाम ओंकार है।
आज इतना ही।

अथातो भक्ति जिज्ञासा, भाग 2 चौबीसवां प्रवचन

प्रार्थना निरालंब दशा है

पहला प्रश्नः मैं क्या करूं? कैसे प्रार्थना करूं? कैसे अर्चना करूं?

प्रार्थना क्रिया नहीं है, कर्म नहीं है। कर्ता का भाव ही प्रार्थना में बाधा है। प्रार्थना अक्रिया है। की नहीं जाती, सिर्फ होने दी जाती है। प्रार्थना ऐसे है जैसे नींद। लाने की कोशिश करोगे, आना मुश्किल हो जाएगी। भूलो नींद की बात, पड़ रहो बिस्तर पर, आएगी अपने से। प्रार्थना आती है, लाई नहीं जाती।
इस बुनियादी बात को खूब ख्याल में रख लेना।
भक्त कुछ कर नहीं सकता, करना उसके वश नहीं है। करना ही वश में हो तो भक्ति की कोई जरूरत नहीं है। भक्ति असहाय अवस्था है। बेसहारा! जब व्यक्ति अपने को पाता है कि अब मेरे किए कुछ भी न होगा, कुछ भी न होगा, मेरा सारा करना गिर गया, हार गया, मेरा कर्ता पुंछ गया, मिट गया, वैसी शून्य अवस्था में, जब करने को कुछ भी नहीं सूझता, आंखें अपने आप आंसुओं से भर जाती हैं, वही प्रार्थना है। वे आंसू ही फूल हैं चढ़ाने योग्य।
रुदन उठेगा, गान भी उठेगा। मगर तुम्हें खींच-खींच कर लाना नहीं है, उठने देना है। तुम्हारे भीतर से उमगेगी प्रार्थना, जैसे वृक्षों में पत्ते निकलते हैं और फूल खिलते हैं। ऐसे तुम्हारे प्राणों में पत्ते खिलेंगे, फूल खिलेंगे, तुम हरे हो उठोगे, कोई गीत जन्मेगा, कोई एक कड़ी गूंजेगी। वही मंत्र है। जो दूसरे ने दिया, वह मंत्र नहीं है। जो तुमने पाया, जो तुम्हें मिला, जो परमात्मा से मिला, वह मंत्र है।
तुम पूछते होः "मैं क्या करूं?"
करना छोड़ो। किए-किए खूब भरमे, कर-कर के खूब भटके, करने के कारण ही भटके,
अब जागो। अब एक बात समझो कि तुम्हारे किए कुछ भी न होगा। जैसे सांस अपने से चलती है, तुम थोड़े ही चलाते हो; खून अपने से बहता है, तुम थोड़े ही बहाते हो; हृदय अपने से धड़कता है, तुम थोड़े ही धड़काते हो! सब अपने से हो रहा है, तुम अपने को बीच में मत लाओ। तुम हट जाओ, तुम रास्ता दे दो। तुम गिर पड़ो, तुम मिट जाओ। तुम करने की बात ही विस्मरण कर दो। और तब तुम एक दिन अचानक पाओगेः होने का जन्म हुआ।
फिर प्रार्थना कैसी होगी, कहना कठिन है। प्रत्येक की अलग-अलग होगी। किस ढंग की सुगंध तुम्हारे भीतर उठेगी, कैसे पत्ते खिलेंगे, कैसे फूल--सब पौधे अलग हैं! किसी पर गुलाब खिलेगा, किसी पर चंपा, किसी पर चमेली। मगर एक बात समान होगी--खिलावट होगी। उस खिलावट का नाम प्रार्थना है।
तुम पूछते होः "क्या करूं? कैसे करूं?"
प्रार्थना की कोई विधि नहीं है। प्रेम की कहीं विधि हुई है? जहां विधि आई, वहां कृत्रिमता आई। तुम प्रेम करना सीखते थोड़े ही हो, अभ्यास थोड़े ही करते हो! और अभ्यास किया हुआ प्रेम अभिनय होगा, वास्तविक नहीं होगा। मगर प्रेम के अभ्यास की जरूरत नहीं, तुम जन्मे हो प्रेम की क्षमता के साथ। तुम लाए हो अपने प्राणों में वह स्वर, वह पड़ा ही है, जरा अवसर चाहिए। और अवसर क्या? इतना ही कि तुम्हारा बाहर का शोरगुल थोड़ा बंद हो।
तो करने के नाम पर नकारात्मक करना है। जैसे एक आदमी को, मैं फिर याद दिलाऊं, सोना है। वह क्या करे? सोने के लिए कोई अभ्यास करे? व्यायाम करे? उछलकूद करे? आसन लगाए? जो भी करेगा, उससे नींद में बाधा पड़ जाएगी। लेकिन फिर भी कुछ किया जा सकता है; वह करना नहीं है। कमरे का प्रकाश बुझा सकता है। उससे सहारा मिलेगा। दरवाजे-खिड़कियां बंद कर सकता है; पर्दे गिरा दे सकता है। उससे सहारा मिलेगा। विश्राम की अवस्था के लिए अंधेरा उपयोगी है। द्वार-दरवाजे बंद हों, अंधेरा हो, बाहर का शोरगुल न आता हो, यह सहयोगी है।
मगर नींद तो अपने से घटेगी।

ऐसी ही प्रार्थना है। तुम बाहर के शोरगुल से थोड़ा अपने को निश्चिंत
कर लो, चौबीस घंटे में एक घड़ी खोज लो, द्वार-दरवाजे बंद कर दो, बैठ जाओ, भूलो जगत को, प्रतीक्षा करो अज्ञात की। धैर्य रखो; आज नहीं होगा, कोई चिंता नहीं; आज नहीं खोद पाए कुआं, थोड़ी ही दूर तक गए, थोड़ा मिट्टी-पत्थर निकाला, मगर फिर भी काम शुरू हो गया, कुआं खुदना शुरू हो गया। कल थोड़ा और खुदेगा, परसों थोड़ा और खुदेगा, एक दिन तुम पाओगे--जलधार फूट गई। जल्दबाजी न करो। मैं तुम्हारी व्यथा समझता हूं।

भावाकुल मन की कौन कहे मजबूरी।
बोल उठी है मेरे स्वर में
तेरी कौन कहानी,
कौन जगी मेरी ध्वनियों में
तेरी पीर पुरानी,
अंगों में रोमांच हुआ, क्यों
कोर नयन के भीगे,
भावाकुल मन की कौन कहे मजबूरी।
किसी दिन आंखें भीग जाएंगी।
कोर नयन के भीगे,
भाव की धारा बहेगी। यद्यपि उस धारा को तुम विधि मत कहना, क्योंकि वह प्रत्येक की भिन्न होगी, अलग-अलग होगी। सबके आंसुओं का स्वाद अलग है। सबकी मुस्कुराहट का ढंग अलग है। सबके प्रेम की शैली भिन्न है। यही तो व्यक्ति की गरिमा है। इसलिए सबकी प्रार्थनाएं भी अलग होंगी।
दुनिया में प्रार्थना मर गई है, क्योंकि प्रार्थना सिखाई गई है। हिंदुओं ने एक तरह की प्रार्थना सीख ली है, बस वही दोहराए जा रहे हैं।
मुसलमानों ने एक तरह की प्रार्थना सीख ली है, वे वही दोहराए जा रहे हैं।
व्यक्तियों को पोंछ कर हटा दिया गया है, विधियां थमा दी गई हैं। विधियां झूठी हो जाती हैं। और जब भी तुम बाहर से सीखी कोई प्रार्थना दोहराओगे, तुम्हारे भीतर की प्रार्थना अजन्मी रह जाएगी।

भावाकुल मन की कौन कहे मजबूरी।

बोल उठी है मेरे स्वर में
तेरी कौन कहानी,
कौन जगी मेरी ध्वनियों में
तेरी पीर पुरानी,
अंगों में रोमांच हुआ, क्यों कोर नयन के भीगे,
भावाकुल मन की कौन कहे मजबूरी।

मैंने अपना आधा जीवन
गाकर गीत गंवाया
शब्दों का उत्साह पदों ने
मेरे बहुत कमाया,
मोती की लड़ियां तो केवल
तूने इन पर वारीं,
निर्धन की झोली आज गई भर पूरी।
भावाकुल मन की कौन कहे मजबूरी।

फिर भी तुम कह न पाओगे जो हुआ है। तुम किसी दूसरे को बता न पाओगे जो हुआ है। तुम किसी को समझा न पाओगे जो हुआ है। समझाने जाओगे, और उलझ जाओगे।
भावाकुल मन की कौन कहे मजबूरी।
तुमने जो गीत गाए, वे तो कचरा; जो गीत परमात्मा तुमसे गाता है, वही, वही सार्थक है।

मैंने अपना आधा जीवन
गाकर गीत गंवाया
शब्दों का उत्साह पदों ने
मेरे बहुत कमाया,
मोती की लड़ियां तो केवल
तूने इन पर वारीं,
जब उसका संस्पर्श मिलता है, तभी तुम्हारी मिट्टी सोना होती है। मोती की लड़ियां तो केवल
तूने इन पर वारीं,
निर्धन की झोली आज गई भर पूरी।
भावाकुल मन की कौन कहे मजबूरी।

क्षणभंगुर होता है जग में
यह रागों का नाता,
सुखी वही है जो बीती को
चलता है बिसराता,
और दुखी है पूर्ति ढूंढ़ता
जो अपनी साधों की,
रह जाती हैं जो उर के बीच अधूरी,
भावाकुल मन की कौन कहे मजबूरी।

प्रार्थना के नाम पर तुम कुछ मांगना मत। तुम किसी अधूरी वासना को पूरा करने की आकांक्षा मत करना। वही लोग करते हैं। प्रार्थना नहीं करते हैं। भिखमंगापन उनकी प्रार्थना में प्रकट होता है। यह मिल जाए, वह मिल जाए, ऐसा हो जाए, वैसा हो जाए। अगर तुमने कुछ भी मांगा, तो तुमने प्रार्थना गंदी की, अपवित्र की। तुमने अपनी प्रार्थना में वासना जोड़ी कि तुमने प्रार्थना के पंख काट दिए और प्रार्थना के गले में पत्थर बांध दिए। वह पक्षी फिर उड़ेगा नहीं, यहीं तड़फड़ाएगा, यहीं गिरेगा, यहीं मरेगा।
इतना ही ख्याल रखना, प्रार्थना में मांग न हो। कुछ भी मत मांगना, परमात्मा को भी मत मांगना, क्योंकि मांग तो बस मांग है; मांगा कि चूके।
अब बड़े दुख की बात है कि प्रार्थना शब्द का अर्थ ही मांगना है। मांगने वाले को हम प्रार्थी कहते हैं। सदियों से प्रार्थना के नाम पर मांगा गया है। इसलिए प्रार्थना का शब्द ही गलत हो गया, शब्द ही विकृत हो गया, उसका अर्थ ही मांगना हो गया। और इसलिए प्रार्थना कभी खिल नहीं पाती।
तुम सिर्फ किसी उन्मेष में आंदोलित होना, किसी उमंग में डोलना, मांगना कुछ भी मत। बिना मांगे मिलता है, मांगने से चूक जाता है। तुम न मांगोगे तो सब मिलेगा। तुम मांगोगे तो कुछ भी न मिलेगा। और जब कुछ भी न मिलेगा तो विषाद घिरेगा। और जब बिन मांगे मिलता है, प्रसाद बरसता है, तो आह्लाद का जन्म होता है।
"मैं क्या करूं? कैसे प्रार्थना करूं? कैसे अर्चना करूं?"
"कैसे" शब्द को विदा कर दो। तुम निष्क्रिय में गति करो। बैठ रहो घड़ी भर, न सोचो कि क्या करना है, बैठ रहो घड़ी भर। पक्षी गीत गाते हों, सुनो; सूरज की किरणें तुम्हारे ऊपर नाचती हों, अनुभव करो; हवा का झोंका आता हो, तुम्हारे वस्त्रों को कंपा जाता हो, नचा जाता हो, अनुभव करो; बस बैठे रहो। तुम चकित होओगे यह जान कर कि अगर तुम बैठ सको घड़ी भर, बिना किसी व्यस्तता के, प्रार्थना एक दिन तुम्हारे भीतर ऐसे ही जन्म जाएगी, कि चमत्कार! लेकिन तुम जब पूछते होः "कैसे?" तो तुम्हें पता नहीं कि तुम क्या पूछ रहे हो। तुम पूछ रहे हो यह कि चलो ठीक है, प्रार्थना के लिए बैठेंगे, लेकिन व्यस्तता के लिए कुछ तो दे दें। माला फेरें? मंत्र जपें? पूजा का थाल सजाएं? आरती उतारें? तुम चाहते हो, कुछ व्यस्तता के लिए उपाय दे दो। तुम बिना किए नहीं रह सकते। करना तुम्हारी बीमारी है, तुम्हारा पागलपन है। दुकान करोगे, अखबार पढ़ोगे, कुछ उठा-धरी करते रहोगे। प्रार्थना में भी तुम चाहते हो, कुछ करने को रहे।

मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं, कुछ आलंबन तो चाहिए।
क्यों चाहिए आलंबन? किसलिए चाहिए आलंबन? आलंबन के सहारे मन जीता है;
और सब आलंबन मन को बचा रखते हैं। आलंबन हटाना है, देना नहीं है। सब आलंबन छीन लो! हटा दो मालाएं! हटा दो पूजा के थाल! मूर्तियों को बिसरा दो! बैठ रहो, कोई आलंबन मत दो। मन घूमेगा विक्षिप्त की तरह; पागल की तरह चीखेगा, पुकारेगा कि कुछ काम चाहिए।
तुमने कहानी सुनी है न बच्चों की कि एक आदमी ने बड़ी मेहनत से, तंत्र-मंत्र-टोटके से एक प्रेत को जगा लिया। प्रेत तो जग गया और उसने कहा, आपकी सेवा में सदा हाजिर रहूंगा, लेकिन एक बात ख्याल रखना--मुझे काम चाहिए, चौबीस घंटा काम चाहिए; अगर जरा भी मुझे काम नहीं मिला, तो मैं तुम्हारी गर्दन मरोड़ दूंगा। मैं बिना काम के नहीं रह सकता। बिना काम मुझे एक क्षण कठिन हो जाता है। फिर मैं कुछ का कुछ कर दूंगा।
वह आदमी तो बड़ा खुश हुआ, उसने कहा, इसीलिए तो तुझे जगाया है कि हजारों काम पड़े हैं मेरे, जो हो नहीं पाते, जो मैं नहीं कर पाता, वही तो तुझसे करवाने हैं, तू फिकर मत कर, यही तो मैं चाहता हूं, ऐसा ही सेवक चाहिए था। मगर जल्दी ही गड़बड़ हो गई। क्योंकि वह काम दे और वह भूत उसे क्षण न लगे
और पूरा कर दे। महल बनाओ! वह महल बना दे। वह खड़ा है क्षण भर बाद कि महल बन गया। जल्दी ही काम चुक गए। काम ही कितने हैं? महल भी बन गए, किले भी खड़े हो गए, स्वर्ण अशर्फियों के ढेर भी लग गए, सुंदर स्त्रियां भी आ गईं, भोजन के थाल भी सज गए; अभी घड़ी भी नहीं बीती और उसने सब निपटारा कर दिया। वह आदमी बड़ा घबड़ाया। उसे एकदम सूझे ही न कि अब काम इसे क्या दूं? अब यही मुश्किल हो गई कि काम इसे क्या दूं? क्योंकि काम न दूं तो यह गर्दन दबा दे। और वह भूत आ-आ कर खड़ा हो जाए। वह आदमी एक फकीर के पास गया। उसने कहा, कुछ रास्ता बताओ, मैं बड़ी झंझट में पड़ गया हूं। उस फकीर ने पास में पड़ी एक नसेनी उसे दे दी और कहा, इसे जमीन में गाड़ दे और उस भूत से कह--पहले ऊपर जा, फिर नीचे आ। फिर ऊपर जा, फिर नीचे आ। जब तेरे पास कोई खास काम हो करवाने का तो करवा लेना, अन्यथा नसेनी बता देना।
वह नसेनी गाड़ दी गई आंगन में, भूत को काम मिल गया--वह बड़ा प्रसन्न; ऊपर जाए, नीचे आए; ऊपर जाए, नीचे आए; अब उसका कोई अंत नहीं है, चलता रहे। जब जरूरत हो उस आदमी को किसी काम की, वह काम करवा ले, अन्यथा नसेनी बता दे।
मन की ही कहानी है यह। मन को काम चाहिए। वह जो तुम माला फेरते हो, वह नसेनी है। फेरे जा रहे हैं गुरिए पर गुरिए, इधर से उधर तक, फिर वे एक सौ आठ हो गए, फिर फेरो, फिर फेरो! कोई मंत्र का जाप कर रहा है, वह कहता है, एक करोड़ दफे जाप करना है। कोई बैठा राम-राम लिख रहा है। वह नसेनी है। चढ़ते रहो, उतरते रहो। काम मिल जाता है; मगर काम से कहीं राम मिला है? राम तो मिलता है निष्काम दशा में, जब चित्त में कोई व्यस्तता नहीं होती। प्रार्थना अव्यस्तता का नाम है। वही ध्यान का अर्थ है, वही प्रार्थना का अर्थ है। "कैसे" को भूलो! तेईस घड़ी उलझे रहो--चढ़ो नसेनी, उतरो नसेनी--एक घड़ी भूल जाओ नसेनी को, बैठ जाओ खाली होकर, कुछ भी न करो।

नयन तुम्हारे चरण-कमल में अर्घ्य चढ़ा फिर-फिर भर आते।
कब प्रसन्न, अवसन्न हुए कब,
है कोई जिसने यह जाना?
नहीं तुम्हारी मुखमुद्रा ने
सीखा इसका भेद बताना,
ज्ञात मुझे, पर, अब तक मेरी
पूर्ण नहीं पूजा हो पाई,
नयन तुम्हारे चरण-कमल में अर्घ्य चढ़ा फिर-फिर भर आते।

यह मेरा दुर्भाग्य नहीं है
जो आंसू की धार बहाता,
कस उसको अपनी सांसों में
अब तो मैं संगीत बनाता,

और सुनाता उनको जिनको
दुख-दर्दों ने अपनाया है,
मेरे ऐसे यत्न तुम्हारे पास भला कैसे आ पाते।
नयन तुम्हारे चरण-कमल में अर्घ्य चढ़ा फिर-फिर भर आते।

इस जलकण माला का मतलब
साफ यहीं तक हो पाया है,
ऐसा लगता दूर कहीं से
भार हृदय ढोकर लाया है,
अनायास, अनजान, प्रयोजन-
हीन समर्पण करके तुमको
अंतर का कुछ श्रम कम होता औ" कुछ लोचन हलकाते।
नयन तुम्हारे चरण-कमल में अर्घ्य चढ़ा फिर-फिर भर आते।
बैठो! और तुम पाओगे--आंसू भरे, आंखें डबडबाईं, हृदय नाचा, रोमांच हुआ, कोई दूर का संगीत सुनाई पड़ा, कोई अज्ञात की गंध तुम्हारे नासापुटों में उतरी। यह होता है। यह यहां अनेक को हो रहा है। कोई कारण नहीं कि तुम्हें क्यों न हो? तुम कभी बैठे ही नहीं अव्यस्त होकर, तुमने कभी खाली होने का अवसर नहीं दिया, तुम कभी रिक्त नहीं हुए, इसीलिए रिक्त रह गए हो। प्रार्थना यानी रिक्त हो जाओ। और तुम परमात्मा से भर उठोगे। परमात्मा प्रतिपल उत्सुक है कि तुम्हारे भीतर राह बना ले। तुम राह देते नहीं। तुम नसेनी चढ़ते-उतरते। तुम कुछ न कुछ उपद्रव करते रहते। उस उपद्रव को तुम बड़े अच्छे-अच्छे नाम देते हो, कहते हो--आलंबन! प्रार्थना निरालंब दशा है। प्रार्थना निराधार अवस्था है। प्रार्थना निराकार अवस्था है। घटती है, घटाई नहीं जाती।

दूसरा प्रश्नः मैं तो आपको पूर्ण मानता हूं और संत भी। लेकिन आपने कहा, न मैं पूर्ण हूं और न संत। इससे मुझे बड़ा सदमा लगा। मैं रात भर सो भी न सका।

सदमा लगाना मेरा धंधा है। नींद तुम्हारी रात में ही न टूटे, दिन में
भी टूटे, ऐसी मेरी आकांक्षा है। नींद टूट ही जाए! सो लिए बहुत, सदियों सो लिए! इसलिए जितने उपाय हो सकें उतने उपाय से तुम्हें सदमे पहुंचाता हूं। समझोगे, तो उन्हीं सदमों के सहारे जागरण को साध लोगे। नहीं समझोगे, तो व्यर्थ परेशानी में पड़ जाओगे। जो दे रहा हूं, वह औषधि है--समझे तो औषधि, नहीं समझे तो व्याधि बन जाएगी।
मैंने कहाः न मैं पूर्ण हूं और न संत। वह इसीलिए कहा कि जब तक पूर्ण का बोध है, तब तक अपूर्ण से छुटकारा नहीं। यह तो द्वंद्व का ही खेल है--पूर्ण-अपूर्ण, संत-असंत, साधु-असाधु, पाप-पुण्य, भला-बुरा, यह सब द्वंद्व का ही खेल है। पहुंच गया जो, वह न तो पूर्ण होता है, न अपूर्ण होता है; वह न तो संत होता है, न असंत होता है; वह न तो शुभ होता है, न अशुभ होता है। पहुंच गया जो, जाना जिसने, जागा जो, वह अचानक पाता है कि सारे द्वंद्व विसर्जित हो गए। अब द्वंद्व कहां?
इस निर्द्वंद्व अवस्था को ही मैं भगवत्ता कहता हूं। भगवत्ता उन थोड़े
से शब्दों में से एक है, जिसका विपरीत नहीं है। संत भी भगवत्ता में है, असंत भी भगवत्ता में है। लेकिन असंत ने असंत से अपना तादात्म्य कर रखा है और संत ने संत से अपना तादात्म्य कर रखा है। दोनों ने अपनी भ्रांतियां बना लीं।
ऐसा समझो कि तुम हो तो नग्न, नग्न तुम्हारा स्वभाव है। फिर किसी ने एक ढंग के वस्त्र पहन रखे हैं--सुंदर, बहुमूल्य, हीरे-जवाहरात जड़े--और उसने इन्हीं वस्त्रों के साथ अपना तादात्म्य कर लिया और वह सोचता है मैं यही हूं--ये सुंदर वस्त्र, ये बहुमूल्य वस्त्र! और फिर किसी ने दीन-दरिद्र वस्त्र पहन रखे हैं--भिखमंगे के--उसने उनसे अपना तादात्म्य बना लिया है कि

मैं यही वस्त्र हूं, मैं यही दीन, दुख, दारिद्य्र। दोनों अपनी परम पवित्रता को, अपनी परम नग्नता को भूल गए हैं।
ऐसी ही दशा साधु-असाधु की है। साधु सोचता है, मैंने जो अच्छे कृत्य किए हैं वह मैं हूं। असाधु सोचता है, मैंने जो बुरे कृत्य किए हैं वह मैं हूं। मगर दोनों कृत्यों से अपने को जोड़ रहे हैं। और तुम कृत्य नहीं हो, तुम कर्ता नहीं हो। तुम साक्षी मात्र हो। साक्षी के सामने अच्छा कृत्य, बुरा कृत्य, दोनों उसके सामने हैं, वह उन दोनों के पार है। इसलिए साक्षी न तो पूर्ण होता है, न अपूर्ण होता है; न शुभ होता है, न अशुभ होता है। जब मैंने कहा कि मैं पूर्ण नहीं हूं, तो मैं इतना ही कह रहा हूं कि मैं सिर्फ साक्षी हूं। साक्षी किसी अनुभव के साथ अपने को जोड़ता नहीं। अगर जोड़ ले, तो कर्ता हो जाता है, पतन हो गया। न तो साक्षी कह सकता है मैं दुखी हूं, न कह सकता है मैं सुखी हूं। सुख-दुख दोनों अनुभव हैं। न तो साक्षी कह सकता है मैं अज्ञानी हूं, न कह सकता है मैं ज्ञानी हूं। दोनों अनुभव हैं। साक्षी का अर्थ होता हैः अब कोई अनुभव की जकड़ न रही, सब अनुभव दूर खड़े रह गए, सारे अनुभवों के बंधन टूट गए।
फिर साक्षी को क्या कहोगे? पूर्ण कहोगे? संत कहोगे? असंत कहोगे?
तुम बेचैन हो गए होओगे, क्योंकि तुम्हें साक्षी की कोई अनुभूति नहीं है। लोग अपने ही अनुभव से अर्थ करते हैं। स्वाभाविक है।
मैंने सुना, एक स्त्री--बड़ी प्रसिद्ध गायिका थी वह--अपने जन्मदिन पर देर तक गीत गाती थी। एक बार वह रात को अपने जन्मदिन पर गाना गा रही थी, तो उसका गाना बहुत लंबा हो गया। मस्ती में डूब गई और गाती ही रही, गाती ही रही। आखिर जब वह गाना खत्म करने लगी तो उसके अंतिम बोल थेः यह कौन आया? यह कौन आया? उस समय प्रातःकाल के चार बज रहे थे, बाहर से आवाज आई--दूधवाला आया जी! दूधवाले ने समझा--यह कौन आया? यह कौन आया? अपना अर्थ लिया।
मैं एक घर में मेहमान था। उस घर के एक छोटे से बच्चे से मेरी दोस्ती हो गई। उससे मैंने पूछा कि तुझे पता है, तेरी भाभी तुझे बार-बार कहती है--लाला, लाला; लाला क्यों कहती है?
उसने कहा, इसमें क्या कठिनाई है, बिल्कुल सीधी बात है, मैं उसे चीजें ला-ला कर देता हूं; तो वह मुझे कहती--ला, ला!
उसका अपना अर्थ है। प्रत्येक व्यक्ति का अपना तल है अर्थ करने का। मुझे सुनते वक्त तुम्हें बहुत सावधानी बरतनी पड़ेगी। मैं तुमसे वह कह रहा हूं जो तुम्हारे अनुभव में अभी नहीं है। इसलिए तुम्हें बड़ी अड़चनें भी हो सकती हैं।

एक दूसरे मित्र ने इसी तरह का प्रश्न पूछा है, वह भी इसी संदर्भ में समझ लेना उचित है।

आपने हिंदू धर्म और अन्य धर्मों को बेकार और पागलपन कहा है। गुरु तेगबहादुर, गुरु गोविंदसिंह ने हिंदू धर्म की रक्षा के लिए कुर्बानियां दी हैं। यहां तक कि अपने बच्चों तक को शहीद करवा दिया। क्या यह पागलपन था? इस तरह से आप हमारे गुरुओं की निंदा कर रहे हैं।

पूछा है निहाल सिंह, पंजाब ने।
भाई मेरे! गलत जगह आ गए तुम। तुम नाहक पंजाबियों की बदनामी करवाओगे। ऐसे ही बदनामी बहुत है। तुम्हारी समझ का तल है!
गुरु तेगबहादुर ने और गुरु गोविंदसिंह ने हिंदू धर्म की रक्षा के लिए कुछ भी नहीं किया, कभी कुछ नहीं किया। अगर कुछ किया तो धर्म के लिए किया; हिंदू धर्म से कुछ लेना-देना नहीं है। जिन्होंने जाना है, उनके लिए हिंदू, मुसलमान, ईसाई, इनमें फर्क नहीं रह जाता। जिन्होंने जाना है, उनको भी अगर ये विशेषण मूल्यवान रह जाएं, तो उन्होंने जाना ही नहीं। ये विशेषण तो ऊपर की खोलें हैं, इनके भीतर का असली राज--धर्म--तो एक है। परमात्मा एक है। नानक ने कहाः एक ओंकार सतनाम।

लेकिन अनेक भाषाएं हैं, आदमियों के अनेक रास्ते हैं उस परमात्मा तक पहुंचने के, अनेक विधि-विधान हैं, अनेक लोगों की अनेक शैलियां हैं। उसके कारण हजार विश्लेषण हो गए हैं, हजार विशेषण हो गए हैं। लेकिन जो जानता है, वह धर्म के लिए अपने को समर्पित करता है, हिंदू के लिए नहीं। हिंदू तो राजनीति का नाम है। जैसे मुसलमान राजनीति का नाम है, जैसे सिक्ख राजनीति का नाम है। धर्म बड़ी अलग बात है। ये तो वस्त्र हैं धर्मों के। किसी ने गुरुद्वारा बना लिया है, यह एक ढंग है; किसी ने मंदिर बना लिया है, किसी ने मस्जिद बना ली है। लेकिन मंदिर, मस्जिद और गुरुद्वारा के भीतर जिसकी पूजा की जा रही है, वह एक है। गुरुग्रंथ में जो पढ़ा जा रहा है और वेद में जो पढ़ा जा रहा है, गीता और कुरान में जो पढ़ा जा रहा है, शब्द तो अलग-अलग हैं, निश्चित अलग-अलग हैं, लेकिन जिस तरफ उन शब्दों के इशारे हैं, वह एक है। जिसको वह एक दिखाई पड़ता है, उसे मैं कहता हूं--वह पागल नहीं। जिसे अनेक दिखाई पड़ता है, वह पागल है।
हिंदू धर्म में दो शब्द हैं--हिंदू और धर्म। अगर हिंदू पर बहुत जोर है,
तो तुम पागल हो। अगर धर्म पर बहुत जोर है, तो तुम बुद्धिमान हो। और जैसे- जैसे धर्म पर जोर बढ़ेगा, हिंदू पर जोर कम होता जाएगा। एक दिन तुम पाओगे, हिंदू तो विदा हो गया, धर्म रह गया। अगर हिंदू पर बहुत जोर दिया, तो तुम पाओगे, धर्म तो धीरे-धीरे विदा होने लगा, हिंदू रह गया, हिंदू रह गया। एक दिन तुम पाओगे, धर्म समाप्त हो गया, हिंदू बचा। हिंदू धर्म दो दिशाएं खोल रहा हैः एक धर्म की और एक हिंदू की। अगर हिंदू की राह पकड़ी, तो राजनीति में पड़ जाओगे। कहीं जाकर समाप्त होओगे, वह राजनीति होगी। अगर धर्म की राह पकड़ी, तो अध्यात्म में उतर जाओगे; कहीं पहुंच जाओगे एक दिन, वहां हिंदू नहीं बचेगा, मुसलमान नहीं बचेगा, ईसाई नहीं बचेगा।
तो तुम मेरी बात नहीं समझ पाते, तुम कुछ का कुछ समझ लेते हो। जरूर तेगबहादुर और गोविंदसिंह कुर्बानियां दिए हैं। लेकिन ये कुर्बानियां हिंदू की शरण में नहीं हैं। ये कुर्बानियां उस परमात्मा के लिए हैं।
जान पर खेलते हैं अहले-वफा
आशिकी दिल्लगी नहीं होती
हिंदू, ईसाई, मुसलमान, सिक्ख, इन शब्दों में मत अटक जाना। अन्यथा तुम्हारी हालत ऐसी हो गई कि दवा तो भूल गए, बोतल को पकड़ लिया। फिर बोतल को लिए लगाए रखो छाती से, कुछ हल होने वाला नहीं है। दवा बोतल से और है। दवा पीओ, बोतल फेंको। इसलिए कहता हूं कि हिंदू धर्म, मुसलमान धर्म, सब पागलपन है। बोतल को पकड़े हुए हैं, इसलिए कहता हूं। इसका यह मतलब नहीं है कि बोतल के भीतर जो औषधि है, वह पागलपन है। बोतल से औषधि तुम्हें अलग दिखाई पड़ने लगे, इसकी मैं पूरी चेष्टा कर रहा हूं। तुम भूल ही गए औषधि को, तुम बोतल में भटक गए हो।
रोके जो रास्ते में सो रहजन से कम नहीं
वो फूल हो कि खारे-बयाबां, चले चलो
बोतलों ने तुम्हें रोक लिया है, विशेषणों ने तुम्हें रोक लिया है, शब्दों ने तुम्हें रोक लिया है।
रोके जो रास्ते में सो रहजन से कम नहीं
और जो भी तुम्हें रोक ले चीज तुम्हारी बढ़ती से, तुम्हारे विकास से; सागर तक पहुंचने से जो भी अटका दे, उसे दुश्मन जानना। मंदिर रोक रहा है, मस्जिद रोक रही है; पंडित रोक रहा है, मौलवी रोक रहा है। जो भी रोके, उससे छूटना। तुम्हें सागर खोजना है।
देखते हो, तुम तो काशी जाते हो बहुत--गंगा काशी में रुकती है? तुम जिसके लिए काशी जाते हो, वह काशी में नहीं रुकती। वह भागी जा रही है, उसे सागर तक पहुंचना है। काशी से गुजर जाती है, काशी में रुक नहीं जाती, नहीं तो गंदा डबरा हो जाती। तुम्हें भी काशी से गुजर जाना है। और काबा से भी, और कैलाश से भी। सागर तक पहुंचना है! परमात्मा को पाना है! हां, कभी-कभी ऐसी मन की दशा होती है जब तुम अज्ञानी होते हो, तब ठीक है, मंदिर का भी उपयोग कर लेना, मस्जिद का भी उपयोग कर लेना, गुरुद्वारा का भी उपयोग कर लेना। मगर

वहां अटक मत जाना। इतनी याद बनी ही रहे कि ये साधन हैं, साध्य नहीं। जिसने साधन को साध्य समझा, उसे मैं पागल कहता हूं।
लेकिन मेरी भाषा और तुम्हारी भाषा में फर्क होना स्वाभाविक है। इसलिए तुम्हें अड़चन हो जाएगी। तुम्हें लग रहा है कि तुम्हारे गुरुओं की निंदा हो गई। और मैं जो कह रहा हूं वह वही कह रहा हूं जो तुम्हारे गुरुओं ने कहा था। अगर वे गुरु थे, तो मैं वही कह रहा हूं जो उन्होंने कहा था। अगर उन्होंने जाना था, तो मैं जान कर कह रहा हूं। शब्द अलग होंगे, ढंग अलग होंगे।
और ख्याल रखो, यह पाठशाला नहीं है, यह विश्वविद्यालय है। यहां क ख ग की बात मत करो। फिर तुम कहीं और खोजो। और छोटी-छोटी पाठशालाएं हैं जहां क ख ग से शुरू होता है, जहां पढ़ाया जाता है--ग गधा का, ग गणेशजी का, वहां तुम जाओ। यहां हम सब गधे और सब गणेशजी को छोड़ कर आगे बढ़ रहे हैं। यहां उनके लिए जगह है जो काशी छोड़ कर सागर तक जाने की तैयारी रखते हैं। जो कहें--काशी कैसे छोड़ें? काशी तो पवित्र भूमि है! तो डबरे बन जाएंगे।
तुम्हें बहुत बार अड़चन होती है, मैं जानता हूं। कुछ कहानियां तुमसे कहूं--क्योंकि निहालचंद पंजाब से हैं, कहानियां शायद समझ लें।
एक आदमी ने बड़ी कोशिशों के बाद ब्लैक मार्केट से घी के दस कनस्तर खरीदे और अपने नौकर को अकेले में ले जाकर कहा, किसी को कानोंकान खबर न हो, बगीचे में एक गड्ढा खोद कर उसमें यह घी छिपा दो। थोड़ी देर बाद नौकर वापस आया और बोला, साहब, आपने कहा था सो गड्ढा खोद कर घी तो छिपा दिया, अब इन खाली डिब्बों का क्या करूं?
दूसरी कहानी--
एक इंस्पेक्टर महोदय एक स्कूल में मुआइना करने गए। एक कक्षा में विद्यार्थी बहुत शोर मचा रहे थे। इंस्पेक्टर महोदय ने उस कक्षा के अध्यापक को पास बुलाया और कहा, क्या बात है मास्टर जी, लगता है ये बच्चे आपसे डरते नहीं हैं?
तो मैं ही इनसे कौन सा डरता हूं! मास्टर जी ने तपाक से उत्तर दिया।
तीसरी कहानी--
एक उच्च जिलाधिकारी शाम को क्लब में आए। अन्य अधिकारी मित्रों के बीच बैठते हुए उन्होंने अपनी जेब से अपनी फोटो निकाली और पूछा, जरा देखना यार, मेरी पत्नी कहती है कि फोटो में तुम बेवकूफ दिखाई देते हो।
एक अधिकारी ने फोटो हाथ में लेकर गौर से देखा और बोला, नहीं साहब, फोटो में तो आप बिल्कुल बेवकूफ दिखाई नहीं देते।
हमारे समझ के तल होते हैं।
यहां सदगुरुओं ने जो कहा है उसका गुणगान हो रहा है। और तुम सोच रहे हो
कि निंदा हो रही है। तुम अपनी कृपाण इत्यादि लेकर मत आ जाना, कि यहां सदगुरुओं की निंदा हो रही है! तुम जरा धीरज रखना! तुम कहीं चिल्ला मत देना--वाह गुरुजी का खालसा! वाह गुरुजी की फतह!
मुझे सुनते वक्त बहुत धीरज और सहानुभूति की जरूरत है। अन्यथा नासमझी होगी। लाभ नहीं होगा, हानि हो जाएगी। तुम कुछ लेने आए हो, बिना लिए चले जाओगे, खाली हाथ चले जाओगे। और तुम्हीं जिम्मेवार होओगे। मैं तुम्हारी झोली पूरी भर देने को तैयार हूं। लेकिन कम से कम तुम्हें मेरे साथ थोड़ा धैर्य रखना होगा। तुम्हें मेरे रंग-ढंग समझने होंगे। तुम्हें मेरी भाषा से थोड़ी पहचान बनानी होगी।
एक साहित्यिक डाक्टर अपने रोगी से बोला, रात्रि को निद्रादेवी आई थीं क्या?
अपढ़ रोगी बोला, के मालूम साब; मैं तो बीनै जानूं भी कोनीं। अर दूसरा, मैं तो सूत्यो थो। क्या मालूम साहब, मैं तो जानता भी नहीं। और दूसरी बात, मैं सो रहा था। तो निद्रादेवी आईं कि नहीं, क्या पता!
सदमे खाओ! जागो! चोट तुम्हें पहुंचाता हूं। लेकिन तुम अपनी चोट को यह
मत समझ लेना कि मैंने वह चोट अतीत में हुए सदगुरुओं को पहुंचाई। तुम्हें चोट पहुंचा रहा हूं, क्योंकि तुम्हें जगाना है। तुम्हें चोट पहुंचाने के लिए कभी-कभी मुझे ऐसे सख्त शब्दों का भी उपयोग करना पड़ता है जो मैं स्वयं

चाहूंगा कि न करता तो अच्छा था। लेकिन कोई और उपाय दिखाई नहीं पड़ता। जब तक मैं शास्त्रों के खिलाफ न बोलूं, तब तक तुम जागते नहीं। मुझे पीड़ा भी होती है। क्योंकि मैं जो कह रहा हूं, वह शास्त्र है। लेकिन जब तक मैं शास्त्र के खिलाफ न बोलूं, तुम अपने शास्त्र को छाती से लगाए बैठे हो। मुझे शास्त्र के प्रति सम्मान है, इसलिए शास्त्र के खिलाफ भी बोलता हूं। शास्त्र तुमसे छूट जाए तो शास्त्र में जो छिपा है, वह प्रकट हो। कभी मंदिर-मस्जिद के खिलाफ बोलता हूं। चाहता हूं कि यह पृथ्वी मंदिर बन जाए, इसलिए, कि मस्जिद बन जाए, इसलिए। कभी तुमसे कहता हूं कि छोड़ दो सब यह हिंदू, मुसलमान, ईसाई, सिक्ख, जैन, बौद्ध की बकवास! क्योंकि तुम व्यर्थ में उलझ गए हो, सार्थक भूल ही गया है। यह बकवास छूट जाए तो तुम्हें सार्थक दिखाई पड़ जाए।
वह सार्थक वही है जो नानक ने कहा, कबीर ने कहा, बुद्ध ने कहा, महावीर ने कहा। वह दूसरा हो ही नहीं सकता। मैं लाख उपाय करूं, तो भी तुमसे कुछ ऐसा नहीं कह सकता जो पहले जानने वालों ने नहीं कहा है। सब कहा जा चुका है। लेकिन अब तुम्हारे हाथ में अंगार नहीं है, राख है। और यह भी मैं जानता हूं कि राख अंगार से ही पैदा होती है। कभी अंगार रहा होगा।
जब नानक ने अपनी बात वही, तो उसमें अंगार था। जिन्होंने झेली थी, वे अदभुत लोग थे। तुम वे नहीं हो--आज जो अपने को सिक्ख कहते हैं, तुम नहीं झेल पाते नानक को। जिन्होंने झेली थी वे अदभुत लोग थे। तुम जैसे लोग तो नानक के खिलाफ थे। यह बड़े मजे की बात है। जो आज अपने को सिक्ख कहते हैं, इस तरह के लोग तो नानक के खिलाफ थे। क्योंकि इस तरह के लोग तब गीता से बंधे थे, कुरान से बंधे थे। नानक ने जब पहली दफा अपनी बात कही, तो स्वभावतः तुम्हें गीता से भी छुड़ाया, कुरान से भी छुड़ाया। गीता के भी और कुरान के भी जो मोही थे, उनके मन को चोट पड़ी होगी। वैसी ही चोट जैसी तुम्हें यहां पड़ रही है। तिलमिला गए होंगे। नाराज हो गए होंगे। पूछा होगाः तो क्या हमारे रामचंद्रजी गलत? कृष्णचंद्रजी गलत? तो कुरान गलत?
लेकिन नानक वही कह रहे हैं जो कुरान में कहा गया है और जो गीता में कहा गया है। लेकिन अब नई भाषा दे रहे हैं। पुरानी भाषा विकृत हो गई। तुम्हारे हाथ में बहुत दिन रह ली; तुम्हें तो नहीं बदल पाई, तुमने उसे बदल दिया। राख हो गई। अब उस राख से छुटकारा चाहिए। फिर अंगारा!
अंगारा तो वही झेलता है जिसमें हिम्मत हो। जलने की हिम्मत हो। मिटने
की हिम्मत हो। जिन्होंने झेला, वे पहले सिक्ख थे। सिक्ख शब्द जानते हो, शिष्य से आया है! वे झुके। उन्होंने स्वीकार किया। फिर पीछे जो सिक्ख हुए, वे तो सिर्फ पैदाइशी सिक्ख हैं। अब मजबूरी है। ऐसे अनेक सिक्खों को मैं जानता हूं, छुटकारा चाहते हैं केश से भी, दाढ़ी से भी! मगर अब क्या करें! सिक्ख घर में पैदा हुए हैं तो खींचना पड़ता है, परंपरा है। लेकिन शिष्यत्व कहीं भी नहीं है अब। राख ही राख रह गई है। अब अगर नानक फिर आएं, तो तुम उनसे राजी न हो सकोगे। और मैं तुमसे जो कह रहा हूं वह वही कह रहा हूं जो नानक फिर आएं तो तुमसे कहेंगे। अब की बार नानक आएं तो गुरुग्रंथ साहब से तुम्हें छुड़ाना होगा। तुम्हें फिर अड़चन होगी। यह सदा होता रहा।
जीसस को यहूदियों ने मार डाला, क्योंकि जीसस ने जो बात कही वह वही थी
जो मूसा ने कही थी। जीसस का मूसा से अपूर्व प्रेम था। तुम जान कर यह हैरान होओगे कि जीसस सूली से बच गए थे। कैसे बच गए, यह तो लंबी कथा है, लेकिन इतना तय है कि सूली से बच गए थे। सूली से बच कर जीसस कहां गए? सूली से बच कर जीसस भारत की तरफ आए--कश्मीर आए। क्यों आए कश्मीर? सिर्फ इसलिए आए कि कश्मीर में मूसा की लाश गड़ी है। मूसा की देह कश्मीर में है। मूसा की तलाश में आए। उन्हीं की कब्र के पास कहीं सो जाने के मन से आए। मूसा के प्रति ऐसी चाहत थी।
लेकिन जो जीवन भर किया, वह ऐसा था कि मूसा को मानने वालों ने सूली लगा
दी थी। सूली में कुछ व्यवस्था बन गई, जीसस बच सके। जिस आदमी ने सूली दी, जो गवर्नर जनरल था, वह चाहता नहीं था कि सूली दे। पांटियस पायलट जीसस से प्रभावित हो गया था। वह रोमन था, यहूदी नहीं था; उसे कोई विरोध भी नहीं था जीसस से। रोम का साम्राज्य था इजरायल पर, वह गवर्नर था रोम का, वह चाहता था जीसस को बचा ले। उसने बहुत कोशिश भी की। उसका पत्र पाया गया है, जिसमें

उसने जीसस की बड़ी प्रशंसा की है। लेकिन यहूदियों ने बड़ा जोर मारा। उन्होंने कहा कि अगर तुम नहीं जीसस को सूली दोगे तो हम सम्राट से प्रार्थना करेंगे कि गवर्नर को बदला जाए। इतनी झंझट में वह भी नहीं पड़ना चाहता था, अपना पद वह भी नहीं खोना चाहता था। और यहूदी एकमत से जीसस को सूली देना चाहते थे। इसलिए पांटियस पायलट ने इस ढंग से सूली दी कि जीसस बच जाएं।
उन दिनों जिस ढंग से सूली दी जाती थी, उसमें आदमी को मरने में कम से कम तीन दिन से सात दिन लगते थे। बड़ी पीड़ादायी थी। हाथों में कीले ठोंक दिए जाते थे, पैर में कीले ठोंक दिए जाते थे और लटका दिया एक तख्ते पर। आदमी एकदम नहीं मरता। इतनी जल्दी नहीं मर सकता। हाथ और पैर में कोई मरने की बात नहीं है। खून बहता, खून बहता, खून सूख जाता, बहना बंद हो जाता, आदमी लटका है। तीन से लेकर सात दिन तक मरने में लगते थे। पांटियस पायलट ने एक तरकीब की। उसने शुक्रवार की शाम को, जब दोपहर ढलती थी तब जीसस को सूली दी। यहूदियों का नियम है कि कोई भी व्यक्ति शनिवार को सूली पर न लटका रहे--वह उनका पवित्र दिन है। यह होशियारी की पांटियस पायलट ने, वह चाहता था जीसस को बचा लेना। उसने सूली ऐसे मौके पर दी कि सांझ के पहले, सूरज ढलने के पहले जीसस को सूली से उतार लेना पड़ा। बेहोश हालत में वे उतार लिए गए। वे मरे नहीं थे। फिर उन्हें एक गुफा में रख दिया गया और गुफा उनके एक बहुत महत्वपूर्ण शिष्य के जिम्मे सौंप दी गई। मलहम-पट्टियां की गईं, इलाज किया गया और जीसस सुबह होने के पहले वहां से भाग गए।
लेकिन मन में उनके एक ही आशा थी--जाकर मूसा की कब्र के करीब विश्राम करना है!
इसके पहले मूसा भी कश्मीर आकर मरे। कश्मीर मरने लायक जगह है। पृथ्वी
पर स्वर्ग है। जीसस उनकी तलाश में आए उसी रास्ते से। कश्मीरी मूलतः यहूदी हैं। कश्मीरियों का मूल उत्स यहूदी है। जीसस काफी वर्षों तक जीए कश्मीर में। उनकी कब्र भी कश्मीर में बनी।
जीसस ने वही कहा जो मूसा ने कहा था, लेकिन यहूदियों ने सूली लगा दी। अगर जीसस फिर लौट कर आएं, तो अब की बार ईसाई उन्हें सूली लगाएंगे।
सत्य सदा सूली पर। झूठ सदा सिंहासन पर। क्योंकि झूठ तुम्हारी फिकर करता है; तुम्हें जो रुचे, वही कहता है; तुम्हें जो भाए, वही कहता है; तुम्हें चोट नहीं पहुंचाता। तुम्हें फुसलाता है, तुम्हें मलहम-पट्टी करता है; तुम्हें सांत्वना देता है। झूठ तुम्हारी सेवा में रत होता है। चूंकि झूठ तुम्हारी सेवा में रत होता है, इसलिए तुम झूठ से बड़े राजी और प्रसन्न होते हो। सत्य तुम्हारी सेवा में रत नहीं है, सत्य तो सत्य की सेवा में रत है। तुम्हें चोटें पहुंचती हैं।
आईना मुंह पे बुरा और भला कहता है
सच ये है, साफ जो होता है साफ कहता है
फिर चाहे नानक हों, चाहे कबीर, आईने हैं, दर्पण हैं। तुम अगर मेरे आईने में झांकोगे तो सोच कर, समझ कर झांकना। आईने पर नाराज मत हो जाना, क्योंकि आईना सिर्फ तुम्हारी शक्ल बतलाएगा। अब अगर आईने में बंदर झांकेगा तो बंदर ही दिखाई पड़ेगा, कोई देवता दिखाई नहीं पड़ सकता, यह ख्याल रखना। और बंदर को जब आईने में बंदर दिखाई पड़ेगा तो बंदर नाराज हो जाए, यह भी स्वाभाविक है। आईने को तोड़ने-फोड़ने को तैयार हो जाए, यह भी स्वाभाविक है।
तुम्हें चोट लगती है मुझसे, चोट तुम्हें लगनी ही चाहिए। मगर चोट इसलिए ही है कि तुम जागो। चोट तुम्हें किसी तरह से अपमान करने के लिए नहीं है, चोट तुम्हारा सम्मान है। इसलिए फिर कहूंः मेरी बात को बहुत धीरज से, बहुत शांति से समझने की कोशिश करना, जल्दी निष्कर्ष मत लेना।
पहले मित्र ने कहाः "मैं तो आपको पूर्ण मानता हूं और संत भी। लेकिन आपने कहा कि न मैं पूर्ण हूं और न संत। इससे मुझे बड़ा सदमा लगा। मैं रात भर सो भी न सका।"
जब मैंने कहा कि न मैं पूर्ण हूं, न संत, तो तुम्हें सोचना था, तुम्हें पुनर्विचार करना था, तुम्हारी अपनी धारणाएं एक तरफ रख देनी थीं। लेकिन तुम्हारी धारणाओं को चोट लगी। तुम अगर मानते हो कि मैं संत हूं और मैंने

कहा मैं संत नहीं हूं, तो तुम्हारी धारणा को चोट लगी, तुम्हारे अहंकार को चोट लगी। तुम मेरे शिष्य इसीलिए हो गए हो कि तुम मुझे संत मानते थे और अब मैं ही कह रहा हूं कि मैं संत नहीं हूं, तो बड़ी मुश्किल की बात हो गई। कहां झंझट में तुम पड़ गए! तुम्हारे अहंकार को बड़ी तृप्ति मिल रही थी कि तुम किसी संत के शिष्य हो गए हो और अब वह तृप्ति कैसे मिलेगी?
तुम थोड़ा समझना। जब मैंने कहा है कि मैं संत नहीं हूं, तो जरूर कोई बात कही होगी जो संतत्व से भी ऊपर जाती है। कुछ बात कही होगी जो पूर्णत्व से भी ऊपर जाती है। मैं तुम्हें ऊपर की यात्रा पर ले चला हूं। तुम जितना समझने लगोगे, उतने ऊपर की बात कहूंगा। इसलिए मेरी बातों में तुम्हें विरोधाभास मिलेगा, क्योंकि मैं तुम्हारे साथ तुम्हें आगे बढ़ाने की कोशिश में लगा हूं। एक-एक सीढ़ी तुम चढ़ते हो, जो सीढ़ी तुम चढ़ जाते हो, वह मैं इनकार कर देता हूं, ताकि आगे की सीढ़ी पर बढ़ो। हर सीढ़ी तुमसे छीन लेनी है, ताकि तुम बढ़ते ही जाओ। और एक दिन उस अनंत में प्रवेश कर जाओ जहां कोई सीढ़ियां नहीं हैं, जहां केवल छलांग होती है।

तीसरा प्रश्नः संन्यास लेने में अहंकार ही सबसे बड़ी बाधा है। तो इसको कैसे हटाया जा सकता है? अहंभाव जाता नहीं।

हटाने से जाएगा भी नहीं। हटाएगा कौन? जो हटाता है वही तो अहंकार है। अगर हटा दिया किसी तरह, तो विनम्रता का अहंकार पैदा हो जाएगा, और कुछ भी न होगा। एक अकड़ हो जाएगी कि मुझ जैसा विनम्र कोई भी नहीं। देखो मैं कितना सीधा-सादा! कितना झुका हुआ! समर्पित! यह नया अहंकार होगा। तुम जो भी करोगे, उससे अहंकार बढ़ेगा। तुम्हारे करने से अहंकार घट ही नहीं सकता। अहंकार नई शक्लें ले सकता है, नये रूप ले सकता है, नये वेश-परिधान ले सकता है, लेकिन अहंकार मिटेगा नहीं।
फिर क्या करना है?
अहंकार को समझो, मिटाने की जल्दी करो ही मत। जल्दी क्या है? अहंकार को समझो कि क्या है। जो आदमी मिटाने की कोशिश करता है, वह समझने की कोशिश से बच रहा है। और बिना समझे अहंकार जाता नहीं। अहंकार मिटाया नहीं जाता, जब समझ का दीया जल जाता है तो अहंकार नहीं पाया जाता। जैसे दीया जला कि अंधेरा गया। अहंकार अंधेरा है।
तुम पूछते होः "संन्यास लेने में अहंकार सबसे बड़ी बाधा है। तो इसको हटाया कैसे जा सकता है?"
हटाने का तो मतलब यह हुआ कि तुम मानते हो कि अहंकार कुछ है। अहंकार कुछ भी नहीं है, भ्रांति है। इसको हटा नहीं सकते। भ्रांति को कोई कैसे हटाएगा? समझो राह पर तुमने एक रस्सी पड़ी देखी और तुम्हें अंधेरे में दिखाई पड़ा कि सांप है! और किसी ने तुमसे कहा कि व्यर्थ भागे जा रहे हो, कहां भागे जा रहे हो, वहां कोई सांप-वांप नहीं है, मुझे भलीभांति पता है, मैंने दिन के उजाले में देखा है, रस्सी पड़ी है। सच तो यह है कि मैंने ही फेंकी है, तुम मेरी बात का भरोसा करो, वहां कोई सांप-वांप नहीं है। तुम कहते हो, अच्छा मान लिया कि सांप नहीं है, मगर अब सांप को हटाया कैसे जाए? तो मैं बंदूक लेने जा रहा हूं, कि तलवार उठाने जा रहा हूं। तो तुम समझे ही नहीं। अहंकार हटाया कैसे जाए, इसका मतलब हुआ कि अहंकार है, कोई वास्तविक पदार्थ है अहंकार।
अहंकार कोई वास्तविक पदार्थ नहीं है, भ्रांति है। तुमने अपने को ठीक
से नहीं देखा, इसलिए जैसा तुम अपने को समझ रहे हो, वह भ्रांति है। जब ठीक से देखोगे, अचानक पाओगे--अहंकार नहीं है, आत्मा है; अहंकार नहीं है, परमात्मा है। इस जिंदगी को गौर से समझने की कोशिश करो। अहंकार ने किन बातों का सहारा लिया है, उनकी जरा परख करो।
मैंने पूछा जो जिंदगी क्या है
हाथ से गिरके जाम टूट गया
तुमने जिंदगी का सहारा लिया अहंकार के लिए, और जिंदगी क्या है? रेत पर खींची गई लकीरें। या रेत पर बनाए गए महल। या कागज की नाव। इस जिंदगी पर

इतने इतरा रहे हो? जो अभी है और अभी नहीं हो जाएगी! इस जिंदगी का सहारा लेकर अहंकार को खड़ा कर रहे हो?
मैंने पूछा जो जिंदगी क्या है
हाथ से गिरके जाम टूट गया
यह तो टूट जाने वाली बात है। जिंदगी को ठीक से पहचानो, यह क्षणभंगुर है, पानी का बबूला है। फिर अकड़ कहां? अकड़ तभी तक है जब तक तुम सोचते हो-- जिंदगी कुछ टिकने वाली चीज है।
वही चार तिनके पयामे-कफस थे
जिन्हें हम समझते रहे आशियाना
चार तिनके!
वही चार तिनके पयामे-कफस थे
जिन्हें हम समझते रहे आशियाना
जिसको तुम घर समझ रहे हो, वही कब्र बन जाएगी। वे ही चार तिनके तुम्हारा कफन बन जाएंगे जिनको तुमने आशियाना समझा है। जरा जिंदगी को गौर से देखो। यहां सब तो मर रहा है। यहां सब तो धू-धू कर जल रहा है। यहां हर चीज तो मृत्यु के मुंह में चली जा रही है। हम सब तो मृत्यु के मुंह में सरक रहे हैं। कतार लगी है, लोग मृत्यु में डूबते जा रहे हैं, विदा होते जा रहे हैं। इस जिंदगी में है क्या जिसके सहारे तुम अस्मिता को संगृहीत करते हो? कहते हो मैं हूं?
यूं तसल्ली दे रहे हैं हम दिले-बीमार को
जिस तरह थामे कोई गिरती हुई दीवार को
यह दीवार तो अपने से गिर रही है। तुम पूछते होः इसको गिराएं कैसे? यह
तो दीवार गिर ही रही है, तुम थामो भर मत, जरा दूर खड़े होकर देखो।
यूं तसल्ली दे रहे हैं हम दिले-बीमार को
जिस तरह थामे कोई गिरती हुई दीवार को
अहंकार की कोई वास्तविकता नहीं है। फिर अहंकार की क्या व्याख्या करें? अहंकार की व्याख्या इस भांति समझो। तुम बाहर देख रहे हो, तो अहंकार है; तुम भीतर देखोगे, अहंकार विदा हो जाएगा। ध्यान में लगो, अहंकार से लड़ने की फिकर ही छोड़ो। अहंकार से लड़ना वैसे ही है जैसे कोई अंधेरे से लड़े और अंधेरे को धक्के दे और निकालना चाहे। नहीं, मैं कहता हूं, तुम दीया जलाओ, ध्यान में लगो, प्रार्थना में लगो, दीया जलाओ, भीतर मुड़ो; आंख बंद करो और भीतर देखना शुरू करो--क्या है? तुम एक बात पाओगे, अहंकार कभी न पाओगे। और जहां अहंकार नहीं है, वहीं परमात्मा है। परमात्मा तुम्हारा वास्तविक स्वरूप है, अहंकार तुम्हारी भ्रांति है। जैसे सांप में रस्सी देख ली किसी ने, या रस्सी में सांप देख लिया किसी ने, ऐसी अहंकार भ्रांति है। कुछ का कुछ देख लिया है। जो है उसको वैसा ही देख लेना परमात्म-अनुभव है।
और निश्चित ही संन्यास लेने में अहंकार सबसे बड़ी बाधा है। लेकिन संन्यास अहंकार से मुक्त होने में सबसे बड़ा साधक है। ये दोनों बातें ख्याल में रखो। इन दोनों में से चुनो। ये दोनों संभावनाएं खुलती हैं। अगर तुम संन्यास की तरफ झुकने लगे तो अहंकार से मुक्त होने लगोगे। अगर तुम अहंकार की तरफ झुकने लगे तो संन्यास लेना कठिन होता जाएगा। इसलिए मैं कहता हूं, अहंकार बाधा है। इसका यह मतलब नहीं है कि जब अहंकार तुम्हारा मिटेगा तब तुम संन्यास ले सकोगे। यह चुनाव है। तुम एक दोराहे पर खड़े हो, जहां एक राह अहंकार की तरफ जाती है, एक संन्यास की तरफ जाती है। एक पर ही चला जा सकता है। इसलिए मैं कहता हूं, अहंकार बाधा है। अगर अहंकार को चुना और अहंकार के रास्ते पर चले, तो संन्यासी न हो सकोगे। अगर संन्यास के रास्ते पर चले, तो अहंकारी न हो सकोगे।
लेकिन तुम्हारा मन बड़ा होशियार है। तुम संन्यास लेने से डरते भी होओगे, संन्यास लेने से बचना भी चाहते होओगे। तुम्हें मेरी बात में सहारा मिल गया। तुमने सुना कि अरे, अहंकार बाधा है; तब तो बात मिल गई, कुंजी मिल गई। अब संन्यास कैसे लें? जब तक अहंकार न मिटे तब तक संन्यास कैसे लेंगे? और अहंकार पहले मिटना चाहिए, फिर सोचेंगे संन्यास की बात। न मिटेगा अहंकार, न लेंगे संन्यास। झंझट मिटी। न रहा बांस, न बजेगी बांसुरी।

तुम मेरी बात से अपने मतलब मत निकालो। जब मैंने कहा कि अहंकार बाधा है, तो मैंने सिर्फ इतना ही कहा कि अगर तुम अहंकार चुनते हो, तो संन्यास न चुन सकोगे। अगर संन्यास चुनते हो, तो फिर अहंकार न चुन सकोगे। ये दोनों विपरीत हैं। इनमें से एक को ही सम्हाल सकते हो, दोनों को साथ नहीं सम्हाल सकते। अब तुम्हारे हाथ में है, क्या चुनते हो। दोनों रास्ते खुले हैं। अगर सच में ही अहंकार से मुक्त होना चाहते हो, संन्यास चुनो। और अभी अहंकार है, यह भी सच है। लेकिन संन्यास को चुनते ही रूपांतरण की क्रिया शुरू हो जाएगी। बीमार हो, माना, लेकिन औषधि न लोगे तो बीमारी मिटेगी कैसे?
और यह भी ध्यान रखना कि बीमारी औषधि के काम करने में बाधा डालती है। इसीलिए तो समय लगता है। कोई एकाध घूंट औषधि पी लेने से तो बीमारी नहीं मिट जाती, महीनों दवा लेनी पड़ती है तब धीरे-धीरे बीमारी जाती है। दवा में और बीमारी में संघर्ष होगा। मगर तुम कहोगे कि जब तक मैं बीमार हूं, दवा कैसे पीऊं? क्योंकि बीमारी दवा के काम में बाधा डालती है। मैं तो दवा तब पीऊंगा जब बीमारी मिट जाएगी। लेकिन तब दवा किसलिए पीओगे? फिर पागल हो गए हो? फिर और बीमार होना है?
अहंकार मिट गया, फिर संन्यास का क्या करोगे? संन्यास औषधि है, अहंकार व्याधि है। और अहंकार अड़चनें डालेगा संन्यास की प्रक्रिया में। लेकिन औषधि को अगर लिया और लेते ही रहे, तो आज नहीं कल, कल नहीं परसों, रोग हारेगा, निरोग तुम हो सकोगे। हिम्मत करो! अहंकार बाधा इतनी नहीं डाल रहा है जितनी तुम सोच रहे हो। क्योंकि जिन्होंने संन्यास लिया है, उनके लिए भी यही सवाल था। तुम्हारे लिए भी वही सवाल है। अहंकार को किनारे हटाओ और छलांग लो। अहंकार से भी ज्यादा बड़ी बाधा भय है। तुम डरते होओगे--लोग क्या कहेंगे? लोग हंसेंगे। कहेंगे--पागल हो गए? सम्मोहित हो गए? भले-चंगे गए थे, यह क्या हो गया? सत्संग करने गए थे, यह क्या हो गया? तुम लोगों से डरे हुए हो। तुम जरा शांत बैठ कर सोचना, कल्पना करना कि तुमने संन्यास ले लिया। गैरिक वस्त्र पहन कर, माला डाल कर, पागल बन कर अपने गांव पहुंचे हो-- जरा कल्पना करना--स्टेशन पर उतरे हो, स्टेशन मास्टर पूछता है कि अरे, क्या हो गया? कुली हंसता है कि भई ये कैसे कपड़े पहन लिए? ये तो कुलियों के कपड़े हैं! ये तो हम पहनते हैं। यह आपको क्या हो गया? तांगावाला नीचे से ऊपर तक देखेगा। आप ही हैं क्या? पूछेगा! अच्छे-भले गए थे दस दिन पहले, अब क्या हुआ? और मन कहने लगेगा--क्या करें, स्टेशन जाकर कपड़े बदल लें? क्योंकि अभी तो बस्ती की शुरुआत भी नहीं हुई है! अभी तो सारा गांव चौंकेगा! अभी तो भीड़ इकट्ठी हो जाएगी बाजार पहुंचते ही से! लोग हजार तरह की सलाह देंगे। लोग सलाह तो मुफ्त देते हैं। जिन्हें कुछ स्वाद नहीं है संन्यास जैसी किसी बात का, कोई अनुभव नहीं है, वे भी कहेंगे कि यह क्या किया? जिनको तुम सलाह देते थे, वे तुम्हें सलाह देने आएंगे। जरा आज बैठ कर दो घड़ी इसकी पूरी कल्पना करना।
फिर पत्नी मिलेगी घर, वह एकदम छाती पीट कर रोने लगेगी। क्योंकि वह सोचेगी--हो गए संन्यासी! संन्यास की उसकी पुरानी धारणा है। संन्यासी हो गए मतलब स्त्री विधवा हो गई। वह छाती पीटने लगेगी, वह चूड़ियां फोड़ने लगेगी, वह कहेगी कि मामला खत्म हो गया! तुम लाख समझाओ कि यह और तरह का संन्यास है, वह कहेगी कि संन्यास भी कहीं तरह-तरह के हुए हैं! अगर तुम अपनी पत्नी को समझाने के लिए उसका हाथ हाथ में लोगे तो वह झिड़क देगी, वह कहेगी, यह क्या करते हो? संन्यासी होकर और स्त्री को छूते हो! अब तुम घर के बाहर ही रहो। अब जो हो गया, हो गया। अब जाओ। अब तुम्हारा कोई घर-द्वार नहीं है।
इसकी सारी कल्पना करना बैठ कर आज। उससे तुम्हें पता चल जाएगा कि असली अड़चन क्या हो रही है। उस कल्पना से ही तुम्हें सूत्र मिल जाएगा। सिर्फ भय है! अहंकार इत्यादि की आड़ में मत छिपो, सिर्फ भय है। सिर्फ एक साहस चाहिए, पागल होने का साहस, फिर तुम संन्यासी हो सकते हो। यह दीवानापन है। यह दीवानों का काम है। यह मस्तों का काम है। यह पियक्कड़ों का काम है। यह बुद्धिमानों का काम नहीं है। यह होशियारों का काम नहीं है, चालबाजों का काम नहीं है।

हालांकि ज्यादा देर नहीं चलेगा यह उपद्रव। दो-चार दिन चर्चा रहेगी, खबर रहेगी, लोग विचार करेंगे, बात करेंगे, पूछेंगे, फिर सब रास्ते पर आ जाते हैं। फिर अपना सब दुनिया चलने लगती है जैसे चलती थी। कोई जिंदगी भर यह सवाल नहीं रहने वाला है। एक सप्ताह ज्यादा से ज्यादा! क्योंकि गांव में दूसरी घटनाएं भी तो घटती हैं। फिर और घटनाएं घटती हैं, लोग उनमें उलझ जाते हैं। किसी की पत्नी भाग गई, किसी के घर डाका पड़ गया, कोई चुनाव हार गया। फिर अब तुम्हारी ही बात थोड़े ही लिए बैठे रहेंगे! फिर दो-चार-आठ दिन बाद तुम्हारी कोई फिकर नहीं करेगा, कि ठीक है, बात समाप्त हो गई। स्वीकार कर लिए जाओगे।
तुम ख्याल रखना, तुम मर भी जाओगे तो भी लोग कितने दिन तुम्हारी बात करेंगे? तुम मर भी जाओगे तो कौन सा काम कितनी देर अटकेगा? रो-धो कर लोग निपट लेते हैं, फिर सब शुरू हो जाता है। लोगों को जीना है आखिर। अब तुम तो मर गए, तुम्हारा तो छुटकारा हुआ, उनको तो जीना है आखिर। दुकान भी खुलेगी-- दो-चार दिन बंद रहेगी, फिर खुलेगी, कोई और चलाएगा। पत्नी भी मुस्कुराएगी। कितने दिन रोएगी? आखिर उसे जीना है। रो-रो कर कोई कितने दिन जी सकता है? बच्चे भी फिर नाचेंगे, फिर खेलेंगे, फिर कूदेंगे। दुनिया चलती रहती है। तुम मर भी जाओ तो भी चलती रहती है।
संन्यास से कुछ अटक जाने वाला नहीं है। मगर तुम्हारे जीवन में क्रांति आ जाएगी। संन्यास का अर्थ यही होता हैः मरने के पहले मर जाना। और दुनिया में इस तरह जीने लगना जैसे तुम हो ही नहीं। अपूर्व आनंद है उस घड़ी का जब तुम दुनिया में ऐसे जीने लगते हो जैसे हो ही नहीं। दुनिया में होते हो और दुनिया तुम्हारे भीतर नहीं होती।

चौथा प्रश्नः आप शास्त्र-ज्ञान का विरोध क्यों करते हैं?

क्योंकि शास्त्र-ज्ञान ज्ञान नहीं है, इसलिए। ज्ञान तो स्वयं पाना होता है, उधार नहीं होता, इसलिए। तुम दूसरों के शब्दों में मत उलझे रह जाना, इसलिए।
समझो, मेरे ही शब्द तुम्हारे लिए शास्त्र से ज्यादा नहीं हैं। इनके
भी मैं विरोध में हूं। ऐसा नहीं है कि मैं कृष्ण के शब्दों के विरोध में हूं, कि कबीर के शब्दों के विरोध में हूं। मैं अपने शब्दों के भी विरोध में हूं। तुम मेरे शब्दों को ही पकड़ कर मत बैठ जाना। अगर शब्दों को पकड़ कर बैठ गए, तो तुम भटक गए। शब्द कहां ले जाएंगे?
शब्द भोजन से पेट तो नहीं भरता, और शब्द पानी से प्यास भी नहीं बुझती,
और शब्द आग से तुम आंच न ले सकोगे। शब्द तो शब्द हैं, संकेत हैं, प्रतीक हैं। यथार्थ उनमें नहीं है। उनसे इशारा लो और यथार्थ की खोज में लग जाओ। तो एक दिन जब तुम सत्य को जानोगे, तो ज्ञान होगा। ज्ञान तुम्हारे और सत्य के बीच घटने वाला है, तुम्हारे और शास्त्र के बीच नहीं। तुम्हारे और शास्त्र के बीच जो घटता है वह स्मृति है, ज्ञान नहीं।
और वही भेद साफ समझ लेना। स्मृति ज्ञान नहीं है। शास्त्र कंठस्थ कर लिया तो तुम तोते हो गए। तुम ठीक-ठीक दोहराने लगे गीता, तो भी तुम कृष्ण तो नहीं हो जाओगे गीता दोहराने से। तुम यह तो नहीं कहोगे कि अब मैं ठीक वही तो बोल रहा हूं जो कृष्ण ने बोला था। अब फर्क क्या रहा? मात्रा का भी भेद नहीं है, ठीक-ठीक वही बोल रहा हूं जो कृष्ण ने बोला था, जैसा बोला था वैसा ही बोल रहा हूं। लेकिन क्या तुम इससे कृष्ण हो गए? ये शब्द स्मृति हैं। कृष्ण के भीतर से आ रहे थे, तुम्हारे भीतर से नहीं आ रहे हैं। तुम्हारे हृदय में इनकी कोई जड़ें नहीं हैं।
कल मैं एक हास्य की कविता पढ़ रहा था--

बिना पंख मंडराना
प्रभुजी अजब कबूतरखाना

पढ़े सो पंडित लिखे सो खंडित

मंडित छापाखाना
कोरा कागज लिखि-लिखि बहि गए गुनि-जन वेद पुराना
साधो भवसागर तरि जाना

पोथी ऊपर पोथी बैठी
पोथिन नहीं ठिकाना
बांचन वाले बांचि न पाएं भौचक जग बौराना
प्रभुजी मूरख मन पतियाना

बिना सूंड़ के गणपति डोलें, डिम-डिम डिमिक सुजाना
गांठ-फांस बिन ज्ञान-गठरिया अपनेहि हाथ बिकाना
साधो यह जग है बेगाना

आढ़त-बाढ़त देखि धुरंधर
फुदकि फुदकि इतराना
जगमग चोला डगमग खोला
पारि उतर कहं जाना
यह जग सागर माहिं बिलाना
बिना पंख मंडराना
प्रभुजी अजब कबूतरखाना

बिना पंख मंडराने की कोशिश चल रही है।
... अजब कबूतरखाना
पंख तुम्हारे भीतर ऊगने चाहिए। किसी और के पंखों से तुम कैसे उड़ोगे? किसी और की आंखों से तुम कैसे देखोगे? मेरी आंख तुम्हें उपलब्ध है, लेकिन फिर भी तुम मेरी आंख से तो न देख सकोगे। देखोगे तो अपनी ही आंख से। ज्यादा से ज्यादा मेरी आंख पर भरोसा कर सकते हो, लेकिन भरोसा थोड़े ही ज्ञान है। विश्वास कर सकते हो, लेकिन विश्वास थोड़े ही अनुभव है। प्रत्यभिज्ञा कैसे होगी? प्रतीति कैसे होगी? स्वानुभव कैसे होगा? और स्वानुभव स्वतंत्रता है। इसीलिए शास्त्र-ज्ञान के विरोध में हूं।
लेकिन मैं जानता हूं कि दुनिया में बहुत हैं जो शास्त्र-ज्ञान के विरोध में नहीं हैं। पंडित हैं, पुरोहित हैं, वे कैसे शास्त्र-ज्ञान के विरोध में हो सकते हैं? वे खुद भी शास्त्र ही हैं। ज्ञान तो वहां भी नहीं है। उन्होंने भी पढ़ा है, वही तुम्हें समझा रहे हैं। उन्होंने भी जाना नहीं है। वे भी तुम्हारे जैसे अंधे हैं। अंधा अंधा ठेलिया, दोनों कूप पड़ंत। सम्हल कर चलना जरा। उन अंधों को सिर्फ इसी बात की कोशिश है कि किस तरह अपनी किताब तुम्हें बेच दें।
मैंने सुना है, दिल्ली में एक आदमी बस से टकरा कर गिर पड़ा। लोग उसे चारों ओर से घेर कर खड़े थे। इतने में उसे होश आया, उसने पूछा, भाई मैं कहां हूं? भीड़ में से तुरंत एक आदमी ने एक किताब उसकी ओर बढ़ाई और कहा, यह लीजिए दिल्ली-गाइड, कीमत सिर्फ एक रुपया।
किताब बेचने वाले लोग हैं। उनकी उत्सुकता इतनी ही है कि तुम उनकी किताब मान लो, कि तुम उनकी किताब के पीछे खड़े हो जाओ, कि तुम भी उनके शब्दों में भरोसा कर लो।
शब्दों के व्यवसाय से सावधान होना। शब्द सत्य की खोज में बड़ी बाधा बन जाते हैं। बनने तो चाहिए साधक, बन नहीं पाते साधक। तुम उन्हीं में बैठ जाते हो। तुम सोच लेते हो कि प्रेम शब्द सीख लिया तो प्रेम आ गया। और प्रार्थना शब्द सीख लिया तो प्रार्थना आ गई। और परमात्मा शब्द को दोहराने

लगे तोते की तरह तो परमात्मा मिल गया। यह सस्ती बात हो गई, बड़ी सस्ती बात हो गई। जीवन इतने सस्ते हाथ नहीं आता। जीवन के लिए कीमत चुकानी पड़ती है।

पांचवां प्रश्नः
गरीब जानके हमको न तुम भुला देना
तुम्हीं ने दर्द दिया है, तुम्हीं दवा देना

दर्द में ही दवा है। दर्द के अतिरिक्त और कोई दवा नहीं है। इसीलिए तो मैंने तुमसे कहा कि विरह में मिलन छिपा है। आंसुओं में मुस्कुराहट छिपी है। अगर तुम हृदयपूर्वक रो सको, तो मिलन हो जाए। तुम दर्द ही नहीं उठने देते, वही तकलीफ है, वही अड़चन है। तुम दवा की तलाश में हो, और दवा दर्द की गहराई में है। इसलिए तो तुमसे बार-बार कहता हूं--रोओ! पुकारो! चीखो! तड़पो! मछली की तरह तड़पो! जैसे मछली को किसी ने सागर से खींच कर किनारे पर पटक दिया हो। तुम ऐसी ही मछली हो जिसका सागर खो गया है और संसार की कड़ी धूप और गर्म रेत में तुम पड़े हो। तड़पो! दवा की तलाश मत करो। पुकारो! उछलो-कूदो! उसी उछल-कूद से सागर में वापस लौट जाने की व्यवस्था है। जिस दिन दर्द इतना गहरा हो जाए कि दर्द ही बचे और दर्दी न बचे, उसी दिन दवा हो जाती है। दर्द का हद से गुजर जाना है दवा हो जाना।
अंगूर में थी मय यह पानी की चंद बूंदें
जिस दिन से खिंच गई है, तलवार हो गई
आदमी और आदमी में इतना फर्क पड़ जाता है। एक साधारण संसारी है और एक भक्त। इतना फर्क पड़ जाता है, जैसे--
अंगूर में थी मय यह पानी की चंद बूंदें
जब तक अंगूर में रहती है शराब तो कुछ भी नहीं है, पानी की चंद बूंद।
जिस दिन से खिंच गई है, तलवार हो गई
जब तक तुम छोटी-छोटी पीड़ाओं में पड़े हो, तुम पानी की चंद बूंद हो। धन
के लिए रो रहे। यह भी कोई रोना है! आंसू जैसी कीमती चीज धन जैसी बेकीमत चीज के लिए गंवा रहे हो! यह भी कोई रोना है! पत्नी मर गई, पति मर गया और तुम रो रहे हो। यह भी कोई रोना है! क्योंकि जो मरना ही था, वह मर गया, वह मरने ही वाला था। यहां सब मरणधर्मा हैं। अमृत के लिए रोओ! मरणधर्मा के लिए रोकर तुम व्यर्थ ही अपना समय खराब कर रहे हो। अपनी आंखें गला रहे हो। मकान गिर गया और तुम रो रहे हो? यहां सब मकान गिर जाने हैं। यहां कोई मकान टिकने वाला नहीं है। यहां सब मकान खंडहर हो जाने वाले हैं। तुम किन चीजों के लिए रो रहे हो? आंसू जैसी बहुमूल्य चीज कहां गंवा रहे हो? इनसे तो हीरे खरीदे जा सकते हैं, तुम कंकड़-पत्थरों में गिरा रहे हो।
अंगूर में थी मय यह पानी की चंद बूंदें
जिस दिन से खिंच गई है, तलवार हो गई
जिस दिन से तुम्हारे आंसू परमात्मा की तलाश में निकल पड़ेंगे, तुम्हारे भीतर तलवार पैदा हो जाएगी। तुम पर धार आ जाएगी। तुम्हारे भीतर प्रतिभा का आविर्भाव होगा। दर्द को दबाओ मत। देखते हो, दवा शब्द बड़ा अच्छा है, उसका मतलब ही होता है--दबाना। दर्द को दबाओ मत, दवा की तलाश मत करो। दर्द को उभारो। दर्द को जगाओ।
फिर इतनी जल्दी क्या है? जिस दिन पकेगा फल उस दिन गिरेगा। इतना अधैर्य क्यों?
तुझको पा लेने में यह बेताब कैफियत कहां
जिंदगी वो है, जो तेरी जुस्तजू में कट जाए
उसकी प्रार्थना में, उसकी तलाश में, उसकी इंतजारी में--
जिंदगी वो है, जो तेरी जुस्तजू में कट जाए
पाने की इतनी जल्दी मत करो। पाना तो हो जाएगा। विरह का भी आनंद है। यह दर्द भी मीठा है। इस दर्द की मिठास अभी लो। एक दफा मिलन हो गया, फिर यह दर्द की मिठास दुबारा नहीं संभव होगी। इस दर्द की मिठास को भोग लो। यह दर्द तुम्हें मिटाएगा। यह दर्द तुम्हें गलाएगा। यह दर्द तुम्हें समाप्त कर देगा। उसी समाप्ति में तो दवा है। उसी समाप्ति में तो मिलन है।

मगर एक ही बात ख्याल रखो। मिटने में बुराई नहीं है। अगर विराट के लिए मिट रहे हो तो सौभाग्य है। क्षुद्र के लिए मत मिटना।
तुझको बर्बाद तो होना था ही बहरहाल "खुमार"
नाज कर नाज कि उसने तुझे बर्बाद किया
परमात्मा के लिए अगर बर्बाद हो जाओ तो और सौभाग्य क्या होगा?
इस दर्द को दबाओ मत। मेरा काम ही यही है कि तुम्हारा दर्द उकसाऊं, जगाऊं। तुम्हारे हृदय को छेडूं। तुम्हारे आंसुओं को गतिमान करूं। तुम्हारी प्यास को उकसाऊं, अग्नि बनाऊं। जिस दिन तुम्हारा दर्द परिपूर्णता पर पहुंचेगा, उसी घड़ी, ठीक उसी घड़ी, एक क्षण की भी फिर देर नहीं होती, विरह का पूर्ण हो जाना मिलन की शुरुआत है।
इसलिए जल्दी नहीं। अभी तो परमात्मा से कहो--

सुर न मधुर हो पाए, उर की वीणा को कुछ और कसो न!

मैंने तो हर तार तुम्हारे
हाथों में, प्रिय, सौंप दिया है,
काल बताएगा यह मैंने
गलत किया या ठीक किया है,
मेरा भाग समाप्त मगर
आरंभ तुम्हारा अब होता है,
सुर न मधुर हो पाए, उर की वीणा को कुछ और कसो न! अभी तो कहो--और दर्द चाहिए, दवा नहीं। और तड़फाओ! सुर न मधुर हो पाए, उर की वीणा को कुछ और कसो न!

जगती के जय-जयकारों की
किस दिन मुझको चाह रही है,
दुनिया के हंसने की मुझको
कौड़ी भर परवाह नहीं है,
लेकिन हर संकेत तुम्हारा
मुझे मरण, जीवन, कुछ दोनों
से भी ऊपर, तुम तो मेरी त्रुटियों पर इस भांति हंसो न! सुर न मधुर हो पाए, उर की वीणा को कुछ और कसो न!
तुम पर भी आरोप कि मेरी
झंकारों में आग नहीं है,
जिसको छू जग जाग न उठता
वह कुछ हो, अनुराग नहीं है,
तुमने मुझे छुआ, छेड़ा भी
और दूर के दूर रहे भी
उर के बीच बसे हो मेरे, सुर के भी तो बीच बसो न!
सुर न मधुर हो पाए, उर की वीणा को कुछ और कसो न!

जल्दी नहीं, अधैर्य नहीं; अभी तो दर्द को और मांगो, अभी दवा नहीं। अभी
तो दर्द के लिए झोली और फैलाओ। अभी तो दर्द को गिरने दो, अभी तो दर्द को बरसने दो मेघ बन कर--ऐसा कि बाढ़ आ जाए दर्द की।
सुर न मधुर हो पाए, उर की वीणा को कुछ और कसो न!
अभी तो पुकारो कि मेरी वीणा को और कसो। अभी तो पुकारो--मुझे और जलाओ, दग्ध करो। इसी दग्धता में दवा है।

अंतिम प्रश्नः क्षमा करें, एक बात पूछना चाहता हूं जो बहुत दिनों से मेरे मन में है। आप सहित सभी महापुरुष जो जिंदा हैं, कभी इकट्ठे क्यों नहीं होते?

जनता पार्टी बनानी है? इकट्ठा किसलिए?

सिंहों के नहिं लेहड़े, संत चलैं न जमात।
इकट्ठा होना भेड़ों की आदत है। और भेड़ें जरूर सोचती होंगी मन में कि मामला क्या है? हम तो कैसे घसर-पसर चलते हैं, एक-दूसरे में मिले-जुले चलते हैं, सिंहों की इस तरह की एकता, इस तरह का इकट्ठापन क्यों नहीं होता? जरूरत नहीं है। आदमी इकट्ठा भय के कारण होता है। समझना थोड़ा। जितना भयभीत आदमी होगा उतना ही भीड़ का हिस्सा बनना चाहता है। भीड़ में सुरक्षा मालूम होती है। इसीलिए तो तुम हिंदू हो, मुसलमान हो, ईसाई हो। तुम कोई धर्म के लिए थोड़े ही हिंदू हो। हिंदू तुम सिर्फ इसलिए हो कि हिंदुओं की इतनी बड़ी भीड़ है, इसके साथ तुम सुरक्षित हो। बीस करोड़, चालीस करोड़, साठ करोड़, अस्सी करोड़--करोड़ों की भीड़ में तुम्हें बड़ा आश्वासन मिलता है। अब अस्सी करोड़ भेड़ें चल रही हैं, उसमें तुम भी हो, तुम्हें खतरा नहीं मालूम होता। खतरा कहां? इतने संगी-साथी हैं। ये ही कमजोर दुनिया में राजनीति पैदा करवाते हैं।
दुनिया ऐसी चाहिए जहां प्रत्येक व्यक्ति व्यक्ति हो। जहां न पार्टियां हों, न धर्म हों, न संगठन हों। दुनिया का वही दिन सौभाग्य का दिन होगा, जहां प्रत्येक व्यक्ति व्यक्ति होगा। कोई क्यों हिंदू हो? क्यों मुसलमान हो? क्यों ईसाई हो? कोई क्यों किसी भीड़ का हिस्सा बने? स्वयं हो। तुम पूछते होः "क्षमा करें, एक बात पूछना चाहता हूं जो बहुत दिनों से मेरे मन में है। आप सहित सभी महापुरुष जो जिंदा हैं, कभी इकट्ठे क्यों नहीं होते?"
पहली तो बात, कोई प्रयोजन नहीं है। इकट्ठा होकर करेंगे क्या? किसी से लड़ना-झगड़ना है? कि संगठन में शक्ति है! कि सब इकट्ठे हो जाएं तो किसी से लड़ना है!
फिर अगर दो संत मिलें भी, तो क्या कहेंगे एक-दूसरे से? क्या बोलेंगे? क्या बतियाएंगे? मौन बैठे रहेंगे।
ऐसा कभी-कभी हुआ है। फरीद और कबीर का मिलना हो गया था। हुआ तो नहीं होता अगर फरीद और कबीर पर छोड़ा गया होता। शिष्यों की वजह से हो गया। फरीद यात्रा पर था और कबीर के आश्रम के पास से यात्रा गुजर रही थी, फरीद के शिष्यों ने कहा कि बड़ा शुभ होगा; विश्राम तो कहीं करना ही पड़ेगा, रात आगे के गांव में ठहरेंगे, तो कबीर के आश्रम में ही क्यों न ठहर जाएं? कबीर के शिष्यों को खबर मिली, वे भी बड़े उत्सुक हो गए। उन्होंने कबीर से कहा कि फरीद निकलते हैं, हम निमंत्रण क्यों न करें? आप दोनों साथ बैठेंगे, हमारा बड़ा सौभाग्य होगा! कुछ फूल झड़ेंगे दोनों के बीच, हमें भी सुगंध मिलेगी। कबीर ने कहा, ठीक। और फरीद ने भी कहा, ठीक।
दो दिन साथ रहे, एक शब्द नहीं बोले। न कबीर बोले, न फरीद बोले। एक-दूसरे को देखा, मस्ती में बैठे रहे। शिष्य तो बड़े ऊबे। क्योंकि उनकी उत्सुकता तो इसमें थी कि दोनों बोलें। कुछ खंडन-मंडन हो, कुछ चर्चा चले, तो कुछ मजा आए। कुछ बात में से बात निकले, कुछ विवाद हो--कौन बड़ा संत, कौन छोटा; कौन पहुंचा, कौन नहीं पहुंचा; आज पक्का ही हो जाए! बड़ी उत्सुकता से बैठे रहे। मगर कब तक बैठे रहें? घड़ी, दो घड़ी, चार घड़ी, फिर ऊब होने लगी। फिर एक-दूसरे की तरफ देखने लगे कि यह क्या तमाशा हुआ? यह तो बड़ी बेचैनी की बात हो गई। दो दिन के बाद विदाई हो गई। कबीर गांव के बाहर आकर फरीद को छोड़ भी गए, गले भी मिले, मगर बात न हुई सो न हुई, शब्द न बोला गया सो न बोला गया।
विदा होते ही से दोनों के, दोनों के शिष्य अपने गुरुओं पर टूट पड़े। फरीद के शिष्यों ने पकड़ लिया कि हद हो गई! हमें समझाते हैं आप रोज, आपकी वाणी कहां खो गई? कबीर से कुछ तो कहना था! फरीद ने कहा, जो बोलता, वह अज्ञानी। दो दर्पण सामने रखे हों, तो क्या प्रतिबिंब बने? दो शून्य पास बैठे हों, तो कैसे शब्द निर्मित हो? जो बोलता सो अज्ञानी, फरीद ने कहा। तुम क्या चाहते हो मैं बोल कर अपनी फजीहत करवाता?
कबीर के शिष्यों ने पूछा, आप चुप क्यों रहे? आपकी वाणी में तो ऐसा ओज, फरीद को भी तो थोड़ा रस देते! हम पर तो आप रोज लुटाते हैं। पर कबीर ने कहा कि फरीद को तो मिल ही गया है। जो मैं तुम पर लुटाता हूं, वह फरीद को मिल गया है। जहां मैं हूं वहां फरीद है। हम दोनों एक जगह खड़े हैं। देख कर हम भौचक

रह गए। हम दो ही नहीं हैं, हम एक ही हैं। इसलिए क्या कहना? किससे कहना? अब अकेला आदमी बैठ कर बात करे, कबीर ने कहा, तो पागल नहीं कहोगे उसको? कोई अकेला बैठा अपने से ही बातें कर रहा है--जवाब भी खुद ही दे, प्रश्न भी खुद ही उठाए, उसी को तो पागल कहते हैं। तो कबीर ने कहा, क्या तुम मुझे पागल बनवाना चाहते थे? हम दो थे नहीं।
इसलिए संतों के मिलने की कोई जरूरत नहीं उठती। संत अलग नहीं हैं कि मिलना पड़े। जनता पार्टी असंतों से बनती है, संतों से नहीं बनती।
फिर प्रत्येक संत की अपनी अनूठी आभा है, अपना व्यक्तित्व है, अपनी भाषा है, अपना ढंग है। और यह वैविध्य सुंदर है। जरा सोचो कि दुनिया में सिर्फ कृष्ण ही हुए होते, बुद्ध न हुए होते, तो दुनिया बड़ी दरिद्र होती। या बुद्ध ही हुए होते और मोहम्मद न हुए होते, तो दुनिया बड़ी दरिद्र होती। यह दुनिया में इतनी जो संपदा है अध्यात्म की, यह इसीलिए है कि इतने भिन्न-भिन्न लोग हुए। एक ही सत्य को जान कर उन्होंने इतने भिन्न-भिन्न नाच नाचे, इतने भिन्न-भिन्न गीत गाए। उनमें अनूठापन है। इस अनूठेपन को मिलाया नहीं जा सकता। इसको मिलाने से दोनों का अनूठापन खराब हो जाएगा। इसलिए मिलन की कोई जरूरत नहीं है।
दुनिया में तीन तरह के मिलन संभव हैं। दो ज्ञानियों का मिलन, जैसा कबीर और फरीद का हुआ। यह कभी-कभी हो पाता है। और इसका कोई मतलब नहीं है। बुद्ध और महावीर अनेक बार एक ही गांव में ठहरे और मिलन नहीं हुआ। एक बार तो एक ही धर्मशाला में ठहरे और मिलन नहीं हुआ। बौद्धों को भी थोड़ी बेचैनी होती है कि क्यों नहीं हुआ? जैनों को भी थोड़ी बेचैनी होती है--क्यों नहीं हुआ? जो अहंकारी जैन हैं वे सोचते हैं कि बुद्ध अज्ञानी थे इसलिए महावीर नहीं मिले। जो अहंकारी बौद्ध हैं वे सोचते हैं--क्या मिलना महावीर से, वे अज्ञानी थे, इसलिए बुद्ध उनसे नहीं मिले। लेकिन बुद्ध जिंदगी भर तो और तरह के हजारों अज्ञानियों से मिलते रहे, महावीर का अज्ञान ही ऐसा क्या विशिष्ट था? और महावीर भी अज्ञानियों से खूब मिलते रहे, नहीं तो इन जैनियों को कहां से मिलते? यह बुद्ध को ही क्यों छोड़ दिया? यह अहंकार की बात है। या कुछ सोचते हैं कि दोनों में इतना विरोध था, दुश्मनी थी, इसलिए नहीं मिले। वह बात भी म.ूढता की है। भेद तो है, विरोध नहीं।
इसको ख्याल में रखना! भेद विरोध नहीं है। चंपा अपने ढंग से खिली है और चमेली अपने ढंग से--भेद तो है, विरोध नहीं है। भेद तो खूब है। अब कहां गुलाब का फूल और कहां गेंदे का फूल, भेद तो बहुत है। मगर दोनों फूल हैं। फूल यानी फूले हैं, खिले हैं। दोनों नाच रहे हैं हवाओं में, और दोनों ने सूरज से बातें की हैं, और दोनों ने रंग बिखेरा है, और दोनों ने अपनी गंध लुटा दी है। जो जिसके पास था, लुटा दिया है। दोनों रिक्त हाथ हैं। सब लुटा कर खड़े हैं। मस्ती में खड़े हैं। अपना गीत गा लिया गया है, अब परम तृप्ति है।
फूल के पास तुमने देखी एक परम तृप्ति! इसीलिए तो फूल इतना आकर्षक मालूम होता है। आकर्षण क्या है? रंग ही नहीं है आकर्षण, क्योंकि रंग तो प्लास्टिक के फूल में भी होता है, कागज के फूल में भी होता है--शायद और भी अच्छा रंग हो सकता है; सुगंध ही नहीं है, क्योंकि कागज के फूल पर भी हम इत्र छिड़क दे सकते हैं। फिर क्या है फूल में जो आकर्षित करता है? फूल तृप्त है। अब की दफे जब फूल को देखो, तो ख्याल करना। वृक्ष आनंदित है; मंजिल आ गई, खिलाव हो गया; जो छिपा था, प्रकट हो गया; अप्रकट प्रकट हो गया, अभिव्यंजना हो गई आत्मा की, अपना गीत गा लिया, अब तृप्ति है, अब कोई भागदौड़ नहीं, आपाधापी नहीं। फूल में यह है राज। फिर फूल चाहे गेंदे का, चाहे गुलाब का, चाहे चमेली का, चाहे चंपा का; फिर चाहे फूल घास का और चाहे बड़ा कमल, कोई भेद नहीं पड़ता। भेद बहुत है, विरोध जरा भी नहीं है।
तो जो सोचते हैं महावीर और बुद्ध में विरोध था, इसलिए नहीं मिले, वे गलत सोचते हैं। विरोध तो हो ही नहीं सकता। लेकिन भेद अज्ञानियों को बहुत बार विरोध जैसा मालूम पड़ता है। दोनों अपना-अपना गीत गा रहे हैं। दोनों के गीत की शैली इतनी भिन्न है, भाषा इतनी भिन्न है, ढंग इतना भिन्न है कि स्वभावतः लगता है कि दोनों में कुछ विरोध है। इसलिए नहीं मिले कि विरोध था, तो दोनों की निंदा हो जाएगी, और दोनों अज्ञानी सिद्ध होंगे।

लेकिन फिर क्यों नहीं मिले? मुझसे जैनों ने भी पूछा है, बौद्धों ने भी पूछा है कि फिर क्यों नहीं मिले?
मेरा उत्तर कुछ और है। मेरा उत्तर यही है कि मिलने को वहां दो व्यक्ति
थे ही नहीं। किससे मिलते? कौन मिलता? किससे मिलता? वहां एक ही था। मिलन के लिए दो चाहिए। उतनी दूरी भी नहीं थी। इसलिए नहीं मिले। नहीं मिलने का और कोई भी कारण नहीं। मिलने की कोई जरूरत भी नहीं थी। महावीर ने पा लिया था, मिलना क्या था? बुद्ध ने पा लिया था, मिलना क्या था?
लेकिन ऐसा पागलपन चलता है। मिलाने की कोशिश शिष्यों में रहती है। सिर्फ जिज्ञासा, कुतूहल, कि पता नहीं क्या घटे! कुछ भी न घटेगा। दो शून्य पास आएंगे और एक शून्य हो जाएगा। जरा भी आवाज न होगी, सरसराहट भी न होगी, सन्नाटा हो जाएगा। दो समाधिस्थ पुरुष जब पास होंगे, तो कुछ घटना नहीं घटेगी। दो अकर्ता जब एक-दूसरे के पास होंगे, तो कोई कृत्य नहीं घटेगा।
तो एक तो मिलन हो सकता है दो ज्ञानियों का, जो कि व्यर्थ है। दूसरा एक मिलन होता है दो अज्ञानियों का, वह भी व्यर्थ है। क्योंकि उसमें मारा-मारी काफी होती है, लेकिन परिणाम कुछ नहीं होता। दो अज्ञानी बातचीत तो बहुत करते हैं, मगर एक-दूसरे की सुनते ही नहीं। दो ज्ञानी बातचीत ही नहीं करते, पर एक-दूसरे की सुन लेते हैं। बिना बोले बात सुन ली जाती है। बिना बोले समझ ली जाती है। दो अज्ञानी बकवास तो बहुत करते हैं, लेकिन कौन किसकी सुन रहा है? अपनी-अपनी हांकते हैं। यह दूसरा मिलन। ये दोनों मिलन बेकार हैं। दो अज्ञानियों का मिलन बेकार है, दो ज्ञानियों का मिलन बेकार है।
सार्थक तो मिलन है अज्ञानी और ज्ञानी का। क्योंकि वहां कुछ घट सकता है। वह तीसरा मिलन है। बस ये तीन ही तरह के मिलन हो सकते हैं। जब ज्ञानी और अज्ञानी का मिलन होता है तो शिष्य और गुरु की घटना घटती है। तो कुछ घटता है। क्योंकि ज्ञानी की तरफ से धारा बहती है और अज्ञानी अगर लेने को तैयार हो उस धारा को आत्मसात करने को, तो रूपांतरित हो जाता है।
आज इतना ही।

अथातो भक्ति जिज्ञासा, भाग 2
पच्चीसवां प्रवचन

सब जागरण उसका है

सूत्र

नाम्नेति जैमिनिः सम्भवात्।। 61।।
अत्राड्गप्रयोगाणां यथाकालसम्भवो गृहादिवत्।। 62।।
ईश्वर तुष्टेरेकोऽपि बली।। 63।।
अबन्धोऽर्पणस्य मुखम्।। 64।।
ध्यावनियमस्तु दृष्टसौकर्यात्।। 65।।

भक्ति एक छलांग है। इसलिए साधन और साध्य का भेद केवल बौद्धिक भेद है।
विचार के लिए अनिवार्य है। अनुभव में ऐसी कोई सीमा--साधन अलग, साध्य अलग, इस भांति नहीं है। बीज कब वृक्ष बनता है, कौन रेखा खींचेगा? गौणी-भक्ति कब पराभक्ति हो जाती है, कैसे निर्णय लोगे? कोई मापदंड नहीं है। गौणी-भक्ति पराभक्ति का ही प्रारंभ है। और पराभक्ति गौणी-भक्ति का ही अंत है। बच्चा कब जवान हो जाता है? जवान कब बूढ़ा हो जाता है? जीवन में रेखाएं नहीं हैं। सब रेखाएं कल्पित हैं। जीवन अखंड है, रेखामुक्त है, सीमातीत है। भक्ति छलांग है।
लेकिन, विभाजन की सार्थकता जरूर है। अस्तित्व नहीं है, पर सार्थकता है। समझने के लिए उपयोगी है। शुरुआत तो गौणी-भक्ति से ही करनी होगी। शुरुआत तो टटोलने से ही करनी होगी। एक दिन टटोलते-टटोलते उससे मिलन हो जाता है। प्रारंभ तो विरह से ही होगा; लेकिन विरह मिलन से अलग नहीं है। अस्तित्वगत अनुभव में विरह मिलन की ही शुरुआत है। वे विपरीत नहीं हैं और न ही भिन्न हैं। विरह मिलन की शुरुआत है और मिलन विरह का अंत है। वे जुड़े हैं। जैसे दो पंख पक्षी के जुड़े हैं, जैसे तुम्हारे दो पैर जुड़े हैं, ऐसे वे संयुक्त हैं। लेकिन आचार्यों ने रेखाबद्ध विचार करने के लिए विभाजन किया है। विभाजन के साथ ही उपद्रव शुरू हो जाता है। जैसे ही विभाजन करोगे वैसे ही सवाल उठता है--कौन प्रमुख है? कौन प्रमुख नहीं है?
गौणी-भक्ति का अर्थ होता हैः भजन, कीर्तन, नाम-स्मरण, प्रभु की महिमा
का गुणगान, श्रवण, सत्संग। कुछ आचार्य कहते हैंः यही प्रमुख है। और उनकी बात में भी बल है। क्योंकि वे कहते हैं, इनके बिना, इन बीजों के बिना वृक्ष तो कभी होगा नहीं। इन बीजों के बिना वृक्ष पर फूल कभी खिलेंगे नहीं। तो जो आधार है वह प्रमुख है।
फिर आज के सूत्र उन दूसरे आचार्यों के संबंध में हैं।
नाम्नः इति जैमिनिः सम्भवात्।
"आचार्य जैमिनी गौणी-भक्ति को प्रधान नहीं कहते, और-और स्थानों में उसका नाम मात्र ही लिया गया है।"
जैमिनी ने गौणी-भक्ति को प्रधान नहीं कहा। उस बात में भी सत्य है। क्योंकि बीज का कोई मूल्य अपने में क्या है? मूल्य यही है कि कभी फूल हो सकेंगे। मूल्य तो फूल का ही है। बीज को भी हम सम्हाल कर रखते हैं तो फल के लिए। बीज के लिए ही नहीं। इस जीवन को भी हम सम्हाल कर रखते हैं तो इसके भीतर परमात्मा की तलाश के लिए। इसका अपने में कोई मूल्य नहीं है। इस जगत में मूल्य तो अंततः उसका ही है जिसके लिए हम साधन को सम्हालते हैं। जैमिनी भी ठीक ही कहते हैं कि शिखर ही मूल्यवान है, आधार नहीं। शिखर
के लिए ही तो आधार रखते हैं। आधार के लिए तो कोई आधार नहीं रखता। बुनियाद रखने के लिए तो कोई बुनियाद नहीं रखता। शिलान्यास करते हैं बुनियाद का, लेकिन लक्ष्य तो यही है कि मंदिर उठेगा, शिखर चढ़ेगा, धूप में चमकेंगे स्वर्ण-कलश। उस शिखर के लिए ही शुरुआत है। तो जैमिनी भी ठीक ही कहते हैं। मगर दोनों में बड़ा विवाद हो गया है। शास्त्र विभाजित हो गए हैं। जहां शब्द आया, वहां विवाद आया। और जहां विभाजन आया, वहां द्वैत आया।

अगर तुम अविभाज्य को देख सको तो विभाजन में मत पड़ना। शांडिल्य की जीवन-दृष्टि बड़ी समन्वयी है। शांडिल्य का स्वयं का सूत्र यही है कि दोनों जरूरी हैं, दोनों अनिवार्य हैं, क्योंकि वस्तुतः दोनों अलग नहीं हैं। इसके पहले कि शांडिल्य के सूत्र में तुम प्रवेश करो, कुछ बातें ख्याल में ले लेना।

जब तुम किसी यात्रा पर निकलते हो तो जो पहला कदम उठाते हो, पहले कदम से मंजिल नहीं मिल जाती, यह तो सच है। लेकिन लाओत्सु का प्रसिद्ध वचन हैः एक-एक कदम से ही तो हजारों मील का फासला तय होता है। तो जब तुमने पहला कदम उठाया तो मंजिल तो नहीं मिली, लेकिन क्या निश्चित रूप से कह सकते हो कि मंजिल नहीं मिली? एक कदम तो मंजिल करीब आई। एक कदम करीब आई, इतनी तो मिली। फिर दूसरा कदम उठाओगे, उतनी और मिल जाएगी। और एक कदम ही तो एक बार में उठाया जा सकता है। एक-एक कदम, एक-एक कदम चल कर आदमी हजारों मील की यात्रा पूरी कर लेता है।

तो जो गौर से देखेगा वह कहेगाः पहले कदम में मंजिल मिली भी नहीं और मिली भी। दो में से किसी भी एक बात को पकड़ लेने में भ्रांति हो जाएगी। जो कहेगा कि पहले कदम में ही मंजिल मिल गई, वह फिर दूसरा कदम क्यों उठाएगा? मंजिल मिल ही गई, बात समाप्त हो गई। वह वहीं बैठ जाएगा। ऐसे बहुत लोग बैठ गए हैं मंदिरों में, मस्जिदों में। वे कीर्तन ही कर रहे हैं। उससे आगे बात उठी ही नहीं। श्रवण ही चल रहा है! सत्संग ही हो रहा है! सदियां बीत गईं, जन्म-जन्म बीत गए, नाम-स्मरण ही चल रहा है! माला ही फेरी जा रही है! मंत्र-पाठ ही किया जा रहा है! पूजा, प्रार्थना, यज्ञ-हवन, उसी में संलग्न हैं! पहले कदम पर बैठ गए इन लोगों को ख्याल में रखना।

इसलिए यह कहना उचित नहीं है कि पहले कदम पर मंजिल मिल गई। लेकिन यह कहना भी उचित नहीं है कि पहले कदम पर मंजिल नहीं मिलती। क्योंकि अगर पहले कदम पर मंजिल नहीं मिलती, तो आदमी पहला कदम उठाए क्यों? छोड़ दो पहला कदम। और पहला छोड़ दिया तो दूसरा कैसे उठेगा? पहले के बाद दूसरा है। इसलिए कुछ लोग हैं जिन्होंने पहला कदम भी नहीं उठाया। वे कहते हैं, कदम उठाने से क्या होगा? कोई मंजिल तो मिलती नहीं। भजन-कीर्तन करने से क्या होगा? भगवान भजन-कीर्तन से मिलता है! उन्होंने भजन-कीर्तन भी नहीं किया। कुछ ने भजन-कीर्तन को सब मान कर वहीं डेरा डाल दिया है। ऐसे दो तरह के भ्रांति से भरे हुए लोग हैं।

शांडिल्य कहना चाहते हैं कि दोनों भ्रांतियों में मत पड़ना। दोनों सत्यों को समझने की कोशिश करना। दोनों सत्य एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। पहला कदम अंश है मंजिल का। दूसरे कदम पर और अंश, तीसरे कदम पर और अंश, एक दिन कदम पूरे होते जाएंगे और मंजिल मिलती चली जाएगी। लेकिन हमारी जीवन-धारणाएं सदा ऐसी होती हैं। तुम जिस दिन से पैदा हुए उसी दिन से मरने भी लगे हो, लेकिन यह तुम्हें ख्याल में नहीं आता। जिस दिन बच्चा एक दिन का हो गया, उस दिन बच्चा एक दिन कम हो गया उसके जीवन का। बच्चे ने पहली सांस ली कि एक सांस कम हो गई। सरकने लगा मौत की तरफ। तो जो जानते हैं वे कहेंगे कि जन्म में ही मृत्यु भी घट गई। घटना शुरू हो गई। पहली सांस अंतिम सांस भी है। हालांकि हम जानते हैं कि पहली सांस पहली सांस है, अंतिम कैसे हो सकती है?

जीवन को जब तुम पहचानोगे तो यह गुत्थी तुम्हें हर जगह मिलेगी। पहला अंतिम है; साधन में साध्य छिपा है। और फिर भी पहला अंतिम नहीं है; और साधन साधन है, साध्य नहीं है। इन दोनों को जो एक साथ पकड़ लेता है, उसे भक्ति की छलांग दिखाई पड़नी शुरू होती है।

पश्चिम के बहुत बड़े विचारक अल्डुअस हक्सले ने एक किताब लिखी है--साधन-साध्य, एंड्स एंड मीन्स। बहुत ऊहापोह किया है कि कौन मूल्यवान है--साधन कि साध्य?

दोनों संयुक्त हैं, अलग नहीं हैं। इसलिए उनकी मूल्यवत्ता को अलग-अलग नहीं आंका जा सकता। कौन मूल्यवान है तुम्हारी देह में--पैर मूल्यवान हैं कि हाथ? आंखें मूल्यवान हैं कि कान? बाईं आंख मूल्यवान है कि दाईं आंख? मस्तिष्क मूल्यवान है कि हृदय? कौन मूल्यवान है? तुम एक संयुक्तता हो। तुम एक समग्रता हो। सभी उस समग्रता के अनिवार्य हिस्से हैं। न किसी का

मूल्य कम है, न किसी का मूल्य ज्यादा है। उन सबके होने में ही तुम्हारा होना है। आंखें नहीं होंगी तो आंखों का काम पैर न कर सकेंगे। और पैर नहीं होंगे तो पैरों का काम आंख नहीं कर सकती।
यही भ्रांति तो इस देश के पूरे जीवन पर छा गई। ब्राह्मणों को हमने कहा--वे सिर हैं; शूद्रों को हमने कहा--वे पैर हैं। बस, पैर हैं तो वे गौण हो गए। ब्राह्मण सिर हैं, वे मूल्यवान हो गए। लेकिन सिर को काट कर रख दो अलग, उसका क्या मूल्य रह जाता है? ब्राह्मण को अलग काट दिया, वह भी मुर्दा हो गया; शूद्र को अलग काट दिया, वह भी मुर्दा हो गया। यह दृष्टि गलत है। पैर और सिर, दोनों एक संयुक्त व्यक्तित्व के अंग हैं, दोनों अनिवार्य हैं। कोई कम नहीं, कोई ज्यादा नहीं।
शांडिल्य कहते हैंः अत्र अड्गप्रयोगाणां यथाकालसम्भवः गृहादिवत्।
"इस स्थान पर गृह आदि के अंगस्थान की भांति यथाकाल में अंगप्रयोग मात्र समझना चाहिए।"
सब अंग हैं। साधन भी जिन्हें हम कहते हैं वे अंग हैं, और साध्य भी जिसे
हम कहते हैं वह भी अंग है। असली बात दोनों के पार है। या असली बात में दोनों समाहित हैं। असली बात दोनों के जोड़ से बनती है। तुम क्या हो? तुम्हारे हाथ, तुम्हारे पैर, तुम्हारी आंख, तुम्हारे कान, तुम्हारा स्वाद, तुम इन सबका जोड़ हो। और इनके जोड़ से थोड़ा अधिक भी।
इस भेद को भी ख्याल में ले लेना। यही भेद है चेतन और अचेतन का।
चेतन अपने अंश का जोड़ मात्र नहीं होता; अपने अंशों के जोड़ से थोड़ा ज्यादा होता है। अचेतन अपने अंगों का जोड़ मात्र होता है; जोड़ से ज्यादा नहीं होता।
जैसे समझो, एक कार है। इसके सब अंग अलग कर लो, तो पीछे कोई कार की आत्मा नहीं बचती। फिर अंगों को जोड़ दो, कार फिर खड़ी हो जाती है। अंग अलग कर लो, कार बिखर जाती है। कार सिर्फ अपने अंगों का जोड़ है, उसके भीतर कोई आत्मा नहीं है। यंत्र है।
यहीं फर्क है जीवन का और अंगों का। आदमी के हाथ, पैर, सिर अलग कर लो, फिर तुम लाख जोड़ो तो भी आदमी वापस नहीं लौटता। कार तो वापस लौट आती है, आदमी क्यों वापस नहीं लौटता? अगर आदमी भी यंत्र मात्र होता, तो लौटना चाहिए था। यही प्रमाण है कि आदमी यंत्र नहीं है, आत्मा है। कुछ खो गया, जो अंगों के पार था, अंगों से ज्यादा था; अंगों के कारण यहां रुका था, ठहरा था; तुमने अंग अलग कर लिए, वह उड़ गया। अंग तो पिंजड़ा है, पक्षी उड़ गया। पक्षी अदृश्य है। तुमने पिंजड़े के सब अंग अलग कर लिए, पक्षी मुक्त हो गया, उड़ गया। अब तुमने पिंजड़े के सब अंग जोड़ दिए, पिंजड़ा बन गया, लेकिन अब उसमें श्वास नहीं है, हृदय की धड़कन नहीं है, आंख देखती नहीं, कान सुनते नहीं। आत्मा खो गई।
चैतन्य का अर्थ यही होता है--अपने जोड़ों से ज्यादा। सारे अंगों के जोड़
से कुछ ज्यादा जो है, वही चैतन्य है। इसलिए तो आदमी गणित में नहीं आता। क्योंकि यह बात गणित के बाहर हो गई। अगर दो और दो को जोड़ो, तो चार क्या है, दो और दो का जोड़ है। इससे ज्यादा नहीं है। गणित में आदमी नहीं आता। गणित में जीवन नहीं आता। जीवन गणित के बाहर छूट जाता है।
कौन सी चीज बाहर छूट जाती है? वह समग्रता है, वह आत्मा है। व्यक्ति के भीतर उसको हम आत्मा कहते हैं, और जब हम सारी समष्टि के भीतर उसको अनुभव कर लेते हैं तो उसे परमात्मा कहते हैं।
शांडिल्य कहते हैंः अंगमात्र हैं सब। शांडिल्य की दृष्टि समन्यवग्राही है। शांडिल्य मात्र आचार्य नहीं हैं, शांडिल्य अनुभोक्ता हैं। शांडिल्य मात्र दार्शनिक नहीं हैं। दार्शनिक होते तो उसी विवाद में पड़े होते कि कौन प्रमुख, कौन गौण?
फिर एक और मजा है। गौणी-भक्ति अगर सच में ही केवल साधन मात्र है, तो जब भक्त पहुंच जाता है तब समाप्त हो जानी चाहिए। लेकिन समाप्त नहीं होती। मीरा पाकर भी तो गाती रही! पाकर भी तो गुनगुनाती रही! पाकर भी तो नाचती रही! अगर यह उपकरण मात्र था, तो जब पहुंच गए तो समाप्त हो जाना चाहिए। अगर यह रास्ता ही था जिससे हम मंजिल पर पहुंचते हैं, तो जब मंजिल पर पहुंच गए

तो रास्ता समाप्त हो गया। अब रास्ते पर चलने का क्या प्रयोजन? लेकिन भक्तों के जीवन को गौर से देखो। वे पहले भी गाते थे और पीछे भी गाते हैं। हालांकि गीत बदल गया। गीत के भीतर का अर्थ बदल गया। गीत के भीतर की भाव-भंगिमा बदल गई। मगर गीत जारी है। पहले मीरा विरह में गाती थी; अभी मिलन नहीं हुआ था, तड़फती थी। अब मिलन हो गया, उसके आनंद में गाती है। मगर गीत तो जारी है। कीर्तन जारी है, भजन जारी है, सत्संग जारी है।
पहले गुरु के पास जाता है भक्त सत्य की खोज में, फिर गुरु के पास जाता
है अनुग्रह के भाव में, लेकिन जाना जारी रहता है। जाना नहीं रुकता। अगर गुरु केवल साधन मात्र हो, तो जब मिल गया तो नमस्कार! बात समाप्त हो गई। अब गुरु के पास जाकर क्या करना है? लेकिन भक्त गुरु के पास पीछे भी जाता है। जाने का अर्थ बदल गया। जाने के भीतर का सार बदल गया। पहले आता था खोजने। अब धन्यवाद देने आता है। पहले भी झुकता था कि शायद झुकने से मिलेगा, अब इसलिए झुकता है कि मिल गया है। अब न झुके, कैसे चले? धन्यवाद में झुकता है, अनुग्रह में झुकता है। जो बाहर से देखता है उसकी समझ में न आएगा। क्योंकि झुकना झुकना एक जैसा है। चाहे तुम मांगने के लिए झुको और चाहे धन्यवाद देने के लिए झुको, झुकने की प्रक्रिया बाहर से एक जैसी है।
फिर तुम्हें याद दिला दूंः यही फर्क है जड़ और चेतन में। जड़ जैसा बाहर
से होता है, वैसा ही भीतर से होता है। चैतन्य को तुम बाहर से ही न समझ पाओगे। क्योंकि बाहर कई बार एक सी घटना होती है और भीतर सब भेद होता है। दो भक्त अपने भगवान के लिए झुक रहे हैं, दो भक्त मंदिर में बैठे गीत गा रहे हैं। गीत भी एक हो सकता है, मूर्ति भी एक हो सकती है, उनका डोलना भी एक जैसा हो सकता है, और फिर भी भेद हो। बाहर कोई भेद न हो, रत्ती भर भी भेद न हो, फिर भी भेद हो सकता है। एक अभी खोज रहा है और एक को मिल गया है। एक अभी टटोल रहा है और एक भर गया है। एक अभी खाली है इसलिए रो रहा है, उसकी आंख से भी आंसू बह रहे हैं। और एक भर गया है इसलिए रो रहा है, क्योंकि अब आंसुओं के अतिरिक्त और कैसे धन्यवाद दे? एक के आंसू दुख के आंसू हैं, एक के आंसू सुख के आंसू हैं। मगर आंसू तो आंसू हैं। अगर तुम आंसुओं को इकट्ठा कर लो दोनों के और चले जाओ केमिस्ट की दुकान पर परीक्षा करवाने, तो दोनों एक से मिलेंगे। दोनों में नमक का स्वाद होगा। दोनों में एक से रासायनिक द्रव्य होंगे, कोई भेद न होगा।
बाहर से जो एक जैसा रहे और फिर भी भीतर भेद पड़ जाए, वह चैतन्य का लक्षण है। इसलिए कृत्यों का मूल्य नहीं होता, कृत्य के पीछे जो खड़ा है उसका मूल्य होता है। तुम क्या करते हो, इसका मूल्य कम है; तुम क्या हो, इसका मूल्य ज्यादा है।
शांडिल्य ठीक कहते हैंः अंग की भांति हैं। न तो शिखर का कोई बड़ा मूल्य
है और न बुनियाद का कोई बड़ा मूल्य है। दोनों ने मिल कर मंदिर बनाया है। मंदिर का मूल्य है। मंदिर न तो बिना शिखर के हो सकता है, न बिना बुनियाद के हो सकता है। वह जो मंदिर की समग्रता है, उसका मूल्य है। इसलिए इस विवाद में मत पड़ना। मंदिर की समग्रता को ख्याल में रखना।
फिर विद्वानों ने विचार उठाया है कि साधन तो कई कहे हैं, उन सब साधनों में कौन प्रमुख है? चलो यह भी छोड़ दो कि साधन और साध्य दोनों एक ही समान मूल्य के हैं, तो सवाल उठता है कि साधन तो बहुत हैं, उनमें कौन प्रमुख है? भजन है, कीर्तन है, नाम-स्मरण है, श्रवण है, मनन है, ध्यान है, सत्संग है, सेवा है, पूजा है, अर्चना है, यज्ञ-हवन है, साधन तो बहुत हैं। बुद्धि सदा प्रश्न उठा लेती है और बुद्धि प्रश्न में ही उलझ जाती है। इनमें प्रमुख कौन है? हम क्या साधें? ये सभी तो नहीं साधने पड़ेंगे? ये सभी के साधने में तो बड़ी उलझन हो जाएगी। हम क्या करें? अनेक-अनेक साधनों में कौन सा साधन प्रमुख है? यह प्रश्न हमें सार्थक लगेगा। जो भी खोजने चला है, उसको भी लगेगा कि यह बात तो साफ होनी चाहिए कि कौन से साधन से पहुंचना होता है!
यह बात फिर गलत हो गई। यह वैसे ही हो गया कि जैसे एक गांव में तुम बैलगाड़ी से भी जा सकते हो और हाथी पर भी जा सकते हो और घोड़े पर भी जा सकते हो और पैदल भी जा सकते हो, ट्रेन भी पकड़ सकते हो, हवाई जहाज से भी उड़ सकते हो। अब इनमें कौन प्रमुख है?

सभी पहुंचा देते हैं। फिर अपनी-अपनी मौज! फिर किसी को घुड़सवारी पसंद है; और लाख हवाई जहाज जल्दी पहुंचा देता हो, लेकिन घुड़सवारी का अपना आनंद है। और किसी को पैदल चलने में रस है। पैदल चलने का आनंद अलग है। हवाई जहाज पहुंचा देगा, लेकिन पैदल चलने का मुकाबला नहीं हो सकता! जिन पर्वतों पर कुछ वर्षों पहले तक बसें नहीं जाती थीं, तब तक उन तक पहुंचने का मजा और था। क्योंकि चलने में एक साधना होती थी। कैलाश की लोग यात्रा करते या बद्री- केदार की, तब चलना एक साधना थी। जीवन को दांव पर लगाना था। पुराने दिनों में तो तीर्थयात्री का मतलब होता था कि अब लौटेगा कि नहीं लौटेगा? तो घर के लोग विदा ही दे देते थे--आखिरी विदा। कि शायद लौटना हो ही नहीं। घर के लोग रो-धो लेते थे। तीर्थयात्रा पर कोई जा रहा है, मतलब वह करीब-करीब महायात्रा पर जा रहा है। अब क्या पता लौटेगा कि नहीं? जंगल थे, पहाड़ थे, जंगली पशु थे; डाकू थे, हत्यारे थे; कहां गिर जाएगा, कहां खो जाएगा, इसकी खबर भी फिर मिलेगी या नहीं मिलेगी, यह भी पक्का नहीं था। विदा दे देते थे, अंतिम विदा दे देते थे। लौटना करीब-करीब असंभव होता था। कोई लौट आता, तो वह संयोग की बात थी। न लौटता, स्वीकार था। लेकिन तब का आनंद और था। उन सारे खतरों और चुनौतियों के बीच चलने में बात और थी। फिर पहुंचने का मजा भी और था।
अब तुम एक जगह से हवाई जहाज पर सवार हुए या हेलिकॉप्टर पर--और जाकर बद्री-केदार में तुमको उतार दिया। तुमने कोई मूल्य नहीं चुकाया। तुम बद्री-केदार तो पहुंच गए, लेकिन बिना मूल्य चुकाए पहुंच गए। अगर तुम्हें बद्री-केदार में वैसी शांति अनुभव न हो जैसी हजारों-हजारों साल में लोगों को हुई है, तो तुम कुछ चकित मत होना। तुमने उस शांति के लिए कुछ चुकाया नहीं। तुमने मुफ्त पा ली। तुम्हें राह में पड़ी हुई मिल गई। तुम्हारा बद्री-केदार बंबई और कलकत्ते से भिन्न नहीं होगा। कितना हम चुकाते हैं, इस पर सब निर्भर करता है।
साधन बहुत हैं। कोई न गौण है और न कोई प्रधान है। शांडिल्य ठीक सूत्र कहते हैं। वे कहते हैं--
ईश्वर तुष्टेः एकः अपि बली।
"ईश्वर के प्रीत्यर्थ एकमात्र साधन भी बलवान है।"
बस उसके प्रेम में किया जाए, इतनी शर्त है। प्रेम में किया जाए तो कोई
भी साधन पर्याप्त बलवान है। नाम-स्मरण हो, प्रेम से हो--बस काफी है। लेकिन तुमने नाम-स्मरण तो किया होगा, लेकिन प्रेम से शायद ही किया हो। इसलिए काम नहीं आया। लोग नाम-स्मरण करते हैं भय से। भय से किया नाम-स्मरण खो जाएगा। वह नाम-स्मरण नहीं है। लोग मरते हैं तब नाम-स्मरण करते हैं। जबान लड़खड़ाने लगती है, श्वास खोने लगती है, तब नाम-स्मरण करते हैं। वे मौत के भय में कर रहे हैं, जीवन के आनंद में नहीं। लोग हारते हैं तब नाम-स्मरण करते हैं। जब जीतते हैं तब तो भूल जाते हैं। सुख में कौन याद करता प्रभु को? दुख में लोग याद करते हैं। दुख में याद करते हैं, इसीलिए याद प्रभु तक नहीं पहुंचती। तुम्हारी याद ही झूठी है। सुख में जो याद करे, उसकी याद पहुंच जाती है। सूत्र हैः "परमात्मा के प्रीत्यर्थ।"
प्रभु के प्रेम में। शांडिल्य की दृष्टि बड़ी साफ है। विवादी नहीं है, विचारक की नहीं है, चिंतक की नहीं है, अनुभोक्ता की है। अनुभव से उन्होंने जाना है कि जो भी साधन प्रेम से पकड़ लिया जाए, वही पहुंचा देता है। प्रेम पहुंचाता है, साधन तो केवल सहारा है। और जिसके साथ प्रेम जुड़ जाए, वही साधन अति बलवान हो जाता है।
अब समझो! तुम यहां मुझे सुनने बैठे हो। यह सुनना भी हो सकता है, यह श्रवण भी हो सकता है। सुनने का मतलब इतना ही हुआ कि तुम्हारे पास कान है और कान खराब नहीं है; तो जो मैं कह रहा हूं वह तुम्हें सुनाई पड़ रहा है। श्रवण बड़ी और बात है! श्रवण का अर्थ हैः कान से ही नहीं सुनी जा रही है बात, हृदय से सुनी जा रही है। हृदय में भी कान ऊग आए हैं। तुम कान ही कान हो गए हो। तुम्हारा रोआं-रोआं सुन रहा है। तुम्हारा कण-कण तरंगित हो रहा है। तुम्हारे भीतर रोमांच हो रहा है। तुम सुन ही नहीं रहे, पी रहे हो। तुम सुन ही नहीं रहे, जी रहे हो। एक-एक शब्द जो कहा जा रहा है, वह तुम्हारे भीतर

तृप्ति बन रहा है, तुम्हारे भीतर प्रसाद की तरह उतर रहा है। शब्द ही नहीं सुन रहे हो तुम, तुम मेरी उपस्थिति को भी पी रहे हो। तो यह श्रवण होगा। अगर मुझसे प्रेम है, तो यह संभव हो पाएगा।
अब यहां तुम देखते हो, बहुत से विदेशी संन्यासी बैठे हैं, जो मेरी भाषा का एक शब्द नहीं समझ रहे हैं। मगर तुम यह मत सोचना कि वे श्रवण नहीं कर रहे हैं। श्रवण का भाषा से कोई संबंध नहीं है। यह भी हो सकता है कि तुम, जो मेरी भाषा समझ रहे हो, श्रवण न कर रहे होओ। और यह भी हो सकता है कि कोई, जो मेरी भाषा नहीं समझ रहा है, श्रवण कर रहा हो।
श्रवण बड़ी और बात है, गहरी बात है। अगर मेरे प्रति प्रेम है, अगर तुम्हारी आंखें प्रेम से भरी मुझ पर टिकी हैं, तो घटना घट रही है; तो तुम्हारा हृदय मेरे हाथ डोल रहा है; तो तुम्हारी श्वास धीरे-धीरे मेरी श्वास की गति में बंध जाएगी। तो तुम धीरे-धीरे भूल जाओगे कि तुम पृथक हो। इधर बोलने वाला अलग और सुनने वाला अलग, तो सुनना हो रहा है। जहां बोलने वाला और सुनने वाला एक हो जाते हैं, जहां उनका तादात्म्य हो जाता है, जहां दोनों की भाव-दशा एक हो जाती है, उस घड़ी श्रवण शुरू होता है। जब कोई प्रेम से सुनता है तो श्रवण शुरू होता है। बस श्रवण हो जाए, प्रेम से भरा हो, पर्याप्त है। भजन हो जाए, प्रेम से भरा हो, पर्याप्त है।

याद तुम्हारी लेकर सोया, याद तुम्हारी लेकर जागा।
सच है, दिन की रंग-रंगीली
दुनिया ने मुझको बहकाया,
सच, मैंने हर फूल-कली के
ऊपर अपने को डहकाया,
किंतु अंधेरा छा जाने पर
अपनी कंथा से तन-मन ढंक,
याद तुम्हारी लेकर सोया, याद तुम्हारी लेकर जागा।

सत्य-कल्पना में बसुधा पर
बहुत, युगों से बहस हुई है,
मगर तुम्हारी अधर-सुधा से
मेरी भीगी पलक छुई है,
कंठ लगाया तुमने तब तो,
कंठस्थल से राग उमड़ता
इतने कुछ को सपना समझूं तो है मुझसा कौन अभागा।
याद तुम्हारी लेकर सोया, याद तुम्हारी लेकर जागा।
सत्संग का अर्थ हैः एक याद तुम्हारा पीछा करने लगे। गुरु पा लेने का अर्थ हैः गुरु की सुगंध तुम्हें घेरे रहे, घेरे रहे। जागो तो घेरे रहे, सोओ तो घेरे रहे। दुनिया के हजार काम में उलझे रहो, तो भी तुम जानते हो कि भीतर किसी की याद तुम्हारे हृदय में बनी है। ऐसी याद हो, ऐसा प्रेम से भरा हुआ हृदय हो, तो फिर कोई भी साधन बलवान हो जाता है। साधन बलवान नहीं होते और साधन बलहीन नहीं होते। प्रेम जिस साधन में पड़ जाए, उसी में जीवन पड़ जाता है। और जिस साधन में प्रेम न हो, वही जीवनरहित हो जाता है।
इसलिए अक्सर ऐसा हो जाता है, कोई तुमसे कहता है कि कृष्ण को पूजो, मुझे देखते नहीं मैं कितना आह्लादित हो रहा हूं कृष्ण को पूज कर! तुम भी लोभ में पड़ते हो, सोचते हो शायद कृष्ण की पूजा से कुछ होता होगा।
ध्यान रखना, कृष्ण का इसमें कुछ हाथ नहीं है। यह कृष्ण की पूजा करने वाले में ही सब कुछ छिपा है--उसके प्रेम में छिपा है। उसने कृष्ण की मूर्ति पर अपने प्रेम को उंडेल दिया, वह मूर्ति जीवंत हो गई। उसने इतना प्रेम उंडेल दिया है कि अब वह मूर्ति पत्थर नहीं रही, पाषाण नहीं रही, उसमें प्राण आ गए हैं। उसने अपने हृदय की धड़कन मूर्ति में रख दी है। इसका नाम भाव-प्रतिष्ठा है। अब मूर्ति की तरफ से वह स्वयं श्वास लेता है। यह मूर्ति उसके लिए मूर्ति नहीं है। तुम्हारे लिए मूर्ति है, उसके लिए मूर्ति नहीं

है। उसके लिए यह इतनी जीवंत है जितना वह स्वयं भी जीवंत नहीं है। उसने अपना सब निछावर कर दिया है।
और तब उसके सामने मूर्ति का एक अप्रतिम रूप प्रकट होता है। उसकी आंख
के सामने मूर्ति साकार हो उठती है। वह कृष्ण से बोलता है, बतियाता है।
प्रश्न करता, उत्तर भी लेता। और ध्यान रखना, सब उसके भीतर हो रहा है। प्रश्न भी उसका है, उत्तर भी उसका है। लेकिन फिर भी एक क्रांति घट रही है। प्रश्न उसके मन का है, उत्तर उसकी आत्मा से आ रहा है। और वही आत्मा कृष्ण है। लेकिन उसने अपनी आत्मा को एक सहारा दे दिया कृष्ण का। अब कृष्ण के बहाने उसकी आत्मा बोल सकती है। कृष्ण का आधार दे दिया। उसका केंद्र उसकी ही परिधि से बोल रहा है। परिधि का प्रश्न है, केंद्र का उत्तर है। लेकिन अब उत्तर पकड़ने की उसे सुविधा हो गई है, क्योंकि वहां कृष्ण सामने हैं। कृष्ण के दर्पण से उत्तर झलक कर लौटता है, तो उसे यह भय नहीं होता कि मेरा ही उत्तर है। उत्तर उसका ही है। लेकिन इतना आत्मविश्वास नहीं है कि अपने उत्तर को स्वयं खोज ले। एक बहाने की, एक निमित्त की जरूरत है।
जो सीधा उतर सकता है अपने भीतर, उसे भी उत्तर मिल जाएगा। लेकिन उसे सदा एक संदेह रहेगा कि पता नहीं मेरा उत्तर है, कहां तक ठीक हो? हो सकता है मेरे मन ने धोखा दिया हो। हो सकता है मैंने गढ़ लिया हो। हो सकता है जो मैं चाहता था वैसा मैंने सोच लिया हो; मेरी वासना इसके भीतर छिपी हो। ये सारी शंकाएं उठेंगी। तुम जान कर चकित होओगे, सदगुरु तुमसे वही कहता है, केवल वही कहता है, जो अगर तुम गौर से खोजते तो अपने भीतर ही पा लेते। सदगुरु दर्पण है। वह तुम्हारे अंतस्तल को झलका देता है। लेकिन उसमें जब झलक मिलती है, तुम्हें भरोसा आता है। तुम निश्चिंतता से चल सकते हो, तुम्हें एक सुरक्षा मालूम होती है कि कोई मजबूत हाथ मुझे पकड़े हुए हैं, मैं अकेला नहीं हूं। यह निश्चिंतता यात्रा को गति दे देती है, प्राण दे देती है। जहां भी तुम प्रीति को उंडेल दोगे, वहीं क्रांति घट जाती है। प्रेम क्रांति है। प्रेम पत्थर को रूपांतरित कर देता है। और जहां प्रेम नहीं है, वहां जीवंत व्यक्ति भी पत्थर होकर रह जाता है। तुमने देखा? जिस व्यक्ति से तुम्हारा प्रेम नहीं है, वह व्यक्ति है या नहीं है, तुम्हें कोई अंतर नहीं पड़ता। पड़ोस में कोई मर गया, तुम सुन भी लेते हो, कहते हो बुरा हुआ, मगर वह भी सब औपचारिक है। तुम्हारे भीतर कोई रेख नहीं खिंचती। लेकिन तुमने अगर किसी पत्थर की मूर्ति को भी प्रेम किया और वह टूट गई, तो तुम रोओगे। तुम्हारा हृदय टुकड़े-टुकड़े हो जाएगा। जीवन वहीं होता है जहां तुम्हारा प्रेम होता है। जीवन वहीं दिखाई पड़ता है जहां तुम प्रेम की आंख से देखते हो। नहीं तो कहीं जीवन दिखाई नहीं पड़ता।
शांडिल्य कहते हैंः प्रेम को जिस साधन में डाल दोगे...
उन्होंने बड़ा रूपांतर कर दिया, साधन के बीच विवाद नहीं रखा कि कौन साधन ठीक है। क्योंकि कोई कहता है कीर्तन ठीक है, कीर्तन से पहुंचना होगा। कोई कहता है, कीर्तन से क्या होगा? तुम्हारी ही आवाज, तुम्हीं गुनगुनाते रहोगे। नाचने से क्या होगा? तुम्हारे ही पैर, तुम्हीं नाचते रहोगे। अज्ञानी नाचेगा, नाचने से ज्ञानी कैसे हो जाएगा? अज्ञानी गीत गाएगा, गीत गाने से ज्ञानी कैसे हो जाएगा? अज्ञान से गीत जन्म रहा है, अज्ञान से नृत्य पैदा हो रहा है, वह अज्ञान को मिटाएगा कैसे? जो अज्ञान से पैदा होता है, वह अज्ञान को कैसे मिटाएगा? तो वह कहेगा, नहीं, कीर्तन से कुछ भी नहीं होगा, सत्संग करो। सदगुरु के पास बैठो। सत्संग प्रमुख है।
लेकिन तुम सदगुरु के पास बैठ सकते हो और फिर भी दूर रह सकते हो। सदगुरु को देखना कहां आसान है? आमने-सामने खड़े होकर भी तो चूकना हो जाता है। आंख में आंख डाल कर बुद्ध तुम्हें देखते हैं और चूकना हो जाता है। तुम नहीं देख पाते। तुम्हें भरोसा ही नहीं आता। तुम्हारी जिंदगी संदेहों से, शंकाओं से भरी है। तुम्हें हजार शंकाएं उठती हैं। तुम्हारी हजार धारणाएं बीच में बाधा बनती हैं। बुद्ध तुम्हारे पास से गुजर जाते हैं, तुम वैसे के वैसे रह जाते हो, तुम्हारे भीतर कुछ भी डोलता नहीं, तुम्हारे भीतर कोई रोमांच नहीं होता। तुम्हारे भीतर कोई खबर ही नहीं पड़ती। बुद्ध अदृश्य ही रहे आते हैं। तुम्हारे लिए दृश्य नहीं हो पाते। सत्संग से भी क्या होगा?

सुनते रहो बैठे हुए! बार-बार सुनते-सुनते, सुनते-सुनते धीरे-धीरे सुनना भी भूल जाएगा। वही-वही सुनते-सुनते तुम सोचोगे--अब सुनने में भी क्या सार है? इसीलिए तो लोग मंदिरों में तुम्हें सोते हुए मिलेंगे। धर्मसभाओं में सोते मिलेंगे। उन्हें पहले ही से पता है--वही राम-कथा! उन्हें सब पता है कि आगे क्या होगा। उसमें कुछ फर्क भी तो नहीं होता। तुम थोड़ा सोचो, एक ही फिल्म अगर तुम्हें बार-बार देखनी पड़े, तुम कितने दिन तक जागे हुए देख सकोगे? एक बार, दो बार, तीन बार, फिर तुम्हें सब पता है कि आगे क्या होने वाला है। जिस उपन्यास को तुमने एक बार पढ़ लिया उसे कितनी बार पढ़ सकोगे? लोग राम-कथा को बार-बार पढ़ रहे हैं। क्या पढ़ रहे होंगे? अब पढ़ नहीं रहे हैं, अब सिर्फ अंधे की तरह, बहरे की तरह दोहराए चले जा रहे हैं। अब उनके भीतर कोई अर्थ पैदा नहीं होता। अब उनके भीतर कोई तरंग पैदा नहीं होती। एक जड़ स्थिति हो गई है। लोगों को शास्त्र कंठस्थ हो गए हैं। ऐसे ही सदगुरु के पास बैठ-बैठ कर उसकी बातें कंठस्थ हो जाएंगी। फिर तुम सुनते भी रहोगे और सुनोगे भी नहीं और सोए भी रहोगे। सत्संग से क्या होगा?
तो दूसरी तरफ लोग हैं जो कहते हैं, सत्संग से कुछ भी नहीं होगा। पूजा करो, आरती उतारो, अर्चना के थाल सजाओ; कुछ करो। सुनने से क्या होगा? इनमें विवाद चलता रहा है।
लेकिन शांडिल्य ने ठीक किया, उस विवाद को एक झटके में तोड़ दिया। यही ज्ञानी की कला है। एक झटके में विवाद को तोड़ दिया! सारा रूप बदल दिया। नया अर्थ दे दिया। अर्थ यह दिया--
ईश्वर तुष्टेः एकः अपि बली।
"ईश्वर के प्रीत्यर्थ एकमात्र साधन ही बलवान है।"
उसके प्रेम की असली बात है।
तू मेरी कैदे-मोहब्बत से निकल सकता नहीं,
तेरी सूरत दिल में है, तेरा तसव्वुर दिल में है।
मुझसे तुम दामन बचा कर जाओगे आखिर कहां,
याद आ सकता हूं मैं, दिल में समा सकता हूं मैं।
और ध्यान रखना, जितना तुम परमात्मा को अपने दिल में समा लोगे, उतने ही तुम परमात्मा के दिल में समा जाते हो। एक अनुपात है। इस अनुपात में कभी भेद नहीं पड़ता। तुम जितनी उसकी याद करते हो, उतनी ही दूसरी तरफ से भी याद शुरू हो जाती है। परमात्मा तो तुम जो करते हो उसी का प्रतिफलन है। तुम उसकी याद करते हो, तो उस तरफ से ध्वनियां उठने लगती हैं। यह अस्तित्व, प्रतिपल तुम जो उसके साथ करते हो, वही दोहरा देता है। अगर तुम गालियां बकते हो, तो गालियां तुम पर लौट कर गिर जाती हैं। अगर तुम प्रेम फैलाते हो, तो प्रेम तुम पर बरस जाता है।
ध्यान रखना, जो तुम्हें मिलता है, खोजबीन करोगे तो तुम पाओगे कि तुमने
इस जगत को वही दिया था। वही तुम्हें मिलता है। इसे सिद्धांत की भाषा में कहो तो कर्म का सिद्धांत।
ऐसा नहीं है कि कोई परमात्मा वहां बैठा है, जो हिसाब लगा रहा है कि तुमने कितनी चोरी की और कितना ब्लैक मार्केट किया और कितनी रिश्वत खाई और कितनी बेईमानी की। इस सबका हिसाब कौन रखेगा? नहीं, इस हिसाब की जरूरत भी नहीं है। तुम जो करते हो, जगत अनिवार्यरूपेण उसे तुम्हीं पर लौटा देता है। तुम्हारा कृत्य तुम्हारा भविष्य हो जाता है। जिसने आनंद के भाव से भर कर परमात्मा को स्मरण किया है, उसके ऊपर परमात्मा सब तरफ से बरसने लगेगा।

तुम बुझाओ प्यास मेरी या जलाए फिर तुम्हारी याद।

स्वर्ण-चांदी के कटोरों
में भरा था झलमलाता नीर,
मैं झुका सहसा पिपासाकुल
मगर फिर हो गया गंभीर--
भेद पानी और पानी,
प्यास में औ" प्यास में भी भेद,

तुम बुझाओ प्यास मेरी या जलाए फिर तुम्हारी याद।

पंखुरी पर ओस की दो
बूंद में भी डूबता है कौन,
उस घड़ी की ही प्रतीक्षा
में कभी गाता, कभी हूं मौन,
जब अमृत सागर सुनेगा,
सिर धुनेगा फेन बन साकार
औ" करेंगे सिंधु हाला औ" हलाहल के प्रणय-संवाद।
तुम बुझाओ प्यास मेरी या जलाए फिर तुम्हारी याद।

भक्त कहता है, दो ही उपाय हैं अब--
तुम बुझाओ प्यास मेरी या जलाए फिर तुम्हारी याद।
या तो बुझा दो मेरी प्यास को या ऐसा जला दो मेरी प्यास को कि मैं उसी में राख हो जाऊं। मगर ये दो बातें दो नहीं हैं। जब तुम अपनी प्यास को इतना जगा लोगे कि उसी में राख हो जाओ, तभी प्यास बुझती है। प्यास का पूरा हो जाना प्यास का बुझ जाना है। दर्द का पूरा हो जाना दर्द का दवा हो जाना है। जब तक प्यास अधूरी है तभी तक भटकाव है। ईश्वर के प्रति प्रेम ऐसा हो कि तुम मिटने को तैयार होओ, तो इसी घड़ी मिलन हो सकता है। कीमत तो चुकानी ही पड़ेगी। लोग सस्ते में चाहते हैं। लोग पूछते हैंः ईश्वर कहां है, हम ईश्वर को देखना चाहते हैं। मैं उनसे पूछता हूं, तुम ईश्वर को पाने के लिए चुकाना क्या चाहते हो? जब भी मुझसे कोई आकर पूछता है, ईश्वर को दिखा दें! तो मैं कहता हूं, ईश्वर तो दिख जाएगा, वह कोई बड़ी बात नहीं है, वह तो सरल बात है, असली सवाल यह है--तुम चुकाने को क्या तैयार हो?
वे कहते हैं, चुकाना? चुकाना क्या है? ईश्वर को देखना भर है।
चुकाने की जरा तैयारी नहीं है। अगर उनसे कहो कि एक घड़ी बैठ कर गीत गुनगुना लिया करें रोज उसकी याद में। वे कहते हैं, यह न हो सकेगा, समय कहां है? उनसे कहो कि नाच लिया करो कभी। वे कहेंगे, लोग हंसेंगे। पत्नी-बाल-बच्चे हैं, प्रतिष्ठा का सवाल है। उनसे कहो, कुछ भी न किया करो, एक घंटा बैठ जाया करो आंख बंद करके, भूल जाया करो बाहर के जगत को थोड़ी देर के लिए। वे कहते हैं, यह कैसे हो सकता है? विचार कहीं बंद हुए हैं? विचार बंद हो ही नहीं सकते! वे मान कर ही बैठे हैं।
कचरा विचारों को भी छोड़ने की तैयारी नहीं है, जिनमें तुम्हारा कुछ जाएगा नहीं। जिनके होने से तुम्हें कुछ मिला भी नहीं है। सिनेमा जाने को उनके पास समय है, होटल में बैठने को उनके पास समय है, ताश खेलने को उनके पास समय है, व्यर्थ की बकवास करने को उनके पास समय है, अखबार पढ़ने को उनके पास समय है, लेकिन अगर ध्यान की बात करो, तत्क्षण उनका उत्तर आता है--समय कहां है? रोटी-रोजी कमाएं कि ध्यान करें? यह बात वे नहीं पूछते सिनेमा जाते समय कि समय कहां है। तुम देखते हो, सिनेमा के सामने कतार लगी रहती है--उन्हीं लोगों की जिनसे ध्यान का कहो, तो वे कहते हैं, समय नहीं है।
ठीक बात ख्याल में ले लेना, परमात्मा को पाने के लिए हम कुछ चुकाने को राजी नहीं हैं। एक घड़ी भी शांत बैठने के लिए राजी नहीं हैं। हम चाहते हैं मुक्त मिलना चाहिए। इसलिए इस सदी में परमात्मा खो गया है। परमात्मा तो उतना ही है जितना पहले था, लेकिन दाम चुकाने वाले लोग खो गए हैं, खरीददार नहीं रहे। मुफ्त चाहते हैं। परमात्मा खुद उनके द्वार पर आए, उनके चरण दबाए और कहे कि मुझे देख लो। तो भी शायद वे कहेंगे कि समय कहां है? फिर आना! अभी और हजार काम पड़े हैं।
मेरे देखे परमात्मा को केवल वे ही लोग देख पाते हैं जो चुकाने की हिम्मत रखते हैं।
अबन्धः अर्पणस्य मुखम्।
"अर्पण से बंधन-मुक्त हो जाता है।"
बड़े बहुमूल्य सूत्र हैं। शांडिल्य कह रहे हैं कि अगर तुम प्रेम में अर्पित हो जाओ, फिर सारे कर्मों के बंधन समाप्त हो जाते हैं। तुम एक बार भी

अपने को समर्पित कर दो, कह दो कि मैं तेरा हूं; अब तू जो करवाएगा, करूंगा; तू जो नहीं करवाएगा, नहीं करूंगा; बुरा तेरा, भला तेरा; साधुता तेरी, असाधुता तेरी; अब मैं तेरा हूं; अब मैं नहीं कहना छोड़ता हूं; अब मैं सिर्फ हां ही कहूंगा; तुम आज्ञा देना और मैं हां कहूंगा; तू पूरब ले जाए तो पूरब, तू पश्चिम ले जाए तो पश्चिम; तू जहां ले जाए, जाऊंगा; तू नरक भेज दे तो नरक जाऊंगा; शिकायत नहीं होगी, अब मैं तेरे हाथों में अपने को सौंपता हूं, ऐसा जिसने कहा, ऐसा जिसने भीतर से किया, उसके जीवन में रूपांतरण हो जाता है। क्या रूपांतरण हो जाता है? कर्ताभाव समाप्त हो जाता है। तुम कर्ता नहीं रहे, परमात्मा कर्ता हो गया। तुम कौन रहे अब? तुम एक कठपुतली हो गए। भक्ति का सारा सार कठपुतली के नाच में है।
देखी? कठपुतली का नाच देखा? भीतर छिपा रहता है उनको नचाने वाला। उसके हाथ में कठपुतलियों के धागे रहते हैं। कठपुतलियां रोती हैं, गाती हैं, नाचती हैं, लड़तीं-झगड़तीं, प्रेम भी करतीं, सब चलता है। लेकिन कठपुतली का अपना कुछ भी नहीं है। कठपुतली किसी के इशारे पर नाच रही है।
भक्ति का सार-सूत्र इतना है कि कठपुतली हो जाओ। यह कहना छोड़ दो कि मैं करूंगा, कि मेरे किए कुछ हो सकता है। जहां मैं गया, कर्ताभाव गया, वहीं कर्म भी गया। फिर परमात्मा सम्हाल लेता है। उस क्षण से ही जीवन में प्रसाद की वर्षा शुरू हो जाती है। दुनिया ऐसे ही चलती है, तुम जो करते हो यही काम जारी रहता है, मगर फिर भी सब बदल जाता है। अब तुम कर्ता नहीं रह जाते। सफलता मिलती है तो तुम यह नहीं कहते कि मैं सफल हुआ; देखो, मैं कुछ खास। असफलता मिलती है तो तुम रोते नहीं, तुम यह नहीं कहते कि मैं असफल हो गया, आत्महत्या कर लूंगा। अब सुख और दुख में भेद नहीं रह जाता।
सुख-दुख में भेद क्या है? जब तक तुम कर्ता हो तब तक भेद है। सफलता- असफलता में भेद क्या है? जब तक मैं करने वाला हूं तब तक भेद है। जब मैं करने वाला नहीं, तो सफलता हो तो उसकी, असफलता हो तो उसकी। कठपुतली को जिता दे कि हरा दे, कठपुतली को क्या लेना-देना है? गिरा दे कि उठा दे, राजसिंहासन पर बिठा दे कि सूली पर लटका दे, कठपुतली को क्या लेना-देना है? अबन्धः अर्पणस्य मुखम्।
"अर्पण से बंधन-मुक्ति हो जाती है।"

अर्पित तुमको मेरी आशा, और निराशा, और पिपासा।

पंख उगे थे मेरे जिस दिन
तुमने कंधे सहलाए थे,
जिस-जिस दिशि-पथ पर मैं विहरा
एक तुम्हारे बतलाए थे,
विचरण को सौ ठौर, बसेरे
को केवल गलबांह तुम्हारी
अर्पित तुमको मेरी आशा, और निराशा, और पिपासा।

नाम तुम्हारा ले लूं, मेरे
स्वप्नों की नामावलि पूरी,
तुम जिससे संबद्ध नहीं, वह
काम अधूरा, बात अधूरी
तुम जिसमें डोले वह जीवन,
तुम जिसमें बोले वह वाणी,
मुर्दा-मूक नहीं तो मेरे सब अरमान, सभी अभिलाषा। अर्पित तुमको मेरी आशा, और निराशा, और पिपासा।

तुमसे क्या पाने को तरसा
करता हूं कैसे बतलाऊं,
तुमको क्या देने को आकुल
रहता हूं कैसे जतलाऊं,

यह चमड़े की जीभ पकड़ कब
पाती है मेरे भावों को,
इन गीतों में पंगु स्वर्ग में नर्तन करने वाली भाषा।
अर्पित तुमको मेरी आशा, और निराशा, और पिपासा।

सब अर्पित--आशा, निराशा, पिपासा। सब अर्पित--अंधेरा, प्रकाश, सुख-दुख, आकांक्षाएं, विषाद। सब अर्पित।
अर्पित तुमको मेरी आशा, और निराशा, और पिपासा।
कुछ बचाना मत। यह मत सोचना कि अच्छा-अच्छा अर्पित करें। वह भी अहंकार है। साधुता अर्पित करें। वह भी अहंकार है। फूल ही फूल मत ले जाना प्रभु के चरणों में, अन्यथा चूक हो जाएगी। तुम्हारे कांटों का क्या होगा? लोग फूल ही फूल चढ़ाते हैं।
मैं एक गांव में बहुत दिन तक रहा। मैंने एक बड़ा बगीचा लगा रखा था। मेरे पड़ोस के एक वृद्ध सज्जन रोज सुबह आ जाते थे--थोड़े फूल चाहिए, मंदिर जा रहा हूं। उनको मैंने कई बार फूल तोड़ते देखा। एक दिन मैंने उनसे कहा, कभी कांटे भी ले जाओ।
उन्होंने कहा, आप कहते क्या हैं? कांटे! किस शास्त्र में लिखी है कांटे चढ़ाने की बात!
मैंने उनसे कहा, ऐसा कोई शास्त्र ही नहीं है जिसमें यह न लिखा हो। इशारे हैं शास्त्रों में, सीधा-सीधा शायद न भी लिखा हो, लेकिन मैं तुमसे कहता हूं--कांटे भी ले जाओ। क्योंकि फूल तो तुम चढ़ा दोगे, तुम्हारे कांटों का क्या होगा? स्वर्ग तो तुम चढ़ा दोगे, तुम्हारे नरक का क्या होगा? अपने देवता को तो चढ़ा दोगे, अपने दानव का क्या होगा? वह तुम्हारे पास बचा रह जाएगा। तुम उसी में जकड़ जाओगे। सब चढ़ा दो! अब यह भी भेद क्या करना जब चढ़ाने ही गए हो! सब उसका है। ऐसे भी उसका है, तुम चढ़ाओ या न चढ़ाओ, ऐसे भी उसका है। लेकिन चढ़ा दो तो तुम्हारे जीवन में बड़ा फर्क पड़ जाएगा। त्वदीयं वस्तु, तुभ्यमेव समर्पये। तेरी चीज, तुझे ही समर्पित।
ऐसे भी तुम्हारी नहीं है। तुम्हारे पास है क्या देने को? तुम उसके हो, तुम्हारे पास देने को हो भी क्या सकता है?
लेकिन तुमने अकड़ बना ली है। जो तुम्हारा नहीं है, उस पर तुमने अपने होने का कब्जा कर रखा है। तुमने जमीन पर रेखाएं खींच दी हैं कि यह मेरी जमीन, यह मेरा देश, यह मेरा घर; यह मेरी पत्नी, यह मेरा बेटा--ये तुम्हारी खींची हुई लकीरें हैं, ये सब गैर-कानूनी हैं। क्योंकि सब उसका है। तुम्हारा यहां कुछ भी नहीं है। यहां मेरा-तेरा ही संसार है।
अर्पित तुमको मेरी आशा, और निराशा, और पिपासा।
पंख उगे थे मेरे जिस दिन
तुमने कंधे सहलाए थे,
उसके ही कंधे सहलाने पर पंख उगते हैं। वही श्वास लेता है तो तुम श्वास लेते हो। वही धड़कता है तो तुम्हारा हृदय धड़कता है। वही तुम्हारा जीवन है-- जीवन का जीवन।
जिस-जिस दिशि-पथ पर मैं विहरा
एक तुम्हारे बतलाए थे,
तुम चाहे जानो और चाहे न जानो, वही तुम्हारे धागों को खींच रहा है। और जहां-जहां तुम विहरे हो, जिन-जिन रास्तों पर चले हो, उसके ही बतलाए चले हो। लेकिन तुम अपनी अकड़ बना ले सकते हो।
मैंने सुना है, एक पत्थरों की ढेरी लगी थी एक राजमहल के पास। एक बच्चा खेलता हुआ निकला, उसने एक पत्थर उठा कर राजमहल की खिड़की की तरफ फेंका। फेंका तो बच्चे ने था, लेकिन पत्थर का भी अहंकार होता है। पत्थर जब ढेरी से ऊपर उठने लगा तो उसने आस-पास पड़े हुए पत्थरों से कहा, मित्रो, मैं जरा यात्रा को जा रहा हूं।
नीचे पड़े पत्थर ईर्ष्या से दबे रह गए। तड़पे, हिले-डुले, मगर हिल-डुल भी
न सके। सोचा, यह विशिष्ट पत्थर है--अवतारी, असाधारण। हम तो उड़ ही नहीं सकते।

उड़ने की आकांक्षा किसमें नहीं होती? पत्थर भी आकाश में उड़ना चाहते हैं। वे भी चांद-तारों से बात करना चाहते हैं। वे भी सूरज की यात्रा पर निकलना चाहते हैं। पंख की आकांक्षा किसको नहीं होती? तुम भी सपने देखते हो रात तब पंख उग आते हैं और आकाश में उड़ते हो। पत्थर भी सपने देखते हैं। उड़ने का मजा ऐसा है! उड़ने की मुक्ति ऐसी है! खुले आकाश का आनंद ऐसा है! उड़ना यानी स्वतंत्रता। कोई बंधन नहीं, सारा आकाश तुम्हारा है। कसमसाए, दुखी हुए, ईर्ष्या से जले, पड़े रह गए।
पत्थर तो उठा, जाकर महल की खिड़की से टकराया, कांच चकनाचूर हो गया। अब
जब पत्थर कांच से टकराता है तो कांच चकनाचूर हो जाता है। पत्थर चकनाचूर करता नहीं है, करना नहीं पड़ता पत्थर को कुछ। यह दोनों का स्वभाव ऐसा है कि पत्थर के टकराने से कांच चकनाचूर हो जाता है। इसमें पत्थर का कोई कृत्य नहीं है। लेकिन पत्थर हंसा और उसने कहा, मैंने लाख बार कहा है, मेरे रास्ते में कोई भी न आए। जो आएगा, चकनाचूर हो जाएगा।
यही तुमने किया है। सोचना, यही तुमने कहा है। ऐसे ही तुम भी जीए हो। यह संयोग ही है, इसमें कुछ गौरव नहीं है पत्थर का। पत्थर पत्थर है, कांच कांच है, बस इतनी बात है। कांच कोमल है, पत्थर कठोर है, इतनी बात है। न पत्थर के किए कुछ हो रहा है, न कांच के लिए कुछ हो रहा है, स्वभावगत सब हो रहा है। कांच तो छितर कर टूट गया, पत्थर जाकर महल के भीतर कालीन पर गिरा। बहुमूल्य ईरानी कालीन! मालूम है पत्थर ने क्या कहा? पत्थर ने कहा, यात्री की, लंबी यात्रा की, थक भी गया, थोड़ा विश्राम करूं। गिरा है, लेकिन कहता है-- विश्राम करूं!
नौकरी से तुम निकाले भी जाते हो तो तुम कहते हो--इस्तीफा दे दिया है। चुनाव हार जाते हो, तुम कहते हो--राजनीति का त्याग कर दिया, संन्यास ले लिया है।
महल के द्वार पर खड़े नौकर ने आवाज सुनी कांच के टूटने की, पत्थर के गिरने की, वह भागा, भीतर आया। उसने पत्थर को हाथ में उठाया--फेंकने के लिए। लेकिन पत्थर ने कहा कि बड़े भले लोग हैं, मेरे स्वागत में न केवल कालीन बिछा रखे थे, बल्कि सेवक भी लगा रखे हैं।
नौकर ने पत्थर को उठा कर वापस खिड़की से नीचे फेंक दिया। मालूम है पत्थर ने क्या कहा? पत्थर ने कहा, बहुत दिन हो गए घर छोड़े, मित्रों की याद भी बहुत आती है, अब वापस चलूं!
और जब पत्थर वापस गिर रहा था अपनी ढेरी पर, तो उसने कहा, मित्रो, तुम्हारी बड़ी याद आती थी। ऐसे तो महलों में निवास किया, राजाओं के हाथों में उठा, सम्राटों से मुलाकात हुई, मगर फिर भी अपना घर, अपने लोग, अपना देश-- मातृभूमि--बड़ी याद आती थी, मैं वापस आ गया। उस सबको छोड़-छाड़ दिया।
ऐसी जिंदगी है तुम्हारी। कौन हाथ तुम्हें जिंदगी में फेंक देता है, तुम्हें पता नहीं। क्यों तुम एक दिन जन्म जाते हो, तुम्हें पता नहीं। कौन तुम्हें जन्मा देता है, तुम्हें पता नहीं। क्यों? कुछ पता नहीं। मगर तुम कहते हो--मेरा जीवन, मेरा जन्म! जैसे तुम्हारा इसमें कुछ हाथ हो। जैसे तुमने निर्णय लिया हो! जैसे तुमसे पूछ कर किया गया हो। जैसे तुम्हें पता हो।
फिर कौन तुम्हारे भीतर आकांक्षाएं जगाता है, कौन वासनाएं जगाता है, तुम्हें कुछ पता नहीं। लेकिन तुम कहते हो--मैं यह करके रहूंगा। मुझे संगीतज्ञ बनना है! मैं दुनिया को दिखा कर रहूंगा कि मुझे संगीतज्ञ बनना है! किसने तुम्हारे भीतर आकांक्षा उठाई है संगीतज्ञ बनने की? तुमने? तुम्हारे बस के बाहर है। उठी है, तुमने उठते पाया है इस वासना को। कि तुमने पाया कि बड़ा धन कमाऊंगा, कि एक सुंदर स्त्री पानी है, कि एक सुंदर पुरुष पाना है, मगर ये सारी आकांक्षाएं तुम्हारे भीतर उठी हैं। इन्हें तुमने उठाया नहीं है, तुम इनके मालिक नहीं हो। ये किस गहराई से आती हैं, तुम्हें कुछ पता नहीं। यह कौन धागे खींच रहा है, तुम्हें कुछ पता नहीं। कौन तुम्हें लड़ा रहा है जीवन के संघर्ष में, कौन तुम्हें विजय की आकांक्षा से भर रहा है, कौन तुम्हें महत्वाकांक्षा दे रहा है, तुम्हें कुछ पता नहीं। यह खेल जो तुम खेल रहे हो, तुम्हारा लिखा हुआ नहीं है। यह पार्ट जो तुम अदा

कर रहे हो, यह तुम्हारा लिखा हुआ नहीं है। यह तुम जो हो रहे हो, यह तुम्हारी ही बात नहीं है, कोई बड़ा राज पीछे छिपा है, जो बिल्कुल अज्ञात है, अंधेरे में पड़ा है।
भक्त इस बात को ठीक से देखता है, समझता है। इस समझ से ही अर्पण पैदा होता है। इस समझ में ही अर्पण घट जाता है। उसे दिखाई पड़ जाता है कि मैं हूं ही कहां! न मालूम कौन अज्ञात ले आया है! न मालूम कौन अज्ञात श्वास ले रहा है! न मालूम कौन अज्ञात एक दिन उठा ले जाएगा--जैसा आया था वैसे चला जाऊंगा। न मालूम कौन अज्ञात न मालूम किन-किन यात्राओं पर भेज रहा है। जब तक भेज रहा है, जा रहा हूं; जिस दिन रोक लेगा, रुक जाऊंगा। न संसार मेरा है, न संन्यास मेरा है।
मेरे पास लोग आते हैं, वे पूछते हैं कि संन्यास लेने की आकांक्षा हो रही है, ले लें या न लें?
मैं उनसे कहता हूं, तुम्हारे हाथ में है? तो तुम समझे ही नहीं संन्यास
का अर्थ। तुम निर्णायक बनोगे तो संन्यास चूक गया। कौन अज्ञात तुम्हारे भीतर यह आकांक्षा उठा रहा है कि अब संन्यास ले लो? छोड़ दो उसके हाथों में, लेने दो उसे संन्यास तुम्हारे द्वारा। वही संन्यास लेता है तुम्हारे द्वारा, वही संन्यास छोड़ संसार में जाता है तुम्हारे द्वारा। सब खेल उसका, सब द्वंद्व उसके, सारी लीला उसकी है।
ऐसी प्रतीति जब होने लगती है... और सत्संग में यही हो जाए तो बस सत्संग पूरा हुआ। किसी के पास बैठ कर यह बात तुम्हारी समझ में उतर जाए कि तुम नहीं हो, परमात्मा है। फिर यह कहना ही बात फिजूल होगी कि अर्पित करता हूं। कौन है अर्पित करने वाला? किसको करेगा? अर्पण हो जाते हो तुम, करना नहीं पड़ता। यह कोई घोषणा नहीं करनी पड़ती कि आज से मैं अपने को परमात्मा में अर्पित करता हूं। एक दिन तुम समझ-समझ कर पाते हो--हो गया अर्पण! आज से तुम नहीं हो, परमात्मा है!
नाम तुम्हारा ले लूं, मेरे
स्वप्नों की नामावलि पूरी,
तुम जिससे संबद्ध नहीं, वह
काम अधूरा, बात अधूरी,
तुम जिसमें डोले वह जीवन,
तुम जिसमें बोले वह वाणी,
मुर्दा-मूक नहीं तो मेरे सब अरमान, सभी अभिलाषा।
अर्पित तुमको मेरी आशा, और निराशा, और पिपासा।
सब अर्पित है। सब कांटे-फूल, स्वर्ग-नरक, अंधेरा-रोशनी, अच्छा-बुरा, पाप-पुण्य, सब अर्पित है।
अबन्धः अर्पणस्य मुखम्।
और ऐसा जो अर्पित है, वह मुक्त हो गया। वह जीवन-मुक्त है।
यह सूत्र ख्याल में लेना। यह सूत्र सार-सूत्र है। यह एक सूत्र काफी है। इस एक सूत्र के सहारे तुम्हारा सारा जीवन नया हो सकता है, तुम्हारा नया जन्म हो सकता है, तुम द्विज हो सकते हो।

क्या मेरा है जो आज नहीं है तेरा।

मेरी अंजलि के कुसुमों में
प्रिय तेरी गलमाला,
मेरे हाथों के दीपक से
तेरा घर उजियाला,
अगरु-गंध तेरे आंगन में
दग्ध हुआ उर मेरा,
क्या मेरा है जो आज नहीं है तेरा।

मैं जागा या तूने अपने
सरसिज-से दृग खोले,

मेरा स्वर फूटा या तेरे
भाव-विहंगम बोले,
मेरा भाग्य-उदय है तेरी
ऊषा का वातायन,
अरुण किरण के शर हैं मेरे, तेरा सुभग सबेरा
क्या मेरा है जो आज नहीं है तेरा।

अर्पित होते ही तुम पाओगे--जो तुम्हारा है, सब उसका है। और तब एक दूसरी क्रांति घटती है, कि उसका जो है, वह सब तुम्हारा है। एक बार दो, तो मिले। एक बार लुटा दो, तो पा लो। मिटो, तो हो जाओ।
क्या मेरा है जो आज नहीं है तेरा।
यह तुम्हें एक दिन अनुभव करना पड़े। तो एक दिन वह अपूर्व घटना भी घटती
है जब तुम अनुभव करोगे--
क्या तेरा है जो आज नहीं है मेरा।
तुम अपनी क्षुद्रता उसमें समर्पित कर दो, तो उसकी विराटता तुम्हारी
हो जाती है। तुम खोओगे नहीं। यह सौदा करने जैसा है। सिर्फ नासमझ डरे रहते हैं। तुम अपना छोटा सा आंगन छोड़ोगे, उसका सारा आकाश तुम्हारा हो जाएगा।
तुम अपनी छोटी सी दुनिया छोड़ोगे, उसका सारा ब्रह्मांड तुम्हारा हो जाएगा।
तुम छोड़ोगे ना-कुछ, पा लोगे सब कुछ।
रामकृष्ण के पास एक आदमी आया और उसने रामकृष्ण से कहा कि आपका त्याग महान है।
रामकृष्ण कहे, चुप! दुबारा ऐसी भूल कर बात मत कहना। त्यागी तू है, हम
तो भोगी हैं!
अपूर्व बात रामकृष्ण ने कही। वह आदमी थोड़ा चौंका, रामकृष्ण के शिष्य
भी थोड़े चौंके कि यह वे क्या कह रहे हैं? होश में हैं? उस आदमी को जब कि सभी जानते हैं, वह नगर का सबसे बड़ा धनपति, सबसे बड़ा कंजूस, उसको कह रहे हैं-- त्यागी तुम हो, भोगी मैं हूं। उस आदमी ने भी कहा कि आप भी क्या मजाक कर रहे हैं? मैं और त्यागी? नहीं-नहीं, त्यागी आप हैं, मैं तो भोगी हूं। रामकृष्ण ने कहा, इसमें मैं राजी नहीं हो सकता। क्योंकि तूने क्षुद्र
को पकड़ा है, विराट को छोड़ा है, तो त्यागी तू है। हमने विराट को पाया, क्षुद्र को छोड़ा, हम त्यागी कैसे? कोई कौड़ी छोड़ दे और कोहिनूर पकड़ ले, उसको त्यागी कहोगे? कोई कौड़ी पकड़ ले और कोहिनूर छोड़ दे, वह है त्यागी। रामकृष्ण ने ठीक कहा। वह बात बिल्कुल सच है। मैं तुमसे कहना चाहता हूंः योग तुम्हें परम भोग पर ले जाता है। जब तक तुम भोगी हो, तब तक तुम्हें भोग का पता ही कहां है? भोगी भोगी है ही नहीं, जानता ही नहीं, भोगी बड़ा त्यागी है। क्षुद्र को पकड़े है, विराट को चूका है। सीमित को पकड़े है, असीम से वंचित है। मर्त्य को पकड़े है, अमृत बरस रहा है, नहीं पीता। मृत्यु की अंधेरी गली में सरक रहा है, अमृत की रोशनी मौजूद है, अमृत का आकाश खुला है, वहां पंख नहीं फैलाता। मैं तुमसे कहना चाहता हूं कि योगी परम भोगी है। क्योंकि परमात्मा को भोगने से बड़ा और क्या भोग होगा?
क्या मेरा है जो आज नहीं है तेरा।
तुम इतना कहो; तुम इतना जीओ।
मेरी अंजलि के कुसुमों में
प्रिय तेरी गलमाला,
तुम्हारे हाथ में जो फूल हैं, उन्हें तुम अपने हाथ के मत समझो, उसके गले की माला समझो।
मेरे हाथों के दीपक से
तेरा घर उजियाला,
तुम अपने दीयों को अपने लिए मत जलाओ, उसके घर को उजियाला करो। सब उसका है। तुम्हारा घर भी उसका है।
अगरु-गंध तेरे आंगन में
दग्ध हुआ उर मेरा,

तुम अपने को ऐसे जला दो--अगरु और गंध जलाने से कुछ भी न होगा, हृदय को जला दो।
अगरु-गंध तेरे आंगन में
दग्ध हुआ उर मेरा,
क्या मेरा है जो आज नहीं है तेरा।
और तब सब रूप बदल जाएगा। तुम्हारे भीतर एक अपूर्व भाव उठेगा--क्या तेरा है जो आज नहीं है मेरा। मैं को गंवाओ तो सब तुम्हारा हो जाता है। जीसस ने कहा हैः धन्यभागी हैं वे जो मिटने को तैयार हैं, क्योंकि केवल
वे ही हैं जो बचेंगे। अभागे हैं वे जो अपने को बचाते हैं। जिसने अपने को बचाया, उसने अपने को गंवाया।
मैं जागा या तूने अपने
सरसिज-से दृग खोले,
जरा सोचना इस पर, इस पर ध्यान करना!
मैं जागा या तूने अपने
सरसिज-से दृग खोले,
तुम्हारे भीतर कौन जागता है? वही जागता है। सब जागरण उसका है, सब चैतन्य उसका है। जब सुबह तुम आंख खोलते हो तो तुम यह सोचो ही मत कि तुमने आंख खोली, उसने ही तुम्हारे भीतर आंख खोली। उसने ही श्वास ली, उसने ही जीवन लिया, उसने ही आंख खोली। रात वही आंख बंद करके विश्राम करता है, सुबह आंख खोल कर वही काम पर निकल जाता है। जिस दिन तुम अपने को ऐसा समझने लगोगे, उस दिन अर्पित हुए।
मैं जागा या तूने अपने
सरसिज-से दृग खोले,
मेरा स्वर फूटा या तेरे
भाव-विहंगम बोले,
तुम क्या गाओगे? सब गीत उसके हैं। और जहां तुम आ जाते हो, वहीं विसंगीत है।
रवींद्रनाथ से किसी ने कहाः आपने इतने प्यारे गीत गाए। रवींद्रनाथ ने कहा कि मैंने जो-जो गाए, वे प्यारे नहीं हैं। जहां-जहां मैं आया, वहीं-वहीं गीत का छंद टूट गया। जहां तुम छंद पाओ, वहां मैं नहीं हूं। सब छंद उसका है। कूलरिज, एक महाकवि, मरा तो हजारों कविताएं अधूरी उसके घर में मिलीं। उसके मित्र तो सदा से जानते थे कि वह अधूरी कविताएं लिख कर रखता जाता है, रखता जाता है। थोड़ी-बहुत नहीं, हजारों। उसके मित्रों ने उससे हमेशा कहा था कि पूरी क्यों नहीं करते?
कूलरिज कहता कि मैं कैसे पूरा करूं? जितनी उतरी उतनी उतरी। जितनी उसने गाई उतनी गाई। मैंने पूरी करने की कोशिश की है कभी-कभी, लेकिन तब मैंने पाया कि जो मैं जोड़ देता हूं उससे सब खराब हो जाता है। एक ही पंक्ति अधूरी है किसी कविता में, एक ही पंक्ति रह गई है, एक पंक्ति और जुड़ जाए तो पूरी हो जाए कविता। कूलरिज ने कहा कि मैंने एक पंक्ति जोड़ कर देखी, बहुत तरह से कोशिश की है, लेकिन मेरी पंक्ति अलग रह जाती है। वे जो पंक्तियां उतरी हैं, जिनका अवतरण हुआ है, उनमें गंध और है, उनमें उस लोक की गंध है। जो मैं जोड़ देता हूं, वह थेगड़ा सा मालूम पड़ता है।
ऐसा हुआ। रवींद्रनाथ ने गीतांजलि का अंग्रेजी में अनुवाद किया। तो थोड़ा संकोच उनको था कि अंग्रेजी अपनी भाषा नहीं है, अनुवाद पता नहीं ठीक हुआ है या नहीं हुआ है। तो उन्होंने सी.एफ.एंड्र्यूज को अपना अनुवाद दिखलाया। एंड्र्यूज ने कहा, अनुवाद तो सब ठीक हुआ है, सिर्फ चार जगह थोड़ी व्याकरण की दृष्टि से चूक है। एंड्र्यूज पंडित थे, विद्वान थे; और उन्होंने जो शब्द सुझाए वे रवींद्रनाथ को भी जंच गए, कि ठीक हैं। उन्होंने शब्द बदल लिए।
फिर लंदन में रवींद्रनाथ ने लंदन के कवियों को इकट्ठा किया अपनी गीतांजलि सुनाने के लिए; ईट्स नाम के एक कवि के घर छोटी सी बैठक हुई कवियों की और रवींद्रनाथ ने अपनी गीतांजलि सुनाई। लोग भावविभोर हो गए। लेकिन

ईट्स बीच में खड़ा हो गया और उसने कहा कि और सब तो ठीक है, लेकिन तीन-चार जगह अड़चन है।
रवींद्रनाथ ने कहा, कौन सी जगहें हैं जहां अड़चन है?
वे वे ही जगहें थीं जो सी.एफ.एंड्र्यूज ने सुझाई थीं। रवींद्रनाथ भरोसा ही नहीं कर सके कि यह संभव है। रवींद्रनाथ ने कहा, आपने पहचाना कैसे?
उन्होंने कहा कि छंद भंग हो गया है। पत्थर की तरह आ गई हैं कुछ बातें। रवींद्रनाथ ने अपने शब्द, जो उन्होंने पहले रखे थे, दोहराए। ईट्स ने कहा कि ये ठीक हैं--भाषा की दृष्टि से गलत होंगे, छंद की दृष्टि से ठीक हैं; इनको ही रहने दो; इनमें प्रवाह है, ये पत्थर की तरह नहीं आए हैं। इनमें एक तरंगायित सुसंबद्धता है, एक संगीत है, एक संगति है।
मेरा स्वर फूटा या तेरे
भाव-विहंगम बोले,
अर्पित व्यक्ति धीरे-धीरे अनुभव करने लगता है--बोलता तो वही बोलता, मैं बांस की पोंगरी हूं। कबीर ने वही कहा है कि मैं तो बांस की पोंगरी। तू गाए तो गाए, तू चुप रहे तो चुप।
मेरा स्वर फूटा या तेरे
भाव-विहंगम बोले,
मेरा भाग्य-उदय है तेरी
ऊषा का वातायन,
अरुण किरण के शर हैं मेरे, तेरा सुभग सबेरा
क्या मेरा है जो आज नहीं है तेरा।
अबन्धः अर्पणस्य मुखम्।
"अर्पण से बंधन-मुक्ति हो जाती है।"
ख्याल में आया सूत्र? कुछ अर्पण करना नहीं है। सब उसका ही है। अभी भी उसका है। जब तुम सोच रहे हो मेरा है, तब भी उसका है। तुम्हारा दावा झूठा है। झूठे दावे को हटा लेना है। बस इतना ही फर्क पड़ने वाला है।
उस झूठे दावे के हटते ही जीवन में एक नई अवस्था, एक नया प्रभात होता है। तुम्हारे भीतर से परमात्मा जीता है। यही मुक्त की दशा है। तुम नहीं जीते, फिर तुम्हारा बंधन क्या? फिर जो करवाता है, तुम करते हो। कुछ दिन भी जरा इस पर ध्यान करना--जो करवाता है, वही करते हो! और इससे फर्क नहीं पड़ता कि तुम जो कर रहे हो उसमें कुछ फर्क पड़ेगा। दुकान जाते थे, अब भी जाओगे। कुछ परमात्मा ऐसा नहीं है कि वह सभी को हिमालय की गुफा में ले जाने वाला है। उसका संसार कैसे चलेगा? कुछ ऐसा नहीं है कि परमात्मा पर तुम सब छोड़ दोगे तो तुम्हारी पत्नी और बच्चों से तुम्हें छुड़ा देगा। महात्माओं ने छुड़ाया है। परमात्मा ने नहीं छुड़ाया है। महात्माओं से बचना। महात्माओं ने बहुत हत्या की है। महात्माओं के ऊपर भारी दोष है। उन्होंने परमात्मा के संसार को विकृत किया है। उन्होंने जिंदा पति के रहते पत्नियां विधवा करवा दी हैं, जिंदा बाप के रहते बच्चों को अनाथ करवा दिया है।
मुझसे लोग आकर पूछते हैं कि यह कैसा संन्यास है आपका, कि आदमी घर में
रह रहा है? पत्नी भी, बच्चे भी, यह कैसा संन्यास है आपका?
कल्याण के एक मित्र ने संन्यास लिया। वे बंबई बिचारे काम करने आते थे। मेरे पास आए एक दिन अपनी पत्नी को लेकर, कहा, अब इसको भी संन्यास दे दें। मैंने पूछा, मामला क्या है? उन्होंने कहा, मामला यह है कि इसके साथ मैं कहीं जाता हूं तो लोग बड़ी शक की नजर से देखते हैं कि यह संन्यासी किसकी स्त्री को भगा ले आया? कई लोग पूछते हैं कि यह बाई कौन है? और इस तरह पूछते हैं जैसे कि मैं कोई अपराध कर रहा हूं। और अगर मैं कहता हूं मेरी पत्नी है, तो वे मुझे इस तरह से देखते हैं कि तुम होश में हो? पागल तो नहीं हो? संन्यासी, पत्नी कैसे? मैंने कहा, ठीक, इसका भी संन्यास कर देते हैं।
एक सप्ताह बाद अपने बेटे को भी लेकर आए, छोटे बच्चे को, कि अब इसको भी संन्यास दे दें। मैंने कहा, इसका क्या मामला है? उन्होंने कहा, अब हम दोनों इसके साथ कहीं जाते हैं, तो लोग सोचते हैं कि किसी के बच्चे को ले भागे! खबरें तो उड़ती रहती हैं न कि साधु किसी के बच्चे को लेकर भाग गए,

बच्चों को उड़ाया जा रहा है। तो उन्होंने कहा, कल बड़ी झंझट हो गई, ट्रेन में बैठे थे, एक पुलिसवाला आ गया, उसने कहा कि नीचे उतरो, थाने चलो, यह बच्चा किसका है? कहां ले जा रहे हो?
धारणा बन गई है कि संन्यासी का मतलब होता है--भगोड़ा, पलायनवादी, सब छोड़-छाड़ कर चला जाए।
संन्यासी का यह अर्थ नहीं होता। संन्यासी का अर्थ होता हैः सब उस पर छोड़ दे। छोड़-छाड़ कर न चला जाए! छोड़-छाड़ कर क्या जाना? वह तो फिर नया अहंकार हुआ कि मैं छोड़ कर जा रहा हूं, मैं संन्यासी। वह तो फिर नई बंधन की व्यवस्था हो गई। नई जंजीरें ढाल लीं तुमने। और ध्यान रखना, पुरानी जंजीरें बेहतर थीं, नई ज्यादा खतरनाक हैं। क्योंकि पहला अहंकार स्थूल था, अब बड़ा सूक्ष्म अहंकार होगा कि मैंने सब छोड़ दिया! लाखों पर लात मार दी! पत्नी-बच्चे छोड़ दिए, संसार छोड़ दिया, मैंने बड़ा काम करके दिखाया है। तुम भगवान के सामने और भी बड़े दावेदार हो गए, तुम्हारा दावा नहीं मिटा। अब अगर भगवान तुम्हें मिल जाए तो तुम हजार शिकायतें करोगे--कि अन्याय हो रहा है मेरे साथ, मैंने इतना छोड़ दिया और अभी तक मेरा मोक्ष नहीं हुआ है। अभी तक स्वर्ग का कुछ पता नहीं है, अभी तक अप्सराएं नहीं मिलीं। कहां हैं अप्सराएं? कहां हैं झरने शराब के? बहिश्त कहां है? और क्या चाहिए अब, सब तो छुड़वा दिया! सब तो दांव पर लगा दिया, बचा तो कुछ भी नहीं है।
कुछ भी दांव पर नहीं लगा है। तुमने कुछ छोड़ा भी नहीं।
छोड़ने का अर्थ होता हैः परमात्मा पर सब छोड़ना। परमात्मा फिर जैसे जिलाए! वह अगर कहे कि घर में रहो, पत्नी के साथ रहो, बच्चे के साथ रहो, तो ठीक! और यही मेरी दृष्टि में क्रांति है। तुम सब उस पर छोड़ दो। दुकान करवाए तो दुकान ठीक।
कबीर ज्ञान को उपलब्ध हो गए, समाधि को उपलब्ध हो गए, लेकिन कपड़ा बुनते रहे। जुलाहे थे सो जुलाहे रहे। शिष्यों ने बहुत बार कहा कि हमें बड़ा अशोभन लगता है, हमें बड़ी पीड़ा होती है, कि हमारा गुरु और दिन भर कपड़ा बुनता रहे। आप छोड़ते क्यों नहीं? हम भोजन देंगे, व्यवस्था सब हम करेंगे, हम हमेशा तैयार हैं सेवा के लिए, आप छोड़ते क्यों नहीं?
कबीर कहतेः लेकिन वह छुड़वाए तो छोडूं! वह तो मेरे कपड़े बुनने से बिल्कुल राजी है। उसकी तरफ से तो इशारा ही नहीं आता। वह तो मेरे कपड़ों से बड़ा प्रसन्न है। और जब मैं बाजार ले जाता हूं अपने कपड़े बेचने तो वह बड़े खुश होकर खरीदता है। राम खरीदने आते हैं--कबीर कहते थे। और मैं न बनाऊंगा तो उनके लिए इतने सुंदर कपड़े कौन बनाएगा? झीनी झीनी बीनी रे चदरिया। वे चादर बुनते हैं और गीत गाते हैं। चादर ही नहीं बुनते, चादर में गीत बुनते हैं। चादर ही नहीं बुनते, चादर में रामरस बुनते हैं। यह चादर और है। अब यह चादर ही नहीं है, यह अर्पित व्यक्ति के हाथ से बुनी गई चादर है। काम वही जारी रहा।
गोरा कुम्हार ज्ञान को उपलब्ध हो गया, लेकिन कुम्हार ही रहा, घड़े बनाता ही रहा।
तुलाधर वैश्य की कथा आती है। ज्ञान को उपलब्ध हो गया, ब्रह्मज्ञान को, लेकिन तौलता रहा; तराजू पर बैठा रहा; जो काम जारी था, जारी रहा।
जिसने अपने को अर्पित कर दिया, अब उसकी कोई मंशा नहीं है। अब जो परमात्मा करवाएगा करवाएगा। नहीं करवाएगा तो नहीं करवाएगा। लेकिन अपनी तरफ से अब हम कुछ भी न करेंगे। जो उसकी तरफ से आता रहेगा, उसे होने देंगे, हम उसके सहयोगी रहेंगे, हम उसके लिए निमित्त रहेंगे।
कृष्ण की गीता का कुल सार इतना है--इस सूत्र में आ गया--अबन्धः अर्पणस्य मुखम्। इतनी ही बात कृष्ण ने उतनी लंबी गीता में कही है, जो शांडिल्य ने एक सूत्र में कह दी है। अर्जुन को यही समझाया है कि तू अर्पित हो जा, सब उस पर छोड़ दे, तू निमित्तमात्र रह जा। वह युद्ध करवाए तो युद्ध कर, वह जो करवाए सो कर, तू अपने को बीच में न ला। तू निर्णायक मत बन। तेरा निर्णायक बनना ही तेरा संसारी होना है। तू अनिर्णायक हो गया, सिर्फ ग्राहक रह गया उसके संदेशों का--वही संन्यास है।
ध्याव नियमः तु दृष्टसौकर्यात्।

"जिस भाव से ध्यान करने से नेत्र तृप्त होते हों, उसी भाव के चिंतन करने का नाम ध्यान है।"
महत्वपूर्ण सूत्र है, ख्याल में लेना।
अधिकतर लोग ध्यान, पूजा-पाठ, प्रार्थना जबरदस्ती आरोपित करते हैं। वह उचित नहीं है। जबरदस्ती आरोपण से कुछ भी न होगा। सहज स्वभाव का प्रवाह होना चाहिए। लेकिन उपद्रव इसलिए हो गया है कि जन्म के साथ तुम्हें धर्म भी पिला दिया गया है। मां ने दूध के साथ तुम्हें धर्म भी पिला दिया है। कोई आदमी जैन घर में पैदा हुआ है। अब इसके भीतर हो सकता है भक्ति की उमंग सहज हो, मगर यह महावीर के सामने नाचे तो कैसे नाचे? वह महावीर नग्न खड़े हैं, वहां नृत्य का कोई अर्थ नहीं है। यह महावीर के सामने गीत गाए तो कैसे गाए? वह गीत बिल्कुल बेमौजूं मालूम होता है। गीत कृष्ण के सामने गाया जा सकता है, और कृष्ण के सामने नाचा जा सकता है। जरा सोचो, अगर मीरा महावीर की भक्त हो, तो नाचे कैसे? पैर कट जाएंगे।
लेकिन कोई कृष्ण के घर में पैदा हुआ है, कृष्ण को मानने वाले लोगों के
घर में पैदा हुआ है। और हो सकता है उसको नाचने और गीत और भजन और कीर्तन में कोई रस न हो; उसे रस हो कि शांत बैठ जाए जैसे बुद्ध बैठ गए; कि शांत खड़ा हो जाए जैसे महावीर खड़े हैं। मगर अड़चन आ गई है। तुम्हारे सहज स्वभाव को देख कर तुम्हारा धर्म नहीं है। तुम्हारा धर्म तो सांयोगिक है। किसी घर में पैदा हो गए, धर्म तुम्हारा पकड़ा दिया गया।
जिस व्यक्ति को सच में ही परमात्मा की तलाश करनी हो, उसे अपने स्वभाव
की पहले तलाश करनी होती है--कि मेरी स्वाभाविक, सहज रस की धारा किस तरफ बहती है? जिसने अपने स्वभाव को ठीक से समझ लिया, उसके लिए कठिनाई न रह जाएगी।
"जिस भाव से ध्यान करने से नेत्र तृप्त होते हों।"
दोनों तरह के नेत्र। बाहर के नेत्र और भीतर के नेत्र। अब कोई हो सकता
है कृष्ण के रूप में एकदम तल्लीन हो जाए। और यह भी हो सकता है किसी को कृष्ण का रूप देख कर बड़ा कष्ट हो। कोई सोचने लगे कि यह कैसा भगवान? यह मोरमुकुट बांधे खड़ा है! यह तो बड़े राग की दशा है। यह सजावट, यहशृंगार, इसमें वीतरागता कहां है? यह गोपियों का नृत्य, यह स्त्रियों का जमघट चारों तरफ, यह रासलीला, यह कैसा भगवान है? इसलिए जैनों ने कृष्ण को भगवान नहीं माना। कैसे मान सकते हैं? उनकी धारणा में वीतरागता भगवत्ता है। और ऐसा नहीं है कि उनकी धारणा गलत है। एक तरह के लोग हैं इस दुनिया में जिनके लिए वीतरागता ही भगवत्ता है। और एक तरह के ऐसे लोग भी हैं इस जगत में जिनके लिए राग का पूर्ण हो जाना भगवत्ता है। इस जगत में भिन्न-भिन्न तरह के लोग हैं। यहां बहुत तरह के फूल खिलते हैं इस बगीचे में। और यही इस बगीचे की गरिमा है, गौरव है। यहां गुलाब ही गुलाब खिलते होते तो लोग गुलाब से ऊब गए होते। यहां चंपा, जूही, चमेली, और भी हजार तरह के फूल खिलते हैं। नये रंग, नये ढंग। अपनी पसंद को ठीक से सोच लेना।
शांडिल्य कहते हैंः जिससे तुम्हारी बाहर की आंखें तृप्त हों, उसी से तुम्हारी भीतर की आंखें भी तृप्त होंगी, ख्याल रखना। इसलिए और कोई धारणाओं को बीच में मत आने देना। जिससे तुम्हारा लग जाए हृदय, लग जाने देना। चल पड़ना। फिर दुनिया कुछ भी कहे! दुनिया की फिकर मत करना। जिससे तुम्हें रस बहे, उसी से तुम पहुंचोगे। रसधार में सम्मिलित हो जाओगे तो परमात्मा के सागर तक पहुंचोगे।
"जिस भाव से ध्यान करने से नेत्र तृप्त हों, उसी भाव से चिंतन करने का नाम ध्यान है।"
पहले बाहर, फिर भीतर। पहले बाहर के नेत्र तृप्त हों--और नेत्र तो सिर्फ प्रतीक हैं, संकेत मात्र।
अब यहां मेरे पास इतने तरह के लोग हैं। किसी को विपस्सना ठीक पड़ती है। शांत बैठना। किसी को विपस्सना ऐसी लगती है कि यह कहां के कारागृह में फंस गए! किसी को सूफी नृत्य आनंद देता मालूम पड़ता है। नाच-गीत!
अपनी अवस्था को पहले जांच लेना। क्योंकि तुम्हें जाना है परमात्मा तक। ऐसी कोई बात मत चुन लेना जो तुम्हारे ऊपर जबरदस्ती मालूम पड़े। और

अक्सर ऐसा हो गया है कि लोग ऐसी बातें चुनते हैं जो जबरदस्ती हैं। अक्सर ऐसी बातें चुनते हैं जिनमें जबरदस्ती है। क्योंकि जबरदस्ती के कारण उनको ऐसा लगता है--कुछ तपश्चर्या कर रहे हैं। मूढ़ता कर रहे हो, तपश्चर्या नहीं! कुछ लोग सिर के बल सिर्फ इसलिए खड़े हैं कि सिर के बल खड़े होने में बड़ा कष्ट होता है। कष्ट के कारण ही चुन लिया है। क्योंकि धारणा यह बैठी है कि कष्ट से ही परमात्मा मिलेगा।
पागल हो तुम। परमात्मा को पाने के लिए किसी तरह के कष्ट उठाने की आवश्यकता नहीं है। अगर तुम कष्ट उठाते हो, तो उसका केवल इतना ही कारण है कि तुम अपने स्वभाव के विपरीत जाते हो; इसलिए कष्ट उठाते हो। और परमात्मा को पाना हो तो स्वभाव के अनुकूल जाना जरूरी है। जैसे-जैसे परमात्मा के पास जाओगे, सुख बढ़ेगा, कष्ट कम होगा; जीवन में धीरे-धीरे एक शांति की आभा उतरेगी, एक आनंदमग्न भाव आएगा, एक मस्ती आएगी।
लेकिन लोगों ने कष्टप्रद बातों को चुन लिया है। उससे एक लाभ होता है, अहंकार की तृप्ति होती है। कोई उपवास कर रहा है, उससे अहंकार तृप्त होता है कि देखो, तुम खाने के पीछे दीवाने हो, मरे जाते हो, एक मैं हूं कि आज तीस दिन से उपवासा बैठा हूं। अब झुको मेरे पैर में! अब करो नमस्कार! अब निकालो शोभायात्रा, कि मुनि महाराज ने तीस दिन का उपवास किया!
अगर उपवास से किसी को आनंद आ रहा है, तो शोभायात्रा की क्या जरूरत है? अगर उपवास से किसी को आनंद आ रहा है, तो उनके चरणों में झुकने की क्या जरूरत है? लोग चरणों में तभी झुकते हैं यहां जब उन्हें लगता है कि बेचारा बड़ा कष्ट उठा रहा है! बड़ी तपश्चर्या चल रही है!
परमात्मा की तलाश में तपश्चर्या तुम्हारी भूलों के कारण है, तुम्हारी गलतियों के कारण है। तुम कष्ट उठाते हो तो अपनी नासमझी के कारण उठाते हो। लेकिन परमात्मा के मार्ग पर सुख ही सुख है। ठीक कहते हैं रामकृष्ण, कि मैं भोगी हूं। मैं भी तुमसे कहता हूंः मैं भोगी हूं और मैं तुम्हें भी महाभोगी बनाना चाहता हूं।
अपने को कष्ट देना मनोवैज्ञानिक रूप से रोग है। तुम जाकर मनोवैज्ञानिकों से पूछो। उन्होंने एक बीमारी को नाम ही दे रखा है-- मैसोचिज्म। ऐसे लोग हैं दुनिया में जो अपने को कष्ट देने में रस लेते हैं; जो अपने जीवन में घाव बनाने में रस लेते हैं; अपने को परेशान करने में रस लेते हैं।
दुनिया में दो तरह के लोग हैं। एक तो जो दूसरों को परेशान करने में रस लेते हैं और एक वे जो अपने को परेशान करने में रस लेते हैं। दोनों बीमार हैं। न तो दूसरे को परेशान करने की कोई जरूरत है, न खुद को परेशान करने की कोई जरूरत है। अपने स्वभाव को ठीक से पहचान लो और सहज की दिशा में यात्रा करो। तुम निश्चित पहुंच जाओगे। तुम पहुंचे हुए हो, सिर्फ स्वभाव को पहचानने की बात है।
ध्याव नियमः तु दृष्टसौकर्यात्।
जिससे तुम्हारे नेत्र तृप्त हों, जिससे तुम्हारे प्राण तृप्त हों, वही ध्यान है। वही मार्ग है। जिससे सुख अहर्निश बढ़े, दिन-दिन बढ़े; दिन दूना रात चौगुना बढ़े, वही ध्यान है।
इस सूत्र की क्रांति समझते हो?
यह तुम्हारे जीवन के सारे रोगों से मुक्ति दिला देगा। काश, फ्रायड ने
इस सूत्र को पढ़ा होता, तो वह धार्मिकों के खिलाफ इतनी बातें न लिखता जितनी उसने लिखीं। क्योंकि उसे धार्मिकों का केवल उतना ही पता था जितना ईसाई फकीर अपने को सताते रहे हैं। कोई अपनी आंखें फोड़ लेता है। कोई अपनी जननेंद्रिय काट लेता है। कोई अपने कान फाड़ लेता है। कोई अपने शरीर को सुखा लेता है। कोई धूप में ही खड़ा रहता है। कोई कांटों की सेज बिछा कर लेटा हुआ है। ये भगवान को पाने के उपाय हो रहे हैं! किसी ने त्रिशूल अपने मुंह में छेद लिया है। कोई खड़ा है तो वर्षों से खड़ा ही है, बैठता नहीं है। कोई रात में सोता नहीं है, जाग ही रहा है।
ये रुग्णचित्त की अवस्थाएं हैं। ये विक्षिप्त लोग हैं। इनकी मानसिक चिकित्सा की जरूरत है। इनकी शोभायात्राएं मत निकालो, इनको अस्पतालों में

भरती करवाओ। इनको इलेक्ट्रिक शॉक दिलवाओ। इनकी बुद्धि विकृत है। यह तपश्चर्या नहीं हो रही है, ये केवल अपने को दुख देने में मजा ले रहे हैं। मगर दूसरों को भी मजा आता है। क्योंकि दूसरे भी दुखवादी हैं। दूसरे
जब अपने को दुख देते हैं, तुमको भी मजा आता है। तुम भी देखने चले जाते हो। तुम्हें भी बड़ा रस आता है। तुम सुखी आदमी को देख कर प्रसन्न नहीं होते, तुम सुखी आदमी को देख कर थोड़े नाराज हो जाते हो। तुम दुखी आदमी को देख कर प्रसन्न होते हो, क्योंकि दुखी आदमी से तुम्हें एक बात पता चलती है कि इससे तो हम ही ज्यादा सुखी हैं। एक राहत मिलती है, कि चलो हम बेहतर तो! जब सुखी आदमी मिलता है तो तुम्हें ईर्ष्या जगती है।
सुखी के साथ आनंदित होना कठिन है, इसीलिए सुखी व्यक्तियों की पूजा नहीं हुई। दुखी व्यक्तियों की पूजा चलती रही है।
मैं तुम्हें संन्यास की एक नई दृष्टि दे रहा हूं। सुख त्याज्य नहीं है। सुख का ही सूत्र तुम्हें परमात्मा की तरफ ले जाएगा। अपने स्वभाव के अनुकूल जो हो, वही करो। क्योंकि स्वभाव परमात्मा है।
आज इतना ही।

अथातो भक्ति जिज्ञासा, भाग 2
छब्बीसवां प्रवचन

संसार जड़ है, अध्यात्म फूल है

पहला प्रश्नः उस फूल का रंग उड़के सिर्फ बू रह जाए
सर जाए तो जाए आबरू रह जाए
साबित हो मेरी नफी से तेरा इकबाल
मैं इतना मिटूं कि सिर्फ तू रह जाए

बू भी बची तो तुम बच जाओगे। उतना भी बचाया कि सब बच जाएगा। "मैं" मिटना
ही नहीं चाहता। वह नये-नये रास्ते खोजता है बचने के।
उस फूल का रंग उड़के सिर्फ बू रह जाए
लेकिन बू क्यों? बू भी तुम्हारी होगी, बदबू होगी। मिटने ही चले हो तो पूरे से कम में काम नहीं चलेगा।
सर जाए तो जाए आबरू रह जाए
आबरू! सर और किसको कहते हैं? सर जाने का मतलब यह थोड़े ही होता है कि यह तुम्हारा शरीर पर जो सिर लगा हुआ है, यह कट जाए। आबरू ही सिर है। वह जो इज्जत; अभिमान; वह जो मैं का भाव है--मेरी प्रतिष्ठा, मेरा सम्मान! असली तो बचा लिया, नकली छोड़ रहे हो। बू तो बचा ली, फूल छोड़ रहे हो। फूल का मूल्य ही बू की वजह से था। और आबरू ही तो तुम्हारा सिर है। सिर बचे तो बचने दो, आबरू जानी चाहिए। फूल पड़ा भी रहे तो पड़ा रहे, बू जानी चाहिए। तुम अहंकार का सार तो बचाने के लिए उत्सुकता रखते हो।
उस फूल का रंग उड़के सिर्फ बू रह जाए
क्यों? तुम जब तक पूरे ही शून्य न हो जाओगे, तब तक परमात्मा का आगमन नहीं है।
सर जाए तो जाए आबरू रह जाए
साबित हो मेरी नफी से तेरा इकबाल
तुम कुछ भी साबित करोगे तो तुम ही साबित होओगे, और कुछ साबित न होगा। तुम्हारे सब दावे, तुम्हारे सब प्रमाण तुम्हारे अहंकार को ही प्रमाणित करेंगे। तुम्हारे द्वारा परमात्मा सिद्ध होने वाला नहीं है। तुम मिटोगे तो परमात्मा सिद्ध है ही। तुम हटो, राह दो। परमात्मा को न लाना है, न प्रमाणित करना है, न सिद्ध करना है, न खोजना है; परमात्मा है ही। सिर्फ तुम्हारा अहंकार पर्दा बना है। परमात्मा पर पर्दा नहीं बना है, तुम्हारी आंख पर ही अहंकार का पर्दा पड़ा है। बस वह पर्दा हट जाए!
लेकिन तुम पर्दे को बचा रहे हो। तुम कहते हो--
साबित हो मेरी नफी से तेरा इकबाल
परमात्मा की महिमा भी तुम्हारे द्वारा सिद्ध होनी चाहिए! परमात्मा
की घोषणा तुम्हारे माध्यम से होनी चाहिए! तुम सिद्ध करोगे परमात्मा को। लेकिन निश्चित ही, जो सिद्ध करेगा, वह सिद्ध जिसे किया उससे बड़ा हो जाता है। स्वभावतः तुम्हारे बिना परमात्मा सिद्ध नहीं हो सकता, तुम पर निर्भर हो गया। तुम उसके तर्क हो; तुम उसके गवाह हो; तुम्हारे बिना दो कौड़ी का है परमात्मा। तुम उसे मूल्य दे रहे हो। स्वभावतः तुमने बड़े पीछे के दरवाजे से अपने को मूल्य दे लिया। अहंकार की आदतें ऐसी सूक्ष्म हैं कि जाता ही नहीं। नये-नये उपाय खोज लेता है। एक दरवाजा बंद करो, दूसरा खोल लेता है। स्थूल से हटाओ, सूक्ष्म में प्रवेश कर जाता है। चेतन से हटाओ, अचेतन को पकड़ लेता है। दिन में विदा करो, रात लौट आता है। जागने में दूर रखो, नींद सपने में उतर आता है। अहंकार के रास्ते बड़े सूक्ष्म हैं। तुम्हें उसे पूरा-पूरा समझना होगा। नहीं तो तुम्हारी लड़ाई व्यर्थ होगी। अहंकार एक ही भाषा जानता है--अपने को बचाने की। तुम्हें उसे जड़मूल से उखाड़ना होगा।
मैंने सुना है, एक भिखारी को लाटरी का टिकट खरीदते देख कर एक पत्रकार
ने उत्सुकतावश पूछा, बाबा, अगर तुम्हारा पहला ईनाम निकल आया तो उस पैसे का क्या करोगे?

उस भिखारी ने कहा, बेटा, कार खरीदूंगा। पैदल भीख मांगते-मांगते मेरी टांगें टूट जाती हैं।
मगर भीख तो वह मांगेगा ही। भीख तो उसकी आदत है। भीख तो उसका स्वभाव हो गया। कार में बैठ कर भीख मांगेगा, लेकिन भीख मांगेगा।
अहंकार की भाषा को ठीक से पहचानो, जल्दी नहीं करो मिटाने की। इतना आसान काम नहीं है जितना तुमने समझा है। दुरूह है, बड़ा बारीक है और नाजुक है। और अति जागरूकता से कोई अपने भीतर जाएगा तो ही किसी दिन अहंकार से छुटकारा पा सकेगा। खूब रोशनी चाहिए भीतर ध्यान की और खूब विनम्रता चाहिए भीतर प्रार्थना की। असहाय अवस्था का भाव चाहिए। और जल्दी किसी चीज को पकड़ मत लेना। अन्यथा एक रोग छूटता है, दूसरा रोग पकड़ जाता है। मगर पकड़ जारी रहती है।
मैंने सुना है, मुल्ला नसरुद्दीन केमिस्ट की दुकान पर गया, और दुकानदार से मुल्ला ने कहा, याद है, कल मैं आपके पास से, यहां से स्याही के दाग दूर करने वाली एक दवा ले गया था?
दुकानदार ने कहा, हां मुल्ला, भलीभांति याद है; क्या दूसरी शीशी चाहिए?
मुल्ला ने कहा, नहीं, उस दवा का दाग मिटाने वाली दवा हो तो दे दीजिए। स्याही का दाग तो मिट गया, अब दवा का दाग रह गया! इसका अंत कहां होगा? इसका अंत कैसे होगा?
जल्दबाजी की कोई जरूरत नहीं है। मैं को मिटाने की भी चेष्टा में मत लगो। क्योंकि मैं इतना कुशल कारीगर है कि तुम मैं को मिटाने में लगोगे, मैं मिटाने वाले के पीछे छिप जाएगा। और एक दिन अहंकार उठेगा कि देखो, मैंने अपना मैं मिटा दिया! अब मैं निर-अहंकारी हो गया! मुझ सा विनम्र कौन है? यह घोषणा अहंकार की ही है।
भीतर जागो, अहंकार के रास्तों को देखो, पहचानो। लड़ने की कोई जरूरत नहीं है। लड़े कि हारे! अगर हारना हो तो लड़ना।
फिर अहंकार कैसे जाएगा?
अहंकार जाता है मात्र जागरण से। जैसे अंधेरा जाता है रोशनी के जला लेने से। कोई अंधेरे को धक्का थोड़े ही देना पड़ता है! कोई तलवार उठा कर अंधेरे को काटना थोड़े ही पड़ता है! कोई अंधेरे से मल्लयुद्ध थोड़े ही करना होता है! अगर कोई आदमी अंधेरे से मल्लयुद्ध करने लगे, ताल ठोंक कर और लग जाए लड़ने, तो तुम सोचते हो जीतेगा कभी? मर जाएगा, लड़-लड़ कर मर जाएगा और अंधेरे का बाल बांका न होगा। और स्वभावतः, जब आदमी लड़-लड़ कर बार-बार हारेगा तो सोचेगा कि मैं कमजोर हूं, अंधेरा महाशक्तिशाली है।
मगर सच्ची बात कुछ और है। अंधेरा है ही नहीं, इसलिए आदमी नहीं जीत पा रहा है। अंधेरा होता तो तलवार से काट देते। अंधेरा होता तो धक्के मार कर निकाल देते। अंधेरा है नहीं। अनुपस्थिति का नाम है। प्रकाश का अभाव है। तुम एक छोटा सा दीया जलाओ, या कि एक मोमबत्ती, और अंधेरा गया। तुम्हारी चेष्टा मोमबत्ती जलाने में लगनी चाहिए, अंधेरे से लड़ने में नहीं।
और यही बुनियादी भेद है नास्तिक और आस्तिक का।
नास्तिक लड़ने में लग जाता है, नकार में लग जाता है--इसको मिटाओ, उसको मिटाओ; इसको त्यागो, उसको त्यागो; इसको छोड़ो, उसको छोड़ो। यह मेरी नास्तिक की परिभाषा है। मेरी नास्तिक की परिभाषा तुम्हारी नास्तिक की परिभाषा जैसी नहीं है। तुम कहते होः जो ईश्वर को नहीं मानता वह नास्तिक है। यह बात सच नहीं है। क्योंकि महावीर ने ईश्वर को नहीं माना और वे परम आस्तिक थे। बुद्ध ने ईश्वर को नहीं माना, लेकिन बुद्ध से बड़ा आस्तिक तुम कहीं पा सकोगे? और करोड़ों लोग ईश्वर को मानते हैं और जरा इनकी जिंदगी में झांको, कहां आस्तिकता है? इसलिए तुम्हारी यह धारणा और तुम्हारी यह परिभाषा कि जो ईश्वर को नहीं मानता वह नास्तिक है, गलत हो चुकी है। या जो ईश्वर को मानता है वह आस्तिक है, वह भी गलत हो चुकी है। अब नई परिभाषा चाहिए।
मैं तुम्हें नई परिभाषा देता हूं। जो नकार पर जीता है, जो नहीं करके जीता है, वह नास्तिक है। जो हां-भाव से जीता है, आस्था से, श्रद्धा से, स्वीकार से, वही आस्तिक है। फिर ईश्वर को मानो या न मानो, गौण बात है।

जिसने अस्तित्व को हां कहना सीख लिया वह ईश्वर को जान ही लेगा, कहे या न कहे। और जिसने न कहने की भाषा सीखी, वह मरेगा, तड़फेगा, परेशान होगा, कभी अनुभव न कर पाएगा। नकार में अहंकार बचता है।
मनोवैज्ञानिक कहते हैं, जिस दिन बच्चा अपने मां-बाप को इनकार करना शुरू करे, समझना उसी दिन से अहंकार की शुरुआत है। एक घड़ी आती है ऐसी--कोई तीन-चार साल की उम्र में--जब बच्चा पहली दफा अपने मां-बाप को इनकार करना शुरू करता है। वही घड़ी अहंकार के जन्म की घड़ी है। अब तक जो मां कहती थी, मानता था; जो कहा जाता था, चुपचाप स्वीकारता था। अब तक एक श्रद्धा थी। अब श्रद्धा गई। अब लड़ाई शुरू हुई। मां कहती है, यहां बैठो। वह कहता है, यहां नहीं बैठूंगा। यह करो! वह कहता है, यह नहीं करूंगा। सच तो यह है कि बच्चे से तुम जो कहोगे कि करो, उसको छोड़ कर सब करेगा। अब अहंकार उद्दाम वेग ले रहा है। अब अहंकार की तरंग उठनी शुरू हो गई है। अब बच्चा यह कह रहा है कि मैं भी कुछ हूं। मैं हूं, और ऐसी आसानी से अपनी जमीन नहीं दे दूंगा, ऐसी आसानी से झुक नहीं जाऊंगा। तुम जब भी नहीं कहते हो--किसी भी चीज से--तो अहंकार मजबूत होता है।
इसलिए मैं तुम्हें यह चौंकाने वाली बात कहूं कि तुम्हारे जो लोग संन्यास के नाम पर भाग गए हैं--परिवार को, पत्नी को, बच्चों को, मां-बाप को छोड़ कर--वे सब नास्तिक हैं। उन्होंने इनकार किया। उन्होंने, परमात्मा ने जो दिया था, उसे स्वीकार नहीं किया। परम आस्तिक वही है जो सब स्वीकार करता है--सुख भी, दुख भी; सफलता भी, असफलता भी। कांटे भी यहां बहुत हैं, फूल भी यहां हैं। जो दोनों स्वीकार करता है। रात और दिन, जीवन और मरण, सबको अंगीकार करता है, और कहता हैः जो परमात्मा ने दिया है उसमें कुछ राज होगा। मैं इनकार करने वाला कौन? जिसकी हां समग्र है। इसी हां में दीया जलना शुरू होता है। इसी हां में भीतर रोशनी पैदा होती है। इसी आस्तिकता में भीतर मंदिर बनता है, प्रतिमा प्रकट होती है। और तब तुम पाओगे उस रोशनी में अहंकार कहीं खोजे भी नहीं मिलता। जैसे दीया जला कर कोई अपने कमरे में जाए, और अंधेरे को खोजे कि कहां अंधेरा है, और न पाए, और लौट कर कहे कि अंधेरा नहीं है। वैसी ही बात होगी। जिस दिन तुम जाग कर ध्यानपूर्वक भीतर जाओगे, अहंकार पाओगे नहीं। अन्यथा इसी तरह की झंझट होगी।
उस फूल का रंग उड़के सिर्फ बू रह जाए
सर जाए तो जाए आबरू रह जाए
साबित हो मेरी नफी से तेरा इकबाल
मैं इतना मिटूं कि सिर्फ तू रह जाए
यह मिटने की बात सिर्फ बात है। क्योंकि जहां मैं मिट गया, वहां तू भी न
रह जाएगा। मैं के बिना तू का क्या अर्थ होगा? तू का सारा अर्थ मैं में छिपा है। मैं और तू दो अलग-अलग शब्द नहीं हैं, एक ही शब्द के दो पहलू हैं। जहां मैं है, वहां तू है। जहां तू है, वहां मैं है। अगर मैं सचमुच चला जाए तो तू भी चला गया। तू कैसे कहोगे फिर? कौन कहेगा? किसको कहेगा? कैसे कहेगा? मैं के गिरते ही तू भी गिर जाता है। भक्त के मिटते ही भगवान भी विदा हो जाता है। फिर जो शेष रह जाता है, वही असली भगवत्ता है। जब तक भक्त है और भगवान है, तब तक जानना असली भगवत्ता घटित नहीं हुई। जब तक तुम्हें लगता है मैं हूं और तू है--या तुम्हें ऐसा भी लगने लगा कि मैं नहीं हूं, तू है; लेकिन मैं नहीं हूं, यह कौन कह रहा है? यह तो वैसी ही मूढ़ता की बात हुई जैसा हुआ-- मुल्ला नसरुद्दीन होटल में बैठा गपशप करता था। बातचीत में अपनी प्रशंसा करने लगा और कहने लगा कि मुझसे ज्यादा उदार इस नगर में कोई भी नहीं है।
मित्रों ने कहा, यह भी तुमने खूब कही! हमने तो उदारता के कभी कोई लक्षण नहीं देखे। कभी ऐसा भी नहीं हुआ कि तुमने हमें घर भोजन के लिए निमंत्रण किया हो।
मुल्ला ने कहा, अभी चलो! इसी वक्त चलो!
तीस-पैंतीस आदमी, पूरी होटल साथ हो ली। जैसे-जैसे घर के पास पहुंचा वैसे-वैसे घबड़ाया, जैसा कि हर पति घबड़ाता है। दरवाजे पर रोक कर कहा कि तुम जरा ठहरो भाई। तुम तो जानते ही हो, घर-गृहस्थी वाला आदमी हूं, पत्नी है घर

में, पहले जरा उसको राजी कर लूं। तीस-पैंतीस लोगों को आधी रात लेकर घर आ गया हूं, भोजन करवाने। तुम समझ सकते हो मेरी मुसीबत। वह एकदम टूट पड़ेगी। जरा उसे राजी कर लूं, तुम जरा रुको।
मुल्ला भीतर गया और फिर आधा घड़ी बीत गई, निकले ही न। घंटा बीतने लगा, रात बहुत लंबी होने लगी। मित्रों ने कहा, यह तो हद हो गई, यह आदमी भीतर गया तो बाहर नहीं आता। उन्होंने दरवाजा खटखटाया। मुल्ला ने अपनी पत्नी को इतना समझाया कि गलती हो गई मुझसे, इनको लिवा लाया हूं, अब तू जाकर इनसे कह दे कि मुल्ला घर पर ही नहीं है।
पत्नी बाहर आई, उसने कहा, किसलिए खड़े हैं यहां आप लोग? नसरुद्दीन तो घर
पर नहीं हैं।
उन्होंने कहा, अरे, यह हद हो गई! हमारे साथ ही आए थे, हमने उन्हें भीतर जाते देखा है।
पत्नी थोड़ी झिझकी कि अब कहे तो क्या कहे? मुल्ला घर के भीतर है। मुल्ला खिड़की के पास खड़ा हुआ सुन रहा है कान लगा कर कि मित्र क्या विवाद कर रहे हैं। मित्र ज्यादा विवाद करने लगे तो उसने खिड़की खोल कर कहा कि सुनो जी, आधी रात किसी स्त्री से विवाद करते शर्म नहीं आती? यह हो सकता है कि नसरुद्दीन तुम्हारे साथ आया हो, लेकिन पीछे के दरवाजे से भी कहीं जा सकता है।
अब यह खुद नसरुद्दीन कह रहा है!
तुम अपने घर में बैठ कर यह नहीं कह सकते कि मैं घर में नहीं हूं। अगर कहोगे, तो उसका मतलब सिर्फ होगा कि तुम घर में हो।
मैं इतना मिटूं कि सिर्फ तू रह जाए
तुम यह नहीं कह सकते कि मैं मिट गया हूं। क्योंकि कौन कहेगा कि मैं मिट गया हूं? कि मैं इतना मिट गया हूं! इसका तो मतलब हुआ कि अभी थोड़ा-बहुत शेष रह गया है। इतना तो मात्रा है।
समग्ररूपेण जब कोई मिट जाता है तो वहां कहने को कोई भी नहीं बचता। और जहां मैं नहीं बचता, वहां तू कैसे बचेगा? वे एक ही सिक्के के दो पहलू हैं-- मैं और तू। दोनों गिर जाते हैं, तब जो बचता है उसे समाधि कहो, निर्वाण कहो, मोक्ष कहो। वहां न भक्त है, न भगवान है। उसको शांडिल्य ने पराभक्ति कहा है।

दूसरा प्रश्नः मैं यह तो नहीं कह सकता कि आप मुझे भूल गए, लेकिन "आवन कहि गए अजहूं न आए, लीन्हीं न मोरी खबरिया", यह कहने की इजाजत मांगता हूं।

मोरी खबरिया! वह मैं ही पीछा करता रहता है। तुम कब जागोगे? तुम कब देखोगे कि मैं के कारण ही परमात्मा भीतर नहीं आ पा रहा है? तुम चाहते हो कि परमात्मा भी तुम्हारी खबर ले। तुम उसे भी अपनी सेवा में नियुक्त कर देना चाहते हो। तुम बातें करते हो कि मैं तुम्हारा चरण-सेवक, इत्यादि-इत्यादि, लेकिन भीतर आकांक्षा यही रखते हो कि राह देख रहे हैं कि कब आओ और चरण की सेवा करो। कब मेरी खबर लो।
तब तक तुम्हारी खबर नहीं ली जा सकती, जब तक तुम हो। तुम्हारी खबर उसी दिन से ली जाएगी जिस दिन से तुम मिटोगे। जब तक तुम हो तब तक तुम्हारी खबर लेने की आवश्यकता भी नहीं है--तुम खुद ही खबर ले रहे हो। तुम परमात्मा को मौका ही नहीं दे रहे हो।
मैंने सुना है, कृष्ण वैकुंठ में भोजन करने बैठे हैं। और बीच भोजन में
उठ गए, हाथ का कौर छोड़ कर उठ गए, भागे द्वार की तरफ। रुक्मिणी ने कहा, कहां जाते हैं आप? उत्तर भी नहीं दिया, इतनी जल्दबाजी दिखाई, जैसे घर में आग लग गई हो। और दरवाजे पर ठिठक गए, एक क्षण रुके, वापस लौट कर थाली पर बैठ कर भोजन करने लगे। रुक्मिणी ने कहा, तुमने मुझे और उलझा दिया। ऐसे भागे जैसे घर में आग लग गई हो। मैं पूछी भी कि कहां जाते हो, तो जवाब भी न दिया। फिर गए भी कहीं नहीं, द्वार से ही ठिठके और लौट आए।
कृष्ण ने कहा, ऐसा हुआ, मेरा एक भक्त जमीन पर एक गांव में से गुजर रहा है। लोग उसे पत्थर मार रहे थे, उसके सिर से खून बह रहा है। लेकिन वह मस्त

अपना एकतारा बजा रहा है और मेरी धुन गा रहा है। उसे पता ही नहीं कि क्या हो रहा है। लोग पत्थर मार रहे हैं, लोग गालियां दे रहे हैं, लोग उसे अपमानित कर रहे हैं, और उसे कुछ पता नहीं है, वह अपनी मस्ती में है। उसका एकतारा बज ही रहा है। उसका गीत टूटा ही नहीं। उसकी कड़ी खंडित नहीं हुई। उसका भाव अहर्निश मेरी तरफ बह रहा है। इसलिए भागा था, मेरी जरूरत थी। इतना जो असहाय हो, तो मुझे भागना ही पड़े! इसलिए तेरे प्रश्न का उत्तर न दे सका, क्षमा करना।
रुक्मिणी ने कहा, फिर लौट कैसे आए?
कृष्ण ने कहा, लौटना इसलिए पड़ा कि जब तक मैं दरवाजे तक पहुंचा, तब तक उसने वीणा तो एक तरफ पटक दी है, उसने खुद ही पत्थर उठा लिए हैं। अब वह खुद जवाब दे रहा है। अब मेरी कोई जरूरत न रही!
तुम जब तक अपनी खबर खुद ले रहे हो, तब तक परमात्मा तुम्हारी खबर ले, इसकी कोई जरूरत भी नहीं है। तुम जब परिपूर्ण असहाय अवस्था में पहुंच जाओगे, जब तुम कहोगे कि अब असमर्थ हूं, जब तुम्हारा अपने ऊपर जरा भी निर्भर रहने का भाव न रह जाएगा, जब तुम एक छोटे बच्चे की भांति रोओगे जिसकी मां खो गई है, और तुम्हें कुछ भी न सूझेगा सिवाय रुदन के, कुछ भी न सूझेगा सिवाय पुकारने के, उसी क्षण खबर ली जाती है।
परमात्मा तुम्हारे साथ-साथ है, लेकिन तुम्हारे रास्ते पर अंधेरा है। अंधेरे का कारण तुम हो। सूरज निकला है और तुम आंखें बंद किए खड़े हो। फिर भी तुम कहते हो कि मेरे लिए सूरज क्यों नहीं निकला? सूरज सबके लिए निकला है। लेकिन कोई आंख बंद किए खड़ा है, सूरज करे भी तो क्या करे? तुम्हारी शिकायत सार्थक मालूम होती है।
जब कि तुम खुद हो हमसफर मेरे
क्यों अंधेरा है राहगुजारों पर
जब कि तुम मेरे साथ चल रहे हो, जब कि तुम मेरे संगी-साथी हो, जब कि तुम मेरे हृदय में धड़क रहे हो, तो फिर रास्ते पर अंधेरा क्यों है? परमात्मा सब तरफ व्यापक है। फिर तुम्हारी जिंदगी अंधेरी क्यों है? तुमने आंखें बंद कर रखी हैं। सूरज के निकलने से ही क्या होगा? आंख भी तो खुली चाहिए। तुम्हारा हृदय भी तो खुला चाहिए! यह "मैं" तुम्हारे हृदय पर चट्टान की तरह पड़ा है और तुम्हारे भावों के झरने को बहने नहीं देता। रोओ थोड़ा। शिकायत न करो, और असहाय हो जाओ। टूटो थोड़े और, गिरो थोड़े और, हारो थोड़े और। जिस घड़ी तुम सर्वहारा हो जाओगे, उसी घड़ी क्रांति घटती है।
दर्दे-फुरकत की हद नहीं अब तो
चैन दिल को नहीं किसी करवट
जब ऐसा होगा, तड़फोगे मछली की भांति--तट पर फेंकी गई मछली की भांति; जब प्यास परिपूर्ण होगी और लपटें ही लपटें रह जाएंगी जीवन में; कोई सहारा न दिखेगा; कोई सुरक्षा न दिखेगी; जब यह अपनी परिपूर्णता पर पहुंच जाता है दुख, तभी टूटता है। और फिर एक क्षण को भी जुदाई नहीं होती। आंख खोलो तो भी परमात्मा दिखाई पड़ता है, आंख बंद करो तो भी परमात्मा दिखाई पड़ता है। एक दफे दिखाई भर पड़ जाए, फिर आंख बंद किए भी दिखाई पड़ता है।
हमें क्यों जुदाई का गम हो, तुझे हम
तसव्वुर में शामो-सहर देखते हैं
फिर तुम चाहे आंख बंद करो, चाहे खोलो। उसकी मौजूदगी बनी ही रहती है।
वह तुम्हारे तसव्वुर में छा जाता है। वह तुम्हारे तन-प्राण में समा जाता है। मगर एक बार उसका दर्शन होना चाहिए।
तो अभी तो शिकायत छोड़ो, प्रार्थना करो।

एक यही अरमान गीत बन प्रिय तुमको अर्पित हो जाऊं।

जड़ जग के उपहार सभी हैं, धार आंसुओं की बिन बानी,
शब्द नहीं कह पाते तुमसे मेरे मन की मर्म कहानी,
उर की आग राग ही केवल कंठस्थल में लेकर चलता,
एक यही अरमान गीत बन प्रिय तुमको अर्पित हो जाऊं।

जान-समझ मैं तुमको लूंगा, यह मेरा अभिमान कभी था, अब अनुभव यह बतलाता है, मैं कितना नादान कभी था, योग कभी स्वर मेरा होगा, विवश उसे तुम दोहराओगे, बहुत यही है अगर तुम्हारे अधरों से परिचित हो जाऊं। एक यही अरमान गीत बन प्रिय तुमको अर्पित हो जाऊं।

कितने सपने, कितनी आशा, कितने आयोजन, आकर्षण,
बिखर गया है सबके ऊपर टुकड़े-टुकड़े होकर जीवन,
सिर पर सफर खड़ा है लंबा, फैला सब सामान पड़ा है,
अंतर्ध्वनि का तार मिले तो एक जगह संचित हो जाऊं।
एक यही अरमान गीत बन प्रिय तुमको अर्पित हो जाऊं।

प्रार्थना करो। पुकारो। जानने की, पाने की भाषा छोड़ो। जानने में भी अस्मिता है। पाने में भी अहंकार है। तुम तो कहो--मैं कैसे पा सकूंगा तुझे? मैं कैसे जान सकूंगा तुझे? तू ही जनाए तो जानूं। तू ही आ जाए तो पा लूं।
मेरे किए कुछ भी न होगा। तेरे किए ही कुछ हो सकता है। ऐसी समग्रता से, एक ध्वनि से तुम्हारे भीतर से प्रार्थना उठे, निश्चित पूरी हो जाती है। अंतर्ध्वनि का तार मिले तो एक जगह संचित हो जाऊं।
अगर तुम्हारे सारे प्राण इस एक ही प्रार्थना में आकर संयुक्त हो जाएं, एक स्वर बन जाएं, फिर शिकायत की जरूरत न होगी। परमात्मा बरस रहा है, अहर्निश। जब आता है तो बूंद की तरह नहीं आता, बाढ़ की तरह आता है। तुम समा न पाओगे। तुम सम्हाल न पाओगे।
लेकिन हमें तो बूंद भी नहीं मिली है, बाढ़ का हम क्या भरोसा करें? शिकायत में कहीं यह स्वर होता है कि तेरी तरफ से कुछ अन्याय हो रहा है। यही मैं जोर देकर तुमसे कहना चाहता हूं, उसकी तरफ से कोई अन्याय नहीं हो रहा है। इसलिए शिकायत गलत हो जाती है। भूल अगर कहीं हो रही है, हमारी तरफ से हो रही है। हमने अभी पुकारा ही नहीं है।
तुम जरा फिर से आंख बंद करके बैठ कर सोचना, तुमने सच परमात्मा को पुकारा है? जब कभी तुम पुकारे भी हो, तब भी तुम्हारी अंतर्ध्वनि के सारे तार पुकारे हैं? तुमने एकजुट होकर पुकारा है? जब तुमने कभी प्रार्थना भी की है तो प्रार्थना तुम्हारे पूरे तन-प्राण पर छा गई थी या और हजार काम भी भीतर चलते थे? तुम्हारा गोरखधंधा, तुम्हारा मन, तुम्हारे विचार, सब चलते थे, उसी में एक प्रार्थना भी थी? जब तुम मंदिर गए हो, संसार भूल गया है? या कि तुम संसार को सब भांति अपने भीतर लिए मंदिर पहुंच गए हो? जब तुम मस्जिद में झुके हो, तो तुम सच में झुके थे? या केवल शरीर की कवायद कर ली थी?
गौर से देखोगे तो तुम अपनी प्रार्थना का थोथापन पाओगे, उसका अन्याय नहीं। तुम अपनी पूजा की व्यर्थता पाओगे, उसका अन्याय नहीं। या कि तुमने तोतों की तरह प्रार्थनाएं रट ली हैं और तुम उन्हीं को दोहराए जा रहे हो। तुमने अपनी प्रार्थना तक नहीं खोजी है। तुम प्रार्थना तक उधार दोहरा रहे हो। जिस दिन यह उधारी बंद होगी... और इसकी कोई फिकर न करो कि तुम्हारी प्रार्थना अगर तुम्हीं बनाओगे, अगर तुम्हारी प्रार्थना तुम्हीं से जन्मेगी, तो शायद इतनी सुंदर न हो। फिकर न करो। परमात्मा प्रार्थना के सौंदर्य और शब्दों का हिसाब नहीं रखता है। प्रार्थना के भाव भर गिने जाते हैं। न शब्द गिने जाते, न व्याकरण की फिकर की जाती, न भाषा की। परमात्मा तो सिर्फ भाव सुनता है। मौन भाव भी उस तक पहुंच जाते हैं। और तुम कितना ही चिल्लाओ, लाख शोरगुल मचाओ, अगर तुम्हारा हृदय भीतर नहीं है तो परमात्मा बहरे की तरह रहेगा। तुम्हारे स्वर उस तक नहीं पहुंचे हैं, नहीं पहुंचेंगे।
शिकायत का भाव छोड़ो! शिकायत बाधा है। अगर परमात्मा न आता हो तो इतना
ही जानना कि अभी मुझमें कहीं भूल-चूक, अभी मैं तैयार नहीं। अपने पर ही काम करो। अपने को और निखारो। अपने को और स्वच्छ करो। इतना सुनिश्चित है--यही तो सारे भक्ति-शास्त्र का आधार है--कि जिस दिन तुम्हारी प्रार्थना

सम्यकरूपेण पूर्ण हो जाएगी, उसी क्षण परमात्मा उतर आता है। पर्दा हटे तुम्हारी आंख से, रोशनी सदा से मौजूद है।

तीसरा प्रश्नः भक्त रोते क्यों हैं? रुदन और ध्यान का क्या संबंध है?

रोएं न तो भक्त और करें क्या? छोटे बच्चे क्यों रोते हैं जब उन्हें भूख लगती है? जब प्यास लगती है तब झूले में पड़ा बच्चा क्यों रोता है? इसीलिए भक्त रोते हैं। भक्त इस अस्तित्व को पुकार रहे हैं। और इस अस्तित्व के सामने भक्त वैसे ही असहाय हैं जैसे छोटा बच्चा असहाय है। शायद उससे भी ज्यादा असहाय हैं। इस विराट को देखते हो? इस विराट के सामने हमारी सामर्थ्य क्या है? इस अनंत को देखते हो? इस अनंत के सामने हम कहां हैं? कौन हैं? क्या हैं? हम कण भी तो नहीं हैं। इस कण की बिसात क्या है? यह कण रोए न तो और क्या करे? असहाय अवस्था में, अंधेरे में, जन्मों-जन्मों से भटका हुआ भक्त और क्या करे?
न पिरोते जो रिश्ता-ए-गम में
दिल के टुकड़े बिखर गए होते
यही पुकार, यही आंसू तो बांधे हुए हैं।
न पिरोते जो रिश्ता-ए-गम में
एक विराग जगत से उठना शुरू होता है, और साथ ही एक राग परमात्मा की तरफ उठना शुरू होता है। एक ही साथ दोनों बातें घटती हैं। जगत व्यर्थ दिखाई पड़ने लगता है और जो सार्थक है उसकी तलाश शुरू होती है। जो व्यर्थ है वह तो दिखाई पड़ता है और जो सार्थक है उसका कुछ पता नहीं चलता; व्यर्थ हाथ से छूटने लगता है और सार्थक की कोई खबर नहीं; एक अंतराल खड़ा हो जाता है, उसी अंतराल में भक्त रोता है। जिसको कल तक जीवन समझा था वह तो जीवन नहीं है, यह सिद्ध हो गया। धन के पीछे दौड़े और ठीकरे पाए। पद के पीछे दौड़े, सिवाय परेशानियों के और कुछ भी न मिला। जिसको संपदा समझा, वह विपदा थी। जिस दिन यह दिखाई पड़ जाता है उस दिन जगत तो व्यर्थ हो गया, जो दिखाई पड़ रहा है वह व्यर्थ हो गया और जो सार्थक होगा वह दिखाई नहीं पड़ रहा है--भक्त रोए न तो और क्या करे? इस अंतराल में आंसू के सिवाय और क्या उपाय है? इस अंतराल को आंसू ही जोड़ सकते हैं और सेतु बन सकते हैं।
जो तेरी बज्म से उठा वो इस तरह उठा
किसी की आंख में आंसू, किसी के दामन में
आंसू ही आंसू हो जाएंगे--आंख में और दामन में। इस जगत की सच्चाई को देखोगे तो और क्या करोगे? बड़ी हैरानी मालूम होगी। बड़ी बिगूचन होगी। जो मिल सकता है वह बेकार है और जो बेकार नहीं है उसका पता नहीं है, ठिकाना नहीं है, कहां है, है भी या नहीं! एक रिक्तता पैदा हो जाती है। उस रिक्तता में आंसुओं का जन्म है।
मुझे जब होश आता है तो यह महसूस करता हूं
अभी उठ कर गए हो तुम मेरी आगोशे-वीरां से
फिर भक्त दो कारणों से रोता है। एक तो कारण, जब संसार व्यर्थ हो जाता
है और परमात्मा दिखाई नहीं पड़ता। अब तक जिन वासनाओं के सहारे जी लिए थे, वे उखड़ गईं। अब तक जिन आशाओं के सहारे जी लिए थे, अब उनमें कुछ सार न रहा। हाथ एकदम राख से भर गए। इसलिए रोता है। फिर एक और दशा भी है। जब भक्त को परमात्मा की झलकें मिलने लगती हैं, लेकिन झलकें मिलती हैं और खो जाती हैं; मिलती हैं और खो जाती हैं; यह दिखी झलक और गई, बिजली की कौंध की तरह। फिर और भी रोता है। और.जार-.जार रोता है। अब सत्य का स्वाद भी लग गया, लेकिन पेट नहीं भरा।
तो पहले चरण पर भक्त रोता है--संसार व्यर्थ हो गया, सार्थक की कोई खबर नहीं। दूसरे चरण पर भक्त रोता है--सार्थक की खबर मिलने लगी, मगर मिलन कब होगा? जब तक खबर न मिली थी तब तक तो रोने में इतना बल नहीं था, क्योंकि भीतर एक संदेह तो रहेगा ही कि पता नहीं मैं जिसके लिए रो रहा हूं, वह है भी या नहीं! अब तो दिखाई भी पड़ने लगा कि जिसके लिए मैं रो रहा हूं, वह है। और फिर भी हाथ चूक-चूक जाते हैं। फिर भी मैं बढ़ता हूं, बढ़ता हूं और नहीं पहुंच

पाता। बिजली कौंधी और गई, एक झलक मिली और खो गई। अब तो स्वाद भी लग गया, एक बूंद कंठ में भी उतर गई, अब भक्त और रोता है। अब रोने में बड़ी गहराई आ जाती है।
मुझे जब होश आता है तो यह महसूस करता हूं
अभी उठ कर गए हो तुम मेरी आगोशे-वीरां से
अभी-अभी उठ गए तुम मेरी गोद से। अभी-अभी मेरे हृदय में थे, अभी-अभी तुम चले गए। अभी-अभी पास थे, अब फिर दूर हो गए--फिर अनंत दूरी! फिर तुम लापता! फिर पता नहीं तुम्हारा मकान कहां है, कहां तुम्हें खोजूं! यह भी पता नहीं है कि कैसे यह क्षण भर को तुम्हारा मिलना हुआ था! तुम बिना कुछ सूत्र बताए आए और बिना कुछ सूत्र बताए चले गए। यह दूसरी गहराई है।
फिर एक तीसरी, अंतिम भक्त के रोने की गहराई है। जब भगवान मिल ही जाता है, पूरा-पूरा मिल जाता है, छूटता नहीं, तब अनुग्रह में रोता है भक्त, तब आह्लाद में रोता है भक्त। फिर आह्लाद इतना होता है कि शब्द ओछे मालूम पड़ते हैं, सिर्फ आंसू ही कह सकते हैं। मगर इन सब आंसुओं के गुणधर्म अलग हैं। पहले रोता है असहाय अवस्था में। फिर रोता है--स्वाद लग गया, अनुभूति की थोड़ी-थोड़ी किरण उतरने लगी। फिर रोता है--अनुभव हो गया। अब अनुग्रह में और क्या करे?
तो तुम भक्त को पहले भी रोते पाओगे, बाद में भी रोते पाओगे। और इसलिए प्रश्न सार्थक है कि भक्त रोते क्यों हैं? और रुदन और ध्यान का क्या संबंध है?
रुदन और ध्यान का तो कोई संबंध नहीं है, लेकिन रुदन और प्रार्थना का संबंध जरूर है। ये दो अलग मार्ग हैं। ध्यानी नहीं रोता। महावीर कभी रोए, ऐसी कोई घटना का उल्लेख नहीं है। या बुद्ध कभी रोए, ऐसी घटना का कोई उल्लेख नहीं है। ज्ञानी नहीं रोता, ध्यानी नहीं रोता। क्योंकि ध्यानी की सारी प्रक्रिया बुद्धि को निखारने की है। इसीलिए तो गौतम सिद्धार्थ को हमने बुद्ध कहा। उन्होंने बुद्धि को पूरा-पूरा निखार लिया। वह प्रक्रिया अलग है। ध्यान की प्रक्रिया विचार-मुक्ति की प्रक्रिया है, और भक्ति की प्रक्रिया भाव को जगाने की प्रक्रिया है। आंसू मस्तिष्क से नहीं आते, आंसू हृदय से आते हैं, उनका स्रोत हृदय में है। इसलिए ध्यानी नहीं रोता। उसका सारा काम मस्तिष्क में है। वहां से आंसू आने का कोई कारण नहीं है। ध्यानी की आंखें तो आंसुओं से बिल्कुल रिक्त हो जाती हैं। लेकिन भक्त रोता है। मीरा रोती है, चैतन्य रोते हैं, सहजो रोती है। और ये रोने के ये तीन तल हैं।
प्रार्थना से संबंध है आंसुओं का। और ध्यान रखना, दुनिया में बहुत थोड़े लोगों ने ध्यान के द्वारा परमात्मा को पाया है, अधिक लोगों ने भाव के द्वारा परमात्मा को पाया है। ध्यान के द्वारा परमात्मा को पाना ऐसा ही है जैसे कोई सिर के पीछे से हाथ घुमा कर और कान को पकड़े, या नाक को पकड़े। लंबी यात्रा है। भक्ति सुगम है, सीधी यात्रा है। नाक पकड़नी है तो सीधी नाक पकड़ लो। पूरे सिर के पीछे से हाथ को घुमा कर लाओगे, फिर नाक पकड़ोगे? ध्यानी बड़े उपक्रम में लग जाता है। भक्त सिर्फ रोता है और पा लेता है। भक्त सिर्फ पुकारता है और पा लेता है।
अगर भक्ति की संभावना हो तो ध्यानी बनने की व्यर्थ झंझट में पड़ना ही मत। अगर ऐसा लगे कि मेरे भीतर भाव उठते ही नहीं, संवेदना उठती ही नहीं, छूता ही नहीं मेरे हृदय को कुछ, तो ही ध्यान की तरफ जाना। जिनका हृदय बिल्कुल रेगिस्तान हो गया हो, उनके लिए ध्यान का मार्ग है। जिनके हृदय में अभी थोड़ी संभावना हो, जल-स्रोत बहते हों, हरियाली हो, फूल खिल सकते हों, उन्हें ध्यान तक जाने की कोई भी जरूरत नहीं है। वे भक्ति में डूब जाएं।

आज मल्हार कहीं तुम छेड़े
मेरे नयन भरे आते हैं।

तुमने आह भरी कि मुझे था
झंझा के झोंकों ने घेरा,

तुम मुस्काए थे कि जुन्हाई में था डूब गया मन मेरा,
तुम जब मौन हुए थे मैंने
सूनेपन का दिल देखा था
आज मल्हार कहीं तुम छेड़े मेरे नयन भरे आते हैं।

हंसता हूं तो उनकी अंजलि रिक्त नहीं होती कलियों से मुखरित हो पथ उनका
सुरभित होगा पंखुड़ियों से, पलको! सूख न जाना देखो
राग न उनका रुकने पाए,
किस मरु को मधुबन करने को
आज न जाने वे गाते हैं
आज मल्हार कहीं तुम छेड़े
मेरे नयन भरे आते हैं।

सुनो गौर से, सुनो शांत होकर, मल्हार छिड़ी ही हुई है।
आज मल्हार कहीं तुम छेड़े
मेरे नयन भरे आते हैं।
भक्त ऐसा कोमल हो जाता है, ऐसा नाजुक हो जाता है, ऐसा स्त्रैण हो जाता
है कि पक्षी गीत गाता है और भक्त की आंखें भर आती हैं; गुलाब की झाड़ी पर फूल खिलता है और भक्त की आंखें भर आती हैं; कोयल कुहू-कुहू करती है और भक्त रोने लगता है; पपीहा पुकारता है पी को और भक्त डोलने लगता है; हवाएं वृक्षों से सरसराती निकलती हैं और भक्त रोने लगता है; चांद को देखे कि सूरज को, जहां आंख उठाता है वहीं उसकी मल्हार सुनाई पड़ती है।
आज मल्हार कहीं तुम छेड़े
मेरे नयन भरे आते हैं।
पलको! सूख न जाना देखो
राग न उनका रुकने पाए,
भक्त और भगवान के बीच यही संबंध है। भगवान की तरफ से राग छिड़ा है, भक्त
की तरफ से आंखें आंसुओं से भरी हैं। यही सेतु है। उस तरफ से राग, इस तरफ से आंसुओं से भरी आंखें।
पलको! सूख न जाना देखो
राग न उनका रुकने पाए,
किस मरु को मधुबन करने को
आज न जाने वे गाते हैं
आज मल्हार कहीं तुम छेड़े
मेरे नयन भरे आते हैं।
रोओ। रोने में कंजूसी मत करना। रोने में क्या लगता है तुम्हारा?
लेकिन लोगों की आंखें सूख गई हैं। लोग तर्क के मरुस्थल हो गए हैं। रोने वाला व्यक्ति तो उन्हें ऐसा लगता है कि कुछ गलत है, कुछ पागल है, कुछ बुद्धिहीन है। इस धारणा ने ही लोगों को इस जगत में परमात्मा से वंचित करा दिया है। क्योंकि निन्यानबे प्रतिशत लोग हृदय से ही परमात्मा की तरफ जा सकते हैं। और हृदय स्वीकार नहीं है। हृदय अंगीकार नहीं है। हृदय की भाषा को कोई मानने को तैयार नहीं है।
तुम भी जब रोने लगते हो तो तुम भी सोचते हो कोई देख न ले। अपनी आंख जल्दी से पोंछ लेते हो, रोक लेते हो आंसुओं को, पी जाते हो; कोई देख न ले, लोग क्या कहेंगे? पहले तो तुम्हें यह सिखाया गया है कि अगर तुम पुरुष हो तो रोना ही मत, क्योंकि यह स्त्रैण कृत्य है। छोटे-छोटे बच्चों को हम कहते हैं कि क्या रो रहा है, क्या तू लड़की है?

तुम जान कर चकित होओगे, मनोवैज्ञानिक क्या कहते हैं इस संबंध में? उनकी खोजें क्या हैं? उनकी खोजें ये हैं कि अगर आदमी, पुरुष भी रोना सीख ले फिर से--सीखना पड़ेगा उसे--तो दुनिया में बहुत सा पागलपन कम हो जाए। पुरुष दो गुने ज्यादा पागल होते हैं स्त्रियों की बजाय, यह तुम्हें पता है? और पुरुष दो गुने ज्यादा आत्महत्या करते हैं स्त्रियों की बजाय, यह तुम्हें पता है? और मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि कारण क्या होगा इतने बड़े भेद का? कारण सिर्फ यही है कि स्त्री अभी भी रोना भूल नहीं गई है। थोड़ा सा रो लेती है। रो लेती है, हलकी हो जाती है। उसके रोने में कोई बड़ा अध्यात्म नहीं है, क्षुद्र बातों में रोती रहती है, मगर फिर भी हलकी तो हो ही जाती है। काश, उसके आंसुओं को ठीक दिशा मिल जाए, तो वह हलकी ही न हो, उसे पंख लग जाएं। पुरुष को रोना सीखना ही पड़ेगा। और गलत तुम्हें समझाया गया है कि रोना
मत, तुम पुरुष हो। क्योंकि प्रकृति ने भेद नहीं किया है। जितनी आंसुओं की ग्रंथि स्त्री की आंखों में है, उतनी ही आंसुओं की ग्रंथि पुरुष की आंखों में है। इसलिए प्रकृति ने तो भेद बिल्कुल नहीं किया है। तुम्हारी आंखें उतनी ही रोने को बनी हैं जितनी स्त्री की। इस संबंध में कोई भेद नहीं है। स्त्री रो लेती है तो भार उतर जाता है।
मगर भार ही उतारने का काम लिया इतनी महिमापूर्ण घटना से, आंसुओं से,
तो कुछ ज्यादा काम नहीं लिया। आंसू तो परमात्मा की तरफ इशारा बन सकते हैं। क्षुद्र के लिए मत रोओ, विराट के लिए रोओ। और कंजूसी मत करो। और छिपाओ मत आंसुओं को। तुम्हारे पास हृदय है, इसमें कुछ अपमान नहीं है, सम्मान है। एक बात ख्याल रखना, मस्तिष्क तो आज नहीं कल मशीन के पास भी होगा--हो ही गया है, कंप्यूटर बन ही गए हैं जो आदमी की बुद्धि से ज्यादा ठीक काम कर रहे हैं--एक बात सुनिश्चित है कि मशीन के पास हृदय कभी नहीं होगा। हम ऐसी मशीन कभी भी न बना पाएंगे जो भाव अनुभव कर सके। विचार का गणित बिठाने वाली मशीनें तो बन गई हैं, तुमसे ज्यादा ठीक से जोड़-घटाना करती हैं, तुमसे ज्यादा अच्छी उनकी स्मृति है, बड़े से बड़ा गणितज्ञ जो सवाल घंटों में पूरा करे, वह मशीन क्षण में पूरा कर देती है। इसलिए विचार तो मशीन भी कर सकेगी, लेकिन भाव मशीन न कर सकेगी।
मनुष्य की महिमा उसके भाव में है। उसके भाव के कारण ही वह मनुष्य है। इसलिए जितनी भावुकता हो, उतने तुम ज्यादा मनुष्य हो। और भाव ही भाव बह जाए तुम्हारे जीवन में तो प्रार्थना का जन्म हो गया।
और फिर परमात्मा के सामने न रोओगे तो कहां रोओगे? अगर उस द्वार पर भी न
रो सके तो फिर कहां रोओगे? न रोने का मतलब होता है अकड़--मैं और रोऊं! परमात्मा के सामने भी अकड़ लेकर जाओगे? वहां तो छोटे बच्चे हो जाओ।

मेरे उर की पीर पुरातन
तुम न हरोगे, कौन हरेगा?

किसका भार लिए मन भारी
जगती में यह बात अजानी,
कौन अभाव कि ये मन सूना
दुनिया की यह मौन कहानी
किंतु मुखर हैं जिससे मेरे गायन-गायन, अक्षर-अक्षर
मेरे उर की पीर पुरातन
तुम न हरोगे, कौन हरेगा?

सर-सरिता, निर्झर धरती के मेरी प्यास परखने आए,
देख मुझे प्यासा का प्यासा वे भरमाए, वे शरमाए,
ओर-छोर नभमंडल घेरे
हे पावस के पागल जलधर,

मेरे अंतर के सागर को
तुम न भरोगे, कौन भरेगा?
मेरे उर की पीर पुरातन
तुम न हरोगे, कौन हरेगा?

वहां तो रोओ! वहां तो पुकारो! और ध्यान रखना, आज शायद तुम पीड़ा में पुकारोगे, कल तुम्हारी पीड़ा रूपांतरित हो जाएगी और आनंद के अश्रु तुम्हारे भीतर जन्मने लगेंगे। पीड़ा में पुकार है, उपलब्धि में अंत है। आंसू दोनों ही तरफ से होंगे। पहले इसलिए कि तुम रिक्त हो, फिर इसलिए कि तुम भर गए हो। बहो आंसुओं में। तुम्हारा कल्मष ले जाएंगे आंसू। तुम्हारी धूल झाड़ देंगे।
वैज्ञानिक से पूछो कि आंसू का उपयोग क्या है? तो वैज्ञानिक कहता है, आंख पर धूल न जमने पाए, यह आंसू का उपयोग है। इसलिए जरा सी कंकड़ी चली जाती है आंख में, तत्क्षण आंसू आ जाते हैं। आंसू का मतलब यह होता है कि आंख पानी बहा रही है ताकि कंकड़ी बह जाए। प्रतिपल तुम्हारी पलक झपकती है। तुम्हें पता है पलक झपक कर क्या करती है? पलक आर्द्र है, उसकी आर्द्रता के कारण वह तुम्हारी आंख को पोंछ जाती है। जैसे गीले कपड़े से कोई चीज पोंछ दी गई हो। तो आंख ताजी रहती है, स्वच्छ रहती है, धूल नहीं जमने पाती।
यह तो वैज्ञानिक कहता है बाहर की बात। भक्त से भीतर की बात पूछो। वह कहता है, भीतर की आंख भी धुल जाती है आंसुओं से। बाहर की आंख तो धुलती ही है, भीतर की आंख, जिसको तीसरा नेत्र कहो, शिवनेत्र कहो, वह भी धुलता है। और तुमने भी कई बार अनुभव किया होगा, अगर हृदयपूर्वक तुम रो लिए तो पत्थर उतर जाते हैं सिर से। कुछ हलका हो जाता है। तुम भाररहित हो जाते हो।
इस कला को फिर जगाओ। तुम्हें भुला दी गई है यह कला। संस्कृति के नाम पर, सभ्यता के नाम पर अकड़ तुम्हें सिखा दी गई है! काश, तुम रो सको तो तुम पिघलना शुरू हो जाओ। और पिघलने में ही प्रार्थना है।

चौथा प्रश्नः भक्ति को आप प्रेम की उपमा क्यों देते हैं? क्या कोई और सम्यक उपमा नहीं है?

प्रेम भक्ति के लिए उपमा ही नहीं है, प्रेम भक्ति के लिए ऊर्जा है। उपमा ही नहीं है; तुम्हें समझाने के लिए ही नहीं कह रहा हूं कि प्रेम भक्ति है। प्रेम भक्ति है! यह प्रेम की ही ऊर्जा है तुम्हारे भीतर जो आज नहीं कल भक्ति में रूपांतरित होगी। प्रेम बीज है, भक्ति अंकुरण हो गया, बीज टूट गया। जब भी तुमने किसी को प्रेम किया है तो तुम्हें थोड़ी सी प्रार्थना की झलक मिली ही है। इसीलिए तो प्रेम करने वालों को लोग पागल समझ लेते हैं। क्योंकि जब तुम्हारा किसी से प्रेम हो जाता है तो तुम्हें दूसरे में ऐसा कुछ दिखाई पड़ने लगता है जो किसी को दिखाई नहीं पड़ता। एक स्त्री के प्रेम में तुम पड़े, कि एक पुरुष के प्रेम में तुम पड़े, और तुम्हें स्त्री में एकदम देवी दिखाई पड़ने लगती है, जो किसी को दिखाई नहीं पड़ती। स्त्री को एकदम तुममें देवता दिखाई पड़ने लगता है, जो तुमको भी दिखाई नहीं पड़ता। तुम्हें चौंक नहीं हुई कभी-कभी? जब किसी स्त्री ने कहा कि आप तो मेरे देवता हैं और तुम्हारे चरणों में गिर गई है। तुम्हें विचार नहीं उठा कि मैं और देवता? मुझे भी पता नहीं है! तुम जब किसी स्त्री के आगे झुके हो अपने प्रेम की प्रार्थना लेकर, जब तुमने किसी स्त्री को प्रेम से भर कर देखा है, तो तुम्हें उसमें कुछ अलौकिक दिखाई पड़ा है, तभी। तुम्हें कुछ झलक मिली है परमात्मा की।
यह झलक जल्दी ही खो जाती है, ज्यादा देर टिकती नहीं, क्योंकि झलक ही है, इसको तुमने कमाया नहीं है; और प्राकृतिक है, आध्यात्मिक नहीं है, इसलिए ज्यादा देर टिकेगी नहीं। इसलिए सभी प्रेमी अंत में जीवन के अनुभव करते हैं कि उन्हें धोखा दिया गया। थोड़े दिन तक जिससे तुमने प्रेम किया उसमें परमात्मा दिखाई पड़ता है, फिर जल्दी ही आदमी दिखाई पड़ेगा--कितनी देर तक परमात्मा दिखाई पड़ेगा? कभी-कभी एक स्त्री से मिल लिए, कभी-कभार, तो ठीक।

लेकिन जब चौबीस घंटे उसके साथ रहोगे तो असलियत तो जमीन की है। वह कभी नाराज भी होगी, कभी चीखेगी-चिल्लाएगी भी, कभी सामान भी तुम पर फेंकेगी, कभी तुम भी उसे मारने को उतारू हो जाओगे, क्रोध भी करोगे, झगड़ा-झंझट भी होगा। तब तुम्हें शक होने लगता है कि मामला क्या है? मुझे देवी दिखाई पड़ी थी, यह महादेवी सिद्ध हो रही है। स्त्री को भी शक होने लगता है कि मैंने देवता देखा था और यह तो साधारण आदमी सिद्ध हो रहा है। धोखा दिया गया है।
नहीं, किसी ने किसी को धोखा नहीं दिया; किसी ने किसी से बेईमानी नहीं
की है। लेकिन प्रेम में एक झलक मिल जाती है भक्ति की और तुम दूसरे को दिव्य मान बैठते हो। प्रेम में एक झरोखा खुलता है--प्राकृतिक झरोखा--लेकिन वह ज्यादा देर स्थायी नहीं हो सकता।
ऐसा ही समझो कि बिजली कौंधी आकाश में, अब इसमें तुम कोई किताब थोड़े ही
पढ़ सकोगे! वही बिजली तुम्हारे घर में भी है, रोशनी कर रही है, फिर तुम किताब पढ़ो, या जो तुम्हें करना हो करो। दोनों बिजलियां हैं, लेकिन आकाश की बिजली प्राकृतिक घटना है, तुम्हारे घर में जो बिजली पंखा चलाती है, दीये जलाती है, उसे तुमने बांध लिया, उसे तुमने अपने बस में कर लिया। उसे बस में करने के लिए तुम्हें बड़ी साधना करनी पड़ी।
प्रेम प्राकृतिक कौंध है। इसी कौंध को जब कोई धीरे-धीरे निरंतर अभ्यास से अपने बस में कर लेता है, तो भक्ति का जन्म होता है। फिर दीया भीतर जलता है, फिर रोशनी उसकी सदा रहती है। फिर ऐसा नहीं होता कि तुम्हें किसी एक स्त्री में भगवान दिखाई पड़े, किसी एक पुरुष में भगवान दिखाई पड़े। फिर तो तुम्हें ऐसा होने लगेगा कि तुम्हारे भीतर रोशनी जलती है तो तुम जहां भी देखते हो वहीं भगवान दिखाई पड़ता है। प्रेम है किसी एक में कभी- कभार भगवान का दिखाई पड़ जाना, भक्ति है सबमें सर्वत्र सदा भगवान का दिखाई पड़ना।
लेकिन उपमा ही नहीं है।
और अगर तुम यह सोचो कि सिर्फ उपमा ही है, तो भी इससे बेहतर कोई उपमा नहीं हो सकती। क्योंकि प्रेम से ज्यादा और इस जगत में ऐसा कोई तत्व नहीं है जिसके द्वारा हम भक्ति को समझा सकें। तुम्हारे अनुभव में और कोई ऐसी घटना नहीं है जिसके द्वारा हम भक्ति की तरफ इशारा कर सकें। ऐसा ही समझो कि तुम एक देश में रहते हो जहां कमल का फूल नहीं खिलता; कमल का फूल नहीं होता। वहां समझो गेंदे के ही फूल होते हैं। और कोई आया है परदेश से कमल के फूलों की खबर लेकर, वह तुमसे कहता है कि कमल का फूल कैसा होता है। वह क्या कहे तुमसे? गेंदे के फूल और कमल के फूल में बड़ा फर्क है। लेकिन उसके पास एक ही उपाय है कि वह तुमसे कहे कि थोड़ा सा गेंदे के फूल से तुम्हें अनुभव हो सकता है। ऐसा ही फूल होता है, बहुत बड़ा होता है, बहुत सुगंधित होता है, बहुत कोमल होता है, जल पर तैरता है, और ऐसा तैरता है कि जल पर होता है और जल उसे छू भी नहीं पाता।
लेकिन क्या यह उपमा, जिसने दोनों जाने हैं--प्रेम और भक्ति, गेंदे का फूल और कमल का फूल--उसे ठीक मालूम पड़ेगी? उसे ठीक मालूम नहीं पड़ेगी। लेकिन फिर भी, जिन्होंने गेंदे के फूल ही जाने हैं, उनको समझाने का और क्या उपाय है?
तुमने प्रेम जाना है थोड़ा सा--मां से, पिता से, बेटे से, पत्नी से, भाई से, मित्र से--तुमने प्रेम की थोड़ी-थोड़ी झलकें पाई हैं। तुम्हारे जीवन में जो सबसे ऊंची घटना है वह प्रेम है। भक्ति के लिहाज से प्रेम सबसे नीची घटना है, मगर तुम्हारे जीवन में जो सबसे ऊंची घटना है वह प्रेम है। तो तुम्हारी सबसे ऊंची घटना से ही भक्ति को समझाया जा सकता है। और किसी तरह समझाने से भ्रांति हो जाएगी। अगर तुम प्रेमियों के वचन सुनो, तो तुम्हें समझ में आएगा।

यह दूर की वादी से किसने मुझे सदा दी
एक आग मेरे दिल में मोहब्बत की लगा दी
फूलों की बहार और सितारों की जवानी
हर चीज तेरे मस्त तबस्सुम पे लुटा दी

यह कौन मेरे रूह की गहराइयों में झूमा उजड़ी हुई बस्ती यह मेरी किसने बसा दी यह बात जिसे दिल ने छुपाया था बामुश्किल
दुनिया को मेरी मस्त निगाहों ने बता दी
फिर उठने लगे रूह से रंगीन शरारे
फिर हिज्र की रूदाद पपीहे ने सुना दी
फिर कर दिया मदहोश मुझे होश में लाकर
फिर मस्त निगाहों ने निगाहों को पिला दी

यह गाया तो प्रेम में है, प्रेम का गीत है। पर क्या इससे तुम्हें भक्ति की थोड़ी झलक नहीं मिलती?
फिर कर दिया मदहोश मुझे होश में लाकर
फिर मस्त निगाहों ने निगाहों को पिला दी
माना अभी और बहुत ऊंचे जाना होगा। यह ऊंची से ऊंची पहाड़ी है जिस पर तुम खड़े हो सकते हो, मगर इस पर अगर तुम खड़े हो जाओ तो तुम्हें दूर का आकाश दिखाई पड़ेगा।

उस निगाहे-मस्त से जब बज्म में आती हूं मैं
कैफे-रंगो-नूर की दुनिया पे छा जाती हूं मैं
चाहती तो हूं कि मौजों से रहूं दामनकशां
किश्ती-ए-गम हूं भंवर में फिर भी आ जाती हूं मैं
सुबह तक ठहरा नजर आता है दौरे-आस्मां
जब तसव्वुर में तेरे रातों को खो जाती हूं मैं
जाम गिर पड़ता है, साकी, थरथरा जाते हैं हाथ
तेरी आंखें देख कर नशे में आ जाती हूं मैं

यह गीत तो प्रेम का है, लेकिन क्या इससे तुम्हें कुछ खबर नहीं मिलती? जाम गिर पड़ता है, साकी, थरथरा जाते हैं हाथ
तेरी आंखें देख कर नशे में आ जाती हूं मैं
यही तो शिष्य और गुरु के बीच घटता है, तब उसे हम श्रद्धा कहते हैं।
जाम गिर पड़ता है, साकी, थरथरा जाते हैं हाथ
तेरी आंखें देख कर नशे में आ जाती हूं मैं
और यही फिर एक दिन भक्त और भगवान के बीच घटता है, उसे हम भक्ति कहते हैं। रोज-रोज आकाश बड़ा होता जाता है। प्रेम ऐसा है जैसे तुम्हारा छोटा सा घर का आंगन। अब घर के आंगन से आकाश की क्या उपमा? क्या तुलना? मगर फिर भी एक बात तो मानोगे न कि तुम्हारे छोटे से आंगन में भी जो उतरा है, वह भी आकाश ही है! तुम्हारा छोटा सा आंगन आकाश नहीं है, आकाश बहुत बड़ा है, और भेद तुम्हारे आंगन और आकाश में परिमाण का ही नहीं, गुण का भी है। लेकिन फिर भी जो उतरा है तुम्हारे छोटे से आंगन में, वह भी तो आकाश ही है। एक छोटी सी सागर की बूंद, जरा सी बूंद, माना कि सागर नहीं है और इसमें तुम चाहोगे बड़े जहाज चलाने तो न चला पाओगे, इसमें तुम डुबकी भी लगाना चाहोगे तो न लगा पाओगे, लेकिन फिर भी इससे इनकार नहीं किया जा सकता कि यह छोटी सी बूंद भी सागर की ही बूंद है और इस छोटी सी बूंद में सागर का सारा राज छिपा है। वैज्ञानिक कहते हैं, अगर हम सागर की एक बूंद को पूरा-पूरा समझ लें तो हमने पूरे सागर को समझ लिया। एक बूंद को समझ लेने से पूरा सागर समझ में आ जाएगा। निश्चित आ जाएगा। सूत्र तो वहां है, संक्षिप्त है।
प्रेम में सारा राज छिपा है। इसलिए मैं जब प्रेम से तुलना देता हूं भक्ति की, तो तुलना तो है ही, उपमा तो है ही, लेकिन एकमात्र उपमा ही नहीं है, प्रेम में कुछ-कुछ भक्ति का अंश उतरा है। और कुछ-कुछ प्रेम का अंश भक्ति में सदा शेष रहता है। दोनों जैसे जुड़े हैं। प्रेम ऐसा है जैसे जमीन में गड़ा है, और भक्ति ऐसी है जैसे आकाश में उड़ती है। प्रेम ऐसा है जैसे तुमने पिंजड़े में पक्षी को बंद कर रखा है, और भक्ति ऐसी है जैसे पिंजड़े से पक्षी उड़ गया। खुले आकाश को फिर उसने पा लिया है।

मगर मैं जानता हूं कि प्रश्न तुम्हारे मन में क्यों उठा है। प्रश्न इसलिए उठा है कि सदियों-सदियों से तुम्हारे तथाकथित धार्मिक लोगों ने प्रेम की निंदा की है, प्रेम को गर्हित बताया है, प्रेम को कुत्सित कहा है। प्रेम पाप है, ऐसी घोषणा की है। इसलिए तुम्हारे मन में यह सवाल उठा है कि मैं कोई और उपमा चुन लूं तो अच्छा। तुम्हारे मन में प्रेम की कहीं निंदा होगी। तुम्हारे मन में प्रेम का कहीं अस्वीकार होगा। तुम्हारे मन में प्रेम से कहीं भय है। और तुम्हारी बात भी मैं समझता हूं, तुम्हारे तथाकथित महात्माओं की बात भी मैं समझता हूं। लेकिन जिसको प्रेम में भय है उसने प्रेम को समझा नहीं, प्रेम की नासमझी के कारण भय पैदा हुआ है। जो आंगन से भयभीत है, वह आंगन को समझा नहीं। आंगन में दीवालें भी थीं और आंगन में आकाश भी था, उसने दीवालों पर ज्यादा ध्यान दे दिया और आकाश को भूल गया।
मैं चाहता हूंः तुम आकाश पर ज्यादा ध्यान दो, दीवालों को भूलो। दीवालें तो हैं और रहेंगी। आदमी शरीर की दीवाल में है, तब तक दीवालें रहती हैं, तब तक दीवालें नहीं मिटती हैं। कैसे मिटेंगी? तुम्हारी ही दीवाल नहीं मिट रही है तो और कैसे तुम दीवालें मिटा पाओगे? तुम भाग जाओगे हिमालय में, लेकिन शरीर से कहां भाग कर जाओगे? अच्छा यही हो कि तुम दीवालों को ज्यादा महत्व न दो, उपेक्षा करो। रहने दो दीवालें आंगन के चारों तरफ, कोई चिंता की बात नहीं है। लेकिन आंगन आकाश की तरफ खुला है, आकाश आंगन की तरफ खुला है, उसे स्मरण करो--उसी द्वार से मुक्त हो सकोगे।
मेरे मन में प्रेम का बड़ा सम्मान है। और मैं उस आदमी को अभागा मानता हूं जिसके जीवन में प्रेम का अनुभव नहीं है। जिसने प्रेम ही न जाना वह परमात्मा को नहीं जान पाएगा। लाख करे उपाय।
फिर उसके उपाय बुनियादी रूप से गलत होंगे। क्यों गलत होंगे? वह उपाय
ही क्यों करेगा? उसके उपाय भय पर आधारित होंगे या लोभ पर। दुनिया में दो ही चीजें कारगर हैं--या तो प्रेम, या भय। लोभ भय का ही अंग है, दान प्रेम का अंग है। या तो लोग भयभीत होकर परमात्मा की तरफ जाते हैं। महात्माओं को यही सस्ता मालूम पड़ा कि लोगों को भयभीत कर दो, डरा दो। नरक! कहीं भी नहीं है नरक। और अगर कहीं है, तो तुम्हारे भीतर है। बाहर तो नहीं है। उसकी कोई भूगोल नहीं है। लेकिन डरा दो कि नरक में सड़ोगे अगर भगवान की प्रार्थना न की। अगर मंदिर न गए, तो नरक की आग में डाले जाओगे, नरक के कीड़े बनोगे। और नरक के खूब वीभत्स चित्र खींचे। उनसे लोग घबड़ा गए। और जब ये चित्र खींचे गए--आज से पांच हजार साल पहले--तब लोग बड़े भोले-भाले थे, बहुत घबड़ा गए होंगे।
आज का आदमी तो इतना भोला-भाला नहीं, वह तो कहेगा--होगा जब देखेंगे। और अभी कौन मरे जा रहे हैं! और मर भी गए तो फिर वहां देख लेंगे। आखिर हम तो वहां रहेंगे, सब नरक के लोगों को इकट्ठा कर लेंगे, ऐसा कोई आसान थोड़े ही है! कुछ न कुछ उपद्रव खड़ा करेंगे--हड़ताल, घेराव; उलट देंगे सत्ता को वहां। आज का आदमी तो चालाक है।
लेकिन जब नरक की कहानियां गढ़ी गईं तब आदमी बड़ा सरल था। आदमी प्रभावित
हो जाता था। निर्दोष था आदमी। सीधा-सादा था, भोला-भाला था। जैसे छोटे बच्चे होते हैं। छोटे बच्चे को भूत की कहानी सुना दो, वह कहता है, अब मैं सो नहीं सकता। वह अपनी मां के पास ही बैठा है। वह कहता है, अब मैं जा नहीं सकता, अंधेरे में मुझे डर लगता है। अब मां लाख उसे समझाए कि यह सिर्फ कहानी थी, मगर अब उसकी समझ में नहीं आता कि यह कहानी थी। अब वह कहता है, मैं तेरे पास ही सोऊंगा। अब उसे छोटी-छोटी चीज डराती है। पांच हजार साल पहले लोग भोले-भाले थे, प्राकृतिक थे। तब उन्हें खूब डरवा दिया, चालबाज लोगों ने, बेईमान लोगों ने। इसको मैं बेईमानी कहता हूं। इस भय के कारण वे जाकर थरथर कांपने लगे, मंदिरों में प्रार्थनाएं करने लगे, पूजा करने लगे, अर्चन करने लगे, घुटनों पर खड़े हो गए। लेकिन इसके पीछे भय था।
और ध्यान रखना, जहां भय है वहां प्रेम पैदा नहीं होता। भय और प्रेम विपरीत हैं। तुमने भगवान की प्रार्थना तो की, लेकिन यह प्रार्थना के पीछे भय था सिर्फ। तुम जो भगवान को मानते हो वह तुम्हारे भय का ही विस्तार है।
और अगर भय का विस्तार है तो परमात्मा से तुम्हारा कभी संबंध न हो सकेगा।

उससे संबंध तो प्रेम के कारण हो सकता है। तुम जीवन के दुखों से घबड़ा गए, जीवन की परेशानियों से घबड़ा गए, चिंताओं से घबड़ा गए, मौत से घबड़ा गए, मौत आती है, इसलिए तुम जाकर हाथ जोड़ कर खड़े हो गए। तुम्हारी प्रार्थना झूठी है। यह प्रार्थना है ही नहीं।
एक और प्रार्थना है जो जीवन के आनंद से पैदा होती है। जो जीवन में सुख, जीवन की शांति, जीवन में खिलते अनेक फूलों के प्रति कृतज्ञता से पैदा होती है। तुम्हें परमात्मा ने जीवन दिया है, इसलिए तुम धन्यवाद देने गए, यह और तरह की प्रार्थना है। और परमात्मा तुम्हें कल मार डालेगा, मौत आ रही है, इसलिए तुम प्रार्थना करने गए, यह और ही तरह की प्रार्थना है। ये बिल्कुल अलग-अलग प्रार्थनाएं हैं। पहली प्रार्थना जो तुमने परमात्मा के पास जाकर की कि तूने मुझे जीवन दिया, मैं धन्यभागी हूं, तूने मुझ पर इतनी कृपा की, इतना प्रसाद बरसाया; तूने चांद-तारे बनाए, तूने इतने फूल खिलाए, तूने जगत को इतनी हरियाली से भरा, तूने इतने प्यारे लोग बनाए, तूने मुस्कुराहट की सुविधा दी, तूने अदभुत आंसू बनाए--इस सबके लिए तुम धन्यवाद देने गए हो, शिकायत करने नहीं गए हो, यह प्रार्थना अलग ही बात है। यही प्रार्थना है! तुम कहने गए हो कि मैं अनुगृहीत हूं; मेरे धन्यवाद! मेरे हजारों धन्यवाद स्वीकार कर! मैं कैसे उऋण हो सकूंगा तुझसे! मेरी कोई पात्रता नहीं थी, तूने इतना अपूर्व जीवन दिया, इतना अमूल्य जीवन दिया। मुझ अपात्र पर इतनी अनुकंपा!
इस भेद को फर्क करना। मैं ऐसा ही धर्म सिखाता हूं जो तुम्हारे अहोभाव
से उठे।
फिर एक धर्म है जो भय भर खड़ा है। वह कहता है--डरो! सब गलत है! यह भी पाप,
वह भी पाप; यह भी मत करो, वह भी मत करो। वह तुम्हें इतना संकीर्ण कर देता है और इतना घबड़ा देता है कि तुम जाकर कंपने लगते हो मंदिर में। तुम्हारे कंपन में आनंद नहीं है। कैसे होगा? तुम्हारे कंपन में अहोभाव कैसे होगा? गहरे में तुम ऐसे परमात्मा को प्रेम कैसे कर सकोगे जो मृत्यु दे रहा है, बीमारी दे रहा है, गरीबी दे रहा है; जो नरक बना रहा है, ऐसे परमात्मा को तुम कैसे प्रेम कर सकोगे? गहरे में तुम घृणा करोगे। कहो कुछ भी, लेकिन गहरे में तुम अगर मौका मिल जाए तो ऐसे परमात्मा की गर्दन दबा दोगे। क्यों उसने नरक बनाया? क्यों इतना दुख? क्यों इतनी कामवासना का जाल फैलाया? क्यों इतने बंधन? नहीं, ऐसे परमात्मा को तुम आनंद से स्वीकार नहीं कर रहे हो। तुम्हारे तथाकथित धर्मगुरुओं ने शोषण किया है। तुम्हारे भय का शोषण किया है। भय के नाम पर नरक। और फिर तुम्हें लोभ भी दिया है कि अगर हम जो कहते हैं वैसा करोगे, तो स्वर्ग का पुरस्कार। यह सामान्य प्रक्रिया है लोगों को जबरदस्ती किसी दिशा में लगाने की--विपरीत जाओगे तो दंड पाओगे, अनुकूल रहे तो पुरस्कार पाओगे। यह लोभ और भय के बीच आदमी को फंसाना है। मैं तुमसे कहना चाहता हूंः न तो कोई नरक है, न कोई स्वर्ग है। नरक और स्वर्ग चित्त की अवस्थाएं हैं। अगर तुमने प्रेम किया तो तुम स्वर्ग में हो, अगर तुमने घृणा की तो तुम नरक में हो। अगर तुमने करुणा की तो तुम स्वर्ग में हो, अगर तुमने क्रोध किया तो तुम नरक में हो। तुम किस नरक की कल्पना कर रहे हो जहां आग जलेगी? क्रोध में रोज जलती है। ये तो प्रतीक हैं। और जब तुम किसी को प्रेम से कुछ देते हो, भेंट करते हो, तब तुम स्वर्ग में हो जाते हो। तब स्वर्ग की शीतल हवा बहती है। तब स्वर्ग की पावन सुगंध तुम्हारे पास होती है। दो और देखो। किसी को सताओ और नरक! किसी को बचाओ और स्वर्ग!
तुमने बचाने का सुख नहीं जाना? कोई नदी में डूब रहा हो और तुम जाकर बचा लेते हो। एक आह्लाद भर जाता है। तुमसे भी कुछ सार्थक हुआ। तुम्हारे जीवन में एक कृतार्थता का भाव होता है। या तुम एक गीत रचो। जो भी इस गीत को गुनगुनाएगा, खुशी से भरेगा, इस कल्पना से ही तुम्हारे भीतर बड़ा आनंद होता है। इसलिए स्रष्टा आनंदित रहते हैं। कोई चित्र बनाता है, कोई मूर्ति बनाता है, कोई गीत रचता है, कोई संगीत छेड़ता है। क्या आनंद होगा संगीत छेड़ने का? कोई आनंदित हो जाएगा, कोई डोलेगा मस्ती में। तुम बांट रहे हो कुछ।

प्रेम बांटना है; प्रेम दान है। प्रेम देना है। और जब तुम बिना मांगे देते हो, बिना कुछ मांगने की शर्त लगा कर देते हो, तो प्रेम धीरे-धीरे प्रार्थना बनने लगता है। जब तुम सिर्फ देते हो, बेशर्त, उस दिन तुम्हारा प्रेम बड़ी ऊंचाइयां लेने लगता है। और इसी प्रेम से एक दिन परमात्मा का अनुभव शुरू होता है।
तुम्हारे प्रश्न का कारण मैं जानता हूं। तुम डर रहे हो। तुम्हारे महात्माओं ने सिखाया हैः प्रेम से बचना, प्रेम बंधन है। प्रेम में फंसे कि गए। प्रेम में उलझे कि संसार में पड़े। मैं तुमसे कहना चाहता हूंः प्रेम बंधन है या मुक्ति, तुम पर निर्भर है। प्रेम अपने में न बंधन है, न मुक्ति है। प्रेम तो ऐसा समझो कि राह के बीच में पड़ा हुआ एक पत्थर है। चाहो तो इसकी वजह से रुक जाओ, और चाहो तो इस पर चढ़ जाओ, इसकी सीढ़ी बना लो। प्रेम को सीढ़ी बनाओगे तो परमात्मा में पहुंच जाओगे। और पत्थर देख कर वहीं बैठ गए रोकर कि अब क्या करना, अब तो अटक गए, तो नरक में पड़ जाओगे।
प्रेम चुनौती है। बड़ा पत्थर है, समझ चाहिए तो चढ़ पाओगे। लेकिन समझ पैदा की जा सकती है। समझ पैदा करने का ही उपाय धर्म है।
लेकिन गलत धारणाओं को सदियों-सदियों तक दोहराया गया है। तो तुम्हारे
मन में ऐसा भाव पैदा हो गया है कि प्रेम तो सांसारिक बात है। और भक्ति असांसारिक बात है, आध्यात्मिक बात है। इसलिए मेरी बातें तुम्हें कभी-कभी अड़चन की मालूम पड़ती हैं।
मैं संसार में और अध्यात्म में कोई विरोध नहीं देखता। एक तारतम्य है। अध्यात्म इसी संसार का आगे फैलाव है। सीढ़ी दर सीढ़ी। अध्यात्म इसी संसार का अंतिम शिखर है। जड़ में और फूल में तुम कोई भेद देखते हो? हालांकि भेद तो साफ है। अगर किसी वृक्ष की जड़ें तुम्हारे सामने रख दी जाएं और उसका फूल सामने रख दिया जाए, तो तुम भरोसा न कर पाओगे कि ये फूल इन जड़ों से पैदा हो सकते हैं। जड़ें तो कुरूप होती हैं, गंदी मिट्टी में दबी होती हैं--कहां फूल, कहां जड़? फूल कैसा सुंदर है, अलौकिक, जैसे उतरा हो परियों के लोक से, इस जगत का नहीं मालूम होता। और जड़ें कुरूप और भद्दी, इरछी-तिरछी, गंदी! जड़ें तो अंधेरे में रहने की आदी हैं और फूल सूरज के साथ गुफ्तगू करता है। जड़ें तो नीचे-नीचे सरकती जाती हैं पाताल की तरफ और फूल आकाश की तरफ उठता है। बड़ा भेद है दोनों में! मगर फिर भी क्या तुम्हें यह बात दिखाई नहीं पड़ती कि फूल जड़ों के बिना नहीं हो सकेगा? और अगर फूल न हो तो जड़ों के होने की कोई सार्थकता नहीं है। फूल जड़ों की ही तृप्ति है। जड़ें इसी फूल को लाने के लिए जमीन में सरक रही हैं। इसी फूल को लाने की आकांक्षा में जड़ें कुरूप हो गई हैं, अंधेरे में रह रही हैं। जमीन से रस पाना है तो जमीन के भीतर जाना पड़ेगा। मगर रस पाने की आकांक्षा इसीलिए है कि फूल पैदा हो जाए एक दिन। जड़ों का सौभाग्य जिस दिन फूल खिलता है, जड़ें सार्थक हो गईं, कृतकृत्य हो गईं। और यह फूल भी जड़ों के विपरीत नहीं हो सकता, क्योंकि जड़ों के बिना इसका क्या अस्तित्व है? जड़ों से ही रसधार पाता है, जीवन पाता है। उन्हीं जड़ों पर निर्भर है।
मैं अध्यात्म को और संसार को ऐसा ही मानता हूं, जड़ और फूल की तरह। संसार जड़ है, अध्यात्म फूल है। ये भिन्न तो बहुत मालूम होते हैं, लेकिन भीतर जुड़े हैं। प्रेम को मैं जड़ कहता हूं और प्रार्थना को फूल कहता हूं। काम को मैं जड़ कहता हूं, राम को मैं फूल कहता हूं। और दोनों के भीतर एक ही रसधार बह रही है। एक ही तारतम्य है। एक ही सिलसिला है। वह सिलसिला दिख जाए जिसको उसको मैं समझदार कहता हूं। जिसको वह सिलसिला न दिखाई पड़े, वह जड़ों से लड़ने लगेगा, फूलों को पाने की आकांक्षा में जड़ें काटने लगेगा। इधर जड़ें कटेंगी, उधर फूल कुम्हला जाएंगे। इसीलिए तुम्हारे तथाकथित भगोड़े संन्यासी परमात्मा को नहीं पा पाते हैं। जड़ें ही काट दीं तो फूल कहां? मेरी बात तुम्हें अड़चन की मालूम पड़ती है, तुम्हें समझ में भी नहीं आती है, क्योंकि इतनी बार तुम्हें पुरानी बात कही गई है, इतनी बार कही गई है कि तुम भूल ही गए कि उसमें सचाई है या नहीं!
एडोल्फ हिटलर ने अपनी आत्मकथा में लिखा है, किसी भी झूठ को दोहराते रहो, दोहराते रहो, दोहराते रहो, वह सच हो जाता है। बस दोहराते रहो, फिकर ही

मत करो कि कोई मानता है कि नहीं मानता, दोहराते रहो, और एक न एक दिन वह सच हो जाएगा। क्योंकि लोग, जो बात बहुत दिन दोहराई गई, उसी को सच मानते हैं।
तुम हिंदू हो? कैसे तुमने जाना? जन्म के साथ तुम लेकर कोई सर्टिफिकेट
न आए थे। मगर किसी ने तुम्हारे कानों में दोहराना शुरू कर दिया पैदा होते से ही कि तुम हिंदू हो। तुम जा भी नहीं सकते थे अपने बल, तुम्हें मंदिर ले जाया गया। तुम हिंदू हो, तुम मुसलमान हो, तुम सिक्ख हो, तुम ईसाई हो, यह बात दोहराई गई, दोहराई गई, दोहराई गई, यह प्राणों में उतर गई। इसके पहले कि बुद्धि पैदा होती, उसके पहले ही इस बात ने तुम्हारे भीतर जड़ें जमा लीं। अब तुम सोचते हो--मैं हिंदू हूं। अब तुम सोचते हो--मैं मुसलमान हूं। अब तुम सोचते हो--मैं हिंदुस्तानी हूं; मैं चीनी हूं; मैं जापानी हूं।

एक मित्र ने प्रश्न पूछा है। पंजाब से ही हैं वे भी। मैं थोड़ा हैरान हूं। उन्होंने पूछा है कि अगर कोई देश हमला कर दे तो आप क्या करेंगे? गुरु गोविंदसिंह ने तो तलवार उठाई थी। आप तलवार उठाएंगे? देश की रक्षा कैसे होगी?

देश होने ही नहीं चाहिए। जब तक देश हैं तब तक उपद्रव है। तब तक रक्षा करो या न करो, उपद्रव जारी रहते हैं। मेरी दृष्टि तुम्हारी समझ में नहीं आती। मैं यह कह रहा हूं--देश होने ही नहीं चाहिए! देश का होना गलत है! अब तक यह तो चलता रहा कि रक्षा करो, लड़ो, तलवार उठाओ इसके पक्ष में, उसके पक्ष में। हल क्या है? तीन हजार साल में आदमी ने पांच हजार लड़ाइयां लड़ी हैं। फल क्या है? लड़ कर भी क्या मिल गया है? तलवार उठाओ तो क्या मिलता है, तलवार न उठाओ तो क्या मिलता है? न तलवार उठाने से कुछ मिला है, न तलवार न उठाने से कुछ मिला है। आदमी वैसा का वैसा तकलीफ में है। एक सीधी बात तुम्हें दिखाई नहीं पड़ती कि ये सीमाएं समाप्त करो! ये सीमाएं उपद्रव हैं! देश होने नहीं चाहिए। सारी पृथ्वी एक है।
तुम देखते नहीं, रोज-रोज यह होता है। अभी उन्नीस सौ सैंतालीस के पहले लाहौर पर मुसीबत आती तो हम सब उत्सुक होते, रक्षा के लिए जाते--लाहौर हमारा देश था। अब अगर लाहौर पर बम गिरें तो हम बड़े खुश होंगे कि अच्छा हो रहा है! अच्छा फल मिल रहा है! अब लाहौर हमारा देश नहीं है। लाहौर वहीं का वहीं है। सिर्फ बीच में एक रेखा खिंच गई। वह रेखा भी जमीन पर नहीं खिंची है, वह रेखा भी नक्शे पर खिंचती है। आदमी नक्शे बनाता है, रेखाएं खींच लेता है, उन रेखाओं पर लड़ता है, मरता है।
नहीं, मैं तलवार नहीं उठाऊंगा। तलवार बहुत उठाई जा चुकी। मेरी तलवार किसी और बात के लिए उठी है, किसी बड़ी सूक्ष्म बात के लिए उठी है, इसलिए तलवार भी सूक्ष्म है। स्थूल तलवार मेरे हाथ में नहीं है। लेकिन बड़ी सूक्ष्म तलवार मेरे हाथ में निश्चित है। अब मैं किसी देश के पक्ष में और विपक्ष में तलवार नहीं उठाए खड़ा हूं। मैं तो लकीरों के खिलाफ तलवार उठाए खड़ा हूं। लकीरें मिटनी चाहिए। जमीन पर कोई लकीर नहीं होनी चाहिए। न कोई देश अलग होना चाहिए, न कोई जाति अलग होनी चाहिए। यह सारी पृथ्वी हमारी है, हम इसके हैं। जिस दिन दुनिया में यह संभव होगा, उसी दिन युद्ध बंद होंगे। नहीं तो लाख तुम चिल्लाओ कि युद्ध नहीं होने चाहिए, युद्ध होते ही रहेंगे। लाख तुम कहो कि हम शांति चाहते हैं। कहोगे शांति चाहते हैं, मगर तैयारी युद्ध की करोगे। अब यह देश तो अहिंसावादी है। लेकिन तैयारी क्या चलती है? कहीं अहिंसक तैयार किए जा रहे हैं? वही फौजें कवायद कर रही हैं, वही लेफ्ट-राइट चल रहा है। अणुबम बनाने की कोशिश चल रही है। गांधीजी का जयजयकार भी चल रहा है। महात्मा गांधी की पूजा चल रही है, अणुबम बनाने का उपाय भी चल रहा है। जहां अणुबम बन रहा है वहां भी महात्मा गांधी की तस्वीर टंगी होगी। उनकी सेवा में ही बन रहा है।
जब तक लकीरें हैं, तब तक कठिनाई रहेगी।
मैंने सुना है, जब हिंदुस्तान और पाकिस्तान बंटे तो सारा देश तो बंट गया, एक पागलखाना दोनों देशों की ठीक सीमा पर पड़ता था। और पागलखाने को लेने को कोई भी खास उत्सुक भी नहीं था। न इधर के नेता उत्सुक थे, न उधर के

नेता उत्सुक थे। कहीं जाए, पागलखाने से किसको लेना-देना था। लेकिन फिर भी कुछ निर्णय तो होना ही चाहिए, रेखा कहां से जाए? रेखा बिल्कुल पागलखाने के बीच से जाती थी। अधिकारियों ने कहा, यह पागलखाना कहां जाएगा? फिर यही निर्णय हुआ कि पागलों से ही पूछ लिया जाए कि तुम कहां जाना चाहते हो। पागल इकट्ठे किए गए। पागलों को बहुत समझाया गया कि तुम कहां जाना चाहते हो, तुम साफ-साफ कह दो। वे पागल कहें कि हम तो यहीं रहना चाहते हैं। अधिकारियों ने सिर पीट-पीट लिया कि तुम समझो जी। मगर होंगे पंजाबी! उन्होंने कहा, हम तो यहीं रहेंगे। सत श्री अकाल! हम तो यहीं रहेंगे। हमें जाना ही नहीं कहीं। और वे भी ठीक कह रहे थे। क्योंकि वे कहते थे--जाएं क्यों? हम पाकिस्तान क्यों जाएं? हिंदुस्तान क्यों जाएं? हम तो यहां मजे में हैं। फिर उनको समझाया अधिकारियों ने कि कोई कहीं जाएगा नहीं भाई, यह तो सिर्फ लकीर खींचने की बात है। तुम यहीं रहोगे। मगर तुम्हें पाकिस्तान में रहना है कि हिंदुस्तान में? उन्होंने कहा, यह और हद हो गई! हम तो समझते थे हम पागल हैं, अब तुम पागल मालूम पड़ते हो। अगर रहेंगे यहीं, तो फिर पाकिस्तान क्या, हिंदुस्तान क्या? जब जाना ही कहीं नहीं है तो यह जाने की बकवास क्यों?
न समझा सके पागलखाने के लोगों को। फिर यही रास्ता था कि बीच से पागलखाना दो हिस्सों में बांट दिया जाए। तो एक दीवाल उठा दी गई बीच में। तब से आधा पाकिस्तान में चला गया पागलखाना, आधा पागलखाना हिंदुस्तान में आ गया। मगर पागल अभी भी बीच की दीवाल पर कभी-कभी चढ़ जाते हैं और एक-दूसरे से बात करते हैं, और कहते हैं, भाई, बड़ी अजीब बात है, तुम भी वहीं, हम भी वहीं, मगर तुम पाकिस्तानी हो गए, हम हिंदुस्तानी हो गए! यह बड़ा... यह समस्या हल नहीं होती। जहां तुम हो, तुम वहीं हो; जहां हम हैं, हम वहीं हैं; सब वहीं के वहीं हैं, सब वैसा का वैसा है, लेकिन तुम अब हमारे न रहे, हम तुम्हारे न रहे। सिर्फ एक बीच में दीवाल खिंच गई।
जमीन से देशों की सीमाएं जानी चाहिए। धर्मों की सीमाएं जानी चाहिए। जातियों की सीमाएं जानी चाहिए। सीमाएं जानी चाहिए। मेरी तलवार भी उठी है। मगर वह सूक्ष्म तलवार है। वह तलवार सीमाओं के खिलाफ उठी है। न मैं हिंदुस्तानी हूं, न मैं पाकिस्तानी हूं; न मैं हिंदू हूं, न मैं मुसलमान हूं; न मैं जैन, न मैं बौद्ध। और मैं चाहता हूं इस दुनिया में इस तरह के लोग बढ़ते जाएं, बढ़ते जाएं, जो किसी सीमा में अपने को आबद्ध न मानते हों। इसी तरह के लोगों को मैं संन्यासी कह रहा हूं।

उन मित्र ने यह भी पूछा है कि आपके ये संन्यासी क्या करेंगे अगर देश
पर हमला हो जाए?

तुम्हें पता है, ये संन्यासी एक देश के नहीं हैं। यहां करीब-करीब सारी दुनिया से संन्यासी हैं। इनका कौन सा देश है? इनका कोई देश नहीं है। ये पहली दफा विश्व के नागरिक पैदा हो रहे हैं। ये किसी देश के पक्ष और विपक्ष में नहीं हैं।
लेकिन तुम समझ नहीं पाते, तुम्हारी जड़ता पुराने दिनों से चली आ रही है। पहले कभी किसी ने तलवार उठाई थी, तो तुम सोचते हो अभी भी तलवार से काम चलेगा। न तब काम चला, न अब काम चलने वाला है। और अब दुनिया बहुत छोटी हो गई है, अब दुनिया बहुत करीब आ गई है। अब भाईचारा फैलना चाहिए। और मैं यह नहीं कहता कि हिंदू-मुस्लिम भाई-भाई, क्योंकि वह बकवास भी कुछ काम नहीं आती। मैं कहता हूंः हिंदू भी हिंदू नहीं, मुसलमान मुसलमान नहीं; तो भाई-भाई हो सकेंगे। हिंदू-मुस्लिम भाई-भाई, हिंदू हिंदू रहे, मुसलमान मुसलमान रहे और दोनों भाई-भाई, वह भी काम नहीं चलता। वह तो वही हुआ कि वहीं के वहीं रहे, फिर जाना कहां है?
अभी तुम देखते थे न, पहले चीनी-हिंदी भाई-भाई हुआ करते थे, फिर बीच में आठ-दस साल बंद हो गया भाई-भाई, अब फिर होने लगे। अभी कल अखबार में मैंने देखा कि चीनी-हिंदी भाई-भाई! अब फिर, अब फिर झंझट खड़ी करनी है। भाईचारा तभी संभव है जब तुम अपना हिंदूपन छोड़ो, मैं अपना मुसलमानपन छोडूं, तो भाई-भाई

पैदा होते हैं। मैं मुसलमान रहूं, तुम हिंदू रहो, कैसे भाई-भाई? तुम्हारे हिंदू होने की घोषणा में, मेरे मुसलमान होने की घोषणा में भाईपन समाप्त हो गया।
यहां हम एक नई दुनिया का सपना देख रहे हैं। यह बिल्कुल बीज है। यह कब वृक्ष बनेगा, कहना कठिन है। लेकिन तुम पुरानी बातों को यहां बीच में मत लाओ। मैं यहां किसी पुरानी बात को सिद्ध करने के लिए नहीं बैठा हूं। मेरी उत्सुकता भविष्य में है, अतीत में नहीं है। और तुम मुझे न समझ पाते होओ, तो थोड़ा और समझने की कोशिश करो, और ध्यान करो, और प्रार्थना करो। मगर अपनी नासमझी के प्रश्न मेरे पास मत लाओ। उनमें समय खराब मत करो।

अब उन्हीं सज्जन ने पूछा है कि आपने यह कह दिया कि जनता पार्टी में सब असंत हैं!

मैंने तो कहा नहीं। उन्होंने सुन लिया होगा। मैं तो कुछ और ही कह रहा था। मैं तो यह कह रहा था कि संतों को इकट्ठा करके क्या कोई जनता पार्टी बनानी है? उन्होंने सुन लिया कुछ और। उन्होंने सुन लिया कि मैं यह कह रहा हूं कि जनता पार्टी में सब असंत हैं। तुम क्या सुन लेते हो!
मैं कैसे कह सकता हूं कि जनता पार्टी में सब असंत हैं! महात्मा मोरारजी देसाई असंत हो सकते हैं? और बाबा चरणसिंह असंत हो सकते हैं? बात बिल्कुल गलत है, सब महात्मा वहां हैं! अब महात्मा मोरारजी देसाई में कोई भी कमी है महात्मा होने की? परमहंस अवस्था में हैं, स्वमूत्र-पान करते हैं। स्वमूत्र-पान तो सिर्फ परमहंस ही करते हैं। यह तो आखिरी ऊंचाई है ज्ञान की।
मैंने कभी कहा नहीं कि असंत हैं कोई। लेकिन तुमने सुन लिया होगा। अब तुम पंजाबी ही नहीं हो, जनता पार्टी में भी हो, और झंझट! दुबले और दो आषाढ़! करेला और नीम चढ़ा!
थोड़ी बुद्धि को निखारो। मुझे सुनते समय जल्दी-जल्दी निष्कर्ष मत लो
और जल्दी-जल्दी सवाल भी मत खड़े करो। सोचो, विचारो। यहां कोशिश यह है कि तुम्हारे भीतर सोच-विचार का जन्म हो। तुम सोचना-विचारना ही नहीं चाहते। तुम मान लेने को आतुर हो। तुम बुद्धि को जरा सा भी श्रम नहीं देना चाहते। तुमने अपनी धारणाएं पकड़ रखी हैं, तुम उन्हीं को पकड़े रखना चाहते हो। और मैं यह भी नहीं कह रहा, अगर तुम्हें उन धारणाओं से आनंद मिल रहा हो तो मेरे भाई, यहां आए किसलिए? तुम अपनी धारणाओं में आनंद लो! तुम मस्त हो अपनी धारणा में, तो मैं कहता हूं--भगवान तुम्हें सुखी रखे।
तुम यहां आए हो, उसका अर्थ ही यही है कि तुम अपनी धारणाओं में आनंदित नहीं हो। तुम तलाश कर रहे हो। नहीं तो यहां आने की क्या जरूरत? तुम यहां आए हो, उसका मतलब ही यह है कि तुम जो अब तक मानते रहे हो उससे तृप्ति नहीं हो रही है। उससे तृप्ति भी नहीं हो रही है, लेकिन उसको छोड़ने की भी हिम्मत नहीं कर पाते हो। सोचने का भी साहस नहीं कर पाते हो। तो फिर क्या होगा? अगर तुम ठीक ही हो तो मैं नहीं कहता कि तुम बदलो। मैं कौन हूं जो तुम्हें बदलूं? तुम्हीं निर्णायक हो। अगर तुम्हें लगता है कि मैं बिल्कुल ठीक हूं, तो बात खतम हो गई, तुम मेरे जैसे आदमियों के पास आओ ही मत। क्योंकि यहां उनको आना चाहिए जो बदलना चाहते हैं। तुम प्रसन्न हो, हम प्रसन्न तुम्हारी प्रसन्नता में। तुम अपने मस्त रहो अपनी मस्ती में। तुम उठाओ अपनी तलवार और अभ्यास करो। तुम्हें जो करना हो करो। यहां क्यों आए हो? इतना कष्ट क्यों किया? इतनी कृपा नहीं करनी चाहिए! अगर यहां आए हो तो उसका अर्थ ही यह है कि तुम्हारी धारणाएं कहीं तुम्हारे जीवन को रूपांतरित नहीं कर रही हैं। तुम जीवन को जैसा चाहो वैसा नहीं बना पा रही हैं। तुम्हारे जीवन में कहीं कोई कमी रह गई है। अगर कमी रह गई है तो फिर मेरी सहायता ले सकते हो।
फिर भी मैं यह नहीं कहता हूं कि जो मैं कहूं उसे मान ही लो। इतना ही कहता हूं--उस पर सोचो, विचारो, ध्यान करो। अगर तुम उस पर सोचोगे, विचारोगे, ध्यान करोगे और तुमने यह भी पाया कि जो मैंने कहा था वह गलत था, तो भी काम

हो गया। इतना सोचा, विचारा, ध्यान किया, वही असली काम है। असली सवाल यह नहीं है कि तुम मेरी बातें मान लो, असली सवाल यह है कि तुम्हारी बुद्धि की धारा प्रवाहित हो जाए।
इस भेद को ख्याल में लेना। जो मैं तुमसे कह रहा हूं वह तो केवल एक उपाय
है ताकि तुम्हारे भीतर अवरुद्ध चिंतन मुक्त हो जाए। इसलिए बहुत बार तुम पर चोट भी करता हूं। उस चोट का केवल इतना ही कारण है कि उसी चोट में शायद तुम आंख खोलो। उसी चोट में शायद तुम थोड़े जागो। वह चोट, तुम मेरे दुश्मन हो, इसलिए नहीं कर रहा हूं। मेरा कोई दुश्मन नहीं है। वह चोट इसलिए भी नहीं कर रहा हूं कि मैं कोई किसी धारणा के विपरीत लड़ रहा हूं। उस चोट का मौलिक आधार सिर्फ इतना ही है कि तुम्हारी अवरुद्ध हो गई है चिंतन की धारा, तुमने सोच-विचार बंद कर दिया है। तुम उधार स्वीकार में पड़ गए हो। अगर तुमने मेरी भी बातें बिना सोचे-विचारे मान लीं तो कोई फायदा न हुआ मेरे पास आने का। क्योंकि उसका मतलब हुआ तुम फिर उधार के उधार रहे।
यहां तीन तरह के लोग मेरे पास आते हैं। एक, जो अपनी धारणाएं छोड़ते ही नहीं। वे खाली के खाली जाते हैं। दूसरे, जो अपनी धारणा बिल्कुल एक क्षण में छोड़ देते हैं और जल्दी से मेरी बातें पकड़ लेते हैं। वे भी खाली के खाली जाते हैं। जो मुझसे राजी हो जाते हैं बिना झंझट किए, वे भी खाली जाते हैं। और जो मुझसे नाराज ही रहते हैं, बिना सोचे-समझे, वे भी खाली जाते हैं। तीसरे तरह का व्यक्ति मेरे पास आकर भरता है। वह सोच-विचार करता है कि जो मैंने कहा उसकी कितनी दूर तक महत्ता हो सकती है। वह अपनी धारणाओं को फिर पुनर्परीक्षण करता है, फिर उघाड़ता है अपने हृदय को, फिर खोजता है। और ईमानदारी से खोजता है। कोई पक्षपात नहीं करता कि मेरी पुरानी धारणा है इसलिए मैं कैसे छोडूं! न तो पुराने के कारण पक्षपात करता है, न नये को जल्दी मान लेने की अधीरता दिखाता है। शांति से सोचता-विचारता है। बस मेरा काम पूरा हो गया। तुमने मेरी बात मानी कि नहीं मानी, यह सवाल ही नहीं है। तुमने सोचा, विचारा, तुमने ध्यान किया, तुम्हारे भीतर अवरुद्ध चिंतन मुक्त हो गया, तुम्हारी गंगा फिर सागर की तरफ बहने लगी। तुम मेरी मानो न मानो, इसमें कुछ रखा नहीं है। मुझे तुम्हें मनाने में कोई रस ही नहीं है। लेकिन तुम जाग जाओ, इसमें जरूर रस है। फिर जाग कर तुम्हें जो ठीक लगे, करना।
सोए-सोए जी लिए हो, अब जाग कर जीओ। जाग कर चलो। और मैं जानता हूं कि जागा हुआ आदमी हिंदू नहीं हो सकता, मुसलमान नहीं हो सकता, भारतीय नहीं हो सकता, अमरीकी नहीं हो सकता। जागा हुआ आदमी सिर्फ आदमी होता है, चैतन्य होता है। और जागा हुआ आदमी सब तरफ एक ही परमात्मा का आवास देखता है-- ब्राह्मण नहीं हो सकता, शूद्र नहीं हो सकता। जागा हुआ आदमी धीरे-धीरे अनुभव करता हैः एक का ही खेल हो रहा है, एक का ही विस्तार है; उस एक के विस्तार में लीन हो जाता है। उसे परम आनंद, परम अमृत का अनुभव होता है। मैं तुम्हें द्वार खोल रहा हूं। तुम उस द्वार में झांको।
लेकिन तुम्हारी धारणाएं तुम्हें झांकने नहीं देतीं। तुम कहते होः मैं कैसे झांक सकता हूं? मैं तो यह माने पहले से बैठा हूं।
अगर तुम्हारे मानने से तुम्हारे जीवन में रस बह रहा है, तो बिल्कुल ठीक है। फिर मेरी बातें सुनना ही मत, क्योंकि इनसे और व्याघात हो जाए! फिर ऐसे लोगों के पास मत जाना।
लेकिन तुम आए हो, यह इस बात का सबूत है कि तुम जो मानते रहे हो, उससे तुम्हारी क्षुधा नहीं मिट रही है। तुमने जो पकड़ रखा है, उससे तुम्हारे जीवन की संपदा नहीं बढ़ी है। इसलिए तुम टटोल रहे हो कि कहीं असली धन मिल जाए। और मैं तुमसे कहता हूंः असली धन मिल सकता है। लेकिन हाथ खाली तो करो। असली धन झेलने के लिए हाथ के कंकड़-पत्थर तो छोड़ो। अगर तुम कहते हो कि ये कंकड़-पत्थर नहीं हैं, हीरे हैं, तो मैं कहता भी नहीं कि छोड़ो। क्योंकि मैं कौन हूं? तुम्हारा नियंत्रण मैं अपने हाथ में नहीं लेना चाहता। जो मेरे संन्यासी हैं, उनका भी नियंत्रण मेरे हाथ में नहीं है। मेरे संन्यासी होने का इतना ही अर्थ है कि उन्होंने अब अपने जीवन को स्वयं जीना शुरू कर दिया है। मैंने उन्हें कुछ आज्ञा नहीं दी है कि तुम यह करो, यह मत करो; ऐसे

उठो, वैसे बैठो; यह खाओ, वह पीओ; यहां जाओ, वहां मत जाओ; मैंने कुछ नहीं उनसे कहा है। मैंने उन्हें कोई अनुशासन दिया ही नहीं है। मैंने उन्हें सिर्फ चिंतन की एक दिशा दी है, ध्यान का एक भाव दिया है। फिर अपना जीवन तुम निर्णय करो।
और सभी बातें सभी के लिए योग्य होतीं भी नहीं। किसी आदमी को तीन बजे रात जग जाना ठीक मालूम पड़ता है, वह दिन भर ज्यादा ताजा रहता है, तो उसके लिए बिल्कुल ठीक है। एक दूसरा आदमी तीन बजे रात जग जाता है, वह दिन भर उदास रहता है और दिन भर जम्हाई लेता है, उसके लिए बिल्कुल गलत है। इसलिए मैं कोई नियम देता भी नहीं। किसी आदमी को एक भोजन स्वास्थ्यकर होता है, किसी को दूसरा भोजन स्वास्थ्यकर होता है। इसलिए मैं कैसे निर्णय करूं कि तुम क्या भोजन करो? इतना ही मैं कह सकता हूं, अपने सुख की परीक्षा करते रहो कि यह भोजन करने से मेरी शांति, मेरा सुख, मेरा स्वास्थ्य बढ़ता है? तो यह ठीक है। इतने बजे उठ आने से सुबह मेरा दिन ताजगी में और आनंद में बीतता है, प्रभु का स्मरण सरल होता है? तो ठीक है। नहीं तो अड़चन खड़ी हो जाती है।
अगर मैंने बता दिया कि तीन बजे रात सभी को उठना है ब्रह्ममुहूर्त में,
तो बहुत लोग दिक्कत में पड़ जाएंगे। कुछ लोग, जिनको तीन बजे नींद खुल जाती है, बड़े आनंदित होंगे। वे कहेंगे कि देखो, हम हैं असली संन्यासी! तुम अभी सात बजे तक सो रहे हो? और गुरु ने क्या कहा? तो वे सात बजे सोने वाले को पापी करार दे देंगे। वह सात बजे सोने वाला अपराधी समझने लगेगा, वह सोचेगा, मुझे नरक जाना पड़ेगा।
हद हो गई! कहीं कोई सात बजे तक सोने से नरक जाता है?
मेरे संन्यासी मुझसे पूछते हैंः हम कब उठें? तो मैं कहता हूं, जब तुम उठो तब ब्रह्ममुहूर्त। सात बजे उठो तो वह तुम्हारा ब्रह्ममुहूर्त। तीन बजे उठो तो वह तुम्हारा ब्रह्ममुहूर्त। ब्रह्ममुहूर्त, जब तुम जगो तब। जब तुम्हारे भीतर ब्रह्म जगने को कहे, जग जाना। जब तक तुम्हारा ब्रह्म कहे कि अभी और थोड़े पड़े रहो, एक करवट और सही, तो तुम ब्रह्म की सुनना, मेरी मत सुनना। मैं बीच में बाधा नहीं डालना चाहता। मैं तुम्हें अनुशासन नहीं देता हूं, स्वतंत्रता देता हूं।
इसलिए मेरी बातों को सुनो, समझो, मानने की कोई आवश्यकता नहीं है। इसलिए न मानने की कोई जल्दी भी न करो। साक्षीभाव से; कुछ काम का मिल जाए, ले लेना; कुछ काम का न मिले, मत लेना। लेकिन इस तरह के व्यर्थ प्रश्न मत उठाओ। इसमें समय मत गंवाओ। क्योंकि समय, तुम चाहो सार्थक प्रश्न पूछ लो और तुम चाहो व्यर्थ प्रश्न पूछ लो। फिर एक आदमी व्यर्थ सवाल पूछ लेता है, इतने सारे लोगों का सब समय खराब होता है। इसलिए इन सबके प्रति भी थोड़ी करुणा रखो, ध्यान रखो।
आज इतना ही।

अथातो भक्ति जिज्ञासा, भाग 2 सत्ताईसवां प्रवचन

विराट से मैत्री है भक्ति

सूत्र

तद्यजिः पूजायामितरेषां नैवम्।। 66।।
पादोदकं तु पाद्यमव्याप्तेः।। 67।।
स्वयमर्पितं ग्राह्यमविशेषात्।। 68।।
निमित्तगुणानपेक्षणादपराधेषु व्यवस्था।। 69।।
पत्रोदेर्दानमन्यथा हि वैशिष्ट्यम्।। 70।।

कहां सबल तुम, कहां निर्बल मैं, प्यारे, मैं दोनों का ज्ञाता।

तप, संयम, साधन करने का
मुझको कम अभ्यास नहीं है,
पर इनकी सर्वत्र सफलता
पर मुझको विश्वास नहीं है,
धन्य पराजय मेरी जिसने
बचा लिया दंभी होने से,
कहां सबल तुम, कहां निर्बल मैं, प्यारे, मैं दोनों का ज्ञाता।

जो न कहीं भी जीते, ऐसों
में भी मेरा नाम नहीं है,
मुझे उड़ा ले जाना नभ के
हरझोंके का काम नहीं है,
पर तुम अपनी मुस्कानों में
सौ तूफान लिए आते हो,
कहीं, किधर को भी ले जाओ, सहसा मेरा पर खुल जाता।
कहां सबल तुम, कहां निर्बल मैं, प्यारे, मैं दोनों का ज्ञाता। वज्र बनाई छाती मैंने
चोट करे घन तो शरमाए,
भीतर-भीतर जान रहा हूं
जहां कुसुम लेकर तुम आए,
और दिया रख उसके ऊपर
टूक-टूक हो बिखर पड़ेगी,
प्रात पवन के छूने पर ज्यों फूल खिला भू पर झड़ जाता।
कहां सबल तुम, कहां निर्बल मैं, प्यारे, मैं दोनों का ज्ञाता।

भक्ति का आविर्भाव है मनुष्य की निर्बलता में। भक्ति का आविर्भाव है मनुष्य की असहाय अवस्था में, मनुष्य की दीनता में। मनुष्य एक छोटा सा अंश है इस विराट का। संघर्ष करके जीतना भी चाहो तो न जीत सकोगे। जिससे संघर्ष करना है, वह विराट है। जो संघर्ष करने चला है, बूंद से ज्यादा उसकी सामर्थ्य नहीं। हार सुनिश्चित है। जो जीतने चलेगा, हारेगा। भक्ति का शास्त्र इस सूत्र को गहराई से पकड़ लेता है--जो जीतने चलेगा, वह हारेगा। और इसे रूपांतरित कर देता है। भक्ति कहती हैः हारने चलो और जीतोगे। क्योंकि देखा हमने--जो जीतने चला, हारा। तुम गणित को उलटा कर दो। जो हारा, सो जीता। जो झुका, वही बचा। जो मिटा, वही बचा।
धन्य पराजय मेरी जिसने
बचा लिया दंभी होने से,
मनुष्य लड़ना चाहता है। अगर कोई और न मिले लड़ने को तो अपने से ही लड़ने लगता है, लेकिन बिना लड़े मनुष्य को चैन नहीं। और जब तक तुम लड़ोगे, तब तक

भक्त न हो सकोगे। जब तक तुम लड़ोगे, तब तक तुम विभक्त रहोगे, विभाजित रहोगे, खंडों में बंटे रहोगे।
अखंड के साथ एक छंद में बंध जाना है। विराट में लीन हो जाना है। विराट
से मैत्री है भक्ति, विराट से प्रेम है भक्ति। लड़ने के बहुत उपाय हैं--सीधे स्थूल उपाय हैं, सूक्ष्म बारीक उपाय हैं। विज्ञान सीधे ही लड़ने चल पड़ता है। विज्ञान की भाषा सीधी-साफ है, लड़ाई की भाषा है। प्रकृति पर विजय पानी है। जैसे कि हम प्रकृति से अलग हैं! हम ही तो प्रकृति हैं। विजय कौन पाएगा? किस पर पाएगा? यहां विजित होने को, विजेता होने को दो कहां हैं? यहां एक का ही विस्तार है। यहां बाहर भी वही है, भीतर भी वही है। लेकिन विज्ञान स्थूल भाषा बोलता है। कम से कम ईमानदार भाषा बोलता है।
धार्मिक कर्मकांड और भी ज्यादा चालाक हैं। वे लड़ते भी हैं और दिखलाते हैं ऊपर-ऊपर से जैसे लड़ते नहीं। तुम यज्ञ करते, हवन करते, तप करते, व्रत करते--कोई नहीं कहेगा कि तुम लड़ रहे हो। लेकिन गौर से देखो, तुम लड़ रहे हो। जब तुम व्रत करते हो तब तुम क्या कह रहे हो? तुम यह कह रहे हो--सिद्ध कर दूंगा कि मैं तुझे पाने के योग्य हूं! कि अपने अधिकार की घोषणा कर रहा हूं! कि देखो मैंने कितने उपवास किए, कितने व्रत किए, कितना प्राणायाम, कितना योग, कितने आसन साधे! कितनी कृच्छ साधना की मैंने! अब और क्या चाहिए? मूल्य तो सब मैंने चुका दिया है। अब और क्या पात्रता की कमी है?
लेकिन यज्ञ हो, व्रत हो, हवन हो, पूजा-पाठ हो, अगर तुम्हारी वृत्ति अपने को सिद्ध करने की है, तो चूकोगे। अगर तुम दावेदार हो, तो चूकोगे। तुम जो कर रहे हो, अगर मिटने की कला हो, तो जरूर पा लोगे। लेकिन अगर पाने चले हो, तो तुम्हारी चूक सुनिश्चित है। इसे प्रथम चरण में ही साफ-साफ समझ लेना--यह चरण किसलिए उठाया है? जीतने चले हो परमात्मा को, प्रकृति को? या परमात्मा और प्रकृति से हारने चले हो?
आज के सूत्र बहुमूल्य हैं। पहला सूत्र--
तद्यजिः पूजायाम इतरेषां न एवम्।
"भगवत्-पूजा के बिना और प्रकार के अनुष्ठान को यजन कहा है।"
उसे भजन नहीं कहा है। यजन का अर्थ हैः यत्न, प्रयत्न, प्रयास। भजन का अर्थ हैः प्रसाद। यजन का अर्थ हैः छीना-झपटी। तुम परमात्मा से छीनने चले हो। तुमने आयोजन किया है। तुम कहते होः देखें, कैसे तू बचेगा? तुम कहते होः हमने धन भी पा लिया, हमने पद भी पा लिया, अब हम तुझे भी पाकर रहेंगे। तुम परमात्मा को भी मुट्ठी में करने चले हो तो यजन। यजन सुंदर शब्द नहीं है। भजन अदभुत शब्द है। यजन भजन के ठीक विपरीत शब्द है। यजन का अर्थ हैः विधि-विधान, पद्धतियां, जिनके द्वारा हम परमात्मा को अपनी मुट्ठी में कर लेंगे। भजन का अर्थ हैः विश्राम; जिसके द्वारा हम परमात्मा की मुट्ठी में हो जाएंगे। इस भेद को खूब समझ लेना, क्योंकि इस भेद पर सारी यात्रा निर्भर है।
शांडिल्य ठीक कहते हैंः भगवत्-पूजा के बिना और सब यजन है।
स्वर्ग पाना चाहते हो, तो तुम जो कर रहे हो वह यजन है। परलोक में सुख पाना चाहते हो, तो तुम जो कर रहे हो वह यजन है। तुम जब तक कुछ पाना चाहते हो, तब तक तुम जो कर रहे हो वह यजन है। यजन निंदा का शब्द है भक्तों की दुनिया में। तुम जिस दिन अकाम होकर प्रेम में तल्लीन हुए हो, निष्काम होकर रस में डूबे हो, कुछ पाने को नहीं है, कहीं जाने को नहीं है, कोई गंतव्य नहीं है, तुम हलके हो, निर्भार हो, शांत और आनंदित हो, जैसा परमात्मा ने तुम्हें बनाया है, इस क्षण तुम जैसे हो उससे राजी हो, परम संतुष्ट हो, उस संतोष से जो राग उठता है, उस संतोष से जो गंध उठती है, वह भजन है। तुम डोलने लगते आनंद में, जितना दिया है परमात्मा ने वह इतना ज्यादा है कि पहले उसका अनुग्रह तो कर लो।
मांगने वाला कहता हैः जो दिया है वह काफी नहीं है। मांगने वाले के मन में शिकायत है। मांगने वाला नाराज है। मांगने वाला कह रहा है कि मेरे साथ अन्याय हुआ है। मांगने वाला परमात्मा को दोषी करार दे रहा है, कि तूने यह कैसी दुनिया बनाई? कि तूने यह मुझे कैसा बनाया? ऐसा होना था, ऐसा होना था, और तूने यह क्या कर दिया! इतने दुख, इतने कांटे, इतना अंधेरा, इतना भटकाव!

तू दयावान नहीं है। और तूने हमें बिना तैयारी के जगत में भेज दिया, पाथेय भी नहीं दिया। रास्ते का इंतजाम भी नहीं जुटाया। कलेवे तक का आयोजन नहीं किया है। दे दिया है धक्का अंधेरे में। तू कैसा पिता है? चाहे तुम साफ कहो या न कहो, लेकिन जब भी तुम मांगते हो, तब तुम अनुग्रह के विपरीत जा रहे हो। अनुग्रह का अर्थ होता हैः जो तूने दिया है वह इतना ज्यादा है! मेरी कोई पात्रता नहीं थी और तूने इतना दिया! जीवन दिया, आंखें दीं, जगत का सौंदर्य दिया, सूरज-चांद-तारे दिए, इतने प्यारे लोग दिए, इतना रसविमुग्ध लोक दिया। मैं नहीं था, मुझे है किया। मैं शून्य था, मुझमें प्राण फूंके; मुझमें सांसें डालीं, मेरे हृदय में धड़कन दी। और हृदय में धड़कन ही न दी, प्रेम के अपूर्व स्रोत दिए। चैतन्य दिया। जागृति की क्षमता दी; ध्यान का बीज डाला; समाधि का उपाय किया। और क्या चाहिए? सब जो चाहिए, मिला है, ऐसे भाव से जो उठता है, भजन। जो मिला है वह कम है और मेरी पात्रता उससे ज्यादा है, ऐसे भाव से जो किया जाता है, वह यजन। यजन से बचना। यजन में प्रेम नहीं है। भजन प्रेम है, शुद्ध प्रेम है।
खुशी जो आरजी शै है न मैं कभी लूंगी
जो हो सका तो बस एक सोजे-दायमी लूंगी
जिगर में दर्द, रगों में टीस, आंखों में अश्क
तेरी खुशी है तो मैं इस तरह भी जी लूंगी
निहां है खूने-जिगर में ही गर हयाते-दवाम
तो मुस्कुरा के मैं खूने-जिगर भी पी लूंगी रमूजे-दिल को छिपाने के वास्ते ऐ दोस्त!
तेरी कसम है कि मैं अपने ओंठ सी लूंगी
दलीले-राहे-मोहब्बत खिरद तो बन न सकी
जुनूने-शौक से अब दर्से-रहबरी लूंगी

समझना!
दलीले-राहे-मोहब्बत खिरद तो बन न सकी
जो बुद्धि है, यह तो मार्गदर्शक नहीं बन सकी। बुद्धि मार्गदर्शक बन
ही नहीं सकती। बुद्धि से जो पैदा होता है वह यजन है। विधि-विधान, मंत्र-यंत्र, यज्ञ-हवन, व्यवस्था, जिसके द्वारा हम परमात्मा को फांस लेंगे। व्यवस्था, जैसे कि कोई मछली को फांसने के लिए जाल बनाता है। जैसे मछुआ जाल फेंकता है, ऐसा यजन है। बुद्धि यजन कर सकती है। बुद्धि कहती है, ऐसा करो, ऐसा करो, ऐसा करो। बुद्धि गणित दे सकती है। गणित में परमात्मा नहीं आता। विचार में परमात्मा नहीं आता। विचार का जाल उसे न पकड़ पाएगा। उसे तो सिर्फ प्रेम का जाल ही पकड़ पाता है। और मजा यह है कि प्रेम का जाल पकड़ना ही नहीं चाहता। प्रेम का जाल पकड़ा जाना चाहता है। यह ऐसा खेल है, मछुआ तो जाल फेंकता है मछली पकड़ने को, भक्त परमात्मा को पुकारता है कि जाल फेंको और मुझे फांस लो। मैं फंसने को राजी हूं। मैं प्रतीक्षा में हूं कि कब तुम्हारा जाल आए और मुझे फांस ले।
दलीले-राहे-मोहब्बत खिरद तो बन न सकी
प्रेम के रास्ते पर, भक्ति के रास्ते पर बुद्धि तो मार्गदर्शक हो नहीं सकती, न हो सकी कभी।
जुनूने-शौक से अब दर्से-रहबरी लूंगी
अब तो पागलपन से--जुनूने-शौक से--मार्गदर्शन पूछना होगा।
यजन बड़ा बुद्धिपूर्वक है। भजन पागलपन है। पंडित यजन में पड़ जाता है, प्रेमी भजन करता है। ये जो देश भर में यज्ञ होते रहते हैं, ये सब यजन हैं।
ये सब आदमी की बुद्धिमानी से निकल रहे हैं। ये आदमी के हृदय से आविर्भूत नहीं हैं।
शांडिल्य कहते हैंः एक ही बात ख्याल रखना, भगवत्-पूजा। पूजायाम इतरेषां। एक ही बात याद रखना, भगवत्-प्रेम।
और प्रेम के अपने अनूठे मार्ग हैं। प्रेम व्यवस्था से नहीं चलता।
प्रेम स्वस्फुरणा से चलता है।

मुल्ला नसरुद्दीन एक स्त्री के प्रेम में था। और उसने बहुत पत्र लिखे, जैसे प्रेमी लिखते हैं। और बड़े सुंदर पत्र लिखे। उन पत्रों में बड़ा काव्य था, बड़ा संगीत था, बड़ा सौंदर्य था। फिर प्रेम टूट गया। तो वह प्रेमिका के पास गया और उसने कहा कि कम से कम मेरे पत्र तो लौटा दो।
उसकी प्रेमिका ने कहा, यह भी हद हो गई! पत्रों का तुम क्या करोगे?
मुल्ला ने कहा, अब तुमसे क्या छिपाना! एक पंडित से लिखवाए थे, पैसे देने पड़े हैं। और फिर अभी मेरी जिंदगी और बाकी है, फिर किसी के प्रेम में पडूंगा ही न, पत्र काम आ जाएंगे। तुम इनको रख कर भी क्या करोगी?
बुद्धि ऐसे ही उपाय खोज लेती है। तुम जब किसी पंडित को बुला कर कहते हो, तनख्वाह दे देंगे, हमारे घर पूजा कर जाना, तो तुम क्या कर रहे हो? तुम प्रेम-पत्र किसी और से लिखवा रहे हो। तुम परमात्मा को भी प्रेम-पत्र अपना नहीं लिख सकते! टूटी-फूटी भाषा सही, भाव होने चाहिए। इस पंडित को कैसे भाव हो सकते हैं? जिस आदमी ने मुल्ला नसरुद्दीन के लिए प्रेम-पत्र लिखे, इसके प्रेम-पत्र कैसे होंगे? न इसने इसकी प्रेयसी देखी, न इसकी प्रेयसी से इसे कोई प्रेम है, न कुछ लेना-देना है। ये कोरे होंगे, इनके भीतर हृदय कहीं भी नाचेगा नहीं। शब्दों का जमाव होगा, शब्द ही शब्द होंगे, राख की तरह, इनके भीतर अंगारा होगा ही नहीं। हृदय हो तो अंगारा दहकता है।
लेकिन तुम जब पुजारी को रख लेते हो अपने घर में पूजा के लिए और वह आकर रोज घंटी बजा कर घड़ी भर को पूजा कर जाता है, अपनी नौकरी निबटा जाता है--उसे क्या मतलब है परमात्मा से? उसे नौकरी से प्रयोजन है। कल अगर उसे कोई ज्यादा पैसे देने को तैयार होगा तो वह वहां नौकरी करने चला जाएगा। तुम जिस दिन उसे तनख्वाह न दोगे उसी दिन पूजा बंद कर देगा। उसे परमात्मा से कुछ लेना-देना नहीं है। और तुम्हें भी क्या परमात्मा से लेना-देना है? अन्यथा तुम बीच में इस बिचवइए को लेते! तब तुम रो लेते, अपनी टूटी-फूटी भाषा बोल लेते। कुछ वेद दोहराने की जरूरत नहीं है, न ही उपनिषद कंठस्थ होने चाहिए, न कुरान याद करने की कोई जरूरत है। तुम्हें जबान दी है, तुम्हें हृदय दिया है, तुम्हें भाव दिए हैं, अपना गीत खुद बना लो, अपनी प्रार्थना खुद रच लो। रचने की भी क्या जरूरत है? क्योंकि परमात्मा तुम्हारे भाव पहचानता है, तुम्हारी भाषा से कुछ लेना-देना नहीं है। उस तक भाषा पहुंचती ही नहीं। नहीं तो भाषाएं तो कितनी हैं! जमीन पर कोई पांच हजार भाषाएं हैं। और यह जमीन कोई अकेली जमीन है, ऐसा नहीं। वैज्ञानिक कहते हैं, कम से कम पचास हजार जमीनों पर जीवन है। वह भी कम से कम। इतने पर तो होना ही चाहिए। ज्यादा पर भी हो सकता है। इस छोटी सी जमीन पर पांच हजार भाषाएं हैं। पचास हजार जमीनों पर कितनी भाषाएं होंगी? तुम्हारी सबकी भाषाएं समझते-समझते परमात्मा पागल नहीं हो जाएगा?
भाव समझा जाता है, भाषा नहीं समझी जाती।
मैं एक बार अपने एक मित्र के साथ बाजार गया। ऐसे बाजार जाने में मुझे कभी रस नहीं रहा। कभी कुछ खरीदने बाजार नहीं गया। वे मित्र जा रहे थे, उन्होंने कहा, कभी तो चलो, तो मैं उनके साथ हो लिया, उनके घर मेहमान था। वे सब्जियां खरीदने लगे। छोटा गांव, तो दुकानदारों से पूछने लगे--इसका भाव क्या है? भाव शब्द सुन कर मुझे बहुत रस आया। मैंने उनसे पूछा कि गजब की बात पूछ रहे हो! दाम पूछने चाहिए, तुम भाव पूछ रहे हो! उन्होंने कहा कि इसमें फर्क है कुछ? मैंने कहा, फर्क तो भारी हो गया। भाव ही पूछा जाना चाहिए असल में। दाम तो ऊपर-ऊपर है, कीमत तो ऊपर-ऊपर है, भाव भीतर है।
परमात्मा तुमसे यह नहीं पूछेगा--तुमने कैसे प्रार्थना की? कितनी कीमती प्रार्थना की? कितने कीमती शब्दों का उपयोग किया? यही पूछेगा--क्या भाव? तुम्हारा भाव क्या है? लेकिन तुमने शायद भाव वाली प्रार्थना की ही नहीं कभी। तुम जब गए, मांगने गए हो। तुम्हारी सारी प्रार्थनाएं सकाम हैं। कभी कहते हो, बेटा नहीं पैदा हुआ तो बेटा पैदा हो जाए; कभी कहते हो, बेटा पैदा हो गया तो उसकी नौकरी नहीं लगी, नौकरी लग जाए; कभी कहते हो, पत्नी बीमार है; कभी कहते हो कुछ, कभी कुछ। तुम जब जाते हो तब क्षुद्र की मांग लेकर जाते हो। उस विराट के सामने तुम क्षुद्र की मांग लेकर खड़े होते हो। अपमानजनक है यह। ऐसे यजन छोड़ो। उसके सामने तो आंसुओं से भरी हुई आंखें ले

जाओ। उसके सामने तो झुक जाओ भाव में। उसके सामने तो चुप हो जाओ तो चलेगा, बोलने की इतनी कोई आवश्यकता नहीं है। बोल अपने से आता हो तो ठीक, मगर उधार न हो।
मैं तुम्हें ऐसी ही प्रार्थना सिखाना चाहता हूं जो तुम्हारे भीतर जन्मती हो, जो तुम्हारा फूल हो। झुक जाना, अगर कोई भाव उठे तो कह देना, मगर पहले से सोच कर भी मत जाना, अन्यथा झूठ हो जाएगा। परमात्मा के सामने तुम अभिनय मत करना। अभिनय का रिहर्सल होता है, पहले से आदमी तैयारी करता है-- क्या कहूंगा, क्या नहीं कहूंगा, सब बिठा लेता है, जमा लेता है। उसी में तो सब झूठ हो जाता है। तुम सब तय करके गए कि ऐसा-ऐसा कहूंगा, फिर तुमने वही-वही कह दिया। यह तो झूठ हो गया। उस क्षण की भाव-अभिव्यंजना न रही। बासा हो गया। तुम पहले ही इसे कह चुके थे अपने सामने। अब जाकर इसे तुमने दोहराया। यह तो ग्रामोफोन का रेकार्ड हो गया। तुम्हारी स्मृति ने दोहरा-दोहरा कर भर लिया था अपने भीतर, जाकर उगल दिया। यह तो एक तरह का वमन हुआ। परमात्मा के सामने झुको, और कोई भाव उठता हो तो उठने दो, न उठता हो तो न उठने दो--उठाने की कोई जरूरत नहीं है। वह तुम्हारे मौन को समझेगा। टूटे-फूटे शब्द आते हों, आने दो, शब्दों के पीछे छिपे हुए तुम्हारे हृदय की धड़कन को समझेगा। वही समझा जाता है, भाव ही समझा जाता है।
मैंने उन मित्र से लौट कर कहा कि आप साग-सब्जी ले आए, मैं भी कुछ ले आया हूं। मुझे यह भाव शब्द बहुत रुच गया। तुम जो पूछने लगे दुकानदारों से-- क्या भाव है? न तुम्हें ख्याल था, न दुकानदार को ख्याल था कि तुम क्या पूछ रहे हो, लेकिन यह शब्द प्यारा है।
तुम मंदिर जाते हो, क्या भाव है? कुछ मांगने जा रहे हो तो यजन। कुछ चढ़ाने जा रहे हो तो भजन। कुछ देने जा रहे हो तो भजन, कुछ लेने जा रहे हो तो यजन। जहां तुम लेने जाते हो वह बाजार और जहां तुम देने जाते हो वह मंदिर। "भगवत्-पूजा के बिना और प्रकार के अनुष्ठान को यजन कहते हैं।"
केवल भगवत्-पूजा ही मुक्ति का उपाय है, शांडिल्य कहते हैं। उसके सिवाय जो नाना प्रकार के यज्ञ, व्रत और सकाम पूजा आदि हैं, वे सब बंधन के कारण हैं। फिर बंधन स्वर्ण के भी हों तो क्या? लोहे की जंजीरें हों कि सोने की जंजीरें, सब बराबर हैं। तुमने जंजीरें बाजार में ढालीं कि मंदिर में ढालीं, इससे कुछ फर्क नहीं पड़ता। इच्छा मात्र जंजीर बन जाती है। वासना मात्र बंधन बन जाती है। तुमने कुछ भी मांगा--वैकुंठ मांगा, स्वर्ग मांगा, और भूल हो गई।
प्रेमी कुछ मांगता नहीं। प्रेमी कहता है, मुझे स्वीकार कर लो, मुझे ले लो, मुझे अपना कर लो, मुझे अपना लो, मुझे मिटा दो मेरी तरह, तुम ही तुम फैल जाओ मेरे ऊपर, तुम्हारा ही रंग मेरा रंग हो।
एक मित्र ने कल प्रश्न पूछा था कि संन्यास का क्या अर्थ है? और संन्यास में गैरिक वस्त्र पहनने क्यों अनिवार्य हैं?
संन्यास का अर्थ होता हैः तुमने अपना रंग छोड़ा; गुरु जो रंग पकड़ा दे, पकड़ा। यह तो प्रतीक है, गैरिक तो प्रतीक है। गैरिक रंग में कुछ नहीं रखा है, असली भीतर एक भाव छिपा है, वह यह कि अब गुरु जो रंग देगा उसी रंग में रहूंगा। यह तो शुरुआत है, कपड़े रंगने से तो शुरुआत है। आत्मा को रंगना है। अगर तुम कपड़ा रंगने से ही डर गए और कपड़ा रंगने की भी हिम्मत न दिखाई, तो और आगे कैसे बढ़ोगे? कपड़ा रंगने से कुछ होने वाला नहीं है। लेकिन कपड़ा रंगना तो केवल सूचक है, प्रतीक है, तुम्हारी तरफ से एक इशारा है कि मैं राजी हूं, रंगो मुझे। उंडेल दो अपना रंग मेरे ऊपर, मैं झेलूंगा। मैं भागूंगा नहीं, मैं तुम्हारे प्रति खुला हूं।
फिर इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि कौन सा रंग गुरु दे दे। बुद्ध ने पीला रंग दिया अपने भिक्षुओं को, चलेगा। जैनों ने सफेद रंग पसंद किया, चलेगा। सूफी हरा रंग पसंद करते हैं, चलेगा। रंग का इतना बड़ा सवाल नहीं है, सब रंग उसके हैं। मगर शिष्य यह कहता है कि अब मैं तुम्हारे रंग में रंगने को राजी हूं, तुम्हारी जो मर्जी हो। तुम मुझे पागल होने को कहोगे तो मैं पागल होने को राजी हूं।
तुमने पूछा हैः क्या कपड़े का रंगना अनिवार्य है?

कपड़ा है ही नहीं वहां। न रंग का सवाल है, न कपड़े का सवाल है। लेकिन तुम्हारी तरफ से यह इशारा जरूरी है, अनिवार्य है--नहीं तो शिष्य कोई कैसे होगा? यह इशारा जरूरी है कि अब जो मर्जी!
इब्राहिम सम्राट था, अपने गुरु के पास गया। और गुरु ने ऐसी मांग की जो उसने कभी अपने किसी और शिष्य से न की थी। इब्राहिम झुका तो गुरु ने कहा कि सच में झुक रहे हो? इब्राहिम ने कहा कि नहीं झुकना होता तो आता ही नहीं। कोई मुझे लाया नहीं है, अपने से आया हूं; झुक रहा हूं। तो इब्राहिम से पूछा उसके गुरु ने, प्रमाण दे सकोगे? इब्राहिम हाथ फैला कर खड़ा हो गया और उसने कहा, आज्ञा दें! और बड़ी अजीब आज्ञा दी गुरु ने। गुरु ने कहा, कपड़े फेंक दो, नग्न हो जाओ। इब्राहिम ने एक क्षण भी सोचा नहीं, कपड़े फेंक दिए और नग्न हो गया। सम्राट था! और गुरु भी अदभुत था! गुरु ने कहा, उठा लो वह जूता जो पड़ा है, निकल जाओ बाजार में, मारते जाओ अपने सिर पर जूता, इकट्ठी होने दो भीड़, पूरे गांव का चक्कर लगा कर आ जाओ। और इब्राहिम चला गया--अपनी ही राजधानी में! नंगा! सिर पर जूता मारता!
जो गुरु के पुराने शिष्य थे उन्होंने कहा, यह जरा ज्यादती है। ऐसा आपने हमसे तो कभी नहीं कहा था। और सम्राट के साथ तो थोड़ा सदय होना था, बिचारा आया झुकने को, यही क्या कम था?
गुरु ने कहा, मुझसे मत पूछो, इब्राहिम से ही पूछ लेना।
और इब्राहिम जब लौटा कोई घंटे भर अपनी ही राजधानी में जूता मारते हुए--हजारों की भीड़ इकट्ठी है, लोग पागल चिल्ला रहे हैं, लोग पत्थर फेंक रहे हैं। लोग कह रहे हैं, यह हो क्या गया? लोग मजाक कर रहे हैं, सारा गांव हंस रहा है। बच्चे, बूढ़े, स्त्रियां, सब इकट्ठे हो गए हैं। जुलूस चल रहा है उसके पीछे और इब्राहिम हंस रहा है, आनंदित हो रहा है और जूते मार रहा है और नग्न घूम रहा है। लौट आया। जब इब्राहिम लौट कर आया तो वह आदमी ही दूसरा था। गुरु ने अपने शिष्यों को कहा, इब्राहिम से पूछ लो। इब्राहिम ने कहा कि इस एक घड़ी में जो जानने को मिल गया, वह जन्मों-जन्मों में नहीं जाना था। और जो मैं पाने आया था, वह मुझे मिल ही गया। मेरा अहंकार गिर गया। यही बाधा थी। वह गुरु के चरणों में गिर पड़ा और उसने कहा, तुम्हारी कृपा! एक क्षण में मिटा दिया! एक घड़ी भर में मिटा दिया! मैं तो सोचता था कि वर्षों तपश्चर्या करनी पड़ेगी। सम्राट हूं, अकड़ा हुआ, अहंकार से भरा हुआ, अहंकार में ही जीया हूं, कैसे छूटेगा यह अहंकार--मैं तो यही सोचते-सोचते आया था, कैसे छूटेगा? और तुमने क्षण भर में छुड़ा दिया। और जरा से उपाय से छुड़ा दिया।
अब तुम यह मत सोचना कि जूते मारने से कोई अहंकार छूट जाता है। नहीं तो एकांत में खड़े होकर नग्न, तुम अपने को जूते मार लो, कि जब विधि काम करती है तो अपने कमरे में बंद हो गए, जूता लिया, नंगे हो गए और मार लिया जूता। घड़ी भर नहीं, दो घड़ी मारते रहे, तो भी कुछ न होगा। न नग्न होने से कुछ होगा। बात समझो। भाव समझो। यह तो सिर्फ उपाय था। लेकिन इब्राहिम ने एक इशारा दे दिया कि अब जो कहोगे! यह बिल्कुल पागलपन की बात है। इब्राहिम को कहना चाहिए था कि यह क्या पागलपन करवा रहे हैं? नंगे होने से क्या होगा? यही मित्र ने पूछा हैः नंगे होने से क्या होगा? गैरिक वस्त्र पहनने से क्या होगा? उन्होंने यह भी पूछा है कि क्या आप मुझे बिना गैरिक वस्त्रों के संन्यास नहीं दे सकते?
कल तुम मुझसे कहोगे--ध्यान से क्या होगा? क्या आप मुझे ध्यान के बिना संन्यास नहीं दे सकते? प्रार्थना से क्या होगा? क्या मैं बिना प्रार्थना के संन्यासी नहीं हो सकता?
यह तो सिर्फ इशारा है, यह तो इस बात का इशारा है कि आप जो भी कहें! यह पागलपन तो यह पागलपन सही।
भक्त अपने को देने जाता है। इसलिए देने वाला शर्तें नहीं रख सकता। भक्त समर्पित होता है, समर्पण बेशर्त ही हो सकता है।
कल मैंने धर्मयुग में मेरी एक संन्यासिनी प्रीति पर एक लेख देखा।
उसमें एक शब्द मुझे पसंद आया। जिसने रिपोर्ट लिखी है प्रीति के ऊपर धर्मयुग में, उसने शब्द उपयोग किया है--रंग रजनीशी। वह मुझे जंचा। वह

गैरिक नहीं है, रंग रजनीशी! उसकी तैयारी हो तो ही संन्यास संभव है। उतना छोड़ने के लिए मन राजी हो, तो ही।
और बहुत कुछ छोड़ना पड़ेगा, यह तो शुरुआत है। यह तो ऐसा समझो कि सम्राट
से उसके गुरु ने कहा होता, पहले टोपी छोड़ो। और वह कहता, टोपी छोड़ने से क्या होगा? क्या बिना टोपी छोड़े ज्ञान नहीं हो सकता? वह टोपी छुड़वाना तो सिर्फ शुरुआत थी। फिर वह कहता--अचकन गिराओ, कमीज गिराओ, कोट गिराओ, अब पायजामा भी गिर जाने दो, अब अंडरवियर भी छोड़ दो, ऐसा धीरे-धीरे! मैं जानता हूं कि तुम इकट्ठे नग्न न हो सकोगे। तुम्हारी इतनी हिम्मत नहीं है। तुमसे कहता हूं, टोपी उतारो। चलो जी टोपी ही सही, उतारो तो! कुछ तो उतारो, थोड़ा तो भार हलका हो!
गुरु के रंग में रंग जाना शिष्यत्व है। और उसी रंग में रंगने से तुम्हें परमात्मा के रंग में रंगने की कला आएगी।
सकाम न हो प्रार्थना। सकाम न हो पूजा। कोई वासना न हो पाने की। आह्लाद
से हो, आकांक्षा से नहीं। आनंद से हो, अनुग्रह से हो, अपेक्षा से नहीं। बस, वहीं सारा भेद है। तुम सत्यनारायण की कथा करवा लेते हो, कभी हवन भी करवा लेते हो, कभी यज्ञ करवा लेते हो। और बड़ा आश्चर्य है, करोड़ों रुपये यज्ञ पर फूंके जाते हैं, और यज्ञ धार्मिक अनुष्ठान ही नहीं है! यजन है, भजन नहीं है। घी डालो, गेहूं डालो, जो तुम्हें डालना हो डालते रहो, सब आग खा जाएगी। तुम जब तक अपने को न डालोगे, तब तक कोई यज्ञ पूरा नहीं होता। जिस दिन तुम यह गेहूं और घी इत्यादि डालने का पागलपन छोड़ोगे, अपने को डाल दोगे आग में, तुम जिस दिन कहोगे कि मैं जलने को तैयार हूं, उस दिन क्रांति घटती है, उस दिन भक्त का जन्म होता है।

अरबाबे-मोहब्बत ने तराशे हैं सनम और
बुतखानाए-फितरत का न खुल जाए भरम और
करता रहे सैराबे-गमे-दिल कोई ऐ काश!
और मैं यह कहे जाऊं "दिए जा मुझे गम और"
कुछ कम नहीं तो भी, मगर ऐ गर्दिशे-दौरां!
हम क्या कहें उस बुत का है अंदाजे-सितम और
इस राज से वाकिफ नहीं काफिर हो कि मोमिन
दुनियाए-मोहब्बत के हैं दैर और हरम और
जितना कोई मिटता है रहे-इश्क में "नाहीद"
उनकी निगाहे-नाज का होता है करम और

प्रेम के मंदिर और प्रेम की मस्जिदें अलग ही हैं। तुम्हारे मंदिर और मस्जिदों से उनका कुछ लेना-देना नहीं।
इस राज से वाकिफ नहीं काफिर हो कि मोमिन
न तो तुम्हारा पंडित परिचित है, न तुम्हारा मौलवी परिचित है इस रहस्य से।
इस राज से वाकिफ नहीं काफिर हो कि मोमिन
दुनियाए-मोहब्बत के हैं दैर और हरम और
वह जो प्रेम की दुनिया है, उसके मंदिर और, उसकी मस्जिदें और; उसके यज्ञ और, उसके हवन और, उसके विधि-विधान और। परमात्मा से मांगने नहीं जाता भक्त, देने जाता है, अपने को लुटाने जाता है। जितना कोई मिटता रहे, उतना ही होता चलता है। इधर मिटता है, उधर जन्मता है।
जितना कोई मिटता है रहे-इश्क में "नाहीद"
यह जो प्रेम का रास्ता है, भक्ति, इस पर जो जितना मिटता है--
जितना कोई मिटता है रहे-इश्क में "नाहीद"
उनकी निगाहे-नाज का होता है करम और
परमात्मा की अनुकंपा उसे उतनी ही ज्यादा मिलती है।
उनकी निगाहे-नाज का होता है करम और

और दया बरसती है, और कृपा बरसती है। जिस दिन तुम पूरे मिट जाते हो, उस दिन तुम्हारे भीतर परमात्मा का आविर्भाव होता है। उस दिन भक्त भगवान हो जाता है।
इसलिए शांडिल्य प्रारंभ से ही इस सूत्र में क्रियाकांड को इनकार कर देते हैं। इसका यह अर्थ नहीं है कि शांडिल्य कह रहे हैं--तुम पूजा भी मत करना। इसका यह भी अर्थ नहीं है कि वे कह रहे हैं कि तुम्हें अगर मूर्ति प्रिय हो तो तुम मूर्ति के सामने बैठ कर गुफ्तगू न करना। वे यह भी नहीं कह रहे हैं कि तुम्हें अगर गीत प्यारा हो और तुम गाना चाहो परमात्मा को तो मत गाना। वे इतना ही कह रहे हैं कि यह सब सहज हो और आकांक्षा-शून्य हो। इस प्रार्थना-पूजा का आनंद प्रार्थना और पूजा में ही हो, किसी और लक्ष्य को पाने में नहीं।
तुम किसी के प्रेम में हो और कोई पूछे कि तुम क्यों प्रेम में हो? किसलिए प्रेम में हो? क्या पाना चाहते हो? अगर तुम उत्तर दे सको, तो तुम्हारा प्रेम गलत। अगर तुम कह सको कि इस स्त्री के बाप के पास बहुत धन है, अकेली बेटी है, इसलिए प्रेम में हैं, तो तुम प्रेम में हो ही नहीं। तुम अगर प्रेम में हो तो तुम कहोगे, बस, प्रेम के कारण प्रेम में हूं। प्रेम की वजह से प्रेम में हूं। इसके पीछे और कोई लक्ष्य नहीं। प्रेम अपने आप में इतना बड़ा पुरस्कार है, और क्या मांगना है?
इसलिए ख्याल रखना, शांडिल्य यह नहीं कह रहे हैं कि तुम पूजा मत करना। लेकिन पंडित को बीच में मत लाना। यह भी नहीं कह रहे हैं कि तुम प्रार्थना मत करना। लेकिन प्रार्थना रटी-रटाई तोते की भांति न हो। और यह भी नहीं कह रहे हैं कि तुम झुकना मत मंदिर में, या मस्जिद में, या जहां तुम्हारी मर्जी हो। क्योंकि उन्होंने कहा, जहां तुम्हारी आंखें भर जाएं, वहीं झुक जाना। और जिससे तुम्हारे नेत्र तृप्त हों, वहीं झुक जाना। जिससे तुम्हें सुख की झलक मिले, वहीं झुक जाना। जहां शांति का आकाश खुले, वहीं झुक जाना। सिर्फ कह यह रहे हैं कि इस झुकने को अभ्यास मत बनाना। यह झुकना सहज हो, अनायास हो, अप्रयास से हो, इसके पीछे यत्न न हो। तुम झुकने का निरंतर अभ्यास कर-कर के अगर झुकोगे, झुकना झूठा हो जाएगा। जिसका भी अभ्यास किया जाता है, वही चीज झूठी हो जाती है।
तुम किसी मित्र से मिलने जा रहे हो और तुम रास्ते भर सोचते गए--क्या कहूंगा, क्या कहूंगा, क्या कहूंगा; अभ्यास कर लिया बिल्कुल कि कहूंगा कि बड़ा आनंद हुआ, वर्षों के बाद मिले, आंखें ठंडी हो गईं, कितना तड़पा, कितना रोया; इसको खूब दोहरा-दोहरा कर तैयार करके पहुंच गए। और फिर तुमने यह सब दोहरा दिया।
कुछ बात चूक गई। शब्द आ गए, भाव नहीं रहा। अगर भाव था तो शब्दों की आयोजना करने की जरूरत न थी। जब भाव होते हैं, तो उनके योग्य शब्द अपने आप पैदा हो जाते हैं। जब प्रेम होता है, तो प्रेम को कैसे निवेदन करना, यह प्रेम जानता है। इसके लिए अभ्यास नहीं करना होता। स्मरण रखना, जब तुम्हारे भीतर कोई चीज प्रकट होने को पक जाती है तो निश्चित प्रकट होती है। जब फूल खिलने के योग्य हो जाता है, जरूर खिलता है और सुगंध को लुटा देता है। इसके लिए किसी अभ्यास, आयोजन की आवश्यकता नहीं है।
दूसरा सूत्रः पादोदकं तु पाद्यम अव्याप्तेः।
"भागवत मूर्ति के स्नानजल को ही पादोदक समझना चाहिए।"
जरूरत नहीं है कि कोई गंगा जाए, यमुना की तलाश करे, कि गंगोत्री खोजे पवित्र जल के लिए। नहीं, अगर तुमने प्रेम से, आनंद से अहोभाव से अपने घर में रखी पत्थर की मूर्ति पर भी अपनी प्रार्थना की वर्षा कर दी, प्रेम और आनंद से अपनी मूर्ति को नहला दिया, तो उन चरणों से जो जल गिर रहा है वह गंगा से ज्यादा पवित्र हो गया। लेकिन ख्याल रखना, वह गंगा से ज्यादा पवित्र मूर्ति के कारण नहीं हो रहा है। मूर्ति तो पत्थर है! वह गंगा से ज्यादा पवित्र किसलिए हो रहा है? तुम्हारे भाव के कारण हो रहा है। तुमने उस मूर्ति में भगवान का आविष्कार कर लिया है। तुम्हारे लिए वह मूर्ति मूर्ति नहीं है। तुम्हारे लिए वह मूर्ति भगवान का प्रतीक हो गई है।

ऐसा समझो कि किसी प्रेयसी ने तुम्हें एक रूमाल भेंट कर दिया। चार आना उसकी कीमत है। अगर तुम बाजार में जाओगे और लोगों को दिखाओगे कि इसकी कितनी कीमत है, तो कोई शायद चार आने में भी लेने को तैयार न हो। क्योंकि चार आने में तो नया मिल जाता है, इस पुराने रूमाल को कौन लेगा? लेकिन तुमसे अगर कोई कहे कि हम हजार रुपये देते हैं, इस रूमाल को हमें दे दो, तो तुम देने को राजी न होओगे। इस रूमाल में कुछ है, जो किसी और को दिखाई नहीं पड़ता। इस रूमाल में कुछ है, जिसे तुम ही जानते हो। तुम्हारे भाव का प्रतिष्ठापन हो गया है। यह याददाश्त है। इसमें किसी की स्मृति छिपी है। इसमें प्रेम के कोई स्मरण छिपे हैं। इसमें प्रेम की कोई अपूर्व घटना छिपी है। मगर उसका अनुभव सिर्फ तुम्हें है। उसे सिर्फ तुम जानते हो। वस्तुतः वह रूमाल में नहीं है, तुम्हारे हृदय में है। रूमाल पर्दे का काम करता है। रूमाल को देख कर हृदय में जो है वह जग जाता है।
इसको ख्याल से समझ लेना।
इसलिए जब मुसलमान हिंदू की मूर्ति तोड़ देता है तो वह भगवान की मूर्ति नहीं तोड़ रहा है। भगवान की होती तो तोड़ता कैसे? वह सिर्फ मूर्ति तोड़ रहा है। वह पत्थर तोड़ रहा है। वह नाहक मेहनत कर रहा है। और जब हिंदू उस मूर्ति की पूजा करता है तो वह पत्थर की पूजा नहीं कर रहा है। पत्थर होता तो वह पूजा ही क्यों करता? और अगर पत्थर की ही कर रहा है तो उसमें और मूर्ति तोड़ देने वाले में कोई भेद नहीं है। जहां भाव आरोपित हो जाता है वहां मूर्ति मूर्ति नहीं रह गई, जीवंत हो उठी। मूर्ति पर्दा है।
इसे ऐसा समझो कि तुम फिल्म देखने जाते हो। फिल्म पर्दे पर नहीं होती, पर्दा तो खाली है। पर्दा बिल्कुल खाली ही होना चाहिए। अगर पर्दे पर कुछ हो तो फिल्म के होने में बाधा हो जाएगी। इसलिए पर्दा बिल्कुल शुभ्र होता है, सफेद होता है, उसमें एक रेखा भी नहीं होती। कभी अगर पर्दे पर एक दाग होता है तो वह बाधा बन जाता है। एक रेखा होती है तो वह दिखाई पड़ती है हर चित्र के साथ। पर्दा बिल्कुल शून्य होना चाहिए--शुभ्र, रिक्त। फिल्म तो पीछे प्रोजेक्टर में छिपी होती है। पर्दा तो सिर्फ उस फिल्म को झेलने का उपाय करता है और झेल कर तुम्हारी आंखों तक लौटा देता है। अगर पर्दा न हो तो भी प्रोजेक्टर चलता रहेगा, लेकिन तुम्हारी आंख तक लौटेगी नहीं फिल्म। चली जाएगी जगत में, चलती जाएगी, चलती जाएगी, तुम तक कभी लौट कर नहीं आएगी। तुम देख न सकोगे। पर्दा करता क्या है? पर्दा बीच में बाधा बन जाता है, वह जो फिल्म जा रही है, चित्र जा रहे हैं रोशनी पर चढ़ कर, उनको रुकावट डाल देता है, आगे नहीं जाने देता। रुकावट पड़ जाती है, वे धक्का खाकर लौट पड़ते हैं, लौट कर तुम्हारी आंख पर पड़ जाते हैं, तुम्हें दिखाई पड़ जाते हैं।
मूर्ति पर्दा है। तुम्हारे हृदय में छिपा है भाव, प्रोजेक्टर वहां है। मूर्ति तो सिर्फ उस भाव को अनंत में नहीं खो जाने देती। मूर्ति पर से लौट कर भाव तुम्हारी आंख में फिर आ जाता है। मूर्ति तो ऐसे है जैसे दर्पण। तुम दर्पण के सामने खड़े हो गए। तुम जब दीवाल के सामने खड़े होते हो, तुम्हें कुछ नहीं दिखाई पड़ता। क्यों? क्योंकि दीवाल लौटाती नहीं। दीवाल पर भी तुम्हारी तस्वीर पड़ती है, तुम्हारी तस्वीर तो पड़ेगी ही, तुम खड़े हो तो तस्वीर तुम्हारी दीवाल पर भी पड़ रही है, लेकिन दीवाल लौटाती नहीं, पी जाती है। दर्पण की कला इतनी है, वह इतना चिकना है कि पी नहीं पाता। तुम्हारी तस्वीर सरक जाती है, वापस लौट जाती है, वापस लौट कर तुम्हारी आंखों में पड़ जाती है। तुम अपने को देखने में समर्थ हो जाते हो।
मूर्ति दर्पण है। तुम्हारे भाव, जिन्हें तुम अभी नहीं पकड़ पाते सीधा- सीधा, मूर्ति से लौट कर स्थूल हो जाते हैं, दिखाई पड़ने योग्य हो जाते हैं। जो तुम्हारे भीतर अदृश्य में छिपा है, वह दृश्य बन जाता है।
अब यह ऐसा ही समझो, जो मूर्ति को तोड़ देता है वह वैसा ही नासमझ है कि जैसे समझो तुमने कोई फिल्म देखी और तुम्हें बड़ा गुस्सा आ गया--कोई ऐसा दृश्य दिखाई पड़ रहा है जिसको तुम देखने को राजी नहीं हो, और तुमने उठाई छुरी और जाकर पर्दे को काट दिया। तुम्हें लोग पागल कहेंगे। पर्दे को काटने से क्या होगा? पर्दे को काटने से फिल्म नहीं कटती।

मैं एक गांव में मेहमान था। गांव के मंदिर की मूर्ति किसी ने तोड़ दी। गांव बड़ा पागल था। एकदम पागलपन फैला हुआ था। मुसलमान थोड़े ही थे गांव में, हिंदू ज्यादा थे। और शक यही था कि मुसलमानों ने तोड़ी। यह शक स्वाभाविक हो जाता है। मेरे पास गांव के लोग आए और उन्होंने कहा कि हम क्या करें? हम आग में उबल रहे हैं! हम जला देंगे इन मुसलमानों को!
मैंने उनसे कहा, मूर्ति ही तोड़ी है न, तुम्हारा भाव तो नहीं तोड़ा! कि तुम्हारा भाव भी टूट गया? तुम दूसरी मूर्ति रख लो! और फिर यह क्या पक्का है कि इन्होंने मुसलमानों ने तोड़ी है? मैं तो नहीं देखता कि ये तोड़ सकते हैं, क्योंकि इनकी संख्या इतनी छोटी है कि ये तोड़ कर और मुसीबत में पड़ेंगे। ये नहीं तोड़ सकते। बहुत संभावना तो यह है कि किसी हिंदू ने ही तोड़ी है, मुसलमानों को मारने के लिए, मुसलमानों को जलवाने के लिए।
और यही बात सच निकली। तोड़ी थी हिंदुओं ने ही। हिंदुओं को भड़काने के लिए। लेकिन जब मैंने उनसे कहा--गांव के सीधे-सादे लोग थे--जब मैंने उनसे कहा कि मूर्ति टूटने से तुम्हारा भाव टूट गया? तो उन्होंने कहा, नहीं, भाव तो हमारा नहीं टूटा।
मैंने कहा, यह मूर्ति तो पत्थर ही थी न, कभी बाजार से खरीद कर लाए थे न,
अब दूसरी खरीद लाओ। मैं तुम्हें पैसे दे दूंगा। तुम दूसरी रख लो--दूसरा पर्दा लगा लो, उस पर अपने भाव को आरोपित कर दो। और तुम भूल गए हो कि इस देश में तो हमने कितनी सुविधा से मूर्तियां बनाई थीं। गांव के किनारे एक पत्थर पड़ा रहता है, किसी का दिल आ गया, उसी पर जाकर और सिंदूर पोत दिया, दो फूल चढ़ा दिए, मूर्ति हो गई। यह देश अदभुत है! हर चीज को हम पर्दा बनाना जानते हैं। कोई मूर्ति कीमती ही होनी चाहिए, ऐसा थोड़े ही है।
तुम जान कर चकित होओगे, जब पहली दफा अंग्रेजों ने मील के पत्थर लगाए
तो बड़ी मुश्किल में पड़ गए वे। क्योंकि गांव के पास से मील का पत्थर लगाया, दूसरे दिन आए तो वहां उन्होंने सिंदूर पोत कर फूल चढ़ा दिए हैं, वे पूजा करने लगे हैं। उन्होंने कहा, हनुमान जी हैं। हनुमान जी प्रकट हो गए। अंग्रेज बड़े परेशान थे, वे समझा-समझा कर हैरान थे कि यह मील का पत्थर है! मगर हम तो पत्थरों को मूर्ति बनाना जानते हैं, हम तो कहीं भी अपने भाव को आरोपित करना जानते हैं।
प्रसिद्ध कहानी है झेन फकीर इक्कू की। एक रात एक मंदिर में ठहरा। आधी रात को मंदिर के पुजारी ने देखा कि आग जल रही है बीच मंदिर में! तो वह भागा आया कि मामला क्या है? देखा तो और हैरान हो गया। इस इक्कू को ठहरा लिया था, क्योंकि यह प्रसिद्ध फकीर था। शक तो था पुजारी को, क्योंकि पुजारियों को सदा ही जानकारों पर शक रहा है, क्योंकि जानकार और पुजारी का मेल नहीं होता। मगर ठहरा लिया था कि इतना प्रसिद्ध आदमी है, क्या हर्जा है, रात रुकेगा, सुबह चला जाएगा। मगर उपद्रव हो गया। उसने बुद्ध की मूर्ति जला दी। लकड़ी की मूर्तियां थी मंदिर में। जापान में लोग लकड़ी की मूर्तियां बनाते हैं। वह बुद्ध की मूर्ति जला कर आंच ताप रहा था। उस पुजारी ने सिर ठोंक लिया, उसने कहा, तुम यह कर क्या रहे हो? तुम होश में हो कि तुम्हारा दिमाग खराब है?
इक्कू ने बड़ी शांति से पूछा कि यह क्या मामला है? इतने उद्विग्न क्यों
हो रहे हो? बात क्या है?
उसने कहा, तुमने बुद्ध को जला दिया और पूछते हो, उद्विग्न हो रहे हो!
पास में पड़े एक लकड़ी के टुकड़े को उठा कर उसने राख में कुरेदा।
अब पूछने का मौका था पुजारी को, उसने कहा, अब तुम यह क्या कर रहे हो?
उसने कहा, मैं बुद्ध की अस्थियां खोज रहा हूं।
पुजारी ने कहा, तुम निश्चित पागल हो। इसमें अस्थियां कहां? यह लकड़ी है।
तो इक्कू हंसने लगा, उसने कहा कि जब तुम्हें पता है कि यह लकड़ी है, तो क्यों इतने उद्विग्न हो रहे हो? और एक-दो मूर्तियां मंदिर में हैं, उठा लाओ। अभी रात बाकी है और बहुत सर्द है। और तुम भी तापो, मैं तो ताप ही रहा हूं। तुम क्यों उद्विग्न हुए जा रहे हो?

इस आदमी को ठहरा रखना खतरनाक था। पुजारी ने उसे रात ही बाहर निकाल दिया मंदिर के। सर्द रात थी। बर्फ पड़ रही थी। लेकिन उसने कहा, अब मैं तुम्हें मंदिर में नहीं टिकने दे सकता। या तो मुझे बैठ कर रात भर तुम्हारे सामने देखना पड़ेगा, तुम कहीं दूसरी मूर्ति न जला दो। अब जो हो गया हो गया। सुबह उसने देखा कि वह मंदिर के सामने, वह मील के पत्थर के पास बैठा है, फूल चढ़ा कर प्रार्थना कर रहा है इक्कू। पुजारी ने पूछा, अब यह और क्या कर रहे हो?
उसने कहा, पूजा कर रहा हूं। रोज सुबह भगवान की स्मृति करता हूं, तो कर रहा हूं।
मगर उसने कहा, यह मील का पत्थर है!
उसने कहा, अगर लकड़ी भगवान की मूर्ति हो सकती है तो मील का पत्थर क्यों नहीं? यह तो भाव की बात है, इक्कू ने कहा। जब जरूरत होती है लकड़ी की तो हम भाव हटा लेते हैं; जब जरूरत होती है भगवान की, हम भाव आरोपित कर देते हैं। अब सुबह पूजा का वक्त है, अब कहां जाएं? किस मंदिर में खोजें? यहीं हमने भगवान का आविर्भाव कर लिया। झुकने की बात है! यहीं झुक गए हैं। यहीं दो बातें प्रेम की उससे कह लीं, बात पूरी हो गई। रात सर्द बहुत थी, तब हमने भाव हटा लिया था। तब हमने लकड़ी को कह दिया था, तू लकड़ी ही है, अब तू भगवान नहीं है।
जिनके पास समझ है, दृष्टि है, उनके जीवन में यही होगा।
शांडिल्य कहते हैंः पादोदकं तु पाद्यम अव्याप्तेः।
"भागवत मूर्ति के स्नान के जल को ही पादोदक समझना चाहिए।"
तुमने जहां भगवान का आरोपण कर लिया है, फिर उनको स्नान करवाया है, वह
जो जल बह रहा है, वही गंगाजल है। वही अमृत है। कहीं और जाने की जरूरत नहीं है। तीर्थ अपना तुम बना ले सकते हो। सब तुम्हारे हाथ में है।
मेरे इश्क का ही यह एहसान है
तुम्हें देखिए क्या से क्या कर दिया
हमीं से दैरो-हरम ने फरोग पाया है
न हम सरों को झुकाते न आस्तां होता
हमने ही बनाए हैं मंदिर और मस्जिद।
हमीं से दैरो-हरम ने फरोग पाया है
उनके स्रष्टा हम हैं।
न हम सरों को झुकाते न आस्तां होता
अगर तुम सर न झुकाते तो मंदिर कहां होता? तुम सर न झुकाते तो मूर्ति कहां होती? तुम्हारे सर झुकाने में सारा राज है। जिसको सर झुकाना आ गया उसके लिए सारा जगत परमात्मा हो जाता है, सारा जगत पर्दा हो जाता है। जिसे सर झुकाना न आया, वह लाख पूजा करे, लाख यज्ञ-हवन करे, उसके यज्ञ-हवन, उसकी पूजाएं, उसकी अकड़ को और अहंकार को और बढ़ाए चले जाते हैं, कम नहीं करते। ध्यान रखना, जो तुम्हें मिटाता हो, वह धर्म। जो तुम्हें मजबूत करता हो, वह अधर्म। यह मेरी परिभाषा है।
भावना से भगवान का आविर्भाव। स्व-स्फूर्ति से भगवान का आविर्भाव।
समर्पण में, निर-अहंकारिता में, झुक जाने में भगवान का आविर्भाव।
स्वयम अर्पितं ग्राह्यम अविशेषात्।
"अपनी समर्पण की हुई वस्तु ग्रहण करना उचित है, क्योंकि उसमें कोई भी विशेषता नहीं है।"
एक सवाल उठता है, उसका जवाब दिया है। सवाल उठता है कि तुमने परमात्मा
को समर्पित किया कुछ, अपना जीवन समर्पित कर दिया समझो। भक्त को करना ही पड़ेगा; इससे कम में काम भी नहीं चलेगा। अपना जीवन समर्पित कर दिया भगवान को, फिर इस जीवन का हम उपयोग कैसे करें? जब उसे दे दिया, तो अब हम इसका उपयोग कैसे करें? इस बात को ही याद दिलाने के लिए एक प्रक्रिया सदियों से चलती रही है--वे सारी प्रक्रियाएं याद दिलाने के लिए हैं, सूचनामात्र हैं। तुम जाकर भगवान को भोग लगा देते हो, फिर वही भोग प्रसाद बन जाता है, फिर तुम उसको ले लेते हो, फिर उसे तुम स्वीकार कर लेते हो। उसमें एक सार का सूत्र छिपा है। भगवान को सब दे दो, सब लौट आता है, ज्यादा होकर लौट आता है। जब

तुमने चढ़ाया तब उसे भोग का नाम दिया था और जब लौटता है तो उसका नाम प्रसाद हो जाता है। जो तुम देते हो वह तुम्हीं पर वापस आ जाता है। लेकिन फर्क बहुत है अब। अब तुम लेने वाले हो। अब तुम स्वीकार करने वाले हो। अब तुम ग्राहक हो।
और जब एक बार तुमने चढ़ा दिया, तो चढ़ाते से ही तुम्हारा तो रहा नहीं, इसलिए अब तुम्हें यह चिंता नहीं होनी चाहिए कि अपनी ही चढ़ाई हुई चीज कैसे वापस लूं? तुमने तो चढ़ा दिया, तब से तुम्हारी न रही। अब परमात्मा की मर्जी, वह वापस देना चाहता है तो तुम क्या करोगे?
यह सूत्र कहता हैः "अपनी समर्पण की हुई वस्तु ग्रहण करना उचित है"-- कोई चिंता मत लेना--"क्योंकि उसमें कोई भी विशेषता नहीं है।"
तुम्हारी रही ही नहीं, विशेषता की बात ही क्या है? तुमने तो दे दी थी, परमात्मा ने लौटा दी है। अगर परमात्मा ने लौटा दी तो अनुग्रह से उसे स्वीकार कर लेना, प्रसाद मान कर स्वीकार कर लेना।
ऐसा समझो, जैसा मैंने कल या परसों तुमसे कहा, संसार छोड़ कर नहीं भागना है, संसार परमात्मा पर छोड़ देना है। सारा संसार समेट कर उसके चरणों में रख देना है कि यह रहा तेरे पास। अगर उसे ले लेना होगा तो वापस नहीं लौटेगा। वह तुम्हें उत्प्रेरणा देगा कि चले जाओ जंगल। मैं ऐसा नहीं कहता हूं कि कोई भी जंगल न जाए। परमात्मा जिसे भेजे वह जाए। अपने से कोई न जाए।
बारीक भेद है। तुमने सब चढ़ा दिया परमात्मा पर, अब तुम प्रतीक्षा करो। अगर तुम्हारे मन में भीतर याद आ जाए बच्चे की और पत्नी की, तो मतलब साफ है कि परमात्मा कह रहा है--घर वापस जाओ। अब तुम यह मत कहना कि यह बात तो मेरे गंदे मन से आ रही है। यहां गंदा कुछ भी नहीं है। सब उसका है, कैसे गंदा हो सकता है? और तुमने सब चढ़ा दिया। अब परमात्मा तुम्हारे ही मन से तो बोलेगा! और कहां से बोलेगा? तुम्हारी आंख से ही तो देखेगा! तुम्हारे विचार से ही सोचेगा। परमात्मा के पास अपने हाथ नहीं हैं, अपने पैर नहीं हैं। तुम्हारे हाथ ही उसके हाथ हैं, तुम्हारे पैर ही उसके पैर हैं।
इंग्लैंड में ऐसा हुआ पिछले महायुद्ध में। एक नगर के चौराहे पर जीसस
की मूर्ति थी। जर्मनों के बम गिरे। वह मूर्ति खंड-खंड होकर टूट गई। टुकड़े- टुकड़े होकर गिर गई। युद्ध के बाद लोगों ने सारे टुकड़े इकट्ठे कर लिए, और उन सारे टुकड़ों को मिला कर मूर्ति बनानी चाही। मूर्ति तो बन गई, सिर्फ दो हाथ के टुकड़े नहीं मिले। जो कलाकार उस मूर्ति को जोड़ रहा था, उसने बड़ी खोज की, मगर वे दो हाथ नहीं मिले सो नहीं मिले। उसने एक अदभुत काम किया। उसने मूर्ति के नीचे एक पत्थर लगा दिया--मूर्ति अब भी खड़ी है। उसने एक पत्थर लगा दिया। वह पत्थर बड़ा प्यारा है, वह हाथ से भी ज्यादा काम का पत्थर हो गया। उसने पत्थर पर लिख दिया है कि मेरे हाथ तुम हो, मेरे पास और कोई हाथ नहीं हैं।
परमात्मा के हाथ तुम हो। इसलिए तो इस देश में हमने परमात्मा को सहस्रबाहु कहा है--हजारों हाथ वाला। सब हाथ उसके हैं। सब मन उसके हैं। सब देहें उसकी हैं। एक बार तुमने सब समर्पण कर दिया, फिर परमात्मा जो इशारा करता हो उसी इशारे से चल पड़ना। अगर कहे, जंगल, तो जंगल। अगर कहे, बाजार, तो बाजार। फिर तुम रहे ही नहीं। अब इसे प्रसादपूर्वक स्वीकार करना। अब तुम अपनी पत्नी के पास नहीं जा रहे हो, परमात्मा भेज रहा है तो जा रहे हो। अब तुम अपने बेटे के पास नहीं जा रहे हो, यह परमात्मा का ही बेटा है, जिसकी रक्षा के लिए तुम्हें भेज रहा है तो तुम जा रहे हो।
अगर कोई व्यक्ति इतने मौन और शांति से जीवन को जीए कि जैसा परमात्मा जिलाए वैसा ही जीता चला जाए, तो यह जगत ही मुक्ति हो जाता है। जीवन-मुक्ति इसी का नाम है। तुम चढ़ा दो, फिर परमात्मा जो लौटा दे उसे प्रसाद रूप ग्रहण कर लो। अपनी मर्जी बीच में मत लाओ। निर्णायक तुम मत बनो। कर्ता तुम मत बनो। निमित्त मात्र रह जाओ।
निमित्तगुणानपेक्षणात अपराधेषु व्यवस्था।
"निमित्त, गुण और अनपेक्षा के अनुसार अपराध की व्यवस्था है।"
तीन भूलें भक्त से हो सकती हैं, उन तीन भूलों से बचना। ये तीन अपराध शांडिल्य ने कहे हैं।

पहला अपराधः निमित्त।
निमित्त उस अपराध को कहते हैं, जो अनिच्छा से हो जाए। तुम चाहते भी नहीं थे, तुमने सोचा भी नहीं था, विचारा भी नहीं था, और हो गया। आकस्मिक हो जाए। बिना पूर्व-योजना के हो जाए। दुर्घटना की तरह हो जाए। यह सबसे छोटा अपराध है। ऐसी बहुत सी भूलें हमसे हो जाती हैं। जो हम चाहते भी नहीं थे कि हों, हमने सोची भी नहीं थीं कि हों। हमने उनको बल भी नहीं दिया था, बस हो गईं।
दूसरा अपराधः गुण।
साधक के स्वभाव से हो, आदत से हो। और बार-बार हो। पहली तरह की भूल कभी- कभार होती है, उसे क्षमा किया जा सकता है, वह कोई बड़ी भूल नहीं है। छोटी से छोटी भूल है, उसकी पुनरुक्ति नहीं होती। दूसरी भूल की पुनरुक्ति होती है। वह रोज-रोज दोहरती है।
तुमने कल भी क्रोध किया था, आज भी क्रोध किया, परसों भी क्रोध किया था
और क्रोध तुम्हारी आदत बन गई है। अब तुम आदत के कारण क्रोध करते हो। अब अगर तुम्हें क्रोध का मौका न मिले तो तुम तलाश करते हो, क्योंकि उसकी तलब उठती है। अगर मौका बिल्कुल भी न मिले तो तुम मौका ईजाद करते हो। कोई न कोई बहाना खोज कर तुम क्रोध कर लेते हो। मगर तुम क्रोध करोगे। यह ज्यादा बड़ा अपराध है।
पहला अपराध तो दुर्घटना मात्र है। तुम राह पर चलते थे, किसी को धक्का
लग गया, जल्दी में थे, धक्का लग गया किसी को, तुमने धक्का मारा नहीं है। भीड़ में चलते थे, किसी के पैर पर पैर पड़ गया। इसलिए क्षमायाचना कर लेने से ही बात समाप्त हो जाती है। कोई पाप का, अपराध का कोई भार नहीं तुम्हारे ऊपर पड़ता। तुमने कहा कि माफ करें! इतने में बात खत्म हो गई। तुम जब कहते हो, माफ करें, तो उसका मतलब यह होता है, जान कर नहीं किया है, चेष्टा से नहीं किया है।
मैंने सुना है, एक ग्रामीण आदमी शहर आया। शहर में कोई जलसा हो रहा था,
उस जलसे में गया। किसी का पैर उसके पैर पर पड़ गया, उस आदमी ने कहा, सॉरी। उस ग्रामीण ने कहा कि हद हो गई, पता नहीं क्या कह रहा है? एक तो पैर पर पैर मार दिया और ऊपर से गाली दे रहा है या क्या कर रहा है! खैर, उसने कहा कोई बात नहीं; अजनबी जगह है। फिर किसी आदमी का धक्का उसको लग गया। उस आदमी ने भी कहा, सॉरी। उसने कहा, यह तो हद हो गई। यह भी खूब तरकीब निकाली है इन लोगों ने। धक्का दिए जाओ, मारे जाओ, पैर पर पैर रखे जाओ और गाली भी दो। फिर कोई तीसरे आदमी से वही बात हो गई। भीड़-भाड़ थी भारी। उसने निकाला जूता और जो उसके सामने था उसके सिर पर दे मारा और कहा, सॉरी। कि हद हो गई, जो देखो वही मार रहा है! और यह भी तरकीब अच्छी है, पीछे से सॉरी कह दिया और चल दिए! क्षमा मांग लेने का इतना ही अर्थ होता है कि मैंने जान कर नहीं किया है। अगर जान कर किया है तो क्षमा मांग लेने का कोई भी अर्थ नहीं होता। दूसरा अपराध जान कर किया जाता है, आदत के वश होता है, आकस्मिक नहीं है। पहला अपराध क्षम्य है, दूसरा अपराध क्षम्य नहीं है। तुम अपने भीतर जांच-पड़ताल करना। अगर कोई भूल कभी हो जाती है, उसकी चिंता मत लेना बहुत। जीवन है, स्वाभाविक है। लेकिन कोई भूल रोज-रोज होती है, नियम से होती है, आदत का हिस्सा हो गई है, तुम्हारा स्वभाव बन गई है। उससे सावधान होना। उससे बचना, उससे जागना। वही तुम्हें डुबाएगी।
और तीसराः अनपेक्षा।
पहले से दूसरा पाप ज्यादा घातक है और दूसरे से तीसरा ज्यादा घातक है। अनपेक्षा का मतलब होता हैः जो साधक की मूर्च्छा से हो। एक तो अपराध हो रहा है सिर्फ आकस्मिक, एक हो रहा है आदत से, और एक हो रहा है मूर्च्छा से।
मूर्च्छा हमें जकड़े हुए है। जैसे तुम जीवन में क्या कर रहे हो यहां? कोई धन कमाने में लगा है। उससे पूछो, क्या करोगे धन का? उसने कभी सोचा नहीं। तुम उससे ज्यादा पूछो, जिद करो, तो वह तुम पर नाराज भी होगा कि यह कहां की फिजूल बात लगा रखी है? अध्यात्म इत्यादि में मुझे कोई रस नहीं है। मुझे धन कमाने दो। धन ही तो है यहां सार, और क्या है?

इस आदमी ने कभी जाग कर सोचा भी नहीं एक क्षण को कि धन कैसे सार हो सकता है? धन की भला उपयोगिता हो, लेकिन धन जीवन का लक्ष्य नहीं हो सकता। धन कमा कर भी क्या करोगे अगर खुद को गंवा दिया? लेकिन वह दौड़ता रहेगा, दौड़ता रहेगा। दौड़ते-दौड़ते गिर जाएगा एक दिन और जीवन भर धन ही इकट्ठा करता रहेगा और मौत आकर उसे उठा ले जाएगी, धन सब पड़ा रह जाएगा। यह मूर्च्छा है। यह कभी- कभी की भूल नहीं है, और न आदत की भूल है, यह बेहोशी की भूल है। यह ध्यान का अभाव है। यह जागरूकता की कमी के कारण हो रहा है।
कोई आदमी पद के लिए दौड़ में लगा है; वह यह पूछता भी नहीं कि पहुंच कर भी क्या करूंगा? पहुंच भी गया तो क्या होगा? मैं बन भी गया दुनिया का सम्राट तो उससे सार क्या है? ऊंचे से ऊंचे सिंहासन पर बैठ गया, फिर? फिर होगा क्या? मैं तो मैं ही रहूंगा। कोई सिंहासन तुम्हें ऊंचा नहीं कर सकता, ऊंचा होने का भ्रम दे सकता है। तुम जैसे हो वैसे ही रहोगे। ऊंचाइयां भीतर होती हैं, बाहर सिंहासनों पर नहीं होतीं। और धन भी भीतर घटता है, बाहर तिजोरियों में इकट्ठा नहीं होता। इसलिए कभी-कभी ऐसा हो जाता है कि बुद्ध और महावीर जैसा भिक्षु, नग्न खड़ा, ऐसा धनी होता है कि समृद्ध से समृद्ध आदमी फीके पड़ जाते हैं। और तुम धनियों को देखते हो, उनके चेहरे पर मक्खियां उड़ रही हैं। उन्होंने पाया क्या है? मिला क्या है? एक मूर्च्छा है। और सारे लोग दौड़ रहे हैं, वे भी दौड़ रहे हैं। तुमने कभी खड़े होकर सोचा नहीं रास्ते के किनारे कि जरा भीड़ से हट कर सोच भी तो लूं--मैं कहां जा रहा हूं? इतना समय कहां, इतनी फुर्सत कहां, क्योंकि इतनी देर में दूसरे लोग आगे निकल जाएंगे।
सोचने का समय ही नहीं मिलता, दौड़ ऐसी चल रही है। और जहां सब दौड़े जा रहे हैं वहां शिथिल होकर चलना, या किनारे होकर खड़े होना--लोग समझते हैंः पागल हो गए हो क्या? क्या कर रहे हो यहां?
ध्यान का इतना ही अर्थ होता है कि दौड़ती भीड़ में से थोड़ी देर को हट जाओ, राह के किनारे बैठ जाओ, थोड़ी देर शांत होकर जीवन को देख तो लो--तुम क्या कर रहे हो? किसलिए कर रहे हो? इससे होगा क्या? हारे तो भी हारोगे, जीते तो भी हारोगे, तो करने का प्रयोजन क्या है? सफल हुए तो भी असफल हो जाने वाले हो, असफल हुए तब तो असफल हो ही। यहां विषाद ही अंत में हाथ लगने वाला है। जिस व्यक्ति ने थोड़ा सा राह के किनारे हट कर एकांत में बैठ कर सोचा है, समझा है, विमर्श किया है, वह फिर इस दौड़ में सम्मिलित न हो सकेगा। उसे धन और पद की दौड़ मूढ़तापूर्ण मालूम होगी। अज्ञान की दौड़ मालूम होगी। और जिस दिन यह मूर्च्छा टूट जाती है, उस दिन व्यक्ति भीतर की यात्रा पर निकलता है, अंतर्यात्रा पर निकलता है।
तो तीसरा अपराध है मूर्च्छा का। शांडिल्य कहते हैंः इन तीन अपराधों में पहला अपराध तो नाममात्र को अपराध है, उसकी बहुत चिंता मत लेना। दूसरा अपराध बड़ा अपराध है, आदतें बहुत जोर से पकड़े हुए हैं। कोई शराब पी रहा है, वह आदत है। कोई सिगरेट पी रहा है, वह आदत है। कोई जुआ खेल रहा है, वह आदत है। कोई चोरी कर रहा है, वह आदत है।
मैंने सुना है कि महाराष्ट्र के एक संत एकनाथ यात्रा पर जाते थे, तो गांव के बहुत लोग उनके साथ जा रहे थे। उन दिनों यही रिवाज था कि अगर तीर्थयात्रा पर भी जाना हो तो किसी संत के साथ जाना। क्योंकि संत के साथ जाओगे तो ही तीर्थ पहुंचोगे। अकेले चले जाओगे, तीर्थ आ भी जाएगा, मगर तुम पहुंचोगे नहीं, क्योंकि तुम्हें तीर्थ का कुछ पता ही नहीं है। जो पहुंच गया हो तीर्थ, उसके साथ तीर्थयात्रा पर लोग जाते थे। तो गांव के बहुत लोग एकनाथ के साथ हो लिए। गांव का एक चोर भी--जाहिर चोर; छोटे गांव जब थे दुनिया में तो सभी चीजें जाहिर थीं कि कौन चोर है, कौन जुआरी है, कौन शराबी है; छोटे गांव में बचे क्या? छिपे क्या?
मैं एक बहुत छोटे से गांव में पैदा हुआ--बचपन में अपने नाना के घर रहा। इतना छोटा गांव था कि मुश्किल से कोई ढाई सौ, तीन सौ आदमी थे। सब परिचित थे। एक रात एक चोर घुस आया। मुझे भलीभांति याद है। मेरे नाना को आदत थी दिन-रात पान चबाने की। छोटा सा घर। उन्होंने मुझे भी उठा लिया, और मुझसे बात करने लगे; मेरी नानी को भी उठा लिया; और पान लगा-लगा कर, वे चबा-चबा कर

थूकने लगे। वह चोर बैठा है एक कोने में, वे उसी पर थूक रहे हैं। जब वह चोर, बरदाश्त के उसके बाहर हो गया, तो भाग गया। दूसरे दिन सुबह वह आया दुकान पर उनकी और कहा कि खूब किया, सारी कमीज खराब कर दी! छोटा गांव, चोर भी जानता है, साहूकार भी जानते हैं--कौन कहां है? कौन क्या कर रहा है? और वह कह भी गया आकर कि हद कर दी, चोरी का तो मौका ही कहां दोगे, रात भर तुम जागते ही रहे, और मेरी कमीज भी खराब कर दी! तो मेरे नाना ने उससे कहा, कोई फिकर न करो, कमीज तुम यहां से दूसरी ले जाना। मगर सोच-समझ कर आया करो! कहां आ गए? थोड़ा ख्याल रखा करो। कमीज तुम ले जाना दूसरी, तुम्हारी कमीज खराब हो गई।
वह चोर भी एकनाथ के साथ जाना चाहता था, उसने कहा कि मैं भी चलूंगा।
एकनाथ ने कहा कि भाई, तेरी आदत पुरानी है--वह दूसरे नंबर का अपराधी था--
तू चूकेगा नहीं अपनी आदत से। हम तुझे भलीभांति जानते हैं। क्योंकि मौके आए होंगे कि वह एकनाथ तक की चीजें चुरा ले गया होगा। कि तू भाई, न ही जा तो अच्छा। क्योंकि कई लोग जत्थे में होंगे, और तू चीजें-वीजें चुराएगा और परेशानी खड़ी होगी। तू बाज न आएगा, लंबी यात्रा है, फिर तुझे बीच से भेज भी न सकेंगे, लोग शिकायत भी करेंगे।
पर उस चोर ने कहा, मैं कसम खाता हूं, अब आपके सामने क्या, कसम खाता हूं
कि चोरी नहीं करूंगा। जिस दिन से यात्रा शुरू होगी उस दिन से लेकर जिस दिन यात्रा अंत होगी, तब तक चोरी नहीं करूंगा। आगे की मैं नहीं कहता। मगर यात्रा में नहीं करूंगा, यह तो आप वचन मेरा स्वीकार करो।
एकनाथ ने कहा, ठीक है।
दिन अच्छे थे वे। अब तो तुम साहूकार के वचन का भी भरोसा नहीं कर सकते,
तब चोर के वचन का भी भरोसा किया जा सकता था। तब डाकुओं में भी एक भलापन होता था, अब भले आदमियों में भी डाकू हैं। चोर ने कहा तो एकनाथ ने मान लिया कि ठीक है। और चोर ने अपने वचन का पालन किया। महीनों लगे यात्रा में, लेकिन उसने चोरी न की।
लेकिन एक उपद्रव शुरू हुआ। उपद्रव यह हुआ कि एक आदमी के बिस्तर की चीजें दूसरे आदमी के बिस्तर में मिलें। किसी के संदूक की चीजें किसी और के संदूक में मिलें। मिल तो जाएं, लेकिन चीजें गड़बड़ होने लगीं। एकनाथ को शक हुआ। उन्होंने पूछा उसको कि भई, तू कुछ कर तो नहीं रहा है?
उसने कहा कि देखिए, आपसे मैंने कहा कि चोरी नहीं करूंगा, सो मैं नहीं
कर रहा हूं। लेकिन मेरा अभ्यास तो मुझे जारी रखना पड़ेगा। रात मुझे नींद ही नहीं आती। तो मैं चुरा तो नहीं रहा हूं, एक चीज मैंने नहीं चुराई है, मगर इसके खीसे से निकाल कर उसके खीसे में कर देता हूं तो मुझे राहत मिलती है। फिर मैं निश्चिंत हूं, जब दो-तीन बजे रात को कुछ काम कर लिया, फिर सो जाता हूं। अब इसमें आप बाधा न दो। चीजें मिल ही जाएंगी उनको, सभी यहीं हैं, कोई कहीं जाता नहीं है। मगर आप जानते ही हो, लौट कर फिर मुझे काम तो अपना चोरी का करना ही पड़ेगा, तो अभ्यास। ऐसे अभ्यास चूक जाए! उस चोर ने कहा, देखो, आप भी रोज भगवान की प्रार्थना करते कि नहीं? ऐसे मेरा यह काम है।
तो एक अभ्यास, आदत से काम हो रहे हैं। वे ज्यादा घातक हैं पहले से। उनसे भी ज्यादा घातक तीसरे हैं। जो अभ्यास से भी ज्यादा गहरे हैं, आदत से भी ज्यादा गहरे हैं। क्योंकि किसी को सिगरेट पीनी हो, शराब पीनी हो, तो सीखनी पड़ती है; लेकिन लोभ अनसीखा है, क्रोध अनसीखा है। किसी को जुआ खेलना हो, तो सीखना पड़ता है। सीखोगे तो ही सीख पाओगे। जुआरियों का सत्संग मिलेगा तो सीख पाओगे। चोरों के साथ रहोगे तो चोरी सीख लोगे। लेकिन लोभ, क्रोध, काम, मोह, उनको सीखना नहीं पड़ता। उनको हम जन्म के साथ लेकर आए हैं। वह हमारे जन्मों-जन्मों की मूर्च्छा है।
शांडिल्य ने ठीक विभाजन किया, ये तीन अपराध हैं। तीसरा अपराध सबसे ज्यादा खतरनाक है, उसे तोड़ो। और जब तीसरा टूट जाता है तो दूसरे के टूटने में बड़ी आसानी हो जाती है। जो स्वभाव को बदल ले, उसको आदत बदलने में कितनी देर लगेगी? आदत तो ऊपर-ऊपर है। और जिसका दूसरा समाप्त हो जाता है, उसका पहला भी समाप्त होने लगता है। क्योंकि जितना जागरूक होता है व्यक्ति, उतनी ही आकस्मिक घटनाएं घटनी बंद हो जाती हैं। वह सम्हल कर चलता है, किसी के पैर पर पैर नहीं पड़ता। वह होशपूर्वक जीता है। फिर भी पहले तरह की

घटनाएं शायद कभी घट सकती हैं। उनका कोई बहुत मूल्य नहीं है। क्षमा मांग लेने से उनकी क्षमा हो जाती है। मगर दूसरे और तीसरे पर ध्यान रखना। सबसे ज्यादा तीसरे पर ध्यान रखना।
"निमित्त, गुण और अनपेक्षा के अनुसार अपराध की व्यवस्था है।"
पत्रादेः दानम अन्यथा हि वैशिष्ट्यम्।
"पत्र, पुष्प आदि दान में एक ही फल है।"
जागरूक होकर जीओ, फिर परमात्मा को तुम कुछ भी चढ़ा दो, फल एक है। यह बड़ा अदभुत सूत्र है। तुम जाकर कोहिनूर हीरा चढ़ा दो, या बेलपत्री चढ़ा दो; सोने के ढेर लगा दो, या एक फूल चढ़ा दो, या फूल की पंखुड़ी ही सही, फल एक है। जागरूक व्यक्ति के द्वारा कुछ भी चढ़ाया जाए परमात्मा को, फल एक है। परमात्मा के सामने न तो सोने का ज्यादा मूल्य है, और न फूल का कम मूल्य है। तुमने लाखों चढ़ाए कि दो-चार कौड़ियां चढ़ाईं, इससे कुछ फर्क नहीं पड़ता। तुमने चढ़ाया, इससे फर्क पड़ता है।
स्मृतिकारों ने कहा हैः देवताः भक्तिमिच्छन्ति।
"अर्थात फल उतना ही होगा जितनी भक्ति है।"
क्या दिया, यह नहीं; वरन कैसे दिया, किस भाव से दिया, किस हृदय से दिया। देवताः भक्तिमिच्छन्ति।
देवता तुम्हारा भाव देखते हैं, तुम्हारी भक्ति देखते हैं। तो कभी-कभी ऐसा हो जाता है, एक धनी आदमी हजार रुपये भी दे देता है जाकर मंदिर में, मगर भाव बिल्कुल नहीं होता। उसे हजार से कुछ फर्क ही नहीं पड़ता, दिए न दिए। और कभी कोई आदमी जाकर दो पैसे चढ़ा देता है; लेकिन तब भी फर्क पड़ता है। हो सकता है जिसने दो पैसे चढ़ाए उसके पास बस दो पैसे ही थे। उसने अपना सर्वस्व चढ़ा दिया। जिसने हजार रुपये चढ़ाए उसके पास करोड़ों थे, उसने कुछ भी नहीं चढ़ाया। परम अर्थों में गुण का मूल्य है, मात्रा का नहीं।
देवताः भक्तिमिच्छन्ति।
इस छोटे से गीत को सुनो। कवि यात्रा पर जा रहा है, मित्र उसे विदा करने
आए हैं।

पुष्प-गुच्छ माला दी सबने, तुमने अपने अश्रु छिपाए
एक चला नक्षत्र गगन में
और विदा की आई बेला,
और बढ़ा अनजान सफर पर
लेकर मैं सामान अकेला,
और तुम्हारा सबसे न्यारा--
पन मैंने उस दिन पहचाना
पुष्प-गुच्छ माला दी सबने, तुमने अपने अश्रु छिपाए

रस्म सदा से जो चल आई
अदा उसे करना मुश्किल क्या,
किसको इसका भेद मिला है
मुंह क्या बोल रहा है, दिल क्या
पिघले मन के साथ मगर था
जारी यह संघर्ष तुम्हारा,
शकुन समय अशकुन का आंसू पलक-पुटों से ढलक न जाए पुष्प-गुच्छ माला दी सबने, तुमने अपने अश्रु छिपाए

पहली ही मंजिल पर सारे
फूल और कलियां कुम्हलाईं,
मुरझाए कुसुमों पर किसने
आज तलक ममता दिखलाई,
कलक बहुत हो उनकी, फिर भी
अलग उन्हें करना पड़ता है,
सुधि के अंग बने वे जलकण जो कि तुम्हारे दृग में आए

पुष्प-गुच्छ माला दी सबने, तुमने अपने अश्रु छिपाए

दिया भी नहीं कुछ, सिर्फ आंसू आ न जाएं आंखों में, इन्हें छिपाया। क्योंकि शकुन के क्षण में आंसू कहीं अपशकुन न मालूम पड़ें। लेकिन सब दिए गए पुष्प-गुच्छ व्यर्थ हो गए, जल्दी ही सूख गए, कुम्हला गए।
सुधि के अंग बने वे जलकण जो कि तुम्हारे दृग में आए
पुष्प-गुच्छ माला दी सबने, तुमने अपने अश्रु छिपाए
जो छिपाया और दिया भी नहीं, वही पहुंचा। भाव परखे जाते हैं। अंतिम कसौटी भाव की है।
किसको इसका भेद मिला है
मुंह क्या बोल रहा है, दिल क्या
तुम मुंह से क्या बोलते हो, वह नहीं है प्रार्थना। तुम्हारा दिल क्या बोलता है, वही है प्रार्थना।
"पत्र, पुष्प आदि दान में एक ही फल है।"
इसलिए यह चिंता मत करना कि मुझ गरीब के पास क्या है? मैं क्या चढ़ाऊं? भाव की दृष्टि से तुम सभी सम्राट हो। भाव की दृष्टि से भगवान ने सभी को समान बनाया है। वह काव्य भाव का सभी को बराबर दिया है। तुम्हारे पास धन न हो, फिकर मत करना; तुम्हारे पास पद न हो, फिकर मत करना; तुम अपने को तो चढ़ा ही सकते हो। तुम्हीं वास्तविक धन हो। तुम अपने भावों को तो चढ़ा ही सकते हो। फिर दो पत्ते भी पर्याप्त हैं।

दो नैन कमल!
घूंघट में घनेरी रात लिए
आंचल में भरी बरसात लिए
कुछ पाए हुए, कुछ खोए भी
कुछ जागे भी, कुछ सोए भी
चंचल ऊषा के बान लिए
गंभीर घटा का मान लिए
सावन के सजल संगीत भरे
कुछ हार भरे, कुछ जीत भरे कुछ बीते दिनों की करवट-सी कुछ आते दिनों की आहट-सी
किन गलियों दीप जलाए सखी! ये भंवरे कित मंडलाए सखी! सपनों से बोझल-बोझल
दो नैन कमल!

कुछ घबराए, कुछ शर्माए
कुछ शर्मा-शर्मा इतराए
सखी! भेदी भेद न पा जाए
कुछ उलझी-सुलझी आशाएं
कुछ बूझी-बूझी भाषाएं
कुछ बिखरे-बिखरे राग लिए कुछ मीठी-मीठी आग लिए
अनुराग लिए, वैराग लिए
कुछ बीते दिनों की करवट-सी
कुछ आते दिनों की आहट-सी
किन गलियों दीप जलाए सखी!
ये भंवरे कित मंडलाए सखी!
नैनों से ओझल-ओझल
दो नैन कमल!

कुछ न भी चढ़ाया, आंखें गीली हो आईं।

दो नैन कमल!
पर्याप्त है। प्रार्थना पूरी हो गई। हृदय भर आया, पर्याप्त है, प्रार्थना पूरी हो गई। तुम झुक गए। देह झुकी या न झुकी, गौण है। प्राण झुक गए। प्रार्थना पूरी हो गई।
पुकारो--आंसुओं से, भाव से, प्राणों से। चढ़ाओ अपनी निजता, कुछ और चढ़ाने
का प्रयोजन नहीं। तुम्हारा धन परमात्मा के सामने धन नहीं है। परमात्मा के सामने सिर्फ तुम्हारा जीवन ही धन है।

गमे-फिराक में दिल अश्कबार रहता है
न दिन को चैन न शब को करार रहता है
हर-एक लम्हा मुझे इंतजार रहता है
अब इंतजार की घड़ियां मेरी बिता जाओ
मेरे रफीक! मेरे दिल-नवाज आ जाओ
पुकारो!
मेरे रफीक! मेरे दिल-नवाज आ जाओ

मेरे मित्र, मुझे ढाढ़स बंधाने वाले। पुकारो!

मेरे रफीक! मेरे दिल-नवाज आ जाओ
तसव्वुरात पर दिन-रात छाए रहते हो ख्याल-ओ-ख्वाब की दुनिया बसाए रहते हो अगर्चे रूह के अंदर समाए रहते हो
मगर जो आग है दिल में उसे बुझा जाओ
मेरे रफीक! मेरे दिल-नवाज आ जाओ

निगाहेंढूंढ़ती हैं तुमको लालाजारों में तलाश करता है दिल तुमको चांद-तारों में ख्याल रहता है हर वक्त कोहसारों में भटक रही हूं, निशां अपना कुछ बता जाओ मेरे रफीक! मेरे दिल-नवाज आ जाओ

तुम्हारी याद को दिल से लगाऊंगी कब तक
गमे-फिराक के सदमे उठाऊंगी कब तक
उम्मीदो-दीन की दुनिया बसाऊंगी कब तक
मैं जान हार रही हूं, मुझे जिता जाओ
मेरे रफीक! मेरे दिल-नवाज आ जाओ

पुकारो उस परम मित्र को, उस परम प्यारे को। तुम्हारी पुकार तुम्हारा पूरा हृदय हो। तुम्हारी पुकार में तुम्हारे सारे प्राण समा जाएं। तुम्हारी पुकार तुम्हारी समग्रता से उठे। बस वही भक्ति है। और सब आयोजन व्यर्थ हैं। और सब विधि-विधान दो कौड़ी के हैं। शांडिल्य ने उन्हें यजन कहा है, भजन नहीं। बुद्धि से जो होता है, यजन; भाव से जो होता, भजन। भजन से मिलता है भगवान। यजन से शायद संसार मिलता है। यत्न करोगे, धन कमा लोगे, पद कमा लोगे। लेकिन भगवान न तो यत्न से मिलता है, न प्रयास से। भगवान मिलता है जब तुम झुक जाते, परम हार में झुक जाते। जब तुम कहते हो, मेरे किए कुछ भी न होगा। जब तुम यह भ्रम ही तोड़ डालते हो कि मैं कुछ कर लूंगा, जब तुम्हारी असहाय अवस्था चरम शिखर पर पहुंचती है। बस उसी क्षण--उसी क्षण प्यारा आ जाता है।
अगर नहीं आया है प्यारा, तो तुमने पुकारा नहीं, इतना ही स्मरण रखना।
या तुमने पुकारा तो तुम्हारी पुकार झूठी थी। या तुमने पुकारा तो तुम्हारी पुकार हार्दिक न थी। या तुमने पुकारा तो तुमने शास्त्र की भाषा बोली, अपने प्राणों की भाषा नहीं बोली।

तुम्हारी प्रार्थना को तुम्हारे भीतर ही जन्मना है। जैसे फूल अपने पौधे पर जन्मता है, वैसे हर एक की प्रार्थना हर एक के जीवन में जन्मती है। और किसी की प्रार्थना तुम्हारी प्रार्थना नहीं बनेगी। मेरी प्रार्थना मेरी प्रार्थना है, तुम्हारी प्रार्थना तुम्हारी प्रार्थना है। मेरी प्रार्थना को तोड़ कर तुम पर लगा दूंगा, वह फूल तुमसे जुड़ेगा नहीं। वह उधार होगा। उससे तुम चाहे सज जाओ थोड़ी देर को, दुनिया को धोखा हो जाए, लेकिन उससे तुम्हारी रसधार न जुड़ेगी। वह जल्दी ही कुम्हला जाएगा, जल्दी ही गिर जाएगा। वह झूठा है। झूठे से बचो।
आज के सूत्रों का सार है इतना ही कि तुम पराए से बचो, अपने को तलाशो। अपनी निजता से एक इंच भी चलो तो बहुत है और किसी और के कंधे पर चढ़ कर हजार मील भी चले तो तुम चक्कर ही काटते रहोगे कोल्हू के बैल की तरह, कहीं पहुंचोगे नहीं। और ऐसा नहीं है कि तुमने प्रार्थना नहीं की है, कि तुम मंदिर नहीं गए, मस्जिद नहीं गए, गुरुद्वारे नहीं गए, तुम गए हो, मगर पहुंचे कहां? जरूर तुम कोल्हू के बैल की तरह चल रहे हो।
जागो! जाग कर अपनी जीवन-दशा को ठीक से पहचानो। उस जागरण में, उस समझ में एक बात तुम्हें स्पष्ट दिखाई पड़ जाएगी--उधार से काम चलने वाला नहीं है। परमात्मा सिर्फ तुम्हें स्वीकार करेगा। तुम किसी और के चेहरे लगा कर गए तो तुम चूकते जाओगे। तुम्हें अपना ही चेहरा खोजना पड़ेगा। और वह चेहरा अभी उपलब्ध है, जरा मुखौटे हटाने पड़ेंगे--हिंदू का मुखौटा, मुसलमान का मुखौटा, ईसाई का मुखौटा, जैन का मुखौटा, शब्दों के मुखौटे। हटा दो सब। नग्न होकर पुकारो उसे, और मिलन सुनिश्चित है।
आज इतना ही।

अथातो भक्ति जिज्ञासा, भाग 2
अट्ठाईसवां प्रवचन

सुख से चुकाओ मूल्य परमात्मा को पाने का

पहला प्रश्नः मैं आपको सुनता हूं तो अपने जीवन की व्यर्थता देख कर बहुत उदास हो जाता हूं। मुझे उबारें! मुझे बचाएं!

जीवन जैसा है उसकी व्यर्थता समझ में आ जाए, तो जीवन जैसा होना चाहिए उसकी खोज शुरू होती है। जब तक व्यर्थ को सार्थक समझा है, तब तक सार्थक से वंचित रहोगे। जिस दिन व्यर्थ व्यर्थ की तरह दिखाई पड़ जाएगा, आधी यात्रा पूरी हो गई। व्यर्थ का व्यर्थ की भांति दिखाई पड़ जाना, सार्थक का सार्थक की भांति दिखाई पड़ने के लिए पहला कदम है। उदास न होओ।
उदासी आती है, स्वाभाविक है। क्योंकि हम एक ढंग से जी रहे हैं। उसी ढंग से हमने अपना अब तक का जीवन बिताया; अपना समय लगाया, अपनी ऊर्जा लगाई। जीवन बहुमूल्य है, उसे हमने एक दांव पर लगाया। आज अचानक पता लगे कि वह दांव व्यर्थ था, वहां हारने के सिवाय जीतने की कोई सुविधा नहीं थी, हम धोखे में थे, तो उदासी आनी स्वाभाविक है। लेकिन जितनी जल्दी यह उदासी आ जाए, उतना शुभ। सुबह का भूला सांझ भी घर आ जाए तो भूला नहीं कहाता। मरने के एक क्षण पहले भी अगर यह दिखाई पड़ जाए कि जो जीवन हमने जीया वह व्यर्थ था, तो उस शेष एक क्षण में भी परमात्मा उपलब्ध हो सकता है। परमात्मा को पाने के लिए समय की थोड़े ही जरूरत है; दृष्टि के बदलाहट की जरूरत है। जो दृष्टि बाहर देख रही थी, वह भीतर देख ले, बस।
बाहर का व्यर्थ होगा तभी तो तुम भीतर देखोगे। जब तक बाहर तुम्हें सार्थक मालूम हो रहा है, तब तक भीतर तुम जाओगे क्यों? कंकड़-पत्थरों में हीरे मालूम हो रहे हैं तो तुम कंकड़-पत्थर बीनोगे। अगर बाहर सब कंकड़-पत्थर है, फिर क्या करोगे? फिर भीतर जाना ही होगा! और जब जाना ही होता है, तभी लोग जाते हैं। जब सब तरफ से हार जाते हैं, तभी लोग जाते हैं। पराजय पूरी होनी चाहिए। उदासी समग्र होनी चाहिए। इसी उदासी से आनंद का जन्म होता है। यहां सब व्यर्थ हो जाता है। तुमने धन कमाया, वह भी एक दिन व्यर्थ हो जाएगा। जितनी जल्दी समझ में आ जाए, उतना अच्छा। तुमने यहां प्रेम किया, वह भी उखड़ जाएगा, वह भी टूट जाएगा। जिनसे तुमने प्रेम किया वे भी मरणधर्मा हैं। तुम भी मरणधर्मा हो। यहां के नाते नदी-नाव-संयोग हैं। क्षणभंगुर के हैं। थोड़ी देर टिकते हैं, पानी के बबूले हैं। पानी केरा बुदबुदा! कितनी देर टिकेगा? जब तक है तब तक हो सकता है सूरज की रोशनी में चमके, इंद्रधनुष दिखाई पड़े पानी के बुलबुले में, लेकिन कितनी देर? टूटने को ही है। टूटना सुनिश्चित है। उसके होने में ही टूटना छिपा है। यहां बड़े सपने तुमने देखे हैं--प्रेम के, पद के, प्रतिष्ठा के--वे सब उखड़ जाएंगे।
मेरी बातें सुन कर उदासी आए, यह शुभ लक्षण है। इसके बाद दूसरी घटना भी घटेगी--अगर पहली घटना घट जाने दी तो दूसरी घटना भी घटेगी--आनंद का आविर्भाव भी होगा।

जख्म दिल के छुपाके देख लिया
गम से आंखें चुराके देख लिया
लज्जते-दर्द मैं निसार तेरे
तुझसे दामन बचाके देख लिया
दिल का हर जख्म मुस्कुरा उट्ठा नग्माए-ऐश गाके देख लिया जिंदगी का सुकून खो बैठे
गम की दौलत लुटाके देख लिया बिजलियां सैकड़ों चमक उट्ठीं फिर नशेमन बनाके देख लिया कैसी उल्फत, कहां की रस्मे-वफा सबको अपना बनाके देख लिया

हमनवा कौन? हमनफस कैसा?
नौहाए-गम सुनाके देख लिया
जिंदगी एक सराब है "जेबा"
खंदाए-गुल को जाके देख लिया

जरा फूल को पास से जाकर देखना।
खंदाए-गुल को जाके देख लिया
मुस्कुराते फूल को सुबह जरा पास से जाकर देख लेना।
जिंदगी एक सराब है "जेबा"
और तुम्हें समझ में आ जाएगा कि जिंदगी एक मृग-मरीचिका है।
जिंदगी एक सराब है "जेबा"
खंदाए-गुल को जाके देख लिया
दूर-दूर से मुस्कुराते फूलों को देखते रहोगे तो धोखा खाते रहोगे। पास से, निकट से देख लेना। इसलिए मैं जीवन से भाग जाने को नहीं कहता हूं। क्योंकि भाग जाओगे तो जागोगे कैसे? हिमालय की गुफाओं में बैठ जाओगे तो जागोगे कैसे? यह जीवन इतना दुखपूर्ण है, इतना व्यर्थ है, इतना असार है कि अगर इसके बीच रहे, तो आज नहीं कल जागोगे ही। सोओगे कैसे? बीच बाजार में सो रहे हो, नींद टूट ही जाएगी। हां, गुफा में बैठ गए हिमालय की तो शायद नींद लगी भी रह जाए।
इसलिए मैं कहता हूं, छोड़ कर मत जाना। इसलिए नानक ने नहीं कहा कि छोड़ कर जाओ। इसलिए मोहम्मद ने नहीं कहा कि छोड़ कर जाओ। कहा, रहो। जहां हो, वहीं रहो। जैसे हो, वैसे ही रहो--दुकान में, बाजार में, परिवार में। क्योंकि यह जो शोरगुल है चारों तरफ, यही तुम्हें जगाएगा। इसकी व्यर्थता तुम्हें जगाएगी। इससे दूर हट गए तो इसकी व्यर्थता का कांटा चुभेगा नहीं। फिर तुम सपनों में खो जा सकते हो। हिमालय की गुफाओं में बैठे लोग अक्सर भ्रांतियों में पड़ जाते हैं। मन की कल्पनाओं में खो जाते हैं। मन की कल्पनाएं--फिर तुम जो चाहो कर लो। कृष्ण को बांसुरी बजाता हुआ देखना हो तो कृष्ण को बांसुरी बजाते देखो। और राम को धनुषबाण लिए देखना हो तो राम को धनुषबाण लिए देखो। फिर तुम मुक्त हो। तुम्हारी कल्पना मुक्त है। तुम जो लड्डू खाना चाहो कल्पना के, खा लो।
लेकिन असली सत्य यहां घटता है, जगत में घटता है। चोट यहां है, व्यर्थ यहां है, तो सार्थक भी यहीं छिपेगा, यहीं मिलेगा, यहीं खोजना होगा।
और एक न एक दिन तो उदास होओगे ही। यहां कौन अपना है?
हमनवा कौन?
यहां कौन एक-दूसरे की भाषा समझता है?
हमनवा कौन? हमनफस कैसा?
यहां कौन किसका संगी है? कौन किसका साथी है? मन भरमाने की बातें हैं
कि पति है, कि पत्नी है, कि मित्र है, कि बेटा है, कि बाप है, कि मां है। यहां कौन किसका संगी? कौन किसका साथी? यहां कौन तुम्हारी भाषा समझता है? तुम किसकी भाषा समझते हो? कुछ का कुछ समझ लेते हो।
एक मित्र ने सवाल भेजा है कि आप पंजाबियों के दुश्मन क्यों?
मैं और पंजाबियों का दुश्मन! मैं पंजाबी हूं। तुम्हें मुझमें पंजाबी होने में कुछ कमी दिखाई पड़ती है? साफा भर बांधने की बात है। वह गुरुदयाल बैठे हुए हैं, गुरुदयाल से पूछ लेना; वह एक दफा साफा ले आए थे और साफा बंधवा कर मेरा चित्र निकाल लिया। मुझे बिल्कुल पंजाबी बना दिया।
मैं पंजाबियों का दुश्मन! तुम समझ ही नहीं पाते। यहां कोई किसी की भाषा नहीं समझ पाता।
उन सज्जन ने लिखा है कि हम पंजाबी आपके झांसे में आने वाले नहीं।
कुछ कहा जाता है, कुछ समझ लिया जाता है। तुम मजाक भी नहीं समझ सकते! तुम पंजाबियों से भी गए-बीते हो गए! कम से कम मजाक तो समझो। तुम मेरा प्रेम भी नहीं समझ सकते! प्रेम है, इसीलिए चोट करता हूं। तुम चोट से तिलमिला जाते हो। जगाना चाहता हूं, इसलिए चोट करता हूं। तुम जागने की बजाय नाराज हो जाते हो, गालियां बकने लगते हो।

हमनवा कौन? हमनफस कैसा?
नौहाए-गम सुनाके देख लिया
सबको अपना दुखड़ा सुना कर देख लिया। न कोई समझता है, न कोई संगी है, न कोई साथी है। इस जिंदगी में तुमने सब करके देख लिया। क्या बचा है? अक्सर करने को ज्यादा है भी नहीं। थोड़ी सी बातें हैं, लोग उन्हीं को दोहराए चले जाते हैं। बार-बार वही क्रोध, वही प्रेम, वही घृणा। कोल्हू के बैल जैसी जीवन की गति है। तुमने सब करके देख लिया और बहुत बार करके देख लिया; किस आशा के सहारे बैठे हो अब? किस भविष्य की प्रतीक्षा कर रहे हो? तोड़ दो सब आशाएं, हो जाओ निराश। छोड़ दो सारा भविष्य, हो जाओ उदास। उसी उदासी से तुम्हारे जीवन का फूल खिलेगा जो शाश्वत है।
अभी मुस्कुराएगी यह फजा, अभी रोशनी नजर आएगी
यह जो जुल्मते-शबे-यास है, यह नवेदे-सुबह भी लाएगी
इस उदासी से घबड़ा मत जाना। इस उदासी को मिटाने की चेष्टा में मत लग जाना। यह उदासी मंदिर है। इसी में परमात्मा का आरोपण होगा। यह उदासी ही तो वैराग्य का सूत्र है। इसी से तो परमात्मा का राग जगेगा। संसार से राग टूटे, तो परमात्मा से राग जुड़े।
जब तक संसार से राग है, परमात्मा से विराग है। जब तक संसार में रस है,
तब तक परमात्मा से तुम विरस रहोगे। जब तक आंखें संसार पर लगी हैं, तुम संसार को सन्मुख किए हो, परमात्मा से विमुख रहोगे। जैसे ही मुड़े संसार से, फिर और कोई बचता नहीं, यहां दो ही तो हैं--एक बाहर है और एक भीतर है; एक चैतन्य है और एक पदार्थ है। एक व्यर्थ है और एक सार है। व्यर्थ से मुड़े कि सार से जुड़े। संसार से विमुख हुए कि परमात्मा के सन्मुख हुए।
अभी मुस्कुराएगी यह फजा...
जरा ठहरो। उदासी से घबड़ा मत जाना। इसको दबा मत देना। इसको लीप-पोत कर मिटा मत देना। जल्दी से फिर अपनी मरी हुए आशाओं में सांस मत फूंक देना। मर गई आशाओं को फिर से पानी मत दे देना।
अभी मुस्कुराएगी यह फजा...
ये जो उदास आंखें हो गई हैं, ये मुस्कुराएंगी, जरा रुको।
... अभी रोशनी नजर आएगी
अभी सब अंधेरा हो गया है, घबड़ाओ मत, इसी अंधेरे से आदमी रोशनी की तरफ पहुंचता है।
झूठे दीये बुझ गए तो अंधेरा हो जाता है। लेकिन इसी अंधेरे में अगर तुम बैठे रहे, बैठे रहे, तो सच्चे दीये जलेंगे। निश्चित जलते हैं। सच्चे दीये जल ही रहे हैं, लेकिन तुम्हारी आंखों की आदत झूठे दीयों को पहचानने की हो गई है, इसलिए थोड़ी देर लगती है। तुमने देखा नहीं, बाहर रोशनी में से आते हो घर लौट कर तो घर में अंधेरा मालूम होता है! थोड़ी देर बैठे कि फिर अंधेरा नहीं मालूम होता। बाहर की रोशनी के आदी हो गए, घर लौटे तो आंखों को नया समायोजन करना पड़ता है। आंखों को बदलाहट करनी पड़ती है। थोड़ा समय लगता है। बैठ गए, थोड़े सुस्ता लिए, आराम किए, फिर घर में रोशनी दिखाई पड़ने लगती है। ऐसे ही तुम जन्मों-जन्मों तक बाहर रहे हो, अपने घर के बाहर रहे हो, आंखें बाहर के लिए बिल्कुल ही राजी हो गई हैं, परिचित हो गई हैं, भीतर तुम गए नहीं जन्मों-जन्मों से, घर तुम लौटे नहीं जन्मों-जन्मों से, जब पहली दफा लौटोगे, सब अंधेरा हो जाएगा। घबड़ाना मत। इस अंधेरे में ही गुरु की सहायता की जरूरत है कि वह तुम्हें सम्हाले रखे। तुम्हारा तो मन कहेगा, बाहर चलो, वहां रोशनी तो थी कम से कम। कुछ आशा थी, कुछ भविष्य था, कुछ रस था, जीने का कोई बहाना और उपाय था। यहां तो कोई जीने का बहाना भी नहीं और उपाय भी नहीं। यहां करना क्या है? उठो, बाहर चलो। मन तो कहेगा, दौड़ो फिर, फिर जगा लो अपने पुराने सपने, फिर फैला दो सपनों का वितान।
अभी मुस्कुराएगी यह फजा, अभी रोशनी नजर आएगी
यह जो जुल्मते-शबे-यास है, यह नवेदे-सुबह भी लाएगी
घबड़ाओ मत, इस रात के बाद ही सवेरा है।
जो तड़प गई तो यह बर्क है, जो मचल गई तो यह मौज है
यह तेरी नजर कि है शोबिदा, कोई ताजा गुल ही खिलाएगी

यह उदासी कुछ ताजा गुल खिलाने की तैयारी है।
यह हवाए-यास बजा मगर तपिशे-उम्मीद पे रख नजर
वह जो इक चिराग बुझाएगी तो यह सौ चिराग जलाएगी
घबड़ाओ मत। झूठे दीये बुझ गए तो अच्छा।
वह जो इक चिराग बुझाएगी तो यह सौ चिराग जलाएगी
गर दिलो-दिमाग पे छा गई हैं गमे-हयात की तल्खियां
तेरी याद फिर तेरी याद है, तेरी याद दिल से न जाएगी
संसार से उदास हो जाओगे, इतना ही मत देखो, यह आधी कहानी है। इसी के पीछे उठ रहा है दूसरा हिस्सा कहानी का कि परमात्मा की आशा जगेगी; संसार की आशा गिरेगी, परमात्मा की आशा जगेगी।
तेरी याद फिर तेरी याद है, तेरी याद दिल से न जाएगी
और एक बार संसार की याद दिल से चली गई तो फिर परमात्मा को भुलाने का उपाय नहीं। फिर कैसे भूलोगे? फिर उसके सिवाय कुछ बचता नहीं--जागो तो उसमें जागोगे, सोओ तो उसमें सोओगे, उठो तो उसमें उठोगे, बैठो तो उसमें बैठोगे, जीओ तो उसमें जीओगे, मरो तो उसमें मरोगे, फिर सब तरफ से वही है। एक बार संसार से हमारा याद का रिश्ता टूट जाए।
यह नसीम नर्म अभी चली है, अभी से इसका गिला न कर
जो बहार बनके यह छा गई तो कली-कली को हंसाएगी
थोड़ी प्रतीक्षा। थोड़ा धैर्य।
तुम नये-नये आए होओगे, तुम मुझे सुन कर उदास हो गए हो। तुम यहां और लोगों को भी देखते हो जो सुन कर मुझे आनंदित हो रहे हैं? जब वे भी पहली- पहली बार आए थे, तो वे भी उदास हुए थे। जब पहली-पहली बार वे भी आए थे, तो वे भी नाराज हुए थे। जब पहली-पहली बार वे भी आए थे, तो उनको भी चोटें लगी थीं, जख्म हुए थे। अब वे ही जख्म फूल बन गए हैं। अब वे ही चोटें जागरण बन गई हैं। अब उदासी नहीं है, अब चित्त उनका मगन है। उनका चित्त बड़े आनंद में है।
इस दूसरे प्रश्न से तुम्हें समझ में आ सकेगा--

दूसरा प्रश्नः मैं आपको पाकर पा रहा हूं कि सब पा गया हूं। हालांकि लोग कहते हैं कि मैं पागल हो गया हूं। यह मुझे क्या हो गया है?

लोग ठीक ही कहते हैं। तुम पागल हो गए हो। प्रेम पागलपन है। पर जिसने प्रेम जाना, उसके लिए सिर्फ प्रेम ही समझदारी रह जाती है। जिन्होंने प्रेम नहीं जाना, उनके लिए प्रेम पागलपन है। उन्होंने स्वाद ही नहीं चखा उस बात का। उन्हें धन पागलपन नहीं है, पद पागलपन नहीं है, प्रेम पागलपन है। जिन्होंने प्रेम चखा, उनके लिए धन पागलपन है, पद पागलपन है, उन्हें सब पागलपन है, सिर्फ प्रेम ही एकमात्र बुद्धिमानी है।
लेकिन लोग भी ठीक ही कहते हैं। लोग अपने ही हिसाब से तो कहेंगे न! लोग तुम्हारे हिसाब से कैसे कहें? लोगों को लगता है कि तुम कुछ डगमगा गए।
क्योंकि लोगों को लगता है, जैसे वे चल रहे हैं, तुम अब वैसे नहीं चल रहे। तुमने लोगों से अपना ढंग अलग कर लिया। तुम्हें आनंद आ रहा है। तुम मगन हो रहे हो। मगर लोगों को लग रहा है कि तुम बेढंग पर जा रहे हो।
भीड़ चाहती है कि सदा तुम भीड़ के साथ राजी रहो। भीड़ तुम्हें स्वतंत्रता नहीं देना चाहती। भीड़ व्यक्ति को बरदाश्त नहीं करती। भीड़ व्यक्ति की हत्या करती है, व्यक्ति को बिल्कुल मिटा देना चाहती है। भीड़ गुलाम चाहती है। फिर वे गुलाम हिंदू हों कि मुसलमान, कि सिक्ख, कि ईसाई, कि जैन, कुछ फर्क नहीं पड़ता। भीड़ की एक ही कला है कि तुम्हें पोंछ दे, मिटा दे। तुम तुम्हारी तरह न रहो, तुम्हारे भीतर भीड़ प्रवेश कर जाए। तुम भीड़ की भाषा बोलो, भीड़ के सिद्धांत मानो, भीड़ का शास्त्र दोहराओ, भीड़ जो कहे वैसा करो, भीड़ जैसा चलाए वैसा चलो। भीड़ मंदिर जाए तो तुम मंदिर जाओ, भीड़ मस्जिद जाए तो तुम मस्जिद जाओ। भीड़ मस्जिद में आग लगाए तो तुम मस्जिद में आग लगाओ, भीड़ मंदिर की मूर्ति तोड़े तो तुम मूर्ति तोड़ो। भीड़ जो करे वही करो।
लोग भीड़ में सम्मिलित हो जाने के लिए उत्सुक भी होते हैं। कारण हैं कई। एक तो जितना तुम भीड़ के साथ हो जाते हो, उतनी ही तुम्हारी चिंता कम हो

जाती है। तुम्हारा जिम्मेवारी का भाव, तुम्हारा उत्तरदायित्व का भाव कम हो जाता है।
मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि जो पाप भीड़ करती है, वह व्यक्ति कभी नहीं कर सकता। और अगर किसी भीड़ ने कोई पाप भी किया हो--समझो कि किसी भीड़ ने जाकर मंदिर तोड़ डाला हो, कि गुरुद्वारे में आग लगा दी हो, कि मस्जिद जला दी हो-- अगर इस भीड़ के एक-एक आदमी से तुम अलग-अलग जाकर पूछो, तो वह कहेगा कि मैं कैसे कर पाया, कह नहीं सकता। हो गया। अगर तुम उससे पूछो कि क्या तुम अकेले यह कर सकते थे? तो वह हिचकिचाएगा। अकेले वह नहीं कर सकता था। अकेले में आदमी के पास थोड़ा सा उत्तरदायित्व का भाव होता है। भीड़ में सब उत्तरदायित्व खो जाता है। भीड़ का नशा पकड़ लेता है। इतने लोग कर रहे हैं, तो ठीक ही कर रहे होंगे। फिर इतने लोग कर रहे हैं, तो मेरी कोई जिम्मेवारी भी नहीं है। अगर मंदिर जलेगा, तो मैं कोई अकेला जिम्मेवार नहीं हूं। मैंने जलाया, ऐसा सवाल ही नहीं। मैं तो सिर्फ भीड़ में था, जलाने वाले तो और ही लोग थे। और भीड़ में हर एक आदमी यही सोच रहा है जैसा तुम सोच रहे हो कि जलाने वाली तो भीड़ है, मैं तो भीड़ में हूं सिर्फ।
भीड़ ने जितने बड़े अपराध किए हैं, कभी व्यक्तियों ने नहीं किए। व्यक्तियों के नाम बड़े छोटे-मोटे अपराध हैं। असली अपराध भीड़ के नाम हैं। तो व्यक्ति को आसानी भी मिलती है भीड़ के साथ जुड़ जाने में। तुम्हारी अपराध की वृत्ति को भी सुविधा मिलती है। क्योंकि भीड़ के सहयोग के कारण अपराध पुण्य जैसा मालूम होता है। पाप पुण्य बन जाता है। तुम अकेले करो तो मन कचोटेगा, अंतःकरण पर चोट लगेगी, कांटा गड़ेगा। भीड़ के साथ करो, तुम्हें अंतःकरण की कोई चिंता ही नहीं। अंतःकरण को एक तरफ रख दिया जा सकता है। तुम्हारे भीतर छिपी हुई पशुता को सुविधा से प्रकट होने का मौका मिल जाता है।
भीड़ में तुम परमात्मा से दूर हो जाते हो और पशु के करीब हो जाते हो। अकेले में जितने तुम व्यक्ति होते हो उतने ही तुम परमात्मा के करीब होते हो। क्योंकि उतना ही अंतःकरण, उतना ही विचार, उतना ही ध्यान सजग होता है। तुम एक-एक कदम सोच कर उठाते हो कि मैं जिम्मेवार हूं, यह मंदिर जलाऊं? इस दूध पीते बच्चे को मारूं? इसने क्या बिगाड़ा है? इसे कुछ पता भी नहीं है। यह हिंदू है कि मुसलमान है, इसका भी पता नहीं है, इसे मैं मारूं? अकेले तुम पाप करने चलोगे, कुछ सोचना ही पड़ेगा। बड़े से बड़ा पापी भी विचार करता है। लेकिन भीड़ के साथ पाप पुण्य हो जाता है। मजे से कर सकते हो और रात आकर निश्चिंत सो सकते हो। उत्तरदायित्व से मुक्ति मिल जाती है भीड़ में।
जिस आदमी ने हिरोशिमा पर एटमबम गिराया और एक लाख आदमियों को पांच मिनट के भीतर राख कर दिया, वह आदमी रात लौट कर निश्चिंतता से सोया। थोड़ा सोचो! एक लाख आदमी तुमने मार डाले हों और तुम निश्चिंतता से सो सकोगे? वह आदमी कैसे सो सका? यह मत सोचना कि वह कोई बड़ा भारी दानव था। तुम्हारे जैसा आदमी था, ठीक तुम्हारे जैसा, साधारण आदमी था। उसकी पत्नी थी, उसका बच्चा था, उसके मां-बाप थे, किसी ने कभी उसे ऐसा नहीं जाना कि इतना महाहत्यारा है वह। लेकिन सुबह जब पत्रकारों ने पूछा कि इतने लोगों के मरने के बाद तुझे कैसा लगा? उसने कहा, कोई सवाल ही नहीं, मैंने आज्ञा का पालन किया! ऊपर से आज्ञा आई थी। मैं आकर निश्चिंत सो गया। आज्ञा पूरी कर दी, मेरा काम पूरा हो गया, मैं निश्चिंत सो गया।
अब सवाल यह है, आज्ञा किसने दी? इसके लिए कौन जिम्मेवार था? ट्रूमैन प्रेसीडेंट था अमरीका का जब यह एटमबम गिरा। जब ट्रूमैन से पूछा गया तो उसने कहा कि मैं क्या कर सकता हूं? मेरे जनरलों ने सलाह दी थी। ट्रूमैन भी मजे से सोया, क्योंकि उस पर कोई जिम्मेवारी नहीं। और जब जनरलों से पूछा गया, उन्होंने कहा, हम क्या कर सकते हैं, राष्ट्रपति की आज्ञा थी!
भीड़ में जब कोई बात होती है तो कोई जिम्मेवार नहीं होता। हर आदमी अपनी जिम्मेवारी दूसरे पर टाल देता है। जिम्मेवारी के लिए कोई राजी नहीं होता कि मैं जिम्मेवार हूं। जिन्होंने एटमबम बनाया, उन्होंने भी जिम्मेवारी अनुभव नहीं की। उन्होंने कहा, हम तो सिर्फ विज्ञान की खोज कर रहे हैं।

हमने इसलिए थोड़े ही बनाया था कि तुम लोगों को मारो। हमने तो बड़ी भारी खोज की है। उन्होंने भी अनुभव नहीं किया कि हमारी कोई जिम्मेवारी है।
फिर जिम्मेवार कौन था? एक लाख आदमी मरे, यह निश्चित। बम गिराया गया, यह निश्चित। बम बनाया गया, यह निश्चित। किसी की आज्ञा से गिरा, यह भी निश्चित। लेकिन इतनी भीड़ संयुक्त है उसमें कि सब एक-दूसरे पर टाल दे सकते हैं। कोई जिम्मेवार नहीं मालूम होता।
भीड़ में लोग सम्मिलित होना चाहते हैं, क्योंकि आत्मा को खोने का सबसे सुगम उपाय है। और भीड़ भी चाहती है कि तुम भीड़ में रहो, क्योंकि भीड़ का बल उसकी संख्या में है। जब तुम अकेले-अकेले चलने लगोगे, जब तुम व्यक्ति बनोगे--और वही संन्यास का अर्थ है, कि तुम अब अपने अंतःकरण से जीओगे; अब तुम्हें जो ठीक लगता है वह तुम करोगे, नहीं कि भीड़ कहती है कि ठीक है; अब तुम अपना निर्णय स्वयं लोगे; अपने पाप-पुण्य के लिए स्वयं जिम्मेवार होओगे; अब तुम किसी पर टालोगे नहीं--तो निश्चित ही लोग कहेंगे कि तुम पागल हो रहे हो।
फिर, अनेक बार तुम्हारे और भीड़ के बीच बड़ा फासला हो जाएगा। भीड़ यजन करेगी, तुम भजन करोगे। बड़ा फर्क हो जाएगा। भीड़ कहेगी, सत्यनारायण की कथा हो रही है, आओ! तुम कहोगे, इस कथा में क्या रखा है? क्योंकि जो कथा कर रहा है, उसे कुछ पता नहीं है। और इस कथा में सत्यनारायण की बात कहीं आती ही नहीं। यह कथा बड़ी मजेदार है। इससे सत्य का कोई लेना-देना ही नहीं। तुम शायद मंदिर न जाओ। क्योंकि तुम देखोगे वहां एक पेशेवर पुजारी पूजा कर रहा है। पेशेवर कैसे पूजा करेगा? तुम शायद मस्जिद न जाओ। क्योंकि तुम कहोः मस्जिद में भी कोई नहीं है--कोई प्रतिमा तो है नहीं, कोई आधार-आलंबन तो है नहीं--तो जहां सिर झुका कर बैठ जाऊंगा वहीं मस्जिद हो गई, मस्जिद जाने की क्या जरूरत है?
एक सूफी फकीर जिंदगी भर मस्जिद जाता रहा। इतने नियम से मस्जिद गया पांचों बार दिन में नमाज पढ़ने, कि लोग यह सोचना ही भूल गए थे कि कभी ऐसा भी होगा कि वह मस्जिद न आएगा। कभी एकाध-दो बार ऐसा हुआ था, जब कि वह बहुत बीमार था और उठ न सका, तो ही। कभी गांव छोड़ कर नहीं गया, कि दूसरे गांव जाए और वहां मस्जिद न हो! लेकिन एक दिन सुबह लोगों ने पाया कि वह नहीं आया। कल शाम तक तो आया था, बिल्कुल ठीक था, तो बीमार भी नहीं हो सकता। एक ही शक हुआ कि बूढ़ा आदमी, मर न गया हो! मस्जिद के बाद लोग सीधे उसके घर पहुंचे। वह अपने घर के सामने, झोपड़े के सामने एक वृक्ष के नीचे बैठा ढपली बजा रहा था और गीत गा रहा था। उन्होंने कहा, बुढ़ापे में नास्तिक हो गए? बुढ़ापे में कुफ्र सूझा? काफिर हो गए? मस्जिद क्यों नहीं आए?
वह फकीर हंसा और उसने कहा कि जब तक अज्ञानी थे, तब तक आए। जब तक पता नहीं था कि परमात्मा सब जगह है, तब तक मस्जिद आए। अब तो पता है कि सब जगह है, यहां भी है, वहां भी है, कहां आना, कहां जाना! अब तो जहां हैं वहीं गीत गाएंगे। अब तो हर गीत नमाज है।
मगर भीड़ इससे राजी नहीं हुई। भीड़ ने कहा कि बुढ़ापे में सठिया गया।
तो भीड़ तुमसे कहेगी कि तुम पागल हो गए हो। तुम्हारा रंग-ढंग समझ में न आएगा। भीड़ ठीक ही कहती है। मगर यह पागलपन इस जगत में सबसे बड़ी बुद्धिमत्ता है। बुद्ध को भी भीड़ ने कहा थाः पागल हो गए! कबीर को भी भीड़ ने कहा थाः पागल हो गए! क्राइस्ट को भी भीड़ ने कहा थाः पागल हो गए! भीड़ सदा से यही कहती रही है। तुम सौभाग्यशाली हो कि भीड़ तुमको भी पागल कह रही है। इस पागलपन को कष्ट मत समझना। इसे भीड़ की तरफ से तुम्हारे व्यक्तित्व का सम्मान समझना। पूछते हो तुमः "मैं आपको पाकर पाता हूं कि सब पा गया हूं। हालांकि लोग कहते हैं कि मैं पागल हो गया हूं।"
तुम भी ठीक हो और लोग भी ठीक हैं। अपनी-अपनी दृष्टि! अपने-अपने देखने
का ढंग! उन्हें तो कैसे पता चले कि तुम कुछ पा गए हो? उन्हें तो तुम्हारे अंतस्तल में प्रवेश का कोई उपाय नहीं है। वे तो कैसे तुम्हारे भीतर झांकें? वहां तो अकेले तुम हो। वहां तो तुम देख सकते हो, या मैं देख सकता हूं तुम्हारे भीतर। तुम ठीक कह रहे हो। संपत्ति तुम्हें मिलनी शुरू हो गई है। तुम संपदा के मार्ग पर हो। तुम्हें अंतर का राज्य धीरे-धीरे उपलब्ध

हुआ जा रहा है। पहले कदम उठ चुके हैं, बीज बो दिए गए हैं, फसल भी समय पर आ जाएगी। तुम ठीक दिशा में यात्रा कर रहे हो। लेकिन भीड़ से तुम दूर जा रहे हो। भीड़ पागल कहेगी। इससे तुम चिंता मत लेना। अन्यथा चिंता के कारण तुम्हारी अंतर्यात्रा में बाधा पड़ जाएगी। इसे तुम निंदा भी न समझना। भीड़ को कहने देना। तुम इसका उत्तर देने में भी मत पड़ना। तुम हंसना। जब भीड़ पागल ही मानती है तो अब तुम काहे को फिकर कर रहे हो? भीड़ कुछ कहे, तुम हंसना। तुम धन्यवाद देना। अब जब पागल ही हो गए हो तो पूरे ही पागल हो जाना उचित है। अब तुम समझदारी सिद्ध करने की कोशिश मत करना। क्योंकि उससे भीड़ तो राजी नहीं होगी, तुम्हारी अंतर्यात्रा में अड़चनें आ जाएंगी। तुम अब बुद्धिमानी छोड़ो। तुम्हें बुद्धिमानी से ज्यादा बड़ी बुद्धिमानी हाथ लग गई है। तुम्हें प्रेम का रास्ता पकड़ में आ गया है।

फिर किसी ने नजर चुराई है
जज्बाए-दिल तेरी दुहाई है
जिस तरह बाग में बहार आए
दिल में यूं तेरी याद आई है
लुत्फे-सय्याद जिसमें शामिल हो
वह असीरी नहीं, रिहाई है
इश्क जब तक न साजगार हुआ
जिंदगी किसको रास आई है
न तसव्वुर कोई, न कोई ख्याल
दिल में तेरी ही धुन समाई है
ऐ सबा दे खबर असीरों को
फिर चमन में बहार आई है
बुलबुलें चुप हैं, गुल खमोश-खमोश
इक उदासी चमन पे छाई है
जब मिली है तेरी नजर से नजर
जिंदगी जैसे मुस्कुराई है
जामे-लबरेज देख कर "इशरत"
चश्मे-मखमूर याद आई है

तुम्हारी जिंदगी में परमात्मा की शराब की पहली झलक आने लगी। लोग कहने लगे कि तुम लड़खड़ा कर चल रहे हो। लोग कहने लगे कि अब तुम्हारा पुराना ढंग न रहा। लोग कहने लगे कि तुम पागल हो गए हो।
फिर किसी ने नजर चुराई है
तुम्हारी नजरें कहीं और जा रही हैं। जहां संसार की नजरें लगी हैं वहां तुम अब नहीं देख रहे हो, इसलिए लोग कह रहे हैं कि तुम पागल हो गए हो। फिर किसी ने नजर चुराई है
परमात्मा तुम्हारे हृदय को चुराने में लग गया है।
तुम्हें ख्याल है, इस देश के पास एक शब्द है परमात्मा के लिए जो दुनिया की किसी भाषा में नहीं है--हरि। हरि का अर्थ होता हैः चोर। हर ले जो, चुरा ले जाए जो। परमात्मा सबसे बड़ा चोर है।
अब तुम नाराज मत हो जाना कि मैंने परमात्मा को चोर कह दिया! अब तुम सोचने मत लगना कि इस आदमी के झांसे में नहीं आना है! यह तो हद्द हो गई, परमात्मा और चोर!
लेकिन परमात्मा चोर है, मैं क्या करूं? सच को तो कहना ही होगा। तुम झांसे में आओ कि न आओ, मगर सच को तो सच जैसा है वैसा कहना होगा। परमात्मा चुराता है इस ढंग से जिस ढंग से कोई नहीं चुराता। पैरों की आहट भी नहीं मिलती और कब हृदय चुरा लिया जाता है, पता नहीं चलता। किस अंधेरी रात में, कब परमात्मा तुम्हारे द्वार-दरवाजे को तोड़ कर भीतर आ जाता है, कुछ कहा नहीं जा सकता। तुम सोए ही रहते हो और चोरी चले जाते हो।
फिर किसी ने नजर चुराई है
जज्बाए-दिल तेरी दुहाई है

तुम, लोग क्या कहते हैं, इसकी फिकर छोड़ो। तुम तो अपने दिल को, अपनी भावना को धन्यवाद दो।
जज्बाए-दिल तेरी दुहाई है
हे हृदय के भाव, तेरा धन्यवाद! तुझे परमात्मा ने इस योग्य समझा कि तेरी नजर चुरा ले, कि तेरा हृदय चुरा ले।
जिस तरह बाग में बहार आए
दिल में यूं तेरी याद आई है
रेगिस्तान में, जहां सब तरफ मरुस्थल होता है, कहीं छोटे-मोटे मरूद्यान होते हैं। सारा मरुस्थल मरूद्यान को पागल समझता होगा। क्योंकि भीड़ तो मरुस्थल की है, विस्तार तो मरुस्थल का है, उसमें कहीं एक छोटा सा पानी का चश्मा है, दो-चार वृक्ष ऊग आए हैं, थोड़ी हरी घास भी लगती है, मरुस्थल कहता होगा कि यह स्थान पागल हो गया। स्वाभाविक है मरुस्थल का यह कहना। यह मरुस्थल को कहना ही पड़ेगा, नहीं तो मरुस्थल को बड़ी आत्मग्लानि होगी। अगर मरुस्थल यह माने कि यही सही होने का ढंग है--हरा होना, फूल से भरा होना, नाचते हुए होना, मस्त होना, प्रभु के प्रेम में डूबा हुआ होना--अगर यही होने का ठीक-ठीक ढंग है, तो फिर मैं क्या कर रहा हूं? तो मेरा होने का ढंग गलत है।
अगर तुम अंधों की दुनिया में पहुंच जाओ तो अपनी आंखों की घोषणा मत करना, अन्यथा वे तुम्हारी आंखें निकाल लेंगे। क्योंकि अंधे बर्दाश्त न कर सकेंगे कि तुम आंख वाले हो। तुम्हारी आंखें उनको उनके अंधेपन की याद दिलाएंगी।
इसीलिए तो जीसस को सूली लगानी पड़ी और मंसूर को मार डालना पड़ा, सुकरात
को जहर पिलाना पड़ा। इसीलिए तो महावीर के कानों में कीले ठोंके गए। इसीलिए तो बुद्ध पर पत्थर पड़े। उनके कारण हमें याद आती है कि हम चूक गए। उनका साम्राज्य देख कर हमें याद आती है कि हम भिखमंगे के भिखमंगे रह गए। और हमारी भीड़ है। हमें बर्दाश्त के बाहर हो जाती है यह बात। हम ऐसे आदमी को हटा देना चाहते हैं जिसके कारण हमें कष्ट हो रहा है, जिसके कारण हमें अपनी दीनता का बोध हो रहा है। तुम उस आदमी को बर्दाश्त नहीं करते जिसके कारण तुम्हें लगता है कि तुम व्यर्थ हो गए हो। न होता यह आदमी, न व्यर्थता का पता चलता।
अगर कुरूप आदमियों का बस चले तो सौंदर्य को वे नष्ट कर दें। कुरूप आदमियों को मौका मिले तो सुंदरों को वे मार डालें। क्योंकि इन्हीं की वजह से वे कुरूप हैं, अन्यथा क्यों? अगर सभी कुरूप होते तो अड़चन ही क्या थी? अगर झूठों का बस हो तो सच को जीने न दें, फांसी पर लटका दें। लटकाते हैं। क्योंकि सच मिट जाए, पूरी तरह मिट जाए, तो फिर झूठ सच जैसा मालूम होता है। ऐसा ही समझो कि झूठे सिक्के बाजार में चलते हैं। अगर सच्चे सिक्के बिल्कुल ही विदा हो जाएं, तो फिर झूठे सिक्के झूठे नहीं रहेंगे। सिक्के अकेले वही रह गए, अब झूठा क्या, सच क्या! सच्चे सिक्के की मौजूदगी झूठे सिक्के को कष्ट का कारण है। और झूठ की भीड़ है!
जिस तरह बाग में बहार आए
दिल में यूं तेरी याद आई है
यह जो जीवन का वसंत है, यह जो परमात्मा का वसंत है, यह एक साथ नहीं आता-- किसी के हृदय में आ जाता है, और बाकी सबके हृदय पतझड़ में होते हैं। किसी का फूल खिल जाता है, और सब तरफ कांटे ही कांटे होते हैं। कांटे नाराज हो जाते हैं। कांटे बदला लेते हैं। कांटे ईर्ष्या से भर जाते हैं।
लोग पागल कहते हैं, वे अपनी आत्मरक्षा में कहते हैं। उनकी तुम चिंता
मत करना। वे यह कह रहे हैं कि हम पागल नहीं हैं। जब वे तुमसे कहते हैं कि तुम पागल हो, तो वे इतना ही कहना चाह रहे हैं कि हम पागल नहीं हैं। इतने लोग पागल नहीं हो सकते।
जार्ज बर्नार्ड शॉ के पास एक दिन एक आदमी गया। जार्ज बर्नार्ड शॉ ने कुछ कह दिया था जो उस आदमी को बड़ी चोट कर गया। उसने जाकर बर्नार्ड शॉ को कहा कि आप जो कहते हैं, कहने वाले आप अकेले हैं। मैं जो मानता हूं, सारी दुनिया मानती है। सारी दुनिया के करोड़ों लोग गलत नहीं हो सकते।

पता है बर्नार्ड शॉ ने क्या कहा? बर्नार्ड शॉ हंसा और उसने कहा, इतने लोग जिस बात को मानते हैं, वह बात सही हो ही नहीं सकती। सत्य तो कभी-कभार मिलता है। वह किरण तो कभी-कभी उतरती है। वह तो दुर्लभ है। झूठ तो सब अपना ईजाद कर सकते हैं। सत्य तो तुम ईजाद नहीं कर सकते। सत्य तो तब आता है जब तुम विदा हो जाते हो। उतनी हिम्मत बहुत कम लोगों की है। जो अपने को समाप्त कर देता है, सत्य उसे मिलता है।
लेकिन दूसरे लोगों और तुम्हारे बीच खाई पड़ जाएगी। तुम न तो नाराज होना, न चिंता करना। न जवाब देने जाना। तुम अपनी मस्ती में रहना। यह समय खराब करना ही मत। उत्तर देने की भी कोई जरूरत नहीं है, तर्क करने की भी कोई जरूरत नहीं है।
जिस तरह बाग में बहार आए
दिल में यूं तेरी याद आई है
लुत्फे-सय्याद जिसमें शामिल हो
अहेरी का आनंद भी जिसमें सम्मिलित हो। यह तुम्हारे आनंद में परमात्मा
का आनंद भी सम्मिलित है।
लुत्फे-सय्याद जिसमें शामिल हो
वह असीरी नहीं, रिहाई है
वह गुलामी नहीं है, मुक्ति है। यह जो तुम्हारे भीतर घट रहा है, यह मुक्ति का पहला आकाश खुल रहा है।
इश्क जब तक न साजगार हुआ
जिंदगी किसको रास आई है
तब तक जिंदगी रूखी-सूखी है, तब तक जिंदगी मरुस्थल है, जब तक प्रेम का झरना न फूटे। इन रूखे-सूखे लोगों के बीच जब तुम्हारे पल्लव फूटेंगे, तुम हरे होओगे, तो इनकी नाराजगी समझ लेना। कबीर ने तो इसीलिए कहा है कि अपने पत्तों को छिपा लेना। हीरा मिल्यो गांठ गठियायो, वाको बार-बार क्यों खोले? बताना ही मत किसी को, नहीं तो लोग एकदम नाराज हो जाएंगे। किसी को कहना ही मत कि मुझे मिल गया है।
सूफी फकीर कहते हैंः प्रार्थना भी रात के अंधेरे में करना, जब कोई देखे नहीं। नहीं तो लोग कहेंगे, तुम पागल हो। चुपचाप कर लेना रात के अंधेरे में, चुपचाप बुला लेना परमात्मा को। चुपचाप उससे बात कर लेना, चुपचाप डूब जाना। किसी को कानोंकान खबर मत होने देना। लोग पागल हैं। जब तुम्हारा पागलपन पहली दफे मिटेगा, वे तुम्हें बर्दाश्त न कर सकेंगे। उन्होंने कभी किसी को बर्दाश्त नहीं किया है।
न तसव्वुर कोई, न कोई ख्याल
दिल में तेरी ही धुन समाई है
सब कल्पनाएं चली जाती हैं, सब स्वप्न चले जाते हैं, सब विचार चले जाते हैं, बस एक धुन गूंजती रह जाती है। उस धुन का नाम भजन है। उस धुन के अतिरिक्त जो भी किया जाता है, सब यजन है, उसका कोई मूल्य नहीं है।
ऐ सबा दे खबर असीरों को
ऐ हवा! जा और बंदियों को भी खबर पहुंचा दे!
फिर चमन में बहार आई है
स्वाभाविक है वह भाव भी। जब तुम्हें मिलता है, स्वाभाविक मन उठता है, जिन्हें तुम प्रेम करते हो उन्हें भी बांट दो। मगर बहुत सम्हल कर कदम उठाना। क्योंकि यहां कोई किसी की भाषा नहीं समझता।
कोई हमनवा नहीं, कोई हमनफस नहीं। न कोई संगी है, न साथी है। जो तुम्हारी बात समझ सके, बस उससे ही कह देना। उतना ही कहना जितना समझ सके। ज्यादा मत उंडेल देना। जितना पचा सके उतना ही कहना। फिर और पचा सके तो और कहना। धीरे-धीरे कहना। धीरे-धीरे अपने आनंद को बताना।
ऐ सबा दे खबर असीरों को
कैदियों को खबर कर दे, ऐ हवा!
फिर चमन में बहार आई है
बुलबुलें चुप हैं, गुल खमोश-खमोश
इक उदासी चमन पे छाई है

जब मिली है तेरी नजर से नजर
जिंदगी जैसे मुस्कुराई है
इसके पहले सब उदास था।
बुलबुलें चुप हैं, गुल खमोश-खमोश
इक उदासी चमन पे छाई है
ऐसा था कि न तो बुलबुल बोलती थी, न कोयल गीत गाती थी, न पपीहा पुकारता था। फूल ही नहीं थे, तितलियां नहीं उड़ती थीं; न कोई सुगंध थी, न कोई शीतलता थी। सब उदास था, सब जड़ और मुर्दा था। लेकिन अब बात बदल गई है।
जब मिली है तेरी नजर से नजर
जिंदगी जैसे मुस्कुराई है
जामे-लबरेज देख कर "इशरत"
भरे प्याले को देख कर--
चश्मे-मखमूर याद आई है
इस भरे हुए हृदय में, इस आनंद से भरे हुए प्याले को देख कर वह नशीली आंख याद आनी शुरू हो गई है। जब तुम्हारे भीतर प्रेम का प्याला भरेगा, तो उस प्रेम के प्याले में ही परमात्मा की आंखें पहली दफा झलकेंगी। यह भी होगा। अभी तुम उदास हुए हो, घबड़ाओ मत। जल्दी यह घड़ी भी आएगी जब तुम भी यह प्रश्न पूछ सकोगे कि मुझे क्या हो गया है? क्या मैं पागल हो गया हूं? लोग कहते हैं मैं पागल हो गया हूं। हालांकि मुझे लगता है कि मुझे सब मिल गया है।
जैसा प्रेम में घटता है, साधारण लौकिक प्रेम में घटता है, उससे अनंत गुना, अनंत-अनंत गुना पारलौकिक प्रेम में घटता है।
बेखुदी के साज पर गाने का मौसम आ गया
आएगा मौसम। प्रतीक्षा चाहिए। बस प्रतीक्षा और प्रार्थना।
बेखुदी के साज पर गाने का मौसम आ गया
लेकिन याद रखना, यह साज बेखुदी का है। यहां तुम मिटोगे तो ही साज मिलेगा। तुम शून्य हो जाओगे तो ही साज मिलेगा। तुम्हारी शून्यता में ही यह संगीत उठने वाला है।
बेखुदी के साज पर गाने का मौसम आ गया
आ गया पीकर बहक जाने का मौसम आ गया
अभी उदास हुए हो, यह पहली बात हुई। चमन उदास-उदास, बुलबुलें खमोश-खमोश। सब ठहरा हुआ। एक दुनिया उजड़ गई जो तुमने बसाई थी। वे नावें जो तुमने चलाई थीं, कागज की हैं। ऐसा मैंने कहा, ऐसा तुम्हें दिखाई पड़ गया, तुम धन्यभागी हो! जो मकान तुमने बनाए थे वे मकान नहीं थे, केवल ताश के पत्तों के घर थे। मैंने कहा और तुम्हारी समझ में आ गया, तुम धन्यभागी हो! तुम्हें मेरी भाषा पकड़ में आ गई। इसीलिए तुम उदास हुए हो। अगर भाषा समझ में न आती तो तुम नाराज होते, उदास नहीं।
फर्क समझ लेना। दो ही तरह के लोग हैं यहां मेरे पास आने वाले। या तो वे
जो उदास हो जाते हैं, या वे जो नाराज हो जाते हैं। जो नाराज हो गए वे चूक गए। फिर दुबारा उनके आने का कोई कारण न रहा। न केवल वे दुबारा नहीं आएंगे, और कोई आता होगा तो उसको भी रोकेंगे। जो उदास हो गया वह तो आएगा। उसे तो आना ही पड़ेगा। अब उसकी उदासी कहीं और न मिट सकेगी। अब तो वह मेरा बीमार हो गया। अब तो मेरे पास ही उसका उपचार है। अब तो वह तलाशेगा। जैसे भी बन सकेगा, वैसे करीब आएगा। और तब दूसरी घटना निश्चित घटती है।
बेखुदी के साज पर गाने का मौसम आ गया
आ गया पीकर बहक जाने का मौसम आ गया
फिर पयामे-आमदे-जानां सकूने-शाम है
सेज पर कलियों के खिल जाने का मौसम आ गया
प्यारा आने को है, प्रीतम आने को है। प्रीतम के आने का संदेश आ गया। फिर पयामे-आमदे-जानां सकूने-शाम है
और संध्या की प्रतीक्षा!
सेज पर कलियों के खिल जाने का मौसम आ गया

जैसा साधारण प्रेम में घटता है, उससे अनंत-अनंत गुना इस प्रेम में घटता है। जैसे साधारण प्रेम में लोग पागल समझे जाते हैं, इस प्रेम में तो बहुत बड़े पागल समझे जाते हैं।
यह तड़प, यह दर्द, यह रग-रग में हलकी सी कसक
यह शबाब आया कि मर जाने का मौसम आ गया
तोड़ कर हमदम! हर इक रस्मो-रहे-कौनीन को
लगजिशों पर लगजिशें खाने का मौसम आ गया
अब लड़खड़ाओ! अब डगमगाओ! अब पीओ! और बेखुदी हो तो ही पी पाओगे। इसलिए मैं तुमसे कहता हूं कि यहां अगर मेरे निकट तुम्हें होना है, अगर सच में ही सत्संग करना है, तो अपने को पोंछो। हिंदू, मुसलमान, ईसाई, सिक्ख, जैन की तरह मत आओ यहां! अन्यथा तुम आओ ही मत। आने की कोई जरूरत नहीं है। क्योंकि तुम्हारी वे धारणाएं, तुम्हारे वे ख्याल तुम्हें वंचित कर देंगे। और मैं तुम्हें याद दिला दूं कि मैं वही कह रहा हूं जो महावीर ने कहा था और बुद्ध ने कहा था, नानक-कबीर ने कहा था, मोहम्मद ने कहा था। मैं वही कह रहा हूं। और उन्होंने भी यही कहा था तुमसे कि जब आओ तो सब छोड़ कर आना। सब बाहर रख आओ। यहां खाली होकर आओ, बेखुद होकर आओ। थोड़े निर-अहंकार भाव से आओ। तो वह जादू हो सकता है।
बेखुदी के साज पर गाने का मौसम आ गया
आ गया पीकर बहक जाने का मौसम आ गया
फिर पयामे-आमदे-जानां सकूने-शाम है
सेज पर कलियों के खिल जाने का मौसम आ गया
वह दूसरी घटना भी सुनिश्चित घटती है। औरों को घटी है, तुमको भी घटेगी।

तीसरा प्रश्नः कल आपने बताया कि भगवान को पाने के लिए मूल्य चुकाना होगा। और उसी समय आपने यह भी बताया कि शरीर को कष्ट देकर परमात्मा पाया नहीं जा सकता। कृपया समझाएं कि फिर मूल्य किस तरह चुकाना होगा? क्या सक्रिय ध्यान शरीर को कष्ट देना नहीं है?

सुभाष ने पूछा है! सुभाष के लिए है। और जिसके लिए शरीर को कष्ट देना हो, वह सक्रिय ध्यान न करे। कष्ट से परमात्मा का कोई संबंध नहीं है। सुख का भाव चाहिए। तुम अपने को सता कर परमात्मा से जुड़ोगे नहीं, टूट जाओगे। लेकिन ख्याल रखना, जो बात एक के लिए कष्ट हो सकती है, दूसरे के लिए आनंद हो सकती है। तुम्हारे लिए दौड़ने में कष्ट हो, किसी दौड़ाक को आनंद है। और जो दौड़ने का आनंद जानता है वह भरोसा ही नहीं कर सकेगा कि दौड़ने में कष्ट कैसा! दौड़ने के क्षणों में ही, सुबह की रोशनी में, सागर के तट पर उसने जीवन के सबसे सुखद क्षण जाने हैं। जिसे तैरने में सुख है, वह समझ ही नहीं पाएगा कि तुम कहते हो तैरने में कष्ट है! लोग अलग-अलग हैं। किसी को ब्रह्ममुहूर्त में उठ जाने में आनंद है--जरूर उठे। लेकिन किसी को कष्टपूर्ण है--जरा भी न उठे। अपने स्वभाव को परखो, पहचानो।
सुख-दुख का अर्थ क्या होता है? इतना ही अर्थ होता है--सुख का अर्थ होता हैः तुम्हारे स्वभाव के अनुकूल पड़ रहा है। और क्या अर्थ होता है? दुख का अर्थ होता हैः स्वभाव के प्रतिकूल पड़ रहा है। जो स्वभाव के प्रतिकूल है, वह परमात्मा से कैसे जोड़ेगा? क्योंकि परमात्मा का अर्थ ही स्वभाव है। इसलिए मेरी बात को खूब ख्याल से समझ लेना।
तुम्हारे भीतर अपने को दुख देने की वृत्ति है। क्योंकि सदियों से तुम्हें यह सिखाया गया है कि उसको पाने के लिए तपश्चर्या करनी है। मैं कह रहा हूं, उसे पाने के लिए आनंदमग्न होना है। तुम्हारी पुरानी धारणा इतनी गहरी बैठी है कि तुम मेरी बात भी सुन लोगे, फिर भी शायद ही समझ पाओ। तुम्हें कहा गया है कि अपने को कष्ट दो। यह किसने कहा है? यह जानने वालों ने नहीं कहा। जानने वाला यह कह ही नहीं सकता। महावीर कैसे कह सकते हैं कि अपने को कष्ट दो! क्योंकि महावीर तो कहते हैं--स्वभाव धर्म है। महावीर कैसे कह सकते हैं कि कष्ट दो! लेकिन फिर कैसे यह कष्ट की कहानी पैदा हो गई? फिर जैन मुनि क्यों कहता है कि कष्ट दो?

कहानी पैदा होने का राज समझो।
महावीर नग्न हो गए। महावीर के लिए नग्न होना आनंद था। महावीर को वस्त्र से मुक्त होकर सारी सीमाओं से मुक्ति मिली। उनके पीछे जो आया, उसने देखा कि महावीर नग्न हो गए। नग्न होने से यह ज्ञान को उपलब्ध हुए। मैं भी नग्न हो जाऊं, तो मैं भी ज्ञान को उपलब्ध हो जाऊंगा। यह गणित सीधा मालूम होता है। वह भी नग्न हो गया। लेकिन नग्न होने के लिए उसे बड़ा अभ्यास करना पड़ा है। सर्दी थी, धूप थी, फिर लोग थे, लोकलाज थी, उसने सब तरह से अपना अभ्यास किया, कर-कर के किसी तरह अपने को नंगा खड़ा कर लिया। फिर जब नग्न खड़ा किया, और अगर यह स्वभाव के अनुकूल न हो, तो कष्ट तो होगा ही। तो उसने समझा कि कष्ट दिए बिना परमात्मा को नहीं पाया जा सकता, यह कीमत चुकानी है। और अगर कष्ट देने ही से परमात्मा को पाया जा सकता है, तो उसने अपने को कष्ट देने के और नये-नये तरीके ईजाद किए। घास पर सोएगा, कांस पर सोएगा, बिस्तर पर नहीं सोएगा; धूप में खड़ा रहेगा; भयंकर धूप जल रही होगी और वह धूनी रमा कर बैठेगा; बर्फ पड़ रही होगी, कि बर्फ जम रही होगी, तब वह जल में जाकर खड़ा हो जाएगा। उसको यह ख्याल में आ गया--अपने को कष्ट देना है।
महावीर ने महीनों तक उपवास किए। लेकिन उन उपवासों में कष्ट नहीं था। तुम महावीर की प्रतिमा देख कर भी इसका प्रमाण पा सकते हो कि उनमें कष्ट नहीं था। क्योंकि महावीर की देह तो बड़ी बलिष्ठ मालूम होती है। अगर महीनों उपवास किया था तो या तो कहानी गलत है महीनों उपवास की, और अगर कहानी सच है तो महावीर को बिल्कुल रास आया होगा, महावीर के शरीर को बिल्कुल जमा होगा। ऐसे लोग हैं जिन्हें उपवास रास आ सकता है। जिनको भोजन ही ले जाना भीतर कष्टपूर्ण हो जाता है। जो कम से कम भोजन पर जीने में ज्यादा सुगमता पाते हैं। स्वभाव का भेद है।
तुम यहां भी देख सकते हो चारों तरफ। कुछ लोग हैं जो थोड़ा सा भोजन लेते हैं, फिर भी चंगे हैं, मस्त हैं! कुछ जो कितना ही खाए चले जाते हैं, फिर भी रूखे-सूखे हैं। फिर भी जीवन में कोई जीवन-धारा नहीं मालूम पड़ती, कोई ऊर्जा नहीं मालूम पड़ती, कोई चमक नहीं मालूम पड़ती। जैसे भोजन काम ही नहीं आ रहा है। कुछ लोग जैसे रूखे-सूखे पर जी लेते हैं। और रूखे-सूखे से भी खूब हरे- भरे होते हैं।
महावीर ने महीनों उपवास किया, यह सच है। लेकिन महावीर का उपवास तुम्हारे जैन मुनि वाला उपवास नहीं था। मैं महावीर के बिल्कुल पक्ष में हूं, जैन मुनि के जरा भी पक्ष में नहीं हूं। जैन मुनि रुग्ण चित्त से भरा है। महावीर के उपवास का अर्थ थाः महावीर इतने आनंदित थे, इतने ध्यान में मग्न थे कि जब कभी दस-पांच दिन में भोजन की याद आती थी तो भीख मांगने चले जाते थे; जब याद नहीं आती थी तो मस्त अपनी मस्ती में रहते थे। जैसे वायु ही काफी थी। और मस्ती ऐसी थी कि जब याद आए भोजन की, तो ही। भीतर रमे थे। यह सुख की अवस्था थी, यह दुख की अवस्था नहीं थी। उपवास शब्द का अर्थ भी यही होता है--अपने भीतर वास, अपने निकट वास। परमात्मा के निकट होने का नाम उपवास है। उपवास और अनशन में भेद है। अनशन कष्टपूर्ण है, उपवास आनंदपूर्ण है। अनशन का मतलब होता हैः मार रहे भूखा अपने को! जब कोई राजनैतिक नेता अनशन पर चला जाता है, वह अनशन है। उसको उपवास भूल कर मत कहना। वह भूखा अपने को मार रहा है। वह दबाव डाल रहा है। वह अपने को सता कर दबाव डाल रहा है लोगों पर कि मेरी बात मान लो, नहीं तो मैं मर जाऊंगा। वह धमकी दे रहा है आत्महत्या की, और कुछ नहीं है। उस पर असल में मुकदमा चलना चाहिए, वह आत्महत्या की धमकी दे रहा है। वह यह कह रहा है--मैं मर जाऊंगा, तुम मेरी बात मानो। फिर मेरी गलत हो या सही, यह बात का मौका ही नहीं दे रहा है वह। विचार का मौका नहीं देता। वह तो ऐसे ही है जैसे एक आदमी छुरी लेकर अपनी छाती पर खड़ा हो जाए और कहे कि मैं छुरी मार लूंगा, मेरी बात मानो। इसमें और उसमें कुछ भेद नहीं है। यह हिंसक वृत्ति है।
इसलिए महात्मा गांधी के उपवास को मैं उपवास नहीं कहता, अनशन कहता हूं। उसमें हिंसा की वृत्ति है। और जब महात्मा गांधी के उपवास को अनशन कहता हूं, तो तुम समझ सकते हो कि मोरारजी देसाई के उपवास को तो मैं अनशन भी नहीं कह सकता। वह तो उससे भी गई-बीती बात है। इसमें सब दबाव है, जबर्दस्ती

है। इसमें दूसरे को बेचैन करने का उपाय है। दूसरा आदमी सोचने लगता है कि अब इतना मामला ही क्या है! कि भई ठीक है, चलो वोट ले लेना, और क्या करोगे! तुम्हीं को वोट दे देंगे। मगर उपवास तो तोड़ो। चलो यह मौसंबी का रस पी लो! जान न गंवाओ! इतनी सी बात के लिए मरते नहीं हैं!
महावीर ने अनशन नहीं किया। भूख-हड़ताल भी नहीं थी वह। उपवास था। उपवास बड़ा आह्लादपूर्ण शब्द है। अपने भीतर रमे थे। इतने रमे थे ध्यान में कि याद ही न आया कि भोजन करना है। कभी-कभी तुम्हारे जीवन में भी ऐसी घटना घटती है, अगर पहचानोगे। कभी कोई प्रियजन तुम्हारे घर आ गया है--स्त्रियों को अक्सर घट जाती है। सोहन का मुझे पता है, उसे घट जाती थी। उसके घर जब मैं मेहमान होता था, वह भूल ही जाएगी भोजन करना। इतने आनंद में मग्न हो जाएगी कि अब कहां फुर्सत भोजन इत्यादि की! भूख ही न लगेगी। तुमने ख्याल किया कभी? जब प्रेम से चित्त भरा होता है, भूख नहीं लगती।
मैं एक घर में मेहमान था। उस घर की महिला ने मुझे कहा कि एक सवाल मुझे पूछना है, मैं किसी से पूछ नहीं सकी। जैन परिवार था। और अपने मुनियों से तो मैं पूछ ही नहीं सकती, क्योंकि वे तो बहुत नाराज हो जाएंगे--बात ही ऐसी है! आपसे पूछ सकती हूं। उसने अपने पति से भी क्षमा मांगी कि आप मुझे क्षमा करें, यह प्रश्न मुझे जिंदगी भर से सता रहा है, यह मुझे पूछना ही है। आप बुरा न मानना। पति ने कहा, मैं क्यों बुरा मानूंगा! तू पूछ, क्या सवाल है? उसने कहा, सवाल यह है कि जब मेरी सास मरी तो घर में किसी ने खाना नहीं खाया और मुझे बहुत भूख लगी। मुझे इतनी भूख कभी लगी ही नहीं थी। उस बात को मैं छोड़ नहीं पाती कि वह क्या हुआ? घर में सब रो रहे हैं और मुझे भूख लगी है! नई-नई बहू की तरह आई थी। और उसने कहा कि बात यहीं तक रुक गई होती तो ठीक थी। उस दिन किसी ने भोजन किया ही नहीं, करने की सुविधा ही नहीं थी, शाम के वक्त मरी थी सास तो "अंथऊ" का समय बीत गया। शाम का भोजन तो जैन कर लेते हैं, फिर सूरज डूब गया, फिर तो भोजन हो नहीं सकता। तो मरने में लगे थे, मृत्यु द्वार पर खड़ी थी, मरघट ले जाना था, बात ही खतम हो गई। और उसको इतनी भूख लगी है! उसने कहा कि मैं इतनी परेशान हो गई कि रात मैंने चोरी से जाकर चौके में भोजन किया। मैंने जिंदगी में बस एक ही चोरी की है। और वह भी ऐसी चोरी कि मुझे ऐसा लगे कि मैं कैसा पाप कर रही हूं! सारा घर तो दुखी है और मुझे भूख की पड़ी है! और फिर अपने ही मकान में चोरी करके रात जो कुछ मिला वह खा-पी लिया। मगर जब ठीक से खा-पी लिया, तब मैं सो पाई। क्या हुआ मुझे?
मैंने उससे कहा, इसमें चिंता की जरा भी बात नहीं है। सचाई यह है कि दुख में भूख लगती है, सुख में भूख खो जाती है। दुख में शरीर की याद आती है, सुख में शरीर की याद खो जाती है। यह इतना सीधा सा सूत्र है। तुम जब सुखी होते हो, तुम्हें शरीर की याद नहीं आती। बिना सिरदर्द के कभी तुम्हें सिर की याद आई है? सिरदर्द होता है तो ही सिर की याद आती है। और पेट में दर्द होता है तो पेट की याद आती है। पैर में कांटा चुभता है तो पैर की याद आती है। अगर शरीर समग्ररूप से सुख में हो तो याद ही नहीं आती। शरीर विस्मृत हो जाता है सुख में, दुख में याद आता है।
वह स्त्री तो मेरे पैर पर गिर पड़ी। उसने कहा, आपने मुझे मुक्त कर दिया। मैं तो मरी जा रही थी कि मैंने कुछ पाप किया है।
मैंने कहा, तू फिकर मत कर। तेरे पति से पूछ, ईमानदारी से वे कहें।
वे पति बोले कि अब आप जब पूछते ही हैं और जब बात ही खुल गई, तो सच तो यह
है कि मुझे भी भूख लगी थी। हालांकि मैंने चुराया नहीं, मेरी मां मर गई, रात भर मैं भूख में तड़फता रहा। मगर वह सहना था; क्योंकि मां मर गई, यह कोई बात है! लेकिन भूख मुझे भी लगी थी।
दुख में शरीर की याद आएगी, भूख की याद आएगी, सुख में खो जाएगी याद।
महावीर महासुख में थे। ध्यान के सुख में थे। भोजन की याद कभी-कभार आती थी।
जब शरीर की बिल्कुल जरूरत हो जाती थी तब याद आती थी। तब वे चले जाते थे, गांव में भोजन मांग लेते थे।
जैन मुनि जबर्दस्ती भूख-हड़ताल कर रहा है। जबर्दस्ती अनशन कर रहा है।
यह कष्ट देना है।

पीछे तर्क क्या है? तर्क इतना ही है, महावीर को ध्यान फला, ध्यान के पीछे-पीछे उपवास फला। उपवास आया छाया की भांति। उपवास के कारण ध्यान नहीं आया था, ध्यान रखना, ध्यान के कारण उपवास आया था। लेकिन बाहर से जब तुम देखोगे तो ध्यान का तो कुछ पता नहीं चलता कि हुआ है या नहीं हुआ, पहले तो उपवास का पता चलता है--बाह्य बातें पहले पता चलती हैं। तो तुम्हारे बाहर से देखने के कारण अड़चन खड़ी होती है। तुम्हें उपवास पहले दिखाई पड़ता है कि महावीर उपवास कर रहे हैं। और फिर तुम सोचते हो कि इतने शांत चित्त हो गए हैं तो ध्यान भी हुआ होगा, समाधि भी लगी होगी। तो उपवास करने से समाधि लगी है। यहीं भूल हो गई। समाधि लगने से उपवास होता है। महावीर नग्न हो गए, इस कारण समाधि नहीं लगी; महावीर को समाधि लगी--वस्त्र छूट गए।
फिर ऐसा भी नहीं है कि सभी को समाधि एक जैसी लगेगी। नहीं तो कृष्ण के
भी छूट जाते, बुद्ध के भी छूट जाते, राम के भी छूट जाते। प्रत्येक व्यक्ति अनूठा है। और जब भी तुम किसी की नकल करोगे, कष्ट में पड़ जाओगे। अपनी तरफ ध्यान रखो, अपने स्वभाव का ध्यान रखो।
तो सुभाष के लिए तो मैं कहता हूंः सक्रिय ध्यान करना मत। सुभाष को तो बाबा मलूकदास पर ध्यान करना चाहिए।
अजगर करै न चाकरी, पंछी करै न काम।
दास मलूका कह गए, सबके दाता राम।।
सुभाष जो है, एक तरह के दास मलूका। अपना स्वभाव खोजो! अपने स्वभाव का अनुसरण करो! भूल कर किसी की नकल में मत पड़ जाना, अन्यथा तुम कष्ट पाओगे--और कष्ट पाने से परमात्मा से दूर हो जाओगे, निकट नहीं आओगे। मैं तुम्हें आनंद का मार्ग दे रहा हूं। मैं तुमसे यह कह रहा हूं कि तुम जितने सुखी, जितने शांत, जितने आनंदित, उतने ही प्रभु के स्मरण से भरोगे। क्योंकि तभी तो अनुग्रह करने को कुछ होगा तुम्हारे पास, प्रार्थना करने को कुछ होगा। अभी है क्या? जीवन की थोड़ी सी रसधार बहे तो तुम परमात्मा के चरणों में झुक कर कह सको--धन्यवाद! अभी है क्या? अभी धन्यवाद उठे कहां से? अभी धन्यवाद का कोई कारण दिखाई नहीं पड़ता, अभी शिकायत उठती है, धन्यवाद नहीं उठता। और शिकायत से यजन पैदा होता है। और धन्यवाद से भजन पैदा होता है।
तुमने पूछा हैः "आपने कहा कि भगवान को पाने के लिए मूल्य चुकाना होगा।"
यही मूल्य है। सुखी होना होगा। अब तुम बड़े हैरान होओगे। तुम कहोगे, यह
भी कोई मूल्य है? लेकिन मैं तुमसे कहता हूंः यही कठिन बात है। दुखी होना बिल्कुल सरल बात है। सारी दुनिया दुखी है। दुखी होने के लिए कोई बुद्धिमत्ता चाहिए? बुद्धू भी दुखी हैं। दुखी होने के लिए कोई कुशलता चाहिए? कोई गणित चाहिए? गंवार से गंवार आदमी भी दुखी है। सुखी होने के लिए गुण चाहिए, कुशलता चाहिए, कला चाहिए।
तुम्हें मेरी बात बड़ी उलटी लगेगी। इसीलिए मैं कहता हूं कि समझोगे तो
ही समझ पाओगे। जरा सहानुभूति रखी तो शायद थोड़ी समझ में आ जाए। मैं तुमसे कहता हूंः सुखी होकर मूल्य चुका दो। नाच कर मूल्य चुका दो। गीत गाकर मूल्य चुका दो। आनंद भाव से मूल्य चुका दो। लेकिन तुम्हें लगता है कि दुख हो तो मूल्य चुकाया। तुम दुख से ऐसे जकड़ गए हो कि तुमने दुख को सिक्के मान लिया है। तुमने क्या समझा है? परमात्मा कोई दुष्ट, कोई अनाचारी, कोई दुखवादी, कोई सैडिस्ट है? कि तुम दुखी होओगे तो वह बड़ा प्रसन्न होगा, कि देखो बेटा कितना भूख-हड़ताल कर रहा है! अब आ जा, पास आ जा! तूने काफी भूख-हड़ताल कर ली; ले, मौसंबी का रस पी! तुमने परमात्मा को समझा क्या है? कोई एडोल्फ हिटलर? कि तुम अपने को सताओगे तो वह बड़ा आनंदित होगा? तुम कांटों की सेज पर लेटोगे तो वह बड़ा प्रसन्न होगा कि अहा! कैसी तपश्चर्या कर रहे हो!! परमात्मा तुम्हारा दुश्मन तो नहीं है। तुम्हारा प्यारा है, तुम्हारा प्रीतम है। क्या तुम सोचते हो, छोटा बेटा धूप में खड़ा रहेगा तो मां बड़ी प्रसन्न होगी? कि छोटा बेटा कांटों में लेटा रहेगा तो मां बड़ी प्रसन्न होगी?
तुम फूल की शय्या बनाओ। कांटों की शय्या बना-बना कर तुमने सिर्फ अपने साथ मूढ़ता की है। तुम सुख में पगो। तुम सुख का राग जन्मने दो। तुम सुख की

वीणा बजाओ। तुम्हारी मस्ती तुम्हें उसके पास ले जाएगी। इसीलिए तो तुम्हारे साधु-संन्यासी नाचते हुए, प्रसन्न नहीं दिखाई पड़ते। लेकिन असली साधु-संन्यासी ऐसे नहीं थे। नानक को देखा? साथ ही लिए रहते थे एक शिष्य को कि जब भी उनको गीत गाने की मौज आ जाए तो वह वाद्य बजाने को मौजूद रहे। कबीर को देखा? वे मस्ती के गीत! मीरा को देखा? वह नृत्य! ये साधु हैं। साधु तो सुखी आदमी है। सुख की ही परम अवस्था साधुता है। दुखी रुग्ण है, विक्षिप्त है। उसकी चिकित्सा होनी चाहिए।
मैं दुनिया से चाहता हूं दुखवादी धर्म विदा हो जाएं, क्योंकि दुखवादी धर्म दुखवादियों ने ईजाद किए हैं। इनका धर्म-संस्थापकों से कोई संबंध नहीं है। ये तुम्हारी मूढ़ता से पैदा हुए हैं। तुमने देखा कि महावीर नग्न खड़े हैं, मैं भी नग्न खड़ा हो जाऊं। तुमने देखा कि क्राइस्ट सूली पर चढ़े हैं, मैं भी सूली पर चढ़ जाऊं। तुमने जीवन को नाटक बना लिया है, उसमें से असलियत खो गई है, अभिनय बना लिया है। तुम नकली हो गए हो, तुम कार्बनकापी हो गए हो। और कार्बनकापियां परमात्मा को बिल्कुल पसंद नहीं हैं। परमात्मा चाहता है तुम अपने मूल रूप में प्रकट होओ। तुम्हारा मूल रूप में प्रकट हो जाना ही तो परमात्मा को पा लेना है। और क्या है परमात्मा को पा लेना? सुख अर्थात स्वभाव के अनुकूल जो हो, दुख अर्थात स्वभाव के प्रतिकूल जो हो। सुख से चुकाओ कीमत।
"कल आपने बताया कि भगवान को पाने के लिए मूल्य चुकाना होगा।"
निश्चित चुकाना होगा।
"और उसी समय आपने यह भी बताया कि शरीर को कष्ट देकर परमात्मा नहीं पाया जा सकता।"
तुम्हारे मन में सवाल उठा होगा कि मूल्य तो कष्ट से चुकाया जाता है!
कष्ट से मूल्य नहीं चुकाया जाता। कभी नहीं चुकाया गया है। धन्यभाग से मूल्य चुकाया जाएगा, महासुख से मूल्य चुकाया जाएगा।
इसलिए अक्सर ऐसा हो जाता है, लोग प्रश्न पूछते हैं, एक मित्र ने प्रश्न पूछा है--और ऐसे अक्सर प्रश्न आते हैं--कि हम आपकी किताबें पढ़े तो बहुत प्रभावित हो गए। लेकिन फिर हम यहां आए और यहां जो हमने देखा, उससे हमारा मन बड़ा उदास हो गया है। लोग नाच रहे हैं! लोग गा रहे हैं! लोग मजा-मौज कर रहे हैं!
मैं उनकी तकलीफ जानता हूं। वे किताबें इत्यादि पढ़ कर सोचे होंगे कि मुझे पाएंगे बैठा हुआ किसी झोपड़े में, कांटों की शय्या पर लेटा हुआ, उदास, भूखा-प्यासा। उनका चित्त बड़ा शांत होता अगर वे मुझे ऐसा देख लेते। उनके चित्त को बड़ी राहत मिलती कि हां, साधु हो तो ऐसा।
तुम आए थे यहां दुखियों को देखने। यहां हिसाब और है, यहां गणित और है। दुख में मेरा भरोसा नहीं। मैं सुखवादी हूं। मैं चार्वाक से ज्यादा सुखवादी हूं। चार्वाक का सुख तो इसी संसार में समाप्त हो जाता है, मेरा सुख उस संसार तक जाता है। मुझमें आस्तिकता और नास्तिकता मिल रही हैं। नास्तिकता थोड़ी दूर तक सुख की बातें करती है, मैं अंत तक सुख की बातें करता हूं। मेरे लिए परमात्मा सुख की परम अवस्था है। इसलिए तो ज्ञानियों ने उसे सच्चिदानंद कहा है। आनंद, अंतिम अवस्था।
लेकिन तुम आए होओगे उपवास करते हुए किसी फकीर को देखने। और फिर तुम्हें लगा कि यहां तो कोई उपवास नहीं है, यहां तो कोई फकीर नहीं है, यहां तो लोग आनंदित हैं, लोग मस्त हैं, लोग एक-दूसरे के प्रेम में हैं। यहां तुमने जोड़े चलते देखे होंगे। स्त्री-पुरुषों को हाथ पकड़े देखा होगा, नाचते साथ देखा होगा। तुमने कहाः हद हो गई, भ्रष्ट हो गया सब! सब धर्म भ्रष्ट कर डाला। हम कहां फंस गए आकर! यह धर्म है? यह तो सांसारिकता है। मेरा धर्म संसार के विपरीत नहीं है। यद्यपि मेरा धर्म संसार के पार जाता है। मेरा धर्म ऐसे है जैसे कमल कीचड़ से उगता है। कीचड़ में उगता है, लेकिन कीचड़ के पार जाता है। संसार में ही उगेगा धर्म। मंदिर तो यहीं बनाना होगा, जमीन पर ही बनाना होगा, देह में ही परमात्मा को पुकारना होगा। और तुम्हारी देह अगर सुख में हो, स्वभाव के अनुकूल हो, तो ही परमात्मा आ सकेगा। दुखी चित्त परमात्मा को अपने भीतर प्रवेश न दे पाएगा। दुखी चित्त

में जगह कहां प्रवेश के लिए? सुखी चित्त में अवकाश होता है। सुखी चित्त आकाश जैसा होता है।
तो मैं तुम्हारी तकलीफ समझता हूं। तुम धारणाएं लेकर आते हो। तुम्हारी धारणाएं बड़ी जड़बद्ध हैं। और तुम्हारी धारणाओं के पीछे तुम्हें काफी प्रमाण हैं, क्योंकि सौ में निन्यानबे साधु तो दुखवादी हैं। वे साधु ही नहीं हैं। उन्हें साधुता का कुछ पता नहीं है। सौ में एकाध कभी सुखवादी होता है। लेकिन वह तो कभी-कभार होता है। और जब भी होता है तभी तुम्हें अड़चन होती है। महावीर को देख कर तुम्हें अड़चन हुई थी, जैन मुनि को देख कर अड़चन नहीं होती। बुद्ध को देख कर तुम्हें अड़चन हुई थी, बौद्ध भिक्षु देख कर अड़चन नहीं होती। नानक को देख कर तुम्हें अड़चन हुई थी, ग्रंथी महाराज को देख कर तुम्हें अड़चन नहीं होती। उनसे क्या अड़चन है? वे तुम्हारे जैसे ही हैं। तुम जैसे दुख में, वैसे दुख में वे। मीरा को नाचते देख कर कितने लोगों को अड़चन नहीं हो गई थी, याद है? कितने लोग कष्ट में नहीं पड़ गए थे? मीरा के परिवार के लोग इतने कष्ट में पड़ गए थे कि मीरा मर जाए, इसके लिए जहर का प्याला भिजवाया था। क्योंकि परिवार को बड़ी बेचैनी हो रही थी। मीरा तो पागल समझी ही जा रही थी, उसके साथ-साथ परिवार बदनाम हो रहा था। राजघराने की महिला थी और नाचने लगी सड़कों पर! और राजस्थान में, जहां घूंघट उठाना मुश्किल था! वहां कपड़े इत्यादि की भी फिकर छोड़ दी। अब नाचने में कहीं फिकर रखनी होती है कि पल्लू ठीक है कि नहीं है! पल्लू की फिकर रखो तो परमात्मा छूटता है, परमात्मा की फिकर करो तो पल्लू गिरता है। मीरा ने सोचा कि पल्लू जाने दो। उसने कहा, लोकलाज खोई। नाचने लगी रास्तों पर। घर के लोग--राजघर के लोग परेशान हुए। उन्होंने कुछ दुष्टता के कारण जहर नहीं भेजा था, सिर्फ अपनी प्रतिष्ठा बचाने को। जगह-जगह से मीरा को खदेड़ा गया।
कहते हैं, काशी में एक बहुत बड़ा सम्मेलन हुआ पंडितों का। उसमें कबीर
को भी बुलाया। बड़ी सोच-विचार से बुलाया। बहुत दिन विवाद हुआ कि कबीर को बुलाना कि नहीं, इस जुलाहे को बुलाना कि नहीं। लेकिन फिर अंततः इस जुलाहे की बातों में कुछ था तो, बुला लिया। लेकिन कबीर ने आकर और एक अजीब शर्त रख दी। कबीर ने कहा, मीरा को भी बुलाओ।
यह जरा जरूरत से ज्यादा था। कबीर कम से कम पुरुष तो थे। अब मीरा! देखते हो, बाबा तुलसीदास क्या कह गए हैं? शूद्र गंवार ढोल पशु नारी, ये सब ताड़न के अधिकारी!
अब मीरा की तो शूद्रों के साथ गिनती है। पुरुष कबीर--माना कि जुलाहे सही, चलो, मगर कम से कम पुरुष तो हैं। मगर कबीर ने एक अजीब शर्त रख दी कि तुम मीरा को बुलाओ तो ही मैं आऊंगा, नहीं तो मैं नहीं आऊंगा। क्यों कबीर ने यह शर्त रखी होगी कि मीरा को बुलाओ? इसलिए यह शर्त रखी कि इन मूढ़ पंडितों को यह बात साफ हो जानी चाहिए कि परमात्मा को पाने के लिए न तो पुरुष होना जरूरी है, न स्त्री होने से कोई बाधा पड़ती है। परमात्मा को पाने में अगर कोई बाधा है तो सिर्फ अहंकार है। परमात्मा को पाने में अगर कोई बाधा है तो तुम्हारी दुख की ग्रंथियां हैं। मीरा को बुलाओ, क्योंकि उससे ज्यादा नाचता हुआ परमात्मा और कहां मिलेगा?
मीरा आई तो कबीर आए। और मीरा आई तो मीरा ने क्या किया? मीरा नाची। पंडितों ने नाक-भौं सिकोड़ी। उन्होंने कहा, यह सब क्या तमाशा हो रहा है? कहां वेद की बातें होनी चाहिए, वहां यह मीरा नाच रही है! मगर नाच वेद है। लेकिन पंडित तो अंधे होते हैं। वे सोचते थे कि मीरा कुछ संस्कृत के रटे- रटाए सूत्र दोहराए। मीरा ने जीवंत वेद दिखाया--वह नाची। लेकिन पंडितों को तो मन में बड़ा बुरा लगा। पल्लू फिर गिर गया होगा। यह कोई बात हुई! स्त्री को घर में छिपा होना चाहिए। स्त्री को लाज होनी चाहिए।
आनंद की हमारे मन में प्रतिष्ठा नहीं है। इसलिए तुम जब यहां आते हो और यहां एक और ही तरह का जगत पाते हो, तो तुम्हें अड़चन होती है। तुम बेचैनी में पड़ जाते हो। तुम्हें लगता है, यह किस तरह का धर्म?
सम्यक धर्म सदा ही इस तरह का रहा है। मगर वह कभी-कभी होता है।
मेरे जाते ही दुखवादी आ जाएगा। वह सुभाष से भी सक्रिय ध्यान करवाएगा।
वह कहेगा--करो! अगर सक्रिय ध्यान नहीं किया, तो परमात्मा कभी नहीं मिलेगा।

इसलिए सुभाष, जब तक मैं हूं, तुम विश्राम कर लो। विश्रामपूर्वक ध्यान कर लो। सुख से मूल्य चुका लो। मेरे जाने के बाद तो लोग फिर दुख से मूल्य चुकवाएंगे--यहीं! इसी जगह! क्योंकि पीछे कठिनाई यह खड़ी हो जाती है कि फिर जड़ नियम हाथ में रह जाते हैं। इस तरह किया जाता था, इसी तरह किया जाना चाहिए। इससे अन्यथा नहीं होना चाहिए। फिर किसी को मेल खाता है कि नहीं मेल खाता, इसकी चिंता कौन करे? और इसका निर्णय भी कौन करे? आज तो मैं तुम्हें देखता हूं, तुम्हारे भीतर क्या ठीक है उसके अनुकूल तुमसे कहता हूं। इसलिए मेरी बातों में बहुत विरोधाभास भी हो जाता है। किसी को कुछ कहता हूं, किसी को कुछ कहता हूं। क्योंकि मेरे पास कोई बंधा सिद्धांत नहीं है। तुम मेरे लिए महत्वपूर्ण हो, सिद्धांत नहीं। तुम्हारे हिसाब से मैं सिद्धांत को काटता हूं, तुमको नहीं काटता।
अक्सर तो यह हो जाता है कि तथाकथित धर्मों के पंडित, पुरोहित--धर्म के वस्त्र तो पहले से तैयार हैं, अगर तुम थोड़े लंबे हो, तो वे तुमको छांट देते हैं; अगर तुम जरा छोटे हो, तुमको खींचतान कर, मालिश करके लंबा कर देते हैं। इसकी फिकर ही नहीं करते कि यह आदमी मर जाएगा, बचेगा, कि क्या होगा? वे वस्त्र कीमती हैं। सिद्धांत कीमती हैं, तुम्हारा कोई मूल्य नहीं है। मेरे लिए सिद्धांत दो कौड़ी के हैं। तुम्हारा मूल्य चरम है। प्रत्येक व्यक्ति का मूल्य चरम है। कोई सिद्धांत इतना मूल्यवान नहीं है। सिद्धांत तुम्हारी सेवा करने को हैं। शास्त्र तुम्हारे सेवक हैं। तुम्हारे स्वभाव के जो अनुकूल पड़ता हो, वही करना। अगर तुम्हारे स्वभाव के अनुकूल नाच पड़ता हो तो नाचना। तुम्हारे स्वभाव के अनुकूल बांसुरी बजाना पड़ता हो तो बांसुरी बजाना। तुम्हारे स्वभाव के अनुकूल योग पड़े तो योग करना। तुम्हें जो अनुकूल पड़े! मगर अनुकूल की परीक्षा, अनुकूल की कसौटी एक ही है कि तुम्हें जिससे सुख मिले।
सुख से मूल्य चुकाओ। और ध्यान रखना, यह दुखवादी भ्रांति में न रहे कि हमने दो-चार उपवास कर लिए, कि शरीर को थोड़ा सता लिया, कि थोड़ी आंच दे दी, कि थोड़े नंगे बैठ लिए, तो पहुंच जाएंगे। इतना सस्ता नहीं है मामला।
हुआ है चार तिनकों पर यह दावा जाहिदो तुमको
खुदा ने क्या तुम्हारे हाथ जन्नत बेच डाली है
चार तिनके। जाहिदों के, तपस्वियों के।
हुआ है चार तिनकों पर यह दावा जाहिदो तुमको
खुदा ने क्या तुम्हारे हाथ जन्नत बेच डाली है
परमात्मा प्रत्येक को उसके ही ढंग से आता है। परमात्मा तुम्हारा सम्मान करता है, तुम्हारा अपमान नहीं। तुम जिस मौज में होते हो, उसी मौज में आता है। तुम्हें जो ढंग रास पड़ता है, उसी ढंग में आता है। इसलिए यहां मैंने इतने ध्यानों की प्रक्रियाएं शुरू की हैं, कि कोई तुम्हें रास पड़ जाए। बस एक चुन लो।
लेकिन कष्टवादी कई तरह के हैं। एक मित्र कुछ दिन पहले आए, वे कहने लगे
कि यह तो ध्यान से बड़ी मुश्किल हो गई है। नींद भी खो गई, काम-धंधा भी नहीं कर पाता, पत्नी नाराज है, बच्चे नाराज हैं, घर के लोगों ने भेजा है कि आपसे समझ कर आऊं, और मैं पागल हुआ जा रहा हूं।
मैंने कहा कि ध्यान से तो शांति आनी थी।
उन्होंने कहा, कहां की शांति! अशांति ही अशांति हो गई है।
मैं थोड़ा हैरान हुआ। मैंने कहा कि कौन सा ध्यान करते हैं? क्या करते हैं?
तो उन्होंने कहा, कौन सा क्या? सुबह से रात तक ध्यान ही ध्यान, पूरे पांच ध्यान करता हूं! नौकरी की फुर्सत ही नहीं। नौकरी करने कहां जाऊं? तो पत्नी जान खाए जा रही है, बेटे-बच्चे मुश्किल में पड़ गए हैं--और मुझे तो ध्यान करना है।
तुमसे पांच करने को कहा किसने? पांच ध्यान करोगे तो निश्चित जीवन कष्ट में पड़ जाएगा। ये पांच ध्यान यहां शिविर में किए जाते हैं ताकि तुम पांच को करके अपने अनुकूल को खोज लो। दुनिया में पांच प्रकार के लोग हैं। जैसे पांच इंद्रियां हैं, ऐसे पांच प्रकार के लोग हैं। उन पांचों को ध्यान

में रख कर पांच ध्यान की विधियां विकसित की गई हैं। एक कोई तुम्हें जम जाए, बस पर्याप्त है। बाकी चार को जाने दो। अब तुम ध्यान ही करते रहोगे तो अशांति तो हो ही जाएगी। और अशांति, फिर घर में बैठे चौबीस घंटे तुम ध्यान में लगे हो, पत्नी कब तक बर्दाश्त करेगी? बच्चे कब तक बर्दाश्त करेंगे? लेकिन यह कष्टवादी चित्त! इसने ध्यान में से ही तरकीब निकाल ली सताने
की अपने को। अपने को और औरों को भी।
इस बात को ख्याल में रखना। मैं तुम्हें जो भी कह रहा हूं, न तो अपने को सताना उससे, न किसी और को सताना उससे। और उन लोगों से सावधान रहना जिन्होंने कुछ जाना नहीं है। अब यहां ऐसे बहुत से लोग हैं इस जमीन पर, जो ध्यान के संबंध में लिखते हैं, जिन्हें ध्यान का कुछ पता नहीं है।
मैंने एक किताब पढ़ी, एक जैन साध्वी ने किताब लिखी थी, हेमचंद्र आचार्य
के सूत्रों पर ध्यान की किताब थी। किताब तो मुझे ठीक लगी। कुछ जगह मुझे लगा कि साध्वी शास्त्र की तो ज्ञाता है निश्चित, भाषा की जानकार है निश्चित, लिखने में कुशल है निश्चित, लेकिन ध्यान नहीं किया है। क्योंकि कुछ जगह ऐसी बात आ ही गई--वह आएगी, आने ही वाली है, तुम बचाओगे कहां से? जिसने प्रेम का अनुभव नहीं किया, वह प्रेम पर किताब लिखेगा, कहीं न कहीं भूल-चूक हो जाएगी, कहीं न कहीं कुछ बात आ जाएगी जो बता देगी कि यह प्रेम को जानने वाले का वचन नहीं हो सकता।
संयोग की बात, कोई पांच-सात साल बाद मैं ब्यावर में था, राजस्थान में,
तो वह साध्वी मुझे मिलने आई। मैं तो भूल भी चुका था उसका नाम भी, उसकी किताब भी। उसने मुझे पूछा कि ध्यान कैसे करूं? तो मैंने उसे ध्यान के संबंध में समझाया। फिर उसने अपनी किताब निकाली, उसने कहा, मैंने एक किताब भी ध्यान पर लिखी है, वह आपके लिए भेंट करने लाई हूं। तब मुझे ख्याल आया। तो मैंने उससे पूछा, तूने कभी ध्यान किया?
उसने कहा, मैंने कभी नहीं किया।
फिर किताब क्यों लिखी?
उसने कहा, शास्त्रों के अध्ययन से, मनन-चिंतन से।
मनन-चिंतन और अध्ययन से ध्यान का क्या लेना-देना है? ध्यान अनुभव है। उसे खुद भी पता नहीं है, वह पूछने आई है कि ध्यान कैसे करूं और ध्यान पर किताब लिखी है! और उसकी किताब के आधार पर कई लोग ध्यान करते होंगे! ऐसा उपद्रव चल रहा है।
तुम जरा सोच-समझ कर किसी से सलाह लेना। सलाह देने वाले लोग हैं बहुत,
एक ढूंढ़ो हजार मिलते हैं। सलाह देने वाले तैयार ही हैं। ढूंढ़ो भी मत तो भी मिल जाते हैं। खोजो भी मत तो तुम्हारे घर ही आ जाते हैं कि भाई, सलाह तो नहीं चाहिए? सलाह देने में लोग इतना रस लेते हैं। क्योंकि सलाह देने में ज्ञानी होने का मजा है। और दूसरे को अज्ञानी सिद्ध करने का मजा है। इसलिए सलाह देने का मौका कोई चूकता नहीं। लेकिन सलाह सोच-समझ कर लेना। जिसके जीवन में ध्यान की कोई गरिमा हो, जिसके जीवन में प्रेम की कोई सुवास हो-- बैठना, उठना, समझना, सोचना, पीना किसी व्यक्ति को, और जब तुम्हें लगे कि हां, कुछ अस्तित्वगत घटा है, तो ही ग्रहण करना, अन्यथा बचना।
वो राह सुझाते हैं हमें हजरते रहबर
जिस राह पर उनको कभी चलते नहीं देखा
तो सुभाष, अपने स्वभाव, अपने अनुकूल, स्वयं को जो प्रीतिकर लगे वह चुनो। वही कीमत है जो चुकानी है। मैं तुमसे कहता हूंः दुख छोड़ दो, यही त्याग है। मैं तुमसे सुख छोड़ने को नहीं कहता। मैं तुमसे कहता हूंः दुख छोड़ दो! सुख तो तुम्हारे पास हैं ही कहां जो तुम छोड़ोगे? दुख छोड़ दो!
दुख को लोग पकड़े हैं। छाती से पकड़े बैठे हुए हैं। दुख नहीं छोड़ना चाहते, दुख उनकी संपदा है। तुम चौंकोगे यह बात जान कर, बहुत मुश्किल से हिम्मतवर आदमी होता है जो दुख छोड़ने को राजी होता है। दुख छोड़ने को लोग राजी ही नहीं होते।
कुछ ही दिन पहले एक युवक और युवती मेरे पास आए। दोनों दुखी हैं। सात साल से साथ रहते हैं। और सात साल में नरक के सिवाय कुछ नहीं भोगा है। मैंने कहा, अलग क्यों नहीं हो जाते? अलग नहीं होना चाहते। मैंने पूछा, साथ होने

में कुछ सुख मिल रहा है? उन्होंने कहा, साथ होने में सुख तो कुछ भी नहीं मिल रहा है; मगर प्रेम है। प्रेम किस बात से है? दुख से? यह नरक से? न उस युवक को कुछ रस है, न युवती को कोई रस है, मगर साथ नहीं छोड़ सकते। साथ कैसे छोड़ दें! वे कहने लगे, हम तो इसलिए आपके पास आए थे कि आप हमें समझा-बुझा कर ठीक-ठाक कर देंगे।
समझाने-बुझाने से क्या ठीक-ठाक होगा? सात साल साथ रह कर तुमने एक-दूसरे को कष्ट ही दिया। लेकिन ऐसा हो जाता है कि कष्ट की भी तलब हो जाती है। तुम घर आओ और पत्नी अंट-शंट न बोले, या तुम घर आओ और तुम पत्नी के लिए बाजार से फूल ले आओ, तो अड़चन हो जाती है।
एक मनोवैज्ञानिक ने एक आदमी को यह सलाह दी। उस आदमी ने कहा कि मैं जब
भी घर जाता हूं, मेरी पत्नी बड़ा तैयार ही रहती है बस। मैं डरता हूं दफ्तर से जाने में। लोग तो दफ्तर धीरे-धीरे आते हैं, मैं घर की तरफ बहुत धीरे- धीरे जाता हूं। लोग दफ्तर से, घड़ी देखते रहते हैं कि कब निकल जाएं, और मैं डरा रहता हूं कि कहीं पांच न बज जाएं! पांच बज जाते हैं तो भी फाइलें उलटाता रहता हूं; कुछ काम भी नहीं होता तो भी बैठा--जब दफ्तर बंद ही होने लगता है और चपरासी कहता है कि अब महाराज जाइए, तब मैं जाता हूं। फिर भी रास्ते में कोई मिल जाए तो रुक जाता हूं, बातचीत करते-करते--ड़र लगा रहता है कि घर गया कि वह पत्नी!
उस मनोवैज्ञानिक ने कहा, ऐसा करो, थोड़ा प्रेम पत्नी के प्रति दिखलाओ। तुमने कुछ प्रेम नहीं दिखलाया है। उसने कहा, मैं क्या करूं? आप जो कहो वह मैं करूं। उसने कहा, तुम आज ऐसा करो, फूल ले जाओ पत्नी के लिए। मिठाइयां ले जाओ। मिठाइयां देना, फूल देना, एकदम गले लगा लेना। उसको मौका ही मत देना कि वह कुछ बक सके या कुछ कह सके, एकदम गले लगा लेना।
उसने कहा, अब आप कहते हैं तो करेंगे। वैसे अपनी पत्नी को कौन गले लगाता है? मगर अब आप कहते हैं तो यह भी करेंगे। ठीक है, फूल भी ले जाएंगे। अपनी पत्नी के लिए कौन फूल ले जाता है? मिठाई, उसने कहा, चलो ठीक है, एक दफे करके देख लें। और क्या करना है?
और पत्नी के साथ हाथ बंटाना। बर्तन मांज रही हो तो तुम भी बर्तन धोने लगना। टेबल साफ कर देना। बच्चे की नाक बह रही हो, पोंछ देना। कुछ हाथ बंटाना।
उसने कहा, चलो, यह भी करेंगे। किसी तरह शांति हो जाए।
वह घर पहुंचा। बड़ा प्रसन्न था कि चलो आज कुछ तरकीब हाथ लगी है। फूल देख कर पत्नी को तो भरोसा ही नहीं आया। और मिठाई, और जब उसने गले लगाया--तो किस पत्नी को भरोसा आ सकता है कि अपना पति और गले लगाएगा! वह तो बड़ी घबड़ा गई। इन्हें हो क्या गया है? मगर एकदम कुछ कह भी न सकी, एकदम सकते में आ गई। और जल्दी से पति छलांग लगाया और टेबल साफ करने लगा और बर्तन मांजने लगा। उस पत्नी ने एकदम बाल फैला कर और छाती पीट ली और चिल्लाने लगी कि मर गई! मर गई! मोहल्ले के लोग इकट्ठे हो गए। वह पति भी बोला कि क्या हो गया तुझे? उसने कहा, तुम आज पीकर आए हो या क्या बात है? तुम होश में हो? क्या कर रहे हो? सुबह से नौकरानी नहीं आई, बच्चे के दांत टूट गए हैं, लड़की अभी तक लौटी नहीं, और अब तुम आए हो! तुम नशा करके आए हो या क्या करके आए हो? तुम होश में हो?
लोग दुख की अपेक्षा करने लगते हैं। अपेक्षित दुख न आए, तो मुश्किल हो जाती है। लोग दुखों को भी सम्हाल कर रखते हैं। वही उनकी संपदा है।
मैं तुमसे कहता हूंः दुख छोड़ो। दुख के साथ क्षण भी रहने की जरूरत नहीं है, दुख छोड़ो। तुमने क्रोध से बहुत बार दुख पाया है। और तुम्हारे ज्ञानियों ने तुमसे कहा हैः क्रोध मत करो, इससे दूसरे को दुख होता है। मैं तुमसे कहता हूंः क्रोध मत करो, इससे तुमको दुख होता है। भाड़ में जाने दो दूसरे को, तुम अपने को तो बचाओ! तुम बच गए तो दूसरा भी बच जाएगा। ज्ञानियों ने कहा हैः हिंसा मत करो, इससे दूसरे को चोट पहुंचती है। मैं कहता हूंः दूसरे को तो बाद में पहुंचेगी, जो हिंसा करता है, पहले खुद को चोट पहुंचा लेता है। बुरा मत करो, ज्ञानियों ने कहा है कि इससे पाप लगेगा, अगले जन्म में नरक में पड़ोगे। मैं तुमसे कहता हूंः ये सब तो फिजूल की बातें हैं, तुम

जब बुरा करने की सोचते हो, तभी नरक पैदा हो जाता है, तभी तुम दुख भोग लेते हो।
तुम अगर एक ही बात कसौटी की तरह सम्हाल लो कि जिस चीज से दुख मिलता है उसका त्याग कर देंगे, तुम अचानक पाओगे, तुम्हारी ऊर्जा धीरे-धीरे सुख की तरफ प्रवाहित होने लगी।
सुख बड़े महलों से नहीं मिलता। सुख बहुत सुस्वादु भोजन से नहीं मिलता। सुख जीवन को जीने की कला है। रूखे-सूखे से मिल सकता है। झोपड़े में भी मिल सकता है। गरीबी में भी मिल सकता है। और प्रमाण के लिए इतना काफी है कि अमीरों को भी नहीं मिल रहा है, तो गरीब को भी मिल सकता है। जब अमीर को नहीं मिल रहा है, तो अमीरी से मिलता है, यह कोई सवाल न रहा।
मेरी देशना एक ही हैः दुख का त्याग करो, सुख का वरण करो। इतनी कीमत तुम चुका दो, परमात्मा नाचता हुआ तुम्हारी तरफ चला आएगा। जल्दी ही वह घड़ी आ जाएगी।
बेखुदी के साज पर गाने का मौसम आ गया
आ गया पीकर बहक जाने का मौसम आ गया
फिर पयामे-आमदे-जानां सकूने-शाम है
सेज पर कलियों के खिल जाने का मौसम आ गया
यह तड़प, यह दर्द, यह रग-रग में हलकी सी कसक
यह शबाब आया कि मर जाने का मौसम आ गया तोड़ कर हमदम! हर इक रस्मो-रहे-कौनीन को
संसार के सब रीति-रिवाजों को तोड़ दो!
तोड़ कर हमदम! हर इक रस्मो-रहे-कौनीन को
लगजिशों पर लगजिशें खाने का मौसम आ गया
बेखुदी के साज पर गाने का मौसम आ गया
आ गया पीकर बहक जाने का मौसम आ गया
बहको! पीओ! वसंत को ऊगने दो तुम्हारे भीतर! और तुम परमात्मा को रोज-रोज करीब आते पाओगे। सुख परमात्मा से जोड़ता है, दुख तोड़ता है।
आज इतना ही।

अथातो भक्ति जिज्ञासा, भाग 2
उन्तीसवां प्रवचन

भक्ति अकर्मण्यता नहीं, अकर्ताभाव है

सूत्र

सुकृतजत्वात परहेतुभावाश्च क्रियासु श्रेयस्यः।। 71।।
गौणं त्रैविध्यमितरेण स्तुत्यर्थत्वात साहचर्यम्।। 72।।
बहिरन्तरस्थमुभयमवेष्टि सर्ववत्।। 73।।
भूयसामननुष्ठितिरिति चेदाप्रयाणमुपसंहारान्महत्स्वपि।। 74।।
स्मृतिकीर्त्योः कथादेश्चार्तौं प्रायश्चित्तभावात्।। 75।।

शांडिल्य ने भक्ति को दो खंडों में बांटा। एक साधनरूप भक्ति, एक साध्यरूप भक्ति। साधनरूप भक्ति को उन्होंने गौणी-भक्ति कहा और साध्यरूप भक्ति को पराभक्ति। उस विभाजन की ही गहराई और विस्तार में आज के सूत्र हैं।
अक्सर यह भूल हो जाती है कि साधन साध्य समझ लिए जाते हैं। तब साधन ही बाधक हो जाता है। जो नाव तुम्हें उस पार ले जाती है, अगर उस नाव को ही पकड़ लिया, तो उस पार तुम कभी न पहुंच पाओगे। उस पार पहुंचना है, तो इस पार तो नाव पकड़नी होगी, उस पार पहुंच कर नाव छोड़ देनी होगी। नाव अगर छोड़ी नहीं, सोचा कि जो नाव इस पार ले आई है, जिसका इतना आभार है, उसे पकड़ कर बैठ गए, तो वही नाव बाधा हो जाएगी।
श्री अरविंद ने कहा हैः प्रारंभ में जो साधक है वही अंत में बाधक हो जाता है। और यह बिल्कुल स्वाभाविक है कि जिससे हमें इतना सहारा मिला हो, जिसके आधार से हमें इतने आनंद की उपलब्धि हुई हो, जिसके कारण हमारी प्यास तृप्ति के करीब आई हो, उससे हम बंध जाएं, उससे मोह पैदा हो जाए, उससे आसक्ति बन जाए। संसार की ही आसक्ति बाधा नहीं है, आसक्ति कहीं भी हो तो बाधा है। इसलिए इस विवेचन में जाना अत्यंत आवश्यक है।
कीर्तन है, भजन है, श्रवण है, सत्संग है--सब गौणी-भक्ति है। सत्संग ही करते रहे और सत्संग में ही डूबे रहे और कभी उसके पार न गए तो सत्संग का सार न हुआ। तो फिर तुम सत्संग की आसक्ति में पड़ गए। वह भी एक लत हो गई। और आदत अच्छी हो कि बुरी, आदत बुरी ही होती है। अच्छी-बुरी आदतें नहीं होतीं, आदत बुरी होती है। कोई आदमी शराब पीने की आदत से भरा है, तो हम कहते हैं, बुरी आदत है। और कोई आदमी रोज उठ कर प्रार्थना करता है, तो हम कहते हैं, अच्छी आदत है। अच्छी आदतें होतीं ही नहीं। अगर सुबह रोज उठ कर प्रार्थना करने वाला आदमी जिंदगी भर यही करता रहे और ऐसी घड़ी न आ पाए उसके जीवन में जब वह प्रार्थना से मुक्त हो जाए तो समझना कि यह एक और तरह की शराब हुई। कुछ बहुत फर्क न हुआ।
एक दिन तुम प्रार्थना नहीं करते हो तो दिन भर बेचैनी मालूम होती है। प्रार्थना नहीं करते हो तो लगता है कुछ चूक गया, कुछ खो गया, कुछ कमी-कमी, कुछ रिक्त-रिक्त, कुछ अभाव। यही तो शराबी को होता है। यही धूम्रपान करने वाले को होता है। यही चाय-कॉफी पीने वाले को होता है। फर्क तुममें और उसमें क्या हुआ? दोनों ही आदत के गुलाम हो गए। उसकी आदत शरीर को नुकसान पहुंचाती है, तुम्हारी आदत और भी खतरनाक है, तुम्हारी आत्मा को नुकसान पहुंचा रही है। जिनको तुम बुरी आदतें कहते हो उनकी सीमा तो शरीर है, और जिनको तुम अच्छी आदतें कहते हो वे तुम्हारी आत्मा को भी विकृत कर जाती हैं।
ध्यान रखना है साधक को, उस अवस्था में पहुंचना है जहां सब आदतें चली जाएंगी। जहां सब आदतें चली जाती हैं वहां स्वभाव का आविर्भाव होता है। जब तक आदत है, स्वभाव दबा रहता है। आदत स्वभाव का धोखा देती रहती है। झूठा सिक्का असली सिक्के को दबाए बैठा रहता है। तुमने देखा, अर्थशास्त्र का नियम है कि झूठे सिक्के असली सिक्कों को चलन के बाहर कर देते हैं। तुम्हारे खीसे में अगर एक दस का नोट है असली और एक दस का नोट है नकली, तो

तुम पहले नकली को चलाओगे। स्वाभाविक। असली को बचाओगे। असली तो कभी भी चल जाएगा। नकली निकल जाए! इसलिए असली सिक्के चलन के बाहर हो जाते हैं।
तिजोड़ियों में बंद हो जाते हैं। नकली सिक्के बाजार में चलते रहते हैं। तुमने किसी पान वाले को चला दिया, पान वाले को जैसे ही समझ आएगी कि नकली है, वह जल्दी से चलाने की कोशिश में लग जाएगा। नकली चलता है, असली रुक जाता है। और यही जीवन की अवस्था है। यह अर्थशास्त्र का ही नियम नहीं है, यह तुम्हारे आत्यंतिक अध्यात्म का भी नियम है। अगर आदत तुम्हें पकड़ गई, तो स्वभाव का चलन बंद हो जाता है, आदत चलती रहती है। और आदत झूठी है, कृत्रिम है, ऊपर से आरोपित है, सीखी है। किसी ने किसी के साथ रह कर सिगरेट पीना सीख लिया है, तुमने किसी के साथ रह कर प्रार्थना करनी सीख ली है। सिगरेट पीना भी बाहर से आया, प्रार्थना करनी भी बाहर से आई। तुम्हारे भीतर को कब अवसर दोगे? तुम्हारे भीतर जो पड़ा है, कब उमगेगा? कब उसे अंकुरित होने दोगे? इसलिए साधन को ख्याल रखना साधन ही है। उसे छाती से मत लगा लेना। उसी
पर मत अटक जाना। साधन कितना ही प्यारा हो!
ऐसा समझो कि तुम बीमार थे, और बड़े रुग्ण थे, मरण-शय्या पर पड़े थे, और किसी औषधि ने तुम्हारे प्राण बचा लिए। अब क्या इस औषधि को जीवन भर पीते ही रहोगे? बीमारी चली गई, औषधि भी जानी चाहिए। जब व्याधि ही चली गई, तो औषधि भी जानी चाहिए।
अगर तुम कहो कि जिस व्याधि से छुड़ाया इस औषधि ने, इतनी महाव्याधि से छुड़ाया इस औषधि ने, इसको अब मैं छोड़ने वाला नहीं! ऐसी कल्याणकारी औषधि को मैं कैसे छोड़ सकता हूं! अब तो इसे छाती से लगा कर रखूंगा। अब तो इसकी पूजा करूंगा। अब तो सुबह-शाम इसका सेवन करूंगा; न खुद ही करूंगा बल्कि औरों को भी कराऊंगा। ऐसी महाकल्याणकारी रामबाण औषधि! अब तुम उपद्रव में पड़े। तुमने औषधि को भी व्याधि बना लिया।
साधन से छूटना है। तभी साध्य उपलब्ध होगा। गौणी-भक्ति पराभक्ति के लिए साधन मात्र है, सीढ़ी मात्र है। उपयोग कर लो, फिर भूल जाओ। जिस क्षण भूल सकोगे, उसी क्षण गीत गाने की बेला आएगी।

बादल घिर आए, गीत की बेला आई।

आज गगन की सूनी छाती
भावों से भर आई,
चपला के पांवों की आहट
आज पवन ने पाई,
डोल रहे हैं बोल न जिनके
मुख में विधि ने डाले,
बादल घिर आए, गीत की बेला आई।

बिजली की अलकों ने अंबर
के कंधों को घेरा,
मन बरबस यह पूछ उठा है
कौन, कहां पर मेरा?
आज धरणि के आंसू सावन
के मोती बन बहुरे,
घन छाए, मन के मीत की बेला आई। बादल घिर आए, गीत की बेला आई।

चातक ने जल की बूंदों में स्वाद अमृत का पाया,
आकाशी शिखरों से किसने
सुख का राग सुनाया,
आज करुण सबसे पृथ्वी के
आंगन में एकाकी,

बादल घिर आए, प्रीति की बेला आई। बादल घिर आए, गीत की बेला आई।

आज अधर की मधु-मदिरा में
डूब अधर जो पाते,
इन रसहीन पदों को क्योंकर
वे फिर-फिर दुहराते
मैं न जहां पहुंचूंगा, मेरे
शब्द पहुंच जाएंगे,
घन छाए, मन की जीत की बेला आई।
बादल घिर आए, गीत की बेला आई।

गीत तुम्हारे भीतर पड़ा है--तुम्हारे स्वभाव का गीत। और जब तक तुम गा न लोगे, तब तक तुम छूटोगे नहीं। मुक्ति का अर्थ क्या होता है? मुक्ति का अर्थ होता हैः तुमने अपनी नियति पा ली। तुम जो होने को पैदा हुए थे, हो गए। तभी मुक्ति है। मुक्ति कोई निष्क्रिय अवस्था नहीं है, जैसा कि अनेक लोगों ने तुम्हें समझाया है। मुक्ति का अर्थ यह नहीं है कि तुम पंगु और काहिल होकर और अपने हाथ से अपने जीवन को पक्षाघात लगा कर किसी पहाड़ की गुफा में बैठ गए। वह आत्मघात है, मुक्ति नहीं। मुक्ति का मौलिक अर्थ होता हैः तुम्हारे भीतर जो गीत पड़ा था, जिसे गाने को तुम आए थे, उसे तुमने गा लिया। मुक्ति सृजनात्मक है, निष्क्रिय नहीं। और जब तक कोई सृजनात्मक रूप से प्रकट न हो जाए, तब तक आनंद नहीं उपजता।
स्मरण रखना, जैसे प्रत्येक बीज अपनी छाती में फूलों को छिपाए है और जब
तक पौधा न बने और वृक्ष बड़ा न हो और फूल न खिलें, तब तक बीज उदास रहेगा। तब तक बीज बेचैन रहेगा। तब तक बीज को विश्राम कहां?
मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं, चित्त बड़ा बेचैन है, शांति का उपाय बता दें।
चित्त बेचैन है क्योंकि तुम्हारा बीज अभी फूटा नहीं। और अगर तुम्हें शांति का कोई उपाय बता रहा हो तो वह तुम्हारा दुश्मन है। तुम्हें उपाय बताया जाना चाहिए सृजन का, शांति का नहीं। शांति तो सृजन की छाया है। लेकिन तुम्हें सदियों से यही सिखाया गया है। तुम्हारे तथाकथित महात्माओं ने तुम्हें यही बताया है--मुड़ जाओ जिंदगी से। बीजों को मंत्र सिखा दिए हैं ताकि वे बीज ही रहने में शांत रहें। बैठ जाओ जाकर पत्थर बन कर। आंख बंद कर लो। विस्मरण कर दो सब।
लेकिन ध्यान रखो, तुम लौट-लौट कर आओगे। परमात्मा तुम्हें तब तक नहीं छोड़ेगा जब तक तुम अपना गीत न गा लो। जब तक तुम्हारे भीतर पड़े हुए फूल, छिपे हुए फूल प्रकट न हो जाएं। जब तक तुम सुगंध न बिखेरो। जब तक तुम्हारे रंग आकाश में आकर खुल न जाएं। जब तक तुम आकाश के साथ नाच न लो। तुम्हारे भीतर जो दबा पड़ा है, उसके पूर्ण प्रकट हो जाने पर मुक्ति है। जब बीज वृक्ष बन जाता है और वृक्ष में फूल लग जाते हैं, बीज मुक्त हो गया। अब कोई बेचैनी न रही। अब सब तरफ शांति छा जाती है।
तुमने भी इसे अनुभव किया है, लेकिन तुमने इस पर विचार नहीं किया। जब
भी तुम कुछ सृजनात्मक करते हो तब एक अपूर्व आनंद का भाव उठता है। तुमने एक मूर्ति बना ली, या तुमने एक चित्र रंग डाला, या कुछ और--हजार काम हैं दुनिया में--तुमने कोई काम कर लिया जो तुम करना चाहते थे, तब उसके पीछे एक शांति अपने आप चली आती है। जब कृत्य का तूफान चला जाता है, तो पीछे से शांति छा जाती है। लेकिन कृत्य का तूफान उठना ही चाहिए। इसलिए मैं पक्ष में नहीं हूं कि कोई संन्यासी संसार छोड़ कर भाग जाए। संसार है अवसर अभिव्यक्ति का। उसे छोड़ कर भाग गए तो तुम वही बीज हो जो जमीन छोड़ कर भाग गया। बैठ जाएगा बीज किसी गुफा में, लेकिन पत्थरों में बीज नहीं ऊगा करते। भूमि चाहिए, नर्म भूमि चाहिए। अवसर चाहिए। जहां वसंत आता हो, जहां भूमि कोमल हो, वहां गिरो, वहां टूटो, वहां उमगो। मुक्ति है सृजनात्मक।

मनुष्य-जाति के धर्मों ने सृजन को बहुत मूल्य नहीं दिया, इसलिए पृथ्वी धार्मिक नहीं हो पाई। सृजन का जितना मूल्य बढ़ेगा, उतनी पृथ्वी ज्यादा धार्मिक हो पाएगी। इसलिए जितने सृजनात्मक लोग हैं, आमतौर से मंदिरों और मस्जिदों में नहीं जाते। वहां काहिलों और सुस्तों की भीड़ इकट्ठी हो गई है। जिन्हें कुछ करना है, वे वहां नहीं जाते। जिन्हें जीवन में कुछ होना है, वे वहां नहीं जाते। और जब काहिल और सुस्त इकट्ठे हो जाते हैं, लंगड़े, लूले, अंधे इकट्ठे हो जाते हैं, मुर्दों की भीड़ लग जाती है, तो जाने-अनजाने हमारे मंदिर-मस्जिद और गिरजे मरघट हो गए हैं। वहां जिंदगी खिलती नहीं, वहां जिंदगी नाचती नहीं, वहां जिंदगी प्रकट नहीं होती। ध्यान रखना।
बादल घिर आए, गीत की बेला आई।
घन छाए, मन के मीत की बेला आई।
बादल घिर आए, प्रीति की बेला आई।
घन छाए, मन की जीत की बेला आई।
बादल घिर आए, गीत की बेला आई।
गीत की बेला कब आएगी? जब तुम्हारा स्वभाव प्रकट होगा। स्वभाव दबा पड़ा
है बहुत से कूड़े-कर्कट में। उस कूड़े-कर्कट को छांटना है।
इस छांटने में दो खतरे हैं। एक खतरा है कि साधन, जिससे तुम इस कूड़ा- कर्कट को छांटोगे, कहीं साध्य न हो जाए। दूसरा खतरा है, इस डर से कि कहीं साधन साध्य न हो जाए, तुम साधन का उपयोग ही न करो। तो कूड़ा-कर्कट न छंटेगा। और इन दो ही खतरों में लोग बंट गए हैं। कुछ हैं जो साधन से डरते हैं; जो कहते हैं, साधन के उपयोग में खतरा है, नाव में बैठना ही मत, क्योंकि जो बैठ गए वे फिर उतरते नहीं। और एक हैं जो कहते हैं, नाव में बिना बैठे तो हम पार कैसे जाएंगे? नाव ही हमें इस पार ले आई। अब हम उतरें कैसे! अब हम उतरेंगे नहीं। कुछ हैं जो साधन से बचते हैं--वे इसी किनारे रह जाते हैं। कुछ हैं जो साधन का उपयोग करते हैं, लेकिन नाव में ही अटक जाते हैं--उस पार वे भी नहीं पहुंच पाते। दोनों ही नहीं पहुंच पाते।
उस पार कौन पहुंचता है?
जो साधन का साधन की तरह उपयोग कर लेता है। और जब जरूरत पूरी हो जाती है
तो चुपचाप उतर कर चल पड़ता है। पीछे लौट कर भी नहीं देखता। बीमार होता है तो औषधि का प्रयोग करता है, बीमारी गई तो औषधि को विदा कर देता है। फिर औषधि को नहीं पकड़ लेता।
ऐसा ही समझो कि तुम्हारे पैर में एक कांटा लगा है, उसे निकालने को तुम दूसरे कांटे का उपयोग कर लेते हो। लेकिन जब दोनों कांटे आ गए हाथ में--गड़ा हुआ कांटा भी निकल आया--तो फिर तुम, जिस कांटे ने गड़े हुए कांटे को निकाला, उसे बचा थोड़े ही लेते हो! उसे घाव में थोड़े ही रख देते हो कि इसकी बड़ी कृपा है, अब इसको रख लें अपने पैर में। तुम दोनों को फेंक देते हो।
साधन भी फेंका जाना है। इसीलिए उसे गौण कहा है। और जब साधन चला जाएगा, तभी साध्य का आविर्भाव है।
इन सूत्रों को ख्याल से समझना।
सुकृतजत्वात परहेतुभावात च क्रियासु श्रेयस्यः।
"यह सब कार्य पराभक्ति में पहुंचने के हेतुरूप हैं, एवं सब प्रकार के पुण्य कार्यों में श्रेष्ठ हैं।"
"पराभक्ति में पहुंचने के हेतुरूप!"
पराभक्ति का अर्थ हैः वैसी चित्त की दशा जहां भक्त और भगवान में कोई भेद न रह जाएगा। पराभक्ति का अर्थ हैः जहां भगवान और भक्त पिघल कर एक हो जाएंगे। जैसे बर्फ की चट्टान पिघल कर जल से एक हो जाए, ऐसे हमारा अहंकार जहां पिघल कर भगवत्ता में लीन हो जाएगा, जहां हम न बचेंगे, जहां हमारी कोई धारणा न बचेगी; हम, जैसे बीज जमीन में टूट जाता है, ऐसे ही टूट जाएंगे और बिखर जाएंगे, तभी जो छिपा है हमारे भीतर, प्रकट होगा। तभी सृजनात्मकता अपने शिखर पर पहुंचती है। पराभक्ति का अर्थ हैः जहां भक्त विलीन हो जाता है।

और ध्यान रखना, जहां भक्त विलीन होता है वहां भगवान भी विलीन हो जाता है। भगवान भी भगवान की तरह तभी तक मालूम होता है जब तक भक्त है। वह भक्त की धारणा है। जब भक्त ही न रहा तो उसकी धारणा कहां रहेगी? जब गंगा सागर में गिर जाती है तो गंगा ही विलीन नहीं हो जाती, सागर भी गंगा में विलीन हो जाता है। भक्त भगवान में गिर कर नुकसान में नहीं पड़ता--क्षुद्र खोता है और विराट अपना हो जाता है। द्वैत समाप्त जहां हो जाता है, उस स्थिति का नाम है--पराभक्ति।
उस पराभक्ति के लिए ये साधन हैं--श्रवण, मनन, निदिध्यासन, सत्संग, भजन, कीर्तन, नर्तन इत्यादि। इन सब साधनों का उपयोग कर लेना। ये सभी साधन उपयोगी हैं। मगर सतत जागरूकता रखना, कोई साधन ऐसा न पकड़ जाए कि फिर छूटे न। तुम मालिक रहना। साधनों को मालिक मत बन जाने देना।
चीन में एक बड़ी प्रसिद्ध कथा है। एक फकीर के संबंध में खबर उड़ी कि वह परमज्ञान को उपलब्ध हो गया है। तो एक दूसरा फकीर उससे मिलने गया। यह दूसरा फकीर जब पहुंचा तो पहला फकीर अपनी गुफा के द्वार पर एक चट्टान पर बैठा था। बड़ी भयंकर जगह थी। सिंह दहाड़ रहे थे। यह पहला फकीर जाकर पहुंचा वहां और अचानक एक सिंह दहाड़ा। तो उसकी छाती कंप गई, उसके हाथ-पैर कंप गए। उस गुफा में रहने वाले फकीर ने कहा, तो अभी तुम्हारा भय गया नहीं? आगंतुक फकीर ने कहा, मुझे बड़ी प्यास लगी है; लंबी यात्रा से पहाड़ चढ़ कर आ रहा हूं; पानी मिल सकेगा? तो उस गुफा में रहने वाला फकीर गुफा के भीतर पानी लेने गया। जब तक वह पानी लेने गया, इस आगंतुक फकीर ने जिस जगह यह फकीर बैठा था--पहला फकीर बैठा था--उस जगह "नमो बुद्धाय", बौद्धों का मंत्र लिख दिया। बुद्ध को नमस्कार! एक पत्थर उठा कर पत्थर पर लकीर खींच दी, लिख दिया--"नमो बुद्धाय।" गुफा में रहने वाला फकीर आया और जब वह बैठने को था तब उसकी नजर पड़ी। उसका पैर "नमो बुद्धाय" पर पड़ गया। वह एकदम कंप गया। आगंतुक फकीर हंसने लगा और उसने कहा, भय तो तुम्हारा भी अभी नहीं गया। मेरा भय तो स्वाभाविक भय है, तुम्हारा भय बड़ा अस्वाभाविक है। और कहते हैं कि यह कहते ही, अतिथि के द्वारा यह कहे जाते ही आखिरी बात टूट गई, वह गुफा में रहने वाला फकीर हंसा और बैठ गया "नमो बुद्धाय" पर। और उसने कहा, बस आखिरी बंधन रह गया था, तुम भले आए, तुमने वह भी तोड़ दिया। अब उसका भी भय नहीं है।
स्वाभाविक। "नमो बुद्धाय" जप-जप कर उसे बड़ी शांति मिली थी, बड़ा आनंद हुआ था। "नमो बुद्धाय" उसकी भित्ति थी, उसका मंत्र था, उसके ही आधार पर सारा भवन खड़ा किया था। स्वाभाविक है कि भय लगे कि कहीं बुद्ध के ऊपर पैर न पड़ जाए। तुम्हारा भी पैर अगर गीता में लग जाता है तो जल्दी से छूकर नमस्कार कर लेते हो न गीता को! मंदिर की मूर्ति से अगर धक्का लग जाए तो एकदम गिर पड़ते हो साष्टांग कि क्षमा करना! एकदम घबड़ाहट हो जाती है। तो साधन मालिक हो गया। मालिक गुलाम हो गया और गुलाम मालिक हो गया।
मूर्ति का उपयोग कर लो, लेकिन गुलाम मत हो जाना। मूर्ति आखिर मूर्ति है; और किताब आखिर किताब है; और मंत्र आखिर मंत्र है। मंत्र में जो बल है वह मंत्र में नहीं है, मंत्र में जो बल है वह तुम ही डालते हो। वह तुम्हारा ही बल है जो मंत्र में प्रतिफलित होता है। असल में यह आदमी "नमो बुद्धाय" कह-कह कर शांत नहीं हुआ है; क्योंकि दूसरे लोग हैं जो और कुछ कह कर शांत हो गए हैं।
अंग्रेजी के महाकवि टेनिसन ने लिखा है कि मुझे तो दूसरा कोई मंत्र कभी जमा ही नहीं। मैं तो अपना ही नाम दोहराता हूं और बड़ी शांति मिलती है-- टेनिसन, टेनिसन, टेनिसन। उसे बचपन से यह पकड़ गया। जंगल से निकलता था, घबड़ाहट लगी, अकेला था, कुछ और सूझा नहीं कि क्या करूं, तो जोर-जोर से टेनिसन, टेनिसन--अपने को जगाने लगा कि मत घबड़ा टेनिसन! याद कर अपनी! क्यों डरता है? टेनिसन, टेनिसन, टेनिसन। और उसे बड़ी शांति मिली। सूत्र हाथ लग गया। फिर जब भी उसे बेचैनी होती, वह बैठ कर अपना नाम दोहरा लेता। रात नींद न आती, अपना नाम दोहरा लेता। और नींद आ जाती। और बेचैनी होती तो बेचैनी शांत हो जाती। फिर तो हाथ लग गई कला। फिर तो वह बूढ़ा भी हो गया तो भी इसे दोहराता रहा।

ख्याल रखना, राम में कुछ भी नहीं है। न कृष्ण के नाम में कुछ है, न बुद्ध के नाम में कुछ है। नाम में तो तुम डालते हो। तुम जो डालते हो वही तुम्हें मिल जाता है। इसलिए मोहम्मद का नाम लेकर भी लोग पहुंच जाते हैं, महावीर का नाम लेकर भी पहुंच जाते हैं। अब यह मजा देखो! यह टेनिसन को अपना ही नाम लेकर पहुंचना हो गया। तुम जरा किसी एकांत में बैठ कर कभी अपना ही नाम दोहराना, बड़ी शांति मिलेगी। तब तुम चकित होओगे कि महर्षि महेश योगी से मंत्र लेने की कोई जरूरत नहीं है। कोई भी शब्द। शब्द का मूल्य नहीं है। जब एक शब्द पर तुम आरूढ़ हो जाते हो, उस आरूढ़ता का मूल्य है। शब्द कौन है, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। शब्द का तुम्हें अर्थ भी पता न हो तो भी कुछ फर्क नहीं पड़ता। एक ही शब्द रह जाता है, एक ही शब्द घूमता है, और सारे शब्दों को हटा देता है। एक ही शब्द पर सारे प्राण केंद्रित हो जाते हैं, एकाग्र हो जाते हैं। उस एकाग्र हो जाने से शांति का अनुभव होता है। उसी एकाग्रता में धीरे-धीरे एक अपूर्व नई केंद्रित चेतना पैदा होने लगती है। एक समग्र चेतना का आविर्भाव होने लगता है। लेकिन खेल सब तुम्हारा है।
इसलिए ऐसा हो जाता है कि तुम्हारी मूर्ति को अगर तुम पूजते हो, जरा पैर लग जाता है तो तुम दिन भर डरे रहते हो कि भूल-चूक हो गई, अब क्या होगा, क्या नहीं होगा। उसी मूर्ति को आकर कोई तोड़ जाता है, जिसको मूर्ति में भरोसा नहीं, उसको कुछ भी नहीं होता। मूर्ति में कुछ भी नहीं है, तुम्हारे भाव में सब कुछ है।
भक्ति अर्थात मौलिक रूप से भाव। तुम जितना डालते हो उतना पाते हो।
यही तो भ्रांति हो गई।
सोमनाथ पर हमला हुआ। गजनवी आया। बारह सौ पुजारी थे, बड़ा मंदिर था।
कहते हैं पृथ्वी का सबसे बड़ा मंदिर था। और सबसे धनी मंदिर था उस समय का।
आस-पास के राजपूतों ने खबर भेजी मंदिर के महापुजारी को कि हम आ सकते हैं और लड़ सकते हैं। लेकिन पुजारी ने कहा, तुम्हारे लड़ने की जरूरत क्या? जो भगवान सबकी रक्षा करता है, उसको तुम्हारी रक्षा की जरूरत है? पुजारियों के तर्क में भी बल तो था। राजपूतों को भी लगा कि बात तो ठीक है। सबका रक्षक अगर अपनी रक्षा न कर सके, तो फिर हमारी रक्षा क्या करेगा? हम उसकी रक्षा करने जाएं, यह बात ही बेहूदी है।
इसलिए गजनवी को कोई अवरोध नहीं हुआ। गजनवी से कोई लड़ा नहीं। गजनवी सीधा मंदिर में प्रवेश कर गया। लेकिन पुजारियों से एक भूल हो गई। वह भगवान तुम्हारे लिए भगवान था, तुमने उसमें भाव की प्रतिष्ठा की थी। गजनवी को तो नहीं था। उसने उठाई गदा और भगवान को टुकड़े-टुकड़े कर दिया। भगवान चारों खाने चित्त पड़े! पुजारी चौंके कि यह भगवान को क्या हो गया? और उन्होंने भगवान की मूर्ति में छिपा रखे थे बहुमूल्य हीरे-जवाहरात, वे सब बिखर गए। ख्याल रखना, अगर पुजारी का धक्का भी लग जाता भगवान को, पैर भी लग जाता,
तो शायद उसे बड़ा कष्ट होता। कष्ट होता, प्रायश्चित्त होता; बीमार हो सकता था--कोढ़ निकल सकता था। और सब उसके ही मन का खेल होता। मर भी सकता था, कि मुझसे ऐसी भूल हो गई! भूल इतनी गहरी उतर सकती थी, भीतर पश्चात्ताप इतना सघन हो सकता था कि मौत भी हो जाती। गजनवी का कुछ बाल बांका न हुआ, सिर में दर्द भी न हुआ। गजनवी को वहां भगवान था ही नहीं।
इसको बहुत ख्याल से समझ लेना। हम प्रतिष्ठा करते हैं साधन में। और जो प्रतिष्ठा करता है, उसके लिए साधन कारगर है। मैं यह भी नहीं कह रहा हूं कि जिन्होंने प्रतिष्ठा की, उन्होंने गलती की। मैं यह भी नहीं कह रहा हूं कि प्रतिष्ठा मत करना। अभी प्रतिष्ठा करनी पड़ेगी तो ही ऊपर उठोगे। लेकिन इतना ध्यान रखना कि एक दिन सारी मूर्तियों से मुक्त हो जाना उचित है। इस्लाम ठीक कहता है कि मूर्ति से मुक्त हो जाना उचित है। और इस्लाम गलत कहता है कि मंदिर में मूर्ति मत रखो। तुम थोड़े चौंकोगे मेरे इन दो वक्तव्यों से। इस्लाम ठीक कहता है कि मूर्ति से मुक्त होना चाहिए। लेकिन यह साधन की अंतिम अवस्था है। कोई कभी पहुंचता है। और जो पहुंच जाता है वह मंदिरों में पूजा करने नहीं जाता। उसको क्या जरूरत है जाने की? लेकिन जो नहीं पहुंचे हैं, वे सोचते हैं कि मंदिर में मूर्ति की कोई जरूरत नहीं। वे सदा भटकते रहेंगे। वे कभी नहीं पहुंचेंगे। तो इस्लाम ठीक कहता है और

इस्लाम गलत कहता है। और हिंदू भी ठीक कहते हैं और हिंदू भी गलत कहते हैं। हिंदू ठीक कहते हैं कि मूर्ति की जरूरत है, मूर्ति के बिना सहारे नहीं हो सकेगा। लेकिन गलती फिर होती है जब मूर्ति छूटती ही नहीं। मूर्ति इतनी मूल्यवान हो जाती है कि छोड़ी ही नहीं जाती। पकड़ जाती है। घबड़ाहट लगती है-- मूर्ति को कैसे छोड़ दें?
मूर्ति में स्थापित करो भाव को, लेकिन एक दिन भाव को मुक्त भी कर लेना। भजन में डूबो, लेकिन एक दिन भजन को भी जाने देना। क्योंकि है तो भजन भी शोरगुल। तुम्हें बुरा लगे, भला लगे, मगर है तो भजन भी शोरगुल। है तो भजन भी बाजार। अंतिम अवस्था तो निर्विचार की है। वहां कहां भजन, कहां कीर्तन! वहां तो सब शांत हो जाता है, वहां तो तरंगें ही लीन हो जाती हैं।
शांडिल्य बहुत वैज्ञानिक हैं। वे कहते हैंः ध्यान रखना, इन सबका लाभ है। श्रवण का लाभ है, मनन का लाभ है, अध्ययन का लाभ है; निदिध्यासन, सत्संग का लाभ है; भजन, कीर्तन, नर्तन का लाभ है, सबका लाभ है, लेकिन परम लाभ इनमें नहीं है। इनका उपयोग सीढ़ियों की भांति कर लेना।
यह सब कार्य पराभक्ति में पहुंचने के हेतुरूप हैं। और यह भी कहते हैं
कि सब प्रकार के पुण्यों में श्रेष्ठ हैं।
तुमने किसी को दान दिया, तुमने मंदिर बनवाया, तुमने एक धर्मशाला खुलवा दी; ग्रीष्म के दिन आए और तुमने पानी पिलाने की मुफ्त व्यवस्था करवा दी; सब ठीक है, लेकिन कीर्तन के बराबर इसका कोई मूल्य नहीं है। क्योंकि तुम जो भी करोगे, उसमें कहीं न कहीं तुम्हारा अहंकार परिपुष्ट होगा। मैंने धर्मशाला बनवा दी! मैंने मंदिर बनवा दिया! मैंने इतने लोगों को भोजन करवा दिया! कहीं सूक्ष्म में मैं मजबूत होगा।
तुम देखते नहीं, अक्सर ऐसा हो जाता है कि तुम्हारा पापी तो विनम्र होता है, तुम्हारा पुण्यात्मा बहुत अहंकारी होता है। अब जिसने मंदिर बनवाया वह अकड़ कर न चले तो कौन चले? जिसने दान दिया वह अकड़ कर न चले तो कौन चले? उसकी अकड़ में तर्क मालूम पड़ता है, कारण मालूम पड़ता है। उससे तुम कह भी नहीं सकते कि अकड़ कर क्यों चल रहे हो? पापी तो विनम्र हो जाता है और पुण्यात्मा अहंकारी हो जाता है। और वहीं चूक हो गई।
इसलिए अक्सर ऐसा हो जाता है कि पापी तो कभी-कभी परमात्मा तक पहुंच जाता है, पुण्यात्मा नहीं पहुंच पाता। क्योंकि पापी की विनम्रता ही द्वार बन जाती है। वह कहता है, मैं ना-चीज, मैं ना-कुछ; सिवाय बुरे के मुझसे कभी कुछ अच्छा नहीं हुआ। चोरी हुई मुझसे, हत्या हुई मुझसे, बेईमानी हुई मुझसे। मुझसे अंधेरा ही अंधेरा फैला है। तो उसका अहंकार खड़ा कैसे हो? उसके अहंकार के खड़े होने के लिए जगह नहीं है। उसको कारण ही नहीं मिलता कि मैं घोषणा कर सकूं कि मैं कुछ खास हूं। वह तो जानता है कि मैं तो दलित से भी दलित, पापी से भी पापी! मुझे तो होना ही नहीं चाहिए। वह तो झुका हुआ है।
लेकिन पुण्यात्मा? वह फेहरिस्त तैयार रखता है। अगर उसको परमात्मा भी मिल जाए कहीं भूल-चूक से--परमात्मा मिलता नहीं पुण्यात्मा को, डरता है परमात्मा पुण्यात्मा से, क्योंकि वह अपनी पूरी बही खोल देगा, वह कहेगाः इतना किया, इतना किया, इतना किया। इस सबका फल कहां है? हमने तो सुना था कि देर है, अंधेर नहीं। लेकिन अंधेर हो रहा है। फल कहां है? मुझे फल चाहिए। पापी तो गिर पड़ेगा, वह कहेगाः क्षमा चाहिए मुझे। पुण्यात्मा कहेगाः फल चाहिए मुझे।
फर्क समझ लेना।
पापी को परमात्मा मिल जाए तो वह गिर पड़ेगा पैर में और वह कहेगाः मुझे क्षमा कर दो, मुझे माफ करो। मैंने बुरा ही बुरा किया है। मैं सिर भी उठाऊं तुम्हारे सामने, इस योग्य नहीं। मैं आंख भी उठा कर तुम्हें देखूं, इस योग्य नहीं हूं। सिर्फ पापों की गठरी है मेरे ऊपर। मेरा तो एक ही भरोसा है कि तुम करुणावान हो। और कोई भरोसा नहीं है। मुझमें भरोसा नहीं है भीतर, तुममें भरोसा है, तुम्हारी करुणा अपार है। तुम चाहोगे तो मुझ पापी को भी उबार लोगे। मगर तुम चाहोगे तो ही उबार सकोगे। अपने से तो मैं डूबने ही वाला हूं। अपने से तो मैं डूब ही गया हूं। मेरे किए कुछ होने वाला नहीं है। और इसी में उबरना है। यही विनम्रता परमात्मा से जोड़ देती है।

पुण्यात्मा सोचता है, मेरा अपना किया हुआ है। अपनी बनाई सीढ़ियां हैं। इन्हीं से चढ़-चढ़ कर पहुंच जाऊंगा मोक्ष तक। यही अहंकार उसे नरक ले जाता है।
इसलिए शांडिल्य कहते हैं कि ये भजन, कीर्तन, नर्तन, सत्संग सभी पुण्यों से श्रेष्ठ हैं। क्यों? क्योंकि भजन की मौलिक शर्त यही है कि तुम करने वाले नहीं होने चाहिए। भजन हो, किया न जाए, यह उसकी मौलिक शर्त है। तुम डोलो, मगर अपने को डुलाना मत। डुलाया कि चूक गए। डुलाया कि तुमने कृत्रिम कर लिया, अभिनय कर लिया। फिर तुम अभिनेता हो। तुम अच्छी तरह से डोल सकते हो, अच्छी तरह से आंसू भी बहा सकते हो, मगर वह सब अभिनय है। भजन की मौलिक शर्त है--होने देना, भाव से उमगने देना, तुम्हारे भीतर से बहने देना। कर्ता मत बनना उसके। सहज हो, स्वाभाविक हो, स्वस्फूर्त हो, तो भजन।
पुण्य करना पड़ता है। अगर भजन भी करना पड़े, और ऐसा हो जाता है, तो फिर चूक हो गई। वह भजन ही नहीं है। तुमने देखा, कभी तुम मंदिर गए, अगर कोई देखने वाला नहीं तो तुम पूजा-पत्री जल्दी से कर लेते हो। कोई देखने ही वाला नहीं तो सार भी क्या! दो-दो सीढ़ियां एक साथ चढ़ जाते हो। कुछ लकीरें यहां-वहां छोड़ कर जल्दी आगा-पीछा किया, देख रहे हो कि कोई देखने वाला ही नहीं तो फायदा भी क्या! लेकिन अगर सारा गांव इकट्ठा हो...
मैं छोटा था तो अपने गांव के मंदिर जाता था। वहां मैं यही देखने जाता
था कि वहां किस-किस ढंग की प्रार्थना होती है। जब कभी मंदिर में कोई उत्सव होता और भीड़ होती तो मैं उन्हीं लोगों को प्रार्थना करते देखता जिनको मैंने अकेले में भी प्रार्थना करते देखा है--लेकिन वे देखते कि एक छोकरा बैठा है, इससे क्या लेना-देना! मैं बैठा रहता। और वे देखते कि यह तो अक्सर बैठा रहता है आकर, इसका क्या लेना-देना! लेकिन जब भीड़ होती, उत्सव होता गांव में, मंदिर में सारे लोग इकट्ठे होते, तब उनका भाव देखते बनता था! तब मैं सोचता कि यह बात क्या है? उत्सव के दिन भगवान होता है? जब उत्सव नहीं होता, गांव के लोग इकट्ठे नहीं होते, तब भगवान नहीं होता? तब वह उनकी आंखों से आंसू गिरते। वे हाथ में थालियां लेकर पूजा की और नाचते, और ऐसे मस्त हो जाते जैसे सब भूल गए संसार! और इनको ही मैंने उस समय भी प्रार्थना करते देखा है जब कोई नहीं होता, मैं ही अकेला वहां बैठा होता। तो ये जल्दी से, देर न लगती इनको, जल्दी से निपटा कर वे गए! और जब भीड़-भाड़ होती तब घंटों लग जाते! गिर-गिर पड़ते! समाधि अवस्था लग जाती।
मुझे छोटे से ही जिज्ञासा रही। तो जब भी किसी की समाधि लगती थी तो मैं सुई इत्यादि लेकर वहां मौजूद--जांच के लिए। एक सज्जन को मेरे गांव में अक्सर समाधि लग जाती थी। वे मुझे देखते ही से डरते थे। वे कहते थे, तुम सुई वगैरह मत लाना। क्योंकि जब मैं समाधि में होता हूं, तुम सुई चुभाते हो। और भीड़ में कौन देखता है! भीड़ लगी रहती, मैं उनको सुई चुभाता। मैं देखता कि अब ये... और वे हिलने-डुलने लगते, सुई से परेशान होने लगते। वह समाधि वगैरह सब दिखावा था। मुसलमानों के वली उठते, मैं उनके पीछे सुई लेकर चला जाता। मुझसे गांव में लोग डरने लगे--वली, समाधि इत्यादि करने वाले लोग! तुम चकित होओगे, मुझे एक वली मिठाई देते थे। जब उनका वली उठता था, उसके एक दिन पहले वे मुझे मिठाई दे जाते कि भैया, तू सुई मत चुभाना। क्योंकि बड़ा दर्द होता है।
लोग देखते हैं--देखने वाले आए हैं या नहीं? यह सब अभिनय है। यह न तो भजन है, न यह कीर्तन है, न यह समाधि है। इस सब उपद्रव में मत पड़ना। यहां कर्ता आ गया। यहां अहंकार प्रविष्ट हो गया। और जहां अहंकार है, वहां परमात्मा नहीं। सहज भाव से होने देना। सरलता से होने देना। इसमें कोई प्रयोजन न हो। यह तुम्हारा सहज आनंद हो। फिर अकेले में भी हो, कि भीड़ में हो, कोई फर्क नहीं पड़ना चाहिए। कोई देखने वाला हो कि कोई देखने वाला न हो, कोई फर्क नहीं पड़ना चाहिए। देखने वाले के लिए थोड़े ही तुम प्रार्थना कर रहे हो! वह जो सदा देख रहा है उसके लिए प्रार्थना कर रहे हो। उस पर ही नजर रखो। और किसी पर नजर नहीं होनी चाहिए।
मैंने सुना है, इंग्लैंड की महारानी एक बार लंदन के एक बड़े चर्च में गई। बड़ी भीड़ थी। रानी बहुत चकित हुई। उसने पादरी को पूछा कि मैं तो सोचती

थी लोगों का धर्म में विश्वास उठा जा रहा है। यहां इतनी भीड़ देख कर मुझे संदेह होता है उस बात में। इतने लोग, इतने भाव से चर्च में आए हुए हैं!
उस पादरी ने कहा, आप कभी बिना खबर किए आएं। यहां कोई नहीं आता है। ये
सब आपके लिए आए हैं, ये परमात्मा के लिए नहीं आए हैं। आपके आने के पहले हम परेशान हो गए हैं, दो दिन से फोन ही फोन आ रहे हैं, कि रानी निश्चित आ रही हैं? और मैं फोन पर लोगों को समझा रहा हूं कि रानी का तो पक्का नहीं, लेकिन परमात्मा निश्चित रहेंगे। मगर परमात्मा में किसी की उत्सुकता ही नहीं है। वे कहते हैं, परमात्मा ठीक, हम पूछते हैं कि रानी आ रही हैं कि नहीं? परमात्मा से किसको लेना-देना है? लेकिन रानी अगर आ रही हो तो लोग वहां मौजूद होना चाहते हैं। पहली पंक्ति में होना चाहते हैं। रानी को देख कर एकदम समाधि लगने लगेगी उन्हें! और तुम समझोगे कि भगवान के लिए बड़ा भाव पैदा हो रहा है। सावधान रहना! दूसरों से ही नहीं, अपने से भी सावधान रहना! अपने भीतर परख करते रहना।
सबसे श्रेष्ठ बात तो वही है, सबसे बड़ा पुण्य तो वही है, जब तुम्हारा अहंकार गलता है। और उस गलित अहंकार में से असहाय अवस्था की आह उठनी शुरू होती है। वही आह भजन है। आंसू टपकने शुरू होते हैं। नहीं कि तुम उन्हें गिराते हो। तुम सम्हालना भी चाहो तो नहीं सम्हाल पाते हो।
हम क्या करें न तेरी अगर आरजू करें
दुनिया में और कोई भी, तेरे सिवा है क्या
भक्त करे क्या? भजन करना नहीं होता, भजन होता है।
हम क्या करें न तेरी अगर आरजू करें
दुनिया में और कोई भी, तेरे सिवा है क्या
भक्त असहाय होता है। कृत्य की तरह प्रार्थना नहीं निकलती। उसकी असहाय अवस्था की आह है! भक्त भगवान से बातें करता है, वही भजन है। भक्त बिल्कुल पागल है, वही पागलपन भजन है।
आप ही कहिए कि फिर आप पे क्या गुजरेगी
जुल्म ऐसा ही अगर आप पे ढाया जाए
भक्त भगवान से बातें करता है--
आप ही कहिए कि फिर आप पे क्या गुजरेगी
जुल्म ऐसा ही अगर आप पे ढाया जाए
जैसा तुम मुझे छोड़ दिए हो अंधेरे में, जैसा तुम मुझे छोड़ दिए हो इस अंधेरी गर्त में, ऐसा ही तुम्हारे साथ किया जाए तो आप पर क्या गुजरेगी? ये बातें, यह गुफ्तगू, यह वार्तालाप पागल ही कर सकता है। होश वाला आदमी तो कहेगा, किससे मैं बातें कर रहा हूं? कोई दिखाई तो पड़ता नहीं! इससे तो जाकर अपनी दुकान ही चलाओ, उसमें कुछ लाभ है। यहां बैठा किसके लिए रो रहा हूं? यह मैं जो पुकारता हूं, यह सब सूने आकाश में खो जाएगा।
भक्त के लिए अस्तित्व सूना नहीं है। यहां सब तरफ जीवंत कुछ छिपा है,
जो शायद चमड़े की आंखों से दिखाई न भी पड़े, शायद बाहर के हाथों से स्पर्श जिसका हो भी न सके। लेकिन जब भाव खुलता है, तो तत्क्षण संबंध जुड़ जाता है। मालूम थीं मुझे तेरी मजबूरियां मगर
तेरे बगैर नींद न आई तमाम रात
उम्मीद तो बंध जाती, तस्कीन तो हो जाती
वादा न वफा करते, वादा तो किया होता
ऐसी बातें करता है। बाहर से कोई देखेगा भक्त को तो निश्चित समझेगा कि विक्षिप्त हो गया है। बाहर से देखने का कोई उपाय ही नहीं है। भक्त को तो भीतर से ही जाना जा सकता है। कुछ बातें हैं जो भीतर से ही जानी जा सकती हैं। बाहर से जानीं कि गलत ही जानोगे। प्रेमी भी इसीलिए पागल मालूम पड़ता है। अब तुम अगर मजनू को देखोगे लैला से बातें करते, तो पागल ही समझोगे। तुमने भी कभी किसी से प्रेम किया है, याद भी करोगे लौट कर अब तो तुम खुद अपने को पागल समझोगे। तुम कहोगे, वह जवानी थी, वे पागलपन के दिन थे। बूढ़े होकर सभी लोग होशियार हो जाते हैं। बूढ़े होकर सोचने लगते हैं--वह जवानी थी, वह पागलपन था। वह न तो पागलपन था, न जवानी थी। वह तुम्हारे भाव में अभी जीवंतता थी, उसका परिणाम था।

रामानुज के पास एक आदमी आया और उसने कहा कि मुझे परमात्मा से मिला दें।
रामानुज ने कहा, परमात्मा की बात पीछे करेंगे, मैं तुझसे यह पूछता हूं--तूने कभी किसी से मोहब्बत की? कभी किसी से प्रेम किया?
उस आदमी ने कहा, मैं इस झंझट में कभी पड़ा ही नहीं; मुझे तो परमात्मा से मिलना है।
रामानुज ने कहा, फिर-फिर कहा, कि तू मुझे बता, सोच कर बता--किसी से कभी, मित्र से, मां से, भाई से, पिता से, पत्नी से, किसी स्त्री से, किसी से तो प्रेम किया होगा?
उस आदमी ने कहा कि नहीं, मैं इस सांसारिक झंझट में पड़ा ही नहीं।
तो रामानुज ने कहा कि मैं असहाय हूं। क्योंकि अगर तूने प्रेम जाना ही नहीं, तो भक्ति तू कैसे जानेगा? क्योंकि भक्ति तो प्रेम का ही विस्तार है। वह उसकी पराकाष्ठा है।
प्रेमी तो छोटा-मोटा पागल है। कम से कम जिससे वह बातें कर रहा है वह मौजूद तो है! भक्त बिल्कुल पागल है! इसलिए केवल जो पागल होने का साहस रखते हैं, वे ही केवल भक्ति में प्रवेश कर सकते हैं। दीवानों का काम है, मस्तों का काम है! समझदारी से दुनिया मिलती है, समझदारी से परमात्मा नहीं मिलता। मैं तुम्हें याद रखने को कहना चाहता हूं--समझदारी से दुनिया मिलती है, नासमझी से परमात्मा मिलता है। जितने दानां हो जाओगे उतनी दुनिया पा लोगे, लेकिन जितने नादान हो जाओगे उतने परमात्मा को पा लोगे। जितने निर्दोष हो जाओगे, जितने सरल चित्त, छोटे बच्चे की भांति हो जाओगे।
सबसे बड़ा पुण्य कहा शांडिल्य ने--भजन, कीर्तन, नर्तन। लेकिन ध्यान रखना, ये सब गौण हैं। ये सब यात्रा के उपाय हैं। मंजिल पर पहुंच कर ये सब चले जाने चाहिए। इनको पकड़ मत लेना। इनका अभ्यास मत कर लेना। इनसे गुजर जाना, इनसे अटक मत जाना।
गौणं त्रैविध्यम इतरेण स्तुत्यर्थत्वात साहचर्यम्।
"गौणी-भक्ति तीन प्रकार की होती है--आर्त, जिज्ञासु और अर्थार्थी। उनके साथ ज्ञानी-भक्ति का नाम मर्यादा बढ़ाने के अर्थ में ही आया है।"
इस सूत्र में कृष्ण के वक्तव्य का उल्लेख है। कृष्ण ने भगवद्गीता में कहा हैः भक्ति चार प्रकार की होती है। शांडिल्य अपना भेद जाहिर करते हैं। और भेद मूल्यवान है। कृष्ण ने कहा हैः भक्ति चार प्रकार की होती है--आर्त, जिज्ञासु, अर्थार्थी और ज्ञानी। शांडिल्य कहते हैंः तीन तो गौण हैं, तीन तो साधनरूप हैं, चौथी साध्य है। इन चारों को साथ नहीं गिनाना चाहिए। भक्ति तो गौण तीन ही हैं--आर्त, जिज्ञासु, अर्थार्थी। और जो ज्ञानी-भक्ति है, वह तो उपलब्धि है, वह तो सारतत्व है, वह तो साध्य है।
फिर कृष्ण ने इनकी गणना इस तरह क्यों की होगी? तो शांडिल्य कहते हैंः गौणी-भक्ति तीन ही प्रकार की होती है--आर्त, जिज्ञासु, अर्थार्थी, लेकिन उनके साथ ज्ञानी-भक्ति का नाम सिर्फ मर्यादा बढ़ाने के अर्थ में कृष्ण ने उपयोग किया है, ताकि उनको मर्यादा मिले। साथ जोड़ दिया है अंत में, ताकि ख्याल रहे। इन तीन से जाना है, चौथे पर पहुंचना है। लेकिन चौथी बात ही अलग है! जहां तीन का अंत हो जाता है, वहां चौथी का प्रारंभ है।
अब यह बड़े मजे की बात है, इसे समझना। हमारे पास एक शब्द है--वेदांत। वेदांत बड़ा अनूठा शब्द है। इसके दो अर्थ होते हैं। एक अर्थ तो होता हैः वेद का अंतिम शिखर, वेद की अंतिम मंजिल, जहां वेद अपनी पूर्णता को पाते हैं--वेदांत। और एक अर्थ होता हैः जहां वेद समाप्त हो गए, जहां वेद का अंत हो गया, जहां वेद अब व्यर्थ हो गए। वेदांत के दो अर्थ हुए। एक, जहां वेद पूर्ण हो गए; और एक, जहां वेद व्यर्थ हो गए। और दोनों ही अर्थ एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। जहां वेद व्यर्थ हो जाते हैं वहीं वेद पूर्ण होते हैं। पूर्णता और व्यर्थता एक ही साथ घटती है।
ये जो तीन साधन हैं, ये जब पूर्ण हो जाएंगे, तो वह वही घड़ी होगी जहां ये व्यर्थ हो जाएंगे। इनका अब कोई उपयोग न रहा। इनका काम पूरा हो गया। ये जो चाहते थे वह घटना घट गई। अब इनको विदा हो जाना है। इन तीनों भक्तियों का अर्थ तुम ठीक से ख्याल में ले लेना।

आर्त का अर्थ होता हैः आंसुओं से भरी भक्ति, रुदन करती हुई भक्ति। जीवन के दुख से आर्त-भक्ति का जन्म होता है। जीवन दुख से भरा है। दुख ही दुख है यहां। बुद्ध ने कहा हैः जन्म दुख है, जवानी दुख है, बुढ़ापा दुख है, मृत्यु दुख है--सब दुख ही दुख है। यहां अगर कोई गौर से देखेगा, तो सुख तो सिर्फ आशा है, मिलता कभी नहीं। जो मिलता है वह दुख है। जो मिलने की आकांक्षा रहती है वह सुख है। मगर आकांक्षा कभी पूरी नहीं होती।
तुमने ख्याल किया? जरा पीछे लौट कर देखो, तुम्हें कभी सुख मिला? और ईमानदारी से देखना। किसी को धोखा देने का उपाय नहीं है। किसको धोखा देना है? कभी अपने पीछे लौट कर बैठ कर देखना कि चालीस साल जी लिए, कि पचास साल जी लिए, सुख मिला? मन तत्क्षण कहेगा--अभी तो नहीं मिला, लेकिन आगे मिलेगा। चले चलो! जूझे रहो!
बर्नार्ड शॉ को एक मित्र ने अपना एक नाटक दिखाने के लिए निमंत्रित किया। नाटक के दो ही दृश्य हुए थे और बर्नार्ड शॉ उठ कर खड़ा हो गया। और उसने कहा, मैं चला भाई, नमस्कार!
उस मित्र ने कहा, अभी चले? अभी नाटक पूरा नहीं हुआ।
बर्नार्ड शॉ ने कहा कि दो दृश्य देख कर समझ गया। जिसने दो लिखे हैं उसी ने तो आगे के भी लिखे होंगे न! बात खतम हो गई! इन दो से काफी स्वाद आ गया।
इस बात का नाम ही मेधा है।
पचास साल हो गए, सुख नहीं मिला, लेकिन जिसने पचास साल जीया है वही तो आगे भी जीएगा न! और जिस ढंग से पचास साल जीए हैं उसी ढंग से तुम आगे जीओगे। वही जो तुमने पचास साल में किया, आगे भी दोहराओगे--करोगे क्या और? वही क्रोध, वही प्रेम, वही लोभ, वही मोह, वही घर, वही दुकान, वही हार, वही जीत, वही सफलता-असफलता, यश-अपयश, वही तो करोगे न! कोल्हू के बैल की तरह वहीं तो चलोगे। वही वर्तुल में घूमते रहोगे। पचास साल घूम कर तुम्हें यह ख्याल नहीं आया कि सुख केवल एक भ्रांति है। मिलता कभी नहीं, बस मिलने का आश्वासन रहता है। जैसे क्षितिज है, दूर आकाश जमीन को छूता हुआ मालूम पड़ता है, छूता कहीं नहीं है। लगता है कि अगर दौडूं तो घंटे, दो घंटे में पहुंच जाऊंगा जहां छू रहा है आकाश पृथ्वी को, लेकिन तुम कभी पहुंचोगे नहीं। जितना तुम क्षितिज के करीब पहुंचोगे, क्षितिज पीछे हटता जाएगा। तुम्हारे और क्षितिज के बीच दूरी सदा उतनी ही रहेगी। उसमें कभी कमी नहीं होती। इंच भर कमी नहीं होती। मनुष्य और सुख के बीच दूरी सदा उतनी ही रहती है। जन्म के वक्त जितनी थी, मृत्यु के वक्त भी उतनी ही रहती है। सुख कभी मिलता नहीं। जिसे जीवन का यह दुख दिखाई पड़ जाता है, वह क्या करे अब? रोए न तो और क्या करे? उसके भीतर आर्त-भक्ति पैदा होती है। जीवन के दुख-अनुभव से आंसुओं का जन्म होता है, रुदन पैदा होता है। असहाय अवस्था मुखर होती है। तो भक्ति का एक रूप है--आर्त। कुछ लोग इस तरह से जाएंगे।

बहार बनके तू आ जा कि जा चुकी है बहार
गुलों को ओस से नहलाके जा चुकी है बहार

मुझे तो खून के आंसू रुला चुकी है बहार
मेरी तो दुनिया मिटा कर ही जा चुकी है बहार
फकत मुझे यही नग्मा लिखा चुकी है बहार
बहार बनके तू आ जा कि जा चुकी है बहार

इन अंदलीबों के नग्मों की लोरियों की कसम नसीमे-सुबह की उन मीठी थपकियों की कसम
वो तेरी याद की दिलदोज हिचकियों की कसम तुझे गुलिस्तां की रंगीन तितलियों की कसम बहार बनके तू आ जा कि जा चुकी है बहार

इन पंक्तियों को लिखा तो है किसी ने सांसारिक प्रेम के लिए, लेकिन भक्त की भी यही प्रार्थना है कि मैंने देख ली यह बहार! यह बहार सिर्फ बहार का धोखा है। मैंने देख लिया यह सब, दूर से लुभावना है--दूर के ढोल सुहावने। मैंने देख लिए सब रंग-ढंग, मृग-मरीचिका है। इंद्रधनुष कैसा प्यारा लगता है आकाश में खिंचा हुआ! वहां है कुछ भी नहीं। हवा में लटके हुए जलकणों पर सूरज की किरणों की माया का जादू--और कुछ भी नहीं है वहां। तुम पकड़ने जाओगे तो हाथ में कुछ भी न आएगा। लगता बहुत प्यारा है। सतरंगा है! अदभुत है! सारे फूलों के रंग हैं! लेकिन हाथ में तो कुछ भी न आएगा, मुट्ठी खाली रह जाएगी। ऐसा है जगत, इंद्रधनुष जैसा! पानी केरा बुदबुदा। और कब टूट जाएगा बुदबुदा, कुछ पता नहीं। अभी है, अभी मिट जाए; कोई भरोसा भी नहीं।
बहार बनके तू आ जा कि जा चुकी है बहार
इस जगत की बहार तो जा चुकी, देख लिया। अब तू आ जाए तो ही बाहर आए।
गुलों को ओस से नहलाके जा चुकी है बहार
मुझे तो खून के आंसू रुला चुकी है बहार
जरा गौर से देखना, सबकी आंखें खून के आंसुओं से भरी हैं। शायद इसीलिए
हम कभी शांत बैठ कर अपने जीवन पर विचार भी नहीं करते हैं। विचार से घबड़ाहट लगती है। छाती धड़कने लगती है। क्योंकि लगता है--सब असार है! पैर के नीचे जमीन ही नहीं है, जीए चले जा रहे हैं। जीने का कोई सहारा नहीं, कोई कारण नहीं।
मेरी तो दुनिया मिटा कर ही जा चुकी है बहार
फकत मुझे यही नग्मा लिखा चुकी है बहार
तुम्हारी जिंदगी का सारा सार-निचोड़ इतना है--
फकत मुझे यही नग्मा लिखा चुकी है बहार
बहार बनके तू आ जा कि जा चुकी है बहार
आर्त-भक्ति पैदा होती है कि हे परमात्मा, तू आए तो ही कुछ हो। जिंदगी तेरे बिना सिवाय दुख के और कुछ भी नहीं है। सुख होगा तो तुझमें। तेरे बिना दुख है। तेरी मौजूदगी सुख होगी। तेरी गैर-मौजूदगी दुख है। मैं अपने से जीकर देख लिया, अकेले-अकेले जीकर देख लिया, अब तू मेरे भीतर आ जा। तो यह तो आर्त-भक्ति का पहला रूप है।

बीन, आ छेडूं तुझे, मन में उदासी छा रही है।
लग रहा जैसे कि मुझसे
आज सब संसार रूठा,
लग रहा जैसे कि सबकी
प्रीति झूठी, प्यार झूठा,
और मुझ सा दीन, मुझ सा
हीन कोई भी नहीं है,
बीन, आ छेडूं तुझे, मन में उदासी छा रही है।

आर्त-भक्ति जीवन की सारी उदासी का अनुभव है, निचोड़ है। इसलिए आंसू, इसलिए रुदन। आर्त-भक्त अपने भजन में रोता है। और जल्दी ही रोने में रूपांतरण हो जाता है। अगर कोई हृदयपूर्वक रोएगा, आंसू आंखों को शुद्ध कर जाते हैं। और आंखों में एक नई चमक आ जाती है। और ठीक से अगर कोई रो लिया है जीवन के दुख को देख कर, तो सुख की पहली खबर, पहली किरण उतरने लगती है।

था तुझे छूना कि तूने
भर दिया झंकार से घर
और मेरी सांस को भी
सात स्वर के लग चले पर
आ अवनि छू लूं, गगन छू लूं
कि सातों स्वर्ग छू लूं,
सब मुझे आसान मेरे साथ तू जो गा रही है। बीन, आ छेडूं तुझे, मन में उदासी छा रही है।

तुम्हें भक्तों के हाथ में जो इकतारा दिखाई पड़ा है, अकारण नहीं। इकतारा बड़ा उदास स्वर पैदा करता है। एक ही तार है उसमें। उसका स्वर उदासी का स्वर है। और इकतारा मनुष्य के एकाकी होने का सबूत है--कि हम अकेले हैं; कि उसके बिना हमारा कोई संगी-साथी नहीं है। यह अनुभव जितना प्रगाढ़ तुम्हारे भीतर हो, उतना ही गौणी-भक्ति का पहला रूप जन्म सकता है--आर्त-भक्ति।
ख्याल रखना, सभी के लिए जरूरी नहीं कि वे आर्त-भक्त हों। दुनिया में तीन तरह के लोग हैं, इसलिए शांडिल्य ने तीन तरह की भक्ति कही है। दुनिया के लोगों को अनेक-अनेक ढंगों से बांटा जा सकता है। पांच कोटियों में बांटा जा सकता है, सात कोटियों में बांटा जा सकता है। और अनेक ढंगों से बांटा जा सकता है। ख्याल रखना, इससे तुम दुविधा में मत पड़ना। कल ही मैंने तुमसे कहा था कि दुनिया में पांच तरह के लोग हैं, इसलिए पांच तरह के ध्यान हमने यहां व्यवस्थित किए हैं। अब तुम सोचोगे कि आज मैं कहता हूं--शांडिल्य कहते हैं, दुनिया में तीन तरह के लोग हैं! यह विभाजन बहुत तरह से हो सकता है।
ऐसा ही समझो, कोई आदमी यहां आए और खड़े होकर तुमको देखे। वह कह सकता है, यहां दो तरह के लोग हैंः कुछ स्त्रियां हैं, कुछ पुरुष हैं। वह यह भी कह सकता है कि यहां दो तरह के लोग हैंः कुछ गैरिक वस्त्रों में हैं, कुछ गैरिक वस्त्रों में नहीं हैं। वह और तरह के विभाजन भी कर सकता है। वह कह सकता है, यहां तीन तरह के लोग हैंः कुछ बूढ़े हैं, कुछ जवान हैं, कुछ बच्चे हैं। यह विभाजन बहुत तरह से हो सकता है। वह कह सकता हैः यहां कुछ जर्मन हैं, कुछ जापानी हैं, कुछ हिंदुस्तानी, कुछ चीनी। यह विभाजन बहुत तरह से हो सकता है। इसलिए दुनिया में बहुत तरह के विभाजन किए गए हैं। सब उपयोगी हैं और उनमें कोई विवाद नहीं है। हम बहुत तरह से बांट सकते हैं।
शांडिल्य ने तीन तरह से बांटा। एक, जिनके जीवन में दुख का अनुभव बहुत प्रगाढ़ हो सकता है। जिनको दुख का साक्षात्कार हो सकता है। दूसरा, शांडिल्य कहते हैंः जिज्ञासु-भक्ति। सत्य की जिज्ञासा से। पहला व्यक्ति दुख की जिज्ञासा से चलता है। दूसरे तरह का व्यक्ति, जीवन में उसे सत्य क्या है यह दिखाई नहीं पड़ता, जीवन में सब असत्य दिखाई पड़ता है, भ्रम दिखाई पड़ता है, माया दिखाई पड़ती है, ऊपर-ऊपर से कुछ, भीतर-भीतर कुछ और है, ऐसा उसे मालूम होता है। भीतर क्या है? सचाई क्या है? असलियत क्या है? हकीकत क्या है? यथार्थ क्या है? यह उसकी जिज्ञासा है। उसे दुख उतना नहीं परेशान कर रहा है। उसकी परेशानी यह है कि जीवन का सत्य क्या है? मैं जीवन के सत्य को कैसे पा लूं? क्योंकि सत्य को पा लूं तो शाश्वत को पा लूं। सत्य मिल जाए तो सनातन मिल जाए। वह कहता है, दुख भी अगर हो रहा है तो इसीलिए हो रहा है कि हमने क्षणभंगुर को पकड़ा है। अगर शाश्वत मिल जाए तो दुख अपने आप खो जाएगा। यह एक दूसरे तरह की जिज्ञासा है। यह एक दूसरे तरह की यात्रा है। जिसके जीवन में ऐसा प्रश्न प्रगाढ़ होकर उठता हो...
मेरे पास लोग आते हैं, कोई पूछता है कि मैं कौन हूं, यह जानना चाहता हूं। बहुत लोग हैं जो यह नहीं पूछते कि मैं कौन हूं, यह जानना चाहता हूं। बहुत लोग पूछते हैं कि बड़ा दुख है, क्रोध है, उदासी है, इससे कैसे छुटकारा हो? चिंता है, बेचैनी है, परेशानी है, संताप है, इससे कैसे मुक्ति हो? उन्हें कोई सवाल नहीं है कि मैं कौन हूं। अगर उनसे कहो कि पहले यह सोचो कि मैं कौन हूं, तो वे कहते हैं, इससे क्या होगा? इससे सार क्या है? और ध्यान रखना, जो आदमी पूछ रहा है कि चिंता है, बेचैनी है, परेशानी है, अगर उसकी सारी चिंता, बेचैनी, परेशानी छूट जाए, तो वह जान लेगा कि वह कौन है। और जो आदमी कह रहा है--मैं कौन हूं, अगर वह यह जान ले, तो उसकी सारी चिंता, परेशानी मिट जाएगी। अंतिम परिणाम एक है। लेकिन यात्रा-पथ अलग-अलग हैं।

"मैं कहां जाऊं?" यह आवाज किधर से आई?

जैसे सागर कोई खुनके, कोई शीशा टूटे
जैसे शर्मीले मुगन्नी का इरादा टूटे

जैसे सहराओं की तनहाई में नै की आवाज जैसे लहरों पे हवाओं की थिरकता हुआ साज "मैं कहां जाऊं?" यह आवाज किधर से आई?

मैं हूं मगमूम कि ये साज भी मगमूम-से हैं? ये मेरे अश्क हकीकत हैं कि मौहूम-से हैं? जैसे तनहाई में इक साज बजाता हो कोई जैसे खामोश सितारों को रुलाता हो कोई "मैं कहां जाऊं?" यह आवाज कहां से आई?

कौन गुमनाम खलाओं में बुलाता है मुझे?
कौन मानूस-सा इक राग सुनाता है मुझे?
जैसे गुजरे हुए लम्हों को पुकारे कोई
जैसे डूबी हुई किश्ती को उभारे कोई
और यह आवाज, यह आवाज किधर से आई?

एक जिज्ञासाः मैं कौन हूं? यह जगत क्या है? इस जगत को बनाने वाला कौन है? हम कहां से आते हैं? हम क्यों आते हैं? हम क्यों हैं? हम कहां जाते हैं? ऐसी जिज्ञासा जिसके मन में हो, उसके लिए जिज्ञासु-भक्ति। जिज्ञासु- भक्ति में क्या करना होगा?
आर्त तो रोएगा, चीखेगा, पुकारेगा, उसकी भक्ति आह से भरी होगी। जिज्ञासु सत्संग करेगा, श्रद्धा करेगा, ध्यान करेगा, गुरु के पास बैठेगा, जिसको मिल गया होगा उसकी तलाश करेगा। आर्त बिना गुरु के भी चल सकता है, लेकिन जिज्ञासु बिना गुरु के नहीं चल सकता। किससे पूछे? जिसने जाना, जो गया हो, जिसने जाना हो, उससे ही पूछा जा सकता है। जिसने अनुभव किया हो, उसी से पूछा जा सकता है। आर्त बिना गुरु के भी चल सकता है। उसको अगर गुरु की जरूरत भी पड़ेगी तो अंत में पड़ेगी, जब भजन छुड़ाने का सवाल आएगा। लेकिन जिज्ञासु को जरूरत शुरू में ही पड़ जाती है। उसके लिए सत्संग के बिना कोई सहारा नहीं है।
जिज्ञासु सदगुरु को खोजता है। फिर बैठता उसकी छाया में, सुनता उसे, गुनता उसे, उसके साथ धीरे-धीरे अपनी तरंगों को एक करता, उसके साथ लवलीन होता और धीरे-धीरे उसकी चेतना के साथ उसके संबंध जुड़ने शुरू होते। शायद आंसू उसे कभी न आएं, इससे कोई चिंता मत लेना।
अक्सर ऐसा हो जाता है कि लोग एक-दूसरे की नकल में पड़ जाते हैं। तुम्हारे पड़ोस में बैठा कोई रो रहा है। तुम सोचते हो कि मैं क्या पत्थर हूं? या तो यह उपाय है कि तुम सोचो--क्या मैं पत्थर हूं? क्या मेरा हृदय पाषाण है?
मेरे पास प्रश्न आते हैं बहुत से, कि हमें क्यों नहीं हो रहे हैं इस तरह के भावों के आविर्भाव? हमारे भीतर आंसू क्यों नहीं फूटते? हम रोते क्यों नहीं हैं? लोग तो रो रहे हैं और हम बैठे हैं! हमारी क्या कठिनाई है? या तो यह भाव, और या फिर वह सोचता है कि यह आदमी जो रो रहा है, पागल है। मैं ठीक हूं, यह पागल है। यह रोना भी कोई बात है! यह आदमी कमजोर होगा। यह आदमी स्त्रैण है। स्त्रियां रो रही हों तो तुम माफ भी कर देते हो कि चलो ठीक है, स्त्रियां हैं, रोने दो। मगर कोई पुरुष रोता है तो तुम्हें बड़ी बेचैनी होती है। तुम सोचते हो, मामला क्या है? यह आदमी प्रौढ़ नहीं हो पाया, बचकाना रह गया है!
नहीं, दोनों तरह की बातें मत सोचना। न तो सोचना कि तुम पत्थर-हृदय हो
और न सोचना कि दूसरा पागल है, या स्त्रैण है। ध्यान रखना, न तो दूसरे से नकल करना है और न अपने को दूसरे पर आरोपित करना है। हम यही करते रहते हैं। दो ही तरह के उपाय हम करते रहते हैं, या तो दूसरे पर हम अपने को आरोपित करते हैं कि मैं रोता हूं तो तुम भी रोओ। नहीं तो तुम पाषाण-हृदय हो। और या, देखो मैं नहीं रो रहा हूं, तुम मत रोओ! नहीं तो इसका मतलब सिर्फ इतना ही है कि तुम कमजोर-हृदय हो। तुम मजबूत नहीं हो। तुम में बल नहीं है। तुम निर्बल

हो। ऐसे कहीं जिंदगी चलेगी? या तो यह, और या फिर यह होता है कि दूसरा रो रहा है तो मैं भी रोऊं। असली आंसू नहीं आ रहे, तो चलो, नकली आंसू बहाऊं। लेकिन ऐसा तो न हो, अपनी भद्द तो न करवाऊं, लोग क्या कहेंगे? दूसरे लोग शांत बैठे हैं मूर्ति की तरह, तुम भी बैठ जाते हो मूर्ति की तरह शांत होकर।
आदमी एक-दूसरे की नकल करता है, इससे मैं डार्विन से सहमत होता हूं कि
वह जरूर बंदर से आता होगा। और मुझे कोई कारण नहीं दिखाई पड़ता आदमी के बंदर से पैदा होने का, लेकिन एक बात जरूर दिखाई पड़ती है कि आदमी नकलची है।
एक सौदागर टोपियां बेचने एक मेले में गया। जब वह लौटता था मेले से टोपियां बेच कर--कुछ बच गई थीं टोपियां--एक वृक्ष के, बरगद के नीचे उसने विश्राम किया। दोपहर थी घनी, विश्राम करने लेट गया। जब आंख खुली दो घंटे बाद, तो टोकरी खाली पड़ी थी। सारी टोपियां नदारद! उसने देखा, कहां गईं टोपियां? ऊपर नजर की, तो बंदर बैठे थे। सब टोपियां लगाए बैठे थे। सब बिल्कुल नेताजी बने बैठे थे! गांधीवादी टोपी, गांधी टोपी! और बड़ा मजा ले रहे थे। सारी दिल्ली वहां मौजूद थी। वह आदमी बड़ा मुश्किल में पड़ा, अब करना क्या है? और बंदर बड़े जंच रहे थे! उसे एक ही ख्याल आया कि बंदर नकलची होते हैं। सिर्फ एक टोपी उसके अपने सिर पर रह गई थी। उसने वह टोपी फेंक दी निकाल कर। उसका फेंकना था कि सब बंदरों ने टोपी फेंक दी निकाल कर। उसने सब टोपियां इकट्ठी कीं, अपनी टोकरी भरी और घर आ गया।
कई सालों बाद फिर यह घटना घटी। उसका बेटा मेला गया। अब बाप बूढ़ा हो गया था और बेटे को जाना पड़ा। बाप ने कहा कि सुन, एक बात ख्याल रखना, एक तो उस बरगद के नीचे विश्राम मत करना। उस बरगद पर बंदर रहते हैं। और अगर कहीं विश्राम करना ही पड़े तुझे, थक जाए और रुकना पड़े और विश्राम करना पड़े-- क्योंकि रास्ते पर वही छाया वाला वृक्ष है--तो एक बात ख्याल रखना, अगर बंदर तेरी टोपी चुरा लें, तो ऐसा मेरे अनुभव से हुआ था, अपनी टोपी फेंक देना, वे सब फेंक देंगे। बंदर नकलची होते हैं।
बेटा गया और उसने कहा कि जब अपने पास सूत्र है तो डरना क्या! लौटा बाजार से, बरगद का झाड़ देख कर उसका दिल भी छोड़ने को न हुआ--बड़ी छाया थी, और बड़ी दुपहरी और थका-मांदा! और उसने कहा सूत्र अपने पास है, डरना क्या! लेट गया, सो गया। और जो होना था वही हुआ! जब आंख खुली, टोकरी खाली पड़ी थी। लेकिन बेटा घबड़ाया नहीं, उसने कहा अपने पास सूत्र है। सब बंदर बैठे थे टोपी लगा कर। उसने अपनी टोपी निकाल कर फेंक दी। एक बंदर नीचे उतरा और वह टोपी भी लेकर चला गया।
तब तक बंदर भी सीख चुके थे। शायद ये बंदर भी वे न होंगे, उनके बेटे होंगे। बंदर मरते वक्त कह गए होंगेः बेटे, ख्याल रखना, कभी कोई सौदागर यहां ठहरे और टोपी फेंके, तो भूल कर टोपी मत फेंकना, वह भी उठा लाना।
बंदर ही नकलची होते तो ठीक था, आदमी बड़ा नकलची है। नकल से सावधान! कभी भूल कर किसी दूसरे के आचरण को अपना आचरण मत बनाना, अन्यथा तुम नकली हो जाओगे। और यही हुआ है। लोग जो कर रहे हैं, वही तुम करने लगते हो। भीड़ के साथ चलने लगते हो। अपने जीवन को अपनी समझ से जीओ। अपने जीवन को अपने स्वभाव से जीओ।
तो जो जिज्ञासु है, उसकी आंख में आंसू नहीं आएंगे। और जो आर्त है, उसकी आंखों में आंसू आएंगे।
तीसरा रूप हैः अर्थार्थी। शास्त्रों में तो अर्थार्थी का अर्थ किया गया है--जो कुछ मांगे, जिसकी कोई वासना हो, कामना हो--कि बेटा मिल जाए, कि बेटी मिल जाए, कि धन मिल जाए, कि नौकरी लग जाए, कि बीमार पत्नी ठीक हो जाए। मैं वैसा अर्थ नहीं करता हूं। वह अर्थ ओछा है। उससे कहीं भक्ति होती है? वह तो भक्ति गौणी भी नहीं है! वह तो भक्ति का धोखा है। जहां मांग है वहां भक्ति कैसी? इसलिए मैं वैसा अर्थ नहीं कर सकता हूं। अर्थार्थी का मैं अर्थ करता हूंः जिसे जीवन में अर्थहीनता मालूम होती है, व्यर्थता मालूम होती है।
इन भेदों को समझ लेना। पहले व्यक्ति को जीवन में दुख मालूम पड़ता है। स्पष्ट उसे अनुभव होता है--दुख है। दूसरे व्यक्ति को सिर्फ प्रश्न उठते हैं, विस्मय मालूम होता है, आश्चर्य मालूम होता है। तीसरे व्यक्ति को जीवन

में अर्थहीनता मालूम होती है। दुख मालूम नहीं होता और न प्रश्न उठते हैं विस्मय के, सिर्फ इतना मालूम होता है कि यहां कुछ अर्थ नहीं है। किए जाओ, कुछ सार नहीं है। न यहां के दुख में कुछ सार है, न यहां के सुख में कुछ सार है। सपने जैसा है।
रात तुमने सपना देखा, सपने में तुम साधु हो गए। सुबह उठ कर पाया, वही
के वही! या सपना देखा, रात तुमने किसी की हत्या कर दी। सुबह देखा कि वहीं के वहीं। क्या तुम फर्क करोगे इन दोनों सपनों में--हत्या करने वाला सपना और साधु बन जाने वाला सपना! क्या एक अच्छा और एक बुरा? सपना सपना है। दोनों व्यर्थ हैं। क्योंकि कुछ घटा नहीं है, सिर्फ घटने की भ्रांति हुई है। यथार्थ वैसा का वैसा है, कुछ घटा नहीं है।
जिस व्यक्ति को ऐसा अनुभव होने लगता है कि यहां कुछ घट नहीं रहा है, चीजें वैसी की वैसी हैं, सिर्फ हम सपने देख रहे हैं। कुछ लोग अच्छे सपने देख रहे हैं, कुछ लोग बुरे सपने देख रहे हैं। कुछ लोग रंगीन सपने देख रहे हैं, कुछ लोग गैर-रंगीन सपने देख रहे हैं।
तुम्हें पता है, कुछ लोग रंगीन सपने भी देखते हैं? थोड़े ही लोग देखते हैं। अधिक लोग तो ब्लैक-व्हाइट देखते हैं। वे पुराने ढंग के लोग हैं। पुरानी फिल्में जब रंगीन नहीं होती थीं। वे अभी भी वही पुराने सपने देखे चले जा रहे हैं! कुछ लोग, सौ में से कुछ दो-तीन प्रतिशत लोग रंगीन सपने देखते हैं। ये जो रंगीन सपने देखते हैं, ये भीतर ही रंगीन सपने नहीं देखते रात में, ये बाहर भी रंगीन सपने देखते हैं। इन्हीं में से कवि पैदा होते हैं, चित्रकार पैदा होते हैं, मूर्तिकार पैदा होते हैं, संगीतज्ञ पैदा होते हैं। ये सब रंगीन सपने देखने वाले लोग होते हैं। और वे जो ब्लैक-व्हाइट देखते हैं, वही दुकानदार बन जाते हैं; क्लर्क बन गए, स्टेशन मास्टर बन गए, प्रोफेसर बन गए। वह ब्लैक-व्हाइट का मामला है उनका। या तो ऐसा, या वैसा। वहां ज्यादा रंग इत्यादि नहीं हैं, सीधा-साफ गणित है। ऐसे लोग गणितज्ञ बन जाते हैं। ऐसे लोग हिसाब-किताब रखने में बड़े कुशल होते हैं। वह जो रंगीन सपना देखता है, उससे हिसाब-किताब मत रखवाना! वह हिसाब-किताब रख ही नहीं सकता। उसके रंगीन सपने उसे बहुत आह्लादित कर देते हैं, बहुत भर देते हैं। और जब सपना रंगीन होता है, मधुर होता है, तो आदमी भरोसा कर लेना चाहता है।
एक सूफी कहानी है। तीन फकीर यात्रा को निकले। एक गांव में उन्हें सम्राट के महल से अत्यंत सुस्वादु हलुआ भेंट में मिल गया। मगर वह इतना नहीं था कि तीनों का पेट भर जाए। तीनों उस पर कब्जा करना चाहते थे। मगर एक का ही पेट भर सकता उससे, इतना ही था। और कोई उसे छोड़ना नहीं चाहता था। तीनों दावेदार थे। तीनों में बड़ा विवाद होने लगा। फकीर थे। विवादी तो थे ही! तर्क तो कर ही सकते थे। पहले फकीर ने कहा कि देखो, यह हलुआ साधारण नहीं है! हम तीनों में जो सर्वश्रेष्ठ है, उसको मिलना चाहिए। मुझे पूरी कुरान याद है; तुम्हें याद है?
दूसरे ने कहा, कुरान से क्या होगा? असली बात चरित्र की है। तुममें चरित्र नाममात्र को नहीं है। कुरान तो याद है, लेकिन सुबह उस स्त्री को देख कर तुम एकदम दीवाने हुए जा रहे थे। भूल गए? असली निर्णय चरित्र से होता है। मैं चरित्रवान हूं।
तीसरे व्यक्ति ने कहा, चरित्र इत्यादि में क्या रखा है? ये सब सांसारिक बातें हैं, यह सब सपना है। न ज्ञान से कुछ होता है, न चरित्र से, असली चीज तो प्रार्थना है। तुमने कभी प्रार्थना की? तुम चरित्र की अकड़ में पड़े हुए हो, अहंकार में पड़े हुए हो कि मैं चरित्रवान हूं। पड़े रह जाओगे इसी अकड़ में! मुझ दीन को देखो!
विवाद इतना बढ़ गया, रात हो गई। विवाद का अंत न हो तो हलुआ खाए कौन? आखिर एक ने सुझाया कि ऐसा करो, आज हम तीनों सो जाएं। और रात जो सबसे श्रेष्ठ सपना देखे, वही सुबह हलुआ खाए। उन्होंने कहा, चलो ठीक, यही ठीक। यही ठीक, दूसरा खाए इससे यही बेहतर है कि सुबह तक टालो, देखेंगे सुबह फिर।
और फिर रात एक मौका और है--सपना देखेंगे श्रेष्ठ।

सुबह उठे, पहले ने अपना सपना सुनाया। उसने कहा कि मैं जब सोया, तो हजरत मोहम्मद प्रकट हुए और उन्होंने कहा कि तू ही मेरा असली पैगंबर है, मेरे बाद तू ही मेरा वंशधर है। अब इससे और ऊंचा सपना क्या हो सकता है?
दूसरे ने कहा, यह कुछ भी नहीं है। मैं जब सोया, तो खुद परमात्मा प्रकट हुआ, मोहम्मद से क्या होगा! मोहम्मद खुद ही संदेशवाहक हैं! खुद परमात्मा प्रकट हुआ और उसने कहा कि मैं तुझे सीधा संदेश दे रहा हूं, तू मेरी खबर लोगों तक पहुंचा।
तीसरे से पूछा--तुम्हें क्या हुआ? उसने कहा कि भई मुझे कुछ पता नहीं,
एक आवाज भीतर से आई कि पड़ा-पड़ा क्या कर रहा है मूरख, उठ हलुआ खा! सो मैं तो हलुआ खा चुका! अब हलुआ बचा ही नहीं है। किसकी आवाज थी, मुझे पता नहीं, मगर बड़ी जोरदार आवाज थी!
सपने हैं। उनमें कुछ बड़े जोरदार सपने होते हैं, बड़े रंगीन सपने होते हैं, और बड़ा प्रभावित कर जाते हैं। लेकिन सपने फिर सपने हैं। जिस व्यक्ति को यह दिखाई पड़ता है कि यहां जगत में सब सपना है, अर्थहीनता मालूम होने लगती है। मीनिंगलेसनेस उसे अनुभव होती है। यह भिन्न है, जिसको दुख अनुभव होता है उससे यह भिन्न दशा है। दुख वाले को तो कम से कम दुख अनुभव हो रहा है। कुछ तो सार पकड़ में आया है! जिसको अर्थहीनता मालूम होती है, उसे कुछ भी अनुभव नहीं होता। सुख भी अनुभव नहीं होता, दुख भी अनुभव नहीं होता। उसे अनुभव ही कुछ नहीं होता। वह कहता है, सब चीजें पानी पर खींची लकीर की तरह बीती जा रही हैं, कुछ बनता नहीं यहां। यह सब मजाक है। यह सब किसी परमात्मा का व्यंग्य है।
ऐसे व्यक्ति को मैं कहता हूं--अर्थार्थी। उसे जीवन में अर्थ की तलाश पैदा होती है। वह रिक्तता से भरा हुआ, अर्थहीनता से भरा हुआ, अर्थ की खोज में निकलता है। वह परमात्मा से कहता हैः मुझे अर्थ दो। जीवन को ऐसा बनाओ कि मुझे लगे कि यह सपना ही नहीं है, इसमें कुछ यथार्थ है। पानी पर मत खींचो लकीरें, पत्थर पर खींचो लकीरें कि टिक सकें। कुछ स्थायित्व दो, कुछ शाश्वत की प्रतीति दो।

तुम अपने रंग में रंग लो तो होली है।
देखी मैंने बहुत दिनों तक
दुनिया की रंगीनी,
किंतु रही कोरी की कोरी
मेरी चादर झीनी,
तन के तार छुए बहुतों ने
मन का तार न भीगा,
तुम अपने रंग में रंग लो तो होली है।

तुम अपने रंग में रंग लो
तो मैं बीती बात भुलाऊं
प्रेम, रूप, जीवन, यौवन का
सबको गीत सुनाऊं,
अंतर में वह पैठ सकेगा
जो अंतर से निकला,
मेरी तो मेरे मानस की बोली है।
तुम अपने रंग में रंग लो तो होली है।

अर्थार्थी कहता हैः हे प्रभु, मुझे अपने रंग में रंग लो। मुझे सत्य नहीं चाहिए, मुझे आनंद नहीं चाहिए, तुम मुझे अपने रंग में रंग लो। थोड़ी सी भगवत्ता मुझमें उतार दो। मैं तुम्हारे रंग में रंग जाऊं।
तुम अपने रंग में रंग लो तो होली है।
देखी मैंने बहुत दिनों तक
दुनिया की रंगीनी,
किंतु रही कोरी की कोरी

मेरी चादर झीनी,
तन के तार छुए बहुतों ने
मन का तार न भीगा,
तुम अपने रंग में रंग लो तो होली है।
ये तीन उपाय हैं गौणी-भक्ति के। इन तीनों बिंदुओं से चल कर जहां आदमी पहुंचता है, उसका नाम--पराभक्ति। उसको कृष्ण ने ज्ञानी-भक्ति कहा है। बहिरन्तरस्थम उभयम अवेष्टि सर्ववत्।
"यज्ञ का अवेष्टी और सबकी भांति भीतर और बाहर दोनों में समझा जाता है।"
शांडिल्य कहते हैंः लेकिन कौन अंतरंग है, कौन बहिरंग, यह कहना मुश्किल है। यह निर्भर करता है भक्त पर। अगर भजन पूरे प्राण से किया गया हो, तो अंतरंग हो जाता है। और ऐसे ही उपचार से किया गया हो, तो बहिरंग रह जाता है। इसलिए भजन बहिरंग है कि अंतरंग, निर्णय करना मुश्किल है। भक्त पर निर्भर है। मूर्ति बहिरंग है कि अंतरंग, भक्त पर निर्भर है। अगर भक्त पूरे भाव से डूब जाता है तो मूर्ति भक्त के भीतर प्रवेश कर जाती है, भक्त मूर्ति में प्रवेश कर जाता है। क्योंकि यहां पत्थर में भी भगवान छिपा है, पाषाण में भी परमात्मा छिपा है। देखने वाली आंख चाहिए, उतरने वाला हृदय चाहिए। तो ऊपर से निर्णय नहीं होता, कौन सी बात बहिरंग, कौन सी बात अंतरंग। वही बात किसी के लिए अंतरंग हो सकती है, वही बात किसी के लिए बहिरंग हो सकती है। इसलिए तुम दूसरे की निंदा में मत पड़ना। इतना सम्मान रखना सदा। कोई आदमी अगर मंदिर की मूर्ति के सामने झुक रहा हो, तो भूल कर भी यह मत कह देना कि यह तू क्या कर रहा है? यह तो पत्थर है! तुम्हारे लिए पत्थर होगा, तो तुम्हारे लिए पत्थर है! मगर दूसरे के लिए पत्थर हो, यह जरूरी नहीं है। दूसरे के लिए प्राण हो सकते हैं। उस पत्थर में प्राण की प्रतिष्ठा उसने की हो, तो उस पत्थर में उसके लिए सब कुछ है।
ये जो जीवन की आंतरिक दशाएं हैं, इनके संबंध में थोथे नियमों से काम नहीं चलता। और इनके लिए कोई कसौटियां नहीं हैं, और न तराजू हैं।
लेकिन अक्सर हम इस तरह की गलतियां कर बैठते हैं। कोई आदमी भजन गा रहा
है, हम कहते हैं, इससे क्या होगा? भजन से क्या होगा? और यह भी हो सकता है, भजन करने वाला भी जवाब न दे सके--अक्सर तो नहीं दे सकेगा। क्योंकि अगर जवाब देने वाला होता, तो भजन नहीं करता, जिज्ञासा करता। इस भेद को ख्याल में लेना। अगर वह जवाब देने वाला आदमी होता, तो वह भजन करता ही नहीं। वह भजन की तरफ गया ही इसलिए है कि भाव-प्रवण है, बुद्धि-प्रवण नहीं है। उसके भीतर विचार इतनी महत्ता की बात नहीं है, जितनी भावना। उसके पास कोई उत्तर नहीं है। वह शायद अवाक खड़ा रह जाएगा। तो तुम यह मत सोचना कि तुम जीत गए, क्योंकि तुम्हें उत्तर नहीं दिया जा सका। सभी चीजों के उत्तर होते भी कहां हैं? और यही तो जीवन में रहस्यपूर्ण है कि यहां कुछ चीजें हैं जिनका कोई उत्तर नहीं है।
तो कौन बहिरंग है, कौन अंतरंग है, प्रत्येक पर निर्भर है। जो आर्त को बहिरंग है, वह जिज्ञासु को अंतरंग है। जो जिज्ञासु को बहिरंग है, वह आर्त को अंतरंग है। जिज्ञासु कहेगाः सत्संग करो गुरु का! भजन-कीर्तन से क्या होगा? यह रामधुन क्यों लगा रखी है? यह शोरगुल क्यों मचा रखा है? और आर्त कहेगाः गुरु के पास बैठे ही रहे पत्थर की मूर्ति की तरह, उससे क्या होगा? गुनगुनाओ, गाओ, नाचो, प्रभु को पुकारो, रोओ, चिल्लाओ, चीखो! और दोनों ही अपनी-अपनी तरफ से ठीक कह रहे हैं।
अभी तक मनुष्य-जाति में इतना सदभाव पैदा नहीं हुआ कि हम दूसरे की विशिष्टता का सम्मान कर सकें। यह मनुष्यता की कमी है। इसलिए मुसलमान हिंदू का मंदिर तोड़ देता है, हिंदू मुसलमान की मस्जिद जला देता है। यह बड़ी मूढ़तापूर्ण बात है। दूसरे का सम्मान होना चाहिए। हम दूसरे के नियंता नहीं हैं। दूसरा अपना मालिक है। उसे जिससे सुख मिले, जिससे सार मिले, उस दिशा से जाए। उसे रोको मत। उसे बाधा मत दो। सारे लोग तुम्हारे अनुसार चलें, यह बात ही फिजूल है। यह बात ही अमानवीय है। मगर यही कोशिश रही है। ईसाई चाहते हैं

सारी दुनिया ईसाई हो जाए। हिंदू चाहते हैं सारी दुनिया हिंदू हो जाए। मुसलमान चाहते हैं सारी दुनिया मुसलमान हो जाए।
यह आकांक्षा गलत है। जगत में वैविध्य रहने दो। अच्छा है कि यहां बहुत फूल खिलते हैं--कमल भी और गुलाब भी, और चंपा और जूही और चमेली भी। यहां गुलाब ही गुलाब खिलेंगे तो गुलाब बड़ा उबाने वाला हो जाएगा। वैविध्य परमात्मा के प्रकट होने का ढंग है। यहां बहुत सुगंधें हैं, और यहां बहुत रंग हैं, और यहां बहुत ढंग हैं, और यहां बहुत तरह के लोग हैं। इसलिए कौन अंतरंग, कौन बहिरंग, इस बात पर निर्भर होगा कि व्यक्ति किस ढंग से चीज को ले रहा है।
"अवेष्टी--यज्ञ का द्रव्यविशेष--कभी-कभी यज्ञ का अंतरंग और कभी-कभी बहिरंग समझा जाता है।"
तुम पर निर्भर है।
अब जैसे समझो, कोई मेरे पास आता है और वह कहता हैः गैरिक वस्त्र क्यों? क्या संन्यास के लिए गैरिक वस्त्र अनिवार्य है? क्या गैरिक वस्त्रों के बिना संन्यास नहीं हो सकता?
उसकी बात में बल मालूम होता है। क्योंकि वस्त्र से क्या संबंध संन्यास का? वह संन्यास को अंतरंग बात मान रहा है, वस्त्र को बहिरंग। लेकिन यही आदमी और जगह जाकर यही प्रश्न खड़े नहीं करता! तुमने फर्क किया है? तुमने ख्याल किया है? पुलिसवाला अगर अपनी ड्रेस में खड़ा हो तो तुम्हारा व्यवहार और होता है। और वह अगर सफेद वर्दी में खड़ा हो तो तुम्हारा व्यवहार और होता है। मजिस्ट्रेट अपने वस्त्रों में बैठा हो तो तुम और ढंग से व्यवहार करते हो। और मजिस्ट्रेट अपने वस्त्रों में न हो तो कौन फिकर करता है? कौन चिंता लेता है? तुमने ख्याल किया, तुम वस्त्रों को भला कितना ही कहो कि वे बहिरंग हैं, लेकिन तुम्हारे बहुत अंतस्तल में बैठे हुए हैं।
गालिब को निमंत्रण दिया था बहादुरशाह जफर ने। गालिब गरीब आदमी, ठीक-ठाक वस्त्र भी न थे। मित्रों ने कहा भी कि मियां, ऐसे मत जाओ। हम ला देते हैं मांग कर वस्त्र, अच्छे वस्त्र पहन कर जाओ। गालिब ने कहा, लेकिन मैं जैसा हूं, हूं। उधार वस्त्र क्यों मांगूं? कवि की अकड़! गालिब ऐसे ही चले गए, अपने उन्हीं पुराने, फटे-पुराने वस्त्रों में, थेगड़े लगे। जूते भी फटे- पुराने। पहरेदार ने भीतर प्रवेश ही नहीं करने दिया। न केवल इतना बल्कि पहरेदार ने धक्का देकर निकाल दिया। उन्होंने अपना निमंत्रण-पत्र भी दिखलाया। उसने कहा कि भाग, किसी का चुरा लाया होगा! अपने रास्ते पर लग! गालिब लौटे। मित्रों की बात ठीक लगी। उधार वस्त्र पहने, शान से पहुंचे। वही पहरेदार झुका। भीतर गए। सम्राट ने अपने पास बिठाया। और भी मेहमान थे, लेकिन उन्हें अपने पास बिठाया। गालिब की कद्र थी बहादुरशाह के मन में, बहादुरशाह भी थोड़ा कवि-हृदय सम्राट था। लेकिन जब भोजन शुरू हुआ तो सम्राट थोड़ा हैरान हुआ। उसने सुना तो था कि कवि झक्की होते हैं, मगर इतने झक्की होते हैं यह नहीं सोचा था। क्योंकि गालिब उठा-उठा कर बर्फियां और लड्डू पहले अपने कपड़ों को लगाए, कि ले बेटा, खा ले! पगड़ी को लगाए, कि तू भी चख ले! जूते को छुलाए! बहादुरशाह थोड़ी देर तो चुप रहा, यह सब देखा उसने, कहा, आप यह कर क्या रहे हैं? कपड़े, जूते, पगड़ी--इनको भोजन करवा रहे हैं? गालिब ने कहा, मैं तो आया ही नहीं, मैं तो धक्का देकर निकाल दिया गया। इस बार तो कपड़े ही आए हैं। मैं तो पहले आया था, लेकिन तब प्रवेश नहीं हो सका। तुम भला कितना ही कहो कि कपड़े से क्या होगा, लेकिन तुम कपड़े से जीते हो। कपड़े से बहुत कुछ तुम्हारे जीवन का संबंध है। तुम्हारे कपड़े बदल लेने से सब कुछ बदल जाता है।
एडोल्फ हिटलर ने हजारों लोगों की हत्याएं कीं। और जब उसके कारागृह में लोग लाए जाते थे, तो वह एक काम निश्चित करता था। सबको नग्न कर देता, सबके सिर घोंट देता, मूंछें बना देता, दाढ़ी मिटा देता, सबको एक जैसे कपड़े पहना देता। एक बहुत बड़े मनोवैज्ञानिक फ्रैंकल को भी यही किया गया। फ्रैंकल ने अपनी आत्मकथा में लिखा है कि जब हम सबके वस्त्र उतार दिए गए और हम सबके सिर घोंट दिए गए, मूंछें बना दी गईं, हमारी घड़ियां, हमारे सामान ले

लिए गए और हमें एक जैसे कपड़े पहना दिए गए, तो हम सब एक ही नगर के लोग थे--कोई डाक्टर था, कोई इंजीनियर था, कोई मजिस्ट्रेट था, कोई प्रोफेसर था, कोई लेखक था, कोई कवि था, कोई चित्रकार था--लेकिन सब खो गए! एक-दूसरे की शक्ल पहचानी न मालूम पड़े। फ्रैंकल ने लिखा है, मैं खुद आईने के सामने खड़ा हुआ तो अपने को नहीं पहचान सका कि मैं वही हूं। हमारा व्यक्तित्व पोंछ डाला।
इसीलिए तो मिलिटरी में एक सा कपड़ा पहना देते हैं। आदमी का व्यक्तित्व समाप्त हो जाता है।
ये गैरिक वस्त्र भी तुम्हारी अस्मिता, तुम्हारे व्यक्तित्व को पोंछ डालने का उपाय हैं। अगर समझपूर्वक लोगे, तो अंतरंग हो जाएंगे। अगर नासमझीपूर्वक लिया, तो ऊपर की वर्दी रह गई। फिर उसका कोई मूल्य नहीं है। यह तुम्हारी तरफ से सूचना है कि मैं मिटने को तैयार हूं। कि अब मैं अपने होने की घोषणा वापस लेता हूं। कि अब मैं विशिष्ट होने का दावा छोड़ता हूं।
विशिष्ट होने का दावा करके देख लिया, दुख पाया। अब मैं इस विराट में एक बूंद की तरह खो जाना चाहता हूं।
सब निर्भर करता है तुम्हारी दृष्टि पर।
भूयसाम अननुष्ठितिः इति चेत आप्रयाणम उपसंहारात महत्सु अपि।
"भक्त लोग अधिक कर्म नहीं करते, ऐसा नहीं है। भेद इतना ही है कि वे सब
इस नियम के अधीन हो जाते हैं।"
भक्त अधिक कर्म नहीं करता, ऐसा मत सोचना। लेकिन भक्त कर्ता का भाव छोड़ देता है। भक्त से भी कर्म होते हैं। वस्तुतः और भी ज्यादा होते हैं, भक्त की सक्रियता और भी खिल कर प्रकट होती है, भक्त की सृजनात्मकता अपना शिखर छूती है। लेकिन एक फर्क पड़ जाता है--अब भगवान कर्ता है, भक्त कर्ता नहीं है। भक्त केवल बांस की पोंगरी है। भगवान जो गीत गाता है, अपने में से बह जाने देता है। भक्त इस नियम के अंतर्गत समाविष्ट हो गया है। उसने अपना समर्पण कर दिया है।
अधिक लोग सोचते हैं कि भक्त का अर्थ है, अब तुम कुछ मत करो। तुम भक्त
हो गए, अब क्या करना है? अब दुकान नहीं करनी, अब बाजार नहीं करना, अब बच्चों की फिकर नहीं करनी, अब पत्नी की देखभाल नहीं करनी। तुम भक्त हो गए, अब क्या करना है? भक्ति को लोगों ने काहिली का बचाव समझ रखा है।
सुस्ती, काहिली, अकर्मण्यता भक्ति नहीं है। भक्ति का अर्थ हैः अकर्ता भाव; अकर्मण्यता नहीं! कर्म तो जारी रहेगा। कर्म तो जीवन है। लेकिन अब हम करने वाले नहीं रह गए। अब हम निमित्त हो गए। अब परमात्मा जो कराए। स्मृतिकीर्त्योः कथादेः च आर्तौं प्रायश्चित्तभावात्।
"स्मरण और कीर्तन, कथा-श्रवण आर्त-भक्ति में प्रायश्चित्त रूप कहे गए हैं।"
और कुछ नहीं करना है, असहाय और निरालंब होकर पुकारना है। उस पुकार में
ही चित्त निर्मल हो जाता है। प्रायश्चित्त घटित हो जाता है। लोग पूछते हैंः सिर्फ रोने से क्या होगा? प्रायश्चित्त के लिए कुछ शुभ कर्म करने होंगे। कुछ यज्ञ-हवन इत्यादि करने होंगे। कुछ कर्मकांड करना होगा। लेकिन भक्त कहते हैं, रोने से ही सब हो जाएगा। अगर तुम हृदयपूर्वक रोए, अगर तुम्हारा रोना तुम्हारी समग्रता से आया, तो वही तुम्हें निर्मल कर जाएगा। ये आंसू तुम्हारी बाहर की आंख को ही साफ नहीं करते हैं, तुम्हारी भीतर की दृष्टि को भी स्वच्छ कर जाते हैं। प्रायश्चित्त हो गया। या अगर तुम जिज्ञासु हो, तो गुरु के चरणों में झुक गए, प्रायश्चित्त हो गया। या अगर तुम अर्थार्थी हो और तुम जीवन में अर्थ की तलाश कर रहे हो, तो तुमने शांत होकर, ध्यानपूर्वक बैठ कर परमात्मा को पुकारा कि मुझे अपने रंग में रंग लो! मेरे तारों को तुम छेड़ो। मैं तो छेड़ता हूं तो अर्थ नहीं निकलता, व्यर्थ का शोरगुल होता है। तुम छेड़ो तो संगीत उठे। तुम छेड़ो तो छंद बने। मेरे किए तो केवल उपद्रव होता है, अराजकता फैलती है। तुम छेड़ो मेरा संगीत। यह रही मेरे हृदय की वीणा। तुम उठाओ, तुम जगाओ स्वर। तो प्रायश्चित्त हो गया।
यह सवाल विचारणीय रहा है सदियों से कि आदमी ने अतीत में बहुत से बुरे कर्म किए हैं, उनका क्या होगा? मुझसे लोग आकर पूछते हैं कि जन्मों-जन्मों

से हमने पाप किए हैं, उन पापों के फल का क्या होगा? समझा जाता है कि जितने तुमने पाप किए हैं उतने पुण्य करके जब काटोगे, तब मुक्ति होगी।
फिर तो मुक्ति कभी होने वाली नहीं है। फिर तो तुम मुक्ति का ख्याल ही छोड़ दो। तुमने इतने पाप किए हैं कि अगर एक-एक पाप के लिए पुण्य करना पड़ा तो अनंत जन्म लग जाएंगे, एक बात। और इतने पुण्य करने के लिए तुम्हें अनंत जन्मों तक बहुत से पाप फिर से करने पड़ेंगे। नहीं तो पुण्य कहां से करोगे? समझो कि एक मंदिर बनाना है, तो पहले ब्लैक मार्केट करनी पड़ेगी! ब्राह्मणों को भोजन कराना है, तो भोजन के लिए कुछ तो जेब काटोगे! तभी तो भोजन होगा! दान देना है, चोरी करोगे तभी तो दान दे सकोगे! चोर हुए बिना दानी तो नहीं हो सकते! इसलिए जब कोई सोचता है कि वह महादानी है, उसे पता नहीं वह क्या कह रहा है! वह यह कह रहा है कि पहले हम चोर थे। असल में ऐसा होता है कि तुम करोड़ की चोरी कर लेते हो, लाख दान कर देते हो। और लाख दान करके फिर तुम करोड़ की चोरी करने के लिए योग्य हो जाते हो। क्योंकि फिर अकड़ आ जाती है कि अब फिर कर सकते हैं। और फिर हर्ज क्या है, फिर लाख का दान कर देंगे। तुम्हारा दान और तुम्हारी चोरी संयुक्त है।
तो अगर अनंत जन्म लगेंगे तुम्हारे अनंत जन्मों के कर्मों को सुधारने में, तो इस बीच तुम गलत कर्म करते ही चले जाओगे, उनको फिर सुधारना पड़ेगा। और फिर गलत होंगे, फिर सुधारना पड़ेगा। इस दुष्टचक्र का कोई अंत नहीं हो सकता। इसलिए जो लोग कर्म के गणित से चलते हैं, उन्हें मुक्ति की आशा छोड़ देनी चाहिए।
भक्त कहता हैः तुमने जो किया है, वह स्वप्न जैसा है, उसको मिटाने के लिए कुछ नहीं करना है, सिर्फ जागना काफी है। तुम रात सोए हो और तुमने हत्या कर दी सपने में और चोरी कर ली सपने में, अब सुबह उठ कर तुम यह थोड़े ही कि दान करोगे तब चोरी कटेगी। कि अब किसी आदमी को जिलाओगे तब रात की हत्या कटेगी। सुबह जागते ही पता चलता है कि सब सपने में हुआ था, कुछ किया नहीं है। किया ही नहीं है कुछ! हुआ ही नहीं है कुछ! एक नींद थी, नींद टूट गई है। भक्त जब रो लेता है तो नींद टूट जाती है। भक्त जब गा लेता है तो नींद टूट जाती है। भक्त जब नाच लेता है तो नींद टूट जाती है।
या आर्त बनो, या जिज्ञासु, या अर्थार्थी, लेकिन हर हालत में नींद टूटती है। कर्मों को नष्ट नहीं करना पड़ता है, नींद के टूटते ही जीवन-दृष्टि बदल जाती है। और जीवन-दृष्टि बदली तो सब बदला। जाग कर जीवन जीने लगे तो शुभ हो जाता है। संक्षिप्त में कहें तो ऐसाः सोए-सोए जीओ तो पाप, जागे-जागे जीओ तो पुण्य। जाग कर जो किया जाए वह पुण्य, सोकर जो किया जाए वह पाप।
जागने के ये तीन उपाय शांडिल्य ने कहे। या तो आर्त बन जाओ--कि तुम्हारा रोना इतना सघन हो कि तुम जाग जाओ। तुम्हें याद है? कभी सपने में ऐसा हो जाता है कि एक सिंह तुम्हारा पीछा कर रहा है और तुम भागे जा रहे हो और मरे जा रहे हो और घबड़ा रहे हो, और तभी एक जोर की पुकार निकल जाती है कि मर गया! उसी पुकार में नींद खुल जाती है। शेर भी गया, नींद भी गई, तुम जग गए। या कभी तुम देखते हो कि तुम्हारी छाती पर कोई चढ़ा बैठा है और छुरा भोंक रहा है। जैसे ही छुरा भोंका जाता है, एक आह निकल जाती है। उसी आह में नींद टूट जाती है।
आर्त का यही अर्थ है। जीवन का दुख इतना है कि उस दुख के कारण ही तुम्हारे भीतर से आह निकल गई। आह में नींद टूट गई।
या तुमने सोचा-विचारा, कोई उत्तर नहीं मिलता कि सत्य क्या है? और तुम किसी सदगुरु के पास बैठ गए। सदगुरु के पास बैठने का अर्थ यह है कि तुमने किसी अलार्म से दोस्ती कर ली। वह तुम्हें जगाता रहेगा। वह तुम्हें चेताता रहेगा। वह तुम्हें उठाता रहेगा।
और या अर्थार्थी। न तुमने दुख के कारण आह निकाली, न तुमने सत्य की जिज्ञासा से सत्संग किया, बल्कि तुमने पाया कि जीवन में कोई अर्थ नहीं है। तुम एकदम नकार और निषेध और शून्यता से, रिक्तता से भर गए। उसी रिक्तता की चोट में तुम्हारे भीतर से पुकार उठी कि हे प्रभु, अगर तू अपने रंग में रंग ले, तो सब ठीक हो जाए।

तुम अपने रंग में रंग लो तो होली है। देखी मैंने बहुत दिनों तक
दुनिया की रंगीनी,
किंतु रही कोरी की कोरी
मेरी चादर झीनी,
तन के तार छुए बहुतों ने
मन का तार न भीगा,
तुम अपने रंग में रंग लो तो होली है।
लेकिन ये तीनों साधन गौण हैं। पराभक्ति के लिए नाव-रूप हैं। और जैसे- जैसे पराभक्ति आने लगे, नाव से उतर जाना है। नाव छोड़ देनी है। साधन से मुक्त हो जाना है।
जिस दिन साधन की कोई जरूरत न रहे उस दिन भूल कर एक क्षण भी साधन को पकड़े मत रखना, नहीं तो साधन जकड़ लेगा, फिर तुम संसार में फेंक दिए जाओगे। संसार से मुक्त होने के लिए साधन उपाय है। फिर साधन से मुक्त हो जाना है। जिस दिन संसार और साधन, दोनों से मुक्ति हो गई--संसार से मुक्ति हो गई, धर्मों से मुक्ति हो गई; हिंदू न रहे, मुसलमान न रहे, ईसाई न रहे, वे सब साधन हैं--उस दिन तुम वस्तुतः धार्मिक हुए। जिस दिन वेद का अंत हो गया उस दिन वेदांत। जिस दिन वेद पूरे हो गए उस दिन वेदांत।
पराभक्ति तुम्हारा और परमात्मा का अंतिम मिलन है, आत्यंतिक मिलन है।
आज इतना है।

अथातो भक्ति जिज्ञासा, भाग 2
तीसवां प्रवचन

धर्म है मनुष्य के गीत का प्रकट हो जाना

पहला प्रश्नः कार्ल मार्क्स का एक प्रसिद्ध वचन है--धर्म एक भ्रमात्मक सूर्य है, जो मनुष्य के गिर्द तब तक घूमता रहता है, जब तक कि मनुष्य मनुष्यता के गिर्द नहीं घूमता। क्या धर्म और मनुष्यता अलग-अलग हैं?

धर्म है मनुष्य के पार जाने का विज्ञान। धर्म है अतिक्रमण की कला। धर्म न हो तो मनुष्य मनुष्य रह जाएगा। और मनुष्य का मनुष्य रह जाना ही दुख है, पीड़ा है, संताप है। क्योंकि मनुष्य अधूरा है। अधूरेपन में पीड़ा है। मनुष्य होकर कोई तृप्त नहीं हो सकता। मनुष्य के होने में ही अतृप्ति छिपी है।
मनुष्य ऐसे है जैसे कली। कली जब तक फूल न हो, तब तक परेशान होगी। कली फूल होगी तो ही खुलेगी और खिलेगी। कली फूल होगी तो ही आनंद को उपलब्ध होगी। कली सिर्फ मार्ग पर है--फूल होने के मार्ग पर है। कली अंत नहीं, कली मंजिल नहीं। ऐसा ही मनुष्य है।
मनुष्य का दुख भी यही है, मनुष्य की गरिमा भी यही है। दुख यह है कि मनुष्य पूरा नहीं है। और पशु-पक्षी पूरे हैं। पूरे से अर्थ हैः वे यात्रा पर नहीं हैं। वे जैसे हैं, जहां हैं, वहीं समाप्त हो जाएंगे। कुत्ता कुत्ते की तरह ही रहेगा और मर जाएगा। कुत्ते में कोई प्रगति नहीं है। तुम किसी कुत्ते से यह न कह सकोगे कि तुम कम कुत्ते हो। सब कुत्ते बराबर कुत्ते हैं। लेकिन आदमी से तुम कह सकते हो कि तुम थोड़े कम आदमी हो। क्यों कह सकते हो? क्योंकि कोई आदमी थोड़ा कम आदमी होता है और कोई आदमी थोड़ा ज्यादा आदमी होता है। कोई आदमी इतना पूर्ण आदमी हो जाता है--कोई बुद्ध, कोई महावीर--कि हमें उसे भगवान कहना पड़ता है। वस्तुतः बात इतनी ही घटी है कि बुद्ध का फूल खिल गया; और कुछ नहीं हुआ है। हमारी कली बंद थी, बुद्ध का फूल खिल गया है।
हम जहां हैं, जैसे हैं, वहां से आगे जाना होगा। आगे जाने की कला का नाम धर्म है।
तो धर्म और मनुष्यता एक ही नहीं हैं। अगर साधारण मनुष्य को हम मनुष्य समझें, तो धर्म मनुष्य के पार जाने का विज्ञान है। अगर हम बुद्ध और महावीर को मनुष्य समझें और साधारण आदमी को समझें कि अभी मनुष्य नहीं है, तो फिर धर्म मनुष्य होने का विज्ञान है।
कार्ल मार्क्स की उक्ति बुनियादी रूप से गलत है। लेकिन मार्क्स और साम्यवादियों की यह धारणा रही है कि मनुष्य के पार कुछ और नहीं है; मनुष्य अंत है। यह बड़ी खतरनाक भ्रांति है। अगर ऐसा मान लिया जाए कि मनुष्य के पार कुछ भी नहीं है, तो फिर रोटी-रोजी पर सब समाप्त हो जाता है। फिर आजीविका जीवन हो जाती है। फिर सुबह रोज उठो, दफ्तर जाओ, कमा लो, खा लो, पी लो, बच्चे पैदा कर दो और मर जाओ। फिर इसके पार कुछ बचता नहीं। फिर जीवन में कोई गहराई पैदा नहीं हो सकती। जीवन छिछला और उथला रह जाएगा।
धर्म है मनुष्य के भीतर गहराई पैदा करने का उपाय, मनुष्य के भीतर डुबकी। और गहराइयों पर गहराइयां हैं। एक गहराई छुओगे, दूसरी गहराई के दर्शन शुरू होंगे। एक द्वार खोलोगे, नया द्वार सामने आ जाएगा। द्वार पर द्वार हैं। इस रहस्य की अनंतता है। धर्म के बिना मनुष्य नाममात्र को मनुष्य होगा। न तो फूल खिलेगा और न सुवास होगी।
लेकिन मार्क्स को धर्म का कुछ पता नहीं था। हो भी नहीं सकता था। कभी ध्यान तो किया नहीं। मार्क्स का वक्तव्य धर्म के संबंध में ऐसा ही है, जैसे किसी बहरे का वक्तव्य संगीत के संबंध में, या किसी अंधे का वक्तव्य प्रकाश के संबंध में।
हां, मार्क्स ने बाइबिल पढ़ी थी, ईसाइयों की किताबें पढ़ी थीं। उनसे धर्म का कुछ लेना-देना नहीं है। किताबों में धर्म नहीं है। अगर किताबों के

धर्म को धर्म समझा जाए, तो मार्क्स ठीक कहता है कि धर्म एक भ्रमात्मक सूर्य है; अच्छा है कि आदमी इससे मुक्त हो जाए। अगर चर्चों में, और मंदिरों में, और मस्जिदों में धर्म समझा जाए, तो मार्क्स ठीक कहता है, अच्छा है इनसे मुक्त हो जाया जाए। अगर पुरोहितों और पंडितों में धर्म समझा जाए, तो मार्क्स ठीक कहता है कि इनके जाल के बाहर हो जाना बेहतर है। लेकिन वहां धर्म है नहीं। जिसको मार्क्स धर्म समझ रहा है, वह धर्म नहीं है। धर्म बुद्धों में है। मस्जिद में नहीं है, न मंदिर में है। धर्म तो ध्यानी में है, जहां समाधि फलती है, वहां धर्म है।
मार्क्स को कोई समाधिस्थ व्यक्ति का सत्संग तो मिला नहीं। मार्क्स के धर्म के संबंध में जो भी विचार थे, किताबी थे। उसने संगीत के संबंध में किताबों में पढ़ा था, और प्रकाश के संबंध में औरों से सुना था; अपना कोई निजी अनुभव नहीं था। निजी अनुभव न होने के कारण अगर कोई अंधा यह कह दे कि यह सूर्य की सारी बात बकवास है, मुझे तो दिखाई नहीं पड़ता! और यह संगीत सब झूठ है, मैंने कभी सुना नहीं; जो मुझे नहीं सुनाई पड़ता, वह कैसे हो सकता है? ऐसे ही वक्तव्य हैं मार्क्स के। उनका कोई मूल्य नहीं है।
धर्म के संबंध में मूल्य तो उसके वक्तव्य का है जिसने ध्यान जाना हो, जिसने ध्यान की गहराई छुई हो, ध्यान का अमृत पीया हो। उनके वक्तव्य का कोई मूल्य है जो अपने भीतर गए हों, जिन्होंने भीतर डुबकी मारी हो, जिन्होंने भीतर का रस पीया हो, जिन्होंने भीतर की रोशनी देखी हो, जो अंतर-आकाश में उड़े हों। उन सबने कहा है कि धर्म के बिना आदमी आदमी ही नहीं है। आदमी फिर कली रह जाएगा। और कली कितनी भी सुंदर हो, कुछ कमी है। अभी कली फूल नहीं हुई। और जब तक फूल न हो, तब तक नाचेगी कैसे? और जब तक फूल न हो, तब तक सुवास को लुटाएगी कैसे? और जब तक फूल न हो, तब तक तृप्ति कहां? आनंद कहां?
धर्म मनुष्य के पार जाने की सीढ़ी है। ऐसा कहो, या ऐसा कहो कि असली मनुष्य होने की कला है। दोनों का मतलब एक ही होता है। अगर तुम असली मनुष्य हो, तो मनुष्यता के पार जाने की कला है धर्म। तुम्हारे तो पार जाना ही होगा। तुम जैसे हो इससे ऊपर उठना ही होगा। तुम तो परिधि पर जी रहे हो, तुम्हारे जीवन में कोई केंद्र नहीं है। और अगर बुद्ध और महावीर, कृष्ण और क्राइस्ट को हम मनुष्य की परिभाषा मानें, तो फिर धर्म का अर्थ होगाः पूर्ण मनुष्य होने की कला। यह मनुष्य की परिभाषा पर निर्भर होगा।
लेकिन मार्क्स से पूछने मत जाओ। मार्क्स को कुछ पता नहीं है। ब्रिटिश म्यूजियम की लाइब्रेरी में बैठ-बैठ कर उसने जो भी जाना था, वह धर्म नहीं है। धर्म जानने के लिए प्रार्थना में उतरना पड़ता है। वह काम हिम्मतवर का है। पागल होना पड़ता है। मस्ती में डूबना पड़ता है। किताबी नहीं है काम, शब्दों का नहीं है, शून्य के अनुभव में जाना होता है। और जो उस अनुभव में जाएगा, वह पाएगाः धर्म के अतिरिक्त मनुष्य के जीवन में कभी सुगंध नहीं आती।
फिर उस धर्म का अर्थ ईसाइयत, हिंदू, इस्लाम नहीं होता। उस धर्म का अर्थ होता हैः तुम्हारे भीतर छिपे हुए स्वभाव की अभिव्यक्ति; तुम्हारे भीतर पड़े हुए गीत का प्रकट होना।

दूसरा प्रश्नः आपके पास बैठते हैं और जितने शून्य होते हैं, खाली होते हैं, उतना ध्यान करने से नहीं होते हैं। फिर भी ध्यान करने की जरूरत है? और मैं बहुत-बहुत अनुगृहीत हूं। हृदय में जो है, उसे दिखा नहीं पाती हूं।

समाधि! सत्संग और ध्यान अन्योन्याश्रित हैं। ध्यान बढ़ेगा तो सत्संग में रस बढ़ेगा। सत्संग में रस बढ़ेगा तो ध्यान की गहराई बढ़ेगी। दोनों दो पंख की भांति हैं। इनमें एक पंख को भी काट डाला तो नुकसान होगा। एक पंख से फिर आकाश में उड़ न सकोगी। ध्यान में उतरोगी, फिर जब मुझे सुनोगी, मेरे पास बैठोगी, तो नई गहराई आएगी। ध्यान ने रास्ता बनाया। ध्यान ने सफाई कर दी, मार्ग के पत्थर हटा दिए, अवरोध हटा दिए। फिर मेरे पास बैठना, तो झरना बहेगा। फिर झरना बहेगा तो और नये रास्ते टूटेंगे। नये रास्ते टूटेंगे तो

नये पत्थरों का आविष्कार होगा। फिर ध्यान में जाओगी, उन पत्थरों को हटाने का आनंद! ये दोनों अन्योन्याश्रित हैं।
ऐसा अक्सर हो जाता है। कुछ लोग सोचते हैं कि जब यहां आपके पास बैठ कर
ही आनंद आ जाता है, तो फिर ध्यान क्या करना? उनका आनंद रुक जाएगा। उसमें गति नहीं होगी फिर। फिर रोज-रोज नई सीढ़ियां तय नहीं होंगी। फिर जहां तक आ गया है, वहीं बात ठहर जाएगी। और वहीं ठहरी नहीं रहेगी, थोड़े दिन में पाएंगे कि वहां से भी पीछे हटने लगी।
कुछ विपरीत सोचने वाले भी लोग हैं। वे सोचते हैं, ध्यान में तो बड़ा मजा आ रहा है, अब सत्संग में क्या आना? अब सुनने में क्या है? अब तो हम खुद ही ध्यान में उतरने लगे। अब गुरु के पास बैठने की क्या जरूरत है? उनका ध्यान भी जल्दी डगमगा जाएगा। और न डगमगाया तो भी अवरुद्ध हो जाएगा। स्मरण रहे, जितने प्रयोगों से संभव हो सके, चोट करो; जितनी दिशाओं से हमला हो सके, हमला करो। प्रार्थना भी करो, पूजा भी करो, ध्यान भी, प्रेम भी, सत्संग भी, भजन-कीर्तन भी। सब दिशाओं से हमला करो। इस दुश्मन को मिटा ही देना है। इस अंधेरे को तोड़ ही देना है। इसमें एक ही तरफ से हमला किया, तो शायद जीत संभव न हो। दुश्मन किसी और दरवाजे पर छिप जाए, किसी और कोने में बैठ जाए। अंधेरा कहीं और अपने लिए गुफा बना ले। तुम सब तरफ से रोशनी लाओ। सब द्वार-दरवाजे, खिड़कियां खोल दो। इसमें कंजूसी मत करो। एक ही दरवाजे से रोशनी आए, ऐसा क्या? सब दरवाजों से रोशनी आने दो। ध्यान भी करो, सत्संग भी करो। नाचो भी, गाओ भी। मौन भी बैठो। जितना संभव हो सके, उतना इस रसधार को अनेक-अनेक रूपों में बहने दो। और तुम पाओगे, इसकी सम्मिलित प्रक्रिया का परिणाम गहन होता है।
अच्छा हो रहा है कि सत्संग में शून्यता आ जाती है। समाधि को मैं देख रहा हूं। कोई फल पकने के करीब आने लगा है। यहीं खतरा है। जब फल पकने के करीब आने लगता है, तो मन कहता है, अब तो सब हो गया, अब और क्या करना है? अक्सर ऐसा हो जाता है कि लोग मंदिर के ठीक द्वार पर आते-आते लौट जाते हैं। मंजिल जहां पूरे होने के करीब होती है, वहीं ठहर जाते हैं। सोचते हैं, आ तो गया!
जिंदगी बड़ी है। जिंदगी तुम्हारी आकांक्षाओं से बड़ी है। और जिंदगी में ऐसे खजाने पड़े हैं जिनके तुमने सपने भी नहीं देखे। इसलिए इस भ्रांति में तो कभी पड़ना ही मत कि आ गया। कितना ही मिल जाए, यात्रा जारी रहे, यात्रा चलती रहे, क्योंकि और मिलने को है, और मिलने को है।
तुम्हारी आकांक्षाएं भी बड़ी दीन-दरिद्र हैं। तुम सोचते हो, मन थोड़ा शांत हो गया, बस हो गया। अभी बहुत होने को है! और ऐसा तो कभी नहीं होता जब कि कुछ होने को न बचे। इसीलिए तो कहते हैं कि परमात्मा का रहस्य अनंत है। जानो, और जानो, और जानो, फिर भी अनजाना रह जाता है। पहचानो, और पहचानो, फिर भी पहचान कहां हो पाती है! सागर जैसा विराट है। खोजते-खोजते खोजी खो ही जाता है, समग्र रूप से लीन हो जाता है।
जब तक तुम समग्र रूप से मिट न जाओ, तुम्हारे भीतर कहीं भी "मैं" का कोई स्वर न रह जाए, तब तक सत्संग भी चलने दो, ध्यान भी चलने दो, प्रार्थना भी चलने दो। पराभक्ति का जन्म न हो जाए, तब तक चलने दो गौणी-भक्ति। और इसमें कृपणता की कोई जरूरत नहीं है।
कभी-कभी ऐसा हो जाता है कि तुम मान लेते हो कि सब हो गया। और अक्सर जब
सब होने के करीब होता है, तभी ऐसा होता है। मंजिल सामने दिखाई पड़ने लगती है, आदमी बैठ जाता है। तुमने देखा? यात्रा करके तुम आए हो--दूर लंबी पहाड़ की यात्रा--चलते रहे, चलते रहे, थके थे तो भी चलते रहे, अब सामने मंदिर आ गया तो तुम बैठ जाते हो। तुम कहते हो, अब तो सुस्ता लें; अब तो यह रहा मंदिर! मंजिल पर आकर लोग सुस्ताने लगते हैं। दूर होते हैं तो चलते रहते हैं। समाधि में कुछ घटने के करीब है, इसीलिए प्रश्न उठा है। प्रश्न महत्वपूर्ण है, औरों के काम का भी है। क्योंकि बहुतों के भीतर बहुत कुछ घटने के करीब आ रहा है। यह जो फसल लगाई जा रही है, इसके काटने के दिन भी करीब आएंगे ही। ये जो बीज बोए जा रहे हैं, ये अंकुर भी हो गए हैं, इनमें फल भी लगेंगे। स्मरण रखना, तुम्हें पता ही नहीं है कितने फल लगेंगे! अनंत फल

लगेंगे। एकाध फल से राजी मत हो जाना। सच तो यह है, साधक जितने सिद्धि के करीब आता है, उतनी ही साधना और भी गहरानी पड़ती है।
शुभ है कि सत्संग में शून्यता फलती है, मन मौन हो जाता है। लेकिन सत्संग में तुम मेरे साथ जुड़े हो। सत्संग में तुम मेरे पंखों के सहारे उड़ रहे हो। सत्संग में तुम्हारी आंख मेरी आंख से देख रही है। सत्संग में मेरा हृदय तुम्हारे हृदय के साथ धड़क रहा है। ध्यान में भी इतना ही होना चाहिए। नहीं तो कल अगर मैं चला गया, फिर तुम क्या करोगे? कल अगर मैं न हुआ तो फिर तुम क्या करोगे? और एक दिन तो आएगा कि मैं नहीं होऊंगा। तो जिसने सत्संग पर ही निर्भर किया, वह एक दिन कठिनाई में पड़ जाएगा। जिसने सत्संग से लाभ लिया और ध्यान की गहराई को बढ़ाता गया, वही मेरे जाने पर रोएगा नहीं; अनुग्रह से भरेगा।
मेरे साथ एक संगीत सध जाता है। उसमें कितना तुम्हारा है, कितना मेरा है, कहना कठिन है। जब ध्यान में सधता है संगीत, तो तुम्हारा ही तुम्हारा है--सुनिश्चित तुम्हारा है! और जो तुम्हारा है, उसी पर अंतिम भरोसा करना। ऐसा हो जाता है, हिमालय पर जाओगे, शांत बैठोगे, बड़ी शांति मालूम होगी; मगर उस शांति में बहुत कुछ हिमालय का है, तुम्हारा नहीं है। जब ऐसा ही बीच बाजार में बैठ कर हो सकेगा, तब तुम्हारा है। हिमालय से उतरोगे, जैसे-जैसे पहाड़ से नीचे आने लगोगे, भीड़-भाड़ बढ़ने लगेगी, वैसे-वैसे शांति खो जाएगी। रोज तो लोग पहाड़ जाते हैं और शांति का अनुभव करते हैं और लौट आते हैं--और फिर वही अशांति! तो हिमालय पर बैठ कर जो शांति तुम्हें अनुभव होती है, उसमें निन्यानबे प्रतिशत हिमालय का है, एकाध प्रतिशत तुम्हारा होगा।
एक प्रतिशत जरूर तुम्हारा होगा। क्योंकि ऐसे भी लोग हैं, जो हिमालय
पर बैठ जाते हैं और वहां भी शांति अनुभव नहीं होती। उनका बाजार जारी ही रहता है। उनकी भीड़ खड़ी ही रहती है। दिखता हिमालय है, मगर वे देखते रहते हैं उन्हीं को जिनको पीछे छोड़ आए हैं। सोचते रहते हैं उन्हीं की। लोग अखबार लेकर हिमालय चले जाते हैं, रेडियो लेकर हिमालय चले जाते हैं, ताकि दिल्ली की खबरें वहां बैठ कर सुन सकें। फिर तुम गए ही किसलिए? लोग मित्रों को लेकर हिमालय चले जाते हैं, और उनके साथ वही बातचीत जारी रहती है जो यहां जारी थी। वही भीड़-भाड़, वही बकवास!
तो ऐसे भी लोग हैं जो हिमालय जाकर भी अनुभव नहीं करते शांति का। तो एक प्रतिशत तो तुम्हारा होगा। यहां भी ऐसे लोग हैं, जो सत्संग में बैठेंगे और शांति का अनुभव नहीं करेंगे।
तो जब तुम मेरे साथ शांति में डूब जाते हो, मेरे पास बैठे-बैठे मेरी और तुम्हारे हृदय की धड़कन कभी-कभी एक हो जाती है, तुम मेरे साथ श्वास लेने लगते हो, तुम्हारा मेरे प्रति सारा प्रतिरोध टूट जाता है, तुम अपनी रक्षा नहीं करते, तुम मेरे साथ हो लेते हो, बेशर्त, बिना आगे-पीछे की फिकर किए, तुम चल पड़ते हो मेरे साथ कि देखें क्या है, तुम हिम्मत कर लेते हो, तुम साहसी होते हो, तुम जुए पर दांव लगा देते हो--कभी-कभी वैसे क्षण आ जाते हैं--तब तुम अपूर्व शांति से भर जाओगे, अपूर्व आनंद से भर जाओगे।
लेकिन ध्यान रखना, उसमें बहुत कुछ मेरा है। जैसे ही तुम घर लौटोगे, वह
खो जाएगा। उस पर निर्भर मत रहना। उसका लाभ लो। उससे तुम्हारे भीतर क्या हो सकता है, इसकी झलक मिलेगी। फिर उस लाभ का उपयोग ध्यान में करो। फिर ध्यान में खुदाई करो, फिर अपनी कुदाली उठाओ और अकेले में खोदो। और जब तक वही आनंद न मिलने लगे जो सत्संग में मिला था, तब तक रुकना मत--खोदे जाना, खोदे जाना। जब वही आनंद एकांत, अकेले में, घर बैठे हुए, मुझसे दूर मिलने लगे, तब फिर तुम समझना कि अब सत्संग के लिए फिर जरूरत आ गई; अब थोड़ा और आगे के दृश्य देखें, ताकि आगे की यात्रा हो सके।
सत्संग और ध्यान का ऐसा उपयोग करोगे, तो निश्चित पहुंच जाओगे। लेकिन
मन ऐसा होने लगता है; मन कहता है, जब सत्संग में आनंद आता है, तो सत्संग ही कर लें। या मन कहता है, जब ध्यान में आनंद आता है तो सत्संग क्यों करें? दो तरह के लोग हैं। जो लोग स्त्रैण वृत्ति के हैं--सरल, ग्राहक, अंगीकार करने वाले--उन्हें सत्संग ज्यादा रुचेगा बजाय ध्यान के। यह आकस्मिक नहीं है कि स्त्रियां सत्संग में ज्यादा दिखाई पड़ती हैं। सरल

हैं। सरलता से किसी के भी साथ उनका हृदय धड़क सकता है। उन्हें एक कला स्वाभाविक है कि प्रेम में पड़ सकती हैं। और बिना प्रेम में पड़े सत्संग नहीं होता। प्रेम में पड़ते ही तरंगें एक सी हो जाती हैं। गुरु के साथ शिष्य की तरंग एक हो जाती है। दोनों के तार मिल जाते हैं। ऐसे क्षण आ जाते हैं जब दो नहीं रह जाते शिष्य और गुरु। कभी-कभी दोनों बस एक हो जाते हैं। उसी घड़ी अपूर्व शून्यता आ जाती है। अपूर्व पूर्णता आ जाती है। अपूर्व आनंद बरस जाता है। मेघ घिर जाते हैं। मल्हार बज उठती है। वीणा पर टंकार पड़ जाती है। कोई नृत्य भीतर होने लगता है। स्त्रियों को यह आसानी से हो जाएगा।
समाधि को हो रहा होगा--आसानी से हो रहा होगा। स्त्री झुकने की कला जानती है। वही स्त्री होने का लक्षण है। वह समर्पण जानती है।
जरूरी नहीं है कि सभी स्त्रियों को हो, क्योंकि स्त्रियों में बहुत स्त्रियां नहीं हैं, पुरुष जैसी हैं। और जरूरी नहीं है कि सभी पुरुषों को न हो, क्योंकि पुरुषों में बहुत हैं जिनके पास उतना ही कोमल हृदय है जितना स्त्रियों के पास। इसलिए स्त्री-पुरुष से तुम शारीरिक स्त्री-पुरुष का भेद मत समझना, मैं आंतरिक भेद की बात कर रहा हूं।
लेकिन जो परुष है, जो परुष है उसी को तो पुरुष कहते हैं। परुष यानी कठोर, पथरीला, दंभी, अहंकारी, झुकने को राजी नहीं। टूट जाए, वह कहता है, मगर झुकेंगे नहीं। वह अगर सत्संग में आता भी है तो अपनी म्यान-तलवार लेकर आता है। वह सत्संग में आता भी है तो अपनी ढाल के पीछे छिपा रहता है। वह कहता है, कहीं झुकना न पड़े। वह झुकने से डरा रहता है। उसे ध्यान ज्यादा रुचेगा, क्योंकि ध्यान में वह अकेला है, कोई किसी के सामने झुकना नहीं है।
तो पुरुषों को अक्सर यह हो जाता है कि वे ध्यान की तरफ ज्यादा झुक जाएंगे और सोचेंगे, सत्संग की अब क्या जरूरत है? इतना तो सुन लिया गुरु को, अब सुनने की क्या जरूरत है? अब तो अपने एकांत में ध्यान सम्हालो! स्त्रियों को अक्सर ऐसा होने लगेगा कि और सुनो, और सुनो, ध्यान की क्या जरूरत है? मगर दोनों गलत हैं। दोनों की जरूरत है। दोनों पंख चाहिए उस यात्रा के लिए। और जब कोई व्यक्ति संतुलित होता है तो वह पचास प्रतिशत स्त्री होता है और पचास प्रतिशत पुरुष होता है। इसलिए तो अर्धनारीश्वर की हमने मूर्ति बनाई है। वह संतुलन की मूर्ति है। देखी है न अर्धनारीश्वर की मूर्ति? आधे शिव--पार्वती हैं और आधे पुरुष हैं। एक स्तन है, आधा चेहरा स्त्री का है; आधे अंग पुरुष के हैं। वह अपूर्व प्रतिमा है। दुनिया में किसी ने वैसी प्रतिमा नहीं गढ़ी, क्योंकि दुनिया में किसी जाति ने मनुष्य के भीतर इतने समन्वय की बात नहीं खोजी। आधा पुरुष, आधा स्त्री। ये दोनों पंख पूरे हो गए--समर्पण और ध्यान। अर्धनारीश्वर का अर्थ हैः समर्पण और ध्यान, स्त्री और पुरुष दोनों साथ-साथ। झुको भी कि समर्पण हो जाए; और अपने पर निर्भर भी हो जाओ, ताकि ध्यान हो जाए। दोनों में चुनना नहीं है, दोनों को जोड़ना है। जो हो रहा है, शुभ है, मगर उसकी वजह से ध्यान को मत छोड़ देना। जो हो रहा है, वह समर्पण है।

शबे-गम सदा उनकी आने लगी है
मेरी रात फिर गुनगुनाने लगी है
गुल उनका तबस्सुम चुराने लगे हैं
सबा उनका पैगाम लाने लगी है
मेरी आह की नारसाई तो देखो
सितारों से आगे भी जाने लगी है जो डूबी हुई थी अंधेरे में गम के वह कौसे-कुजह मुस्कुराने लगी है नई एक झंकार उठी साजे-दिल से उम्मीद एक नग्मा-सा गाने लगी है उलट दी जुनूं ने बिसाते-मोहब्बत खिरद मात पर मात खाने लगी है

इस दशा में है समाधि। इस दशा में यहां बहुत मेरे संन्यासी हैं। दूर की आवाज करीब आने लगी है। कोई गीत भीतर फूटने लगा है। कोई नग्मा जगने लगा है। कोई सुगंध प्रकट होने लगी है।
उलट दी जुनूं ने बिसाते-मोहब्बत
मस्ती, मादकता, पागलपन का आविर्भाव हो रहा है। धन्यभागी हैं वे, जिनके जीवन में प्रभु का पागलपन आ जाए। और पागलपन के आते ही सारा खेल बदल जाता है।
उलट दी जुनूं ने बिसाते-मोहब्बत
खिरद मात पर मात खाने लगी है
बुद्धि हारने लगती है, हृदय जीतने लगता है। भाव जीतने लगते हैं, विचार हारने लगते हैं।
शुभ है। सत्संग का लाभ लो, लेकिन ध्यान को मत छोड़ देना। यह सत्संग का लाभ, समाधि, तू इसीलिए ले पा रही है कि ध्यान किया है। और हर सत्संग के बाद ध्यान की गहराई बढ़ती जाएगी। दोनों एक-दूसरे को सहारा देते हैं। दोनों एक-दूसरे के सहारे ऊपर उठते जाते हैं। इन्हीं दोनों के सहारे किसी दिन गौरीशंकर का शिखर तुम्हारे भीतर प्रकट होता है। इन दोनों को मिलने दो। इस दोनों के मिल जाने का नाम योग है। तुम्हारे ध्यान और तुम्हारी प्रीति को मिलने दो। तुम्हारे पुरुष और तुम्हारी स्त्री को मिलने दो। अर्धनारीश्वर बनो।

मिलन की मन में जोत लगा ले, मिलन का कर ले ज्ञान
आप ही अपने दीये बुझा कर, घर को करें जुल्मात
अपने चमन को आप ही फूंकें, आप ही सेंकें हाथ
आप ही खोटी चालें सोचें, आप ही खाएं मात
अपने चप्पू आप ही तोड़ें तूफां में दिन-रात
अपनी नैया आप डुबोएं, बन कर खुद तूफान
मिलन की मन में जोत लगा ले, मिलन का कर ले ज्ञान

ये चप्पू हैं। तुमने देखा, चप्पू दो रखने पड़ते हैं। एक चप्पू से नाव नहीं चलती। कभी एक चप्पू से नाव चला कर देखी? गोल चक्कर खाने लगेगी। यात्रा नहीं होगी, कोल्हू का बैल बन जाएगी। कभी चलाना जाकर, नदी में जाकर एक चप्पू से चलाना। बस नाव गोल-गोल घूमने लगेगी अपनी ही जगह पर। उस पार जाना हो तो दो चप्पू चाहिए। सत्संग और ध्यान में चुनना नहीं है, दोनों के पंख बना लेने हैं, दोनों के सहारे उड़ जाना है।

तीसरा प्रश्नः क्षमा करें, आपको समझने में मुझसे बहुत भूल हुई। बहुत बार संदेह ने मेरा पीछा किया। फिर क्षमा मांगता हूं। आपने अनेक मार्गों का प्रतिपादन किया है। क्या मैं पूछ सकता हूं कि आपकी देशना का सार-सूत्र क्या है?

मिटो! किस बहाने मिटते हो, फर्क नहीं पड़ता--बस मिटो! प्रार्थना में मिटो, कि पूजा में, कि भजन में, कि कीर्तन में, कि ध्यान में, कि सत्संग में--मिटो। विधियां अलग हैं।
कोई जहर खाकर आत्मघात कर लेता है। कोई गोली मार कर आत्मघात कर लेता है। कोई रस्सी से लटक जाता है, आत्मघात कर लेता है। कोई नदी में कूद जाता है, आत्मघात कर लेता है। कोई रेल की पटरी पर सो जाता है, आत्मघात कर लेता है। वे विधियां अलग हैं, मगर आत्मघात एक है।
ऐसे ही ये सब विधियां अलग हैं, लेकिन मूल में तो आत्मघात है। मिटो! अहंकार समाप्त हो जाए। यह असली आत्मघात है जो मैं तुम्हें सिखा रहा हूं। शरीर को मिटा कर तो कुछ खास मिटता नहीं, फिर लौट आओगे। और फिर ऐसे ही शरीर में लौटोगे, क्योंकि तुम्हारी चेतना तो बदली नहीं। चेतना के खास ढंग के कारण ही तो तुमने यह शरीर लिया था। चेतना का ढंग तो बदला नहीं। तुम फिर इसी शरीर में आ जाओगे। तुम फिर ऐसा ही शरीर चुन लोगे, ऐसा ही गर्भ चुन लोगे।

आत्मघात असली आत्मघात नहीं है, असली आत्मघात संन्यास है, इसमें तुम्हारी चेतना ही अपना व्यक्तित्व खो देती है, अपना अहंकार खो देती है। फिर लौटना नहीं है। जो मिट गया, वह हो गया। जिसने अपने को बचाया, उसने खोया। इसलिए मेरी देशना का सार-सूत्र है--मिटो! फिर जो विधि तुम्हें रुच जाए। सारी विधियों की जरूरत नहीं है। एक विधि काफी हो सकती है--सम्यकरूपेण की जाए। यहां इतनी विधियों पर बोल रहा हूं, क्योंकि अलग-अलग लोग हैं, अलग-अलग विधियां रुचेंगी। किसको कौन ठीक पड़ जाएगी, वह उस ढंग से मर जाए, वह उस ढंग से अपने को मिटा ले। तुम इसकी फिकर ही मत करो, क्योंकि मिटना मिटना एक जैसा है। जहर खाकर मरे कि गोली मार कर मरे, मरना एक जैसा है। और सबका इंतजाम मत करना, क्योंकि उसमें कभी-कभी भूल हो जाती है।
मैंने सुना है, मुल्ला नसरुद्दीन मरने गया। होशियार आदमी! उसने सोचा
कि सभी इंतजाम कर लेना चाहिए। तो उसने ठीक ऊंची एक पहाड़ी चुनी। उसके नीचे नदी भी चुनी, कि ऊपर से कूदूंगा, कूदने में मर गया तो ठीक, नहीं कूदने में मरा तो डूब कर मर जाऊंगा। उस पहाड़ी के ऊपर एक वृक्ष लगा था, उसकी शाखा में उसने रस्सी बांधी, कि अगर इसमें भी चूक हो जाए तो गले में फंदा लगा लूंगा; फंदा लगा कर मर जाऊंगा। मगर इसमें भी चूक हो जाए--गणित वाला आदमी सब हिसाब कर लेता है--तो वह मिट्टी के तेल का एक कनस्तर भी ले आया था कि ऊपर उंडेल लूंगा और आग लगा दूंगा। पर कौन जाने इसमें भी चूक हो जाए तो पिस्तौल भी ले आया था। और फिर इसी में चूक हो गई। रस्सी पर लटका, तेल डाला, झूला, गोली मारी। गोली लगी रस्सी में, सो रस्सी कट गई। नदी में गिरा, सो आग बुझ गई। मैंने पूछा, जब वह लौट कर चला आ रहा था दुखी, मैंने पूछा, क्यों मुल्ला, क्या हुआ? उसने कहा, क्या करें, अगर आज तैरना न आता होता तो मारे गए थे। सारे इंतजाम करने की जरूरत भी नहीं है। समग्रता से एक इंतजाम काफी है।

चौथा प्रश्नः यदि परमात्मा सर्वव्यापी है, सबमें है, तो कोई भी गलत काम नहीं होना चाहिए। तब क्यों होती है चोरी-डकैती? और हत्या? और न जाने क्या-क्या? और अगर वही कराता है सब, तो फल भी वही क्यों नहीं भोगता है? अगर शेर में भी परमात्मा है तो फिर शेर हत्या क्यों करता है?

कोई ज्ञानी आ पहुंचे! यहां अज्ञानियों का जमघट है। यहां इतने ज्ञान
की बात नहीं पूछनी चाहिए।
इस तरह के बचकाने प्रश्नों का कोई मूल्य नहीं है। लेकिन पूछा है, तो
अब तुम समझो! पूछा है, तो उत्तर मिलेगा।
पहली बात, इस संसार में न कोई गलत काम कभी हुआ है, न होगा। हो ही नहीं सकता। असंभव है। क्योंकि परमात्मा सर्वव्यापी है।
तुम जिसको गलत कहते हो, वह तुम्हारी धारणा है। तुम जिसको सही कहते हो,
वह तुम्हारी धारणा है। तुम्हारी धारणा के कारण सही और गलत दिखाई पड़ता है।
धारणा को छोड़ो, फिर क्या सही और क्या गलत है? ध्यानी को कुछ गलत नहीं दिखाई पड़ता और कुछ सही नहीं दिखाई पड़ता, क्योंकि ध्यानी की धारणा छूट गई। एक बात तुम्हें ठीक दिखाई पड़ती है, दूसरे को वही गलत दिखाई पड़ती है।
समझो, तुम कहते होः चोरी पाप है।
लाओत्सु वजीर हो गया था अपने देश का। एक आदमी चोरी करके पकड़ा गया। उसने चोर को और साहूकार को, दोनों को छह-छह महीने की सजा दे दी। साहूकार चिल्लाया कि तुम होश में हो कि शराब पीए हो, मामला क्या है? साहूकार को सजा! कभी सुनी?
लेकिन लाओत्सु ने कहा, अगर तुम इतना धन इकट्ठा न करते, तो चोरी होती नहीं। तुमने सारे गांव का धन इकट्ठा कर लिया, चोरी न हो तो क्या हो? सच तो यह है कि मैंने खुद ही कई बार सोचा है। यह आदमी तो नंबर दो का कसूरवार है, नंबर एक के तुम कसूरवार हो। न तुम इतना धन इकट्ठा करते, न चोरी होती। सम्राट के पास बात गई। सम्राट भी बहुत हैरान हुआ कि इस तरह की सजा! लेकिन लाओत्सु की बात में बल तो था।

चोरी ठीक है या गलत? चोरी गलत है, अगर तुम यह मानते हो कि लोगों का धन इकट्ठा करना बिल्कुल ठीक है। तो गलत है। अगर लोगों का धन इकट्ठा करना ही गलत है, तो फिर चोरी कैसे गलत होगी? चोरी तो एक तरह का साम्यवाद है। यह व्यक्तिगत रूप से साम्यवाद फैला रहा है आदमी। बांट रहा है संपत्ति लोगों की। जहां ज्यादा इकट्ठी हो गई है, वहां से छुटकारा दिला रहा है।
पश्चिम के बहुत बड़े विचारक प्रूधो ने लिखा हैः सब संपत्ति चोरी है। संपत्ति मात्र चोरी है। तुम्हारे पास इकट्ठी कैसे होती है? किसी न किसी की जेब खाली होगी तो इकट्ठी होगी। तो साहूकार और चोर में फर्क क्या है प्रूधो के हिसाब से? चोर छोटा-मोटा चोर है, साहूकार बड़ा चोर है--बस इतना ही फर्क है। क्या ठीक है? क्या गलत है?
हिंदुस्तान में तेरापंथी जैन हैं। वे कहते हैं कि राह में पड़ा हुआ आदमी अगर प्यासा मर रहा हो तो पानी भी मत पिलाना। क्यों? तुम कहोगे यह तो बात बड़ी गड़बड़ हो गई। पानी पिलाना प्यासे को तो पुण्य है, अच्छा कार्य है न! इसको तो कोई बुरा कार्य नहीं कहेगा। तेरापंथियों से पूछो। वे कहते हैं कि अगर तुमने इसको पानी पिलाया और यह आदमी मर रहा था, पानी की वजह से बच गया और कल इसने अगर किसी की हत्या कर दी तो तुम भी जिम्मेवार होओगे। न तुम इसको पानी पिलाते, न यह बचता, न हत्या होती। तुम्हारा हाथ तो है इसमें, इससे तुम बच न सकोगे। इसलिए झंझट में न पड़ो, अपने रास्ते निकल जाओ, चुपचाप निकल जाओ। विचार की बात तो है ही। तुमने किसी आदमी को रुपये दिए, कि वह भूखा था,
और उसने जाकर शराब पी ली। न तुम रुपये देते, न वह शराब पीता। शराब पीकर आया और अपनी पत्नी को मार डाला। तुम्हारी दया ने बड़ी हानि कर दी। क्या ठीक है? क्या गलत है?
और एक बात विचारणीय है कि क्या जिसको तुम ठीक कहते हो, वह गलत के बिना
बच सकेगा? जरा सोचो! रामायण में से रावण को निकाल दो--वह गलत है--राम को बचा लो। बचेंगे राम? रावण को निकालते ही उनकी जान निकल जाएगी। उनमें कुछ न बचेगा। भूसा रह जाएगा। ऐसा लगता है गेहूं तो फिर रावण ही था। न सीता की चोरी होगी, न राम-रावण युद्ध होगा--कथा आगे ही नहीं बढ़ेगी। कथा को आगे बढ़ाने के लिए रावण एकदम जरूरी है। यहूदा को हटा लो और जीसस की कहानी बेकार हो जाती है, क्योंकि यहूदा के कारण ही जीसस को सूली लगती है। तो ही कहानी में रस है।
तुम जरा बुरे को अलग कर लो जीवन से, असाधु को अलग कर लो--तुम्हारे साधु कहां बचेंगे? बुरे को अलग करते ही तुम्हारे महात्माओं में कितना महात्मापन रह जाएगा? किस कारण रह जाएगा? संयुक्त हैं, जैसे दिन और रात जुड़े हैं। राम और रावण एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। न तो रावण हो सकता है राम के बिना, न राम हो सकते हैं रावण के बिना।
महर्षि रमण ने ठीक उत्तर दिया था। एक जर्मन विचारक ने उनसे पूछा--यही पूछा था, जैसे तुमने पूछा है--कि दुनिया में इतना पाप क्यों है? इतनी बुराई क्यों है?
पता है रमण ने क्या कहा? बड़ा अदभुत उत्तर दिया, शायद ही किसी ने दिया हो! कोई ज्ञानी ही दे सकता है। रमण ने कहाः टु थिकेन दि प्लॉट। कहानी को जरा रसपूर्ण बनाने के लिए। सघन करने के लिए। कहानी में थोड़ा मजा लाने के लिए।
तुमने देखा, तुम कोई कहानी बना सकते हो जिसमें बुराई न हो? सच तो यह है, कहा जाता है कि अच्छे आदमी की जिंदगी में कहानी होती ही नहीं। अच्छा आदमी बिल्कुल सपाट कोरे कागज की तरह होता है। बुराई कुछ की नहीं, अच्छाई ही अच्छाई है। बैठ कर घर में भजन ही करते रहे; कहानी कहां? तुमने अच्छे आदमी की कहानी देखी है? अगर अच्छे आदमी की भी कहानी होगी तो बुरे आदमी को लाना पड़ेगा, जो उनकी कहानी को जान देगा, प्राण देगा। नहीं तो रामचंद्र जी अपना लेकर सीता जी को और लक्ष्मण जी को घूमते रहते। अभी तक घूम ही रहे होते! वह तो भला रावण का... ! नहीं तो घूमते रहो सीता जी को लेकर। कहां रुकोगे? कैसे रुकोगे?
इस जगत में बुराई और भलाई विपरीत नहीं हैं, परिपूरक हैं। रात के बिना दिन नहीं है, दिन के बिना रात नहीं है। स्त्री के बिना पुरुष नहीं है,

पुरुष के बिना स्त्री नहीं है। सर्दी के बिना गर्मी नहीं है, गर्मी के बिना सर्दी नहीं है। यहां जितने द्वंद्व हैं, वे ऊपर से दिखाई पड़ रहे हैं, भीतर जुड़े हैं। यह तुम्हें स्मरण आ जाए, तो तुम समझोगे कि बड़ी प्यारी कहानी चल रही है। फिर बुरे से भी तुम नाराज नहीं हो; तुम जानते हो, वह भी अनिवार्य है। रावण की अनुकंपा है, इसलिए राम इतने प्रगाढ़ होकर प्रकट हुए हैं।
काले ब्लैक-बोर्ड पर लिखना पड़ता है न सफेद खड़िया से! ब्लैक-बोर्ड न हो
तो सफेद खड़िया से लिख न सकोगे। रावण ब्लैक-बोर्ड है, राम सफेद खड़िया की तरह उभरते हैं। रावण को इसीलिए तो काला पोता गया है। जितना काला रावण को पोतोगे, उतने ही राम सफेद होकर प्रकट होते हैं। जीवन की यह अनिवार्यता है। यह खेल है। यहां न कुछ बुरा है, न कुछ भला है।
तुम पूछते होः "यदि परमात्मा सर्वव्यापी है... "
निश्चित सर्वव्यापी है।
"... सबमें है, तो फिर कोई भी काम गलत नहीं होना चाहिए।"
हुआ ही नहीं, मैं तुमसे कहता हूं, अभी तक। खेल ही हो रहा है यहां। क्या गलत और क्या सही? नाटक हो रहा है। तुम नाटक में बहुत ज्यादा भ्रम में पड़ गए हो।
बंगाल के एक बहुत बड़े विद्वान ईश्वरचंद्र विद्यासागर एक नाटक देखने गए। उसमें एक आदमी है जो बड़ा बुरा चरित्र है--भ्रष्टाचारी, बलात्कारी। और उसमें एक स्त्री है जो बिल्कुल पवित्र है--प्रार्थना की तरह पवित्र, फूलों की तरह क्वांरी। वह उस स्त्री को पकड़ लेता है एक जंगल में और बलात्कार करना चाहता है। सन्नाटा छा जाता है सभा में। और अचानक लोग चकित हो जाते हैं, ईश्वरचंद्र छलांग लगा कर पहुंच गए मंच पर, निकाल लिया जूता और लगे पीटने उसको! किसी की समझ में नहीं आया कि यह हुआ क्या? मामला क्या है? उस आदमी ने जूता उनका हाथ में ले लिया और सिर से लगा लिया। जब उसने सिर से लगाया, तब उन्हें होश आया, कि यह नाटक है।
अच्छे-बुरे की आदत! भले आदमी! यह बर्दाश्त के बाहर हो गया। उस आदमी ने कहा, जूता मैं दूंगा नहीं। यह मेरा पुरस्कार है। आप जैसा आदमी धोखे में आ गया, इससे बड़ा प्रमाणपत्र और क्या होगा मेरे नाटक का? उसने जूता नहीं दिया सो नहीं दिया। वह जूता अब भी सुरक्षित है कलकत्ते में। उसका परिवार उसे सम्हाल कर मंजूषा में रखे हुए है कि ईश्वरचंद्र विद्यासागर धोखा खा गए। यह प्रमाण है कि जरूर वह अभिनेता कुशल रहा होगा, अदभुत रहा होगा! ऐसी स्थिति पैदा कर दी कि लगा कि बिल्कुल सच हो रहा है। इतना सच कि बचाने की जरूरत आ गई।
जो जानते हैं उनके लिए यह पृथ्वी बड़ा मंच है। यहां न बुरा कभी हुआ है,
न होता है। यहां बुरा-भला सब नाटक का हिस्सा है। टु थिकेन दि प्लॉट। कहानी को जरा रसपूर्ण बनाने के लिए। राम अकेले-अकेले आएंगे, दिखाई भी न पड़ेंगे, रावण को लाना पड़ता है। रावण अकेला आएगा तो भी राम के बिना कोई रस नहीं होगा उसके जीवन में। जो इस तरह देखेगा, वह मुक्त हो जाएगा--शुभ-अशुभ दोनों से। और शुभ-अशुभ से मुक्त हो जाना संतत्व है। साधु-असाधु से मुक्त हो जाना संतत्व है।
इसलिए ध्यान रखना, संत का अर्थ साधु मत करना। साधु तो संत है ही नहीं। साधु कैसे संत होगा? अभी असाधु से लड़ रहा है। संत तो वह है जिसे दिखाई पड़ गया कि साधु-असाधु एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। अब न जो साधु रहा, न असाधु रहा, जो दोनों के पार खड़ा हो गया, साक्षी हो गया, द्रष्टा हो गया।
वही द्रष्टा होना मैं तुम्हें यहां सिखा रहा हूं। इसलिए बहुतों को अड़चन होती है। वे यहां आकर सोचते हैं कि अरे! यहां बुरा-भला सब चल रहा है! वे सोच कर आए थे कि लोग बैठे होंगे झाड़ों के नीचे अपनी-अपनी माला लिए, राम-राम जप रहे होंगे। यहां हजार काम हो रहे हैं। यहां रामचंद्रजी सीता को लिए जा रहे हैं। यहां रावणजी पीछे लगे हैं, वे सीता को भगाने का आयोजन कर रहे हैं! यहां पूरी रामलीला हो रही है! तुम आते हो, तुम बड़ी बेचैनी में पड़ जाते हो। तुम सोचते थे रामचंद्रजी बैठे होंगे, सीताजी बैठी--सीताजी चरखा चला

रही होंगी, खादी बुन रही होंगी; रामचंद्रजी मक्खी उड़ा रहे होंगे। करेंगे क्या बैठे-बैठे?
मेरी दृष्टि में, जीवन जैसा है, स्वीकार्य है। जीवन प्यारा है; उसमें बुरा-भला सब अंगीकार होना चाहिए। उसमें खट्टा-मीठा सब चाहिए। नहीं तो जीवन एक स्वाद का होगा तो उसके आयाम खो जाएंगे। जीवन बहु-आयामी होना चाहिए। हां, इस सबके भीतर साक्षी जगना चाहिए। सब चलता रहेगा ऐसा ही, साक्षी जग जाना चाहिए।
और निश्चित ही रावण का साक्षी जगा होगा--उतना ही, जितना राम का। इसलिए लक्ष्मण को भेजा है रावण से शिक्षा लेने--कि जा, मरते रावण से कुछ सीख ले! कहा कि वह महाज्ञानी था। क्या बात होगी? क्या राज होगा? साक्षी था। सीता को चुरा कर तो ले गया था, लेकिन सीता के साथ कुछ दुर्व्यवहार किया नहीं। सीता को सुरक्षित रखा था। एक खेल था, जैसे पूरा कर रहा था। एक खेल था, उसका पार्ट निभा रहा था। लेकिन कहीं दूर खड़ा सब देख भी रहा होगा। राम के हाथ से मर कर प्रसन्न था, आनंदित था। कहते हैं, राम के हाथ से मरने के कारण मुक्त हो गया। राम के हाथ से मरना यानी गुरु के हाथ से मरना। जिस आत्महत्या की मैं तुम्हें अभी बात सिखा रहा था, रावण ने राम को उकसा कर, राम के हाथ से अपनी हत्या करवा ली। इससे शुभ और क्या हो सकता है?
कहानी को जरा नये ढंग से देखो, जरा मेरी आंखों से देखो! और तब तुम पाओगेः यहां कुछ बुरा नहीं है, कुछ भला नहीं है। यहां कांटे फूलों की रक्षा कर रहे हैं, उनके दुश्मन नहीं हैं। यहां फूल कांटों के संगी-साथी हैं, सखा हैं, उनमें कोई शत्रुता नहीं है। यह आदमी की बुद्धि है जो निर्णय कर लेती है--यह अच्छा, यह बुरा। निर्णय एक दफा कर लिया, तो फिर वैसा दिखाई पड़ने लगता है। फिर वैसा दिखाई पड़ने लगता है तो सवाल उठता है कि परमात्मा बुरे-भले को क्यों मौका दे रहा है? भला ही भला होना चाहिए।
परमात्मा तुम्हारी बुद्धि के अनुसार नहीं चल रहा है। तुम्हारी बुद्धि बड़ी छोटी है। तुम्हें क्या बुरे का पता है, क्या भले का पता है?
अब तुम परेशान हो रहे हो कि एक सिंह आया और आदमी को झपट कर खा गया, तो
यह बड़ा बुरा हो रहा है। क्यों बुरा हो रहा है? सिंह को भूखा मारना है? अरे सिंह की भी तो सोचो! वह सिर्फ अपना नाश्ता कर रहा है।
अब आदमी बड़ा होशियार है। जब सिंह को मारता है, उसको कहता है--शिकार, खेल। और जब सिंह मारता है तब नहीं कहता शिकार, तब खेल नहीं मानता। यह तो बड़ी बेईमानी हो गई। तुम सिंह को मारो, तो खेल खेलने गए थे--आखेट, क्रीड़ा! ऐसे तुमने नाम बना रखे हैं। और जब सिंह कभी शिकार कर जाए, तो नरभक्षी है। क्यों साहब, उनको भी कुछ खेलने दोगे कि नहीं?
सब खेल-खेल में हो रहा है। तुम्हारा भी खेल में हो रहा है, उनका भी खेल
चल रहा है। जिस दिन तुम साक्षीभाव से देखोगे... आदमी की तरह मत देखो, क्योंकि उसमें तो पक्षपात हो गया। तुम जब आदमी की तरह देखते हो, तो पक्षपात हो गया; फिर तुम सिंह की तरह नहीं देखते। पक्षपात छोड़ कर साक्षीभाव से देखो, तो तुम देखोगे, क्या फर्क पड़ता है, तुमने सिंह खाया कि सिंह ने तुमको खाया? राम ही राम को खा रहा है! राम ही राम को पचा रहे हैं! ठीक चल रहा है। कुछ अड़चन नहीं है।
परम ज्ञानी को अगर सिंह खा जाएगा, तो वह यही जानता है कि ठीक है, परमात्मा ने मुझे आत्मसात कर लिया--सिंह के द्वारा; सिंह के रूप में आया और मुझे ले गया।
अठारह सौ सत्तावन की गदर में ऐसा हुआ। एक संन्यासी तीस वर्ष से मौन था
और नग्न भी था। चांदनी रात थी, अपनी मस्ती में घूमता हुआ जा रहा था। वह भूल से अंग्रेजों की छावनी में पहुंच गया। वे तो समझे कि कोई जासूस है। उन्होंने उसे पकड़ लिया। और जब वह बोले नहीं, तब तो पक्का समझ गए कि जासूस है, और नग्न है। उनको तो बड़ा क्रोध आया। किसी ने एकदम संगीन खींच कर उसकी छाती से लगा दी। बस वह आखिरी शब्द एक बोला। जैसे ही उसे मारा गया, उसकी छाती में संगीन भोंक दी गई, उसने आखिरी शब्द जो बोला, वह महावाक्य था उपनिषद का--तत्त्वमसि! तू भी वही है!

क्या कह रहा है यह संन्यासी? यह कह रहा हैः मैं तुझे पहचानता हूं, तू किसी रूप में आ। तू आज हत्यारे के रूप में आया है, तू मुझे धोखा न दे पाएगा-- तत्त्वमसि!
उस संन्यासी ने कसम ली थी कि जब परमात्मा से मिलन होगा, तभी बोलूंगा। तीस साल नहीं बोला था, आज बोला। परमात्मा भी खूब ढंग चुना आने का!
साक्षी के लिए कुछ बुरा नहीं, कुछ भला नहीं। सब लहरें हैं। और सब एक की
ही लहरें हैं।
तुम पूछते होः "और अगर वही कराता है सब कुछ, तो फल भी वही क्यों नहीं भोगता?"
तुम क्या सोचते हो, तुम भोग रहे हो? वही भोग रहा है। कराता भी वही, भोगता भी वही। कर्ता भी वही, भोक्ता भी वही। तुम्हारी भ्रांति है कि तुम कर रहे हो और तुम्हारी भ्रांति है कि तुम भोग रहे हो। तुम हो कहां? तुम्हारा होना भ्रांति है, भ्रम है, माया है। तुम तो लहर हो उसी की। जो कुछ भी हो रहा है, उस पर ही हो रहा है। ऐसा ध्यान जब तुम्हारा खुलेगा, साफ होगी दृष्टि, तो दिखाई पड़ेगा।
लेकिन इस तरह के प्रश्नों को उठा कर तुम कहीं न पहुंचोगे। इन प्रश्नों का कोई बौद्धिक उत्तर नहीं है। अनुभूति ही उत्तर हो सकती है। थोड़े साक्षी बनो। थोड़े ध्यान में जाओ। तुम्हें दिखाई पड़ने लगेगा जो मैं कह रहा हूं। मेरी बात मान लेने से हल नहीं होगा, क्योंकि तुम्हारा अनुभव तो विपरीत ही रहेगा। एक बिच्छू आकर काट जाएगा और सब भूल जाएगा। तुम कहोगे कि अरे, यह बिच्छू! इसमें कैसे परमात्मा देखें? और फिर परमात्मा ने इसमें जहर क्यों रखा है? टु थिकेन दि प्लॉट। नहीं तो मजा ही क्या होता? वह जो डंक दे गया है तुम्हें जोर से, उसमें मजा ही नहीं रह जाता। तुम क्या सोचते हो उसमें कॉफी या चाय रख देता? सब पोच हो जाता, खेल का मजा ही चला जाता। उसके डंक में रखा है जहर, कि दे जाए मजा तुमको! मगर वही है। वही जहर है, वही अमृत है।
जरा सा कांटा चुभ जाता है और तुम्हें सवाल उठने लगते हैं--बड़े दार्शनिक सवाल तुम सोचते हो--कि कांटा क्यों चुभा? अगर परमात्मा सर्वव्यापी है, तो कांटा क्यों चुभा?
कांटे में भी वही चुभ रहा है, लेकिन हम भेद किए बैठे हैं। हमारा परमात्मा से मतलब कुछ ऐसा होता है कि जो-जो हम चाहें, वही होना चाहिए, तो परमात्मा है। तो ईसाई चाहते हैं, सब हिंदू समाप्त हो जाएं, ईसाई होने चाहिए, तो वे मानेंगे कि परमात्मा है। और हिंदू चाहते हैं, सब ईसाई समाप्त हो जाएं, तो परमात्मा है। मस्जिद जो जाता है वह सोचता है, सब मस्जिद जाएं तो परमात्मा है। मंदिर क्यों हैं? ये मंदिर नहीं होने चाहिए। और मंदिर जाने वाला सोचता है, सब मस्जिदें गिर जाएं।
अगर तुम इस तरह सोचोगे, तो तुम पाओगे कि ऐसी कोई चीज नहीं है, जिसको ठीक मानने के लिए सारे लोग राजी हो जाएं, या गलत मानने के लिए सारे लोग राजी हो जाएं। परमात्मा किसकी सुने?
मैंने सुना है कि पहले वह यहीं जमीन पर रहता था। बीच बाजार में ही रहता था। मगर लोगों ने उसे बहुत परेशान कर दिया। लोग सुबह से सांझ तक कतार लगाए उसके सामने खड़े रहें। रात उसको जगा-जगा कर कहें कि इस वक्त ऐसा होना चाहिए, इस वक्त ऐसा होना चाहिए। आज पानी गिराओ! और दूसरा आकर उसी वक्त कहता है कि आज पानी मत गिराना, आज मैंने घड़े बनाए हैं, सूख जाने दो! और एक कहता है, आज मैंने बीज डाले हैं खेत में, पानी गिराओ। और कोई कहता है, धूप निकालो, आज कपड़े सुखाने हैं। घबड़ा गया होगा, पगला गया होगा! भाग खड़ा हुआ। तब से लौट कर नहीं देखा उसने यहां। और जहां-जहां आदमी पहुंच जाता है, वहां से भाग जाता है। यहां से गया तो हिमालय पर रहने लगा। फिर आदमी हिमालय पहुंच गया, उसने हिमालय छोड़ दिया। फिर वह चांद पर रहने लगा। आदमी चांद पर पहुंच गया, उसने चांद छोड़ दिया। तुम यह मत सोचना कि चांद पर वह रहता नहीं था--रहता था, तुम्हारे पहुंचने की वजह से भाग गया। तुम जहां जाओगे, वहीं से भाग जाएगा। तुमसे डरता है। तुम ऐसे सवाल उठाते हो!

इन सवालों का कोई बौद्धिक हल नहीं है। साक्षी बनो। तुम्हारे साक्षी में ये सारे सवाल गिर जाएंगे। और जिस दिन तुम्हें राम और रावण में एक दिख जाएगा, उस दिन जानना कि कुछ हुआ। जब तक रावण तुम्हें दुश्मन दिखाई पड़े और राम तुम्हें प्यारे दिखाई पड़ें, तब तक समझना, अभी कुछ हुआ नहीं। फूल और कांटा जिस दिन एक हो जाएं, सुख और दुख जिस दिन एक हो जाएं, उस दिन जानना, कुछ हुआ है। उसी दिन सारे प्रश्न समाप्त हो जाते हैं।

पांचवां प्रश्नः आपके संन्यासी, स्वामी ब्रह्म वेदांत, दूसरे संन्यासियों तथा लोगों को गुमराह कर रहे हैं। वे अपना वर्चस्व जमाने के लिए आपका दुरुपयोग कर रहे हैं। वे आपकी दी हुई माला भी नहीं पहनते, और न गैरिक वस्त्र ही पहनते हैं और इसके बचाव में कहते हैं कि भगवान ने ऐसा करने की मुझे आज्ञा दी है, क्योंकि मैं परम-अवस्था को उपलब्ध हो गया हूं, इसलिए अब माला या गैरिक वस्त्र की कोई आवश्यकता नहीं है। भगवान ने मुझे इनसे मुक्त कर दिया है। वे महीने में एक-दो स्थानों पर जाकर शिविर लेते हैं। वहां न आपके प्रवचन सुनाए जाते हैं, न आपके बताए ध्यान ही कराए जाते हैं। श्री ब्रह्म वेदांतजी को देश के अन्य भागों में भी आपके संन्यासी शिविरों में बुलाते हैं। उनके साथ-साथ पोरबंदर के श्री अनंतजी तो और भी गजब ढाते हैं। वे अपना पेशाब सबके ऊपर छिड़कते हैं। और वहां दारू, गांजा, चरस की महफिल जमती है। और यह सब आपके नाम पर होता है, जिसके बारे में लोगों में गलतफहमी पैदा होती है। क्या हम यह सब चुपचाप देखते रहें? हम क्या करें प्रभु?

समाधि! ब्रह्म वेदांत पर मुझे दया आती है! कुछ होने के करीब ब्रह्म वेदांत की चेतना आती थी और चूक गए। करुणा के पात्र हैं।
इस प्रश्न का उत्तर इसीलिए दे रहा हूं कि यह औरों के भी काम का होगा। अक्सर ऐसा हो जाता है, जब ध्यान की थोड़ी सी भी झलक मिलती है, तो अहंकार उस पर कब्जा कर लेता है। ऐसा निर्मला श्रीवास्तव को हुआ, अब ब्रह्म वेदांत को हो गया है। ऐसा औरों को भी हुआ है। कुछ दो-चार पश्चिम गए हैं संन्यासी, उनको हो गया है।
अब पचास हजार संन्यासी हैं मेरे, यह बिल्कुल स्वाभाविक है, दो-चार-पांच को यह झंझट होने वाली है। जब ध्यान की पहली झलक आती है तो लगता है, हो गया। अब क्या करना है और? अब पूजा लेने का क्षण आ गया। अब पूजा करने का वक्त गया। अब घोषणा कर दो कि मैं पहुंच गया हूं, सिद्ध हो गया हूं, भगवत्ता पा ली है।
अहंकार बैठा है पीछे। तुम जो भी पाओगे, अहंकार उसके ही द्वारा अपने को सिद्ध करने की कोशिश करेगा।
और दया इसलिए आती है कि ब्रह्म वेदांत सरल व्यक्ति हैं। बेईमान नहीं हैं, धोखेबाज नहीं हैं। लेकिन अहंकार के चक्कर में पड़ गए। और जब अहंकार पीछे से आता है, तो वह सब करवाएगा। वह कहेगा, छोड़ो माला! क्योंकि अहंकार यह बर्दाश्त नहीं कर सकता कि तुम और किसी और की माला पहनो! छोड़ो गैरिक वस्त्र! अब तो तुम परम मुक्त हो गए।
और मैंने कभी उनसे नहीं कहा है कि तुम माला छोड़ दो। और न ही कभी कहा है
कि तुम गैरिक वस्त्र छोड़ दो। और न ही मैंने उनसे कहा है कि तुम पहुंच गए। मेरी प्रतीक्षा करो थोड़ा। तुममें से भी कई को ये भ्रांतियां आएंगी,
तब थोड़ी प्रतीक्षा करना। मैं यहां हूं! जब मैं समझूंगा कि अब तुम अहंकार की सीमा के बाहर हो गए और कोई खतरा नहीं, तो मैं कहूंगा कि तुम पहुंच गए। तुम्हें इतनी जल्दी क्या है? तुम इतना अधैर्य क्यों कर रहे हो? मैं तो चाहूंगा कि तुम सब भगवत्ता को उपलब्ध हो जाओ, एक भी पीछे न छूटे। लेकिन तुम जल्दबाजी करोगे तो चूक जाओगे। और जो मेरे माध्यम से, मेरे साथ चल कर भगवत्ता को उपलब्ध होगा, मैं उससे कहूंगा भी कि तू माला छोड़ दे, तो नहीं छोड़ सकता। मैं उससे कहूंगा कि अब छोड़ दे ये गैरिक वस्त्र, तो वह मेरी नहीं सुनेगा। वह कहेगा कि जिस सहारे मैं आया हूं, उसके प्रति कृतज्ञता, उसके प्रति अनुग्रह का भाव।

बुद्ध के शिष्य--सारिपुत्र, मोग्गलान, महाकाश्यप ज्ञान को उपलब्ध हो गए, तो बुद्ध ने उनको कहा कि अब तुम जाओ और खबर पहुंचाओ लोगों तक। उन्होंने अपने पीतवस्त्र नहीं छोड़ दिए। सारिपुत्र को जब भेजा तो सारिपुत्र रोता हुआ गया। और जब उसके साथियों ने पूछा, आप रोते क्यों हैं? क्योंकि बुद्ध ने कहा कि तुम भी बुद्ध हो गए! उन्होंने कहा, वह तो ठीक है कि मैं हो गया, लेकिन जिसके द्वारा हुआ हूं, उससे दूर जाना पड़ रहा है। इससे तो अच्छा था अभी न होता बुद्ध!
सारिपुत्र के वचन बड़े बहुमूल्य हैं! इससे तो अच्छा था अभी न होता बुद्ध। अगर मुझे यह पता होता कि बुद्ध को छोड़ कर जाना पड़ेगा मुझे बुद्ध होते ही, तो मैंने इसको टाला होता। उनके चरणों में बैठने का मजा ऐसा था, आनंद ऐसा था। बुद्धत्वता एक दफे छोड़ दी होती। यह तो फिर भी हो सकती थी कभी, लेकिन बुद्ध का संग-साथ! उनका सत्संग!
गया, आज्ञा दी थी बुद्ध ने तो गया। लेकिन जहां भी होता था, सुबह-सांझ, जिस तरफ बुद्ध होते, उसी तरफ साष्टांग दंडवत करता। उसके शिष्य पूछते, अब आप स्वयं बुद्ध हो गए हैं, आप किसको दंडवत करते हैं? कोई दिखाई तो पड़ता नहीं। तो वह कहता, मेरे गुरु उस दिशा में होंगे, उनकी तरफ अनुग्रह का भाव। रोता! जब बुद्ध का शब्द आ जाता उसके मुंह पर तो उसकी आंखों से झड़ी लग जाती। तो जिसको हो जाएगा, मैं कहूंगा। तुम जल्दी मत करो।
अब ब्रह्म वेदांत व्यर्थ की झंझट में पड़ गए हैं। उपद्रव में पड़ गए हैं। याद दिलाओ उन्हें, कि इस भ्रांति को छोड़ें। अभी कुछ हुआ नहीं है।
होने के करीब था और हो सकता था--और इस उपद्रव ने सारे होने को अवरुद्ध कर दिया है।
पूछा तुमनेः "आपके संन्यासी, स्वामी ब्रह्म वेदांत, दूसरे संन्यासियों तथा लोगों को गुमराह कर रहे हैं।"
गुमराह वे कर सकते हैं। इससे दूसरों को सावधान होना चाहिए। इस तरह की घटनाएं रोज घटेंगी। ये बिल्कुल स्वाभाविक हैं, सदा घटती रही हैं। बुद्ध का चचेरा भाई, देवदत्त, घोषणा कर दिया था। जब उसने देखा कि सारिपुत्र और मोग्गलान और महाकाश्यप जैसे लोग ज्ञान को उपलब्ध हो गए, तो देवदत्त से बर्दाश्त नहीं हुआ--वह चचेरा भाई था। बुद्ध के साथ बड़ा हुआ, उसी राजमहल में बड़ा हुआ, उसी राजकुल का था, भाई ही था, और दूसरों की घोषणा हो गई, और मेरी घोषणा नहीं की बुद्ध ने! अब बुद्ध कैसे घोषणा करें? अभी घोषणा की बात ही नहीं आई थी! तो उसने खुद ही घोषणा कर दी। वह पांच सौ बुद्ध के भिक्षुओं को अपने साथ लेकर अलग हो गया। पांच सौ भिक्षु उसके साथ चले गए। तो लोग भ्रांति में पड़ सकते हैं। और उसने घोषणा कर दी कि मैं खुद बुद्ध हूं। और बुद्ध के पास जाने की अब कोई जरूरत नहीं है।
फिर उसने इतना ही नहीं किया, उसने बुद्ध को मार डालने की भी चेष्टा की। क्योंकि बुद्ध जब तक मौजूद हैं, तब तक वह कितना ही कहे, दस-पचास, सौ, दो सौ, पांच सौ लोगों को भी अपने साथ इकट्ठा कर ले, तो भी हजारों लोग तो बुद्ध के पास जा रहे थे। वह उसे कष्ट का कारण था। उसने पागल हाथी बुद्ध पर छुड़वाया।
बड़ी प्यारी घटना घटी! जब पागल हाथी बुद्ध के सामने आया, वह ठिठक कर खड़ा
हो गया और झुक गया। उसने सिर बुद्ध के चरणों में लगा दिया। पागल हाथियों में भी इतनी समझ होती है, कहानी का इतना ही अर्थ है। मगर अहंकार पागल हाथियों से भी ज्यादा पागल होता है।
तो सावधान रहें मेरे संन्यासी! इस तरह के लोगों को कोई साथ देने की जरूरत नहीं है। इस तरह के लोगों को समझाओ। उनको चूक मत जाने दो। उन पर दया करना, उन पर नाराज मत होना, उनके दुश्मन मत हो जाना, उनको समझाना। भूलों को घर वापस लाना। उनका विरोध नहीं करना है। लेकिन उनको सहयोग भी मत देना, क्योंकि वे खुद भ्रांति में हैं और तुम्हें भ्रांति में डालेंगे।
"वे अपना वर्चस्व जमाने के लिए आपका दुरुपयोग कर रहे हैं।"
यह होगा। कुछ संन्यासियों की खबरें आती हैं, कोई मेरे नाम पर जाकर पैसे इकट्ठे कर लेता है, कोई मेरे नाम पर जाकर लोगों को समझाता है कि मैंने उसे सिद्धपुरुष घोषित कर दिया है। अब चूंकि संख्या संन्यासियों की बढ़ी

है--और रोज बढ़ती जाने वाली है, इस पूरी पृथ्वी को गैरिक कर देना है--तो ये सारी कठिनाइयां आएंगी। ये बिल्कुल स्वाभाविक हैं। इनके लिए तुम्हारे सामने सूत्र भी होने चाहिए साफ कि तुम क्या करो। इसलिए समाधि का प्रश्न महत्वपूर्ण है।
उसने पूछा हैः "हम क्या करें?"
पहली तो बातः क्रोध मत करना! दया करना। तुम्हारा संगी-साथी कोई भटक जाए तो उसे रास्ते पर वापस लाने की फिकर लेना। उसे एकांत में प्रेम से समझाना। उसे मेरे पास ले आना।
वह ब्रह्म वेदांत यहां भी आने से बचते हैं। उनको मैंने खबरें भिजवाईं
कि तुम यहां आ जाओ, मेरे सामने थोड़ी बात कर लो। तो वे आंख से आंख मिलाने से भी डरते हैं। वे यहां आएं कैसे? आएंगे तो कहेंगे क्या? उत्तर क्या होगा? जो झूठ वे दूसरों से कह रहे हैं, वह मुझसे तो नहीं कह सकेंगे। मैंने तो उनसे कभी कहा नहीं कि माला छोड़ दो, कि गैरिक वस्त्र छोड़ दो। मैंने कभी कहा नहीं कि तुम पहुंच गए हो।
उनको समझाओ। और ध्यान रखो कि उनके द्वारा किसी और संन्यासी को व्यर्थ
का भटकावा पैदा न किया जाए। उनके शिविर इत्यादि लेना बंद करो! अब मेरे संन्यासी सोचते हैं कि मैंने कह दिया है कि ब्रह्म वेदांत पहुंच गए हैं, इसलिए अब इनका शिविर ले लो, इनका सत्संग करो।
ब्रह्म वेदांत लोगों को लिखते हैं कि भगवान ने मुझे आज्ञा दी है कि मैं प्रचार करूं।
मैंने उन्हें कोई आज्ञा नहीं दी है। इस संबंध में स्मरण रखो कि जब भी कोई आदमी इस तरह की बात तुमसे आकर कहे, तो जब तक उसके पास आश्रम का पत्र न हो मेरी तरफ से, तब तक तुम कभी सुनना मत। न तो पैसा दो, न सम्मान दो, न किसी तरह के शिविर आयोजित करो। क्योंकि बहुत झंझट खड़ी हो रही है। रोज लोग आकर यहां खबर लाते हैं, कि हमसे फलां संन्यासी दस हजार रुपये ले गया; उसने कहा कि मैं फाउंडेशन की तरफ से, आश्रम की तरफ से आया हूं, बड़ी जरूरत है।
अब यह कठिन होगा इसको तय करना कि कौन, कहां से, किससे मांग कर ले जाएगा।
और लोग सरल हैं, और लोगों का मुझसे प्रेम है; वे सोचते हैं कि जरूरत होगी, संन्यासी को भेजा है, तो दे दो, पैसे दे दो; चलो ले जाने दो, कोई बात नहीं।
मैंने किसी को पैसा लेने नहीं भेजा है। पैसे के संबंध में तुम चिंता
ही मत करो। पैसे से मेरी कुछ दोस्ती है। आ ही जाता है। तुम उसकी फिकर ही मत करो। तुमसे लेना ही नहीं है। तुमसे कोई लेने आए, उसको देने की जरूरत नहीं है। और न ही मैंने किसी को अधिकार दिया है। हां, जिनको मैं भेजता हूं आश्रम से, उनका ख्याल रखो। मृदुला आती है आश्रम की तरफ से, चैतन्य भारती। दो व्यक्ति आश्रम की तरफ से आते हैं; कोई तीसरा व्यक्ति नहीं आता। और जब भी कोई आए, उससे तुम पत्र मांगना; ताकि इस तरह की गलतियों को रोका जा सके। "श्री ब्रह्म वेदांतजी को देश के अन्य भागों में भी आपके संन्यासी शिविरों में बुलाते हैं। उनके साथ-साथ पोरबंदर के श्री अनंतजी तो और भी गजब ढाते हैं।"
अनंत जी मालूम होता है श्री मोरारजी देसाई के शिष्य हो गए।
"वे अपना पेशाब सबके ऊपर छिड़कते हैं।"
अनंत की तो कोई क्षमता नहीं है। अनंत तो व्यर्थ उपद्रवी है। ब्रह्म वेदांत की तो कुछ क्षमता थी। ब्रह्म वेदांत तो ध्यान के करीब आ रहे थे। बात जमी जाती थी कि अपने हाथ से उखाड़ ली। फिर जम सकती है। कुछ बिगड़ नहीं गया है। और उनकी बात बिगाड़ने में अनंत का हाथ है। अनंत उपद्रवी है। गांजा, चरस, यह सब जमता होगा। इसी को जमाने के लिए ब्रह्म वेदांत को आड़ बना लिया है। ब्रह्म वेदांत सीधे आदमी हैं। अनंत उपद्रवी है। तो वह तो कई खेल करेगा, कई तरह के उपद्रव करेगा।
इस तरह की बातों को सहारा मत दो। इस तरह की बातों को बिल्कुल रोक दो। इनको जड़ से काट दो। शुरू से ही काट दो। यह मेरे बाद तो इस तरह की बहुत बातें चलेंगी, तब बहुत मुश्किल हो जाएगा। इसलिए अच्छा है कि मेरे रहते तुम ये

सारे सूत्र ख्याल में ले लो। मेरे सामने ही मत चलने दो, ताकि मेरे बाद भी न चल सकें। और जब मैं मौजूद हूं, तो सीधे मुझसे पूछ ले सकते हो।
अब यह क्या पागलपन है? किसी मादक द्रव्य से कोई आदमी समाधि को उपलब्ध नहीं होता। लेकिन सदियों से इस देश में यह भ्रांति रही है, क्योंकि मादक द्रव्यों में एक है बात, कि उनसे झूठी समाधि पैदा हो जाती है। इसलिए सस्ता जिनको प्रचार करवाना हो... अब करते वे यह होंगे... ऐसा बहुत दफे किया गया है, किया जाता रहा है। इस तरह की धोखाधड़ी बड़ी प्राचीन है। साधुओं के अखाड़ों में यह कोशिश रही है। प्रसाद में भांग मिला देंगे। भक्त प्रसाद लेकर भांग खा जाएंगे, और फिर जब भजन होगा तो भक्त मस्ती में आ जाएंगे। और भक्त को पता ही नहीं कि वह भांग खा गया है! वह सोचेगा कि ध्यान की मस्ती है। वह सोचेगा, गुरुकृपा हो रही है। वह सोचेगा, सत्संग का लाभ मिल रहा है।
यह सदा से चलता रहा है। सोमरस से लेकर अभी तक, वेद से लेकर अब तक साधु
इस उपद्रव को फैलाते रहे हैं। यह सस्ता मामला है। किसी को ध्यान में ले जाना तो कठिन प्रक्रिया है। लेकिन किसी को ध्यान में पहुंच जाने का धोखा दे देना बहुत सरल मामला है। अब तो पश्चिम में तो गांजा-चरस से भी और ज्यादा विकसित चीजें पैदा हो गई हैं--एल एस डी। जरा सी मात्रा एल एस डी की पानी में डाल दी जाए और सैकड़ों लोग मस्ती में आ जाएंगे।
सरकारें विचार कर रही हैं कि जहां लोग उपद्रवी हैं, बगावती हैं, वहां
के जलस्रोतों में एल एस डी डाल दिया जाए। तो लोग बड़े मस्त हो जाएंगे, उनका उपद्रव खो जाएगा, उनकी बगावत चली जाएगी। सरकारें विचार कर रही हैं इस तरह का कि आज नहीं कल, जब बच्चा पैदा हो अस्पताल में, तभी उसके भीतर कुछ तत्व डाल दिया जाए, जिसके कारण उसके भीतर कभी बगावत न हो। वह हमेशा जी-हुजूर रहे।
ये सारे मादक द्रव्य जी-हुजूरी पैदा करवा देते हैं। ये तुम्हारी जीवन-चेतना को निखारते नहीं, और न तुम्हें ध्यान की तरफ ले जाते हैं। और इस तरह के सब उपद्रव चलते रहे हैं। पेशाब छिड़की जाती रही है, पेशाब प्रसाद में दी जाती रही है। और जितनी मूढ़तापूर्ण बात हो, उतनी ही लोगों को जंचती है। कुछ मूढ़ता में भी बड़ा आकर्षण है।
इसको समझने की कोशिश करना। तुम्हारे तथाकथित परमहंस मल-मूत्र सेवन
भी करते रहे हैं, प्रसाद में भी मिलाते रहे हैं। ये विक्षिप्तता के लक्षण हैं। इसलिए मैं मोरारजी देसाई को फिफ्टी परसेंट परमहंस कहता हूं। ये विक्षिप्तता के लक्षण हैं। ये रुग्णता के लक्षण हैं। यह चित्त की स्वस्थ दशा नहीं है।
इस तरह का कोई कृत्य कहीं होता हो, तत्क्षण रोकना। इस तरह के कृत्य में मत पड़ना। और इस तरह के कृत्य करने वाले बड़े उपाय से चलाते हैं व्यवस्था। अब मुझे पता चला है कि वहां वे करते क्या हैं। जो भी पहुंचता है, उसी को कहते हैं--आओ भगवान! उसके पैर पड़ते हैं।
अब जब तुम्हारा कोई पैर पड़ेगा--कभी तुम्हारा किसी ने पैर पड़ा नहीं--और तुमसे कहेगाः भगवान! एकदम से तुम्हें ही भरोसा नहीं आता। और जब तुमसे जो भगवान कह रहा है और तुम्हारे पैर पड़ रहा है, अब यह बिल्कुल स्वाभाविक हो गया कि तुम वहां किसी भी बात में कोई एतराज न उठाओगे। तुम्हें भोजन कराया जाएगा, तुम्हारे हाथ-पैर दबाए जाएंगे, तुम्हारी सेवा की जाएगी। और तुम बड़े प्रसन्न हो गए, तुम बड़े आनंदित हो गए--अब जो भी चल रहा है, चलने दो। अब तुम इसमें विरोध नहीं कर सकते। कैसे विरोध करोगे? जिन्होंने इतना सम्मान तुम्हें दिया है, उत्तर में तुम भी तो सम्मान ही दोगे न!
ये सब चालबाजियां हैं। और ये उपद्रव सदा आते हैं। हर बुद्धपुरुष के साथ यह उपद्रव खड़ा हो जाता है। नया कुछ नहीं है। मगर सावधानी बरतनी जरूरी है।
पूछा हैः "और यह सब आपके नाम पर होता है। जिससे आपके बारे में लोगों में गलतफहमी पैदा होती है।"
गलतफहमी की कोई चिंता नहीं है, वह तो मैं खुद ही काफी पैदा कर लेता हूं। उसकी कोई चिंता नहीं है। गलतफहमी की फिकर मत करना। फिकर इस बात की करना कि मेरे संन्यासियों को कोई भ्रांत दिशा न मिल जाए। लोगों में

गलतफहमी की कोई फिकर नहीं है। लोगों की फिकर कौन करता है कि वे क्या कहते हैं? लेकिन संन्यासी, जो कि धीरे-धीरे ध्यान की तरफ उत्सुक हुए हैं, इनको कोई गलत रास्तों पर ले जाने वाले लोग पैदा न हो जाएं, इसका ख्याल रखना। इस तरह के लोग कहीं भी हों, उनको पकड़ कर यहां ले आना। उनको कहना, पहले वहां चलो। उनको रास्ते पर लाने की चेष्टा करना सब तरह से। और जाने-अनजाने किसी तरह का सहारा मत देना।
"क्या हम यह सब चुपचाप देखते रहें?"
नहीं, जरा भी चुपचाप देखने की जरूरत नहीं है। इसका मतलब यह नहीं है कि तुम डंडे लेकर और ब्रह्म वेदांत या अनंत की कुटाई में लग जाओ। उससे कुछ लाभ नहीं होगा। चुपचाप नहीं देखना है। बड़ी करुणा से, बड़े प्रेम से, कोई साथी-संगी तुम्हारा भटक रहा है, उसे वापस लाना है। करना तो कुछ होगा। और अगर सजग संन्यासी रहे, तो इस तरह के उपद्रव नहीं हो सकेंगे। नहीं होने चाहिए! इनका रोका जाना एकदम अनिवार्य है।

छठवां प्रश्नः मैं कुछ भी नया करने से भयभीत होता हूं। मैं इस भय से मुक्त कैसे होऊं?

नया सदा ही भयभीत करता है। अपरिचित डराता है। लेकिन अपरिचय में ही विकास है। अनजान में ही यात्रा है। रोज-रोज पुराने को छोड़ना है, रोज-रोज नये में गति करनी है।
जैसे रोज नया सूरज उगता है सुबह, रोज नये फूल खिलते हैं सुबह, ऐसे ही तुम्हारे जीवन में भी रोज नई रोशनी चाहिए, नये फूल चाहिए। किताबों में दबे हुए मुर्दा फूलों को लेकर मत बैठे रहो। तुम्हारी स्मृतियां किताबों में दबे मुर्दा फूल हैं। अतीत के साथ मत उलझे रहो। सुविधापूर्ण है। साहस की कोई जरूरत नहीं है अतीत के साथ जीने में। कमजोर के लिए बड़ी सुरक्षा है। लेकिन अतीत में ही डूबे रहना, तो फिर विकास कैसे करोगे? विकसित कैसे होओगे?
नया पुकारता है रोज-रोज। परमात्मा नित नया है, नित नूतन है। जो नये में उतर सकता है, वही परमात्मा को जान सकता है। पुराने के प्रति रोज मरना है और नये के प्रति रोज जन्मना है। और यह समय की धारा, जो जा रही है तुम्हारे पास से, फिर नहीं लौट कर आएगी। एक क्षण भी खोना मत। अतीत के साथ, पुराने के साथ गंवाया गया हर क्षण व्यर्थ गया।
हे मन के अंगार, अगर तुम लौ न बनोगे, क्षार बनोगे।
जल्दी करो! अगर तुम्हारा जीवन एक ज्योति नहीं बन सकता है, अगर अंगार लपट कर लौ नहीं बन सकता है, तो जल्दी ही राख हो जाएगा। फिर एक अवसर गया। ऐसे ही बहुत अवसर तुमने खोए हैं। अब इस अवसर को मत खोओ। मेरे साथ होने का पूरा लाभ ले लो।

हे मन के अंगार, अगर तुम लौ न बनोगे, क्षार बनोगे।
जो न करेगा सीना आगे
पीठ उसे खींचेगी पीछे
जो ऊपर को उठ न सकेगा
उसको जाना होगा नीचे;
अस्थिर दुनिया में थिर होकर
कोई वस्तु नहीं रहती है,
हे मन के अंगार, अगर तुम लौ न बनोगे, क्षार बनोगे।

ध्यान रखना, यहां कुछ भी थिर नहीं है। या तो आगे जाओ या पीछे जाओ। जाना
तो पड़ेगा ही। वैज्ञानिक कहते हैंः थिर होना असंभव है। कोई चीज थिर नहीं है। या तो रोज-रोज नये जीवन में प्रवेश करो, या रोज-रोज पुरानी मृत्यु में दबते जाओगे।
छोड़ो भय! भय से भर भय करो, और किसी चीज से भय मत करो।

जलना अर्थ उन्हीं का रखता
जो कि अंधेरे में खोयों को
हाथों के ऊपर अवलंबित
आकुल, शंकित दृग कोयों को
आशा का आश्वासन देकर
जीवन का संदेश सुनाते,
जो न किरण की रेख बनोगे, धूलि-धुएं की धार बनोगे। हे मन के अंगार, अगर तुम लौ न बनोगे, क्षार बनोगे।

हृदय मिला है, उसमें चाहो
तो सारा संसार बसा लो,
जिसका चाहो जी बहलाओ
जिससे चाहो जी बहलाओ
कंठ मिला है, जो भीतर से
उठता है बाहर बिखराओ,
भार बनोगे मन के ऊपर, जो न सहज उद्गार बनोगे।
हे मन के अंगार, अगर तुम लौ न बनोगे, क्षार बनोगे।

राख हुआ जाता है जीवन, प्रतिपल राख की पर्त पर पर्त जमी जाती है।
अंगार को लपटने दो। अंगार को लौ बनने दो। नये का भय क्या? नया तो जीवन है।
नये का भय क्या? नया तो परमात्मा है। लेकिन बहुत लोग राख होने में सुविधा पाते हैं। बहुत लोग मरने के पहले मर जाते हैं। बहुत लोग ऐसे जीते हैं जैसे कब्र में हों।
खोलो द्वार-दरवाजे मन के। परमात्मा रोज दस्तक देता है। उनकी दस्तक सुनो। नये के साथ जाने में ही तुम्हारा विकास है। नये के साथ ही तुम आकाश में उड़ सकोगे।
भूलें होंगी। और वही कारण है डर का। हर एक आदमी को यह समझाया गया है बचपन से--भूलें मत करना। उसके कारण भय पैदा हो गया है, कहीं भूल न हो जाए। पुराने काम में भूल नहीं होती, क्योंकि जाना-माना है। वही-वही तुम करते रहते हो, करते ही रहे हो, वही-वही करते रहते हो, भूल नहीं होती। एक बात तय होती है कि भूल नहीं होती। मगर सबसे बड़ी भूल हो गई, कि तुम मुर्दा हो गए, तुम जिंदा न रहे। मैं तुमसे कहता हूं, भूलों से भय मत खाओ। भूलें करने वाले ही जीवन में कुछ सीख पाते हैं। एक ही बात याद रहेः वही भूल बार-बार न हो। नई भूल रोज करो। नई भूल ईजाद करो। जाग कर भूल करो, ताकि भूल से कुछ सीख लो और भूल का कुछ परिणाम हो जाए। भूल तो पीछे छूट जाएगी, लेकिन भूल से सीखी जो बात तुमने, उसकी सुगंध तुम्हारे साथ सदा रह जाएगी। भूलें करके ही तो आदमी सीखता है।
परसों एक जर्मन संन्यासिन ने मुझसे पूछा। ईसाइयों की कहानी है कि एक बाप के दो बेटे थे। दोनों बेटे आपस में बड़े विपरीत थे। बड़ा बेटा तो बड़ा पुरातन-पंथी, रूढ़िग्रस्त। छोटा बेटा बड़ा बगावती, विद्रोही। दोनों में बनती भी नहीं थी। बड़ा बेटा तो लीक-लीक चलता, लकीर-लकीर चलता; लक्ष्मण-रेखा के बाहर कभी न जाता। छोटा बेटा लक्ष्मण-रेखा के भीतर ही न आता; वह बाहर ही बाहर जाता। आखिर झगड़ा इतना बढ़ गया कि बूढ़े बाप ने उन दोनों को अलग कर दिया। संपत्ति बांट दी गई।
छोटा बेटा अपनी संपत्ति लेकर शहर चला गया। छोटे गांव में क्या संपत्ति का करोगे? सुविधा नहीं है। चला गया होगा उन दिनों की बंबई, उन दिनों का कलकत्ता। खूब लुटाया, जुआ खेला, शराब पी, वेश्यागमन किया, सब तरह के पाप किए, सब तरह की भूलें कीं। जल्दी ही भिखारी हो गया। बड़ा बेटा खेत पर काम करता रहा। गायों की देखभाल करता रहा। संपत्ति बढ़ाता रहा। दस साल में बड़े बेटे ने संपत्ति कोई पांच गुनी कर ली। छोटा बेटा बिल्कुल भिखारी हो गया, भीख मांगने लगा।
एक दिन रास्ते पर भीख मांगते-मांगते उसे याद आया--एक द्वार के सामने खड़ा था, संयोग की बात कि उस मकान का द्वार ठीक वैसा था जैसा उसके बाप के

मकान का द्वार--उसे याद आया, कि हद्द हो गई, मैं भीख मांग रहा हूं! मेरे घर सैकड़ों नौकर हैं। यदि मैं जाऊं तो मेरे पिता मुझे अब भी माफ कर सकेंगे, मुझे उनके प्रेम का भरोसा है। और अब मैं यह नहीं चाहता कि मुझे बेटे की तरह स्वीकार करें। वह हक तो मैंने गंवा दिया। अब मैं उसका पात्र नहीं हूं। लेकिन एक नौकर की तरह तो स्वीकार कर ही सकते हैं। जहां और सैकड़ों नौकर हैं, मैं भी एक पड़ा रहूंगा, नौकरी करता रहूंगा। गायों को चरा लाऊंगा, कि खेत पर बीज बो दूंगा, या फसल काट लाऊंगा; या जो भी होगा। इस भीख मांगने से तो बेहतर होगा। अपने पिता के घर तो रहूंगा।
वह उसी दिन लौटा अपने गांव। खबर पहुंच गई उसके लौटने की। रोज-रोज खबरें पहुंचती थीं। पिता पूछता था, क्या हो रहा है? क्या हो रहा है? कहां तक बात पहुंची? कहां तक बात बिगड़ी कि बनी? अब तक दुखद समाचार ही आए थे। आज समाचार आया कि बेटा आ रहा है। बाप ने बड़ा उत्सव किया। सारे गांव को भोज पर निमंत्रण दिया। बैंड-बाजे बजवाए। फूल लगवाए। दीये जलवाए। दीपमाला! सबसे कीमती और महंगी शराब तलघरों से निकाली। बहुमूल्य से बहुमूल्य भोजन तैयार करवाए।
बड़ा बेटा तो खेत में काम कर रहा था, उसे कुछ पता नहीं था। दिन भर की धूप-दोपहरी में काम करके जब वह लौट रहा था, तो रास्ते पर गांव में उसे किसी ने कहा कि हद्द हो गई! अन्याय की भी एक सीमा होती है! तुम्हारे बाप ने बहुत अन्याय किया है तुम्हारे साथ। तुम इसके पास रहे, इसकी सेवा की, इसकी आज्ञा का पालन किया। तुम्हारे लिए कभी बैंड-बाजे न बजे। और तुम्हारे लिए कभी गांव को भोज न दिया गया। और तुम्हारे लिए कभी शराब की कीमती बोतलें न निकाली गईं। आज तुम्हारा छोटा भाई, वह सपूत, वापस लौट रहा है। उसके स्वागत में यह सारा आयोजन है। और तुझे कुछ पता है?
बेटे ने सुना तो उसकी छाती धक से हो गई! उसने कहा, यह अन्याय है। आज तक मैंने कभी पिता की किसी बात का विरोध नहीं किया, लेकिन आज बर्दाश्त मैं भी न कर सकूंगा। वह आया बड़े क्रोध में, अपने बाप से बोला कि यह क्या हो रहा है? मेरे लिए कभी स्वागत नहीं!
बाप ने कहा, तू तो मेरे पास है। लेकिन जो भटक गया था, वह वापस लौट रहा है। तूने कभी कोई भूल ही नहीं की। लेकिन जिसने बहुत भूलें कीं, वह भूलों से जाग गया है, वापस लौट रहा है। इसलिए उसका स्वागत जरूरी है।
जर्मन संन्यासिन ने मुझसे पूछा--वह एक ईसाई पादरी की पत्नी है, वे भी मेरे संन्यासी हैं--उसने पूछा कि मेरे मन में सदा यह सवाल उठता है कि बड़े बेटे के संबंध में क्या? छोटे बेटे का स्वागत हो रहा है, यह तो ठीक है; मगर बड़े बेटे के संबंध में क्या?
मैंने उससे कहा, बड़ा बेटा सिर्फ कहानी को पूरा करने के लिए है। बड़े बेटे का जन्म ही नहीं हुआ। क्योंकि जिसने भूलें नहीं कीं, उसने कुछ सीखा ही नहीं। जो कभी दूर नहीं गया, वह पास भी नहीं आ सकता। बड़ा बेटा पास है, मगर पास नहीं आ सकता--क्योंकि दूर ही नहीं गया।
यह जीसस की कहानी बड़ी प्यारी है। यह कह रही हैः भूल करो; डरो मत। क्योंकि भूल से ही तो सीखोगे। भूल जब शूल बन कर चुभेगी, तभी तो तुम जागोगे। और हर भूल कुछ सिखा जाएगी। उसी भूल को दोहराना मत। दोहराने में क्या सार है? फिर भूल को ही दोहराने में लकीर के फकीर मत हो जाना।
जो आदमी रोज-रोज नित भूलें करता जाए, और साहसपूर्वक करता जाए, और हर भूल से कुछ सीखता जाए, उसकी संपदा विकसित होने लगती है। वही व्यक्ति किसी दिन प्रज्ञा को उपलब्ध होता है। उसी व्यक्ति के जीवन में बुद्धिमत्ता के मेघ घिरते हैं। उसी के जीवन में ज्ञान की वर्षा होती है।
एक तो ज्ञान है जो किताबों से मिलता है; वह कचरा है। और एक ज्ञान है जो जीवन से मिलता है; वही बहुमूल्य है।
तुम ध्यान रखना, जिसने पाप ठीक से नहीं पहचाना, वह कभी पुण्य को नहीं पहचान पाएगा। और जिसने संसार को ठीक से नहीं देखा, वह परमात्मा के पास नहीं आ पाएगा। यह संसार परमात्मा के पास आने के लिए ईजाद की गई भूल है। यह परमात्मा के द्वारा ही ईजाद की गई भूल है। यह उपाय है, यह अवसर है--तुम्हें भटकाने का, तुम्हें भुलाने का। और भूल-भूल कर तुम जब याद करोगे, चूक-चूक कर

जब तुम फिर वापस लौट आओगे, तो हर बार तुम्हारी प्रौढ़ता बढ़ेगी, हर बार तुम्हारा केंद्रीकरण बढ़ेगा। हर बार तुम्हारी चेतना ज्यादा प्रखर होती जाएगी।
ध्यान रहे--
हे मन के अंगार, अगर तुम लौ न बनोगे, क्षार बनोगे।
जो न करेगा सीना आगे
पीठ उसे खींचेगी पीछे
जो ऊपर को उठ न सकेगा
उसको जाना होगा नीचे;
अस्थिर दुनिया में थिर होकर
कोई वस्तु नहीं रहती है,
हे मन के अंगार, अगर तुम लौ न बनोगे, क्षार बनोगे।
जो न किरण की रेख बनोगे, धूलि-धुएं की धार बनोगे।
भार बनोगे मन के ऊपर, जो न सहज उद्गार बनोगे।
हे मन के अंगार, अगर तुम लौ न बनोगे, क्षार बनोगे।
भूल से भयभीत न होओ। वही भय है, कि कहीं भूल न हो जाए; इसलिए घर के भीतर छिपे रहो। गोबरगणेश बने बैठे रहो, कहीं भूल न हो जाए।
मैं तुमसे कहता हूंः भय छोड़ो। निकलो घर के बाहर! भूलें होने दो। बस एक भूल दुबारा न हो, इतना स्मरण रहे। जल्दी ही भूलें चुक जाएंगी। और जल्दी ही तुम पाओगेः सद्यःस्नात, ताजे तुम हो गए। अभी-अभी नहाए तुम हो गए। और तब जीवन एक नया ही आविर्भाव लेता है। एक नया रंग! जीवन एक नई धुन लेता है। एक नया गीत! जीवन आनंद बन जाता है।
जीवन के उस आनंद बन जाने का नाम ही ईश्वर का अनुभव है।
भूल और भूल और भूल, शूल और शूल और शूल, और सब तरफ से चुभा हुआ आदमी, और
सब तरफ से चेष्टा करके हार गया आदमी, सब तरफ से अपने अहंकार को सिद्ध करने की यात्रा में चला आदमी और सिद्ध नहीं कर पाया, विफल हो गया, ही समर्पण करने में समर्थ हो पाता है। समर्पण कमजोर की बात नहीं है। गोबरगणेश की बात नहीं है समर्पण। घर में ही जो बैठा रहा, उसकी बात नहीं है। समर्पण उसकी बात है, जिसने जीवन को जाना--सब तरह से जाना। सब तरह से लड़ा, संघर्ष किया; सब तरह से जूझा, युद्ध किया और हारा; और एक दिन पाया हार-हार कर, कि जीतने की चेष्टा में हार है। तो अब हार का भी प्रयोग करके देख लूं। अब अपने से हार जाऊं। और तभी जीत फलित होती है।

एक तरफ शाने-खुदी मानिए-इजहार भी है
जब्ते-गम दिल की नजाकत पे मगर बार भी है
लुत्फ दोनों से उठाते हैं उठाने वाले
जिंदगी निकहते-गुल भी, खलिशे-खार भी है
फूल भी है और कांटा भी।
जिंदगी निकहते-गुल भी, खलिशे-खार भी है
लुत्फ दोनों से उठाते हैं उठाने वाले
लेकिन जो जानता है, वह दोनों से ही रस ले लेता है। दोनों का ही मजा ले लेता है। दोनों का स्वाद ले लेता है।
एक तरफ शाने-खुदी मानिए-इजहार भी है
जब्ते-गम दिल की नजाकत पे मगर बार भी है
लुत्फ दोनों से उठाते हैं उठाने वाले
जिंदगी निकहते-गुल भी, खलिशे-खार भी है
मुन्हसिर हौसलाए-दिल पे है साबुत कदमी
जादहे शौक तो आसां भी है, दुश्वार भी है
खुद को खोया है तो पाई है मोहब्बत तेरी
जिंदगी में यह मेरी जीत भी है, हार भी है

जीवन का परम विरोधाभास यही है, कि वहां जो जीतने की चेष्टा करता है, करते-करते हार जाता है। सब महत्वाकांक्षाएं विचलित हो जाती हैं। सब आशाएं

एक न एक दिन राख होकर गिर पड़ती हैं। उस दिन एक नया प्रयोग जीवन में उठता है--अब हार कर देख लूं! अब स्वेच्छा से हार कर देख लूं! वही समर्पण है। और उसी हार में जीत है।

बाण-बिद्ध मराल-सा मैं आ गिरा हूं, अब तुम्हारी ही शरण में।

बादलों के देश तक जब चढ़ गया था
जानता था लौट आना,
जानता था, है असंभव नीड़ बिजली
की लताओं पर बनाना,
मैं गगन को भूमि की आकांक्षाएं
कुछ बताना चाहता था,
बाण-बिद्ध मराल-सा मैं आ गिरा हूं, अब तुम्हारी ही शरण में।

किंतु पश्चात्ताप करने के लिए तो
मैं नहीं तैयार होता,
नभ न मुझको खींच लेता,
तो धरा के वास्ते मैं भार होता,
सिद्ध गिर कर कर दिया मैंने कि
अपनी शक्ति भर ऊपर उठा मैं,
आज कमजोरी नहीं, कूअत बड़ी मेरी, तुम्हारे जो चरण में, बाण-बिद्ध मराल-सा मैं आ गिरा हूं, अब तुम्हारी ही शरण में।

कामना मेरी बड़ी मुझसे कि
उससे मैं बड़ा, यह जानना था,
आदमी के तन नहीं, मन-हौसले
का कद मुझे पहचानना था,
रेख लोहू की लगा कर आ रहा हूं
मैं अधर की मेखला पर,
शक्ति अंबर में परीक्षित, भक्ति की लूंगा परीक्षा मैं धरणि में। बाण-बिद्ध मराल-सा मैं आ गिरा हूं, अब तुम्हारी ही शरण में।

उड़ो, जितने दूर तक उड़ सको। जाओ, जितने दूर परमात्मा से जा सको। एक दिन गिरोगे।
बाण-बिद्ध मराल-सा मैं आ गिरा हूं, अब तुम्हारी ही शरण में।
और तब गिरने का मजा और। जो गया ही नहीं, उसके गिरने में बल नहीं होता।
जो लड़ा ही नहीं, उसकी हार में जीवन नहीं होता। जो पास ही बैठा रहा, वह पास हो ही नहीं सकता। पास होने के लिए दूर जाना अनिवार्य है।
बाण-बिद्ध मराल-सा मैं आ गिरा हूं, अब तुम्हारी ही शरण में।
बादलों के देश तक जब चढ़ गया था
जानता था लौट आना,
जानता था, है असंभव नीड़ बिजली
की लताओं पर बनाना,
साफ है कि इस जगत में कोई घर नहीं बना सकता। और साफ है कि बिजली की लताओं पर नीड़ बनाने कोई जाएगा तो हारेगा।
बादलों के देश तक जब चढ़ गया था
जानता था लौट आना,
लौटना भी पता था। लेकिन तब तक क्या लौटना, जब तक आगे जाने की सुविधा हो! लौटना तो तभी सार्थक होता है, जब आगे जाने का उपाय ही न रहा। आखिरी सीमा तक अहंकार जाता है तो ही टूटता है, गिरता है, समर्पित होता है।
जानता था, है असंभव नीड़ बिजली
की लताओं पर बनाना,

कौन नहीं जानता? पानी पर रेखाएं खींच रहे हैं हम। कागज की नावें तैरा रहे हैं हम। लेकिन तैराना जरूरी है। वे नावें डूबें, तो हमें अनुभव हो। वे लकीरें मिटें, तो हमें पता चले।
मैं गगन को भूमि की आकांक्षाएं
कुछ बताना चाहता था,
वह जो दूर उड़ रहा था आकाश में, इस भूमि की आकांक्षाओं की खबर आकाश को देना चाहता था।
किंतु पश्चात्ताप करने के लिए तो
मैं नहीं तैयार होता,
समझ लेना यह बात। जो सच में ही जीवन को जीकर, जीवन में जाग कर लौटे हैं, उन्हें पश्चात्ताप नहीं होता। वे परमात्मा से यह नहीं कहते कि हम पश्चात्ताप कर रहे हैं, कि हमसे भूलें हुईं। पश्चात्ताप क्या? क्योंकि उन्हीं भूलों के कारण तो परमात्मा मिला, पश्चात्ताप कैसा? अंधेरे में गए, अंधेरे को भोगा, उसी से तो प्रकाश की एक तलाश पैदा हुई, पश्चात्ताप कैसा? पाप किया, उसी पाप से तो पुण्य की यात्रा शुरू हुई, पश्चात्ताप कैसा? इसलिए मैं तुमसे कहता हूंः पश्चात्ताप मत करना। पश्चात्ताप करने की कोई जरूरत ही नहीं है। पश्चात्ताप का तो मतलब होता है, हमने कोई भूल की थी। नहीं करनी थी, ऐसी कोई बात की थी।
ऐसी कोई बात ही नहीं है, जो नहीं करनी है। सारी बात कर लेनी है। कर लेने से ही बोध है। बोध से मुक्ति है। पश्चात्ताप नासमझ करते हैं। समझदार जीवन को जीते हैं और जानते हैं कि जीवन परमात्मा ने दिया है, उसके पीछे राज है। यह पाठशाला है।
किंतु पश्चात्ताप करने के लिए तो
मैं नहीं तैयार होता,
नभ न मुझको खींच लेता,
तो धरा के वास्ते मैं भार होता,
वह जो आकाश ने खींच लिया था, उसी ने मुझे पहली बार धरा पर आने की सुविधा दी; अब मैं भार नहीं हूं।
नभ न मुझको खींच लेता,
तो धरा के वास्ते मैं भार होता,
सिद्ध गिर कर कर दिया मैंने कि
अपनी शक्ति भर ऊपर उठा मैं,
आज कमजोरी नहीं, कूअत बड़ी मेरी, तुम्हारे जो चरण में,
यह कमजोरी के कारण नहीं गिरा हूं; जितनी शक्ति थी, उतना तो मैं उठा था आकाश में। शक्ति चुक गई। सीमा आ गई। अब जो गिरा हूं, कमजोरी के कारण नहीं गिरा हूं--शक्ति की उड़ान के कारण ही गिरा हूं। यह जो मेरी समर्पण की दशा है, यह अहंकार की अंतिम निष्पत्ति है।
यह परम विरोधाभास है। जो इसे समझ लेता है, उसे जीवन में समझने को कुछ
भी नहीं रह जाता।
बाण-बिद्ध मराल-सा मैं आ गिरा हूं, अब तुम्हारी ही शरण में।
कामना मेरी बड़ी मुझसे कि
उससे मैं बड़ा, यह जानना था,
यह जानना ही पड़ेगा।
पश्चिम का एक बहुत बड़ा धनी एंड्रू कारनेगी मरा तो उसके एक मित्र ने पूछा कि तुम्हें कौन सी चीज कमाने में लगाए रही? इतना तुमने कमाया! कहते हैं, सबसे बड़ा धनपति था वह सारी पृथ्वी का। कोई दस अरब रुपया छोड़ कर मरा। कौन बात तुम्हें दौड़ाती रही? चौबीस घंटे धन में ही लगा था!
और एक सीमा आ जाती है, उसके बाद धन का कोई मूल्य नहीं होता। क्योंकि जितना ज्यादा धन होता है, उतना मूल्य कम होता जाता है, ख्याल रखना। लॉ ऑफ डिमिनिशिंग रिटर्न्स। मनोवैज्ञानिक भी उसे स्वीकार करते हैं-- अर्थशास्त्र के नियम को। तुम्हारे पास जब एक रुपया होता है, तो उस एक रुपये की कीमत ज्यादा होती है। जब तुम्हारे पास हजार रुपये होते हैं, और फिर एक रुपया होता है, उस एक रुपये की कीमत बहुत कम होती है। फिर तुम्हारे

पास दस लाख रुपये हैं, और एक रुपया होता है, उसकी कीमत न के बराबर होती है। अगर तुम्हारे पास दस अरब रुपये हैं, एक रुपये की क्या कीमत? यह वही रुपया है! लेकिन एक आदमी के पास एक ही रुपया है, उसके पास बड़ी कीमत है। यह उसका सर्वस्व है।
एक सीमा आ जाती है जब रुपये का मूल्य समाप्त हो जाता है। वह सीमा कभी
की आ गई और गई, और एंड्रू कारनेगी कमाने में लगा ही रहा, लगा ही रहा। पूछा किसी ने, कौन सी चीज तुम्हें दौड़ाती रही? उसने कहा, मैं यह जानना चाहता था कि मेरी कामना हारती है कि मैं हारता हूं? अभी तक मेरी कामना नहीं हारी। और मैं उसके पहले हारने को तैयार नहीं। फिर लौटूंगा। फिर कमाऊंगा।
कामना मेरी बड़ी मुझसे कि
उससे मैं बड़ा, यह जानना था,
आदमी के तन नहीं, मन-हौसले
का कद मुझे पहचानना था,
रेख लोहू की लगा कर आ रहा हूं
मैं अधर की मेखला पर,
शक्ति अंबर में परीक्षित...
मैंने अपनी शक्ति, अपने संकल्प की परीक्षा तो आकाश में कर ली है।
शक्ति अंबर में परीक्षित, भक्ति की लूंगा परीक्षा मैं धरणि में।
अब भक्ति की परीक्षा होगी। शक्ति की परीक्षा के बाद ही भक्ति की परीक्षा है। संकल्प की परीक्षा के बाद ही समर्पण की परीक्षा है।
शक्ति अंबर में परीक्षित, भक्ति की लूंगा परीक्षा मैं धरणि में। बाण-गिद्ध मराल-सा मैं आ गिरा हूं, अब तुम्हारी ही शरण में।
भय न करो। जीवन को जीओ, यह परमात्मा का वरदान है। रोज-रोज जीओ! गहनता
से जीओ! सघनता से जीओ! जरा भी भय न करो। अभय होकर जीओ! भूलें करो और खूब करो, बस वही-वही भूलें बार-बार मत करो। और जल्दी ही वह घड़ी आ जाएगी, सब भूलें चुक जाएंगी। भूलों की सीमा है।
और जिस दिन सब भूलें चुक जाती हैं, उस दिन तुम लौटोगे। परमात्मा भी तुम्हारे लिए उस दिन दीपमालाएं सजाता है। परमात्मा भी उस दिन तुम्हारे लिए फूल के हार तैयार करता है। उस दिन परमात्मा के द्वार पर तुम्हारा स्वागत है। मगर जाना तो होगा दूर! दूर जो गया, वही पास आ सकता है।
आज इतना ही।

अथातो भक्ति जिज्ञासा, भाग 2
इकतीसवां प्रवचन

पदार्थ: अणुशक्ति; चेतना: प्रेमशक्ति

सूत्र

लघ्वपि भक्ताधिकारे महत्क्षेपकमपरसर्वहानात्।। 76।।
तत्स्थानत्वादनन्यधर्मः खले बालीवत्।। 77।।
अनिन्द्ययोन्यधिक्रियतेपारम्पर्यात सामान्यवत्।। 78।।
अतोह्यविपक्कभावानामपि तल्लोके।। 79।।
क्रमैकगत्युपपत्तेस्तु।। 80।।

कह रही है पेड़ की हर शाख, अब तुम आ रहे अपने बसेरे।

आज दक्खिन की हवा ने आ
अचानक द्वार मेरे खड़खड़ाए,
हलचली है मच गई उन बादलों में
जो कि थे आकाश छाए,
जो कि सुन सौ प्रश्न मेरे चुप खड़ी थी
आज बारंबार झुक-झुक
कह रही है पेड़ की हर शाख, अब तुम आ रहे अपने बसेरे।

सूर्य की किरणें प्रखरतम घन तहों के
बीच होतीं, पार करतीं,
कालिमा पर ज्योति का विस्तार करतीं
चूमतीं जैसे कि धरती;
हे रजत पक्षी, तिमिर को भेदने से,
जो तुम्हारी राह छेंके
अब नहीं रुकते तुम्हारे पांख, अब तुम आ रहे अपने बसेरे। कह रही है पेड़ की हर शाख, अब तुम आ रहे अपने बसेरे।
हे रजत पक्षी, तिमिर को भेदने से,
जो तुम्हारी राह छेंके
अब नहीं रुकते तुम्हारे पांख, अब तुम आ रहे अपने बसेरे। कह रही है पेड़ की हर शाख, अब तुम आ रहे अपने बसेरे।

आज हीरे ले लहर आती, बिछाती
है कहीं मरकत किनारे,
आज उज्ज्वल मोतियों से हाथ अपने
है कहीं सरसिज संवारे,
पर तुम्हारा मन प्रलोभन दे लुभाना
है असंभव, आज कोई
पंथ में वैभव बिछाए लाख, अब तुम आ रहे अपने बसेरे।
कह रही है पेड़ की हर शाख, अब तुम आ रहे अपने बसेरे।

मैं तुम्हें बुलाता हूं और तुम आ जाते हो--दूर दिशाओं से, दूर नगरों से, दूर देशों से। एक प्रीति तुम्हें खींचे लाती है। और मेरे पास देने को सिवाय शून्य के और कुछ भी नहीं है। छीनूंगा तुमसे, मिटाऊंगा तुम्हें; क्योंकि तुम्हारे मिटने में ही परमात्मा के होने की संभावना है। तुम शून्य हो जाओ तो पूर्ण तुम्हारे भीतर उतरे। तुम शून्य बनो तो मंदिर बनो। फिर पूर्ण तो अपने से आ जाता है। अवकाश चाहिए, तुम्हारे हृदय में आकाश चाहिए।
मैं तुमसे छीनता हूं। मैं तुम्हें ही तुमसे छीनता हूं। फिर भी तुम आ जाते हो। तुम्हारा प्रेम गहन होगा। तुम दुस्साहसी हो। पंडित-पुरोहितों

के पास जाना एक बात है, मेरे पास आना दूसरी ही बात है। तुम दुस्साहस कर रहे हो। तुम आग से खेलने चले हो। अगर जलने की हिम्मत दिखाई, तो तुम फूल होकर निखरोगे। अगर मिटने का साहस किया, तो तुम पहली बार हो पाओगे। कोई प्रीति तुम्हें खींचे लिए आती है--जनम-जनम की प्रीति। वह आज की नहीं हो सकती। आज की कभी इतनी गहरी नहीं होती। जिसके लिए हम मिटने को तैयार हो जाएं, वह प्रीति पुरातन होती है, जन्मों-जन्मों की होती है।
जीवन से भी जब किसी का बड़ा मूल्य हो जाए, तभी तुमने गुरु पाया। जिसके लिए तुम जीवन भी गंवाने को तैयार हो जाओ, तभी तुमने गुरु पाया। गुरु पाना दुर्लभ है, क्योंकि शिष्य होना अति कठिन है। शिष्य होने के लिए जुआरी चाहिए।
तुम सब जुआरी हो। वहां तुम जाओ जहां तुम्हें कुछ मिलता हो, तर्क समझ में आता है। यहां तुम आओ जहां सब छिन जाता हो, अतर्क्य हो जाती है बात। लेकिन प्रेम सदा से अतर्क्य है।
आए हो तो शून्य लेकर ही जाना। आए हो तो खाली होकर जाना। गुरु इतना ही
कर सकता है कि तुम्हारे भीतर स्थान निर्मित कर दे; फिर शेष सब परमात्मा करता है। गुरु भूमि तैयार कर सकता है; फिर शेष अपने से हो जाता है। परमात्मा को खोजने जाना नहीं पड़ता। जिस परमात्मा को खोजने जाना पड़े, वह परमात्मा झूठा होगा। जिस परमात्मा को खोजने एक कदम भी उठाना पड़े, वह परमात्मा सच नहीं रहा।
मनुष्य की सामर्थ्य भी क्या है कि परमात्मा को खोजे? रो सकता है, गिर सकता है, बिलख सकता है, खोजेगा कैसे? खोज तो उसकी हो सकती है जिससे हमारी पहले से ही पहचान हो। अपरिचित की, अनजान की, अज्ञात की खोज कैसी? जिसे कभी देखा नहीं, जिसे कभी छुआ नहीं, जिससे कभी आलिंगन नहीं हुआ, स्पर्श नहीं हुआ, जिससे कभी दरस-परस नहीं हुआ, उसे खोजोगे कहां? उसका पता कहां? उसका ठिकाना कहां? तुम जाओगे कहां? किस दिशा में? किस देश?
नहीं, परमात्मा को खोजने कोई कभी नहीं जा सकता। फिर करना क्या होगा?
भक्त अपने को मिटा लेता है, परमात्मा उसे खोजता आता है। तुम मिटने में थोड़ी कठिनाई अनुभव करते हो, तो गुरु की जरूरत पड़ती है। तुम अपने हाथ से नहीं मिट पाते हो, इसलिए गुरु की जरूरत पड़ती है। गुरु के प्रेम में तुम मिटने का साहस जुटा लेते हो। गुरु को देख कर तुम्हें यह भरोसा आ जाता है कि मिट कर भी मिटना नहीं होता। गुरु को देख कर यह श्रद्धा उमगती है कि मिट कर ही होना होता है। जैसे बीज वृक्ष को देख कर इस श्रद्धा से भर जाए कि मिटूं, कोई फिकर नहीं, टूटूं भूमि में, बिखर जाऊं; वृक्ष हो जाते हैं बीज जब टूट जाते हैं। बीज अकेला ही हो, किसी वृक्ष से पहचान न हो, किस भरोसे टूटेगा? किस आशा में टूटेगा? सम्हालेगा अपने को, बचाएगा अपने को।
गुरु तुम्हारी सुरक्षाएं छीन लेता है, तुम्हारे बचाव छीन लेता है, तुमने जो आरक्षण की व्यवस्था कर रखी है, तुमसे छीन लेता है। गुरु तुम्हें असहाय छोड़ देता है--निरालंब, मझधार में। यह किनारा भी गया, वह किनारा भी गया। कोई किनारा कहीं दिखाई भी नहीं पड़ता। सब तरफ आंधी और तूफान, और नाव डूबने लगी, और पतवार हाथ से छूट गई। गुरु तुमसे सब छीन लेता है।
मगर जो इस मझधार में डूबने को राजी हो जाते हैं, उन्हें किनारा मिल जाता है। किनारा मझधार के विपरीत नहीं, मझधार में छिपा है। जो परिपूर्ण रूप से असहाय हो जाता है, उसे परमात्मा का सहारा मिल जाता है। उसके पहले सहारा मिलता भी नहीं।
तो मुझे छीन लेने दो तुम्हारी पतवार; मुझे डुबा देने दो तुम्हारी नाव। मुझे ले लेने दो तुम्हारे शास्त्र, तुम्हारे सिद्धांत, तुम्हारे संप्रदाय। तुम्हारा हिंदू धर्म, तुम्हारा मुसलमान धर्म, तुम्हारा जैन धर्म मुझे छीन लेने दो। कर देने दो तुम्हें मुक्त शब्दों से, सिद्धांतों से, तुम्हारे सहारों से। फिर उसी असहाय अवस्था में दो बूंद आंसू की टपकेंगी तुम्हारी आंखों से, और प्रार्थना पूरी हो जाएगी।
धीरे-धीरे, जो बीज बोने शुरू किए थे, अंकुराने लगे हैं। धीरे-धीरे, जो गंगोत्री की धार की तरह शुरू हुई थी--गैरिक गंगा--बड़ी होने लगी है, गंगा बनने लगी है। दूर-दूर देशों तक गैरिक संन्यासी दिखाई पड़ने लगा है। कुछ

होने को है। तुम्हें शायद पता भी न हो कि तुम किसी एक बड़े महत आयोजन में हिस्सेदार हो, भागीदार हो। तुम्हें अपने सौभाग्य का भी शायद ठीक-ठीक पता न हो--किसी को कभी नहीं था। जो बुद्ध के साथ चले थे, उनको पता नहीं था कि वे किस महत्वपूर्ण इतिहास के हिस्से हो रहे हैं। जो महावीर के साथ उठे-बैठे थे, उन्हें कुछ पता न था कि सदियों तक मनुष्य की चेतना आंदोलित रहेगी। वे दस-बारह शिष्य जो जीसस के साथ खड़े हुए थे, उन्हें क्या पता हो सकता था? और फिर उनका मसीहा, उनका गुरु सूली पर चढ़ गया। उन्हें तो लगा कि सब समाप्त हो गया; अब क्या बचा? उन्हें पता नहीं था कि पृथ्वी पर इतना बड़ा आंदोलन इसके पहले कभी हुआ नहीं था। जीसस का सूली पर चढ़ जाना इस पृथ्वी के इतिहास में अपूर्व घटना है। उस दिन समय दो हिस्सों में बंट गयाः जीसस-पूर्व और जीसस-पश्चात। बीच में खड़ा हो गया समय की धार में जीसस का क्रॉस। उस दिन से आदमी दूसरा हुआ। उस दिन से आदमी ने कुछ नई बात सीखी। चेतना के कुछ नये आयाम खुले, कुछ नये द्वार खुले।
तुम्हें शायद ठीक-ठीक पता भी न हो। मुझे पता है कि तुम एक विराट आयोजन
के भागीदार हो रहे हो--अनजाने। तुम जो अपनी छोटी सी ईंट रख रहे हो इस मंदिर में, यह किसी विराट मंदिर का हिस्सा बनेगी। तुम्हारी ईंट के बिना यह मंदिर उठ भी नहीं सकता था। तुम्हारी ईंट कितनी ही छोटी हो, तुम्हारी ईंट अनिवार्य है। तुम धन्यभागी हो!
जो जितना ज्यादा मेरे पास आकर मिट सकेगा, उतना धन्यभागी होगा, क्योंकि उतनी ही उसकी ईंट इस उठते हुए मंदिर के काम आ जाएगी।
अहंकार की ईंट का उपयोग नहीं हो सकता। अहंकार की ईंट को तो हमें त्यागना होगा। निर-अहंकार की ईंट से बनेगा यह मंदिर। और इस मंदिर की बड़ी जरूरत आ गई है। पृथ्वी बेचैन है। मनुष्य की चेतना बहुत बड़े संकट में है। ऐसे संकट में जैसा कि शायद पहले कभी भी नहीं था।
क्या है संकट?
संकट हैः धर्म की पुरानी भाषाएं इतनी पुरानी हो गई हैं कि मनुष्य के काम की नहीं रहीं। उनके कहने और बताने के ढंग इतने जराजीर्ण हो गए हैं कि मनुष्य और उनके बीच कोई तालमेल नहीं रहा, कोई संवाद नहीं रहा। आदमी प्रौढ़ हुआ है और धर्म अभी भी बचकानी भाषा बोल रहे हैं। वे धर्म बच्चों के लिए विकसित किए गए थे। तो परमात्मा पिता था। या मां था। अब आदमी को पिता और मां की जरूरत नहीं है। अब आदमी के सामने परमात्मा का नया रूप, गहरा रूप प्रकट होना चाहिए। नहीं कि पुराना रूप गलत था--कोई रूप गलत नहीं होता--लेकिन जैसे-जैसे मनुष्य की चेतना रूपांतरित होती है, नये रूपों की जरूरत पड़ जाती है। अब आज आकाश की तरफ हाथ उठा कर किसी परमात्मा को, किसी परमपिता को आकाश में बैठे हुए मानने में कठिनाई होती है, कहीं अड़चन आती है। तुम्हारी चेतना गवाही नहीं देती। तुम कर भी लेते हो अगर आदतवश, तो भी तुम आस्तिक नहीं हो पाते।
आज की सदी में नास्तिकता तर्कसंगत मालूम पड़ती है, आस्तिकता तर्क-विपरीत मालूम पड़ती है।
यह बात उचित नहीं है। आस्तिकता जिस दिन तर्क-विपरीत मालूम पड़ने लगे,
उस दिन खोने लगेगी। आस्तिकता तर्कातीत जरूर है, लेकिन तर्क-विपरीत होने की कोई जरूरत नहीं है। आस्तिकता नास्तिकता से ज्यादा बड़ा तर्क है। यद्यपि तर्क पर आस्तिकता समाप्त नहीं होती, और आगे जाती है। उसकी यात्रा बड़ी है, तर्क से आगे जाती है, तर्क की सीढ़ी पर चढ़ जाती है--लेकिन तर्क के विपरीत नहीं है। नास्तिकता जब भी तर्क के अनुकूल मालूम पड़ने लगे, तो उसका सिर्फ एक ही अर्थ होता है कि धर्म की भाषा पुरानी पड़ गई। भाषा को नया परिमार्जन चाहिए, नया परिष्कार चाहिए, नई चमक। भाषा को नया ढंग, नई शैली चाहिए। भाषा को नया जीवन चाहिए।
धर्म को प्रतिदिन नया होना पड़ता है--मनुष्य की चेतना के साथ-साथ चलना होगा।
तुम बच्चे थे, तुमने जो कपड़े पहने थे वे बिल्कुल ठीक थे। लेकिन अब तुम बड़े हो गए। अब तुम उन्हीं कपड़ों को पहने रखोगे तो तुम्हें बंधन मालूम

होगा; वे कपड़े तुम्हें जकड़ लेंगे, वे कारागृह बन जाएंगे। अब तुम्हें और अन्य कपड़ों की जरूरत पड़ेगी।
सारी पृथ्वी पर धर्म हैं, लेकिन इस सदी का धर्म कोई भी नहीं। वे सब पुराने हैं। जिन्होंने विकसित किए थे, जिनके लिए विकसित किए गए थे, वे सब जा चुके हैं। उन धर्मों को भी चले जाना चाहिए। कोई धर्म यहां शाश्वत होकर नहीं रह सकता। और ध्यान रखना, धर्म की, आत्यंतिक धर्म की गहराई शाश्वत है, लेकिन धर्म का कोई रूप शाश्वत नहीं हो सकता। आत्मा शाश्वत है, देह शाश्वत नहीं है। धर्म का शाश्वत रूप किसी को पता नहीं है। धर्म का शाश्वत रूप जब भी पता होता है, तब भाषा में बंध जाता है। और जब भाषा में बंध जाता है, तो शाश्वत नहीं रह जाता, सामयिक हो जाता है। समय-समय के धर्म हैं।
और क्रांति इस अर्थ में भी अनूठी होने वाली है। पहले भी नये धर्म पैदा हुए थे। हिंदू धर्म था, फिर बुद्ध धर्म आया। बुद्ध धर्म नया धर्म था। यहूदी धर्म था, फिर ईसाइयत आई। ईसाइयत नया धर्म थी। अब तो एक और नई छलांग घटने वाली है। वह छलांग हैः अब धर्म भविष्य में विशेषण वाला धर्म नहीं होगा। हिंदू और मुसलमान और ईसाई, ऐसा नहीं, धार्मिकता होगी। और धार्मिकता विशेषणशून्य हो, यह मेरा प्रयास है। यह जो तुम्हें गैरिक वस्त्रों में रंगे जाता हूं, यह जो गैरिक अग्नि फैलाए चला जाता हूं, इस अग्नि के पीछे एक ही लक्ष्य है कि इस अग्नि में सारे विशेषण जल जाएं--हिंदू के, मुसलमान के, ईसाई के। इस अग्नि में ब्राह्मण के, शूद्र के, क्षत्रिय के विशेषण जल जाएं। इस अग्नि में स्त्री के, पुरुष के विशेषण जल जाएं। यह अग्नि सबको एक रंग में रंग दे। यह पृथ्वी को एक बना दे। यह पहली बार धर्म हो विशेषण से मुक्त; मात्र धार्मिकता का नाम हो।
और समझ लेना बात को! अगर धर्म विशेषण से मुक्त हो जाए तो नास्तिक भी धार्मिक हो सकता है। सच तो यह है, सभी नास्तिक धार्मिक होने की तलाश में ही नास्तिक हो गए हैं। धर्म उन्हें तृप्त नहीं कर पाते। शायद उनकी प्यास तथाकथित आस्तिकों से ज्यादा गहरी है। जिससे आस्तिक तृप्त हो जाता है, उससे नास्तिक तृप्त नहीं हो पाता। नास्तिक चाहता है अनुभव। नास्तिक मांगता है--जब तक मैं न जान लूं, मानूंगा नहीं। नास्तिक चाहता है कसौटी सत्य की, प्रमाण। तुम्हारे प्रमाण छोटे पड़ गए हैं। तुम्हारे प्रमाण ओछे पड़ गए हैं। तुम्हारे प्रमाण पुराने पड़ गए हैं। वे पुराने नास्तिकों के काम आ गए होंगे, नया नास्तिक नये तर्क लेकर आया है। नया नास्तिक नये विचार लेकर जन्मा है। उन नये विचारों का उत्तर कहां है? उन नये विचारों का उत्तर चाहिए। यह गैरिक अग्नि उस नये विचार को उत्तर देगी।
मेरे पास आकर नास्तिक भी स्वीकृत हो जाता है। अभी कुछ ही दिन पहले किसी ने कहा कि मैं नास्तिक हूं, क्या मैं भी संन्यासी हो सकता हूं? मैंने कहा, नास्तिक के लिए ही यह संन्यास है। मैं नास्तिकों की तलाश में हूं। उसने कहा, मैं ईश्वर को नहीं मानता। मैंने कहा, इस संन्यास में ईश्वर को मानने की कोई शर्त नहीं है। तुम मानते तो गलत होते। बिना जाने जो मान लेता है, वह आदमी बेईमान है। उसको तुम आस्तिक कहते हो? संन्यास जानने की प्रक्रिया है। तो संन्यास लेने के लिए ईश्वर को मानना शर्त कैसे हो सकती है? संन्यास तो प्रक्रिया है ईश्वर को जानने की। संन्यास तो आकांक्षा है, अभीप्सा है ईश्वर को जानने की। जानने की अभीप्सा के पहले मानने की शर्त तो बेईमानी हो जाएगी।
एक आदमी कहता है, मैं प्रकाश को नहीं जानता हूं। हम कहते हैं, पहले मानो।
पहले मानो? तो यह आदमी कैसे मानेगा? मान भी लेगा तो ऊपर-ऊपर मानेगा। भीतर इसकी अंतरात्मा तो कहती रहेगी कि मुझे प्रकाश का कोई पता नहीं है; मैं यह क्या कर रहा हूं?
तुमने ख्याल किया, तुम मंदिर में झुक जाते हो, ऊपर-ऊपर झुकते हो, भीतर तुम्हें कुछ पता नहीं है। भीतर तुम कभी-कभी सोचते भी हो, कभी तुममें भी बुद्धि जगती है, तुम्हें ख्याल आता है--मैं क्या कर रहा हूं? मुझे पता है कि ईश्वर है? मैं किसके सामने झुक रहा हूं?

नहीं, संन्यास में कोई शर्त मानने की नहीं है। संन्यास जानने की आकांक्षा है, मानने का भाव नहीं। जान कर मानना। जान कर मानोगे, सत्य-निष्ठा होगी। वही परम आस्तिकता होगी। नास्तिक मैं उसे कहता हूं जो ईश्वर की तलाश कर रहा है, आस्तिक उसे कहता हूं जिसकी तलाश पूरी हुई।
तो तथाकथित आस्तिक मेरे लिए झूठे नास्तिक हैं। वस्तुतः तो नास्तिक हैं, ऊपर से उन्होंने राम-नाम की चदरिया ओढ़ रखी है। उनके प्राणों में गहन नास्तिकता है। अनुभव के बिना स्वीकार हो ही नहीं सकता। जब तक आमने-सामने परमात्मा से मिलन न हो जाए, जब तक जीवन के अमृत का स्वाद न आ जाए, तब तक मानना भी मत। हर व्यक्ति को नास्तिक होना चाहिए, ताकि हर व्यक्ति आस्तिक हो सके। मेरे संन्यास में नास्तिक का स्वागत है।
फिर, परमात्मा की अगर कोई धारणा आरोपित करो--कि कृष्ण को मानना, कि क्राइस्ट को मानना, कि राम को, कि बुद्ध को, महावीर को--तो अड़चन खड़ी होनी शुरू हो जाती है। उस धारणा में संकीर्णता है। मैं तुमसे कहता हूं, परमात्मा तुम्हारे सामने जब प्रकट होगा तो सामने प्रकट नहीं होगा, तुम्हारे अंतस्तल में प्रकट होगा। दृश्य की तरह प्रकट नहीं होगा, द्रष्टा की तरह प्रकट होगा। तुम उसे बाहर खड़ा हुआ नहीं पाओगे, तुम उसे अपने भीतर खड़ा हुआ पाओगे। तुम उसे अपनी तरह पाओगे। अहं ब्रह्मास्मि! तुम उसे पाओगेः मैं परमात्मा हूं। चैतन्य परमात्मा है। तत्त्वमसि श्वेतकेतु। वह तू है। फिर कोई विवाद नहीं रह जाता। फिर परमात्मा मुसलमान नहीं रह जाता, हिंदू नहीं रह जाता, ईसाई नहीं रह जाता। उसकी कोई प्रतिमा नहीं रह जाती, उसका कोई मंदिर नहीं रह जाता। चैतन्य! चैतन्य कहीं हिंदू हुआ, मुसलमान हुआ? साक्षी! साक्षी कहीं जैन हुआ, बौद्ध हुआ? साक्षी तो बस साक्षी है। दर्पण की भांति झलकाता है। उस दर्पण के अनुभव से ही तुम्हारे जीवन में पहली दफा विशेषणरहित धर्म का जन्म होगा।
यह आग फैले, यह आग तुम्हारी सारी परंपराओं को जला दे, यह आग तुम्हारी सारी रूढ़ियों को तोड़ दे, यह आग तुम्हें शब्दों और संस्कारों से मुक्त कर दे, यह आग तुम्हारे साक्षी को निखार दे, इसलिए तुम्हें बार-बार बुलाता हूं। अनेक बहानों से बुलाता हूं। और तुम आ जाते हो। तुम्हारा आना इस बात की गवाही है कि तुम्हारे हृदय की वीणा मुझसे तरंगित होनी शुरू हुई है। इस संगीत को पूरा होने दो। यह संगीत जब पूरा होगा, तो धर्म की एक अभिनव व्याख्या का जन्म होगा। मैं यह व्याख्या शब्दों में ही नहीं करना चाहता हूं। मैं चाहता हूं, यह व्याख्या तुम्हारे जीवन में फूले-फले। तुम इसके प्रतीक बनो।
क्या व्याख्या है मेरे हृदय में जो मैं चाहता हूं फैल जाए? और अब समय आ गया है कि मैं तुमसे कहूं। क्योंकि अब समय आ गया है कि तुम बढ़ते जाते हो, तुम फैलते जाते हो। जल्दी ही इस पृथ्वी पर कोई भी संन्यास से अपरिचित नहीं रह जाएगा। क्या मेरी व्याख्या है जो मैं धर्म को देना चाहता हूं?
अतीत के धर्म जीवन-विरोधी धर्म थे। उनकी भाषा जीवन के प्रति शत्रुता
की भाषा थी। मैं तुम्हें जीवन-स्वीकार का धर्म देना चाहता हूं। अतीत के धर्म शरीर-विरोधी थे। मैं तुम्हें शरीर का सम्मान करने वाला धर्म देना चाहता हूं। अतीत के धर्म घर और गृहस्थी के विरोधी थे, परिवार और प्रेम के विरोधी थे। मैं तुम्हें एक धर्म देना चाहता हूं जो इतना विराट हो कि सब उसमें समा जाए। छोटे थे अतीत के धर्म। उसमें पत्नी नहीं समा सकती थी, उसमें पति नहीं समा सकता था। संकीर्ण थे। उसमें तुम्हारा बेटा नहीं समा सकता था, तुम्हारी बेटी नहीं समा सकती थी। इसलिए उन धर्मों में वे ही लोग उत्सुक हो सके जो बड़े कठोर थे। मेरी बात को ठीक से समझो तो इसका अर्थ यह हुआ, उन धर्मों में वे ही लोग उत्सुक हो सके जो वस्तुतः धार्मिक नहीं थे, कठोर थे, दुष्ट थे, हिंसक थे।
जो आदमी अपनी पत्नी को बिलखता छोड़ कर भाग गया है, इसको तुम अब तक धार्मिक कहते रहे हो, संन्यासी कहते रहे हो। यह एक दिन डोला सजा कर, बैंड-बाजे बजा कर इसे किसी भरोसे पर अपने घर ले आया था। इसने अपना वचन तोड़ दिया है। इसने अपनी प्रतिबद्धता तोड़ दी है। इसने प्रेम का नाता नहीं निभाया है। उसे ले आया था किसी दिन सम्हाल कर अपने घर। फिर उसके बच्चे जन्म गए

हैं, और अब यह भाग गया है! अतीत में कितने लोग जीवित स्त्रियों को विधवा करके भाग गए। उन विधवाओं के आंसुओं का कुछ हिसाब है? उन विधवाओं के आंसुओं ने इनके मोक्ष में बाधा नहीं डाली होगी, मैं तुमसे पूछता हूं? उनके बच्चे तड़पे होंगे, भूखे सोए होंगे, भीख मांगी होगी! पति तो संन्यासी हो गए थे, शायद पत्नी को वेश्या हो जाना पड़ा होगा! यह कैसा संन्यास? इसमें कहीं कोई बुनियादी रोग है, कहीं कोई भ्रांति है।
संन्यास बड़ा होना चाहिए, विराट होना चाहिए, सबको समा ले। संन्यास हार्दिक होना चाहिए, प्रेमल होना चाहिए। संन्यास में कहीं भी कोई कदम ऐसा उठे जो प्रेम के विपरीत जाता हो, तो वह संन्यास नहीं है। यह मैं तुम्हें कसौटी देना चाहता हूं। जब तुम प्रेम की तरफ बह रहे हो, तो समझना सब ठीक है; और जब तुम प्रेम के विपरीत जाने लगो, समझना कुछ भूल हो गई, कहीं कोई भ्रांति हो गई। अपने को सुधारना, सम्हालना अपने को, वापस लौट आना। जीवन का सम्मान चाहिए। यह परमात्मा की देन है। उसकी भेंट है। इसे तुम छोड़ कर भाग गए! इसका तुमने तिरस्कार किया!
और मजा है कि यही सारे धार्मिक लोग कहते रहे--परमात्मा ने सृष्टि बनाई है, वह स्रष्टा है। उसकी सृष्टि को तुम छोड़ कर भागते हो? तुम कवि की कविता का अपमान करोगे, यह कवि का सम्मान होगा? तुम संगीतज्ञ के संगीत का इनकार करोगे, यह संगीतज्ञ का आदर होगा? सृष्टि को छोड़ कर भागोगे, यह स्रष्टा के प्रति तुम्हारा समर्पण होगा?
अगर चित्रकार का सम्मान करना है, उसके चित्र का सम्मान करो। और अगर मूर्तिकार का सम्मान करना है, उसकी मूर्ति का सम्मान करो। अगर स्रष्टा का तुम्हारे मन में कोई भी सम्मान उठा है, तो उसकी यह विराट सृष्टि--ये फूल, ये पक्षी, ये पत्ते, ये लोग, ये पत्थर--इन सबका सम्मान करो। इस सब पर उसके हस्ताक्षर हैं।
एक जीवन-विधेय का धर्म देना चाहता हूं। एक ऐसा धर्म जो संकीर्ण न हो, आकाश जैसा विराट हो, जिसमें सब समा जाए। एक ऐसा धर्म जिसमें दमन न हो, जिसमें उत्सव हो; जिसमें उदासी न हो, जिसमें नृत्य हो, गीत हो, गायन हो। एक ऐसा धर्म जिसमें लोग सृजनात्मक हों। जाकर गुफाओं में न बैठ जाएं मुर्दों की भांति। वह तो तुम कब्र में कर लेना, अभी जल्दी क्या है?
कनफ्यूशियस से उसके एक शिष्य ने पूछा कि मैं शांत कैसे हो जाऊं? मैं बिल्कुल शांत हो जाना चाहता हूं। कनफ्यूशियस ने कहा, जल्दी क्या है, जब तू कब्र में सोए तब शांति से सो जाना। अभी जी ले; अभी नाच ले; अभी जीवन के साथ उत्सव मना ले।
शांति से भी ज्यादा बड़ा मूल्य आनंद का है। और निश्चित ही आनंद के पीछे
एक तरह की शांति आती है छाया की भांति। लेकिन तब वह मुर्दा शांति नहीं होती, मरघट की शांति नहीं होती। शांति होती है जैसे संगीत को सुनने के बाद आती है। शांति होती है जैसे नृत्य के बाद आती है। एक आनंद का भाव शांति को भी अपने साथ बहा लाता है। लेकिन वह जीवन की तरंग पर चढ़ कर आती है।
अतीत के धर्म व्यक्ति-विरोधी धर्म थे। उन्होंने व्यक्तियों को स्वतंत्रता नहीं दी; उन्होंने व्यक्तियों को व्यक्तित्व नहीं दिया। उन्होंने व्यक्तियों को भेड़ बनाने की कोशिश की। मैं तुम्हें स्वतंत्रता देना चाहता हूं। मैं तुम्हें तुम्हारी निजता देना चाहता हूं। तुम अद्वितीय हो। यहां कोई एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति जैसा नहीं है। तुम्हें किसी दूसरे की नकल होने की आवश्यकता नहीं है। तुम तुम जैसे हो, और तुम्हें तुम जैसा ही होना है। ऐसे होकर ही तुम परमात्मा को प्रसन्न कर सकोगे। तुम गुलाब हो तो गुलाब की तरह खिलो, और चमेली हो तो चमेली की तरह खिलो; तुम्हें कमल होने की जरूरत नहीं है। तुम कमल हो तो कमल की तरह खिलो, कमल को गुलाब होने की जरूरत नहीं है। तुम अपने को स्वीकार करो, अपने को अंगीकार करो। न तुम्हें बुद्ध बनना है; न तुम्हें महावीर बनना है; न तुम्हें रजनीश बनना है। तुम्हें तुम ही बनना है। और तुम जिस दिन तुम ही बनोगे, उसी दिन तुम्हारे जीवन में उल्लास होगा।
नया धर्म विशेषणमुक्त हो। नया धर्म दमनमुक्त हो। नया धर्म सिद्धांतमुक्त हो। नया धर्म निजता का, व्यक्ति के परम सम्मान का धर्म हो।

और नया धर्म सृजन का धर्म हो। परमात्मा स्रष्टा है। तुम भी कुछ रचो, कुछ बनाओ, तो तुम भी उसके साथ हो लोगे। स्रष्टा होकर ही तुम स्रष्टा के साथ अपना सरगम बिठा सकोगे।
फिर स्रष्टा होने के लिए कुछ ऐसा नहीं है कि तुम पिकासो होओ, या वानगॉग, या कालिदास, या भवभूति, कि तुम कोई बड़ा महाकाव्य लिखो, कि तुम कोई बड़ा संगीत जन्माओ। बड़े और छोटे का सवाल नहीं है। उसकी महफिल में बड़े और छोटे का हिसाब नहीं है। तुम अगर अपने छोटे से फूल को भी चढ़ाने गए तो वहां उतना ही सम्मान है। तुम सोने का ही फूल चढ़ाओ, ऐसी कोई बात नहीं है। वहां सोने में और मिट्टी में कोई फर्क नहीं है। सृजनात्मकता चाहिए। और सृजनात्मकता जीवन का अंग बन सकती है। तुम भोजन पकाओ, लेकिन उसमें सृजनात्मकता हो। तुम बुहारी लगाओ घर में, उसमें सृजनात्मकता हो, उसमें प्रार्थना हो। तुम परमात्मा की पृथ्वी को झाड़ रहे हो। बस तभी फर्क हो जाएगा। तुम्हारा बेटा भोजन करने आ रहा है, तुम्हारा बेटा भी परमात्मा है। तुम्हारा पति भोजन करने आ रहा है, तुम्हारा पति भी परमात्मा है। तुम अपनी पत्नी के लिए कुछ तैयार कर रहे हो, तुम्हारी पत्नी में परमात्मा छिपा है। तुम ऐसे जीओ कि सब तरफ से परमात्मा के प्रति तुम्हारा समादर प्रकट हो। मंदिरों-मस्जिदों में जाओ या न जाओ, फर्क नहीं पड़ता। यहां चलते-फिरते मंदिर हैं चारों तरफ। यहां हर आंख में परमात्मा छिपा है। झांको थोड़ा, और इस ढंग से जीओ कि तुम्हारा पूरा जीवन परमात्मा की सेवा बन जाए। उसे मैं सृजनात्मकता कह रहा हूं। कुछ करो। भाव से, समग्रता से। और हर समग्रता तुम्हें परमात्मा के करीब लाने लगेगी।
मैं तुम्हें एक ऐसा धर्म देना चाहता हूं जो मधुशाला का धर्म हो। रस का। रसो वै सः। वह परमात्मा रसरूप है, आनंदरूप है। तुम रस में निमग्न होओ। सुनो इन शब्दों कोः

हंसने का वक्त है, यह हंसाने का वक्त है
यानी चमन में फूल खिलाने का वक्त है
आई है फिर बहार ब-अंदाजे-दिलबरी
सर को हुजूरे-दोस्त झुकाने का वक्त है
माना, खिरद है, शम्मए-रहे-जिंदगी मगर
ऐ बेखबर! यह होश में आने का वक्त है
कब से है इंतजार नजर को न पूछिए काशानाए-हयात बसाने का वक्त है
अब बन रही है अपनी यह धरती ही आस्मां खुर्शीदो-माहताब उगाने का वक्त है छिटकी है फिर चमन में बहारों की चांदनी तारीकिए-हयात मिटाने का वक्त है
लो आ गए हैं बज्म में मीना-बदोश वह
हर-हर कदम पे जाम लुंढ़ाने का वक्त है
कब तक रहेगी ईद मुहर्रम बनी हुई
आओ कि जश्ने-शौक मनाने का वक्त है
नजरों के साथ दिल भी करो फर्शे-राह तुम
"रख्शां"! यह उनके बज्म में आने का वक्त है

हर घड़ी परमात्मा के आने का समय है।
"रख्शां"! यह उनके बज्म में आने का वक्त है
हंसने का वक्त है, यह हंसाने का वक्त है
यह पूरा जीवन हंसने और हंसाने का जीवन होना चाहिए। रसो वै सः। वह रसरूप है। तुम भी रसरूप हो जाओ। उदास मत बैठो।
कब तक रहेगी ईद मुहर्रम बनी हुई
आओ कि जश्ने-शौक मनाने का वक्त है
धर्म मुहर्रमी हो गए हैं। वहां उदासी छा गई है। वहां लोग मुर्दों की भांति बैठे हैं। वहां समय के पहले मर गए हैं। मंदिरों में फिर से नाच को ले

आओ। मंदिरों में फिर गीत को ले आओ। फिर बजने दो वीणा। फिर थिरकने दो पांव।
फिर ताल पड़ने दो। देखते नहीं चारों तरफ परमात्मा सदा उत्सव में है? तुम उदास होकर इस महोत्सव से टूट जाते हो।
लो आ गए हैं बज्म में मीना-बदोश वह
परमात्मा सदा ही मधु की मटकी भरे हुए आ रहा है।
लो आ गए हैं बज्म में मीना-बदोश वह
हर-हर कदम पे जाम लुंढ़ाने का वक्त है
तुम जरा आंख खोल कर देखोगे तो फूलों में दिखाई पड़ेगा उसका मधु। सूरज में दिखाई पड़ेगा, चांद-तारों में दिखाई पड़ेगा। सब तरफ दिखाई पड़ेगा। मगर तुम्हारी आंखों पर धूल जम गई है। तुम्हारी आंखों को उदासी के पाठ पढ़ाए गए हैं। उन पाठों ने तुम्हारे जीवन को विकृत कर दिया है। तुम्हें इतने कांटों के पाठ पढ़ाए गए हैं कि तुम्हें फूल दिखाई पड़ने बंद हो गए हैं। इस जमीन को आसमान बनाना है। यह मेरा संदेश है आज के दिन।
अब बन रही है अपनी यह धरती ही आस्मां
खुर्शीदो-माहताब उगाने का वक्त है
अब चांद-तारों को उगाने का समय आ गया है। धरती को आसमान बनाना है। बहुत दिन खोज चुके हम आसमान में स्वर्ग को, अब स्वर्ग को यहीं उतार लाना है।
और परमात्मा प्रतिपल तैयार है। तुम जरा मौका दो। तुम जरा अपने हृदय
की वीणा को उसके सामने करो, तुम जरा पुकारो। और अचानक तुम पाओगेः एक दिन तुम्हारी वीणा पर किन्हीं अज्ञात अंगुलियों ने आकर अपना रास रचाना शुरू कर दिया। कोई आ गया अज्ञात, चुपचाप, कब किस गली-कोने से, कब किस गली-द्वार से और तुम्हारी वीणा बजने लगी! मगर पुकारो।
शांडिल्य के सूत्रों का यही सार है। भक्ति का शास्त्र इतने में ही निचोड़ा जा सकता है कि वीणा मेरी पड़ी है, मैं पुकारता हूं, वीणावादक, तू आ और इसे बजा!

तुम छेड़ो मेरी बीन कसी, रसराती।

बंद किवाड़े कर-कर सोए
सब नगरी के वासी,
वक्त तुम्हारे आने का यह,
मेरे राग-विलासी,
आहट भी प्रतिध्वनित तुम्हारी इस पर होती आई,
तुम छेड़ो मेरी बीन कसी, रसराती।

इसके गुण-अवगुण बतलाऊं?
क्या तुमसे अनजाना?
मिला मुझे है इसके कारण
गली-गली का ताना,
लेकिन बुरी-भली, जैसी भी,
है यह देन तुम्हारी,
मैंने तो सेई एक तुम्हारी थाती। तुम छेड़ो मेरी बीन कसी, रसराती।

तुम पैरों से ठुकरा देते
यह बलि-बलि हो जाती,
कहां तुम्हारी छाती की भी धड़कन यह सुन पाती,
और चुकी हैं चूम अंगुलियां मधु बरसाने वाली,
अचरज क्या इतनी आज बनी मदमाती।

तुम छेड़ो मेरी बीन कसी, रसराती।

मेरी उर-वीणा पर तुम जो
चाहो राग उतारो,
उसके जिन भावों-भेदों को
तुम चाहो उद्गारो,
जिस पर्दे को चाहो खोलो,
जिसको चाहो मूंदो,
यह आज नहीं है दुनिया से शरमाती।
तुम छेड़ो मेरी बीन कसी, रसराती।

प्रत्येक व्यक्ति एक वीणा है, जो कसी है, तैयार है जन्मों-जन्मों से,
रस से भरी है। पर वीणावादक को तुमने बुलाया नहीं; तुमने पुकारा नहीं। और वीणावादक न आए तो जीवन संताप रह जाता है।
मैं तुम्हें वीणावादक को पुकारने के लिए कहता हूं। भक्ति का इतना ही सारसूत्र है। जिस दिन तुम कह सकोगे अनन्यभाव से--तुम छेड़ो मेरी बीन कसी, रसराती। उसी क्षण क्रांति घटनी शुरू हो जाती है।
आज के सूत्र--
लघु अपि भक्ताधिकारे महत्क्षेपकम अपर सर्वहानात्।
अपूर्व सूत्र है।
"थोड़ी सी भक्ति उदय होने पर भी महापातक का नाश हो जाता है।"
थोड़ी सी! अंधेरे को मिटाने के लिए कोई सूरज ही थोड़े ही चाहिए! एक मोमबत्ती भी, एक छोटा सा मिट्टी का दीया भी। शांडिल्य कहते हैंः तुम इस फिकर में मत पड़ो कि बहुत आयोजन करना पड़ेगा, तब तुम्हारे पाप कटेंगे, तब तुम्हारा अंधेरा मिटेगा।
शांडिल्य कहते हैंः "थोड़ी सी भक्ति उदय होने पर भी महापातक का नाश हो जाता है।"
भक्ति आणविक शक्ति है। एक छोटे से अणु में छिपी विराट शक्ति है। प्रेम से बड़ी कोई शक्ति इस जगत में नहीं है। प्रेम से ही घूमती है पृथ्वी, प्रेम से ही चांद-तारे चलते हैं। प्रेम के धागों से ही बंधा है अस्तित्व। तुम यहां हो, प्रेम की अनंत धारा के कारण। तुम्हारे बच्चे यहां होंगे, प्रेम की अनंत धारा के कारण। अनंत काल तक जीवन बहता रहता है। प्रेम सम्हाले है उसे, कोई और सम्हालने वाला नहीं है। भक्ति उसी प्रेम की अपूर्व ऊर्जा का उपयोग है। तुम्हारे पास जो सबसे बड़ी शक्ति है, वह प्रेम है। तुम्हारे प्रेम को ही ईश्वर के उन्मुख कर देने का नाम भक्ति है। शांडिल्य कहते हैंः "थोड़ी सी भक्ति उदय हो जाने पर भी महापातक का नाश
हो जाता है।"
कैसे यह होता होगा? क्योंकि तुमने जनम-जनम तक न मालूम कितने पाप किए हैं, न मालूम कितने कर्म किए हैं, उन सबका बोझ है। गणित जो बिठाते हैं, हिसाब जो लगाते हैं, दुकानदार जो हैं, वे कहते हैंः यह कैसे होगा? भक्ति मात्र से कैसे होगा? अशुभ कर्मों का इतना जाल है, उसे तोड़ना पड़ेगा।
लेकिन तुमने सुनी न कहावतः सौ सुनार की, एक लोहार की। सुनार को समझ में भी नहीं आता कि एक चोट से कैसे कुछ होगा? वह तो खटखट-खटखट-खटखट करता ही रहता है। उसे भक्ति का सार पता नहीं है। एक चोट काफी है!
तुम्हारे घर में अंधेरा है, सदियों पुराना अंधेरा है। क्या तुम सोचते
हो जब तुम दीया जलाओगे तो अंधेरा कहेगाः मैं बहुत पुराना हूं, इतनी जल्दी नहीं जा सकता हूं! एक छोटे से मिट्टी के दीये को जला कर तुम समझ क्या रहे हो? अपने को समझ क्या लिया है? सूरज चाहिए! और जन्मों-जन्मों तक लाओगे, जलाओगे, तब हटूंगा। नहीं, अंधेरा तो हट जाता है। अंधेरा कहने के लिए समय भी नहीं पाता कि नहीं हटना चाहता हूं। इधर दीया जला, उधर अंधेरा गया।
ठीक वैसी ही घटना भक्त की है। यहां प्रेम का दीया जला, वहां सब पातक गिर गए।
सारे पापों का सार क्या है?

सारे पापों का सार अहंकार है। कोई और पाप नहीं है। अहंकार की छायाएं हैं पाप। मैं हूं, यही पाप की जड़ है।
दूसरे लोग जो कर्मों का हिसाब-किताब रखते हैं, वे पत्ते काटते रहते हैं। वे लेकर कैंची लगे रहते हैं पत्ते काटने में, शाखाएं छांटने में। उनके छांटने और काटने का एक ही परिणाम होता है--वृक्ष और घना होता जाता है। वे एक पत्ता काटते हैं, तीन पत्ते निकल आते हैं। आखिर वृक्ष भी जवाब देना जानता है! कि तुमने समझा क्या है? इसीलिए तो वृक्ष को घना करने के लिए कलम करते हैं। कलम करते ही से वृक्ष घना होने लगता है। लेकिन अगर जड़ काट दो, तो बस बात समाप्त हो गई। जड़ छिपी है, पत्ते दिखाई पड़ते हैं। इसीलिए लोग पत्ते काटने में जल्दी उत्सुक हो जाते हैं। भक्त जड़ काटता है। भक्त कहता है, मुझसे भूलें हुईं, मुझसे बहुत पाप हुए, लेकिन इन सारे पापों के होने का मूल कारण क्या है? मूल जड़ क्या है? सारे पापों के भीतर घूम कर, खोज कर पाओगेः "मैं" बैठा हुआ है। क्रोध किया था, वह भी "मैं" से पैदा हुआ था। जितना अहंकार, उतना क्रोध। लोभ किया था, वह भी अहंकार से हुआ था। जितना अहंकार, उतना लोभ। आसक्ति थी, वह भी अहंकार से थी। जितना अहंकार, उतनी आसक्ति। तुम जरा अपने जीवन के सारे पापों का लेखा लो। तुम अचानक पाओगे, सबके भीतर एक ही छिपा बैठा है। रूप अनेक हैं, ढंग अलग हैं, लेकिन सबके भीतर सारसूत्र एक है। परिधि पर बड़ी बातें दिखाई पड़ती हैं--क्रोध, लोभ, मोह, माया, मत्सर--लेकिन बहुत गहरे में सिर्फ एक ही दिखाई पड़ता है केंद्र पर बैठा हुआः अहंकार। वह जड़ छिपी हुई है।
भक्ति का अर्थ इतना ही हैः अब मैं नहीं हूं, परमात्मा तू है। अहंकार
के कटते ही सारा वृक्ष सूख जाता है, सारे कर्म-संस्कार गलित हो जाते हैं। तत स्थानत्वात अनन्य धर्मः खले बालीवत्।
"भागवत भक्तों की भक्ति क्षुद्र होने पर भी अनन्यता के कारण खरल में बाला की भांति महापाप भी नष्ट कर देती है।"
तुमने वैद्य को देखा? खरल लिए कूटता रहता है अपनी औषधि। उसमें जो भी
पड़ जाता है, पिस जाता है। छोटी औषधि हो, बड़ी औषधि हो, सब पिस जाता है। शांडिल्य कह रहे हैं, ठीक वैसे ही भक्ति का खरल है, उसमें सब पाप पिस जाते हैं, सब पाप जीर्ण-शीर्ण होकर मिट जाते हैं। सबका चूर्ण बन जाता है। भक्ति छोटी दिखाई पड़ती हो, छोटी नहीं है।
तुम देखते, दूसरा महायुद्ध समाप्त हुआ हिरोशिमा पर। अणु बम का विस्फोट हुआ। अब अणु छोटी से छोटी चीज है। विज्ञान को इसके पहले पता नहीं था कि छोटे में इतना विराट छिपा हो सकता है। अणु आंख से दिखाई नहीं पड़ता। अगर हम एक लाख अणुओं को एक के ऊपर एक रखते जाएं तो बाल की मोटाई के होंगे। एक बाल की मोटाई बनेगी--एक लाख अणुओं को एक के ऊपर एक रखने से। इतना छोटा अणु, और हिरोशिमा में एक लाख आदमियों को क्षण में राख कर दिया! यह मामला क्या है?
जिन्होंने परमात्मा को तलाशा है, उन्हें यह राज बहुत पहले से पता रहा है। जैसे पदार्थ में अणु की शक्ति विराट है, ऐसे ही चेतना में प्रेम की शक्ति विराट है। प्रेम चेतना का अणु है। जैसे पदार्थ विद्युत से बना है, ऐसे ही चेतना प्रेम से बनी है। अगर हम उस अणु को पा लें, तो हमारे हाथ में विराट शक्ति आ गई। इसलिए कृष्ण ने कहा है गीता में अर्जुन कोः सर्वधर्मान परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज। तू सब छोड़-छाड़; तेरे धर्म इत्यादि, कर्म इत्यादि, जप-तप, योग-याग, सब छोड़, तू मुझ एक की शरण आ जा। मामेकं शरणं व्रज। मुझ एक की।
यह कौन एक है? यह कृष्ण किसकी तरफ से बोल रहे हैं? यह उस परम एक की तरफ
से बोला गया वक्तव्य है। यह कृष्ण अपने लिए नहीं बोल रहे हैं। यह कृष्ण यह नहीं कह रहे हैं कि तू मेरी शरण आ। कोई सदगुरु यह नहीं कहता, तुम मेरी शरण आओ। और जब कोई सदगुरु कहता है, तुम मेरी शरण आओ, तो उसका मतलब यही होता है कि अब वह नहीं है, अब उसके भीतर से परमात्मा बोल रहा है--मामेकं शरणं व्रज। कृष्ण तो बांसुरी हो गए हैं, अब जो स्वर आ रहा है वह परमात्मा का है। कृष्ण शुद्ध हो गए हैं, शांत हो गए हैं, मौन हो गए हैं। अब उनके भीतर से वह परमवाणी सुनाई पड़ रही है। जब कृष्ण ने यह कहा अर्जुन कोः सर्वधर्मान

परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज। तब यह कृष्ण के संबंध में नहीं कहा है, यह उस परम अवस्था के संबंध में कहा है जो भीतर कृष्ण के सघन हो गई है।
उस एक की शरण आते ही सब हो जाएगा? फिर किसी धर्म, योग इत्यादि की कोई जरूरत नहीं है? कोई जरूरत नहीं है। क्योंकि उस एक के शरण जाने में जड़ कट जाती है। उसके शरण जाने का मतलब है, तुमने अपने अहंकार को पोंछा, अलग किया। और कृष्ण ने यह भी कहाः अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः।
हे अर्जुन, तू वैध और अवैध, सब कामों का त्याग करके मेरी शरण आ जा; मैं तुझे सब पापों से मुक्त करूंगा। मैं तुझे मोक्ष दूंगा।
कृष्ण मोक्ष देंगे? इतना ही अर्थ है कृष्ण के कहने का कि अगर तू सब छोड़
कर आ जाए, गिर जाए एक की शरण में, तो मोक्ष हो गया। कोई देता थोड़े ही है।
यहां लेना-देना कहां? लिया-दिया मोक्ष किसी बड़े मूल्य का हो भी नहीं सकता। कृष्ण को आज मौज आ गई, दे दिया; और कल दिल फिर गया, ले लिया। क्योंकि जो दिया जा सकता है, वह लिया जा सकता है। नहीं रही दोस्ती, कह दिया कि अब बहुत हो गया, वापस कर दो; या मैं लिए लेता हूं।
नहीं, मोक्ष न दिया जाता है, न लिया जाता है। फिर कृष्ण का अर्थ क्या है?
कृष्ण इतना ही कह रहे हैं, अगर तू अपने को छोड़ दे तो मोक्ष हो गया। और
एक बार तुझे समझ में आ जाए कि मैं के छोड़ते ही मोक्ष हो जाता है, फिर कोई पागल है जो कारागृह में जाए मैं की वापस? फिर कौन उस अंधेरी कोठरी में बंद होगा? अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः। आ जा, मुक्त हो जा। एक ही काम कर ले। एक जड़ काट दे।
भक्त से इतनी ही अपेक्षा है, और कुछ ज्यादा नहीं, कि वह इस मैं भाव को छोड़ दे।
मैं खुदफरेब सही, दिल उम्मीदवार तो है
वफा हो या न हो, वादे पे ऐतबार तो है
बला से पाएं न मंजिल मगर यह क्या कम है
भटकते फिरने में इस दिल को कुछ करार तो है
छोटी सी भक्ति। भक्त कहता है, न मिले सूरज, छोटी सी किरण। न पहुंच पाएं मंजिल तक, लेकिन मंजिल की तलाश में भटक रहे हैं, इससे भी बड़ी राहत है।
तुम धन पा लो तो भी कुछ सार नहीं। और ध्यान को पाने वाला, ध्यान न भी पा सके, लेकिन पाने की यात्रा पर लगा रहे, तो काफी है। इसे मैं फिर से तुमसे कह दूं, ध्यान के रास्ते पर तुम हार जाओ तो भी जीत गए, और धन के रास्ते पर जीत भी गए तो क्या जीते? जीत कर भी हार हो जाती है धन के रास्ते पर। ध्यान के रास्ते पर हार कर भी जीत हो जाती है।
मैं खुदफरेब सही, दिल उम्मीदवार तो है
उसकी आकांक्षा, इतना ही क्या कम है? उसकी आशा।
... दिल उम्मीदवार तो है
परमात्मा की आकांक्षा का अंकुरण हुआ है, इतना ही बहुत है। उतनी आकांक्षा भी रूपांतरकारी है।
मैं खुदफरेब सही, दिल उम्मीदवार तो है
वफा हो या न हो, वादे पे ऐतबार तो है
बला से पाएं न मंजिल मगर यह क्या कम है
भटकते फिरने में इस दिल को कुछ करार तो है
गुमाने-तर्के-तअल्लुक न कीजियो नासेह
जो उनकी बज्म नहीं, उनकी रहगुजार तो है
नहीं पहुंचे उनकी महफिल तक, कोई फिकर नहीं, लेकिन उनके रास्ते पर हैं। जिस रास्ते से वे आते-जाते हैं, उस रास्ते पर हैं। इतनी भक्ति भी काफी है। इतनी भक्ति भी क्रांतिकारी है।
जो उनकी बज्म नहीं, उनकी रहगुजार तो है
गिला नहीं मुझे बेकैफिए-हयात का अब
खटकते रहने को सीने में कोई खार तो है

अब कोई फिकर नहीं है, शिकायत भी नहीं। एक कांटा चुभ गया है परमात्मा
को पाने का, एक उसके वियोग का कांटा चुभा है, वह भी काफी है। उसकी याद तड़फाती है, वह भी काफी है।
विदाए-मौसमे-गुल का न गम कर ऐ बुलबुल
वह इक नवा कि जो है रुकसे-बहार तो है
चमक के कहती है जुल्मत से इक यकीं की किरन
सहर न आई तो क्या, उसका इंतजार तो है
रात के अंधेरे से आस्था की, श्रद्धा की एक छोटी सी किरण कहती हैः
चमक के कहती है जुल्मत से इक यकीं की किरन
सहर न आई तो क्या, उसका इंतजार तो है
सुबह न आई तो भी चलेगा; सुबह का इंतजार भी तो सुबह है। छोटी सी भक्ति, थोड़ी सी आस्था, जरा सा बीज, और विराट फल होता है।
हुए जो अश्क रवां, उन पर इख्तियार न था पर उनको तुझसे छुपाने पे इख्तियार तो है
मनुष्य परमात्मा की यात्रा पर दो ढंग से निकल सकता है। एक तो अकड़ से,
कि पाकर रहूंगा; संकल्प से। वह अहंकार की ही यात्रा है। वह अहंकार का ही सूक्ष्म रूप है। और दूसरा मार्ग है कि अपने को मिटा दूंगा, तेरी राह पर अपने को मिटा दूंगा, तेरी राह पर गर्द-गुबार होकर मिट जाऊंगा। वह समर्पण का मार्ग है। और जो समर्पण करने को राजी हैं, उनके हाथ में वह विराट ऊर्जा लग जाती है जो प्रेम में छिपी है।
इस दिल की कायनात है तेरी नजर के साथ
गुंचे की जिंदगी है नसीमे-सहर के साथ
आएगी हाथ मंजिले-मकसूद खुद-ब-खुद
देखो तो चलके चार कदम राहबर के साथ
सिर्फ चार कदम भी चल कर देखो।
इस दिल की कायनात है तेरी नजर के साथ
भक्त की तो सारी दुनिया उसकी एक नजर में है। उसकी एक दृष्टि हो जाए, सब
हो गया। ज्यादा की उसकी मांग नहीं है। उसकी मांग बड़ी छोटी है। छोटी है, इसीलिए जल्दी पूरी हो जाती है। सिर्फ मांगता है इतनाः एक दफा मेरी तरफ देख भर लो--दूर से सही, पल भर को सही, एक बार ख्याल कर लो कि मैं भी यहां हूं। और तुम्हें पुकारता हूं और तुम्हारी चाहत में मर रहा हूं।
इस दिल की कायनात है तेरी नजर के साथ
गुंचे की जिंदगी है नसीमे-सहर के साथ
जैसे सुबह की हवा के साथ फूल की जिंदगी है, ऐसे परमात्मा की एक नजर के साथ भक्त की जिंदगी है।
आएगी हाथ मंजिले-मकसूद खुद-ब-खुद
भक्त कहता है, मुझे फिकर नहीं है आखिरी मंजिल की, मुझे अंतिम लक्ष्य
की कोई चिंता नहीं है। मुझे मोक्ष की कोई चिंता नहीं है।
आएगी हाथ मंजिले-मकसूद खुद-ब-खुद
वह अंतिम मंजिल तो अपने आप आ जाएगी। मुझे तो फिकर तेरी दृष्टि की है।
तू एक बार देख ले!
देखो तो चलके चार कदम राहबर के साथ
किसी पथ-प्रदर्शक के साथ चार कदम भी चल कर देख लो, किसी गुरु के साथ थोड़ा सत्संग कर लो, और तुम्हारे भीतर भी यह भक्ति का बीज पड़ जाएगा। और यह छोटा सा बीज बड़े विराट को अपने में छिपाए हुए है। जैसे एक छोटी सी बूंद में पूरा सागर छिपा है। ऐसे ही भक्ति के छोटे से बीज में पूरा भगवान छिपा है। अनिन्द्ययोनि अधिक्रियते पारम्पर्यात सामान्यवत्।
"भक्ति में चांडाल आदि का भी अधिकार है, क्योंकि भक्त भक्ति की मर्यादा से सब समान हैं।"
उन पुराने दिनों में जब शांडिल्य ने ये अपूर्व सूत्र लिखे, बड़ी मूढ़ता थी। अब भी समाप्त नहीं हो गई है। शूद्र को मंदिर में प्रवेश का अधिकार नहीं था। और चांडाल तो शूद्र से भी गया-बीता है। तुमने चार वर्ण सुने हैंः ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र। एक पांचवां वर्ण भी है जिसको वर्णों

में गिना नहीं गया है। उसको चांडाल कहते हैं। वह इतना बाहर है कि उसकी गिनती भी नहीं की है। वह गिनने के योग्य भी नहीं है। लेकिन शांडिल्य की हिम्मत देखते हो! हजारों साल पहले यह कहने की हिम्मत कि भक्ति के मार्ग पर हम कोई भेद नहीं करते--कौन ब्राह्मण है, कौन शूद्र है, कोई भेद नहीं करते। भक्ति के मार्ग पर सब मनुष्य समान हैं। भक्ति के मार्ग पर चांडाल भी उतना ही अधिकारी है जितना कोई और।
भगवान की करुणा अपरंपार है। ब्राह्मण पर कुछ ज्यादा होगी, शूद्र पर कुछ कम होगी, चांडाल पर बिल्कुल न होगी, तो यह तो करुणा की सीमा हो जाएगी। करुणा का अर्थ ही यह होता है कि जिसे जितनी ज्यादा जरूरत है उतनी ज्यादा उसे उपलब्ध होगी। ब्राह्मण को न भी मिले तो चलेगा, चांडाल को तो मिलनी ही चाहिए। पुण्यात्मा को न मिले, चलेगा, लेकिन पापी को तो मिलनी ही चाहिए। पुण्यात्मा को तो पुण्य भी है सहारे के लिए, पापी के लिए तो सिर्फ परमात्मा ही है सहारे के लिए।
इसलिए अक्सर ऐसा हो गया है कि पापी पहुंच गए हैं और पुण्यात्मा भटक गए हैं। अकड़ है पुण्यात्मा को कि मेरा किया-धरा, मैंने इतना किया, इतना किया, इतना किया, उसके सहारे जीना चाहता है। पापी कहता है, मेरे किए तो सब गलत हुआ। मैं ही गलत हूं तो मेरे किए कुछ ठीक कैसे होगा? मैं अंधकार हूं, तेरी किरण उतरेगी--करुणा से उतर सकती है, मेरी पात्रता से नहीं।
"भक्ति में चांडाल आदि का भी अधिकार है, क्योंकि भक्त भक्ति की मर्यादा से सब समान हैं।"
भक्ति की मर्यादा, मर्यादा ही नहीं मानती। सब समान हैं। कोई सीमा नहीं मानती।
इसलिए मैं तुमसे कहता हूंः ज्ञान के और कर्म के मार्ग क्षुद्र हैं, भक्ति का मार्ग विराट है। ज्ञान और कर्म के मार्ग पर बड़ा हिसाब-किताब है। कौन अधिकारी? कौन अनधिकारी? भक्ति के मार्ग पर कोई अधिकार-अनधिकार का हिसाब नहीं है। जो रोएगा, जो पुकारेगा, जो झुकेगा, वही अधिकारी है। झुकने के पहले अधिकार नहीं है। यह नहीं पूछा जाएगा कि तू पहले झुकने का अधिकारी है या नहीं; कि ऐसे ही झुक रहे हो! पहले पुण्य तो करो, फिर झुकना! पहले व्रत-उपवास करो, फिर झुकना! सच तो यह है, व्रत-उपवास और पुण्य करने वाला झुक ही नहीं पाता। वे व्रत-उपवास ही लोहे की तरह उसकी छाती में समा जाते हैं, झुकने नहीं देते। उसकी रीढ़ मजबूत हो जाती है, झुकती नहीं।
झुकने के लिए अपनी असहाय अवस्था का बोध चाहिए। पापी से ज्यादा किसको होगा? परमात्मा के पास तुम अपनी पात्रता से नहीं पहुंचते हो, अपनी असहाय अवस्था की पुकार से पहुंचते हो। तुम्हारी आह तुम्हें पहुंचाती है, तुम्हारा अहंकार नहीं।
अतः हि अविपक्कभावानां अपि तल्लोके।
"इस कारण पराभक्ति का लाभ नहीं होने पर भी साधक का निवास भगवत्-लोक में ही हुआ करता है।"
बड़े अपूर्व सूत्र हैं। सम्हाल कर रख लेना हृदय में।
शांडिल्य का वक्तव्य यह कह रहा हैः पराभक्ति का लाभ होगा तब होगा, अंतिम मंजिल जब मिलेगी तब मिलेगी, परमात्मा जब पूरा-पूरा उतरेगा तब उतरेगा, लेकिन भक्त जिस दिन से आंसू गिराना शुरू करता है, उसी दिन से उसका निवास भगवत्-लोक में हो जाता है।
इस भेद को थोड़ा ख्याल में लेना, भेद थोड़ा बारीक है।
भक्त के भीतर भगवत्-लोक कब आएगा, यह तो पराभक्ति में होगा, लेकिन भक्त
तो पहले दिन से ही भगवत्- मेंप्रवेश कर जाता है।ेये दो बातें हुईं।
तुम यहां बैठे हो, दो घटनाएं घट सकती हैं। मेरा तुममें प्रवेश हो सकता है, एक घटना। तुम्हारा मुझमें प्रवेश हो सकता है, दूसरी घटना। तुम्हारा मुझमें प्रवेश उसी क्षण हो जाता है जिस क्षण तुम आकांक्षा करते हो। मेरा प्रवेश होते-होते होगा। तुम जिस दिन से पहला कदम उठाते हो अपनी यात्रा का, उसी दिन से तुम मंजिल के हिस्से हो गए। मंजिल तो पीछे मिलेगी, मंजिल आते- आते आएगी, आ जाएगी जब आनी होगी। भक्त को उसकी चिंता भी नहीं है कि आज आ जाए कि कल आ जाए; भक्त को भरोसा है, आएगी तब आएगी। लेकिन जिस दिन तुमने पहला कदम

उठाया परमात्मा की तरफ, तुम परमात्मा के हिस्से हो गए। तुम्हारे भीतर भगवत्-लोक कभी आएगा, लेकिन तुम भगवत्-लोक के हिस्से हो गए। भक्त पहले दिन से ही भगवान में लवलीन हो जाता है।
ज्ञानी को तो अंत में ही मिलता है। इसलिए ज्ञानी उदास दिखाई पड़ते हैं, स्वाभाविक। अभी चल ही रहे हैं, चल ही रहे हैं, धक्के खा रहे हैं, परेशान हो रहे हैं, पहुंचेंगे जब कहीं आखिर में आनंद शायद हो; लंबी यात्रा है, और यात्रा बिल्कुल निर्जन है, और रास्ते पर कहीं फूल नहीं खिलते, और कोई पक्षी गीत नहीं गाते; जिस दिन उनकी पात्रता पूरी होगी, तब उनके जीवन में आनंद होगा। लेकिन अक्सर ऐसा हो जाता है, तब तक उदासी की आदत इतनी सघन हो जाती है कि आनंद भी हो जाता है मगर ओंठ नहीं मुस्कुराते। भूल ही गए भाषा मुस्कुराने की। मीरा पहले दिन से ही नाचने लगती है। महावीर अंतिम दिन नाचते हैं। मगर तब तक नाचना भूल गए! तो फिर नाच भीतर ही भीतर होता है। फिर बाहर किसी को दिखाई नहीं पड़ता। फिर चेतना का ही होता है, फिर देह तो जड़ हो गई। देह तो भूल गई भाषा। देह को तो याद ही नहीं रही कभी नाचने की--कभी नाची नहीं।
तुम समझते हो न बात को?
जब परमात्मा उतरेगा तब तुम्हारे भीतर उतना ही तो प्रकट होगा जितना तुम्हारा अभ्यास होगा। जो आदमी हंसने का अभ्यास करता रहा था पूरे रास्ते पर, परमात्मा उतरेगा तो शायद खिलखिला कर हंसेगा। बोधिधर्म को ऐसा ही हुआ था। जब परमात्मा उतरा तो वह खिलखिला कर हंसा। हंसने का बड़ा अभ्यास रहा होगा। हंसता रहा था; जिंदगी को गंभीरता से नहीं लिया था। जिंदगी एक बहुमूल्य मजाक थी, एक प्यारा मजाक थी। हंसता रहा था। तो आखिर में जब परमात्मा उतरा तो हंसी में फूटा।
महावीर नहीं नाचे। रास्ता ज्ञान का है। रास्ता कर्म-शुद्धि का है। रास्ता आत्म-शुद्धि का है। तो जिस दिन परमात्मा उतरा, उस दिन हाथ-पैर में कोई लहर न उठी। उठ नहीं सकती! मीरा पहले दिन से नाची और अंतिम दिन तक नाची। भक्त के लिए मार्ग भी मंजिल है। पहले ही कदम से मंजिल शुरू हो जाती है। यह अपूर्वता है भक्ति की, यह विलक्षणता है।
"इस कारण पराभक्ति का लाभ नहीं होने पर भी साधक का निवास भगवत्-लोक में हुआ करता है।"
यह सूत्र अपूर्व है। इसलिए फिर कहता हूं, इसे सम्हाल कर हृदय में रख लेना और पहले दिन से ही आनंदित हो जाओ। परमात्मा है! मिलन जब होगा तब होगा; उसकी राह पर चल पड़े, मग्न हो जाओ! मस्त हो जाओ!
सब्रो-जब्त के लेके बेशुमार नजराने
तेरी याद आई थी आज मुझको समझाने
पा गए हैं मंजिल को खुद-ब-खुद ही दीवाने
अक्ल के दोराहे पे खो गए हैं फरजाने
समझदार तो अक्ल के दोराहे पर खो गए हैं, और दीवाने पहुंच गए हैं।
पा गए हैं मंजिल को खुद-ब-खुद ही दीवाने
अक्ल के दोराहे पे खो गए हैं फरजाने
तुमने बात कह डाली, कोई भी न पहचाना
हमने बात सोची थी, बन गए हैं अफसाने
उन नई बहारों पर, उन नये नजारों पर
एक रिंद ही क्या हैं, रो रहे हैं मैखाने
हाय क्या मुसीबत है, हाय क्या कयामत है
हम ही खा गए धोखा, हम चले थे समझाने
यहां समझने-समझाने को कुछ भी नहीं है। यहां नाचने-गाने को बहुत कुछ है, समझने-समझाने को कुछ भी नहीं है।
पा गए हैं मंजिल को खुद-ब-खुद ही दीवाने
अक्ल के दोराहे पे खो गए हैं फरजाने
बुद्धिमान बन कर मत चलना। पागल बनो, दीवाने बनो, मस्त बनो। ऐसे चलो जैसे पीए हो। परमात्मा के रास्ते पर पहला कदम ही पीने वाले का कदम होना चाहिए, लड़खड़ा कर उठना चाहिए। डोल कर चलो। परमात्मा तो है, सब तरफ है, जब

हमारी समझ होगी, जब हमारी पहुंच होगी, तब समझ लेंगे। मगर नाच तो हम अब भी सकते हैं। नाच तो अज्ञानी भी सकता है न! नाचने के लिए कोई ज्ञान तो शर्त नहीं है। और नाच तो पापी भी सकता है न! नाचने के लिए पुण्य तो कोई शर्त नहीं है। तो नाचो। और जो नाचते-नाचते नाच में खो जाता है, वह पहुंच जाता है। क्रमैकगत्युपपत्तेः तु।
"ऐसा मानने से क्रमगति और एक-गति का प्रतिपादन करने वाले वचनों की संगति होती है।"
शांडिल्य कह रहे हैंः भक्ति में दोनों बातें मिल गईं। दुनिया में दो तरह के विचार रहे हैं। क्रमिक-गति, धीरे-धीरे मिलता है निर्वाण, ग्रेजुअल, क्रमशः, एक। और दूसरा, सडन एनलाइटेनमेंट, तत्क्षण, अक्रम से, एक-गति से, एक ही छलांग में मिल जाता है। शांडिल्य कहते हैं कि भक्ति में दोनों बातें पूरी हो गईं, दोनों में संगति हो गई, दोनों का विरोध जाता रहा। ऐसे तो मिल जाता है पहले ही कदम पर, और वैसे मिलता है आखिरी कदम पर। भक्त नाचना तो शुरू कर देता है पहले ही कदम पर, फिर नाच का ही सिलसिला है; अंतिम पर भी नाचता है। अगर तुम्हें मीरा से मिलन हो जाए, तो तुम पहचान न सकोगे कि मीरा कब अज्ञानी थी और कब ज्ञानी हुई। वह घटना तो भीतरी है, मीरा ही जानेगी। नाच बाहर चल रहा है सो चल रहा है। और बाहर के नाच में कोई फर्क न पड़ेगा। पहले दिन भी नाच में वही माधुर्य और अंतिम दिन भी नाच में वही माधुर्य। पहला कदम अंतिम कदम भी है।
भीतर बहुत फर्क पड़ जाएगा। पहले कदम पर मीरा भगवत्-लोक का हिस्सा हो गई। अंतिम कदम पर भगवत्-लोक मीरा का हिस्सा हो जाएगा। बस इतना ही फर्क है। और यह फर्क बारीक है। और यह फर्क भीतरी है। बाहर से पकड़ में भी न आएगा। आने की कोई जरूरत भी नहीं है।
शास्त्र कहते हैंः अनेक जन्मसंसिद्धिस्ततोयाति परां गतिं।
"अनेक जन्मों के साधन, अति साधन से सद्गति की प्राप्ति होती है।"
भक्ति उस शास्त्र को उलट देती है। भक्ति कहती है, यह क्या बकवास लगा रखी है?
समय का कोई संबंध सत्य से नहीं है। पहले ही कदम पर हो जाती है और अंतिम कदम पर भी होती है। दोनों में थोड़ा अंतर है। वह अंतर आंतरिक है। बाहर से उसको तौलने का कोई उपाय नहीं है। और कब तराजू दूसरी तरफ डोल जाता है, यह भीतर भी पहचानना बड़ा मुश्किल होता है। नाचने वाले को फुरसत भी कहां? इसलिए तुम देखते हो, महावीर को कब निर्वाण उपलब्ध हुआ, हमें मालूम है तारीख। मुझे कब निर्वाण उपलब्ध हुआ, उस तारीख पर आज तुम इकट्ठे हो गए हो। मीरा को कब निर्वाण उपलब्ध हुआ, तुम्हें कोई तारीख मालूम है? वहां तारीख नहीं है। तारीख का पता मीरा ही को नहीं है! कब बात होते-होते हो गई, कब चुपचाप यह भीतर घटना घट गई, कब पेंडुलम संसार से सत्य में डोल गया, यह नाचने वाले को पता भी नहीं हो सकता है। यह ध्यान करने वाले को पता हो सकता है। वह जो ध्यान में बैठा है, सजग होकर देख रहा है एक-एक चीज को, जांच रहा है एक-एक चीज को, उससे कोई चीज चूकेगी नहीं। उसको साफ पता चल जाएगा, कि यह गई रात, यह सुबह हुई। अब जो नाच रहा है मस्ती में, रात भी नाचा था, सुबह भी नाच रहा है, उसे कहां पता चलेगा--कब सुबह हो गई? कब सूरज निकल आया?
इसलिए भक्तों को कब ज्ञान उपलब्ध हुआ, इसका कोई उल्लेख नहीं है। इसका राज यही है। पहले कदम पर ही वे आखिरी कदम जैसे हो गए थे। और आखिरी कदम पर भी पहले कदम ही जैसे थे। वहां एक गहरा तारतम्य है।
क्रमैकगत्युपपत्तेः तु।
"ऐसा मानने से क्रमगति और एक-गति का प्रतिपादन करने वाले वचनों की संगति होती है।"
अदभुत किया शांडिल्य ने। इन दोनों के बीच कोई संगति कभी बिठा पाया नहीं!
झेन में दो परंपराएं हैं। बड़ा विवाद है उनमें। जो मानते हैं कि क्रमिक है, वे मानते हैं क्रमिक ही होगा। एक-एक कदम, एक-एक कदम उठा कर ही तो मंजिल पर पहुंचोगे। और जो मानते हैं सडन है, अक्रमिक है, एक ही छलांग में हो जाता है, वे मानते हैं--एक ही छलांग में हो जाता है। कदम उठा कर पहुंचने

का मतलब तो यह हुआ कि सत्य भी खंड-खंड किया जाएगा। थोड़ा सा मिला, फिर थोड़ा सा मिला, फिर थोड़ा सा मिला। सत्य के कोई खंड नहीं हो सकते, इसलिए कदम नहीं हो सकते। बस एकबारगी मिल जाता है। या तो आदमी अज्ञानी होता है या ज्ञानी; बीच में कोई और स्थितियां नहीं होतीं।
इन दोनों का विवाद ऐसा है कि हल नहीं हो सकता। क्योंकि जो कहता है धीरे-धीरे मिलेगा, वह भी पूछता है उससे जो कहता है एकबारगी में मिल जाता है, कि फिर तुम बीस साल तक ध्यान क्यों कर रहे थे? अगर एकबारगी में मिल जाता है तो पहले ही दिन छलांग क्यों नहीं लगा गए थे?
झेन में इस तरह की कथाएं हैं कि किसी साधक ने गुरु के पास जाकर कुछ पूछा और गुरु ने चांटा मार दिया और चांटा मारते ही वह निर्वाण को उपलब्ध हो गया। इस तरह की कहानियां पश्चिम में इस समय बहुत प्रचलित हो गई हैं, क्योंकि पश्चिम में बड़ी जल्दबाजी है। वे कहते हैं, यह बड़ा अच्छा है, कोई मिल जाए गुरु और मार दे एक चांटा, चलो एक दफा, झंझट मिटी।
मगर तुम्हें मालूम नहीं है कि वह कहानी अधूरी है, उसके पहले वे सज्जन छब्बीस साल तक ध्यान कर रहे थे जिनको चांटा मारा गया है। यह मत सोचना कि वे चले आ रहे थे उठ कर अभी बिस्तर से और मारा एक चांटा और ध्यान को उपलब्ध हो गए। वे छब्बीस साल से ध्यान कर रहे थे। यह चांटा तो बस आखिरी--कहते हैं न, ऊंट पर आखिरी तिनका! चढ़ाई तो बहुत दिन से चल रही थी, सामान चढ़ाया जा रहा था, आखिरी तिनके ने ऊंट बिठा दिया।
लेकिन पश्चिम में जो कहानियां प्रचलित हो रही हैं झेन के संबंध में,
वे पूरी नहीं हैं। क्योंकि पूरी कहानी में कौन राजी होगा? सुनते ही से कि छब्बीस साल पहले ध्यान करना पड़ेगा, उन्होंने कहा कि छोड़ो, एक तो चांटा खाओ, छब्बीस साल के बाद! किसी तरह राजी थे कि चलो, एक चांटा लग जाए एक दफा, झंझट मिटे। पहले छब्बीस साल ध्यान करो! इतनी देर के लिए कोई राजी नहीं है।
तो वे जो कहते हैं क्रमिक होती है उपलब्धि, उनकी बात में भी बल मालूम होता है--कि फिर छब्बीस साल तक क्या कर रहे थे?
लेकिन जो कहता है कि अक्रमिक है गति, उसकी बात में भी बल है। वह कहता है, छब्बीस साल तक ध्यान कर रहे थे, मगर ध्यान हुआ नहीं था। हो ही जाता तो फिर जरूरत क्या थी करने की? हुआ तो जब चांटा मारा तब हुआ। ऊंट पर चढ़ाया जा रहा था सामान, लेकिन बैठा नहीं था। और जब तक बैठा नहीं है तब तक खड़ा ही है न, यही कहोगे। तब तक यह तो नहीं कह सकते कि बैठ गया। इतने सेर बैठ गया, अब इतने सेर बैठ गया--अब इतने सेर, अब इतने मन बैठ गया। वह तो खड़ा ही है। वह जो आखिरी तिनका पड़ा, एक चांटा लगा, तब बैठा। जब बैठा तभी बैठा न।
तो दोनों की बात में बल है। अक्सर ऐसा हो जाता है कि जीवन के सत्य विरोधाभासी हैं, और इसलिए जब उस विरोधाभास के एक-एक अंग को दो तरह के पक्ष पकड़ लेते हैं, तो उनमें विवाद सदियों तक चलता है और हल नहीं होता।
लेकिन शांडिल्य ने अदभुत किया। शांडिल्य कहते हैंः यह विवाद समाप्त करो। भक्त के जीवन में यह विवाद उठता ही नहीं है। उसने दोनों को एक साथ अपने बीच जोड़ लिया है। उसका पहला कदम अंतिम भी है--और अंतिम पहला कैसे हो सकता है? भक्त विरोधाभासी है। वह अज्ञान में भी नाचता है, वह ज्ञान में भी नाचता है। उसका नाचना एक है। अंधेरे में भी नाचता है, रोशनी में भी नाचता है। घनी अमावस की रात थी, तब भी वह नाच रहा था, और उसके नाचने में कोई फर्क न था। और फिर पूर्णिमा की रात आ गई, और वह अब भी नाच रहा है। उसका नाचना सतत है। वह गंगा की धारा की तरह अविच्छिन्न बह रहा है। उसे कहां फिकर है कि कब अमावस और कब पूर्णिमा हो गई? कौन है हिसाब लगाने को वहां? वहां कोई अहंकार पीछे बैठा हुआ हिसाब-किताब नहीं कर रहा है। नाच में सब खो गया है। और जब नाच में नाचने वाला खो जाए, तो कैसी अमावस? अमावस ही पूर्णिमा हो जाती है। फिर कैसी पूर्णिमा? फिर भेद कहां? सब भेद अहंकार से पैदा होते हैं। जड़ ही कट गई।
किस कदर हुस्ने-नजर है तेरे दीवानों में
कलियां दामन की सजाई हैं गरेबानों में
हुस्न को खींच के ले आई मोहब्बत की कशिश
आके खुद शमअ को जलना पड़ा परवानों में

हुस्न को खींच के ले आई मोहब्बत की कशिश
परमात्मा को खोजने नहीं जाता भक्त।
हुस्न को खींच के ले आई मोहब्बत की कशिश
उसका प्रेम ही बुला लाता है, खींच लाता है।
हुस्न को खींच के ले आई मोहब्बत की कशिश
आके खुद शमअ को जलना पड़ा परवानों में
परवाने की तरह भक्त नहीं जाता है परमात्मा को खोजने, शमा ही परवाने को खोजती हुई आती है--यह अपूर्व घटना घटती है।
आके खुद शमअ को जलना पड़ा परवानों में
क्या खबर हमको हरम क्या है, कलीसा क्या है
जिंदगी हमने गुजारी इन्हीं मैखानों में
भक्त कहता है कि हम तो मधुशाला में ही रहे, हमें मंदिर और मस्जिद का कुछ पता नहीं।
क्या खबर हमको हरम क्या है, कलीसा क्या है
काबा क्या और गिरजा क्या, हमें कुछ पता नहीं। हमें भेद नहीं है। हमें समझ नहीं है। हम बेहोश हैं। हम मस्त हैं।
जिंदगी हमने गुजारी इन्हीं मैखानों में
भक्त तो भक्ति की शराब पीता है।
हमने देखी है तेरी मस्त जवानी की अदा
हंसते फूलों में, छलकते हुए पैमानों में
फूल खिलता है जो कोई तो ख्याल आता है
यह भी शायद है तेरे चाक गरेबानों में
दिले-नाकाम के उजड़े हुए गेसू "तौबा"
एक महफिल भी थी शायद उन्हीं दीवानों में
हमको "बिलकीस" तकल्लुफ की जरूरत क्या है
पी लिया करते हैं टूटे हुए पैमानों में
भक्त को इसकी बहुत फिकर नहीं कि पैमाना टूटा है या पूरा है। भक्त को मतलब पीने से है। भक्त को पात्रता से मतलब नहीं है, पात्र से मतलब नहीं है। पी लिया करते हैं टूटे हुए पैमानों में
भक्त को अंधेरे से मतलब नहीं है, नाच लिया करता है। भक्त को एक ही बात
से मतलब है कि मैं जैसा हूं, जहां हूं, वैसा ही तुझको अर्पित हूं, समर्पित हूं।
भक्त हो सको तो फिर कुछ और होने की जरूरत नहीं है। भक्त न हो सको तो मजबूरी में कोई और रास्ता चुनना पड़ता है। भक्त हो सको तो धन्यभागी हो! मैं तुम्हें भक्त बना सकूं! और ध्यान रहे कि मैं भक्त नहीं था, इसलिए सारी तकलीफें जान कर तुमसे कह रहा हूं। मुझे रेगिस्तान का अनुभव है, इसलिए तुमसे कह रहा हूं। इसलिए तुमसे कह सकता हूं कि बच सको रेगिस्तान से तो बच जाना। प्रेम के मरूद्यान से उपलब्ध हो सकता हो तो मरुस्थल में क्यों जाना? मुझे कोई कहने को नहीं था, इसलिए भटकना पड़ा। तुम्हें भटकने की कोई जरूरत नहीं है। तुम जैसे हो, जहां हो, वहीं से पुकारो। अब आ ही गए हो तो पूरे आ जाओ!
कह रही है पेड़ की हर शाख, अब तुम आ रहे अपने बसेरे।
मुझे अपना नीड़ बना लो। मुझे अपना बसेरा बना लो।
कह रही है पेड़ की हर शाख, अब तुम आ रहे अपने बसेरे।

आज दक्खिन की हवा ने आ
अचानक द्वार मेरे खड़खड़ाए,
हलचली है मच गई उन बादलों में
जो कि थे आकाश छाए,
जो कि सुन सौ प्रश्न मेरे चुप खड़ी थी
आज बारंबार झुक-झुक
कह रही है पेड़ की हर शाख, अब तुम आ रहे अपने बसेरे।

सूर्य की किरणें प्रखरतम घन तहों के
बीच होतीं, पार करतीं,
कालिमा पर ज्योति का विस्तार करतीं
चूमतीं जैसे कि धरती;
हे रजत पक्षी, तिमिर को भेदने से,
जो तुम्हारी राह छेंके
अब नहीं रुकते तुम्हारे पांख, अब तुम आ रहे अपने बसेरे। कह रही है पेड़ की हर शाख, अब तुम आ रहे अपने बसेरे।

हे रजत पक्षी, तिमिर को भेदने से,
जो तुम्हारी राह छेंके
अब नहीं रुकते तुम्हारे पांख, अब तुम आ रहे अपने बसेरे। कह रही है पेड़ की हर शाख, अब तुम आ रहे अपने बसेरे।

आज हीरे ले लहर आती, बिछाती
है कहीं मरकत किनारे,
आज उज्ज्वल मोतियों से हाथ अपने
है कहीं सरसिज संवारे,
पर तुम्हारा मन प्रलोभन दे लुभाना
है असंभव, आज कोई
पंथ में वैभव बिछाए लाख, अब तुम आ रहे अपने बसेरे। कह रही है पेड़ की हर शाख, अब तुम आ रहे अपने बसेरे।
आज इतना ही।

अथातो भक्ति जिज्ञासा, भाग 2 बत्तीसवां प्रवचन

अभीप्सा व प्रतीक्षा की एक साथ पूर्णता--प्रार्थना

पहला प्रश्नः धर्म क्या है? और आप कैसा धर्म पृथ्वी पर लाना चाहते हैं?

धर्म का अर्थ हैः स्वभाव की स्फुरणा। जो छिपा है, उसका प्रकट हो जाना।
जो गीत तुम्हारे हृदय में पड़ा है, वह गाया जा सके। जो तुम्हारी नियति है, वह पूरी हो सके।
और प्रत्येक की नियति थोड़ी-थोड़ी भिन्न है। इसलिए ऊपर से आरोपित कोई
भी आचरण धर्म नहीं हो पाता। धर्म की आधारशिला यही है--अंतःस्फूर्त हो। और यही भूल हो गई है। और इसी भूल को मैं सुधारना चाहता हूं।
बहुत बार धार्मिक चेतना का जन्म हुआ है, लेकिन ज्योति खो-खो गई। बुद्ध में जला दीया और बुझ गया। महावीर में जला और बुझ गया। कृष्ण में और क्राइस्ट में, जरथुस्त्र और मोहम्मद में जला और बुझ गया। दीया जलता रहा है, बार-बार जलता रहा है। परमात्मा मनुष्य से हारा नहीं। मनुष्य हारता गया और परमात्मा की आशा नहीं टूटी है। परमात्मा ने फिर-फिर कोशिश की है-- मनुष्य तक पहुंचने की, मनुष्य को खोज लेने की। मनुष्य कितने ही गहन अंधकार में हो, उसकी किरण आती रही है, उसका इशारा आता रहा है। उसके पैगंबर आते रहे हैं, उसका पैगाम आता रहा है। लेकिन कहीं कोई एक बुनियादी भूल होती रही। उस भूल को समझोगे, तो मैं क्या करना चाहता हूं, वह तुम्हें स्पष्ट हो जाएगा। उस भूल को सुधारने की ही तरफ सारा आयोजन है।
भूल ऐसी हुई--सहज है, होनी ही चाहिए थी, बचा नहीं जा सकता था; इसलिए जिनसे हुई उन्हें दोषी नहीं दे रहा हूं करार। होनी ही थी; अपरिहार्य थी। महावीर को ध्यान उपलब्ध हुआ। स्वभावतः ध्यान व्यक्ति के आचरण को बदल देता है। बदलेगा ही। अगर ध्यान आचरण को न बदलेगा तो कौन बदलेगा? सब बदल जाता है। ध्यान के साथ ही उठना-बैठना, सोना-जागना, सब बदल जाता है। लेकिन हमें ध्यान तो दिखाई पड़ता नहीं, वह तो अंतर्तम में घटता है, वैसी तो आंख हमारे पास नहीं, वैसी गहरी तो परख हमारे पास नहीं। हमें दिखाई पड़ता है आचरण। आचरण बाहर है। आचरण ध्यान का बहिर-अंग है। ध्यान के साथ आचरण रूपांतरित होता है, लेकिन हमें दिखाई पड़ता है आचरण रूपांतरित होता हुआ। स्वाभाविक, हमारे अहंकार की भाषा में, जहां हम कर्ता बने बैठे हैं, यह प्रतिध्वनि उठती है कि हम भी ऐसा ही आचरण बना लें। हम भी महावीर जैसे हो जाएं। बस वहीं भूल हो जाती है।
महावीर की अहिंसा स्वतःस्फूर्त, तुम्हारी अहिंसा ऊपर से आरोपित। दोनों में जमीन-आसमान का भेद हो गया। महावीर की अहिंसा पैदा हो रही है भीतर जन्मे प्रेम के कारण। तुम्हारी अहिंसा पैदा हो रही है नरक के भय के कारण, स्वर्ग के लोभ के कारण। महावीर में न तो नरक का भय है, न स्वर्ग का लोभ है। महावीर में कैसा नरक का भय? कैसा स्वर्ग का लोभ? नरक का भय और स्वर्ग का लोभ ही तो संसार की दशा है, सांसारिक चित्त की आकांक्षा है। कष्ट न हो, सुख हो, यही तो नरक और स्वर्ग। दुख से बचूं और सुख को पा लूं; दुख कभी न आए और सुख ऐसा आए कि कभी न जाए, यही तो सांसारिक मन की मनोकांक्षा है, यही तो महत्वाकांक्षा है। कहो इसे वासना, तृष्णा, या और कोई नाम दो। महावीर में कोई न तो नरक का भय है, न स्वर्ग की कोई आकांक्षा है। चित्त शांत हो गया, चित्त मौन हो गया, तरंगें उठतीं नहीं अब, समाधि फलित हुई है, वहां केवल साक्षीभाव रह गया है, वहां केवल द्रष्टा विराजमान है। इस द्रष्टा में कोई तरंग नहीं है--कोई विचार नहीं, कोई भाव नहीं, कोई वासना नहीं, कोई तृष्णा नहीं। न कहीं जाना है, न कुछ होना है। कोई भविष्य नहीं, कोई अतीत नहीं। सब ठहर गया है। संसार ठहर गया है।
इस ठहरेपन का नाम कृष्ण ने कहा--स्थितप्रज्ञ, जिसकी प्रज्ञा थिर हो गई है। स्थिर धीः, जिसकी धी स्थिर हो गई है। जैसे कोई दीया जलता हो ऐसे स्थान

में जहां वायु का कोई झोंका न आए, निर्वात भवन में दीया जलता हो, कोई कंप न उठता हो; लहर न उठती हो, ज्योति अकंप हो।
इस अकंप ज्योति का परिणाम यह है कि महावीर के जीवन में अहिंसा है। यह प्रेम का प्रतिफल है। यह भीतर जो बोध हुआ है, यह जो अनुभव हुआ है जीवन का, इस जीवन के अनुभव के साथ ही सारा जीवन सम्मानित हो गया है। यह मेरा ही जीवन है। इसमें कहीं भेद नहीं है। जब भी तुम किसी को मारते हो, अपने को ही मारते हो। और जब भी किसी को दुख देते हो, अपने को ही दुख देते हो। ऐसा महावीर को दिखाई पड़ा है। क्योंकि मैं ही मैं हूं। पत्थर में, पहाड़ में, चांद-तारों में एक का ही विस्तार है। ऐसी प्रतीति का परिणाम है अहिंसा।
लेकिन बाहर से जिन्होंने देखा, उन्हें तो यह प्रतीति दिखाई नहीं पड़ी
कि प्रेम का आविर्भाव हुआ है, कि एकात्म-बोध हुआ है, कि परमात्मा की अनुभूति हुई है, कि समाधि फली है--यह तो कुछ भी न दिखा। उन्हें दिखा कि महावीर पैर फूंक-फूंक कर रखते हैं, चींटी भी न मर जाए। पानी छान कर पीते हैं। कच्चा फल नहीं खाते। पका फल जो वृक्ष से अपने से गिर जाए। कच्चे फल को तोड़ो तो पीड़ा तो होगी। कच्चा है, अभी जुड़ा है, अभी टूटने का क्षण नहीं आया है। इसलिए महावीर पके फल का ही भोजन लेते हैं।
यह तो महावीर के भीतर की अंतर्दशा का बहिर्प्रतिफलन है। हम जो बाहर
से देखते हैं, उनको लगता है कि यह आदमी पैर फूंक-फूंक कर रखता है, रात करवट भी नहीं लेता है कि कहीं कोई कीड़ा-मकोड़ा न दब जाए, गीली भूमि में नहीं चलता क्योंकि गीली भूमि में कीटाणु होते हैं, पानी छान कर पीता है, रात भोजन नहीं करता, हमें ये बातें दिखाई पड़ीं। हमने इस पर सारा धर्म खड़ा कर लिया। बस धर्म झूठा हो गया। महावीर का धर्म पैदा हुआ था समाधि से, ध्यान से। हमारा धर्म पैदा हुआ है महावीर को बाहर से देखने से। हमने सोचा, चींटी पर पैर न पड़े, पानी छान कर पीओ, रात भोजन न करो, हिंसा मत करो, मांसाहार मत करो--बस, हम भी उसी अवस्था को उपलब्ध हो जाएंगे जिसको महावीर हुए हैं।
तुम इस तरह उपलब्ध न हो सकोगे।
ध्यान रहे यह सूत्रः भीतर के अनुसार बाहर को चलना पड़ता है; बाहर के अनुसार भीतर नहीं चलता। भीतर मालिक बैठा है, बाहर तो सब छाया है।
ऐसा समझो, मैं जहां जाता हूं, मेरी छाया भी मेरे पीछे आती है। लेकिन इससे उलटा नहीं हो सकता कि मेरी छाया जहां जाए, उसके पीछे मैं जाऊं। छाया तो जाएगी कहां? छाया छाया है। तुम मेरी छाया को कहीं ले जाओगे, उससे तुम मुझे न ले जा सकोगे। लेकिन अगर तुम मुझे ले जाओ तो छाया भी चली जाएगी। छाया को जाना ही होगा। महावीर के भीतर तो समाधि फली, आचरण में छाया झलकी। हमने छाया पकड़ी। वहीं धर्म झूठा हो गया।
फिर तुम महावीर जैसे नहीं हो। कोई महावीर जैसा नहीं है। इसलिए तुम्हारे ऊपर आचरण जबर्दस्ती हो गया। उससे तुम्हारे भीतर तालमेल भी नहीं बैठा। जबर्दस्ती होने के कारण तुम दुखी और उदास हो गए। दुखी-उदास होने के कारण धर्म का उत्सव समाप्त हो गया। धर्म रुग्णचित्त लोगों की बात हो गई। धर्म ऐसे लोगों की बात हो गई जो अपने को सताने में रस लेते हैं; या फिर ऐसे लोगों की बात हो गई जो अपने को सता कर तुम्हारा सम्मान लेते हैं। तुम्हारे मंदिर, गिरजों में, मस्जिदों में, गुरुद्वारों में बैठे हुए लोग--जो तुम्हारे सम्मान के पात्र हो गए हैं--तुम ख्याल रखना, वे सम्मान के पात्र होने के लिए ही सारा आयोजन किए हैं, और कुछ भी नहीं है। तुम चाहते हो, उपवास वाले को हम सम्मान देंगे--क्योंकि तुम्हारी धारणा है, जो उपवास करेगा वह महावीर जैसा हो जाएगा। निश्चित महावीर ने उपवास किए थे। लेकिन किए थे, यह कहना महावीर के संदर्भ में ठीक नहीं, उपवास हुए थे। मुनि कर रहा है। बस वहीं फर्क हो गया। होने और करने में जमीन-आसमान का फर्क है। भीतर ऐसी तल्लीनता बंध गई थी कि कभी-कभी उपवास हो गया था। याद ही न आई थी। मुझसे भी हुए हैं, इसलिए तुमसे कहता हूं। मैंने कभी उपवास नहीं किया, लेकिन हुए जरूर। कभी ऐसी बंध गई लौ भीतर कि याद ही न आई बाहर भोजन करने की। मन ऐसा मुग्ध हुआ भीतर कि बाहर के सारे द्वार-दरवाजे अपने से बंद हो गए! उपवास हुआ। पता भी नहीं चला कब हो गया। जब टूटा तभी पता चला। जब भीतर की चेतना फिर बाहर लौटी, तब याद आया कि दो दिन निकल गए हैं, भोजन नहीं हुआ।

फिर उपवास करने वाले लोग हैं। वे थोप लेते हैं उपवास को। वे जबर्दस्ती शरीर को सता लेते हैं। फिर उनके सताने में एक ही रस हो सकता है-- भीतर का तो कोई रस नहीं है--अब उनके सताने में एक ही रस हो सकता हैः उनके अहंकार को बाहर से आदर मिले, सम्मान मिले। कोई कहे कि तपस्वी हैं, कोई घोषणा करे कि महात्मा हैं।
तो धर्म, जो स्वभाव है, वह धीरे-धीरे आचरण का रूप ले लेता है। वह नीति
बन जाता है। धर्म का पतन है नीति। नीति धर्म नहीं है। और ध्यान रहे, धार्मिक व्यक्ति नैतिक होता है, लेकिन नैतिक व्यक्ति धार्मिक नहीं होता। अंतस के पीछे आचरण चलता है, आचरण के पीछे अंतस नहीं चलता।
तो धर्म का अर्थ है स्वभाव। और प्रत्येक में थोड़ा-थोड़ा भेद है। इसलिए प्रत्येक की धर्म की यात्रा थोड़ी-थोड़ी भिन्न होगी। व्यक्ति को ध्यान में रखना। लेकिन जब बाहर से आचरण के नियम बनाए जाते हैं, तो फिर कोई ध्यान में नहीं रखा जाता। बाहर से जो नियम बनाए जाते हैं, वे तो सभी के लिए एक से होंगे। उनमें फिर किसी का ध्यान न रखा जाएगा। वे व्यक्ति के अनुकूल नहीं होते, व्यक्ति को ध्यान में रख कर नहीं होते, सार्वजनीन होते हैं। सभी सार्वजनीन नियम घातक होते हैं।
इसलिए मैं यहां किसी को कोई नियम नहीं दे रहा हूं, सिर्फ बोध दे रहा हूं। आंख दे रहा हूं, आचरण नहीं दे रहा हूं। इशारे दे रहा हूं, जड़ मंतव्य, वक्तव्य नहीं दे रहा हूं। उपदेश दे रहा हूं, आदेश नहीं दे रहा हूं। समझने की क्षमता दे रहा हूं, फिर जीना तुम अपने ढंग से। चंपा चंपा के ढंग से खिलेगी और कमल कमल के ढंग से खिलेगा। कमल पानी में खिलेगा और चंपा को पानी में खिलाना चाहोगे--मार डालोगे, सड़ा डालोगे। और कमल को चंपा की जगह खिलाना चाहोगे--कैसे खिलेगा?
इतने ही भेद हैं व्यक्तियों में। खिलना सबको है। खिलने का अर्थ एक ही है। परम अवस्था में जो खिलाव होता है, वह तो एक ही है; लेकिन उस तक पहुंचने की जो यात्राएं हैं, वे बड़ी भिन्न हैं।
और फूलों के रंग अलग होंगे, फूलों के ढंग अलग होंगे, फूलों की गंध अलग होगी--खिलाव एक होगा। उस खिलाव का नाम परमात्मा है। लेकिन और सब अलग होगा। जो लोग बाहर से नियम और आचरण बनाते हैं, उन्हें यह बात याद ही नहीं रह जाती। फिर आचरण के नियम इतने महत्वपूर्ण हो जाते हैं कि हर एक को उन नियमों के अनुसार होना चाहिए।
ऐसा समझो कि दर्जी ने कपड़े पहले बना लिए। उसने एक हिसाब से कपड़े बना लिए। उसने पता लगा लिया कि पूना में औसत लंबाई कितनी है। सब आदमियों की लंबाई नाप ली गई, औसत लंबाई पा ली उसने; औसत मोटाई पा ली उसने। अब इस औसत में बड़ा धोखा है। इसमें छोटे बच्चे भी हैं, इसमें बड़े-बूढ़े भी हैं; इसमें लंबे आदमी भी हैं, इसमें ठिगने आदमी हैं; इसमें मोटे आदमी हैं, इसमें दुबले आदमी हैं--इसमें सब तरह के आदमी हैं। इन सबका हिसाब लगा लिया, सबका जोड़ लिया; सबकी लंबाई जोड़ ली, फिर सबका भाग दे दिया; सबकी मोटाई जोड़ ली और सबका भाग दे दिया; फिर औसत आदमी के कपड़े बना लिए।
अब औसत आदमी कहीं होता नहीं, ख्याल रखना। औसत आदमी सिर्फ गणित में होता है, जीवन में नहीं होता। अब औसत आदमी आ गया। इस औसत आदमी की ऊंचाई चार फीट छह इंच। उसने कपड़े तैयार कर लिए। इस औसत आदमी की एक मोटाई है, उसने कपड़े तैयार कर लिए। अब तुम गए; तुम औसत आदमी नहीं हो। तुम छह फीट के लंबे आदमी हो। चार फीट छह इंच के कपड़े हैं। वह कहता हैः तुम गलत हो। तुम औसत से भिन्न! तुम नियम के विपरीत! आओ तुम्हें मैं छांट दूं।
या हो सकता है, तुम चार ही फीट के हो, ठिगने हो बहुत; तो वह कहता हैः आओ तुम्हें जरा खींचतान कर बड़ा कर दूं। कपड़े महत्वपूर्ण हो गए, आदमी का कोई ध्यान न रहा।
मेरे लिए व्यक्ति का मूल्य है। मेरा मन व्यक्ति के प्रति परम सम्मान
से भरा है। मैं तुम्हारे लिए कोई कपड़े नहीं बनाता। तुम्हें बिना सिला कपड़ा दे रहा हूं। तुम अपने कपड़े बना लेना। वह बिना सिला कपड़ा समझ है। फिर समझ के अनुसार तुम अपने कपड़े बना लेना। कपड़े तुम्हीं बनाना! किसी और के आधार पर बनाए गए कपड़े कभी तुम्हें ठीक न आएंगे--या तो ढीले होंगे, या चुस्त

होंगे, या लंबे होंगे, या छोटे होंगे, कुछ न कुछ गड़बड़ रहेगी; और तुम हमेशा बेचैनी अनुभव करोगे।
इसलिए तुम्हारे तथाकथित धार्मिक आदमी बेचैन मालूम होते हैं। महावीर
का कपड़ा पहने हुए हैं। महावीर जैसा व्यक्तित्व नहीं है। बैठे हैं आंख बंद किए, आंख बंद नहीं होती। खड़े हैं नग्न, और सकुचा रहे हैं, और भीतर बड़ी ग्लानि हो रही है, और बड़ी घबड़ाहट भी हो रही है कि यह मैं क्या कर रहा हूं! कोई देख न ले! कोई क्या कहेगा? पागल न समझे! या तुम मंदिर में पूजा कर रहे हो, प्रार्थना कर रहे हो--और प्रार्थना में तुम्हारा हृदय नहीं है। लेकिन कर रहे हो; तुम्हारे परिवार में होती रही है। तुम सिर्फ औपचारिकता निभा रहे हो। धर्म झूठा हो जाता है औपचारिकता में।
धर्म होना चाहिए तुम्हारे अंतःकरण से निष्पन्न। तुम अपना धर्म खोजो।
न तो हिंदू धर्म तुम्हारा धर्म है, न ईसाई धर्म तुम्हारा धर्म है। ईसाई धर्म है जीसस के आधार से बनाए गए कपड़े। और हिंदू धर्म है कृष्ण के या राम के आधार से बनाए गए कपड़े। और जैन धर्म है महावीर के आधार से बनाए गए कपड़े। इसीलिए तुम इतने बेहूदे और बेढंगे मालूम हो रहे हो। इसीलिए पृथ्वी धर्म-शून्य हो गई है। सब कपड़े पहने हैं, लेकिन सब गलत कपड़े पहने हुए हैं।
तुम अपने कपड़े बनाओ! समझ तुम्हें देता हूं, दृष्टि तुम्हें देता हूं, ध्यान तुम्हें देता हूं, भक्ति, प्रेम तुम्हें देता हूं--फिर तुम अपने जीवन का आचरण खुद ही निर्मित करो। और तब तुम्हारे भीतर एक उत्फुल्लता होगी। नहीं तो बड़ी छोटी-छोटी बातें बड़ा कष्ट देती हैं।

एक सज्जन मेरे पास आए। वे कहते हैं कि मुझसे क्या होगा? मैं बड़ा पापी हूं, अपराधी हूं!
मैंने कहा, तुम्हारा अपराध क्या? पाप क्या? आदमी भले मालूम पड़ते हो।
तुम्हारी आंखें देखता हूं तो ऐसी कोई पापी की आंखें नहीं मालूम पड़तीं।
तुम्हारे चेहरे पर पाप का कोई निशान भी नहीं मालूम पड़ता।
उन्होंने कहा, नहीं आपको साहब पता नहीं! आठ बजे सोकर उठता हूं।
अब इस व्यक्ति ने किताबें पढ़ ली हैं, जिनमें लिखा है कि ब्रह्ममुहूर्त में उठना चाहिए; ब्रह्ममुहूर्त में उठना पुण्य है। अब आठ बजे सोकर उठता है, इसलिए ग्लानि से भरा है। पांच बजे सोकर उठने में कोई ऐसी धार्मिकता नहीं है। क्या धार्मिकता होगी? सब समय समान है। अब इसकी अड़चन यह है कि इसको दो बजे रात तक तो नींद ही नहीं आती। अब जो आदमी दो बजे तक सो न सके, वह अगर आठ बजे तक सोए तो कुछ हैरानी तो नहीं है। जिन गुरुओं के पास जाता रहा होगा, वे कहते हैं कि नौ बजे सो जाओ। वह कहता है, मैंने कोशिश भी कर ली, मैं पड़ भी जाता हूं बिस्तर पर, मगर नींद जब आती है तब आती है। और वह दो बजे आती है नींद, और वह नौ बजे से लेकर दो बजे तक पड़े रहना और भी कष्टपूर्ण हो जाता है। करवटें बदलता हूं, परेशान होता हूं--और ग्लानि भरती है कि मुझ जैसा पापी कौन! नींद भी नहीं आती समय पर! सुबह उठता हूं तो आठ बजे, नौ बजे। तब चित्त प्रसन्न रहता है। अगर जल्दी उठ आता हूं तो दिन भर उदासी और तनाव और मस्तिष्क में बोझ बना रहता है।
अब इसको पापी करार दे दिया। वह शिवानंद का शिष्य था। शिवानंद के पास गया। उन्होंने कहा, यह तो नहीं चलेगा। ब्रह्ममुहूर्त में तो उठना ही चाहिए।
अब कुछ लोग ऐसे हैं जिनको तीन बजे के बाद नींद नहीं आती। जिनको दो बजे
के पहले नींद नहीं आती, उनको तुम पापी बना देते हो; और जिनको तीन बजे के बाद नींद नहीं आती, उनको तुम पुण्यात्मा बना देते हो! ऐसे लोग हैं जो तीन बजे के बाद तड़फते हैं उठने के लिए। उन्हें कोई बहाना मिल जाए तो वे जल्दी से उठ आएं। उनकी नींद पूरी हो गई है।
मेरे हिसाब में कोई पापी नहीं, कोई पुण्यात्मा नहीं। यह भी कोई बात है! आठ बजे उठे तो आठ बजे उठे। जो सुगम मालूम होता है, जो शरीर को स्वाभाविक मालूम होता है, जो तुम्हारी प्रकृति को अनुकूल आता है, वही धर्म है। और यही हर चीज के संबंध में मैं तुमसे कहना चाहता हूं। जीवन में किसी भी चीज से अकारण पाप इत्यादि की धारणाएं मत पकड़ लेना। क्षुद्र बातों में मत उलझ

जाना। यहां बड़ा विराट कुछ करने को तुम्हारा होना हुआ है। तुम छोटी-छोटी बातों में मत उलझ जाना।
दुनिया के सारे धर्म छोटी-छोटी बातों के विस्तार में उलझ गए हैं। विस्तार इतना हो गया है कि मूल खो गया है। मुझे जैन मुनियों ने कहा कि हमें फुर्सत ही नहीं ध्यान करने की। क्योंकि और सब नियम का पालन करते-करते समय कहां बचता है?
यह तो हद हो गई! ध्यान करने को आदमी मुनि होता है। मुनि का अर्थ होता हैः जो मौन सीखने गया, जो मौन होने गया। वह ध्यानी का ही एक रूप है। लेकिन ध्यानी होने गए थे, और दूसरी चीजों में उलझ गए। गए थे राम भजन को, ओटन लगे कपास। और वे कहते हैंः फुर्सत नहीं मिलती! यही तो दुकानदार कहता है कि फुर्सत नहीं मिलती। और यही अगर मुनि कहे कि फुर्सत नहीं मिलती ध्यान को... ! क्योंकि और नियम ऐसे हैं। उन नियमों में ही झंझट खड़ी हो जाती है। उन नियमों में ही सारा समय चला जाता है। थोड़ा-बहुत समय बचता है, वह उपदेश में लगाना पड़ता है।
खुद पाया नहीं है, उपदेश क्या दे रहे हो? किसको दे रहे हो? खुद भटके हो, औरों को भटकाओगे? यह तो सुनिश्चित पाप है। यह बड़े से बड़ा पाप है कि तुमने न जाना हो और किसी को तुम उपदेश दो। इससे बड़ा पाप और क्या होगा? एकाध दिन अगर रात पानी पी लो, तो मैं नहीं समझता इतना बड़ा पाप है; कि एकाध दिन भूख लग आए और रात एकाध फल खा लो, तो कोई इतना बड़ा पाप है! मगर बिना जाने, बिना अनुभव किए तुम सैकड़ों लोगों को समझा रहे हो, मार्ग दे रहे हो, चला रहे हो--जिन मार्गों पर तुम कभी चले नहीं--इससे बड़ा पाप क्या होगा?
तुम देखते हो, जिस आदमी के पास डाक्टर का प्रमाणपत्र नहीं है और वह दवाइयां बांटता हो, तो खतरनाक है। मगर उसकी दवाइयां तो ज्यादा से ज्यादा शरीर को नुकसान पहुंचा सकती हैं। लेकिन जिन्होंने ध्यान नहीं जाना है, ये मार्गदर्शन दे रहे हैं। इनकी औषधियां जन्मों-जन्मों तक तुम्हें भटका सकती हैं। भटका रही हैं। और इन्हें ग्लानि भी नहीं पकड़ती, इन्हें अपराध का भाव भी नहीं पकड़ता, क्योंकि ये सिर्फ नियम का पालन कर रहे हैं। साधु को कहा गया है कि उसे इतना उपदेश तो देना ही चाहिए; उसे इतने नियम तो पालन करने ही चाहिए; उसे इतने बजे उठ आना चाहिए; उसे इतने बजे मलमूत्र विसर्जन को जाना चाहिए; उसे इतना अध्ययन करना चाहिए; उसे इतना शास्त्र का पाठ करना चाहिए। इसी सबमें उलझा डाला है।
मैं तुम्हें कोई आचरण नहीं देना चाहता। मैं तुम्हें कोई अनुशासन नहीं देना चाहता। मैं तुम्हें स्वतंत्रता देना चाहता हूं। मैं तुम्हें समस्त सिद्धांतों से स्वतंत्रता देना चाहता हूं। मैं तुम्हें उत्तरदायी बनाना चाहता हूं। तुम मेरी बात समझना।
स्वतंत्रता का अर्थ यह नहीं होता कि मैं तुम्हें उच्छृंखल बनाना चाहता हूं। मैं तुम्हें उत्तरदायी बनाना चाहता हूं। मैं तुमसे कहना चाहता हूं कि तुम्हारा जीवन मूल्यवान है। इसको ऐसे मत गंवा देना। इसे हर किसी की बात मान कर मत गंवा देना। इसे हर किसी के कपड़े पहन कर मत गंवा देना। तुम्हारा जीवन कीमती है। परमात्मा तुमसे पूछेगाः क्या किया जीवन का? तो तुम उत्तरदायी होओगे, तुम्हारे मुनि महाराज नहीं; और न तुम्हारे साधु, और न तुम्हारे महात्मा; कोई उत्तर नहीं देगा, तुम्हें उत्तर देना पड़ेगा। तुम्हारे लिए तुम्हीं जी रहे हो, तुम्हारे लिए तुम्हीं मरोगे, और तुम्हारे लिए तुम्हीं उत्तरदायी हो। इसलिए अपने जीवन को इस ढंग से जीना कि तुम उत्तर दे सको।
और कौन निर्णय करेगा कि तुम कैसे जीओ? तुम कब उठो, क्या खाओ, क्या पीओ-- कौन निर्णय करेगा? किसी को हक भी नहीं है। यह गुलामी छूटनी चाहिए।
मेरे लिए धर्म है स्वभाव और स्वभाव की परम स्वतंत्रता। तुम अपना छंद स्वयं बनो। मुक्ति पहले कदम से शुरू हो जानी चाहिए। यह पहला कदम है। और यही मुक्ति बढ़ते-बढ़ते मोक्ष बन जाएगी।
फिर, जो अब तक दुनिया में धर्म के नाम पर समझा गया, पकड़ा गया, वह अनिवार्यरूपेण जीवन-विरोधी था। हो ही गया जीवन-विरोधी। महावीर नहीं थे जीवन-विरोधी, न बुद्ध थे जीवन-विरोधी। कोई ज्ञानी कभी जीवन-विरोधी नहीं हो

सकता। क्योंकि इसी जीवन से तो परम जीवन पाया जाता है। यह जीवन तो परम जीवन का द्वार है। इस संसार से ही तो हम सत्य की तरफ जाते हैं। इस संसार में अगर कांटे भी गड़ते हैं तो वे कांटे भी तुम्हारे मित्र हैं; अगर न गड़ते तो तुम कभी सत्य की तरफ न जाते। इस संसार के दुख भी ऐसे हैं कि तुम उनके प्रति जिस दिन जागोगे, उस दिन आभार प्रकट करोगे। क्योंकि उन्हीं के द्वारा तो तुम परमात्मा तक पहुंचे। उन्हीं के द्वारा तो तुम समाधि तक पहुंचे।
जरा थोड़ा सोचो! इस जगत में कोई दुख न हो, कोई पीड़ा न हो, कोई परेशानी न हो--तुम सोचोगे समाधि की बात? समाधि की तुम्हें याद कौन दिलाएगा? ये कांटे जो चारों तरफ से चुभते हैं, तुम्हें सजग रखते हैं। ये तुम्हें समाधि की तरफ ले जाते हैं। इन कांटों का प्रयोजन है। इस जगत के दुख सिर्फ दुख नहीं हैं, उन दुखों के भीतर बड़ा आयोजन है, उन दुखों में बड़े इशारे छिपे हैं। वे दुख तुम्हें याददाश्त दिलाने के लिए हैं। वे दुख अभिशाप नहीं, वरदान हैं। इसलिए मैं एक ऐसा धर्म पृथ्वी पर देखना चाहता हूं, जो जीवन-विरोधी न हो। क्योंकि इस लोक में ही परलोक छिपा है। इन्हीं वृक्षों, पौधों, पत्थरों, पहाड़ों में परमात्मा छिपा है। इन्हीं लोगों में, जो तुम्हारे पास बैठे हैं, परमात्मा का आवास है। पड़ोसी में परमात्मा छिपा है। तुम्हारे भीतर परमात्मा छिपा है। तुम्हारी पत्नी में, तुम्हारे पति में, तुम्हारे बेटे में, तुम्हारे पिता में परमात्मा छिपा है। तुम ऊपर-ऊपर से देखते हो, इसलिए चूक जाते हो। लेकिन ऊपर-ऊपर से देखने के कारण चूक जाओ, तो इस फल को फेंक मत देना, क्योंकि इस फल के भीतर रस छिपा है, जो तुम्हें तृप्त कर सकता था।
लेकिन अड़चन इसलिए आ गई, महावीर समाधि को उपलब्ध हुए, बुद्ध समाधि को-- लोगों ने आचरण पकड़ा, लोग आचरण के अनुसार चले। उन्हें भीतर का तो कुछ पता न चला, थोथे हो गए। बाह्य क्रियाकांड में उलझ गए। यतन में उलझ गए, भजन का पता नहीं चला। उसी क्रियाकांड में डूब गए। उससे अहंकार और बढ़ा। उससे अहंकार और सूक्ष्म हुआ। और उस अहंकार के कारण उन्हें कुछ भी दिखाई न पड़ा, सब अंधापन छा गया; और अंधेरा हो गया।
मेरे देखे, संसारी इतने अंधे नहीं हैं जितने तुम्हारे तथाकथित संन्यासी। और न संसारी इतने दंभी हैं, जितने तुम्हारे महात्मा। जीवन का एक अपूर्व अवसर है। इस अपूर्व अवसर का उपयोग करो--चुनौती की तरह। इससे भागना नहीं है। इस अग्नि में खड़े होना है। यही अग्नि तुम्हें निखारेगी। इसी अग्नि में निखर कर तुम कुंदन बनोगे। तुम्हारा कचरा भर जलेगा, और कुछ जलने वाला नहीं है। इसलिए भागो मत, भागे तो कचरा बच जाएगा।
पूछा तुमनेः "कैसा धर्म इस पृथ्वी पर आप लाना चाहते हैं?"
जीवन-स्वीकार का धर्म। परम स्वीकार का धर्म। चूंकि जीवन-अस्वीकार की बातें बहुत प्रचलित रही हैं, इसलिए स्वभावतः लोग देह के विपरीत हो गए। अपने शरीर को ही सताने में संलग्न हो गए। और यह देह परमात्मा का मंदिर है। मैं इस देह की प्रतिष्ठा करना चाहता हूं। और चूंकि लोग संसार के विपरीत हो गए, देह के विपरीत हो गए, इसलिए देह के सारे संबंधों के विपरीत हो गए। भूल हो गई।
देह के ऐसे संबंध हैं, जिनसे मुक्त होना है। और देह के ऐसे संबंध हैं, जिनमें और गहरे जाना है। प्रेम ऐसा ही संबंध है। प्रेम में गहराई बढ़नी चाहिए। घृणा में गहराई घटनी चाहिए। घृणा से तुम मुक्त हो सको तो सौभाग्य। लेकिन अगर प्रेम से मुक्त हो गए तो दुर्भाग्य।
और मजा यह है कि अगर तुम्हें घृणा से मुक्त होना हो तो सरल रास्ता यह
है कि प्रेम से भी मुक्त हो जाओ। और तुम्हारे अब तक के साधु-संन्यासियों ने सरल रास्ता पकड़ लिया। न रहेगा बांस, न बजेगी बांसुरी! लेकिन बांस और बांसुरी में बड़ा फर्क है। बांसुरी बजनी चाहिए। बांस से बांसुरी बनती है, लेकिन बांसुरी बड़ा रूपांतरण है। बांसुरी सिर्फ बांस नहीं है। बांसुरी में क्रांति घट गई। तुम अभी बांस जैसे हो, बांसुरी बन सकते हो।
घृणा से भयभीत हो गए लोग। क्रोध से भयभीत हो गए। भाग गए जंगलों में।
जब कोई रहेगा ही नहीं पास, तो न घृणा होगी, न क्रोध होगा। यह तो ठीक, लेकिन प्रेम का क्या होगा? प्रेम भी नहीं होगा। इसलिए तुम्हारे तथाकथित महात्मा

प्रेम-शून्य हो गए, प्रेम-रिक्त हो गए। उनके प्रेम की रसधार सूख गई। वे मरुस्थल की भांति हो गए। और वहीं चूक हो गई। परमात्मा तो मिला नहीं, संसार जरूर खो गया। सत्य तो मिला नहीं, इतना ही हुआ कि जहां सत्य मिल सकता था, जहां सत्य को खोजा जा सकता था, जहां चुनौती थी पाने की, उस चुनौती से बच गए। एक तरह की शांति मिली--लेकिन वह मुर्दा, मरघट की। एक और शांति है--उत्सव की, जीवंत, उपवन की। मैं उसी शांति के धर्म को लाना चाहता हूं।
तुम जीवन को अंगीकार करो, देह को अंगीकार करो। परमात्मा ने जो दिया है, सब अंगीकार करो। उसने दिया है तो कुछ उसमें राज छिपा होगा ही! इस वीणा को फेंक मत देना, इसमें संगीत छिपा है। इसे बांस मत समझ लेना, इसमें बांसुरी बनने की क्षमता है। जल्दी छोड़-छाड़ कर भाग मत जाना। तलाश करना। हालांकि तलाश कठिन है। होनी ही चाहिए। क्योंकि तलाश के लिए कीमत चुकानी पड़ती है। जो खोजेगा, वह पाएगा। इसी जीवन में खोजना है।
परमात्मा ने संसार बनाया कभी, ऐसा मत सोचो। परमात्मा संसार रोज बना रहा है, प्रतिपल बना रहा है। ऐसा कोई बना दिया एक दफा और खत्म हो गया काम! तो फिर नये पत्ते कैसे आ रहे हैं? फिर नये फूल कैसे खिल रहे हैं? फिर चांद-तारे कैसे चल रहे हैं? फिर नये बच्चे कैसे पैदा हो रहे हैं? रोज नये का जन्म हो रहा है।
तो यह धारणा तुम्हारी गलत है कि परमात्मा ने सृष्टि की। परमात्मा सृष्टि कर रहा है। और अगर तुम मेरी बात और भी ठीक से पकड़ना चाहो, तो मैं कहता हूंः परमात्मा सृष्टि की प्रक्रिया है। परमात्मा कोई अलग व्यक्ति नहीं है कि बैठा है और बना रहा है चीजों को। कुम्हार नहीं है कि घड़े बना रहा है। नर्तक है--नाच रहा है। उसका नाच उसका अंग है। इन सब फूलों में, पत्तों में, सागरों में, सरोवरों में उसका नाच है। तुममें, मुझमें, बुद्ध-महावीर में उसका नाच है। उसकी भाव-भंगिमाएं हैं। उसकी अलग-अलग मुद्राएं हैं। इनमें पहचानो!
तो मैं भगोड़े धर्म से छुटकारा दिलाना चाहता हूं। देह स्वीकृत हो, देह मंदिर बने। प्रेम स्वीकृत हो, प्रेम पूजा बने। संसार का सम्मान हो, क्योंकि उसमें स्रष्टा छिपा है। अभी भी उसके हाथ काम कर रहे हैं। अगर तुम जरा संसार में गहरा प्रवेश करोगे तो उसके हाथ का स्पर्श तुम्हें मिल जाएगा, उसका हाथ तुम्हारे हाथ में आ जाएगा। किसी फूल में कभी उतरे हो गहरे? तुम्हें उसका हाथ पकड़ में आ जाएगा। किसी आंख में उतरे हो गहरे? तुम्हें उसकी झलक पकड़ में आ जाएगी। किसी हृदय में गए हो गहरे? तुम्हें उसका घर मिल जाएगा वह कहां छिपा है।
तो मूल्यों का एक पुनर्मूल्यांकन करना है। सारे मूल्यों का पुनर्मूल्यांकन करना है। और पृथ्वी आज तैयार हो गई है इस घटना के लिए। क्योंकि पांच हजार साल के दमनकारी धर्मों ने, पलायनवादी धर्मों ने मनुष्य को काफी सजग कर दिया है। मनुष्य तैयार है अब कि कुछ नया आविर्भाव होना चाहिए। लोग प्रतीक्षा कर रहे हैं, लोग आतुरता से राह देख रहे हैं, कि परमात्मा का कोई नया अवतरण होना चाहिए। कोई नई भाषा मिलनी चाहिए धर्म को। और चूंकि ऐसी भाषा नहीं मिल पा रही है, और ऐसा नया अवतरण नहीं हो पा रहा है, और लोगों को दिखाई नहीं पड़ रहा है कि कैसे धार्मिक हों, तो गलत धर्म पैदा हो रहे हैं। वे भी खोज की वजह से पैदा हो रहे हैं।
आदमी और धर्म के बीच कोई सांयोगिक संबंध नहीं है, जैसा कि मार्क्स और कम्युनिस्ट सोचते हैं। अनिवार्य संबंध है। आदमी बिना धर्म के हो ही नहीं सकता। आदमी और धार्मिक न हो, यह असंभव है! फिर एक ही उपाय बचता हैः ठीक ढंग से धार्मिक हो कि गलत ढंग से धार्मिक हो। तुम चकित होओगे जान कर कि रूस में, जहां कि क्रांति कम्युनिस्टों के हाथ से घटी और मंदिर-मस्जिद और गिरजे करीब-करीब समाप्त कर दिए गए, वहां भी लोग धर्म से मुक्त नहीं हो गए हैं। धर्म की आकांक्षा इतनी प्रबल है कि अगर असली धर्म न मिलेगा तो लोग नकली से चलाएंगे। वे जाकर लेनिन की कब्र पर ही फूल चढ़ाने लगे। लेनिन ही अवतार मालूम होने लगे। क्रेमलिन मंदिर बन गया। मार्क्स की किताब दास कैपिटल उनकी कुरान, उनकी बाइबिल बन गई। उनकी नई त्रिमूर्ति पैदा हो गई-- मार्क्स, एंजिल्स, लेनिन। ब्रह्मा, विष्णु, महेश गए, मगर ये नये... !

जर्मनी में हिटलर करीब-करीब लोगों के लिए ऐसा हो गया जैसे वही पूजनीय है।
लोग पूजा का कोई स्थल चाहते हैं। अगर तुम सब स्थल छीन लोगे, तो वे अपने
ही स्थल बना लेंगे--कुछ भी बना लेंगे, कुछ भी खड़ा कर लेंगे, जो मिल जाएगा उसी की पूजा करेंगे। लेकिन पूजा, प्रार्थना, प्रेम मनुष्य के भीतर छिपी हुई कोई अनिवार्य आवश्यकता है।
मेरे पास पत्र आते हैं। कल ही एक पत्र आया रूस से एक महिला का, कि वह आना चाहती है, लेकिन सरकार आज्ञा नहीं देती। तो उसने लिखा है, यहां से मैं निमंत्रण दिलवाऊं। कोई यहां से गारंटी लेने को हो तीन महीने के लिए, तो शायद स्वीकृति मिल जाए। लेकिन उसका पत्र इतना प्यारा है कि लक्ष्मी डरी! किसी से स्वीकृति तो दिलवा दे, लेकिन वह फिर न जाए तो क्या करें? उसके पत्र से ऐसा लगता है कि फिर वह जाने वाली नहीं। तो जो स्वीकृति लेगा, वह झंझट में पड़ जाएगा; जो निमंत्रण देगा, वह झंझट में पड़ जाएगा। उसके पत्र से लगता नहीं कि एक दफा वह आ गई रूस के बाहर, तो फिर भीतर जाएगी।
आदमी के भीतर अनिवार्य तड़प है। और तड़प गहरी हो गई है। क्योंकि सब पुराने धर्म फीके पड़ गए हैं। और सब नये तथाकथित कम्युनिस्ट और फासिस्ट धर्म झूठे हैं, थोथे हैं, उनसे आत्मा तृप्त नहीं होती। तो मनुष्य बड़ी आतुरता से प्रतीक्षा कर रहा हैः कोई नई किरण उतरे।
इसलिए मैंने कहा कि यह गैरिक आग फैलती जाए सारी दुनिया में तो नई किरण उतर सकती है। और इस तरह का संन्यास ही अब भविष्य का संन्यास हो सकता है। भगोड़ा संन्यास नहीं हो सकता। जीवन को अंगीकार करने वाला संन्यास ही भविष्य में स्वीकृत हो सकता है।
और मैं कोई कारण नहीं देखता हूं कि कहीं भाग कर जाने की जरूरत है। तुम जहां हो, वहीं अगर तुमने हृदयपूर्वक पुकारा तो परमात्मा आता है। असली बात हृदयपूर्वक पुकारने की है। असली बात न तो पवित्रता की है, न शुद्धता की है, न योग की है, न त्याग की है, असली बात इतनी ही है कि तुम परिपूर्ण असहाय होकर, निर-अहंकार होकर, उसके चरणों में गिर जाओ। तुम थोड़े भी बचे, तो रुकावट रहेगी। तुम बिल्कुल चले गए, उसी क्षण रुकावट टूट जाती है।

दूसरा प्रश्नः तेरे ही इशारे पर मैंने अपना पूरा प्यार उंडेल दिया और
जब तेरी तस्वीर के सामने होती हूं तो तुझमें उसी को देखती हूं। और उसके पास होती हूं तो तेरा ही रूप उसमें झलकता है। तो क्या ये मेरी आंखें धोखा खा रही हैं? प्रभु बताने की कृपा करें।

नहीं चेतना, आंखें खुल रही हैं, धोखा नहीं खा रही हैं। आंखें पहली बार उपलब्ध हो रही हैं। धीरे-धीरे ये आंखें और गहराएंगी, इनकी धुंध और कटेगी। तब चित्र की भी जरूरत न रह जाएगी। तब वृक्ष में भी और पत्थर में भी, सब तरफ वही दिखाई पड़ने लगेगा। यह शुरुआत है।
जो गुरु में दिखाई पड़ता है, उसे एक दिन सारे संसार पर फैला देना है।
गुरु तो सिर्फ द्वार है। इसलिए नानक ने बिल्कुल ठीक मंदिर को नाम दिया-- गुरुद्वारा। वह मुझे पसंद है। गुरु द्वार है। उससे तो सिर्फ विराट आकाश की तरफ यात्रा शुरू होती है।
शुभ हो रहा है। ऐसी ही आंखें चाहिए। ऐसी ही आंखों को दर्शन होता है। ऐसी ही आंखों को दृष्टि उपलब्ध होती है।
मैंने सुना है, एक झेन कहानी--
ए मांक सेड, आई एम टोल्ड दैट आल बुद्धाज एंड आल दि बुद्धा-धर्माज ईस्यु फ्रॉम वन सूत्रा। व्हाट कुड दिस सूत्रा बी?
दि मास्टर रिप्लाइड, रिवाल्विंग ऑन फॉरएवर; नो चेकिंग इट; एंड नो आर्ग्युइंग, नो टाकिंग कैन कैच इट।
हाउ शैल देन आई रिसीव एंड होल्ड इट?
दि मास्टर लाफ्ड एंड सेड, इफ यू विश टु रिसीव एंड होल्ड इट, यू शैल हियर इट विद योर आईज।

एक भिक्षु ने पूछा अपने गुरु को, मैंने सुना है कि समस्त बुद्ध और समस्त बुद्धों के धर्म, एक ही संक्षिप्त सूत्र से पैदा हुए हैं। वह सूत्र क्या है?
सदगुरु ने कहा, सदा घूमता रहता वह, सदा प्रवाहमान! उसे पकड़ा नहीं जा सकता। वह ठहरता ही नहीं। वह सदा गतिमान। उसे रोका नहीं जा सकता। और कोई तर्कों के द्वारा भी उसको पकड़ा नहीं जा सकता। और कोई शब्द उसे प्रकट करने में समर्थ भी नहीं हैं।
स्वभावतः भिक्षु ने पूछा, तब मैं उसे किस तरह ग्रहण करूं? और किस तरह आत्मसात करूं? और किस तरह अपने भीतर सम्हालूं? कैसे उसे अपनी आत्मा में वास करने को पुकारूं?
सदगुरु हंसा और उसने कहा, यदि तुम चाहते हो उसे स्वीकार करना, ग्रहण करना और अपने भीतर बसा लेना, तो तुम्हें एक कला सीखनी होगी। कानों से सुनना तुम जानते हो, अब तुम्हें आंखों से सुनना सीखना पड़ेगा।
आंखों से सुनना! चेतना, वही तुझे हो रहा है।
एक दृष्टि, एक नई दृष्टि का जब जन्म होता है, तो बेचैनी भी होती है, परेशानी भी होती है। क्योंकि सब पुराना अस्तव्यस्त हो जाता है। फिर पुराने से कोई समायोजन नहीं रह जाता। नई दृष्टि का आविर्भाव एक अराजकता पैदा करता है। नई दृष्टि के साथ नये जीवन की शुरुआत है--नई आत्मा की।
शुभ हो रहा है। भयभीत न होना। और सोचना भी मत कि क्या मैं धोखा खा रही हूं।
मेरा तुम्हारे पास होना और तुम्हारा मेरे पास होना इसीलिए है कि मैं तुम्हें धोखा न खाने दूं। और बहुत बार तुम्हें ऐसा लगेगा कि जब तुम धोखा खाओगे तब तो लगेगा कि सच हो रहा है--क्योंकि तुम्हारी आंखें धोखा खाने की जन्मों-जन्मों से आदी हैं। उन्होंने धोखा ही खाया है। इसलिए धोखा तो सच लगेगा। और बहुत बार इससे उलटा भी होगा, जब सच होने लगेगा तो तुम्हारा मन कहेगा--कहीं धोखा तो नहीं हो रहा है? इसलिए सदगुरु की जरूरत है, कि कोई तुम्हें कह सके कि यह धोखा है और यह धोखा नहीं है।
एक बात ख्याल रखना, जो तुम्हारे पुराने अतीत से समायोजन पाता हो, उसमें धोखा हो सकता है। जिससे तुम्हारा मन राजी हो सकता है, उसमें धोखा है। जिससे तुम्हारा मन राजी न हो, बेचैन होने लगे, जिसे तुम्हारा मन आत्मसात न कर सके और जिसके साथ मन सोचने लगे--क्या हो रहा है, क्या नहीं हो रहा है? मैं पागल तो नहीं हो रहा? कोई भ्रम तो नहीं खा रहा? तब तुम समझ लेना, बहुत संभावना इस बात की है कि सत्य करीब आ रहा है। मन असत्य से इतना रच-पच गया है कि जब सत्य करीब आता है तो उसे धोखे जैसा मालूम होता है। पूछा तुमनेः "तेरे इशारे पर मैंने अपना पूरा प्यार उंडेल दिया।"
यह सच है। चेतना को मैं देख रहा हूं। थोड़े ही दिनों में उसका पौधा खूब हरा हुआ है। सब भांति उसने अपने को उंडेलना शुरू किया है। कृपण नहीं है। अपने को रोकने की कोई आकांक्षा भी नहीं है।
यहां वैसे भी लोग हैं, जो पाना सब चाहते हैं, लेकिन खोना बिल्कुल नहीं चाहते। ऐसे भी लोग हैं, जो बड़ी छोटी-छोटी बातों में भी मुझसे धोखा कर जाते हैं। यहां आते हैं तो गैरिक वस्त्र पहन लेते हैं, और यहां आते हैं तो बड़े रोते हैं और आंखों से आंसू गिराते हैं। और वे सब आंसू बेकार हैं, क्योंकि घर जाकर वे गैरिक वस्त्र भी छोड़ देते हैं। वे आंसू सब दिखावा हैं। वे सोचते हैं कि इन आंसुओं से मुझे धोखा हो जाएगा!
इस तरह नहीं चलेगा। तुम मुझे धोखा नहीं दे सकोगे--न तुम्हारे आंसुओं से, न तुम्हारे नाच-गान से, न तुम्हारे भजन-कीर्तन से। तुम अगर मेरे साथ हो, तो मेरे साथ होने से जो तकलीफ होती है, उसे भोगना होगा। मेरे साथ होने से जो अड़चन आती है, वह भी झेलनी होगी। तुम्हारे गांव में लोग हंसेंगे, तो वह भी स्वीकार करना होगा। लोग पागल समझेंगे, तो वह कीमत चुकानी है। मेरे साथ अगर पागल होने को राजी नहीं हो, तो यह दृष्टि तुम्हें कभी उपलब्ध न हो सकेगी। तुम अपनी होशियारी से मेरे पास अगर हो, तो खो दोगे, चूकोगे अवसर। अपनी होशियारी छोड़ ही दो। संन्यास का वही अर्थ है; तुम घोषणा करते हो
कि अब मैंने अपनी होशियारी छोड़ी। लेकिन तुम बड़े चालबाज हो। तुम ऐसी-ऐसी

तरकीबें निकाल लेते हो कि तुम्हें शायद खुद भी पता न चलता हो। ऐसा नहीं कि तुम मुझे ही धोखा देते हो, तुम्हारी चालबाजियां ऐसी हैं कि तुम अपने को भी धोखा देते हो।

एक मित्र ने पूछा है कि हम बड़े प्रेम में कभी-कभी आपको गालियां भी देते हैं। आपका इस संबंध में क्या कहना है?

इतना ही कहना है कि इतना प्रेम मैं नहीं सोचता कि अभी तुम्हारे पास होगा। गालियां जरूर देते होओगे, लेकिन प्रेम का तुम धोखा खा रहे हो। प्रेम का तुम अपने को धोखा दे रहे हो। तुम अपने को समझा रहे हो कि प्रेम में दे रहे हैं। जरा गौर से देखना, देने के कारण दूसरे होंगे। देने का मौलिक कारण तो यही होगा कि तुम्हें मेरे साथ झुकना पड़ा है। उसका तुम बदला ले रहे होओगे। और बदला लेने का यही उपाय है। प्रेम से दे रहे हो तो बड़ा अच्छा है। लेकिन प्रेम में देने को सिर्फ तुम्हारे पास गालियां हैं, कुछ और है? फिर अगर प्रेम से दे रहे हो, और तुम्हारे पास सिर्फ गालियां हैं, तो मुझे स्वीकार हैं। लेकिन प्रेम में गाली बचती नहीं। गाली में कहीं न कहीं विरोध है। विरोध को तुम लीप-पोत लेना चाहते हो। मगर तुम्हारे भीतर गाली तो है ही कहीं, तो ही आ रही है।
एक फकीर एक गांव में गया। और उस गांव के लोगों को उससे बड़ा विरोध था।
तो उन्होंने एक जूतों की माला बना कर उसको पहना दी। वह फकीर खूब हंसने लगा। गांव के लोग बड़े हतप्रभ हुए। उन्होंने पूछा, मामला क्या है? आप हंस क्यों रहे हैं? उसने कहा कि हंस इसलिए रहा हूं कि आज पता चला कि अभी तक मैं सिर्फ मालियों के गांव जाता रहा, चमारों के गांव पहली दफे आया। यही तो मैं सोचता था कि बात क्या है! जिस गांव में जाता हूं, लोग फूल की माला चढ़ा देते हैं! क्या माली ही माली रहते हैं? आज अच्छा हुआ आ गया। मेरे जूते भी फट गए हैं। तो तुम सब चमार हो? उस फकीर ने कहा, नहीं तो जूते की माला बनाने की सोचते भी कैसे? यह तुम्हें विचार कैसे आया?
अब तुम कहो कि हम जूते की माला बड़े प्रेम में चढ़ा रहे हैं। माला तो प्रेम में ही चढ़ाई जाती है, सो सच है। लेकिन जूते की माला! तो कहीं तुम्हारा चमारपन प्रकट हो रहा है।
गाली मिली तुम्हें देने को प्रेम में? लेकिन होगा कहीं विरोध! और विरोध भी स्वाभाविक है। जिसके सामने झुकना पड़ता है, उससे भीतर एक विरोध हो जाता है, बदला लेने की आकांक्षा हो जाती है।
यह कुछ आकस्मिक थोड़े ही है कि यहूदा ने--उनके प्रमुख शिष्य ने--जीसस को धोखा दिया और सूली पर चढ़वाया। यह बदला था। झुकना पड़ा था इस आदमी के सामने। इस बात को वह कभी माफ नहीं कर सका। पढ़ा-लिखा आदमी था। जीसस के शिष्यों में सबसे ज्यादा पढ़ा-लिखा आदमी वही था। बर्दाश्त नहीं कर पाया। जीसस से ज्यादा पढ़ा-लिखा था और जीसस से ज्यादा संभ्रांत था, ज्यादा सुसंस्कृत था। झुक तो गया, किसी क्षण में झुक गया होगा--चुंबक के क्षण होते हैं, कभी किसी प्रभाव में, जीसस की किसी आभा में, किसी मुख-मुद्रा में, जीसस की आंख की किसी पुकार में झुक गया होगा। लेकिन पीछे पछताने लगा होगा, कि मैं और झुक गया एक आदमी के सामने, जो सिर्फ बढ़ई का बेटा है! कहीं भीतर बात सुलगती रही। वह जीसस की कई घटनाओं में भूलें निकालता रहा।
और तुम अगर उन भूलों को सोचोगे, तो तुम भी यहूदा से राजी होओगे। जैसे
एक स्त्री आई और उसने बड़ा बहुमूल्य इत्र जीसस के पैरों पर डाला। वह इतना बहुमूल्य इत्र था कि हजारों रुपये उसकी कीमत थी, उन दिनों भी! जीसस बैठे रहे। उस स्त्री ने अपने बालों से उनके पैर पोंछे। इत्र से पैर धोए, बालों से पोंछे। और उसकी आंखों से आंसू गिर रहे हैं। और यहूदा ने कहा कि यह व्यर्थ की खर्चीली बात है। आपने रोका क्यों नहीं? इतने पैसे से तो न मालूम कितने गरीबों के पेट भर जाते।
अब तुम किससे राजी होओगे? जीसस से या यहूदा से? तुम्हारी बुद्धि भी कहेगी कि बात तो यहूदा ही ठीक कह रहा है। तर्कयुक्त है। लेकिन जीसस ने

क्या कहा? जीसस ने कहाः मेरे जाने के बाद भी गरीब रहेंगे, तुम उनकी सेवा पीछे कर लेना। अभी दूल्हा घर में है, उत्सव होने दो।
यह बात किसी और तल की हैः अभी दूल्हा घर में है, उत्सव होने दो। गरीब
तो सदा से हैं और सदा रहेंगे, सेवा तुम पीछे कर लेना, मेरे बाद कर लेना--मैं ज्यादा दिन यहां नहीं रहूंगा।
और जीसस ज्यादा दिन रहे भी नहीं। इस बात के कहने के तीन महीने बाद ही सूली लग गई। जीसस ने कहाः ज्यादा दिन मैं यहां रहूंगा भी नहीं। जल्दी ही मेरा विदा का क्षण आ जाएगा। हो सकता है इस स्त्री को वह विदा का क्षण दिखाई पड़ रहा था। क्योंकि जीसस को जब सूली से उतारा गया, तो यही स्त्री सूली से उतारते वक्त मौजूद थी, बाकी सब शिष्य भाग गए थे। यहूदा ने तो जीसस को तीस चांदी के टुकड़ों में बेच दिया और बाकी शिष्य भाग गए डर से, कि कहीं अब हमको भी न पकड़ा जाए। जो स्त्री जीसस को सूली से उतारते वक्त मौजूद थी, जो नहीं भागी, वह वही स्त्री थी। वह एक वेश्या थी--मैरी मेग्दलीन--जिसने वह हजारों रुपये का कीमती इत्र जीसस के पैरों में डाला था।
फिर जीसस ने कहाः उसका प्रेम देखते हो, कि तुम सिर्फ इत्र ही देखते हो?
और उसे रोकना उसके हृदय को तोड़ना हो जाएगा।
यहूदा भूलें निकालता रहा। आगे-पीछे जीसस के खिलाफ भी बोलता रहा होगा।
क्योंकि कोई अचानक एक दिन जाकर और सूली पर नहीं लटकवा देता अपने गुरु को।
अचानक! यह भीतर पकती रही होगी बात। भीतर इकट्ठा होता रहा होगा मसाला। तुम्हारे भीतर भी गालियां हो सकती हैं। और तुम अनेक तरकीबों से उन गालियों को निकालने का उपाय भी खोज लेते हो। फिर अपने को बचाने के लिए तुम सोचते होओगे कि यह तो मैं प्रेम में दे रहा हूं। काश तुम्हारे पास प्रेम होता! तो गालियां खो गई होतीं, पिघल गई होतीं। प्रेमपूर्ण हृदय को गालियां देने का उपाय कहां रहेगा? तुम मुझे भी धोखा देते हो, अपने को भी धोखा देते हो। तुम्हारा धोखा गहरा है।
लेकिन चेतना के संबंध में यह बात कही जा सकती हैः न तो वह खुद को धोखा
दे रही है, न मुझे धोखा दे रही है। उसने अपने को उंडेला है।
पूछा हैः "जब तेरी तस्वीर के सामने होती हूं तो तुझमें उसी को देखती हूं।"
उसी को देखना है। जब तक तुम्हें मुझमें मैं ही दिखाई पड़ता रहूं, तब तक तुमने मुझे नहीं देखा। जिस दिन तुम्हें मुझमें वह दिखाई पड़ने लगे, उसी दिन तुमने मुझे देखा।
इस विरोधाभास को ख्याल में रखना। जब तक मैं तुम्हें मैं ही दिखाई पडूं, तब तक तुमने मुझे नहीं देखा। जब तक मैं में तुम्हें वह न दिखाई पड़े, तब तक तुमने मुझे नहीं देखा। मैं द्वार बन जाऊं और वह विराट आकाश तुम्हें मुझमें से दिखाई पड़े। और धीरे-धीरे तुम मुझे भूल जाओ और उस विराट आकाश में लीन हो जाओ--तो ही तुम मेरे पास आए!
मेरे पास आने का मतलब है, मुझसे गुजर जाओ। मेरे पास आने का अर्थ है, मेरी सीढ़ी का उपयोग कर लो। यह द्वार खुला है। इस द्वार से अगर तुम झांके, तो तुम परमात्मा को देख पाओगे।
ठीक हो रहा है, चेतना! यह धोखा नहीं है। लेकिन इतनी बड़ी बात घटनी जब शुरू होती है, तो शंकाएं शुरू होती हैं कि पता नहीं क्या हो रहा है? कोई कल्पना तो नहीं? कोई भ्रमजाल तो नहीं? कोई सपना तो नहीं?
नहीं, आंखें धोखा नहीं खा रहीं, आंखें पैदा हो रही हैं, पहली बार आंखें पैदा हो रही हैं। दृष्टि का जन्म हो रहा है।
उनकी याद, उनकी तमन्ना, उनका गम
कट रही है जिंदगी आराम से
शिष्य जैसे-जैसे गुरु के निकट होता है, वैसे-वैसे पीड़ा भी होती है विरह की, मिलन का सुख भी होता है। हंसी भी आती है, आंसू भी गिरते हैं। जिंदगी एक नया पर ले लेती है, नये पंख ले लेती है। अब उदासी में भी एक रौनक होती है। अब विरह में भी मिलन की आभा होती है।
सब्र पर दिल को आमादा किया है लेकिन
होश उड़ जाते हैं अब भी आवाज के साथ

आवाज सुनाई पड़नी शुरू होगी। आंख से सुनी जाती है वह आवाज, ख्याल रखना! क्यों इस झेन फकीर ने कहा कि आंख से सुनोगे तब सुनाई पड़ेगा! बात बड़ी बेबूझ है। सुनता आदमी कान से है, आंख से तो नहीं।
एक और फकीर से किसी ने पूछा, बाबा फरीद से किसी ने पूछा कि सत्य और झूठ में कितना अंतर है? उसने कहा, चार इंच का। उस पूछने वाले ने पूछा, सिर्फ चार इंच का? तो फरीद ने कहा, कान और आंख में जितना अंतर है, बस उतना ही। कान से सदा दूसरे की बात सुनाई पड़ती है, सदा उधार होती है। और कान से सुनी बात पर भरोसा मत कर लेना। उसी के कारण तो लोग शास्त्रों में उलझ गए हैं, शब्दों में उलझ गए हैं। वह कान ने सुनी गई बात है। आंख पर भरोसा करना। देखे पर भरोसा करना। सुने पर भरोसा मत करना। सुने का कोई प्रमाण नहीं है कि ठीक हो कि न ठीक हो। सुना सुना है।
इसलिए झेन फकीर ने ठीक कहा कि जब तू आंख से देखने लगेगा, तब। तब देख पाएगा उस परमसूत्र को, जिससे सारे बुद्ध पैदा होते हैं, सारे बुद्धों के धर्म पैदा होते हैं!
बस इतनी आरजू है, बादे-फना जनाजा
निकले मेरे मकां से, ठहरे तेरी गली तक
बस भक्त की इतनी ही आरजू है--
बस इतनी आरजू है, बादे-फना जनाजा
निकले मेरे मकां से, ठहरे तेरी गली तक
इस आरजू को चेतना की आंखों में मैंने देखा है। तुम सबकी आंखों में देखना चाहता हूं।
उनकी तस्वीर जब आंखों में उतर आई है
मैंने तारीक फजाओं में जिया पाई है
बस एक तस्वीर उतर आए आंखों में, फिर अंधेरी रातों में रोशनी हो जाती है।
उनकी तस्वीर जब आंखों में उतर आई है
मैंने तारीक फजाओं में जिया पाई है
हुस्न जब होने लगा माइले-इल्ताफो-करम
इश्क की जान पे कुछ और भी बन आई है
आज तक मेरी निगाहों को मयस्सर न हुई
लोग कहते हैं कि गुलशन में बहार आई है अब जमाने की खबर है न खुद अपना ही पता
मेरी वहशत मुझे क्या जाने कहां लाई है
ऐ निगाहे-गलतअंदाज तेरी उम्र दराज
जिंदगी अब गम-ओ-आलाम की शैदाई है
अब तो आ जा गमे-हस्ती को मिटाने वाले
बस तेरी याद है, मैं हूं, शबे-तन्हाई है

शिष्य की इतनी ही पुकार है, भक्त की इतनी ही पुकार है। भक्त और शिष्य में कुछ भेद नहीं है। जो शिष्य नहीं, वह भक्त नहीं। भक्ति के पाठ गुरु के पास ही सीखे जाते हैं। भक्ति का चरम फल परमात्मा है, लेकिन भक्ति के पाठ गुरु के पास सीखे जाते हैं। गुरु पाठशाला है। उस पाठशाला से उत्तीर्ण हुए बिना कोई परमात्मा को उपलब्ध नहीं होता।
क्या आकांक्षा है शिष्य की? क्या आकांक्षा है भक्त की? बस एक ही कि यह
जो उदास रात है, अब टूटे। सुबह हो, किरण फूटे। यह आकांक्षा तो है, यह अभीप्सा तो है, लेकिन कोई अधीरता नहीं है, प्रतीक्षा है। प्रार्थना उसी दिन पूरी होगी, जिस दिन अभीप्सा भी पूर्ण हो और प्रतीक्षा भी पूर्ण हो। जिस दिन मांग भी हो और मांग एक अर्थ में न भी हो। एक तरफ भक्त पुकारता है कि आओ, अब और नहीं सहा जाता। और दूसरी तरफ भक्त कहता है, जब भी आओगे, तब तक प्रतीक्षा करने की मेरी तैयारी है। अनंतकाल में भी आओगे, तो भी मैं प्रतीक्षा करता रहूंगा। तब उसी क्षण घटना घट जाती है।
शुभ हुआ है। पहली दफा आंख खुलनी शुरू हुई है। इस आंख पर भरोसा करो। इस आंख को पूरा बल दो। इस आंख में पूरी ऊर्जा डाल दो। यही आंख दर्शन है।

तीसरा प्रश्नः मैं यह जान कर अत्यंत दुखित हूं कि मेरे एक मित्र जो आगरा से "रजनीश-प्रेम" नाम का अखबार निकालते हैं, उन्हें आश्रम की ओर से अखबार बंद करने के लिए कहा जा रहा है। क्या आश्रम की आप पर मालकियत है? मेरे मित्र तो आपके प्रेम में ही अखबार निकालते हैं। उनकी इच्छा तो बस आपके विचार-प्रसार के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। हमने तय किया है कि हम आश्रम के विरुद्ध संघर्ष करेंगे और अखबार निकालना जारी रखेंगे।

कुछ बातें समझ लेना उपयोगी होंगी। और-और संदर्भों में भी उनका काम आएगा।
पहली तो बात ख्याल रखना कि मेरे अतिरिक्त यहां कोई आश्रम इत्यादि नहीं है। लड़ोगे तो मुझसे। यह आश्रम का बहाना भी सिर्फ तुम्हारी लड़ने की वृत्ति के कारण है। यहां मेरे अतिरिक्त कोई भी नहीं है। यह आश्रम मेरी देह है। यहां जो भी हो रहा है, वह मेरे इशारे से हो रहा है। अच्छा हो, बुरा हो-- सबकी जिम्मेवारी मेरी है। सोए लोगों की जिम्मेवारी हो भी क्या सकती है! जो काम में लगे हैं आश्रम में, वे सोए हुए लोग हैं। वे केवल मेरे इशारे पर चल रहे हैं।
इसलिए ख्याल रहे, लड़ना हो तो मजे से लड़ना, लेकिन सब लड़ाई तुम मुझसे ही
कर रहे होओगे। और अपने को यह धोखा मत देना कि तुम आश्रम से लड़ रहे हो। तुम मुझे आश्रम से अलग करना ही मत। और आश्रम अलग नहीं है, तो मुझ पर आश्रम का कब्जा क्या होगा? आश्रम मेरा खेल है!
रही बात अखबार निकालने की, तो तुम समझो ठीक सेः क्यों रोका जा रहा है?
मैं जो कहता हूं, उसे ठीक प्रामाणिक रूप से लोगों तक पहुंचना चाहिए। संदर्भ के बाहर टुकड़े निकाल-निकाल कर तुम कुछ छाप देते हो, उनका अर्थ बदल जाता है, उनका प्रयोजन बदल जाता है। उनका प्रयोजन उन टुकड़ों को चुनने वाले का प्रयोजन होता है, मेरा प्रयोजन नहीं होता।
इसलिए मैं नहीं चाहता हूं कि कहीं भी देश में कोई प्रकाशन हो, जो मेरी देख-रेख में नहीं हुआ है; अन्यथा वह गलत होगा। उससे नुकसान होगा। उसके परिणाम घातक पहले हुए हैं, अब भी होंगे। पहले तो रोका नहीं जा सकता था, अब रोका जा सकता है, इसलिए रोका जाना चाहिए।
महावीर के पीछे इतना उपद्रव क्यों खड़ा हुआ? क्योंकि दो तरह के लोगों
ने शास्त्र लिख लिए थे। बुद्ध के मरते ही छत्तीस संप्रदाय हो गए बुद्ध के, क्योंकि छत्तीस तरह के शास्त्र उपलब्ध थे। बुद्ध ने तो एक ही बात कही थी, लेकिन लिखने वाले अपने-अपने मन से लिख लिए थे। किसी ने कुछ छोड़ दिया था, किसी ने कुछ जोड़ दिया था। किसी को कोई बात महत्वपूर्ण पड़ी थी मालूम, उसने लिख ली थी। किसी को वह बात महत्वपूर्ण नहीं मालूम पड़ी, उसने नहीं लिखी थी। किसी ने कोई अंश लिख लिया था--जो महत्वपूर्ण उसे मालूम पड़ा था--शेष छोड़ दिया था।
बुद्ध के बाद छत्तीस संप्रदाय खड़े हुए, जिनमें संघर्ष चलता रहा; जिनके संघर्ष में बुद्ध धर्म के प्राण निकल गए। बौद्धों का हिंदुस्तान से मर जाना और मिट जाना, हिंदुओं के कारण नहीं हुआ; उनके ही आपसी छत्तीस उपद्रवों के कारण हो गया।
मैं नहीं चाहता कि इस आश्रम के अतिरिक्त कहीं भी कोई और प्रकाशन हो। पहले प्रकाशन यहां होना चाहिए। जो मैं कहता हूं, वह ठीक वैसा ही जाना चाहिए जैसा मैंने कहा है, जितना मैंने कहा है, जिस संदर्भ में कहा है।
इसलिए रोका जा रहा है, कोई और कारण नहीं है।
और तुम कहते हो कि मेरे मित्र तो आपको प्रेम करते हैं, इसलिए अखबार निकालते हैं।
अगर मुझको प्रेम करते हैं, तो मेरी सुनेंगे। "रजनीश-प्रेम" अखबार का नाम रख लेने से कोई रजनीश से प्रेम नहीं हो जाता। फिर अगर वे चाहते हैं कि मेरे विचार और प्रसार का काम करें, जरूर करें। इतना साहित्य आश्रम प्रकाशित कर रहा है, उसे लोगों तक पहुंचाएं। और अलग साहित्य की कोई जरूरत

नहीं है। मैंने उनका अखबार भी देखा है। वह एकदम गलत-सलत है। उसमें कुछ का कुछ लिखा जा रहा है। टुकड़े कहीं-कहीं से निकाल कर रख देते हैं।
स्मरण रहे, मैं जो भी कह रहा हूं, उसका एक संदर्भ है, एक प्रसंग है। उस प्रसंग के बाहर उसका अर्थ कुछ और हो जाएगा, अनर्थ हो जाएगा। इसलिए इस तरह की कोई प्रवृत्ति नहीं चलने दी जाएगी।
और यह सदा के लिए ख्याल रख लो कि यहां जो भी हो रहा है, आगे जो भी होगा,
जब तक मैं हूं, तब तक सब मेरे इशारे से हो रहा है। तुम्हें कई बार लगता है कि ऐसा क्यों होगा? तुम्हें कई बार लगता है कि भगवान ऐसा क्यों करेंगे? तुम्हारा लगना और मेरी दृष्टि मेल न खाए, तो तुम यह मत समझना कि कुछ गलत हो रहा है।
उदाहरण के लिए--एक मित्र ने लिखा है पत्र कि मैं आया था बड़ी आशाओं से,
कि आपके चरणों में बैठूंगा, सेवा करूंगा। और यहां आकर आपसे मिलने भी नहीं दिया जाता है। आपको क्या बंदी बना लिया गया है?
ऐसा अनेक मित्रों को लगता है। मैं किसी का बंदी नहीं हूं। सिर्फ तुम मेरे चरण न दबा सको ज्यादा--तुमसे मुझे छुटकारा दिलवाया गया है, और कुछ भी नहीं है। सिर्फ तुमसे मुझे स्वतंत्र किया गया है। लेकिन तुम समझते हो, मैं बंदी बना लिया गया हूं। मैं काफी परेशान आ गया हूं पैर दबाने वालों से। क्योंकि वे न समय देखते, न सुविधा देखते। काफी अनुभव के बाद यह इंतजाम करना पड़ा।
वे जो पहरेदार खड़े हैं द्वार पर, वे मुझे बंदी बनाने को नहीं खड़े हैं-- मुझे तो जब बाहर जाना होता है तो कोई रोकने को नहीं है--वे सिर्फ तुम्हें नहीं भीतर घुसने देते। लेकिन तुम्हें घुसने दिया नहीं जाना चाहिए। जब जरूरत हो तब तुम्हें जरूर अवसर है। और अवसर की प्रतीक्षा करनी सीखनी चाहिए। नहीं तो मैं बहुत परेशान हो लिया हूं। मैं ज्यादा काम कर सकूं, इसलिए यह व्यवस्था की गई है।
मैं एक दफे ट्रेन में था। रात दो बजे एक आदमी भीतर आ गया। मैं तो सोया था। शिविर से लौटता था उदयपुर से, तो सोया था। कोई बारह बजे तो वहां से ट्रेन चली, तो बस सोया था; कोई दो ही घंटे सो पाया होऊंगा कि देखा कि कोई मेरे पैर दाब रहा है, तो नींद खुली। मैंने पूछा, भई क्या कर रहे हो? उन्होंने कहा कि चरण-सेवा कर रहा हूं।
मगर मेरे चरण हैं, कम से कम मुझसे पूछ तो लेना चाहिए। मुझे इस समय चरण-सेवा करवानी या नहीं करवानी?
वे मुझसे बोले, आप सोइए! अब मुझे कोई नहीं रोक सकता। मैं वहां भी गया था, उदयपुर शिविर में भी, मगर मुझे घुसने ही नहीं दिया। आज की रात है, मैं हूं, आप हैं!
उस आदमी ने रात भर मुझे जगाए रखा। वह सुबह छह बजे तक मेरे पैर दबाता रहा। उसे कई बार समझाया कि भई, तू थक गया होगा। उसने कहा, आप बिल्कुल बेफिकर रहिए। आज तो मन भर कर सेवा करूंगा।
अब तुम जानते हो मेरे पचास हजार संन्यासी हैं, अगर ऐसे सब मेरी सेवा करने को उत्सुक हो जाएं, तो बड़ी अड़चन हो जाएगी। और ऐसी अड़चन बहुत बार हो चुकी है।
एक नगर में शिविर ले रहा था। दोपहर को सोया, दिन भर का थका-मांदा, दोपहर को सोया, देखा कि कोई आदमी ऊपर से खप्पड़ उठा लिया है, वह वहां से झांक रहा है। पूछा, भई, क्या कर रहे हो? कहा, दर्शन कर रहे हैं! ... यह स्वतंत्रता थी मेरी! अब मैं कैदी हूं! अब वे सज्जन यहां भी आते हैं, वे यहां बड़ी तकलीफ पाते हैं! वे कहते हैं कि यह क्या है? और वे कोई गैर-पढ़े-लिखे गंवार नहीं, वकील हैं।... कि नहीं, मैं तो दर्शन कर रहा हूं! मैंने कहा, दर्शन तुम कभी और कर लेते। उन्होंने कहा, मुझे तो जब आप सोते हैं तब दर्शन करने हैं। सोते में दर्शन करने हैं।
मैं कोई बंदी नहीं हूं। कौन मुझे बंदी बनाएगा? कैसे मुझे बंदी बनाएगा? मुझे कोई कारागृह में भी डाल दे तो भी अब मैं बंदी नहीं हो सकता हूं। अब मैंने उसे जान लिया है जो बंदी होता ही नहीं है। इसलिए तुम इस विचार में मत पड़ जाना कि कोई मुझे रोक रहा है। तुम्हें रोक रहा है--सच। तुम

यह मत सोचना कि मुझे कोई रोक रहा है। और तुम्हें जो रोका जा रहा है, वह मेरे ही इशारे से रोका जा रहा है।
यहां इतने लोग हैं, अगर तुम सबको पूरे समय सुविधा रहे, जब तुम्हें आना
हो आ जाओ, तो फिर किसी को भी आने का कोई अर्थ नहीं रह जाएगा। ऐसी ही हालत थी। सौ-पचास आदमी मुझे घेरे ही रहते थे। किसी को कुछ पूछना है, पूछ ही नहीं सकता था। एक बोलता, दूसरा बोल देता, तीसरा जवाब भी दे देता! कोई डांटने लगता कि तुम चुप रहो जी, तुम्हें कुछ पता नहीं; पहले कुछ सोचो-समझो, क्या पूछ रहे हो! या कोई उत्तर देता कि कृष्ण ने गीता में ऐसा कहा है। मुझे अवसर ही नहीं था। यह सत्संग कहते थे लोग इसको।
उस सबको मुझे तोड़ना पड़ा। उसकी वजह से मुझे यात्रा भी बंद करनी पड़ी। क्योंकि कोई उपाय न था। जिनके घर मैं ठहरता, वे मुझे परेशान कर देते। दिन भर के बाद मैं घर आया हूं, अब उनकी पत्नी को सत्संग करना है, कि उनकी मां को सत्संग करना है, कि उनके पिता को सत्संग करना है। अब उनका परिवार मेरे पास बैठा है। वे मुझे सोने नहीं देंगे। या उन्होंने पड़ोस के लोगों को इकट्ठा कर लिया है। उनके लिए विशेष आयोजन है। क्योंकि हमारे घर रुके हुए हैं, ये हमारे रिश्तेदार हैं, इन सबसे आपको मिलना होगा। यह सब फिजूल समय खराब करना है, शक्ति व्यय करना है।
यहां सब मेरे इशारे से हो रहा है। अगर तुम्हें मुझसे मिलना होता है,
और तीन दिन रोका जाता है, तो उसका भी प्रयोजन है। यह मेरे अनुभव में आया, कि तुम जब मिलना चाहो, तभी तो तुम्हें मिलने ही नहीं देना। क्योंकि अक्सर तुम्हारे प्रश्न इतने फिजूल होते हैं कि दो-तीन दिन टिकते ही नहीं; अपने आप चले जाते हैं; उनके जवाब की कोई जरूरत ही नहीं थी। तीन दिन बाद जब तुम मुझसे मिलने आते हो, मैं पूछता हूं कि कहो, क्या कहना है? तो तुम कहते हो, वह तो मामला खत्म ही हो गया। उसमें कुछ सार नहीं है। अब तो पूछना भी व्यर्थ मालूम होता है। तो जिसको पूछना तीन दिन में ही व्यर्थ हो गया, तीन दिन पहले तुम मेरा समय ही खराब करते। वह उस दिन भी व्यर्थ था। अगर तीन दिन पहले सार्थक था, और सच में सार्थक था, तो तीन जन्मों तक भी सार्थक रहेगा; तीन दिन में व्यर्थ कैसे हो जाएगा?
लेकिन कुछ भी ऊलजलूल तुम्हारे दिमाग में उठा, पहुंच गए! तो तुम्हारे दिमाग की खुजलाहट मिटाने के लिए मैं यहां नहीं हूं। कि तुम्हें जरा सी खुजलाहट उठी कि तुम गए सत्संग करने। थोड़ा धैर्य, थोड़ी प्रतीक्षा!
स्मरण रहे, यहां जो भी हो रहा है, मेरे इशारे से हो रहा है। और कभी भी अगर तुम्हें ऐसा लगे कि तुम्हारी मंशा के विपरीत हो रहा है, तो तुम यही सोचना कि तुम्हारी मंशा ठीक नहीं होगी। और यहां तुम आए हो मेरी मंशा से राजी होने, न कि मुझे तुम्हारी मंशा से राजी करवाने। यहां तुम आए हो मेरे साथ चलने और मेरे साथ बहने, न कि मुझे अपने साथ चलाने। तुम्हारे साथ मैं चलूंगा तो तुम्हें रस बहुत आएगा, आनंद बहुत आएगा, लेकिन मैं तुम्हारे किसी काम न आ सकूंगा; तुम्हारे जीवन में निर्वाण की कोई किरण न उतार सकूंगा। तुम अगर मेरे साथ चलोगे तो शायद उतना रस न भी आए, शायद अड़चन भी मालूम पड़े; चढ़ाई का रास्ता होगा; लेकिन तुम कहीं पहुंचोगे।
मेरी नजर तुम्हारी क्षुद्र आकांक्षाएं पूरी करने की नहीं है। मेरी नजर तुम्हारी विराट अभीप्सा को पूरा करने की है। इन दोनों में चुनना पड़ा है। तुम्हारी क्षुद्र आकांक्षाएं बड़ी फिजूल हैं--कि मेरे घर चलिए, हमारे घर भोजन स्वीकार करिए। तुम्हारी ये फिजूल की आकांक्षाएं हैं। इससे सिर्फ तुम्हारे अहंकार को रस मिलता है, और कुछ भी नहीं, कि मेरे घर भोजन करने आए। मैं तकलीफ में पड़ गया था। सुबह किसी के घर चाय पीनी पड़ती, दोपहर किसी
के घर भोजन करना पड़ता, शाम को फिर किसी के घर चाय पीनी पड़ती, रात फिर किसी के घर भोजन करने जाना पड़ता। और सब जगह भीड़-भाड़! भोजन से किसी को प्रयोजन नहीं। चाय पीना भी दुश्वार! मैं चाय पी रहा हूं, तुम सत्संग कर रहे हो। भीड़ इकट्ठी है! मैंने देखा कि इससे तुम्हें मजा तो खूब आ रहा है, लेकिन लाभ कुछ भी नहीं हो रहा है। मनोरंजन हो रहा है, मनोभंजन नहीं हो रहा है।
मनोरंजन से मुझे क्या लेना-देना है? मनोरंजन के तो बहुत उपाय हैं तुम्हारे लिए। मैं तुम्हारा मनोभंजन करना चाहता हूं। तुम्हारा मन टूट

जाए, मिट जाए--ऐसी कीमिया तुम्हें देना चाहता हूं। वह कीमिया देने के लिए सारा विशेष आयोजन किया गया है।
तुमने बुद्ध और महावीर का पूरा उपयोग नहीं उठाया। तुम उठा नहीं सकते थे, क्योंकि तुम इन्हीं फिजूल बातों में उनका समय भी खराब करते रहे। तुम चाहो तो मेरा पूरा उपयोग उठा सकते हो। एक ही आकांक्षा मैं तुम्हारी पूरी करना चाहता हूं कि तुम परमात्मा को जान लो, कि तुम समाधिस्थ हो जाओ; बाकी सब गौण है, बाकी सब फिजूल है। बाकी का कोई मूल्य नहीं है। बाकी तुम्हारे क्षुद्र प्रश्न इत्यादि किसी सार के नहीं हैं। उठते हैं, चले जाते हैं। हवा के झोंके हैं--आएंगे, चले जाएंगे। उनमें इतने परेशान मत हो जाओ, न उनमें इतने चिंतित हो जाओ।
यह आश्रम मेरी काया है। ये मेरे हाथ हैं। यहां जो लोग काम में लगे हैं, उनकी अपनी कोई मर्जी नहीं है, इसीलिए उन्हें काम के लिए चुना है। उनसे बेहतर लोग मौजूद हैं, लेकिन उनकी अपनी मर्जी है, इसलिए उन्हें मैं नहीं चुन सकता।
यह भी तुम ख्याल में रखना।
जिनको मैंने काम के लिए चुना है, जरूरी नहीं है कि उनसे बेहतर लोग मौजूद नहीं हैं, उनसे बेहतर लोग हैं, लेकिन उनकी एक ही खराबी है कि उनकी अपनी मर्जी है। उनको चुनो तो वे मेरी मर्जी से कम, अपनी मर्जी से ज्यादा चलेंगे। होशियार हैं, कुशल हैं, जानकार हैं।
अब तुम सोचते हो, लक्ष्मी को बिठाना काम के लिए--जहां धन-पैसे का उपद्रव है; जहां बाजार, राज्य की हजार तरह की झंझटें हैं, लक्ष्मी को क्या पता है इन सबका? मेरे पास बेहतर लोग हैं, व्यवसाय में कुशल लोग हैं, लखपती लोग हैं, जो सब कलाएं जानते हैं, सब तरह से होशियार हैं, कुशल हैं; जिंदगी भर का जिनके पास अनुभव है। लक्ष्मी बिल्कुल गैर-अनुभवी, उसको बिठाया है। कुछ कारण होगा। अनुभवियों को नहीं बिठाया है। अनुभवी को बिठाते ही से यह मुझे अनुभव हुआ हमेशा कि वह अपनी चलाता है। वह इतना अनुभवी है कि वह कहता है कि आपको कुछ पता नहीं। वह मुझसे ही आकर कहता है कि आपको कुछ पता नहीं! यह काम ऐसे ही होता है। इसमें रिश्वत देनी पड़ेगी। यह बिना रिश्वत के होगा नहीं। अगर रिश्वत न दी गई तो यह चूक जाएगा। और मैं जानता हूं, वह ठीक कह रहा है। जहां तक संसार का अनुभव है, वह ठीक ही कह रहा है। लेकिन उसे मेरे साथ पूरा तादात्म्य नहीं है। वह इतना नहीं कर सकता कि वह मेरी सुन कर चले। मैं कहता हूं, ठीक है, डूबेगा डूबेगा; रिश्वत मत देना। तब वह ऐसी कोशिश करेगा कि मुझे पता ही न चले और रिश्वत दे दे। उसकी भली ही आकांक्षा है। वह कुछ मेरे खिलाफ नहीं है, मेरे पक्ष में ही करने की सोच रहा है, लेकिन फिर भी कहीं मुझसे उसका तालमेल नहीं बैठ रहा है। उसका समर्पण पूरा नहीं है। उसकी समझदारी इतनी है कि समर्पण में बाधा बन रही है। उसे मैं जो भी कहूंगा, उसमें वह अपनी समझ डाल ही लेगा।
इसलिए बहुत मेरे पास संन्यासी हैं, जो ज्यादा काम के हैं; लेकिन एक अड़चन उनके साथ है--उनका अनुभव ही बाधा बन जाता है। इसलिए मुझे ऐसे लोग चुनने पड़े हैं जिनका कोई अनुभव नहीं है। जिन्होंने न कभी व्यवसाय किया है, न राजकीय काम-धंधा किया है। जिन्होंने कुछ किया ही नहीं है इस तरह का। उनको चुनने का कारण है। कारण यही है कि उनके लिए मेरे अतिरिक्त कोई और समझ नहीं है। मैं उनकी समझ हूं। मैं गलत करने को कहूंगा तो वे गलत करने को राजी हैं, सही करने को कहूंगा तो सही करने को राजी हैं। मैं उनको कुएं में कूदने को कहूंगा तो कुएं में कूदने को राजी हैं। उनका राजीपन!
तुम्हें बहुत बार लगेगा कि वे तुम्हारे जीवन में बाधा डाल रहे हैं।
और तुम्हें बहुत बार लगेगा कि तुम उनसे कोई काम ज्यादा ठीक से कर सकते हो। मगर तुम एक बात ख्याल रखना कि वे सब बांस की पोंगरी की तरह हैं; उन्होंने छोड़ दिया है। स्वर मेरे हैं; बहते उनसे होंगे। इसलिए तुम उन पर नाराज भी मत होना। उनके साथ व्यर्थ के संघर्ष में भी मत पड़ जाना। क्योंकि उनके साथ संघर्ष करने में तुम मुझसे टूट जाओगे, तुम मुझसे अलग हो जाओगे। और यह काम अब बड़ा होने को है। अब यह काम विराट होने को है। अब यह काम छोटा नहीं है। अब जल्दी ही हजारों और लाखों लोग आने वाले हैं। और मैं चाहता हूं कि यह सारी

व्यवस्था ऐसी हो कि इसमें जो भी हो, वह मेरे इशारे से हो। नहीं तो जितनी यह बड़ी व्यवस्था हो जाएगी और इसमें अगर बहुत समझदार लोग जगहों पर बैठ गए और जिन्होंने कहा कि इस तरह होना चाहिए, इस तरह होना चाहिए और मैं सिर्फ एक पूजा का पात्र हो गया, तो नुकसान हो जाएगा। तो तुम्हारी सारी कुशलता इस सारे अवसर को नष्ट कर देगी।
इसलिए तुम अपनी कुशलताएं लेकर मत आओ। जिन्हें मेरे उपकरण बनना हो, वे अपना सारा अनुभव, सारी कुशलता छोड़ दें। उन्हें बिल्कुल दिखाई पड़ता हो कि यह ठीक है, यही किया जाना चाहिए, तो भी अगर मैं कहूं तो न करें। क्योंकि मुझे कुछ और दिखाई पड़ता है, जो तुम्हें दिखाई नहीं पड़ता। तुम्हें संसार का अनुभव है, मुझे संसार से पार का अनुभव है। तुम्हें इस दुनिया का अनुभव है, मुझे उस दुनिया का अनुभव है। मुझे उस दुनिया की तरफ तुम्हें ले चलना है। तुम्हारा अनुभव बाधा बन जाएगा।
तो अगर तुम चाहते हो कि मेरे विचार-प्रसार में सहयोगी बनो, तो मेरे अनुकूल बनना पड़ेगा। मेरे प्रतिकूल कोई उपाय नहीं है।

आखिरी प्रश्नः सोचता हूं संन्यास लूं, लेकिन निर्णय नहीं कर पाता हूं। आप ऐसा समझाएं कि इस बार बिना संन्यास लिए न जा सकूं। आपका आकर्षण प्रबल है और बार-बार यहां खिंचा चला आता हूं। पर फिर बुद्धि सक्रिय हो जाती है और वैसा का वैसा लौट जाता हूं।

सोचने से किसी ने कभी संन्यास लिया है? सोचने वाले संन्यास कैसे ले सकते हैं? संन्यास और सोचने में विरोध है। संन्यास सोचने की निष्पत्ति नहीं है। संन्यास सोचने का त्याग है। वही अर्थ है संन्यास शब्द काः सम्यक न्यास।
पुराना संन्यास कहता थाः संसार को छोड़ना संन्यास है। मैं तुमसे कहता हूंः विचार को छोड़ना संन्यास है; क्योंकि विचार ही संसार है। तुम सोच-सोच कर तो कभी न ले पाओगे। यह तो पागलों का काम है। इसमें सोचना इत्यादि कहां? सोच-सोच कर तो तुम बार-बार आओगे और लौट जाओगे।

राग उतर फिर-फिर जाता है, बीन चढ़ी ही रह जाती है।

बीत गया युग एक तुम्हारे
मंदिर की ड्योढ़ी पर गाते,
पर अंतर के तार बहुत से
शब्द नहीं झंकृत कर पाते,
एक गीत का अंत,
दूसरे का आरंभ हुआ करता है,
राग उतर फिर-फिर जाता है, बीन चढ़ी ही रह जाती है।

भाषा के उपहार करेंगे
व्यक्त न मेरी आश-निराशा,
सोच बहुत दिन तक मैं बैठा
मन को मारे, मौन बना-सा,
लेकिन तब थी हालत मेरी
उस पगलाई सी बदली की
बिन बरसे-बरसाए नभ में जो उमड़ी ही रह जाती है। राग उतर फिर-फिर जाता है, बीन चढ़ी ही रह जाती है।

चुप न हुआ जाता है मुझसे
और न मुझसे गाया जाता,
धोखे में रख कर अपने को
और नहीं बहलाया जाता,
शूल निकलने-सा सुख होता

गान गुंजाता जब अंबर में,
लेकिन दिल के अंदर कोई फांस गड़ी ही रह जाती है।
राग उतर फिर-फिर जाता है, बीन चढ़ी ही रह जाती है।

तुम्हारी बीन चढ़ी ही रह जाएगी, राग बार-बार उतर जाएगा। विचार से राग चढ़ता ही नहीं। विचार से संगीत कहां? विचार से सत्य का अनुभव कहां?
और तुम पूछते हो कि सोचता हूं संन्यास लूं।
अब सोचना छोड़ो। संन्यास लो या न लो, मगर सोचना छोड़ो। सोचना छूटते ही संन्यास घटित होगा। और तब संन्यास की महिमा अपार है। अगर तुमने सोच-सोच कर किसी दिन ले भी लिया तो वह दो कौड़ी का संन्यास होगा। सोच-सोच कर लिए गए संन्यास का कोई मूल्य हो सकता है? उससे क्रांति नहीं होगी। तुम वैसे के वैसे रह जाओगे। फिर तुम सोचने लगोगेः क्या फायदा हुआ? संन्यास ले लिया, कुछ तो नहीं हुआ। फिर तुम नाराज होओगे कि संन्यास से कुछ सार नहीं है, क्योंकि मैंने संन्यास ले लिया और कुछ नहीं हुआ।
संन्यास में सार नहीं है। संन्यास से गहरा सार विचार के त्याग में है। जो विचार छोड़ कर संन्यास लेता है, जो प्रेम में पागल होकर संन्यास लेता है--तो सार है।
"सोचता हूं संन्यास लूं।"
सोचो मत। संन्यास मैं तुम्हें दूंगा। संन्यास होगा। मगर तुम सोचो मत।
और रही बात, तुम कहते होः "आप ऐसा समझाएं कि इस बार बिना संन्यास लिए न
जा सकूं।"
मैं तुम्हें समझाऊंगा नहीं। संन्यास लेने के लिए मैं समझाता नहीं। और हजार बातें समझाता हूं, संन्यास लेने के लिए नहीं समझाता। उन सारी बातों के साररूप में संन्यास की छलांग घटनी चाहिए। और सब समझाता हूं, सिर्फ संन्यास को छोड़ देता हूं। क्योंकि अगर संन्यास को मैंने समझाया, तो मैं वकालत कर सकता हूं संन्यास की, उसमें कुछ अड़चन नहीं है। वकालत करनी मुझे आती है। असल में, मेरे परिवार के लोग बचपन से ही मुझे वकील बनाना चाहते थे, क्योंकि मैं विवादी बचपन से ही था। सारा गांव मुझसे परेशान था--विवाद के कारण। गांव में कोई सभा नहीं हो पाती थी जहां मैं खड़ा न हो जाऊं, और जहां विवाद खड़ा न कर दूं। गांव में कोई महात्मा आता था, तो महात्मा को लाने वाले मेरे पिता को आकर समझा जाते थे--इसको मत छोड़ देना आज घर से! नहीं तो वहां उपद्रव हो जाता है! मुझे भी रिश्वत दे देते थे, मिठाई दे देते थे--आज महात्माजी आए हैं, तुम उस तरफ मत आना और किसी को लेकर मत आना। क्योंकि मैं अकेला नहीं जाता था, दस-पांच को साथ ले जाता था। मैं उपद्रव करता अगर, विवाद खड़ा करता, तो दस-पांच ताली बजाने वाले भी चाहिए न! और फिर जब दस-पांच ताली बजाते हों, तो वे जो और लोग बैठे हैं, वे भी बजाने लगते कि भई, कुछ, जब इतने लोग साथ हैं तो कुछ मामला होगा।
वकालत मुझे आती है। तर्क भी मुझे आता है। मैं तर्क का ही अध्यापक था। इसलिए उसमें कुछ बहुत अड़चन नहीं है। तुम्हें समझा दे सकता हूं। समझा-बुझा कर तुम्हें संन्यास पकड़ा भी दे सकता हूं। मगर वह दो कौड़ी का होगा। उसका कोई मूल्य नहीं है। यह तो प्रेम की छलांग है। यह तो पागलपन की अभिव्यक्ति है।
कहते होः "आपका आकर्षण प्रबल है और बार-बार यहां खिंचा चला आता हूं।"
तो उसी आकर्षण को और प्रबल होने दो। यहां खिंचे चले आते हो, धीरे-धीरे
और पास आओगे, और पास आओगे। बैठते-बैठते मेरे पास, यह शराब रंग लाएगी। यह मधुशाला है, यहां इतने पियक्कड़ बैठे हैं। तुम कब तक, तुम कब तक ऐसे बिना पीए चले जाओगे? यहां इतनी ढल रही है, लुंढ रही है! इधर लोग मस्त हो रहे हैं! तुम कब तक ऐसे सिकुड़े-सिकुड़े बैठे रहोगे? एक न एक दिन तुम प्याली हाथ में ले लोगे। झिझकोगे, सोचोगे, विचारोगे--मगर पी जाओगे।
संन्यास शराब जैसा है। फिर लग गई लत तो लग गई। संक्रामक है। इन गैरिक व्यक्तियों के बीच बैठते रहो, उठते रहो, आते रहो, जाते रहो। जल्दी कुछ भी नहीं है। पकने दो।

यह घटना ऐसी घटनी चाहिए जैसी प्रेम में घटती है। देखा एक स्त्री को-- पहली नजर का प्रेम कहते हैं न! देखा कि बस हो गया! देखा एक पुरुष को कि हो गया! पूछा नहीं नाम, पूछा नहीं पता, पूछा नहीं गांव, पूछा नहीं ठांव--बस कुछ हो गया! ऐसी ही कुछ बात मेरे-तुम्हारे बीच हो तो गई है--नहीं तो खिंचे कैसे चले आते? मगर ज्यादा बुद्धिमान मालूम होते हो। आते हो, बुद्धि की आड़ लेकर आते हो। बैठते भी होओगे दूर-दूर, वहां जहां मुझे दिखाई न पड़ो। अब मैं तुमको देख रहा हूं, कहां बैठे हो! ऐसे बच न सकोगे। अब नाम तुम्हारा नहीं लूंगा, नहीं तो ये लोग बहुत हंसेंगे और तुम्हें पकड़ेंगे। हालांकि मैं जहां देख रहा हूं, वे लोग भी देख लेंगे कि कौन है।

धार थी तुममें कि उसको आंकते ही, हो गया बलिहार था मैं।

शौक खतरों-जोखिमों से खेल करने का नहीं मेरा नया था,
किंतु चुंबक से खिंचा जैसा
तुम्हारे पास क्यों आ गया था,
कुछ समझने, ख्याल करने का
कहां था तब समय, अब सोचता हूं,
धार थी तुममें कि उसको आंकते ही, हो गया बलिहार था मैं।

आग उसकी है, उसे जो बांह में ले
दाह झेले, गीत गाए,
धार उसकी, जो बुझाए प्यास
उसकी रक्त से औ" मुस्कुराए
वक्त बातों में नहीं आता, परीक्षा
सख्त लेता हर किसी की,
और उसके वास्ते तो जिंदगी में सर्वदा तैयार था मैं।
धार थी तुममें कि उसको आंकते ही, हो गया बलिहार था मैं।

धार तो है यहां। बिजली सा यह जो मैं कौंध रहा हूं तुम्हारे सामने, तुम
कब तक आंखें चुराओगे? तुम कब तक भागे-भागे रहोगे? कब तक आंख बंद रखोगे? आते रहो, जाते रहो! यह घटना घटने वाली है। इसकी मैं भविष्यवाणी किए देता हूं। संन्यास मेरी तरफ से तो हो ही गया है, इसीलिए तो तुम आते हो।
मैंने तुम्हें चुन ही लिया है, इसीलिए तो तुम आते हो। तुम्हारी तरफ से देर हो रही है, मेरी तरफ से देर नहीं है।
आज इतना ही।

अथातो भक्ति जिज्ञासा, भाग 2
तैतीसवां प्रवचन

विकास, क्रांति और उत्क्रांति

सूत्र

उत्क्रांतिस्मृतिवाक्यशेषाच्च।। 81।।
महापातकिनां त्वार्तौ।। 82।।
सैकान्तभावो गीतार्थप्रत्यभिज्ञानात्।। 83।
परां कृत्वैव सर्वेषां तथाह्याह।। 84।।
भजनीयेनाद्वितीयमिदं कृत्स्नस्य तत्स्वरूपत्वात्।। 85।।

जुस्तजू-ए-राह बाकी है न मंजिल की तलाश

मुझको खुद है अब मेरे खोए हुए दिल की तलाश
रोक ऐ हमदम! न मेरी अश्क-अफशानी को तू
महफिले-हस्ती को है इक शाम-ए-महफिल की तलाश
अब नजर आए जहां अपने सिवा कोई न हो
दिल को राहे-शौक में है ऐसी मंजिल की तलाश
दीदाए-जाहिर से कब तक देखिए अंदाजे-दोस्त
कीजिए ऐ "शमअ"! अब इक दीदाए-दिल की तलाश

एक तो आंख है हमारे पास जो बाहर देखती है। और एक आंख हमारे पास और भी
है जो भीतर देखती है। उस भीतर की आंख का हमें कुछ अनुमान नहीं है। उस भीतर की आंख को खोज लेने का नाम ही धर्म है। और जो आंख भीतर की है वह भीतर ही नहीं देखती है, वह बाहर के पीछे छिपा जो भीतर है उसे भी देखती है।
संसार और परमात्मा दो नहीं हैं। संसार का अर्थ हैः परमात्मा अभी केवल बाहर की आंख से देखा गया है। परमात्मा अभी बाहर-बाहर से देखा गया है, तो संसार। जिस दिन संसार को हम भीतर की आंख से देख लेते हैं, उसी दिन संसार विलीन हो जाता है, परमात्मा ही शेष रह जाता है। परमात्मा संसार की अंतरंग भूमिका है। परमात्मा संसार की आत्मा है।
परमात्मा और संसार दो नहीं हैं, हमारे देखने के दो ढंग हैं।
दीदाए-जाहिर से कब तक देखिए अंदाजे-दोस्त
बाहर की आंख से कब तक उस प्यारे को देखने की कोशिश करोगे?
दीदाए-जाहिर से कब तक देखिए अंदाजे-दोस्त
कीजिए ऐ "शमअ"! अब इक दीदाए-दिल की तलाश
अब एक ऐसी आंख चाहिए जो दिल में ऊगे। एक हृदय की आंख चाहिए। उस हृदय की आंख से ही परमात्मा देखा जा सकता है। लोग पूछते हैंः परमात्मा कहां है? उन्हें पूछना चाहिएः मेरा हृदय कहां है? मेरा हृदय कैसे खुले? उन्हें पूछना चाहिए कि मैं भीतर देखने में समर्थ कैसे हो पाऊं? जो अपने भीतर देख लेगा वह समस्त के भीतर भी देख लेता है, ध्यान रखना। बाहर से हम अपने को भी देखते हैं, संसार को भी देखते हैं। न हमारी अपने से सीधी पहचान है, न संसार से सीधी पहचान है।
भक्ति उस भीतर की आंख को खोलने का सुगमतम उपाय है। योग भी खोलता है उस आंख को, पर लंबी प्रक्रियाएं हैं। बड़ा यतन है, बड़ी चेष्टा है, जबर्दस्ती है। भक्ति भी खोलती है उस आंख को; पर न चेष्टा है, न जबर्दस्ती है। यतन नहीं है, भजन है। भक्त सिर्फ परमात्मा के हाथों में अपने को छोड़ देता है--खोलो मेरी भीतर की आंख!
फिर जिसने जीवन दिया है, जिससे अस्तित्व उमगा है, उससे सब हो सकता है--
सब असंभव संभव है। तुम इस छोटी सी बात को ठीक से समझ लेना। जिस ऊर्जा से सारा जगत चलता है, जिस ऊर्जा से चांद-तारे बनते हैं, जिस ऊर्जा से तुम जन्मे हो, वृक्ष जन्मे हैं, पहाड़-पर्वत जन्मे हैं, उस ऊर्जा से तुम्हारी भीतर की आंख न खुल सकेगी? अगर तुम संसार को भी ठीक से देखो, तो एक बात साफ

हो जाती है--इतना विराट विस्तार इतनी सुगमता से चल रहा है, तो क्या इतनी विराट ऊर्जा के बस में यह बात न होगी कि तुम्हारे हृदय की कली खुल जाए? सूरज निकलता है, करोड़ों-करोड़ों कलियां खिल जाती हैं।
भक्ति का यही भरोसा है, कि हमारे किए नहीं होता है, हमारे किए बाधा पड़ती है, हमारे करने से ही बाधा पड़ जाती है; सहजता से होता है, उस पर भरोसे से होता है, श्रद्धा से होता है।
आज के सूत्र बड़े बहुमूल्य हैं। पहला सूत्र--
उत्क्रांतिः स्मृतिवाक्यशेषात च।
"क्योंकि श्री भगवान ने कहा है कि उनके भक्तगण सब कर्मों का उल्लंघन करके एक ही बार में सिद्धिलाभ करने में समर्थ होते हैं।"
एक-एक शब्द समझने जैसा है।
उत्क्रांतिः स्मृतिवाक्यशेषात च।
स्मरण करो उन भगवान के वचनों का। वे वचन बिखरे पड़े हैं। वेदों में, उपनिषदों में, गीता में, कुरान में, बाइबिल में, सारे जगत के शास्त्रों में वे वचन बिखरे पड़े हैं। भगवान बहुत बार बोला है। जब भी किसी भक्त ने पुकारा है तो भगवान बोला है। गीता बोली गई अर्जुन की प्यास के कारण। न अर्जुन प्यासा होता, न गीता का जन्म होता। जब भी कोई भक्त प्यासा हुआ है, तो उसका मेघ बरसा है। खूब बरसा है। वचन बिखरे पड़े हैं। मनुष्य-जाति की चेतना के इतिहास में जगह-जगह मील के पत्थर हैं। भगवान बहुत बार बोला है। तुम भी पुकारोगे, तुमसे भी बोलेगा। तुमसे नहीं बोला है तो सिर्फ इसीलिए कि तुमने पुकारा ही नहीं। तुमने प्यास ही जाहिर नहीं की। तुमने प्रार्थना ही निवेदन नहीं की। तुमने पाती ही नहीं लिखी। और तुम नाहक शिकायत कर रहे हो कि मुझसे कभी नहीं बोला। मुझे कैसे भरोसा आए? बोला होगा अर्जुन से, अर्जुन जाने, मुझे कैसे भरोसा आए?
अर्जुन की भांति तुमने पुकारा है? निवेदन किया है? तुम निवेदन करोगे
और तत्क्षण तुम पाओगे--उतरने लगे उसके वचन, किरणें आने लगीं, कली खिलने लगी।
उत्क्रांतिः स्मृतिवाक्यशेषात च।
यह उत्क्रांति शब्द भी समझ लेने जैसा है। तीन शब्द समझोगे तो उत्क्रांति शब्द समझ में आएगा।
एक शब्द है, विकास। विकास का अर्थ होता हैः जो अपने आप हो रहा है। करना नहीं पड़ता। बच्चा जवान हो जाता है, जवान बूढ़ा हो जाता है। बीज पौधा हो जाता है, पौधा वृक्ष बन जाता है, वृक्ष में फूल आ जाते हैं। यह विकास। इसे कोई कर नहीं रहा है। यह हो रहा है। विकास को ठीक से समझो। भक्त की आस्था इसी विकास में है, इसी विकास के परम रूप में है। अब वृक्ष को खींच-खींच कर थोड़े ही बीज से निकालना पड़ता है। और निकालोगे तो क्या निकाल पाओगे! बीज का नाश हो जाएगा। कली को पकड़ कर खोलना थोड़े ही पड़ता है! खोलोगे, तुम्हारे खोलने में ही मुर्झा जाएगी, कभी फूल न बन पाएगी। बच्चे को खींच-खींच कर थोड़े ही जवान करना पड़ता है। सौभाग्य है कि लोग खींच-खींच कर बच्चों को जवान नहीं करते। नहीं तो बच्चे कभी के समाप्त हो गए होते। सब अपने से हो रहा है। इतना विराट अपने से हो रहा है! इस अपने से होने पर भरोसा करो।
विकास का अर्थ होता हैः जो अपने से हो रहा है। क्रांति का अर्थ होता हैः जो करनी पड़ती है। जोर-जबर्दस्ती, हिंसा। इसीलिए क्रांति में तो मौलिक रूप से हिंसा छिपी हुई है। अहिंसक क्रांति होती ही नहीं। क्रांति का अर्थ ही जोर-जबर्दस्ती है। फिर तुमने जोर-जबर्दस्ती कैसे की, इससे फर्क नहीं पड़ता। किसी की छाती पर छुरा रख कर कर दी, कि उपवास रख कर कर दी, मगर जोर-जबर्दस्ती है। अपने को मारने की धमकी दी, कि दूसरे को मारने की धमकी दी, इससे भेद नहीं पड़ता। क्रांति का अर्थ ही होता हैः तुमने भरोसा खो दिया विकास पर, तुम जल्दबाजी में पड़ गए। क्रांति में अश्रद्धा है।
इसलिए यह आकस्मिक नहीं है कि क्रांतिकारी अक्सर नास्तिक होते हैं। यह आकस्मिक नहीं है कि क्रांतिकारी अधार्मिक हो जाते हैं। यह आकस्मिक नहीं है। इसके पीछे तारतम्य है। क्रांति का अर्थ ही होता हैः किसी व्यक्ति ने अब भरोसा खो दिया विकास पर। अब वह कहता है, हमारे बिना किए नहीं होगा। कुछ

करेंगे तो होगा। ऐसे तो चलता ही रहा है, कभी कुछ नहीं होता। क्रांति का अर्थ होता हैः जोर-जबर्दस्ती से लाया गया उलट-फेर। उसमें खून के धब्बे तो रहते ही हैं। दाग तो छूट जाते हैं, जो फिर मिटाए नहीं मिटते।
उत्क्रांति का क्या अर्थ है?
उत्क्रांति बड़ा अनूठा शब्द है। उत्क्रांति में कुछ तो क्रांति का हिस्सा है, इसलिए उसको उत्क्रांति कहते हैं; और कुछ विकास का हिस्सा है, इसलिए उसको क्रांति मात्र नहीं कहते, उत्क्रांति कहते हैं।
विकास अपने से हो रहा है। बड़ी धीमी आहिस्ता गति है। तुम्हें कुछ करना नहीं पड़ता। तुम सोते रहो, बैठे रहो, तुम जवान होते रहोगे। तुम सोते रहो, बैठे रहो, तुम बूढ़े होते रहोगे। कुछ करो, न करो, बुढ़ापा आता रहेगा। अपने से हो रहा है। उसके विपरीत करना कुछ संभव नहीं है। जल्दबाजी भी क्या करोगे? जल्दबाजी भी कुछ हो नहीं सकती। अवश हो। तुम्हारी प्यास की भी जरूरत नहीं है, तुम्हारी प्रार्थना की भी जरूरत नहीं है। तो विकास।
और क्रांति का अर्थ हैः तुम्हारे पूरे अहंकार की जरूरत है। तुम अपने अहंकार के हाथ में सब ले लो, सारी व्यवस्था ले लो, जगत के नियम अपने हाथ में ले लो, तोड़-मरोड़ करो, जबर्दस्ती करो, अपनी मंशा पूरी करने की चेष्टा करो। उत्क्रांति का अर्थ हैः इतना तुम करो--प्रार्थना, प्यास--और शेष परमात्मा को करने दो। प्रार्थना तुम्हें करनी होगी, इसलिए थोड़ी क्रांति उसमें है। क्योंकि इतनी तो तुम्हें चेष्टा करनी होगी--प्रार्थना की, प्यास की, पुकार की। लेकिन फिर शेष अपने आप होता है; बाकी सब विकास है। इसलिए उत्क्रांति बड़ा अदभुत शब्द है। उसमें विकास और क्रांति का समन्वय है। उसमें जो भी शुभ है विकास में, वह सब ले लिया गया है; और जो अशुभ है, वह छोड़ दिया गया है। क्या शुभ है विकास में? शुभ है कि सब अपने से होता है। अशुभ है कि लोग काहिल और सुस्त हो जाते हैं। मुर्दा हो जाते हैं। जो क्रांति में शुभ है, वह भी ले लिया है; और जो अशुभ है, वह छोड़ दिया है। शुभ क्या है क्रांति में? कि लोग मुर्दा नहीं होते। सजग होते हैं, सचेत होते हैं। अशुभ क्या है? हिंसक हो जाते हैं, अहंकारी हो जाते हैं। उत्क्रांति ने दोनों में जो सुगंध थी, इकट्ठी कर ली है; दोनों में जो दुर्गंध थी, वह छोड़ दी है। प्रार्थना तुम करना, भजन तुम करना, कीर्तन तुम करना, पुकारना तुम, आंसू तुम बहाना, मगर शेष उसे करने देना। बस पुकार तुम्हारी तरफ से पूरी हो जाए, फिर सब कुछ प्रसाद उसकी तरफ से बरसेगा। उत्क्रांति में मनुष्य और परमात्मा का मिलन है। विकास में अकेला परमात्मा है, क्रांति में अकेला मनुष्य है, उत्क्रांति में मनुष्य और परमात्मा का मिलन है। संग-साथ हो लिए, हाथ में हाथ हो गया।
उत्क्रांति बड़ा प्यारा शब्द है। शांडिल्य ने इस शब्द का उपयोग करके गजब किया।
शांडिल्य कहते हैंः उत्क्रांतिः स्मृतिवाक्यशेषात च।
याद करो परमात्मा ने कितनी बार कहा है--उत्क्रांति से होगा।
"श्री भगवान ने कहा हैः उनके भक्तगण सब कर्मों का उल्लंघन कर एक बार
ही सिद्धिलाभ करने में समर्थ होते हैं।"
सब कर्मों का उल्लंघन कर! यह बात गणित को पकड़ में नहीं आती। सोच-विचारशील आदमी इससे बड़ी बेचैनी में पड़ जाता है। सोच-विचारशील आदमी सोचता है कि जितने हमने पापकर्म किए हैं, उतने हमें पुण्यकर्म करने पड़ेंगे, तब तराजू बराबर, पलड़े दोनों एक वजन के होंगे। बुरा किया, अच्छा करना होगा। चोट किसी को पहुंचाई, तो सेवा करनी होगी। किसी को लूट लिया, तो दान देना होगा। यह बात बिल्कुल गणित की है। यह बात बिल्कुल न्याययुक्त मालूम होती है कि बुरे को साफ करना होगा। फिर बुरा करने में जनम-जनम लगे हैं, तो साफ करने में भी जनम-जनम लगेंगे। उत्क्रांति कैसे हो जाएगी? एक क्षण में कैसे हो जाएगा? तत्क्षण कैसे हो जाएगा?
लेकिन भक्त जानता है कि तत्क्षण भी हो जाता है। तत्क्षण होने की कला है, कीमिया है।
क्या कीमिया है? पहली बात, तुमसे बुरा कभी हुआ है, वह इसीलिए हुआ है कि तुम सजग न थे, सचेत न थे। तुमसे बुरा अगर कभी हुआ है, तो तुमने जान कर बुरा

नहीं किया है। तुम ऐसा आदमी नहीं खोज सकोगे जो जान कर बुरा करता है। बुरे से बुरा करने वाला भी अनजाने करता है। या सोच कर करता है कि ठीक ही कर रहा हूं। या सोचता है कि इससे कुछ न कुछ ठीक होगा। और बुरा से बुरा आदमी भी पछताता है कि ऐसा मैंने क्यों किया? एकांत क्षण में, अपनी निर्जनता में, अपने मौन में सोच-विचार करता है, प्रायश्चित्त करता है। नहीं करना था। हो गया। अब न करूंगा। अब दुबारा नहीं होने दूंगा।
तुम बुरे मन की स्थिति समझो। बुरा मन, बुरा है, ऐसा सोच कर नहीं करता, पहली बात। अगर लगता भी है कि बुरा होगा तो यह अपने को समझा लेता है कि इससे कुछ भला होने वाला है, इसलिए कर रहा हूं। करने के बाद कभी भी इसको अंगीकार नहीं कर पाता कि मैंने क्यों किया। प्रसन्नता से, प्रफुल्लता से स्वीकार नहीं कर पाता। पछताता है। चाहे औरों के सामने न भी कहे, अकड़ और अहंकार की वजह से रक्षा भी करे, लेकिन एकांत में जानता है कि भूल हुई है और नहीं होनी थी। अपनी ही आंखों के सामने पतित हो जाता है। अपनी ही आंखों में श्रद्धा खो जाती है, अपने ही प्रति। और सोचता है कि अब नहीं करूंगा, अब कभी नहीं करूंगा। सबके जीवन में ऐसी घटना घटती है, छोटे पाप हों कि बड़े पाप हों। भक्ति की उदघोषणा यह है कि आदमी से पाप इसलिए हो रहा है--बहुत पाप हों
कि कम, इससे कुछ भेद नहीं पड़ता--हो इसलिए रहा है कि आदमी अभी सचेत नहीं है। और उसके सचेत होने में बाधा क्या है? उसके सचेत होने में अहंकार बाधा है। मैं हूं, यही उसकी मूर्च्छा है। भक्ति का शास्त्र एक ही मूर्च्छा मानता है--मैं। और जब तक मैं है तब तक बुरा होता ही रहेगा। तुम चाहे पुण्य करो, तो भी पाप होगा। तुम भला करो, तो भी बुरा होगा। जिस दिन मैं चला जाएगा उस दिन तुम बुरा करना भी चाहोगे तो नहीं कर पाओगे। क्योंकि मैं के बिना बुरा नहीं होता। और जहां मैं जाता है, वहां परमात्मा तुम्हारे भीतर से सक्रिय हो जाता है। मैं के कारण परमात्मा सक्रिय नहीं हो पाता।
इसलिए सवाल यह नहीं है कि हम एक-एक कर्म को शुद्ध करें, सवाल यह है कि कर्मों का जो मूल है, अहंकार, उसको समर्पित कर दें। जड़ को काट दें। फिर पत्ते अपने आप ऊगने बंद हो जाते हैं।
आमतौर से लोग पत्ते काटते रहते हैं और वृक्ष बढ़ता रहता है। जड़ को पानी सींचते रहते हैं। तुम्हें यह बात लगेगी कठिन, लेकिन तुम अगर परीक्षा करोगे चारों तरफ, अवलोकन करोगे--अपना, औरों का--तो बात साफ हो जाएगी। लोग जड़ को तो पानी देते रहते हैं और पत्ते काटते रहते हैं। एक आदमी सोचता है कि मंदिर बनवा दूं--पुण्य का कृत्य! मंदिर तो बनवा देता है, लेकिन मंदिर बना कर अकड़ से भर जाता है कि मैंने मंदिर बनवाया।
भगवान का मंदिर आदमी कैसे बनाएगा? और आदमी का बनाया हुआ मंदिर भगवान
का मंदिर कैसे होगा? कम से कम मंदिर बनाते वक्त तो यह स्मरण रखना चाहिए था कि वही बना रहा है; शायद मैं उपकरण हूं--निमित्त मात्र। उसके अपने हाथ नहीं हैं, मेरे हाथों का उपयोग कर रहा है। मेरे सहारे बना रहा है। मेरे द्वारा बना रहा है। मुझसे उसकी ऊर्जा बह रही है।
लेकिन मैं बना रहा हूं! मंदिरों पर भी पत्थर लग जाते हैं कि बनाने वाला कौन है--दानवीर, महादानवीर। अकड़ आ गई। अहंकार आ गया। तो अहंकार तो जड़ है, उसको तो पानी सींच रहे हो, और सोचते हो कि तुम पुण्य कर रहे हो। बोधिधर्म चीन गया। सम्राट ने पूछा चीन के उससे कि मैंने बहुत बुद्ध
के मंदिर बनवाए, और हजारों प्रतिमाएं प्रतिष्ठित करवाई हैं, और न मालूम कितने विहार और आश्रम बनवाए हैं, और लाखों भिक्षु राजमहल से रोज भोजन पाते हैं, इस सबका पुण्य क्या है?
बोधिधर्म ने कहा, कुछ भी नहीं। और अगर जल्दी न चेते तो महानरक में पड़ोगे।
सम्राट वू तो नाराज हो गया। स्वाभाविक। उसके पहले और भी बौद्ध भिक्षु
आए थे, बड़े बौद्ध भिक्षु आए थे, सबने कहा था--आप धन्यभागी, आप महापुण्यात्मा, आपने इतना अपूर्व किया है कि कोई सम्राट अब तक नहीं कर पाया।
सम्राट वू ने चीन को बौद्ध बनाया। तो काम तो उसने बहुत बड़ा किया था।
इस देश से बौद्ध धर्म उखड़ गया था, चीन में जमा दिया उसको। करोड़ों लोग बौद्ध

हुए सम्राट वू के कारण। तो स्वभावतः बौद्ध भिक्षु उसके गुणगान में स्तुतियां लिखते थे, पत्थर खोदे गए थे, ताम्रपत्र पर उसका नाम लिखा गया था, पहाड़ों पर उसकी स्तुति गाई गई थी।
फिर बोधिधर्म आया। बोधिधर्म अदभुत प्रज्ञापुरुष था। बुद्ध की प्रतिभा का पुरुष था। बाकी जो आए थे, साधु-संन्यासी थे। बोधिधर्म ज्ञानी था। अनुभव से उपलब्ध द्रष्टा था। भगवत्ता को उपलब्ध था। सम्राट वू ने सोचा था कि बोधिधर्म भी मेरी प्रशंसा करेगा। लेकिन बोधिधर्म ने कहा, कुछ भी नहीं पुण्य; और अगर जल्दी यह सब भूल न गए तो महानरक में पड़ोगे।
सुन कर चोट लगती है। लेकिन बोधिधर्म क्या कह रहा है? बोधिधर्म यही कह रहा है, तुमने जो सब किया सो ठीक, मगर मैंने किया है, यह अकड़ को अब पानी मत दो, नहीं तो नरक का रास्ता तय कर रहे हो। अच्छा करके नरक जाओगे।
कर्ता नरक जाता है। न तो अच्छा नरक ले जाता, न बुरा, कर्ता का भाव नरक
ले जाता है। भक्ति का शास्त्र कहता हैः सिर्फ कर्ता-भाव चला जाए। वही कृष्ण ने अर्जुन से गीता में कहा है, कि तू निमित्त मात्र हो जा। यह गांडीव तू उठा, लेकिन उठाने दे उसे; युद्ध में तू लड़, लेकिन लड़ने दे उसे; तू बीच से हट जा; वह तेरा जो काम लेना चाहे, ले लेने दे; तू निमित्त मात्र है। और इस चिंता में भी मत पड़ कि तू लोगों को मार रहा है। तू क्या मारेगा? जिसे उसे मारना है, वह मार रहा है; जिसे मारना है, वह मार ही चुका है। मैं तुझसे कहता हूं, अर्जुन, कि मैं देखता हूं यहां अनेक मुर्दे खड़े हैं, जिनको सिर्फ धक्के की जरूरत है, वे गिर जाएंगे। धक्का कोई और दे देगा, तू न देगा तो। इसलिए तू चिंता में मत पड़। तू निश्चिंत हो जा। हे कौंतेय! तू निश्चिंत होकर युद्ध में उतर जा। न कोई पाप है, न कोई पुण्य है। एक ही पाप है कि मैं करने वाला हूं, और एक ही पुण्य है कि परमात्मा करने वाला है।
इसलिए उत्क्रांति संभव है। बस इतनी ही बात बदल जानी चाहिए। और यही कठिन मालूम पड़ता है। अच्छे काम करने को हम राजी हैं, लेकिन यह अहंकार छोड़ने को हम राजी नहीं हैं।
"श्री भगवान ने कहा है कि उनके भक्तगण सब कर्मों का उल्लंघन कर एक ही बार में सिद्धिलाभ करने में समर्थ होते हैं।"
"हे कौंतेय!" कृष्ण अर्जुन से कहते हैं, "जो अनन्यचित्त होकर आराधना करते हैं, वे यदि अत्यंत दुराचारी भी हों तो भी उन्हें साधु जानना, क्योंकि पापीजन भी यदि मेरी भक्ति करें तो शीघ्र ही शांति की उपलब्धि कर लेते हैं। भगवान की कृपा से भक्तगण सब अवस्था में कल्याण को प्राप्त करते हैं, इसमें कोई भी संदेह नहीं है।"
जब पहली बार इस तरह के वचनों का पश्चिम की भाषाओं में अनुवाद हुआ, तो विद्वज्जन चौंक गए थे। ये कैसे वचन हैं?
"हे कौंतेय, जो अनन्यचित्त होकर मेरी आराधना करते हैं, वे यदि अत्यंत दुराचारी भी हों तो भी उन्हें साधु जानना।"
ये कैसे वचन हैं? जिन्होंने इनके अनुवाद किए थे उनको भरोसा नहीं होता
था कि वे अनुवाद ठीक कर रहे हैं; क्योंकि धर्मशास्त्र ऐसा कहेगा! उन्होंने तो मूसा की दस आज्ञाएं पढ़ी थीं--ऐसा मत करना, ऐसा मत करना, ऐसा मत करना; ऐसा करना, ऐसा करना, ऐसा करना। उन्होंने तो करना और न करना ही सुना था। उन्हें इस अपूर्व बात का कुछ पता ही न था कि जड़ भी काटी जा सकती है। करना न करना तो पत्तों की बातें हैं। जड़ काटी जा सकती है।
जड़ कैसे कटती है?
अनन्यचित्त होकर। जो मेरे साथ एक भाव हो जाता है, अनन्यचित्त हो जाता है, कृष्ण कहते हैं, जो अपनी दूरी समाप्त कर देता है, जो मेरे और अपने बीच किसी तरह का व्यवधान नहीं रखता, जो सब भांति मेरी तरंग में तरंग बन जाता है; फिर वह पापी भी हो तो उसको साधु जानना।
इससे उलटा भी सच है। जो मेरे साथ अनन्यचित्त न हो--यह गीता में कहा नहीं है, लेकिन मैं तुमसे कहता हूं--वह अगर पुण्यात्मा भी हो तो उसे साधु मत जानना। वह तो सीधा तर्क है। दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। क्यों साधु मत जानना? क्योंकि जहां अहंकार है, वहां साधुता नहीं है। साधुता का

जन्म ही निर-अहंकार भाव में होता है। वह निर-अहंकारिता की सुवास है। वह निर-अहंकार का फूल जब खिलता है तो जो सुवास उठती है, उसी का नाम साधुता है। अनन्यभाव बहुमूल्य शब्द है। अन्य नहीं हो तुम, सो अनन्य। अलग नहीं हो तुम, भिन्न नहीं हो तुम--अभिन्न। हम हैं ही नहीं भिन्न, हम सब संयुक्त हैं, एक ही प्राण हममें प्रवाहित है, हम एक ही धारा की तरंगें हैं। बस मान बैठे हैं कि हम अलग हैं, हर लहर सोच बैठी है कि हम अलग हैं, वहीं अड़चन हो गई है। उस अलग होने के ख्याल में ही तुम्हारे जीवन का सारा संकट है। जिस दिन तुम समझ लोगे कि अलग नहीं हो, उसी दिन सारे संकट विलीन हो जाएंगे। एक क्षण में विलीन हो जाएंगे, इसीलिए उत्क्रांति। सब कर्मों का उल्लंघन कर एक ही बार में सिद्धिलाभ करने में समर्थ हो जाता है भक्त।
आरजूएं एक ही मरकज पे रह कर मिट गईं
मैं जिसे आगाज समझा था वही अंजाम है
जिसे भक्त प्रारंभ समझता है, अंत में पाता है कि वही अंत है।
मैं जिसे आगाज समझा था वही अंजाम है
जिसे समझा था कि यात्रा की शुरुआत है... समर्पण मैं तुमसे कहता हूं यात्रा की शुरुआत है। लेकिन समर्पण ही यात्रा का अंत भी है। जब तक तुमने समर्पण नहीं किया है तब तक यात्रा की शुरुआत है, जिस दिन किया, उसी दिन यात्रा की पूर्णता हो गई। फिर उसके पार जाने को बचा कौन? जाने वाला ही न बचा। यात्री ही खो गया तो यात्रा कैसे बचेगी? समर्पण का अर्थ होता हैः यात्री समाप्त हो गया। यात्री ने अपने हथियार डाल दिए। अपने को डाल दिया। थोड़ा सोचो, इस महिमापूर्ण भाव को थोड़ा विचारो, इसे थोड़ा भीतर गुनगुन होने दो--अगर तुम नहीं हो, कौन जाएगा? कहां जाएगा? फिर कैसी अतृप्ति? फिर कैसा पाना? कैसा खोना? कैसा निर्वाण? कैसा मोक्ष? किसका मोक्ष? किसका निर्वाण? फिर तुम इसी क्षण पहुंच गए। सब हो गया।
इस एक छोटे से अहंकार को गिरा देने से सब हो जाता है। इस अहंकार के कारण तुम अन्य मालूम हो रहे हो परमात्मा से। अन्य होने के कारण तुम तड़प रहे हो, परेशान हो रहे हो। अन्य होने के कारण मछली सागर के बाहर पड़ गई है। अनन्य हो जाओ, फिर सागर में डुबकी लगा लो, फिर कोई पीड़ा नहीं है। फिर कोई संताप नहीं, कोई चिंता नहीं। फिर तुम घर लौट आए। फिर यह अस्तित्व तुम्हारा शत्रु नहीं है। फिर यह अस्तित्व तुम्हारा मित्र है। पहले कदम पर मंजिल पूरी हो जाती है। और अगर पहले ही कदम पर मंजिल पूरी हो जाती है, तो ही समझना तुम भक्त हो। दूसरा कदम उठाने को बचे, तो उसका मतलब समर्पण अभी पूरा नहीं हुआ था। और समर्पण आधा-आधा होता ही नहीं। या तो होता है तो पूरा होता है, या नहीं होता है। ये समर्पण जैसी महत्वपूर्ण चीजें बांटी नहीं जा सकतीं, काटी नहीं जा सकतीं; कि थोड़ा सा अभी किया, फिर थोड़ा सा कल करेंगे, फिर थोड़ा सा परसों करेंगे। बड़ी हिम्मत चाहिए एक कदम में छलांग लगा लेने की। बड़ा पागलपन चाहिए।
मुझसे पहले कोई शायद इतना दीवाना न था
गौर से तकता है हर इक जर्राए-सेहरा मुझे
और जब भक्त पहली छलांग लगाता है, तो सारी दुनिया उसे गौर से देखती है
कि यह पागल हुआ! कहीं ऐसे होना है? धीरे-धीरे चलो। नियम पालन करो, व्रत साधो, मंदिर जाओ, पूजा करो, प्रार्थना करो। ऐसे कहीं होना है?
मुझसे लोग कहते हैं कि आप हर किसी को संन्यास दे देते हैं!
मैं कहता हूं, हर किसी को? यह बात ही अपमानजनक है। यहां किसी को भी "हर किसी" मत कहना। यहां परमात्मा के सिवाय कोई भी नहीं है। हर किसी को? उनका मतलब, ऐरे-गैरे-नत्थू-खैरों को। यहां ऐरा-गैरा-नत्थू-खैरा कोई भी नहीं है। हुआ ही नहीं कभी। हां, किसी ने अपने को खुद ऐरा-गैरा-नत्थू-खैरा मान लिया हो, यह उसकी भ्रांति है, मगर यहां कोई है नहीं। यहां उसके सिवाय कोई भी नहीं है। इसलिए किसी को भी संन्यास दे देता हूं। अनन्यभाव। अन्य तुम हो नहीं। परमात्मा से भिन्न तुम हो नहीं। किसी और पात्रता की जरूरत नहीं है। लोग मुझसे पूछते हैंः आप पात्रता नहीं पूछते?

एक पुराने ढब के संन्यासी कुछ दिन पहले आ गए थे, काफी उम्र है, कोई होंगे पैंसठ-सत्तर साल के, बीस साल से संन्यासी हैं, पूछते थे कि आप हर किसी को संन्यास दे देते हैं? पात्रता?
मैंने उनसे पूछा, बीस साल के संन्यास के बाद भी अभी यह ख्याल तुम्हें नहीं आया कि यहां सब एक ही परमात्मा का वास है? परमात्मा से पात्रता और क्या मांगनी है? रोज पढ़ते हो--तत्त्वमसि। तू वही है। वह तू ही है। रोज उपनिषद दोहराते हो। रोज गीता भी दोहराते हो। यह वचन भी कई बार पढ़ा होगा कि हे कौंतेय! जो अनन्यचित्त होकर मेरी आराधना करता है, वह दुराचारी भी हो तो भी साधु हो गया। नहीं कि नहीं पढ़ा होगा। बीस साल से संन्यासी हैं, गीता और उपनिषद और वेद ही पढ़ रहे हैं। उनके ज्ञाता हैं। लेकिन बात कहीं उतरती नहीं हृदय में, ऐसा मालूम होता है। पढ़ भी लेते, सुन भी लेते, कंठस्थ भी कर लेते-- तोतों की तरह। बात कहीं भीतर उतरती नहीं, उसका जीवन में कोई प्रभाव नहीं दिखाई पड़ता।
अगर यह बात सच है कि हम सब एक ही परमात्मा के हिस्से हैं, तो फिर कौन पात्र, कौन अपात्र? फिर कौन रावण, कौन राम? फिर कौन बुरा, कौन भला? जो जागा, उसे न कोई बुरा है, न कोई भला है। हां, ये सब सोए के भेद हैं। सोए में एक आदमी सपना देख रहा है कि मैं साधु हो गया और एक आदमी सपना देख रहा है कि मैं चोर हो गया, मगर ये सब सोए के भेद हैं। जाग कर दोनों पाएंगे--न तो कोई साधु था, न कोई चोर था। न किसी ने हत्या की थी और न किसी ने दान दिया था। जाग कर पता चलेगा--सब सपने थे।
इस जगत में लोग अलग-अलग तरह के सपने देख रहे हैं। अस्तित्व सबका एक है, सपने अलग-अलग हैं। सपने प्राइवेट हैं। सत्ता सार्वलौकिक है, सार्वभौम है। इस भेद को खूब गहरे बैठ जाने दो। और अगर तुम सपने पर विचार करोगे तो तुम्हें समझ में आ जाएगा कि सपना बिल्कुल निजी होता है, बहुत प्राइवेट बात है। तुम किसी मित्र को भी निमंत्रण नहीं कर सकते अपने सपने में, इतना निजी है। तुम्हारे बिस्तर पर ही तुम्हारे साथ सोई हो पत्नी, वह अपना सपना देखेगी, तुम अपना देखोगे। ऐसा नहीं है कि दोनों एक ही सपना देख रहे हैं। इतना निजी है। देह से देह छू रही है, लेकिन मन अपने-अपने सपने देख रहे हैं। तुम लाख उपाय करो, किसी मित्र को कहो कि बहुत ऊंचा सपना देखा रात... । मुल्ला नसरुद्दीन अपने एक मित्र से बात कर रहा था। मुल्ला नसरुद्दीन
ने कहा कि कल तो बड़ा मजा किया। सपने में पेरिस गया था। और पेरिस की रातें-- रंगीन रातें! और पेरिस के जुआघर और शराबघर! बड़ा मजा आया। मित्र ने कहा, यह कुछ भी नहीं। मैंने भी कल सपना देखा। हेमामालिनी को लेकर मैं कश्मीर चला गया। मुल्ला एकदम नाराज हो गया। मुल्ला ने कहा, तो फिर मुझे क्यों नहीं बुलाया? यह कैसी दोस्ती! उस मित्र ने कहा, बुलाया था, मैं तो तुम्हारे घर गया, लेकिन तुम्हारी पत्नी ने कहा कि मुल्ला तो पेरिस गया है। ये सपने में हो रही हैं बातें!
सपने में तुम किसी को सहयोगी नहीं कर सकते हो। न निमंत्रण कर सकते हो। सपना बिल्कुल निजी है। दूसरा तो क्या होगा सपने में, तुम स्वयं भी नहीं होते। अगर गौर से देखोगे तो सपने में तुम नहीं होते। सपना होता है, तुम कहां? सुबह तुम होते हो, तब सपना टूट जाता है। क्योंकि जागने में ही तुम हो सकते हो, सपने में तुम कैसे हो सकते हो? सपने में अगर तुम्हें याद भी आ जाए कि मैं कौन हूं, तो उसी वक्त सपना टूट जाएगा।
गुरजिएफ अपने शिष्यों को कहता था, अगर तुम अपना नाम भी याद रख सको सपने में तो सपना टूट जाएगा। और तुम कोशिश करना, गुरजिएफ का प्रयोग सफल प्रयोग है, छह महीने लगेंगे कम से कम। तुम अपना नाम ही याद रखने की कोशिश करना कि मेरा नाम अ ब स--जो भी नाम हो--बस यह सपने में मुझे याद रहे, कि मेरा नाम रामदुलारे है, कि मेरा नाम कृष्णमुरारी है, याद रहे। रोज सोते वक्त यही ख्याल करके सोना कि मेरा नाम कृष्णमुरारी, कृष्णमुरारी। सोचते रहना, सोचते रहना, मेरा नाम कृष्णमुरारी, भूलूं नहीं। तीन से लेकर छह महीने लग जाएंगे, एक रात यह घटना घट जाएगी कि तुम्हें ठीक बीच सपने में याद आ जाएगा-- मेरा नाम कृष्णमुरारी। उसी वक्त सपना विदा हो जाएगा। एक सेकेंड नहीं लगेगा, आंख खुल जाएगी। इतनी सी कुंजी सपने को तोड़ देगी।

तुम आए कि सपना टूट जाता है, दूसरे को बुलाना तो बहुत मुश्किल मामला है। सपना निजी है।
इस जगत में हमारे सपने भर अलग-अलग हैं, हमारी सत्ता अलग-अलग नहीं है।
सपनों से जाग कर जिसने सत्ता जानी है, उसके लिए न तो कोई बुरा है, न कोई भला है; न साधु, न असाधु; उसके लिए एक का ही विस्तार है, एक का ही नर्तन चल रहा है। वही वृक्ष में, वही पशुओं में, वही पक्षियों में, वही मनुष्यों में।
अनेक-अनेक रूपों में उस एक की ही लीला है।
महापातकिनां तुआर्त्तौ।
"महापातकियों की भक्ति को आर्त-भक्ति में समझना चाहिए।"
बड़े से बड़ा पापी भी भक्ति को उपलब्ध हो सकता है। भक्ति में कोई दरवाजों पर पात्रता पूछी नहीं जाती। भक्ति तो औषधि है, पात्रता क्या पूछनी है? अपात्र हो, इसीलिए भक्ति की जरूरत है। सब अंगीकार हैं। महापातकी भी।
लेकिन महापातकी की भक्ति आर्त-भक्ति होगी। आर्त-भक्ति का अर्थ होता हैः दुख से जन्मी, जीवन के कटु अनुभव से जन्मी, कांटों की पीड़ा से जन्मी। पाप का क्या अर्थ होता है? पाप का अर्थ होता हैः दुख-स्वप्न। पाप का अर्थ होता हैः ऐसा सपना तुम देख रहे हो जिसमें बड़ा दुख उठा रहे हो। है सपना। नरक का सपना देख रहे हो।
अधिक लोग जीवन में दुख ही पा रहे हैं। वह उनका ही निर्मित दुख है। किसी आदमी के पास पांच हजार रुपये हैं। वह कहता है, दस हजार होने चाहिए। जब तक दस हजार न हों, मैं सुखी नहीं हो सकता। अब यह शर्त उसने ही लगा दी अपने सुख पर। अब वह कहता है, हम सुखी हो ही नहीं सकते जब तक दस हजार न हों। तुमने ख्याल किया, लोगों ने सुख पर तो शर्त लगा दी है, दुख पर शर्त नहीं लगाई है। कोई नहीं कहता कि मैं तब तक दुखी न होऊंगा जब तक एक लाख रुपये न हों। तुमने सुना कभी किसी को कहते, कि जब तक एक लाख रुपये नहीं होंगे, मैं दुखी होने वाला नहीं! और ऐसे आदमी को तुम दुखी कर सकोगे? इतने हिम्मतवर आदमी को जो कहे कि एक लाख होंगे तभी दुखी होऊंगा। अभी क्या दुख? अभी हैसियत ही नहीं दुखी होने की।
नहीं, लोग दुख पर शर्त नहीं लगाते, इसीलिए दुखी हैं। और सुख पर शर्त लगाते हैं, इसलिए सुखी नहीं हो पाते। ख्याल करना, यह तुम्हारा ही आयोजन है। तुम कहते होः यह स्त्री मिलेगी तो सुख होगा। छोड़ो इसको! कहो कि यह स्त्री जब तक नहीं मिलती तब तक दुखी क्यों हों? यह मिलेगी तभी दुखी होंगे। जब तक यह स्त्री न मिले, यह कार न मिले, यह मकान न मिले, यह धन न मिले, यह पद न मिले, तब तक हम दुखी होने वाले नहीं हैं। तब तक तो मौज कर लें। फिर तो यह सब मिलने वाला है! कोशिश करोगे तो मिल ही जाएगा।
लेकिन जिस आदमी ने दुख पर शर्तें लगा दीं, उसे तुम दुखी नहीं कर सकते। कैसे करोगे?
हमने सुख पर शर्तें लगाई हैं। लोग कहते हैं, पहले इतनी चीजें हो जानी चाहिए तब हम सुखी होंगे। एक तो वे, उतनी चीजें कभी हो नहीं पातीं, इसलिए दुखी रहते हैं। फिर अगर कभी हो भी जाएं, तो शर्तें आगे सरक जाती हैं। शर्तों का कोई भरोसा है! तुम कहते थे, दस हजार जब होंगे तब सुखी होंगे। जब तक तुम दस हजार पर पहुंचते हो, तब तक तुम्हारी शर्त भी आगे सरक जाती है। वह कहती है, अब दस हजार में क्या होता है! चीजों के दाम भी बढ़ गए, हालतें भी सब बदल गईं। अब तो पचास हजार से कम में सुख हो ही नहीं सकता। और तुम यह मत सोचना कि पचास हजार मिल जाने से तुम सुखी हो जाओगे। हो सकता है एकाध क्षण को तुम्हें भ्रांति हो सुख की, बस भ्रांति ही होगी। क्योंकि तुम दुख का अभ्यास कर रहे हो। एक आदमी पचास हजार रुपये कमाते-कमाते-कमाते-कमाते इतना दुख का अभ्यास कर लिया है कि जब उसे पचास हजार मिलेंगे तो उसकी समझ में ही नहीं आएगा कि अब सुखी कैसे हों? दुख का अभ्यास जड़बद्ध हो गया। दुखी होने में वह कुशल हो गया।
इसीलिए अक्सर तुम पाओगे, धनी आदमी गरीब से भी ज्यादा दुखी हो जाते हैं। गरीब और अमीर में इतना ही फर्क है कि गरीब आदमी ज्यादा दुख नहीं खरीद सकता। उसकी खरीदने की सीमा है। अमीर आदमी ज्यादा दुख खरीद सकता है, उसकी

सीमा बड़ी है। इसलिए अगर अमरीका में लोग ज्यादा दुखी हैं तो तुम हैरान मत होना, उसका कुल कारण इतना है--उनके दुख खरीदने की सीमा काफी बड़ी हो गई है। वे एक ही गांव में रह कर दुखी नहीं होते, वे सारी दुनिया में जाकर दुखी होते हैं। चक्कर मारते हैं दुनिया का! इस राजधानी से उस राजधानी में दुखी होते हैं। वे एक स्त्री के साथ दुखी नहीं होते। एक स्त्री से अब क्या दुखी होना! वह पुराना ढब हो गया। एक आदमी आठ-दस स्त्रियों के साथ जिंदगी में दुखी होता है। एक ही धंधे में दुखी नहीं होते, धंधे बदल-बदल कर दुखी होते हैं। अमरीका में प्रत्येक आदमी के औसत धंधे की सीमा तीन साल है। तीन साल से ज्यादा कोई टिकता नहीं। वही विवाह की भी औसत उम्र है। तीन साल से ज्यादा विवाह भी नहीं टिकता। अब लोग दुखी होने के लिए खूब उपाय... उनके पास सुविधा है। गरीब आदमी की वही तकलीफ है।
मैंने सुना है, मुल्ला नसरुद्दीन का बाप जब मरा तो उसने मुल्ला को बुला कर कहा कि देख बेटा, एक मेरे जीवन का अनुभव है कि जितना धन बढ़ता है, उतनी चिंताएं, बेचैनियां, परेशानियां बढ़ती हैं। यह मैं तुझे अपने सार-अनुभव की बात कह रहा हूं। कम में संतुष्ट होना ठीक है। शांति रहती है। ज्यादा में अशांति बढ़ जाती है।
मुल्ला ने जल्दी से उसके पैर पकड़ लिए और कहा कि यह सब समझ गया, मगर आशीर्वाद दो, अशांति बढ़े तो अशांति बढ़े, मगर ज्यादा हो।
बाप ने कहा कि मैं यह समझा रहा हूं तुझे और तू यह कह रहा है--आशीर्वाद दो!
मुल्ला ने कहा, माना मैंने कि कम होता है तो आदमी संतुष्ट होता है; क्योंकि असंतुष्ट होने की क्षमता नहीं होती। संतुष्ट होना पड़ता है। करोगे क्या संतोष नहीं करोगे तो? और उपाय क्या है? स्वतंत्रता मर जाती है। मुझे तो आप ऐसा आशीर्वाद दें कि दुखी तो होना ही है संसार में, मगर दुख के चुनाव की तो सुविधा रहे, कि जो भी चुनना हो वह दुख हम चुन सकें। इस स्त्री के साथ दुखी होना हो तो इसी के साथ हो सकें। इस मकान में होना हो तो इसमें हो सकें। स्वतंत्रता तो हो पास। मुझे आशीर्वाद दो जाते वक्त कि मैं अपने दुख चुनाव कर सकूं। दुखी तो होना ही है!
ख्याल रखना, लोगों ने यह मान ही लिया है कि दुखी तो होना ही है। तो अमीर ही होकर दुखी हो लें, फिर गरीब होकर क्या दुखी होना? तो प्रसिद्ध होकर दुखी हो लें, फिर गैर-प्रसिद्ध होकर क्या दुखी होना? फिर महलों में दुखी हो लें, झोपड़ों में क्या दुखी होना? दुखी तो होना ही है।
नहीं लेकिन, यह बात सच नहीं है कि दुखी होना ही है। दुख तुम्हारा सृजन है। और सुख भी तुम्हारा सृजन है। तुम्हारी दृष्टि के विस्तार हैं। दुख भी तुम्हारा सपना है, सुख भी तुम्हारा सपना है। सपने के तुम मालिक हो। लेकिन तुम यह भरोसा नहीं कर पाओगे।
एक दूसरा प्रयोग भी गुरजिएफ अपने शिष्यों को करवाता था। वह था अपनी स्वेच्छा से स्वप्न पैदा करने की प्रक्रिया। वह भी कीमती प्रयोग है। तुमने अब तक सपने देखे जो हुए। तुमने कोई सपना अपनी मौज से देखा? देखना चाहिए मौज से सपना। सपने में भी गुलामी! अब जिस फिल्म में बिठा दिया, बैठे हैं रात भर। यह भी बड़ी परतंत्रता हो गई। कम से कम सपने में तो स्वतंत्रता रखो।
गुरजिएफ अपने शिष्यों को यह प्रयोग करवाता था, यह प्रयोग कीमती है, क्योंकि इस प्रयोग से जीवन के संबंध में दिशा सूचित हो जाती है। कोई साल भर लगता है--कभी दो साल भी लग सकते हैं, लंबा प्रयोग है, क्योंकि बड़ी गहरी पकड़ है सपने की--लेकिन तुम अपने मन का सपना देख सकते हो। रोज-रोज वही सपना सोच कर सोओ। सोते वक्त जब तुम्हारी चेतना खो रही है और नींद उतरने लगी है, तब तुम वही सपने का प्लाट रचते रहो। वही सपना। रोज-रोज। रोज बदल मत लेना, नहीं तो उसकी कोई छाप ही न पड़ेगी। रोज वही सपना। एक सपना तय कर लो, बस उसी को रोज सोचते हुए सो जाओ। रोज-रोज, दिन-रात, महीनों, वर्षों बीत जाएं; एक दिन तुम अचानक पाओगे वह सपना तुम्हारे सपने में आ गया। वह दृश्य सामने खड़ा हो गया। उसी दिन तुम्हें एक अपूर्व अनुभव हो जाएगा कि अब तक जो सपने देखे, वे भी तुम्हारी भ्रांति थी कि अपने आप हो रहे हैं, अनजाने अचेतन मन से तुम

उन्हें पैदा कर रहे थे। तुमने उन्हें पैदा किया था। होश में नहीं थे। अब तुमने होश से एक सपना पैदा करके देख लिया। उस दिन के बाद तुम जो सपने देखना चाहो, देख सकते हो।
और उसके बाद का प्रयोग है, फिर तुम सपने न देखना चाहो तो मत देखो। पहले
तो सपने पर स्वतंत्रता चाहिए कि जो तुम देखना चाहो देख सको। फिर दूसरा कदम यह है कि फिर तुम रात यह तय करके सो जाओ कि अब सपना नहीं देखना है आज, आज नहीं जाएंगे किसी फिल्म में, तो तुम निश्चिंत होकर रात भर सो सकोगे। और अगर रात में यह संभव हो जाए, तो दिन में भी संभव हो जाएगा, क्योंकि रात और दिन में कुछ भेद नहीं है।
तुम अपने मन के मालिक हो। मगर मालकियत की तुमने घोषणा नहीं की है। तुम घिसटे चले जा रहे हो। तुम्हारा मन जो तुम्हें दिखाता है, तुम देखे चले जा रहे हो।
तुम कभी इस तरह के छोटे-छोटे प्रयोग करो।
तुम क्रोध में बैठे हो। कोशिश करो क्रोध को बदलने की। पहले तो बहुत मुश्किल लगेगा। पहले तो लगेगा, यह कोई आसान बात है क्रोध को बदल लेना! अब क्रोध है तो इसको बदलो कैसे? तुम जरा कोशिश करना। एकांत में बैठ कर हंसना, उछलना-कूदना, जरा क्रोध को बदलने की कोशिश करना। पांच-सात मिनट में तुम पाओगे कि क्रोध गया, तुम हंस रहे हो--शायद इस पर ही हंसने लगो कि मैं भी क्या बुद्धूपन कर रहा हूं! ऐसे उछलने-कूदने से क्या होगा? लेकिन तुम पाओगे कि भीतर क्रोध बदल गया। अब क्रोध की वही प्रगाढ़ता नहीं रह गई।
तुम उदास बैठे हो, इसे बदलने की कोशिश करना। कभी तुम प्रसन्न बैठे हो, इसको उदास करने की कोशिश करना। कभी तुम आनंदित बैठे हो, इसको क्रोध में ले जाने की कोशिश करना। इस तरह के प्रयोग अगर तुम करोगे, तो तुम्हें एक बात दिखाई पड़नी शुरू हो जाएगी कि सब तुम्हारे हाथ में है। क्रोध को आनंद में बदला जा सकता है, आनंद को उदासी में बदला जा सकता है, उदासी को हंसी में बदला जा सकता है, हंसी को आंसुओं में बदला जा सकता है। और जब तुम यह बदलने की कीमिया सीख लोगे, जैसे कि तुम रेडियो स्टेशन बदलते हो, इस तरह ही बदला जा सकता है।
पश्चिम में यंत्र पैदा किए जा रहे हैं--बायो फीडबैक। उन यंत्रों का बड़ा बहुमूल्य उपयोग होने वाला है भविष्य में। उनके माध्यम से बड़ी अनूठी बातें प्रतीत हुई हैं--कि आदमी अपनी भावदशाएं बदल सकता है। भावदशाएं बदल सकता है, अपने रक्तचाप की गति बदल सकता है। यंत्र से जोड़ दिया जाता है। जैसे हृदय को यंत्र से जोड़ दिया, हृदय की धक-धक यंत्र पर आने लगी, यंत्र बता रहा है कि इतनी धक-धक है प्रति सेकेंड, या प्रति मिनट। अब आदमी को कहा जाता है कि तुम कोशिश करो कि कम हो जाए। अब तुम कहोगे--कैसे कोशिश करें कम हो जाए? हृदय पर तुमने कभी कोशिश तो की नहीं। मगर प्रयास तुम करते हो, और तुम चकित हो जाते हो--सामने अंक गिरने लगते हैं। इधर तुम कोशिश करते हो, वहां अंक गिरने लगे। जब दो-चार अंक गिर जाते हैं, तुम्हें भरोसा आ जाता है कि अरे, एक कुंजी हाथ लग गई! हालांकि तुम किसी को बता नहीं सकोगे कि कैसे तुम कर रहे हो भीतर, मगर तुम कर लेते हो। तुम गिरा सकते हो। रक्तचाप कम-ज्यादा हो जाता है।
और अभी तो बड़ा चमत्कार हुआ, जब कुछ मरीजों ने इन यंत्रों के साथ जुड़ कर अपने खून में बहने वाली शक्कर को भी कम कर लिया। बता नहीं सकते वे कि कैसे किया, क्योंकि कैसे का तो बड़ा कठिन मामला है--कैसे किया? मस्तिष्क में कई तरह की तरंगें होती हैं, उन तरंगों को बदलने में लोग सफल हो जाते हैं यंत्र के सामने बैठ कर। कह नहीं सकते कि कैसे।
तुम भी कैसे कह सकते हो? तुमने बायां हाथ ऊपर उठाया, तुम बता सकते हो कैसे उठाया? क्या घटना भीतर घटी? कैसे तुमने बायां हाथ ऊपर उठाया? रोज कर रहे हो यह, लेकिन बायां हाथ तुम ऊपर कैसे उठाते हो? किसको आज्ञा देते हो पहले? कहां से आज्ञा शुरू होती है? कुछ तुम्हें पता नहीं है। मगर तुम इसके मालिक हो, अचेतन में मालिक हो।
बायो फीडबैक यंत्रों के द्वारा एक बात प्रमाणित हो गई कि मनुष्य अपने भीतर की सारी भावदशाएं बदल सकता है। और यही सारसूत्र है सदा से ज्ञानियों

का कि सब तुम्हारे हाथ में है। दुख तुम निर्मित करते हो। मत चिल्लाओ, मत चीखो, मत कहो कि दुनिया तुम्हें सता रही है। तुम अपने को सता रहे हो। अपनी मालकियत की घोषणा करो। अपना उत्तरदायित्व अपने हाथ में ले लो। और इसे थोड़ा बदलने की कोशिश करो। और तुम चकित हो जाओगे कि तुम बदल सकते हो। और जिस दिन यह कुंजी हाथ लगती है कि मैं बदल सकता हूं अपनी जीवन की भावदशाओं को, उस दिन तुम इतने आनंद से भर जाओगे, जिसकी आज तुम कल्पना भी नहीं कर सकते। तुम मुक्त हो गए!
और जिस दिन तुम यह अनुभव कर लेते हो कि क्रोध प्रेम में बदला जा सकता है, प्रेम उदासी में बदला जा सकता है, उदासी हंसी में बदली जा सकती है--जैसे कि रेडियो पर तुम स्टेशन लगा रहे हो--उस दिन एक बात साफ हो गई कि तुम इन सबसे अलग हो, तुम सिर्फ साक्षी मात्र हो। तुम रेडियो स्टेशन नहीं हो, न तुम रेडियो हो, तुम बाहर बैठे हुए व्यक्ति हो जो कि रेडियो स्टेशंस लगा रहा है, जो चाभी घुमा रहा है। तुम अलग हो, तुम पृथक हो तुम्हारी सारी भावदशाओं से। जिस दिन आदमी जानता है कि मैं अपनी सारी भावदशाओं से पृथक हूं, उसी दिन अहंकार विलीन हो जाता है। और उस दिन पता चलता है कि मैं परमात्मा से अनन्य हूं, एक हूं।
तुमने अपने को क्षुद्र सीमाओं में बांध रखा है, इसलिए तुम विराट से टूटे हुए मालूम पड़ते हो। तुम्हारी आंखें छोटी-छोटी बातों में उलझ गई हैं। तुम सोचते हो, यही मैं हूं--मेरा धन, मेरी देह, मेरी पत्नी, मेरा पति, मेरे बच्चे, मेरा मकान। तुमने बड़ी छोटी बातों में अपने को संकुचित कर लिया है।
जैसे-जैसे यह मैं-भाव गिरेगा, वैसे-वैसे तुम पाओगे--आकाश भी तुम्हारी सीमा नहीं है। तुम विराट हो।
जीवन के दुख से महापातकी को आर्त-भक्ति पैदा होती है।
और कौन है ऐसा जो जीवन में दुखी नहीं है? सुखी आदमी मिलते कहां हैं? दुखियों का संसार है। और इन दुखियों के संसार में सुखी बच्चे पैदा भी होते हैं तो जल्दी ही दुख का अभ्यास सीख जाते हैं। क्योंकि बाप दुखी, मां दुखी, भाई दुखी, बहन दुखी, शिक्षक दुखी, सब तरफ दुखी ही दुखी लोग हैं, बच्चे को हंसने में भी लज्जा आने लगती है। बच्चा आनंदित होना चाहता है, क्योंकि सब परमात्मा के घर से आते हैं। वहां की खबर लेकर आते हैं। वहां का नाच लेकर आते हैं। उन्हें कुछ पता नहीं होता। लेकिन यहां सबको दुखी देखते हैं, उदास देखते हैं, यहां सब परेशान हैं, बच्चे भी धीरे-धीरे इस परेशानी में संक्रमित हो जाते हैं। यह परेशानी उन पर भी थुप जाती है। फिर उतारे नहीं उतरती। इसी को फिर से उतार कर रख देने का नाम पुनर्जन्म है। द्विज हो गए तुम।
जीवन में दुख है, जीवन में पाप है, जीवन में भ्रांति है, लेकिन सब सपने जैसी है।

तुमको छोड़ कहीं जाने को आज हृदय स्वच्छंद नहीं है।

रोमराजि पहले गिन डालूं
तब तन के बंधन बतलाऊं
नाम दूसरा मन का बंधन
कैसे दोनों को अलगाऊं,
नित्य वचन की गांठ जोड़ती
मेरी रसना--मेरी रचना,
तुमको छोड़ कहीं जाने को आज हृदय स्वच्छंद नहीं है।

मेरी दुर्बलता के पल को
याद तुम्हीं करुणाकर आते,
अपनी करुणा के क्षण में तुम
मेरी दुर्बलता बिसराते,
बुद्धि बिचारी गुमसुम हारी,
साफ बोलता पर चित मेरा--

मेरे पाप तुम्हारी करुणा में कोई संबंध नहीं है।
तुमको छोड़ कहीं जाने को आज हृदय स्वच्छंद नहीं है।

इसकी फिकर छोड़ दो कि तुम्हारे पाप इतने बड़े हैं कि तुम परमात्मा को कैसे पा सकोगे! तुम्हारे पापों में और उसकी करुणा में कोई संबंध नहीं है।
तुम्हारे पाप थोड़े हैं कि ज्यादा, बड़े हैं कि छोटे, ऐसे हैं कि वैसे, कुछ फर्क नहीं पड़ता; तुम पापी हो कि पुण्यात्मा, कुछ फर्क नहीं पड़ता; उसकी करुणा तो बरस ही रही है। उसकी करुणा तुम्हारे पापों के अनुसार नहीं बरसती, न तुम्हारे कृत्यों के अनुसार बरसती है।
देखते नहीं तुम, जब बादल घना होता है आकाश में, आषाढ़ के मेघ आते हैं, तो फिकर थोड़े ही करते हैं कि पापी के खेत में न बरसें, कि पुण्यात्मा के खेत में बरसें; फिकर थोड़े ही करते हैं कि चोर के खेत में न बरसें और दानी के खेत में बरसें। ऐसे ही उसके करुणा के मेघ भी कोई चिंता नहीं करते।
मेरे पाप तुम्हारी करुणा में कोई संबंध नहीं है।
तुमको छोड़ कहीं जाने को आज हृदय स्वच्छंद नहीं है।
जिस दिन तुम यह सत्य समझ लोगे, तब तुम यह फिकर भी छोड़ दोगे कि अच्छा करके पहुंचूंगा; बुरा करके कैसे पहुंच पाऊंगा? तुम पहुंचे ही हुए हो। उसकी करुणा चिंता ही नहीं करती इसकी। करुणा बेशर्त होती है। करुणा में शर्त हो तो करुणा ही नहीं। सशर्त करुणा करुणा कैसे कही जाएगी? अगर वह कहे कि हां, तुमने इतने पाप किए तो इतनी करुणा मिलेगी; तुमने इतना पुण्य किया तो तुमको इतनी ज्यादा मिलेगी; तो करुणा में शर्त हो गई। फिर उसकी जरूरत ही क्या है? इसीलिए तो जिन विचार-पंथों ने कर्म के सिद्धांत को जोर से पकड़ा, उन्हें अंततः परमात्मा को इनकार कर देना पड़ा। जैनों-बौद्धों ने परमात्मा को इनकार किया। उसका कारण नास्तिकता नहीं है। उसका कारण कर्म का सिद्धांत और गणित है। जैनों का तर्क यह है कि अगर हमारे ही कर्म के अनुसार हमें अच्छा और बुरा मिलता है, तो फिर परमात्मा को और होने की जरूरत क्या है? मैं बुरा करूंगा तो बुरा पाऊंगा, और अच्छा करूंगा तो अच्छा पाऊंगा, फिर परमात्मा की और बीच में होने की जरूरत क्या है? यह नियम पर्याप्त है। यह नियम ही परमात्मा है।
कर्म का सिद्धांत अगर सच में पूरी तरह पकड़ा जाए तो परमात्मा के होने
की कोई जगह नहीं रह जाती। बल्कि उसके होने से अड़चन होगी, बाधा होगी। एक आदमी ने पाप किया, उसको दंड मिलता है। एक आदमी ने पुण्य किया, उसको पुरस्कार मिलता है। यह नियम से ही हो जाता है। अब अगर इसके पीछे हम किसी एक जीवंत शक्ति को स्वीकार करें, तो खतरा है। क्योंकि हो सकता है कभी पापी पर दया आ जाए, तो फिर अन्याय होगा। और कभी ऐसा हो सकता है कि पुण्यात्मा पर क्रोध आ जाए, तो अन्याय हो जाएगा। फिर परमात्मा की मौजूदगी खतरनाक हो जाएगी। कोई जरूरत नहीं, जैन कहते हैं, परमात्मा की, कर्म का सिद्धांत पर्याप्त है।
मेरे हिसाब में यह बात है कि जो लोग कर्म का सिद्धांत जोर से मानेंगे, उनको परमात्मा को इनकार करना ही होगा। वह तार्किक निष्पत्ति है। और जो लोग परमात्मा को मानेंगे, उनको कर्म के सिद्धांत को एक तरफ हटा कर रखना होगा। वह भी तार्किक निष्पत्ति है।
इसीलिए कृष्ण गीता में कर्म के सिद्धांत को हटा कर रख देते हैं। कहते हैंः हे कौंतेय! जो अनन्यचित्त होकर मेरी आराधना करता है, वह अत्यंत दुराचारी भी हो तो भी साधु है।
जैन शास्त्र इसके लिए स्वीकृति नहीं देंगे। यह तो हद्द हो गई। फिर तो दुराचारी सब आराधना करके पहुंच जाएंगे, फिर सदाचार का उपयोग क्या है? फिर कोई सदाचारी होने के लिए कष्ट क्यों झेले? इसलिए जैनों ने अगर कृष्ण को नरक में डाल दिया अपने शास्त्रों में तो इन्हीं वक्तव्यों के कारण, क्योंकि ये वक्तव्य कर्म के सिद्धांत के विपरीत जाते हैं। मगर ये वक्तव्य बड़े अनूठे हैं।
कर्म का सिद्धांत बुद्धि का सिद्धांत है, गणित का सिद्धांत है। उसमें करुणा की कोई जगह नहीं है। इसलिए जैन मुनि कठोर हो जाता है। उसमें करुणा

की जगह नहीं बचती। रूखा-सूखा हो जाता है। उसमें दया भाव नहीं बचता। हालांकि बातें वह दया की करता है और अहिंसा की। मगर उसकी अहिंसा भी रूखी- सूखी हो जाती है।
तुमने फर्क देखा? जैन करुणा शब्द का उपयोग नहीं करते, अहिंसा शब्द का उपयोग करते हैं। नकारात्मक शब्द। अहिंसा का कुल इतना मतलब होता हैः दूसरे को चोट न पहुंचाना। बस इतना। लेकिन किसी को चोट लगी हो, उसमें मलहम-पट्टी करना कि नहीं, वह अहिंसा में नहीं आता। अहिंसा का मतलब इतना होता है--चोट नहीं पहुंचाना। लेकिन चोट लगी हो किसी को, फिर? अहिंसा उस संबंध में चुप है। करुणा कहती हैः किसी को चोट लगी हो तो मलहम-पट्टी करना। करुणा विधायक है, अहिंसा नकारात्मक है। अहिंसा केवल तुम्हें बचाती है बुरे काम करने से! करुणा तुम्हें भले की तरफ प्रेरित करती है।
जैनों के हिसाब से, जगत में अहिंसा हो जाए तो पर्याप्त है। कृष्ण के हिसाब से, जब तक जगत में करुणा न बरसे, तब तक पर्याप्त नहीं है। लोग एक-दूसरे को चोट न भी पहुंचाएं तो भी क्या होगा? एक-एक आदमी बैठ कर, मुनि बन कर बैठ जाए अपनी-अपनी जगह, कोई किसी को चोट नहीं पहुंचाता, कोई किसी से झगड़ा- झांसा नहीं करता, सब बैठे हैं गुमसुम, कि बोले तो कोई झंझट न हो जाए, किसी की निंदा न हो जाए, कोई शब्द किसी को चोट न कर दे, सब बैठे हैं अपनी-अपनी कब्रों में बंद। अस्तित्व बड़ा उदास हो जाएगा। कृष्ण से उनकी नाराजगी ठीक है। क्योंकि कृष्ण ने कर्म के सिद्धांत को तोड़ दिया, कहा--जो मेरी आराधना करते हैं, वे अगर पापी भी हों तो साधु जानना। और मैं और जोड़ रहा हूं उसमें, कि जो मेरी आराधना नहीं करते, अगर वे पुण्यात्मा भी हों तो उनको पापी जानना।
कर्म और करुणा का, कर्म के सिद्धांत और करुणा का कोई तालमेल नहीं बैठ सकता। करुणा का अर्थ यह होता है कि बेटे ने कितना ही बुरा किया हो, जब वह मां के पास आता है तो मां उसे छाती से लगा लेती है। वह यह नहीं कहती कि इसे मैं कैसे छाती से लगाऊं? तू चोर था, तूने बेईमानी की, तू शराब पीकर आ रहा है। सच तो यह है कि जो शराब पीकर आ रहा है, और जुआ खेल कर आ रहा है, मां उसे और जोर से हृदय से लगा लेती है। उस पर और दया आती है। यह बेचारा! इसको बोध कब आएगा? इसको समझ कब होगी? करुणा का अर्थ होता हैः यह जगत तुम्हारे प्रति मां जैसा हृदय रखता है। तुम क्षमा किए जाओगे।
इसका यह मतलब मत ले लेना कि तुम्हें बुरा करना है, करो मजे से। इसका यह मतलब नहीं है। वहीं भ्रांतियां हो जाती हैं। इसका मतलब यह मत ले लेना कि अब क्या फिकर पड़ी है, फिर मजे से करो बुरा, जितना बुरा करना हो करो। इसका कुल मतलब इतना है कि बुरा तो तुम कर ही चुके हो, काफी कर चुके हो, जितना करना है उतना कर ही चुके हो, अब और करने की जरूरत नहीं है, अब जीवन-ऊर्जा को आराधना बनने दो।
सा एकान्तभावः गीतार्थ प्रत्यभिज्ञानात्।
"पराभक्ति का नाम ही एकांत भाव है, क्योंकि गीता में भी ऐसा लेख है।" शांडिल्य गीता का उल्लेख अक्सर कर रहे हैं। क्योंकि गीता में निश्चित
ही कर्म से मुक्ति के और भक्ति के अनूठे वचन उपलब्ध हैं। वैसे वचन न तो कुरान में हैं, न बाइबिल में हैं। गीता इस अर्थ में अनूठी है। उसमें करुणा पूरी तरह प्रकट हुई है परमात्मा की। मनुष्य की क्षुद्रताओं का हिसाब नहीं रखा गया है। तुम्हारे पाप भी तो दो कौड़ी के हैं, उनका क्या हिसाब रखना है? किसी ने किसी की जेब से दो पैसे चुरा लिए! क्या फर्क पड़ता है? इस जेब से उस जेब में रख दिए। सब जेबें उसकी हैं। और सब हाथ उसके हैं। अब इसको ज्यादा शोरगुल मत मचाओ कि बड़ा भारी पाप हो गया। कि तुम किसी सुंदर स्त्री को देखे और तुम्हारे मन में कामना जग गई। मगर उस सुंदर स्त्री में भी वही बैठा है। और तुम्हारी कामना में भी वही जग रहा है। अब इसको इतना परेशान मत हो जाओ। इसको इतना तूल मत दो!
लोग तिल का ताड़ बना रहे हैं। और खासकर साधु-महात्मा तो बड़े ही कुशल हैं तिल का ताड़ बनाने में। उसको इतना बढ़ा-चढ़ा कर बता देते हैं कि तुम्हारी छाती पर हिमालय रख देते हैं, फिर तुम सरक ही नहीं पाते। अब अगर तुम अपने चौबीस घंटे में हिसाब रखोगे कि तुमने कितने पाप किए, तो मर ही जाओगे, दब ही

जाओगे! कुछ किए, कुछ सोचे, कुछ नहीं कर पाए तो रात सपने में किए, अगर इन सब पापों का तुम हिसाब रखोगे--और वही तुम्हारे महात्मा कह रहे हैं कि हिसाब करो! उनको बड़ी बेचैनी हो रही है कि हिसाब करो! अपने पापों का हिसाब रखो! एक सज्जन मेरे पास आए। बड़े उदास थे! बड़े परेशान थे! जैसे बड़ा बोझढो रहे हों। मैंने कहा, मामला क्या है? उन्होंने कहा, मैं बड़ा पापी हूं, यह मेरी डायरी देखिए--डायरी ले आए थे साथ--इसमें सब लिखता हूं। मैंने उनकी डायरी देखी। मैंने कहा, तुम्हारी डायरी पढ़ कर मैं उदास हुआ जा रहा हूं! इसको काहे के लिए लिख रहे हो? कि नहीं, मेरे गुरु ने कहा है कि अपने सब पाप का हिसाब रखना चाहिए।
तुम परमात्मा की करुणा का हिसाब रखो! एक कोरी डायरी अपने पास रखो, उसमें कुछ मत लिखो, और जब भी कुछ पाप-माप हो, अपनी डायरी खोल कर देखी उसकी करुणा--कोरी करुणा! तुम्हारे हिसाब-किताब से कुछ लेना-देना नहीं। तुम इसमें हिसाब क्या कर रहे हो? दुकानदारी लगा रखी है। उसमें दो-दो पैसे का हिसाब लिखा हुआ है--कि मैंने फलां आदमी को दो पैसे का धोखा दे दिया; कि फलां आदमी से मैंने यह कह दिया, नहीं कहना था; यह बुराई हो गई, वह बुराई हो गई; उपवास किया था और भोजन की याद आ गई। भोजन किया नहीं, मगर याद आ गई! अब भोजन की याद उपवास में न आएगी तो कब आएगी? आदमी हो कि पत्थर हो? उपवास करोगे, भोजन की याद आने ही वाली है! यह बिल्कुल स्वाभाविक है। अब इसको भी पाप बना रहे हो! कि किसी ने गाली दे दी और चिंता पैदा हो गई। कि किसी ने गाली दी और उसका जवाब दे दिया। यह सब स्वाभाविक है, इसको इतना तूल मत दो। और इसको अगर तुम बांधते जाओगे, गठरी में रखते जाओगे, रखते जाओगे, इसी के साथ डूबोगे। उसकी करुणा पर भरोसा करो। राम रहीम है, रहमान है, करुणावान है। तुम उसके प्रेम पर भरोसा करो। तुम अपने पाप पर इतना भरोसा मत करो। तुम्हारा पाप ऐसे बह जाएगा जैसे बाढ़ में तिनके बह जाते हैं। उसकी करुणा की बाढ़! शांडिल्य के सूत्रों का सार हैः उसकी करुणा पर भरोसा करो। उसकी करुणा
पर भरोसा आ जाए, तुम्हारी जिंदगी में निखार आने लगेगा। तुम्हारे पैरों में नाच आने लगेगा। तुम्हारी वाणी में फिर गुनगुनाहट आ जाएगी। फिर तुम पक्षियों की तरह... यह कोयल को सुनते हो? इसको पाप इत्यादि का कुछ पता नहीं है। इसका महात्माओं से मिलना नहीं हुआ। नहीं तो यह गा नहीं सकती थी, याद रखना, अभी तक मर गई होती, फांसी लगा ली होती। उपवास कर रही होती, व्रत कर रही होती, और डायरी लिख रही होती। यह कुहू-कुहू! महात्मा तो कहेंगे कि बंद करो यह कुहू-कुहू! इसमें कामवासना छिपी है। यह कुहू-कुहू में यह अपने प्रेमी को बुला रही है। यह निमंत्रण भेज रही है। यह कह रही है--कहां हो? आओ! यह प्रतीक्षा कर रही है। यह धन्यभागी है, इसको कोई महात्मा नहीं मिले! तुम भी ऐसे ही कुहू-कुहू कर पाओगे जिस दिन तुम परमात्मा की करुणा की स्मृति करोगे, अपने पापों का बोझ छोड़ोगे। तुम भी गुलाब के फूल की तरह खिल पाओगे। गुलाब का फूल भी नहीं खिल सकता, अगर महात्मा का उपदेश सुन ले। वह भी सकुचाएगा कि क्या खिलना? खिलने में नरक। जीवन पाप। और खिलने में कई तरह की झंझटें हैं, बंद ही रहना ठीक है। और वह भी सोचेगा कि हे प्रभु, आवागमन से कैसे मुक्त हों! मुक्ति, आवागमन से मुक्ति चाहिए मुझे!
इस जगत में आदमी को छोड़ कर तुम्हें कहीं उदासी दिखाई पड़ती है? क्या कारण है? इस जगत को महात्माओं के उपदेश नहीं मिले, सिवाय तुमको। तुमको मिले हैं उपदेश। तुम्हारे महात्माओं से तुम्हारा छुटकारा हो जाए तो तुम परमात्मा से मिल सकोगे। यह बात इतनी कठिन है तुम्हें समझनी, तुम मेरी बात सुन कर इसीलिए अक्सर नाराज भी हो जाते हो। मैं तुमसे कहता हूं, जब तक तुम अपने महात्माओं से न छूटोगे तब तक तुम्हारा परमात्मा से मिलना नहीं हो सकता। यह कोयल अभी भी परमात्मा में कुहू-कुहू कर रही है। यह आवाज परमात्मा से ही उठ रही है। इसको कुछ पता नहीं है, कल का कुछ हिसाब नहीं है, कल क्या किया था, किससे कुछ कह दिया था, किससे कुछ सुन लिया था, कल क्या हुआ, कल का कल गया। कल की आने वाले की भी कोई चिंता नहीं है। न नरक की कोई फिकर है, न स्वर्ग की कोई फिकर है। मनुष्य अगर परमात्मा की करुणा में आश्वस्त हो जाए, तो फिर गीत उठेगा, फिर नाच उठेगा।
इक निगाहे-तबस्सुम असर मिल गई

रोशनीए-बहारे-सहर मिल गई

फिर मुस्कुराहट पैदा होगी। फिर सुबह की रोशनी मिल जाएगी।

इक निगाहे-तबस्सुम असर मिल गई
रोशनीए-बहारे-सहर मिल गई
जब चमक दर्द की कुछ सिवा हो गई
अपने ही दिल से उनकी खबर मिल गई
वो समुंदर की वुसअत को समझें भी क्या
जिनको मौजे-सदफ सतह पर मिल गई
जब फरोजां हुए अपने दागे-जिगर शामे-गम को नवेदे-सहर मिल गई
मरहबा! अज्मे-नौ-रहरवे-शौक को जिंदगी की नई रहगुजर मिल गई नग्माए-जांफिजा छेड़ ऐ मुतरिबा!
आज "शबनम" की गुल से नजर मिल गई

फिर गा गीत।
नग्माए-जाफिजा छेड़ ऐ मुतरिबा!
फिर छेड़ प्राणदायक संगीत।
आज "शबनम" की गुल से नजर मिल गई
जिस दिन तुम्हारी परमात्मा की करुणा की तरफ जरा सी भी दृष्टि चली जाएगी, एक क्षण को भी तुम्हें उसकी महाकरुणा का स्मरण आ जाएगा, उसी क्षण गए सब पाप। उसी पल उत्क्रांति हो जाती है। एक क्षण में हो जाती है। एक क्षण भी ज्यादा है। क्षण के किसी अंश में ही हो जाती है। यहीं बैठे-बैठे हो सकती है। याद करो उसकी करुणा को! उसकी क्षमा अपार है, और बेशर्त है। वह तुमसे नहीं पूछेगा कि तुमने क्या किया और क्या नहीं किया।
मेरे हिसाब में तो, अगर वह तुमसे पूछेगा तो यही कि नाचे कि नहीं नाचे? गाए कि नहीं गाए? मुस्कुराए कि नहीं मुस्कुराए? भेजा था तुम्हें संसार में, जीए कि नहीं जीए? एक ही पाप है, इस जगत में मुर्दे की भांति जीना। और एक ही पुण्य है, इस जगत में नृत्य-गीत-आनंद को उपलब्ध होना, उत्सव को उपलब्ध होना।
"पराभक्ति का नाम ही एकांतभाव है।"
जब तुम्हारे और परमात्मा के बीच एकांतभाव आ जाए, एक का ही अनुभव होने लगे, मैं वह, वह मैं, भक्त और भगवान दो न रह जाएं, यह लक्ष्य है।
"पराभक्ति का नाम ही एकांतभाव है।"
पराभक्ति की तरफ ही ये सारे इशारे चल रहे हैं। ये गौणी-भक्तियां पराभक्ति की तरफ इशारे हैं। अनन्यभाव, एकात्मभाव, भक्त और भगवान के बीच सारी दूरी का अंत--पराभक्ति।
कृष्ण ने कहा हैः यो मां पश्यति सर्वत्र। जो मुझे सब जगह देखने लगे, जिसे मैं सब जगह दिखाई पड़ने लगूं। जब भक्त को भगवान के अतिरिक्त और कुछ भी दिखाई न दे--न बाहर, न भीतर--तब अनन्यभाव, तब पराभक्ति।
गौणी-भक्ति में भेद रहता है। भगवान होता है आराध्य, भक्त होता है आराधक। उधर दूर भगवान, इधर भक्त। इधर भक्त रोता हुआ, प्रार्थना करता हुआ, वहां भगवान करुणा बरसाता हुआ। मगर फासला होता है, दूरी होती है, विरह होता है। पराभक्ति का अर्थ हैः भक्त भगवान में डूब गया, भगवान भक्त में डूब गए; अब न कोई आराधक है, न कोई आराधना। अब सब शांत हो गया। अब एक का आविर्भाव हो गया। गए द्वंद्व। गई दुई।
परां कृत्वा एव सर्वेषां तथा हि आह।
"गीता के वाक्य पराभक्ति के साधन के अर्थ ही हैं।"
और गौणी-भक्ति, भजन-कीर्तन आदि से मुक्ति नहीं मिलती। मुक्ति तो पराभक्ति से मिलती है। फिर गौणी-भक्ति से क्या मिलता है? गौणी-भक्ति से पराभक्ति मिलती है। भजन-कीर्तन इत्यादि से पराभक्ति का रस धीरे-धीरे बढ़ता

है। जिस दिन पराभक्ति मिल जाती है, उस दिन गौणी-भक्ति विदा हो गई। और पराभक्ति से मोक्ष का आविर्भाव होता है।
परमात्मा से अलग होने में हमारा बंधन है। और परमात्मा के साथ एक हो जाने में हमारी मुक्ति है। हम हम की तरह रहेंगे, तो बंधन में रहेंगे, जंजीरों में रहेंगे। मैं कारागृह है। और हम हम की तरह न रहे, मैं विदा हो गया, कारागृह गिर गया। फिर सारा खुला आकाश है स्वातंष्य का। फिर स्वच्छंदता है। उस परम आनंद की तलाश ही चल रही है। और जब तक उसे न पा लोगे तब तक तृप्ति नहीं होगी; और कुछ भी पा लो, तृप्ति नहीं होगी। सारा संसार तुम्हारा हो जाए, तृप्ति नहीं होगी।
और अंतिम वचन तो अदभुत है।
भजनीयेन अद्वितीयम इदं कृत्स्नस्य तत स्वरूपत्वात्।
"यह सभी भगवान का स्वरूप है, इस कारण सेवन (भजन) करने के योग्य है।"
यह सारा जगत परमात्मा का स्वरूप है। तुमने सुना है, शास्त्र कहते हैंः जगत मिथ्या, माया। शांडिल्य नहीं कहते। शांडिल्य कहते हैंः जगत कैसे माया? कैसे असत्य? सत्य से कहीं असत्य का आविर्भाव हो सकता है? अगर परमात्मा सत्य है, तो उससे असत्य का कैसे आविर्भाव होगा? अगर परमात्मा सत्य है, तो संसार माया कैसे होगा? एक बहुमूल्य सवाल उठाते हैं। बुनियादी सवाल उठाते हैं। वे कहते हैंः सत्य से सत्य का ही आविर्भाव हो सकता है। लहर भी सत्य है, क्योंकि सागर सत्य है। लहर अलग होकर सत्य नहीं है--वहां भ्रांति शुरू होती है--मगर लहर की तरह तो सत्य है ही। लहर में सागर ही तो लहरा रहा है। लहर को तुम सागर से अलग नहीं ले जा सकोगे, कि लहर को अपने घर ले चलें, लहर मिट जाएगी। लहर सागर में ही हो सकती है।
जगत की भ्रांति इसलिए पैदा नहीं हो रही है कि जगत भांति है। जगत की भ्रांति इसलिए पैदा हो रही है कि तुमने अपने को अलग मान लिया; तुमने लहर को अलग मान लिया; तुमने लहर को केंद्र दे दिया है, जो कि झूठ है। तुम अपने केंद्र बन गए हो, जो कि झूठ है। केंद्र तो एक ही है इस सारे अस्तित्व का। इस सारे अस्तित्व का प्राण एक है। इस सारे अस्तित्व का सूर्य एक है। किरणें हम अनेक हैं। मगर सारी किरणें उसी सूर्य से जुड़ी हैं, उसी सूर्य का विस्तार हैं।
शांडिल्य कहते हैंः संसार असत्य नहीं है वरन सच्चिदानंद भगवान का ही विस्तार है। इसलिए सेवन करने योग्य है, भोगने योग्य है। और भजन करने योग्य भी।
यह क्रांतिकारी वचन है।
दो बातें कह रहे हैं। भजनीय का दोहरा अर्थ हैः भोगनीय और भजन करने योग्य, आदरणीय। भोग्य और आराध्य। यह बड़ा गहरा इशारा है। वे यह कह रहे हैं-- भागो मत; भोगो। यह परमात्मा ही है। जब तुम भोजन कर रहे हो, तो तुम परमात्मा को ही अपने में आत्मसात कर रहे हो। इसलिए उपनिषद कहते हैं--अन्नं ब्रह्म। इसलिए इस देश में हम आदर से पहले प्रणाम करते हैं, भगवान का स्मरण करते हैं, फिर भोजन लेते हैं। समादरपूर्वक। भोजन के रूप में भगवान ही हैं। वह जो फल की तरह आया है वृक्ष से, उसमें उसी की जीवनधारा है, उसी का रस है। वह जल जो तुम पी रहे हो और जो तुम्हारी तृषा को मिटाएगा, तुम्हारे कंठ को ठंडा करेगा, तृप्त करेगा, उसमें उसी का ही रूप है। तुम्हारी पत्नी में भी वही बैठा है। तुम्हारे बेटे में भी वही बैठा है। जब तुम पत्नी को गले लगा रहे हो, तो घबड़ाना मत!
तुम्हारे महात्मा बीच में खड़े हो जाएंगे और वे तुम्हें घबड़ाने की पूरी कोशिश करेंगे कि यह क्या कर रहे हो? पाप कर रहे हो? बचो! फिर भटकोगे, फिर नरक में सड़ोगे।
छोड़ो सारी बकवास, उस पत्नी में भी उसी को देखो। जरा भी भयभीत न होओ। जीवन तुम्हारा है। और जीवन परमात्मा का है। और तुम और परमात्मा अंततः एक हैं। यह सारा विस्तार उसका है। यह सारा संगीत उसका है। इसे सुनो। इसे गुनो। यह सारा रस उसका है, रसमग्न हो जाओ।

तो एक तो सेवन करो। जगत से भागना मत! और दूसरा, सेवन करते समय भी स्मरण रखना, इसे साधन मत समझ लेना; इसके प्रति आराधना का भाव रहे, क्योंकि भगवान है।
दुनिया में दो तरह के लोग हैं। शांडिल्य चाहते हैं तुम तीसरे तरह के आदमी बनो। मैं भी चाहता हूं तुम तीसरे तरह के आदमी बनो।
एक तो दुनिया में वे लोग हैं जो कहते हैं, यहां सिर्फ भोग है, और कुछ भी नहीं। हर चीज को भोगो और फेंक दो। भौतिकवादी। एक स्त्री को भोग लेता है, फिर फेंक देता है। वह कहता है, अब क्या है! अब मैं दूसरी स्त्री खोजूंगा। उसके मन में कोई आदर नहीं है, कोई आराधना नहीं है। वह व्यक्तियों का उपयोग वस्तुओं की तरह करता है। वहां असम्मान है। वह व्यक्तियों का उपयोग साधन की तरह करता है। जब कि प्रत्येक व्यक्ति साध्य है।
तुमने कभी अपनी पत्नी के चरण छुए? अगर नहीं छुए, तो तुम भौतिकवादी हो।
तुमने कभी अपने बेटे के चरण छुए? अगर नहीं छुए, तो तुम भौतिकवादी हो। तुमने कभी अपने नौकर को सम्मान दिया? अगर नहीं दिया, तो तुम्हारी सब बकवास है परमात्मा इत्यादि को मानना। उसमें कोई मूल्य नहीं है।
एक तो भौतिकवादी है, जो चीजों का भोग करता है, जो कहता है कि मैं भोगने
के लिए बना हूं, और हर चीज मेरे भोग के लिए बनी है। तो वह जाकर जंगल में शिकार कर लाता है। न मालूम कितने जीवन को पोंछ डालता है, सिर्फ इसलिए कि स्वाद थोड़ा सा मिले। उसे कोई चिंता नहीं है। उसे बोध ही नहीं है कि वह क्या कर रहा है! वह सारी दुनिया को मिटा सकता है, बस उसे अपना भोग ही एकमात्र लक्ष्य है। उसके मन में अस्तित्व का कोई सम्मान नहीं है। रेवरेंस फॉर लाइफ उसके भीतर नहीं है। वह हिंसक होगा, दुष्ट होगा, कठोर होगा। वह येन-केन-प्रकारेण, किसी भी तरह शोषण कर लो, चूस लो। उसका सारा अस्तित्व शोषक का अस्तित्व है। उसके मन में न दया होगी, न प्रेम होगा, न करुणा होगी।
एक तो भौतिकवादी है। वह कहता है, ऋणं कृत्वा घृतं पिवेत। अगर ऋण लेकर
भी घी पीना पड़े तो लेकर पी लो। वह कहता है, फिकर क्या है? धोखा देना पड़े, धोखा दे दो। बेईमानी, चोरी, कुछ भी करना पड़े, करते रहो। बस अपना भोग सब कुछ है। किसका छिनता है, किसका जाता है, कोई चिंता नहीं। लोगों के सिर पर पैर रख कर चढ़ने का मौका मिले, दिल्ली पहुंचने का, तो पहुंच जाओ। लोगों की सीढ़ियां बना लो। जब सीढ़ियां बनाओ तब हाथ जोड़ कर खड़े हो जाना।
सब नेतागण हाथ जोड़ कर खड़े हो जाते हैं जब तुम्हें सीढ़ियां बनाना चाहते हैं। और जब सीढ़ी बन गए तुम, फिर उन्हें तुम्हारी याद नहीं आती। फिर वे तुम्हारे सिर पर पैर रख कर निकल गए। वे पहुंच गए जहां उन्हें पहुंचना था। उन्होंने तुम्हारा उपयोग कर लिया। बस उपयोग तक तुम्हारी कीमत थी। तुम्हारी कोई निजी कीमत नहीं है, तुम्हारा कोई मूल्य नहीं है। तुम्हारा इतना ही मूल्य है जितना तुम उनके काम आ जाओ। तुम्हारे प्रति कोई सम्मान नहीं, समादर नहीं है। यह भौतिकवादी है।
एक दूसरे तरह का आदमी है, जो इतने सम्मान से भर गया है कि वह कहता है कि मैं कैसे भोजन करूं? उपवास करूंगा! मैं कैसे अपने बेटे को प्रेम करूं? मैं तो जंगल जा रहा हूं। मैं यहां रुक नहीं सकता। इस भोग की दुनिया में मैं कैसे रुक सकता हूं? यहां तो सब भोग ही है। यहां सब शोषण चल रहा है। यहां सब एक-दूसरे की गर्दन काटने में लगे हैं। मैं यहां नहीं रुक सकता। मैं तो जाऊंगा, पहाड़ पर बैठूंगा, मैं तो एकांत में बैठूंगा। यह अध्यात्मवादी है। ये भौतिकवादी और अध्यात्मवादी दुनिया में सदा से पाए गए हैं। तीसरे आदमी की जरूरत है, जो संसार में हो और आध्यात्मिक हो। जो भोगे और भजे। जो भागे नहीं। जो जीवन का पूरा सम्मान भी करे और जीवन का पूरा रस भी ले। जो डर कर भाग न जाए।
जो डर कर भाग रहा है, वह भौतिकवादी का ही उलटा रूप है। वह डरा इसीलिए
है कि वह जानता है कि अगर वह पत्नी के पास रहा, तो वह पत्नी का शोषण करेगा। इसलिए भाग गया है। उसे यह भरोसा नहीं है अपने पर कि मैं पत्नी का शोषण करने से बच सकूंगा अगर पत्नी के पास रहा। वह डरा है कि अगर मैं दुकान पर बैठा तो मैं ग्राहक की जेब काट ही लूंगा। इसलिए पहाड़ जा रहा हूं। न रहेगा ग्राहक, न झंझट होगी। अगर ग्राहक सामने रहा, फिर मैं नहीं रुक सकता। फिर तो मैं जेब

काट ही लूंगा। वह भगोड़ा जो है, वह डरा हुआ भोगी है। वह जानता है कि संसार में तो वह भौतिकवादी हो ही जाएगा। उसके बचने का एक ही उपाय वह सोचता है कि दूर, इतनी दूर चला जाऊं, न कोई होगा शोषण करने को, तो मैं कैसे शोषण करूंगा? शोषण करने को ही कोई नहीं होगा!
मगर यह कोई क्रांति हुई? यह कोई बदलाहट हुई? जंगल में बैठ जाएगा, क्योंकि वहां कोई है ही नहीं जिससे झूठ बोलना है। सच बोलना हुआ यह?
जहां झूठ बोलने की सुविधा न रही, वहां सच बोलने की सुविधा भी न रही। दोनों सुविधाएं समाप्त हो गईं। सच और झूठ दोनों के लिए कोई और चाहिए। अकेले में न तो सच होता, न झूठ होता। सच और झूठ तो संबंध में होता है। जंगल में बैठ गए, घृणा नहीं करते किसी से--प्रेम भी नहीं है। दोनों साथ ही समाप्त हो गए। घृणा और प्रेम के लिए दूसरे की मौजूदगी चाहिए। आराधना, सम्मान-असम्मान, दोनों के लिए किसी की मौजूदगी चाहिए।
भौतिकवादी एक तरह की गलती है, अध्यात्मवादी दूसरे तरह की गलती है। भोगवाद एक भूल, त्यागवाद दूसरी भूल। शांडिल्य जैसे महाज्ञानी तीसरी तरह की बात कहते हैं। वे कहते हैंः त्यागपूर्ण भोग, भोगपूर्ण त्याग। उपनिषदों का वचन तुम्हें याद है? तेन त्यक्तेन भुंजीथाः। जिन्होंने त्यागा, वे वही हैं जिन्होंने भोगा। तेन त्यक्तेन भुंजीथाः। जिन्होंने भोगा, वे वही हैं जिन्होंने त्यागा। त्याग और भोग अलग-अलग नहीं हैं। त्याग भोगपूर्ण हो, भोग त्यागपूर्ण हो, तब क्रांति घटती है। तब उत्क्रांति घटती है। तब जीवन में महोत्सव आता है। इस बात की तरफ इशारा है इस वचन में--
भजनीयेन अद्वितीयं इदं कृत्स्नस्य तत स्वरूपत्वात्।
"यह सभी भगवान का स्वरूप है, इस कारण सेवन और भजन करने के योग्य है।"
इस पर खूब मनन करना इस वचन पर। दोनों के योग्य है। भगवान ने अवसर दिया
है, पुरस्कार दिया है, भोगो भी। फूल दिए हैं, नासापुटों में जाने दो उनकी गंध। और हाथ जोड़ कर फूल के सामने झुको भी। धन्यवाद भी दो। जो व्यक्ति जगत का भोग भी कर सके और जगत का समादर भी कर सके, वही भक्त है। भक्त में अपूर्व घटना घटती है। त्याग और भोग का मिलन हो जाता है। भक्त भगोड़ा नहीं होता। न ही मात्र भोगी होता है। भक्त सम्मानपूर्वक सब तरफ परमात्मा को देखता है, सब तरफ उसका सिर झुका होता है। लेकिन परमात्मा जो भी देता है, उसे अंगीकार करता है। उसे प्रसादरूप स्वीकार करता है। इसलिए मैं अपने संन्यासी को कहता हूंः कहीं जाना मत, छोड़ कर कहीं मत जाना, परमात्मा यहां है। तुम्हारे होने का ढंग बदलना चाहिए। तेन त्यक्तेन भुंजीथाः। भगोड़े वंचित हो जाते हैं।

ले ली जीवन ने अग्निपरीक्षा मेरी।
मैं आया था जग में बन कर
लहरों का दीवाना,
यहां कठिन था दो बूंदों से
भी तो नेह लगाना,
पानी का है वह अधिकारी
जो अंगार चबाए,
ले ली जीवन ने अग्निपरीक्षा मेरी। सुनते हो?
पानी का है वह अधिकारी
जो अंगार चबाए,
अंतरतम के शोलों को था
खुद मैंने दहकाया,
अनुभवहीन दिनों में मुझको
था किसने बहकाया,
भीतर की तृष्णा जब चीखी
सागर, बादल, पानी,
बाहर की दुनिया थी लपटों ने घेरी। ले ली जीवन ने अग्निपरीक्षा मेरी।

जीवन अग्निपरीक्षा है। और कहीं जाने की जरूरत नहीं है, यहीं निखार है। यहीं तुम्हारा स्वर्ण आग से गुजर कर कुंदन बनेगा।
काठ कोयला जल कर बनता
और कोयला, राखी,
छिपा कहीं मेरी छाती में
था स्वर्गों का साखी,
दो आगों के बीच बना कर
नीड़ रहा जो गाता,
ज्वाला के दिन में, निशि में धूम्र-अंधेरी।
ले ली जीवन ने अग्निपरीक्षा मेरी।
जीवन की अग्निपरीक्षा से भागो मत। यहीं कुछ घटने को है। घटने को है, इसीलिए जीवन दिया गया है।
काठ कोयला जल कर बनता
और कोयला, राखी,
छिपा कहीं मेरी छाती में
था स्वर्गों का साखी,
वह जो स्वर्ग का साक्षी है, वह तुम्हारे भीतर छिपा है। त्याग को भी देखो और भोग को भी देखो, साक्षी बनो। न त्याग को चुनो, न भोग को चुनो, दोनों को नाचने दो तुम्हारे चारों तरफ। तुम साक्षी रहो। तुम तीसरे रहो। सुख भी देखो, दुख भी देखो; दिन भी देखो, रात भी देखो; मगर किसी से तादात्म्य मत करो।
छिपा कहीं मेरी छाती में
था स्वर्गों का साखी,
दो आगों के बीच बना कर
नीड़ रहा जो गाता,
ज्वाला के दिन में, निशि में धूम्र-अंधेरी।
ले ली जीवन ने अग्निपरीक्षा मेरी।

पीड़ा को मधुमय, क्रंदन को
छंदों की मृदुवाणी,
अशुचि अमंगल को मैं मंगल
करने का अभिमानी
स्वप्न चिता की भस्म जहां
थी फैली, उस पर मैंने
बिखरा दी अपने कलि-कुसुमों की ढेरी।
ले ली जीवन ने अग्निपरीक्षा मेरी।
इस अग्नि का रंग ही गैरिक रंग है। इस अग्निपरीक्षा से गुजरना ही गैरिक वस्त्रों का अर्थ है। तुम्हारा संन्यास तुम्हें जगत का सेवन और जगत का भजन सिखाए, तो तुम्हारा संन्यास भक्ति की महिमा बन जाएगा, भक्ति की गरिमा बन जाएगा। तुम्हारे संन्यास से गीत उठना चाहिए। तुम्हारे संन्यास से नृत्य जगना चाहिए। तुम्हारा संन्यास महोत्सव हो। तभी जानना कि तुमने, प्रभु ने जो अवसर दिया था, उसका पूरा-पूरा उपयोग किया है और तुम उत्तीर्ण हो गए हो।
आज इतना ही।

अथातो भक्ति जिज्ञासा, भाग 2 चौतीसवां प्रवचन

जागरण है द्वार स्वर्ग का

पहला प्रश्नः क्या धरती पर स्वर्ग उतारा जा सकता है? क्या भविष्य में कभी एक स्वस्थ, महत्वाकांक्षाओं और उत्तेजनाओं से मुक्त और प्रेमपूर्ण समाज का निर्माण हो सकता है? अतीत का अनुभव तो यही कहता है कि मुक्त-पुरुषों के पास कुछ मुट्ठी भर लोग मुक्ति को प्राप्त हुए और शेष समाज वैसा का वैसा ही बना रहा। आप कुछ अनूठे अवश्य हैं, आपका प्रयोग भी बहुत मौलिक और क्रांतिकारी है। आप कहते हैं मनुष्यता भी प्रौढ़ हुई है। क्या इस बार हम कुछ नये की आशा संजो सकते हैं?

अरुण! पृथ्वी पर स्वर्ग उतारने की कोई जरूरत नहीं है, पृथ्वी स्वर्ग है। बस जागने की जरूरत है। स्वर्ग कहीं से लाना नहीं है, न ही स्वर्ग निर्मित करना है, स्वर्ग में हम जी रहे हैं; लेकिन सोए हुए हैं। हमारे चारों तरफ स्वर्ग का उल्लास प्रवाहित है। स्वर्ग की रंगरेलियां चल रही हैं। लेकिन आदमी मूर्च्छित है। वह अपने मन में खोया है।
मन यानी नींद। मन यानी मूर्च्छा। चूंकि हम मन में खोए हैं, इसलिए उसे नहीं देख पाते जो मौजूद है। जो सामने खड़ा है, उससे वंचित रह जाते हैं। नहीं तो ऐसा कैसे हो सकता था कि कुछ लोग--कोई बुद्ध, कोई महावीर, कोई कृष्ण, कोई कबीर, कोई शांडिल्य, कोई नारद--यहीं रहते हुए स्वर्ग को उपलब्ध हो गए! ऐसा तो नहीं हो सकता कि एक टुकड़ा स्वर्ग का बुद्ध के लिए उतरा होगा पृथ्वी पर। बुद्ध के लिए उतरता तो कम से कम जो बुद्ध के पास थे उनको भी दिखाई पड़ता। नहीं, ऐसा हुआ कि और सब सोए रहे, कोई एक व्यक्ति जाग गया। जो जाग गया, वह स्वर्ग में प्रविष्ट हो गया।
जागरण स्वर्ग का द्वार है।
जागो तो तुम पाओगे कि स्वर्ग में ही थे। सदा से स्वर्ग में थे। और यह अनुभव तुम्हें रोज भी होता है। रात सो जाते हो, याद भी नहीं रह जाती कि कहां सोए हो, किस घर में सोए हो; कौन पत्नी है, कौन पिता है, कौन मां है, कौन भाई, कौन बहन; क्या धंधा, क्या व्यवसाय; शिक्षित, अशिक्षित, अमीर, गरीब; सब खो जाता है। सो गए तो बिल्कुल भूल गए। सुबह जाग कर फिर सब याद आ जाता है। स्वर्ग पुनर्स्मरण है।
हर बच्चा स्वर्ग में पैदा होता है। फिर हम उसे भुलाने की कोशिश करते हैं। फिर हम उसे अपने नरक की दीक्षा देते हैं। उस दीक्षा को हम संस्कार कहते, संस्कृति कहते, समाज कहते, धर्म कहते। हमने बड़े प्यारे नाम रखे हैं उस दीक्षा के। दीक्षा का मूल सार इतना है कि बच्चे से उसका स्वर्ग छीन लो। उसकी सरलता छीन लो। उसका निर्दोष भाव छीन लो। उसकी आंखों की ताजगी छीन लो। उसके चित्त का जो दर्पण जैसा निश्छल रूप है, उसे नष्ट कर दो; भर दो कूड़े- कर्कट से।
बच्चा पैदा होता है तो न हिंदू होता है, न मुसलमान, न ईसाई, न जैन। बनाओ उसे जल्दी हिंदू, मुसलमान, जैन, ईसाई, बौद्ध। कहीं देर न हो जाए! उसे कुछ पता नहीं होता कि क्या बुरा, क्या भला। जल्दी उसे सिखाओ कि उसे बुरे-भले का पता हो जाए! उसे कुछ पता नहीं है--भविष्य का, अतीत का। उसे समय की भाषा सिखाओ! उसे अतीत की याददाश्तें सिखाओ, उसे भविष्य की आकांक्षाएं दो। उसे कुछ पता नहीं है कि महत्वाकांक्षी होना चाहिए। उसे दौड़ में लगाओ। उससे कहो--तुझे प्रथम आना है। उसे सिखाओ कि दूसरों की गर्दन काटनी है। उसे सिखाओ कि अपने जीने के लिए यह बिल्कुल जरूरी है कि दूसरों की गर्दनें काटी जाएं। उसे सिखाओ कि दूसरों के सिरों की सीढ़ियां बनाओ और चढ़ते जाओ। उसे सीढ़ी चढ़ना सिखाओ। कहां पहुंचेगा, यह कुछ पता नहीं है। कोई कभी उस सीढ़ी से कहीं पहुंचा है, इसका भी पता नहीं है। मगर चढ़ते जाओ, और चढ़ते जाओ। धन तो और धन, पद तो और पद। और की दीक्षा हम देते हैं।

और की दीक्षा नरक की दीक्षा है। जितना है, उससे तृप्त मत होना। जो पास हो, उसकी फिकर मत करना; जो दूर हो, उसकी फिकर करना। जो मिले, उसको भूल जाना; जो न मिले, उसके सपने देखना। और क्या नरक है? असंतोष नरक है।
संतोष स्वर्ग है। जो है, बहुत है; जो है, बहुत खूब है; जो है, बहुत से ज्यादा है, जरूरत से ज्यादा है। और की जहां आकांक्षा नहीं है, जो मिला है उससे जो अनुगृहीत है, वह स्वर्ग में है। हर बच्चा स्वर्ग में है। इसलिए तुम देखते हो, कोई बच्चा कुरूप नहीं होता। सब बच्चे सुंदर होते हैं। स्वर्ग में कोई कुरूप कैसे हो सकता है? सब बच्चे सुंदर पैदा हो जाते हैं। सुंदर ही पैदा होते हैं। फिर धीरे-धीरे कुरूप होने लगते हैं। फिर हिंदू, फिर मुसलमान, फिर ईसाई; फिर हजार तरह के अहंकार, और हजार तरह की सीमाएं, और हजार तरह के बंधन--और उनका चित्त संकीर्ण होता जाता है, संकीर्ण होता जाता है। फिर एक कारागृह रह जाता है। फिर सभी लोग कुरूप हो जाते हैं। उस कुरूपता का नाम नरक है।
तो पहली बात तो तुम्हें याद दिला दूं कि स्वर्ग कहीं से लाना नहीं है, स्वर्ग आया हुआ है। हम स्वर्ग में पैदा हुए हैं। यह सारा अस्तित्व स्वर्ग है। नरक कहीं है ही नहीं। सिवाय आदमी की भ्रांति के नरक कहीं भी नहीं है। दुख आदमी का सृजन है। परमात्मा से केवल सुख की धारा ही बह रही है। हम बड़े कुशल हैं, हम सुख को दुख बना लेने में कुशल हैं। हम फूलों से कांटे ढाल लेते हैं। जहां अहोभाव होना चाहिए, वहां हम शिकायतें खड़ी कर लेते हैं। जहां झुकने की धारा बहनी चाहिए, वहां हम अकड़ कर खड़े हो जाते हैं और सूख जाते हैं। गलती हमारी है, पृथ्वी की कोई गलती नहीं है। पृथ्वी सर्वांग सुंदर है।
इसीलिए यह हो सका कि जो जाग गया, वह स्वर्ग में प्रविष्ट हो गया। बुद्ध यहीं स्वर्ग में रहे। मैं यहीं स्वर्ग में हूं। तुम भी उसी दुनिया में हो, मैं भी उसी दुनिया में हूं। हम कहीं अलग-अलग दुनियाओं में नहीं हैं। पर मेरे देखने का ढंग और, तुम्हारे देखने का ढंग और। तो स्वर्ग देखने के ढंग की बात है। नरक भी देखने के ढंग की बात है। हमारी दृष्टि बदलनी चाहिए। दृष्टि ही सृष्टि है। उससे ही हम सृजन करते हैं।
जागो! और तुम स्वर्ग में प्रविष्ट हो जाओगे। और स्वर्ग तुममें प्रविष्ट हो जाएगा।
दूसरी बात, समाज कभी स्वर्ग में हो पाएगा या नहीं, कहना मुश्किल है। होना चाहिए, मगर हो पाएगा या नहीं, कहना मुश्किल है।
क्यों? क्योंकि मनुष्य स्वतंत्र है। स्वर्ग जबरदस्ती थोपा नहीं जा सकता। यह ऐसी कोई बात नहीं है कि एक आज्ञा दे दी कि बस अब स्वर्ग हो जाए! यह प्रत्येक व्यक्ति को निर्णय लेना पड़ता है कि मैं दुखी जीना चाहता हूं या सुखी जीना चाहता हूं। यह आत्म-निर्णय है। यह कोई सरकारी आज्ञा नहीं हो सकती कि एक दिन तय कर लिया--जैसे कि हमने तय कर लिया कि इस दिन स्वतंत्रता हो गई, देश स्वतंत्र हो गया; इस दिन देश लोकतंत्र बन गया, और देश लोकतंत्र बन गया। ऐसी कोई बचकानी बात नहीं है कि एक दिन हमने तय कर लिया कि फलां तारीख को फलां सन एक जनवरी को घोषणा हो जाएगी कि अब हम स्वर्ग में प्रवेश कर गए। इस तरह घोषणाओं से नहीं होने वाला है। प्रत्येक व्यक्ति को अपने निजी अस्तित्व में निर्णय लेना पड़ता है कि मैं क्या चुनूं--स्वर्ग या नरक? यह प्रत्येक व्यक्ति की आंतरिक स्वतंत्रता है। इस स्वतंत्रता में गरिमा है। और खतरा भी है।
इसे थोड़ा समझो! अगर स्वर्ग अनिवार्य हो, तो स्वतंत्रता नष्ट हो जाएगी। अगर स्वर्ग ऐसा हो कि उससे अलग होने का उपाय ही न हो, कि तुम्हें स्वर्ग में होना ही पड़े, तुम लाख उपाय करो तुम दुखी न हो सको, तो वह सुख भी सुख नहीं रह जाएगा। उसमें स्वतंत्रता खो गई। और स्वतंत्रता सुख की एक अनिवार्य आधारशिला है। जो स्वर्ग जबर्दस्ती मिल जाएगा, वह कैसा स्वर्ग होगा?
इसलिए स्वर्ग की संभावना में ही नरक भी छिपा है। समझ लेना बात को। स्वतंत्रता का अर्थ ही यह होता है। अगर तुमसे कोई कहे कि तुम्हें अच्छे काम करने की स्वतंत्रता है, तो इसका क्या मतलब होगा? इसका कोई मतलब नहीं

होगा। अच्छे काम की स्वतंत्रता में बुरे काम की स्वतंत्रता सम्मिलित है। कोई कहे कि तुम्हें राम होने की स्वतंत्रता है। लेकिन राम होने की स्वतंत्रता में रावण होने की स्वतंत्रता सम्मिलित है। अगर तुम रावण हो ही न सको, तो फिर राम होने की स्वतंत्रता का अर्थ क्या है? रावण भी हो सकते हो, इसलिए राम होने का मजा है। नरक में हो सकते हो, इसलिए स्वर्ग में होने का मजा है। बीमार हो सकते हो, इसलिए स्वास्थ्य में रस है। मर सकते हो, इसलिए जीवन प्यारा है। घृणा घेर सकती है, इसलिए प्रेम में आनंद है। स्वतंत्रता विपरीत की स्वतंत्रता है। प्रत्येक व्यक्ति को हर बार--बार-बार निर्णय लेना पड़ता है। यह व्यक्ति की निर्णायकता पर निर्भर है।
इसलिए समाज की भाषा में पूछो ही मत--कि समाज कभी स्वर्ग में होगा या नहीं होगा? हां, इतना मैं जरूर कह सकता हूं कि लोग अब ज्यादा से ज्यादा स्वर्ग में होंगे। संख्या बढ़ती जाएगी।
क्यों? उसके कुछ कारण हैं। पहले क्यों नहीं हो सका? उसके भी कारण हैं। बुद्ध जैसा व्यक्ति स्वर्ग में प्रवेश कर सका। बड़ी प्रतिभा की जरूरत थी। क्योंकि पूरा समाज बड़ा संकीर्ण था, बड़ा क्षुद्र था। उस क्षुद्रता और संकीर्णता से मुक्त होना करीब-करीब असंभव कृत्य जैसा कृत्य था। चमत्कार था! अब समाज उतना संकीर्ण नहीं है। तुम देखते हो, मैं अभी भी जिंदा हूं, मुझे सूली नहीं लगा दी गई है। और जो मैं कह रहा हूं, उसके मुकाबले जीसस ने जो कहा था वह कुछ भी नहीं है। लेकिन जीसस को सूली लग गई। समाज बड़ा संकीर्ण था, बड़ा क्षुद्र था। मैं जो कह रहा हूं वह बुद्ध भी तुमसे कहना चाहते थे, लेकिन कहा नहीं। तो तुम यह मत सोचना कि जो मैं तुमसे कह रहा हूं वह बुद्ध नहीं कहना चाहते थे। बुद्ध भी कहना चाहते थे। बुद्धत्व का स्वाद लेकर तुमसे कह रहा हूं कि कहना ही चाहा होगा उन्होंने भी। क्योंकि उस घड़ी में जो मुझे दिखाई पड़ रहा है, उन्हें भी दिखाई पड़ा होगा। लेकिन नहीं कहा। तुम्हारे कान उसे झेल न पाते। तुम्हारी आत्माएं उसे अंगीकार न कर पातीं। मनुष्य का हृदय थोड़ा विस्तीर्ण हुआ है।
तुम देखते हो, यहां हिंदू बैठे हैं, मुसलमान बैठे हैं, जैन बैठे हैं, बौद्ध बैठे हैं; ईसाई हैं, सिक्ख हैं, पारसी हैं; यहां शायद ही कोई दुनिया में ऐसा धर्म हो जिसका प्रतिनिधि मौजूद नहीं है। ऐसा कभी हुआ था? ऐसा कभी नहीं हुआ था। जीसस को सुनने वाले यहूदी थे। बुद्ध को सुनने वाले हिंदू थे। मोहम्मद को सुनने वाले... एक दायरा था, एक सीमा थी। ऐसा संगम कभी घटा है? घट ही नहीं सकता था। असंभव था। मनुष्य इतना प्रौढ़ नहीं था।
आज घट सकता है। आज घट सकता है तो संभावनाएं बड़ी हो गईं। मैं यह नहीं कहता कि सारा समाज स्वर्ग में प्रवेश कर जाएगा, पर इतना जरूर कहता हूं कि अधिक से अधिक लोग प्रवेश कर सकेंगे। रोज द्वार बड़ा होता जाएगा।
ऐसा समझो कि हर चीज के पीछे एक क्रमबद्धशृंखला होती है। जैसे समझो, हम चांद पर पहुंच गए। चांद पर पहुंचने की आकांक्षा सदियों पुरानी है। जितना मनुष्य पुराना है, उतनी आकांक्षा पुरानी है। हर बच्चा पैदा होकर चांद की तरफ हाथ बढ़ाता है। चंदामामा को पकड़ लाना चाहता है। रोता है कि चंदा को पकडूंगा। पुरानी कथा है कि कृष्ण रो रहे हैं चांद को पकड़ने के लिए। और यशोदा ने एक थाली में पानी भर कर रख दिया। और चांद का प्रतिबिंब थाली में पड़ने लगा। और कृष्ण ने थाली में बने चांद के प्रतिबिंब को हाथ डाल कर पकड़ने की कोशिश की है।
चांद को पकड़ने की कोशिश बड़ी पुरानी है। लेकिन पहुंच हम पाए। अब तक नहीं हो सका था यह, अब हो सका। इसके पीछे एक क्रमबद्धशृंखला है। जिनके पास बैलगाड़ी नहीं थी, उनके पास हवाई जहाज तो नहीं हो सकता, इस बात को समझ लेना। बैलगाड़ी हो, फिर कार बने, फिर ट्रेन बने, फिर हवाई जहाज बने, फिर कहीं अंतरिक्ष यान बन सकता है। कोई आदिम समाज अंतरिक्ष यान नहीं बना सकता। इसलिए मैं कहता हूं कि तुम्हारी जो कहानियां हैं कि रामचंद्रजी पुष्पक विमान में बैठ कर अयोध्या आए, सब कहानियां हैं। क्योंकि साइकिल का भी उल्लेख नहीं है। मोटर का भी उल्लेख नहीं है। बिना कार के हवाई जहाज नहीं बन सकता। और जो हवाई जहाज बना लेंगे, उन्होंने उसके पहले कार बना ही ली होगी, तो ही हवाई जहाज बन सकता है। एक क्रमबद्धशृंखला है। एक सीढ़ी है। कोई

भी घटना आकस्मिक नहीं घट जाती। अंतरिक्ष यान बन सकता है तभी, जब हवाई जहाज अपनी पराकाष्ठा पर पहुंच जाए।
ठीक ऐसा ही जीवन के और तलों पर भी सच है। महावीर ने जो कहा, वह अकेला काफी नहीं है बहुत बड़ी संख्या को स्वर्ग में ले जाने के लिए। उसमें फ्रायड का जुड़ जाना जरूरी है। कृष्ण ने जो कहा, वह अकेला काफी नहीं है बहुत बड़ी संख्या को स्वर्ग में ले जाने के लिए। उसमें मार्क्स का जुड़ जाना जरूरी है। और बुद्ध ने जो कहा, वह काफी नहीं है बहुत बड़ी संख्या को स्वर्ग में ले जाने के लिए। उसमें आइंस्टीन का हाथ अनिवार्य है।
आज हम एक अनूठी घड़ी में हैं। सारे उपकरण मौजूद हैं। पृथ्वी चाहे तो अब स्वर्ग की घोषणा कर सकती है। बहुत बड़ी संख्या में लोग आंखें खोल सकते हैं, ध्यान में उतर सकते हैं, प्रार्थनापूर्ण हो सकते हैं। अब बाधा उपकरण की दृष्टि से नहीं है, अब तो बाधा सिर्फ पुरानी आदतें तोड़ने की है।
फर्क समझ लेना! तुम्हारे लिए कार भी दे दी जाए, तो जरूरी नहीं है कि तुम उसमें बैठोगे। तुम कहोगे, बैल कहां? बिना बैल के यह चलेगी कैसे?
जब पहली दफा रेलगाड़ी बनी तो तुम जान कर हैरान होओगे, लंदन में उसमें कोई बैठने को राजी नहीं था। मुफ्त बिठाया जा रहा था। एक तीस मील की यात्रा करवाई जा रही थी। कोई रेलगाड़ी में बैठने को राजी नहीं था। लोग चारों तरफ देख कर जाते, वे पूछते, घोड़े कहां हैं? बिना घोड़े के यह चलेगी कैसे? बड़ी मुश्किल से समझाया जाता उन्हें कि यह भाप से चलेगी। वे कहते, ठीक, चलो चल भी गई, फिर रुकेगी कैसे? और नहीं रुकी तो फिर? हम तो बैठ जाएं इसमें, फिर यह न रुके! कभी रोक कर देखी? उसके पहले गाड़ी चली ही नहीं थी, इसलिए किसी ने रोक कर देखी भी नहीं थी। और बड़ी अफवाहें उड़ गईं। और छोटे-मोटे लोगों ने नहीं उड़ाईं, चर्च के बड़े पुरोहित ने भी घोषणा कर दी चर्च में रविवार को कि जो बैठेगा इस रेलगाड़ी में, वह ध्यान रखे कि वह ईसाई नहीं रहा। क्योंकि कोई ईसाई कभी रेलगाड़ी में नहीं बैठा। और फिर परमात्मा ने रेलगाड़ी क्यों नहीं बनाई? अगर रेलगाड़ी बनानी ही थी तो परमात्मा बनाता। उसने तो प्रकृति पूरी बना दी छह दिन में, फिर सातवें दिन आराम किया, छह दिन में सब बना दिया, उसने हर चीज बना दी, रेलगाड़ी क्यों नहीं बनाई? यह रेलगाड़ी जरूर शैतान की ईजाद है। यह तर्क जंचा लोगों को। फतवा मिल गया ऊपर से कि कोई रेलगाड़ी में न बैठे। कोई बैठने को राजी नहीं था।
तुम हैरान होओगे कि लोगों को पैसे देने पड़े! और जो बैठने को राजी हुए
वे इस तरह के लोग थे--अपराधी, जुआरी, शराबी! जिन्होंने कहा कि चलो ठीक है, रहे तो रहे, न रहे तो भी क्या? ईसाई न रहे तो भी क्या? और शैतान की गाड़ी, चलो ठीक है! हम तो पुराने ही शैतान के शिष्य हैं। वे बैठ गए। सिर्फ आठ आदमी। जिस गाड़ी में तीन सौ लोगों के बैठने की व्यवस्था थी, सिर्फ आठ आदमी बैठे। पूरे लंदन में आठ हिम्मतवर आदमी मिले। वे भी छाती कड़ी करके बैठे थे कि पता नहीं क्या होने वाला है! रेलगाड़ी मौजूद है, लेकिन बैठने को कोई राजी नहीं।
आज ऐसी ही घड़ी है। मैं तुमसे जो कह रहा हूं, लेकिन उसको तुम सुनने को राजी नहीं। सुन भी लो तो करने को राजी नहीं। तुम्हारी पुरानी आदतें, तुम्हारे पुराने विश्वास, तुम्हारी पुरानी श्रद्धाएं बाधा बन रही हैं। उपकरण तो मौजूद है।
लेकिन कितनी देर तक ये बाधा बनेंगी? आठ आदमी भी बैठ गए अगर... वही आठ आदमी मेरे संन्यासी हो गए हैं... आठ आदमी भी अगर बैठ गए तो यह रेलगाड़ी चल पड़ेगी। और एक बार चल पड़ी तो संख्या बैठने वालों की बढ़ती जाएगी। अब सारी दुनिया बैठ रही है, अब किसी को चिंता नहीं है। अब कोई पूछता ही नहीं कि रेलगाड़ी रुकेगी कि नहीं रुकेगी? इसको रोकोगे कैसे? इसमें घोड़े कहां? बैल कहां? कौन चला रहा है? इसके भीतर कोई भूत-प्रेत तो नहीं है? शैतान का हाथ तो नहीं है? ... और शक्ल भी रेलगाड़ी की और इंजन की कुछ शैतान जैसी लगती है! यमदूत जैसा मालूम होता है इंजन। और इतनी ताकत से चलता है, धड़धड़ा कर चलता है, पता नहीं क्या होगा परिणाम इसका?
मनुष्य-जाति ने पिछले पांच हजार सालों में वह सब खोज लिया है--धीरे- धीरे करके। कुछ बुद्ध ने खोजा, कुछ पतंजलि ने खोजा, कुछ मोहम्मद ने खोजा, कुछ क्राइस्ट ने, कुछ मूसा ने, कुछ लाओत्सु ने, कुछ जरथुस्त्र ने; अनेक-

262

अनेक अन्वेषियों ने, अनेक-अनेक जानने वालों ने सारे खंड खोज लिए हैं। उन खंडों को बिठा देने की बात है। उनको मैं बिठाने की कोशिश कर रहा हूं। इसलिए मुझसे लोग पूछते हैं कि आप एक ही धारा पर क्यों नहीं बोलते? जैन मेरे पास आते हैं, वे कहते हैं, अगर आप सिर्फ महावीर पर बोलें तो हम आपके साथ हैं। लेकिन आप कृष्ण पर भी बोल देते हैं। तब हमें बड़ी चोट लग जाती है। कृष्ण को मानने वाला कहता है, आप अगर कृष्ण पर ही बोलते रहें, तो सारे हिंदू आपके साथ खड़े हो जाएंगे। लेकिन आप मोहम्मद को बीच में ले आते हैं, कि ईसा को बीच में ले आते हैं। कि अगर आप योग पर ही बोलें तो ठीक, मगर आप तंत्र पर भी बोल देते हैं।
मेरी कोशिश और तरह की है। वैसी कोशिश कभी की नहीं गई है। मैं सारी दुनिया में सत्य के जितने दर्शन हुए हैं, जिन-जिन झरोखों से सत्य की झलक देखी गई है, उन सारी झलकों को तुम्हारे सामने इकट्ठा कर देना चाहता हूं। क्योंकि उनके इकट्ठे हो जाने पर ही भविष्य निर्भर है। उनके इकट्ठे होते ही मनुष्यता के इकट्ठे होने का आधार बन जाएगा। जब तक तुम्हें मोहम्मद और महावीर में भेद दिखाई पड़ता रहेगा, तब तक आदमी आदमी इकट्ठा नहीं हो सकता। जब तक तुम्हें कृष्ण और क्राइस्ट में शत्रुता मालूम पड़ेगी, तब तक तुम कैसे ईसाई के साथ हाथ मिला सकते हो और ईसाई तुमसे हाथ मिला सकता है? मिलाओगे भी तो धोखाधड़ी होगी, चालबाजी होगी, पीछे इरादे कुछ और होंगे, मुख में राम बगल में छुरी होगी। लेकिन जिस दिन यह बिल्कुल साफ हो जाएगा कि इन सारे लोगों ने सत्य के ही अलग-अलग पहलुओं की चर्चा की है, और सारे पहलू मिल कर पूरा सत्य प्रकट हो जाता है, जैसे सारे पहलू मिल कर एक हीरा चमक उठता है। एक-एक पहलू से तो हीरा कमजोर होता है; सारे पहलू, अनंत पहलुओं से जब चमक आती है, अनंत पहलुओं से जब सूरज की किरणें लौटती हैं, प्रतिफलित होती हैं, रंग-बिरंगे इंद्रधनुष बन जाते हैं। वही प्रयास कर रहा हूं।
मनुष्य-जाति अब ज्यादा सुगमता से इस पृथ्वी पर स्वर्ग बसा सकती है। स्वर्ग बसाने का मतलबः स्वर्ग है, उसका आविष्कार कर लेना। उसको देख लेना।
यह अब तक नहीं हो सकता था, क्योंकि बिना मार्क्स के महावीर अधूरे हैं।
आदमी देह भी उतना ही है, जितनी आत्मा। सिर्फ आत्मा आत्मा की बात करो और देह को विस्मरण कर दो, तो ज्यादा देर आत्मा की बात करने वाले लोग जिंदा नहीं रहेंगे।
वही भारत में हुआ। हमने जरूरत से ज्यादा आत्मा की बात कर दी--और करने
का कारण था। क्योंकि हमने देखे महावीर, हमने देखे कृष्ण, हमने देखे बुद्ध, हमने वह अपूर्व ज्योति देखी आत्मा की कि हम एकदम विमोहित हो गए, सम्मोहित हो गए और हमने कहा कि छोड़ो फिकर पदार्थ की, बस आत्मा ही सब कुछ है--जगत मिथ्या, ब्रह्म सत्य! बस हमने कहा कि अब सब छोड़ो, अब तो बस आत्मा की ही खोज कर लेनी है। लेकिन महावीर को भी भोजन की जरूरत पड़ती है, बुद्ध को भी भिक्षा मांगने जाना पड़ता है, यह हम भूल ही गए। यह हम भूल ही गए कि बुद्ध को भी रोटी की उतनी ही जरूरत है जितनी तुम्हें है। उन्हें भी वस्त्र की जरूरत पड़ती है जितनी तुम्हें है। उन्हें भी रात छप्पर की जरूरत पड़ती है जितनी तुम्हें है। आत्मा से हम ऐसे ज्यादा प्रलोभित हो गए--और हो जाने का स्वाभाविक कारण था, हमने इतनी जगमगाती आत्माएं देखीं, ऐसे रोशन लोग देखे, ऐसे चमकते दीये देखे, कि ज्योति से हमारी आंखें बंध गईं, हम भूल ही गए कि ज्योति दीये में है। मिट्टी का दीया, उसमें भरा हुआ तेल और फिर ज्योति है।
हम ज्योति से ऐसे सम्मोहित हुए कि हम दीये की बात भी भूल गए, तेल की बात भी भूल गए; और बिना दीये और बिना तेल के ज्योति बुझ जाएगी, यह हमें स्मरण न रहा। और ज्योति बुझ गई। यह देश गरीब से गरीब होता चला गया है, दीन से दीन होता चला गया है, रुग्ण से रुग्ण होता चला गया है। इसमें वही, ज्योति के साथ जो अति आग्रह पैदा हो गया, कारण है। हमने इनकार ही कर दिया देह का। और देह के बिना आदमी कहां? भूमि के बिना वृक्ष कहां? देह के बिना आदमी कहां? इस संसार के बिना परमात्मा कहां? यह संसार उसकी देह है, उसकी काया है--यह दिव्य काया है। यह तुम्हारी देह, तुम्हारी काया, तुम्हारे भीतर छिपे हुए परमात्मा का मंदिर है।

इसका स्वाभाविक परिणाम हुआ, दूसरी अति पैदा हुई, मार्क्स ने कह दियाः
न कोई आत्मा है, न कोई परमात्मा है; सब बकवास है। उसके भी पीछे कारण हैं। जब देखा कि इसी बकवास के कारण लोग दीन और दरिद्र हो गए हैं और सड़े जा रहे हैं, तो स्वाभाविक यह प्रतिक्रिया पैदा हुई कि न कोई ईश्वर, न कोई आत्मा, बस आदमी सिर्फ देह है। और चेतना पदार्थ का ही एक आविर्भाव है। जैसे पान चबाते हो न, चार्वाकों ने कहा, चार-पांच चीजों से मिल कर पान बन जाता है, फिर ओंठ लाल हो जाते हैं। उन चार-पांच चीजों को अलग-अलग चबा लो, ओंठ लाल नहीं होते। चार्वाकों ने कहा कि यह जो लाली है, कोई अलग चीज नहीं है, उन पांच चीजों के मिलने से पैदा हो जाती है। ऐसे ही पांच तत्वों के मिलने से जो लाली दिखाई पड़ती है--आत्मा--वह कोई अलग चीज नहीं है, बस वह पान की लाली है।
शराब जिन चीजों से मिल कर बनती है, उनको अलग-अलग खा लो, तुम्हें नशा नहीं चढ़ेगा। उनको मिला कर लोगे, तब नशा चढ़ेगा। तो नशा उन चीजों के मिलन से पैदा हो रहा है--अलग नहीं है। उन चीजों के अलावा नशा जैसी कोई चीज नहीं है। ऐसा नहीं है कि तुम शराब से उसके बनाने वाले तत्वों को अलग कर लो, पीछे फिर नशा बचा रह जाएगा। शुद्ध नशा नहीं बचेगा। ऐसे ही कोई शुद्ध आत्मा नहीं है। तो चार्वाक से लेकर मार्क्स तक बगावत हुई। नास्तिक ने इनकार कर दिया, भौतिकवादी ने इनकार कर दिया। उसने भी एक तरह की दुनिया बनाने की कोशिश की रूस में, चीन में--जहां आदमी सिर्फ देह है। वहां दीया तो बड़ा सुंदर बन गया है, लेकिन उसमें ज्योति नहीं है। तेल भी खूब भरा है, मगर बाती नहीं है, और बाती को जलाने का सवाल ही नहीं है, ऐसी कोई चीज होती ही नहीं।
तो एक तरफ देह मर गई, आत्मा बची। और जब देह मर जाए तो बहुत दिन आत्मा नहीं बच सकती। दूसरी तरफ आत्मा मर गई, देह बची। और जब आत्मा मर जाए तो देह कितने दिन बच सकती है? देह सड़ जाएगी, लाश हो जाएगी।
तुमने देखा नहीं, जब तक आत्मा है देह में तब तक सब सुंदर है, सब सुवासित है। इधर आत्मा उड़ी, इधर पक्षी उड़ा, कि देह सड़ी। फिर घर में घर के ही लोग, जो तुम्हें जरा सा कांटा गड़ जाता था तो रोते थे, तड़फते थे, वे ही तुम्हें ले चले मरघट जलाने! कितनी जल्दी पड़ती है, तुमने देखा, कोई मर जाता है तो कितनी जल्दी होती है! रोकना ही नहीं चाहते लोग एक घड़ी घर में मुर्दे को। अब सिवाय दुर्गंध के और कुछ नहीं है। अगर घर के लोग रोने-धोने में लगे होते हैं तो पास-पड़ोस के लोग सहायता करते हैं, वे जल्दी से अरथी बनाने लगते हैं। मगर चलो, ले चलो, अब जल्दी करो! सारा गांव बस एक ही बात में उत्सुक होता है--जल्दी जलाओ, निपटाओ, खतम करो मामला! अब इसको घर में नहीं रखना है। यह तुम्हारी प्यारी मां थी, तुम्हारी प्यारी पत्नी थी, तुम्हारे प्यारे पिता थे, तुम्हारा बेटा था, एक क्षण रोकने को राजी नहीं हो तुम। क्या हो गया? दीया बचा, ज्योति नहीं है अब। दीये का क्या मूल्य है?
ये दो भ्रांतियां हो चुकी हैं, इसलिए पृथ्वी पर स्वर्ग नहीं बन पाया। इसलिए मैं तुमसे कहता हूं, अब संभव है। और मैं तुम्हें जो जीवन-दृष्टि
दे रहा हूं, वह न तो आध्यात्मिक है और न भौतिक है। मैं तुम्हें एक ऐसी जीवन-दृष्टि दे रहा हूं जिसमें भौतिकता और अध्यात्म, दोनों का समन्वय है। जिसमें दीया भी है और ज्योति भी है। इसलिए मुझसे सभी नाराज हैं। मुझसे, कम्युनिस्ट आता है, वह नाराज है। उसकी नाराजगी यह है कि आप कुछ बातें तो ठीक कहते हैं--जहां तक दीये की बात करता हूं, वह कहता है, आप बिल्कुल ठीक कह रहे हैं--मगर यह ज्योति की बात क्यों छेड़ देते हैं? यह नहीं जंचती। इससे हम आपसे नाराज हैं। और मेरे पास आध्यात्मिक व्यक्ति आते हैं, वे कहते हैं, और सब तो ठीक है, आप जब ज्योति की बात करते हैं तो हम भी तल्लीन हो जाते हैं, मगर आप देह की बात क्यों छेड़ देते हैं? उससे सब खराब हो जाता है! सिर्फ समाधि की बात करें, संभोग की बात क्यों उठा देते हैं? अगर आप समाधि की ही बात करें, तो सब सुंदर है। मेरे पास फ्रायड को मानने वाले लोग आते हैं, वे कहते हैं, संभोग की बात करते हैं वह तो बिल्कुल ठीक है, यह समाधि को कहां से लाते हैं? यह समाधि बिल्कुल झूठी बात है।
तो मेरी अड़चन तुम समझना। मुझसे सब नाराज हैं। भौतिकवादी नाराज हैं, क्योंकि मैं अध्यात्म की बात करता हूं। अध्यात्मवादी नाराज हैं, क्योंकि मैं भौतिकवाद की बात करता हूं। लेकिन मैं दोनों की बात कर रहा हूं। और मैं

चाहता हूं कि तुम दोनों की बात समझ लो, क्योंकि तुम दोनों के जोड़ हो। और यह पृथ्वी आकाश और पृथ्वी का जोड़ है। और पृथ्वी पर स्वर्ग का आविर्भाव हो सकता है तभी, जब हम दोनों को सम्हाल पाएं। इसकी सम्हालने की संभावनाएं बड़ी हो गई हैं अब। इतनी बड़ी कभी भी नहीं थीं। इसलिए बहुत लोग प्रवेश पा सकते हैं।
मगर फिर भी मैं यह नहीं कह सकता कि समाज सामूहिक रूप से प्रवेश पा जाएगा। समाज के पास कोई आत्मा नहीं होती। प्रवेश तो व्यक्ति पाता है। सुख और दुख व्यक्ति में घटते हैं, समाज में नहीं घटते। समाज के पास संवेदना का कोई आधार ही नहीं है। समाज तो केवल संज्ञा मात्र है, नाम मात्र है। जैसे तुम यहां बैठे हो, पांच सौ लोग मेरे सामने बैठे हैं, यह पांच सौ लोगों का समाज है। इसमें से एक-एक आदमी उठ कर चला जाएगा, जब सब चले जाओगे तो यहां पीछे कुछ भी नहीं बचेगा, कोई समाज नहीं बचेगा। तो समाज तो केवल एक नाम मात्र था, पांच सौ लोगों के इकट्ठे मौजूद होने का नाम था। असलियत तो व्यक्ति थे। वे पांच सौ व्यक्ति थे, पांच सौ आत्माएं थीं।
अब तुम मुझे सुन रहे हो। यहां कोई समाज नहीं सुन रहा है मुझे, पांच सौ व्यक्ति सुन रहे हैं, प्रत्येक व्यक्ति सीधा मुझे सुन रहा है, मेरे और व्यक्ति के बीच में कोई समाज नहीं है। समाज कामचलाऊ शब्द है। उसका उपयोग करो, मगर ध्यान रखना, समाज की कोई सत्ता नहीं है। समाज का कोई अस्तित्व नहीं है। संज्ञामात्र है।
ऐसे ही जैसे हम कहते हैं--जंगल। जंगल का कोई अस्तित्व थोड़े ही होता है, अस्तित्व तो वृक्षों का होता है। जंगल का तो इतना ही मतलब है--बहुत वृक्ष खड़े हैं। जंगल का और कोई अर्थ नहीं होता। एक-एक वृक्ष को अलग कर लो, जंगल सफाचट हो जाएगा, कहीं खोजे से न मिलेगा।
तो मैं यह नहीं कह सकता कि समाज की तरह जीवन में क्रांति आ जाएगी। मगर अधिक से अधिक लोग बड़ी से बड़ी संख्याओं में स्वर्ग में प्रवेश कर सकते हैं। ऐसा इसके पहले कभी भी समायोजन न था, जैसा आज है।

दूसरा प्रश्नः कान्हा! आज अंतिम होली है; क्या होली नहीं खेलोगे?

राधा! होली ही खेल रहा हूं। कभी होली, कभी होला। चौबीस घंटे वही चल रहा है, तुम्हें रंगने के धंधे में ही लगा हूं। रंगरेज ही हो गया हूं। काम ही कुछ और नहीं कर रहा। जो आदमी मुझे दिखता है, बस मैं उसे रंगने में लग जाता हूं। इसलिए जो रंगे जाने से डरते हैं, वे मेरे पास ही नहीं आते। वे दूर-दूर रहते हैं। कहीं रंग की कोई बूंद उन पर न पड़ जाए!
मैं अपने रंग में ही तुम्हें रंग रहा हूं। यहां होली वर्ष में एकाध दिन नहीं आती, होली ही चलती है। सब दिन एक से हैं। और सब दिन रंगने का काम ऐसे ही चलता रहता है। एकाध दिन होली क्या खेलनी!
एकाध दिन होली खेलने के पीछे भी मनोविज्ञान है।
यह जो एक दिन की होली है, इस तरह के उत्सव सारी दुनिया में हैं--अलग-अलग ढंग से, मगर इस तरह के उत्सव हैं। यह सिर्फ इतना बताता है कि मनुष्यता कितनी दुखी न होगी। एक दिन उत्सव मनाती है, और तीन सौ पैंसठ दिन शेष--दुखी और उदास। यह एक दिन थोड़े मुक्त-भाव से नाच-कूद लेती है। गीत गा लेती है। मगर यह एक दिन सच्चा नहीं हो सकता। क्योंकि बाकी पूरा वर्ष तो तुम्हारा और ही ढंग का होता है। न उसमें रंग होता है, न गुलाल होती है। तुम पूरे वर्ष तो मुर्दे की तरह जीते हो और एक दिन अचानक नाचने को खड़े हो जाते हो! तुम्हारे नाच में बेतुकापन होता है। तुम्हारे नाच में जीवंतता नहीं होती। जैसे लंगड़े-लूले नाच रहे हों, बस वैसा तुम्हारा नाच होता है। या जिनको पक्षाघात लग गया है, वे अपनी-अपनी बैसाखी लेकर नाच रहे हैं, ऐसा तुम्हारा नाच होता है। तुम्हारा नाच जब मैं देखता हूं, होली इत्यादि के दिन, तो मुझे शंकर जी की बरात याद आती है। तुम्हें नाच भूल ही गया है। तुम्हें उत्सव का अर्थ ही नहीं मालूम है। इसलिए तुम्हारा उत्सव का दिन गाली-गलौज का हो जाता है।

जरा देखो, तुम्हारे गैर-उत्सव के दिन औपचारिकता के दिन होते हैं, शिष्टाचार-सभ्यता के दिन होते हैं। और तुम्हारे उत्सव का दिन गाली-गलौज का दिन हो जाता है! यह गाली-गलौज तुम भीतर लिए रहते होओगे, नहीं तो यह निकल कैसे पड़ती है? यह होली के दिन अचानक तुम गाली-गलौज क्यों बकने लगते हो? और रंग फेंकना तो ठीक है, लेकिन तुम नालियों की कीचड़ भी फेंकने लगते हो। तुम कोलतार से भी लोगों के चेहरे पोतने लगते हो। तुम्हारे भीतर बड़ा नरक है। तुम उत्सव में भी नरक को ले आते हो। और तुम्हारा उत्सव जल्दी ही गाली-गलौज में बदल जाता है। देर नहीं लगती! तुम्हारी असलियत प्रकट हो जाती है। तुम्हारा शिष्टाचार, तुम्हारी औपचारिकताएं सब थोथी हैं, ऊपर-ऊपर हैं। गाली ज्यादा असली मालूम होती है। क्योंकि जैसे ही तुम्हें मौका मिलता है, जैसे ही तुम्हें सुविधा मिलती है, तुम्हारे भीतर से गाली निकल आती है। कांटे निकलते हैं जब तुम्हें सुविधा मिलती है। वैसे तुम बड़े भले मालूम पड़ते हो। वह भलापन तुम्हारा पुलिस के डर से है। वह भलापन तुम्हारा स्वर्ग-मोक्ष-नरक इत्यादि के भय और लोभ से है। तुम्हारा परमात्मा भी एक बड़े पुलिसवाले से ज्यादा और कुछ भी नहीं है तुम्हारी आंखों में। वह तुम्हें डरा रहा है, डंडा लिए खड़ा है, कि सताऊंगा।
लेकिन फिर भी इन सभी रुग्ण समाजों ने एकाध दिन छोड़ रखा है, क्योंकि नहीं तो आदमी पागल हो जाएगा। निकास के लिए ये दिन छोड़े गए हैं। नहीं तो गंदगी इतनी इकट्ठी हो जाएगी कि आदमी बर्दाश्त न कर सकेगा। और एक सीमा आ जाएगी जहां गंदगी अपने से ही बहने लगेगी। एक सीमा है, उसके बाद वह ऊपर से बहने लगेगी। ये निकास के दिन हैं। ये असली उत्सव नहीं हैं। रंग वगैरह फेंकना ऊपर है, भीतर हिंसा है।
तुमने देखा, जब रंग एक-दूसरे पर लोग चुपड़ते हैं, तो उसमें कोमलता नहीं होती, न हार्दिकता होती है, न प्रेम होता है। एक तरह की दुष्टता होती है। तुम जाकर देख सकते हो! जैसे दूसरे को सताने की इच्छा है। रंग तो बहाना है। और रंग ऐसा पोत देना है कि बच्चू को याद रहे! दो-चार दिन छुड़ा-छुड़ा कर मर जाए तो न छूटे! तुम्हारे भीतर कुछ गंदा, कुत्सित भरा हुआ है।
मेरी दृष्टि में, जीवन पूरा उत्सव होना चाहिए। तो फिर होली इत्यादि
की जरूरत न रहेगी। दीवाली एक दिन क्या? साल भर दिवाला, एक दिन दीवाली, यह कोई ढंग है जीने का? साल भर अंधेरा, एकाध दिन जला लिए दीये! साल भर मुहर्रम, एकाध दिन मना लिया जश्न; पहन लिए नये कपड़े, चले मस्जिद की तरफ! मगर तुम्हारी शक्ल मुहर्रमी हो गई है। तुम लाख उपाय करो, तुम्हारी शक्ल पर मुहर्रम छा गया है। तुम्हारे सब उत्सव इत्यादि थोथे मालूम पड़ते हैं, ऊपर से मालूम पड़ते हैं। उत्सव का आधार नहीं है, बुनियाद नहीं है। उत्सवपूर्ण जीवन होना चाहिए।
इसलिए मेरे इस आश्रम में न तो कभी दीवाली है, न कभी होली है। यहां सदा होली है, सदा दीवाली है। यहां चल ही रहा है, यहां नृत्य शाश्वत है। यहां जो भी नाचना चाहे उसे निमंत्रण है। और ख्याल रखना, एकाध दिन कोई नाच ही नहीं सकता। नाचता ही रहे, नाचता ही रहे, तो ही उसके नाचने में प्रसाद होता है, उसके नाचने में गुणवत्ता होती है, उसके नाचने में अपूर्व भाव होता है। और उसके नाचने में कोमलता, सरलता। उसके नाच में हिंसा नहीं होती।
नहीं तो तांडव नृत्य बन जाता है जल्दी ही नाच। तुम्हारे सब उत्सव तांडव नृत्य हो जाते हैं। जल्दी ही गाली-गलौज पर नौबत उतर आती है। तुम्हारे सब उत्सवों में हिंदू-मुस्लिम दंगे हो जाते हैं। यह बड़े आश्चर्य की बात है! उत्सव के दिन दंगा क्यों? मार-पीट क्यों? एक-दूसरे को सताने की इच्छा क्यों? गाली-गलौज क्यों? गंदे-अश्लील नाच क्यों? कबीर के नाम से गालियां दी जा रही हैं! हद्द हो गई! गालियां बकते हो, उसको कहते हो--कबीर! कबीर को तो बख्शो!
पीछे कारण हैं। तुम्हारा जीवन दमित जीवन है। एकाध दिन के लिए तुम्हें छुट्टी मिलती है। जैसे साल भर तो कारागृह में बंद रहते हो, एकाध दिन के लिए छुट्टी मिलती है, सड़कों पर आकर शोरगुल मचा कर फिर अपने कारागृहों में वापस लौट जाते हो।

अब जो आदमी कभी-कभी सड़क पर आता है साल में एकाध बार, अपनी काल-कोठरी से छूटता है, वह उपद्रव तो करेगा ही! उसके लिए स्वतंत्रता उच्छृंखलता बन जाएगी। लेकिन जो आदमी सदा ही रास्तों पर है, खुले आकाश के नीचे, वह उपद्रव नहीं करेगा।
मैं चाहता हूं, तुम्हारा पूरा जीवन उत्सव की गंध से भरे, तुम्हारे पूरे जीवन पर उत्सव का रंग हो, इसलिए तुम्हें रंग रहा हूं। यह मेरा गैरिक रंग तुम्हारे जीवन को उत्सव में रंगने के लिए प्रयास है। यह गैरिक रंग सुबह ऊगते सूरज का रंग है। यह गैरिक रंग खिले हुए फूलों का रंग है। यह गैरिक रंग अग्नि का रंग है--जिससे गुजर कर कचरा जल जाता है और सोना कुंदन बनता है। यह गैरिक रंग रक्त का रंग है--जीवन का, उल्लास का; नृत्य का, नाच का। इस रंग में बड़ी कहानी है। इस रंग के बड़े अर्थ हैं।
तो राधा! जिस रंग में मैं तुम्हें रंग रहा हूं उसमें पूरी तरह रंग जाओ,
तो होली भी हो गई, दीवाली भी हो गई। और यही पृथ्वी तुम्हारे लिए स्वर्ग बन जाएगी।

तीसरा प्रश्नः जब कुंडलिनी या सक्रिय ध्यान में ऊर्जा जाग्रत होती है, तो उसे नाच कर क्यों खत्म कर दिया जाता है?

अरे कंजूस! तुम भारत के सच्चे प्रतिनिधि मालूम होते हो! यह भारतीय बुद्धि का इतिहास है। कुछ खर्च न हो जाए! बस खर्च न हो, बचा-बचा कर मर जाओ! हर चीज में यह दृष्टि है। तुम इसे थोड़ा समझने की कोशिश करना। यह भारत
के बुनियादी रोगों में से एक है--कंजूसी, कृपणता। कहीं खर्च न हो जाए। और मर जाओगे! तब यह कुंडलिनी और यह ऊर्जा और यह सब पड़ा रह जाएगा। इस देश में अधिक लोग कब्जियत से परेशान हैं। डाक्टरों से पूछो, वे भी यही कहते हैं। भारत जितना कब्जियत से परेशान है, दुनिया का कोई देश इतना कब्जियत से परेशान नहीं है। यह कब्जियत आध्यात्मिक है। इसमें मनोविज्ञान है। हर चीज को पकड़ लो! मल-मूत्र को भी पकड़ लो! और अगर ज्यादा आगे बढ़ जाओ, तो मोरारजी जैसा पी जाओ उसे वापस। वह भी कंजूसी का हिस्सा है। कहीं निकल न जाए! कोई सार-तत्व खो न जाए! रि-साइकलिंग। फिर डाल दो भीतर। फिर-फिर डालते रहो। उसको बिल्कुल चूस लो। कुछ निकल न जाए! इसीलिए तुम मल तक को पकड़ लेते हो भीतर, उसको छोड़ते ही नहीं। कुछ खर्चा हुआ जा रहा है। सड़ गए हो इसी में। इसलिए जीवन यहां फैल नहीं सका, सिकुड़ गया। हर बात में एक कृपणता छा गई। तुम जिसको ब्रह्मचर्य कहते हो, मेरे देखे, तुम्हारे सौ ब्रह्मचारियों में निन्यानबे सिर्फ कृपणता की वजह से ब्रह्मचर्य को स्वीकार कर लिए हैं। कहीं वीर्य-ऊर्जा खर्च न हो जाए! कंजूस हैं। एक ब्रह्मचर्य है जो आनंद से फलित होता है, ब्रह्म के ज्ञान से फलित होता है, वह तो बात अलग। मगर जिनको तुम आमतौर से ब्रह्मचारी कहते हो, ये ब्रह्मचारी सिर्फ कृपण हैं, कंजूस हैं। इनका सिर्फ भाव इतना ही है कि कहीं कुछ खर्च न हो जाए। ये मरे जा रहे हैं, हर चीज को रोक लो! और सब पड़ा रह जाएगा! तुम्हारा वीर्य, तुम्हारी ऊर्जा, तुम्हारी कुंडलिनी, सब पड़ी रह जाएगी! सब मरघट पर जलेगी। और मजा यह है कि जो जितना रोकेगा, उतनी ही कम उसके पास ऊर्जा होगी।
इस विज्ञान को ठीक से ख्याल में ले लेना! क्योंकि कुछ चीजें हैं जो बांटने से बढ़ती हैं और रोकने से घटती हैं। परमात्मा तुम्हारे साधारण अर्थशास्त्र को नहीं मानता।
ऐसा समझो कि एक कुआं है, उसमें से तुम रोज पानी भर लेते हो ताजा-ताजा,
तो नया ताजा पानी आ जाता है, झरनों से नया पानी आ रहा है। तुम अगर कुएं से पानी न भरोगे, तो तुम यह मत समझना कि कुएं में पानी के झरने बहते रहेंगे और कुआं भरता जाएगा, भरता जाएगा और एक दिन पूरा भर जाएगा। कुएं में उतना ही पानी रहेगा। फर्क इतना ही रहेगा--अगर तुम भरते रहे तो ताजा पानी आता रहेगा, कुएं का पानी जीवंत रहेगा। और अगर तुमने न भरा, तो कुएं का पानी सड़ जाएगा, मर जाएगा, जहरीला हो जाएगा। और जो झरने कुएं को पानी दे सकते थे, तुमने भरा ही नहीं, उन झरनों की कोई जरूरत नहीं रही, वे झरने भी धीरे-धीरे अवरुद्ध हो

जाएंगे। उन पर पत्थर जम जाएंगे, कीच जम जाएगी, मिट्टी जम जाएगी; उनका बहाव बंद हो जाएगा। तुमने हत्या कर दी कुएं की।
मनुष्य एक कुआं है। जैसे हर कुआं सागर से जुड़ा है, नीचे झरनों से, दूर विराट सागर से जुड़ा है, जहां से सब झर-झर कर आ रहा है, ऐसे ही मनुष्य भी कुआं है और परमात्मा के सागर से जुड़ा है। कंजूसी की यहां जरूरत ही नहीं है। लेकिन प्रेम में आदमी डरता है कि कहीं खर्चा न हो जाए! छोटे-मोटे आदमियों की तो बात छोड़ दो, सिगमंड फ्रायड जैसा आदमी भी यह लिखता है कि बहुत लोगों को प्रेम मत करना, नहीं तो प्रेम की गहराई कम हो जाएगी। जैसे एक को प्रेम किया तो ठीक; फिर दो को किया तो आधा-आधा बंट गया; फिर तीन को किया तो एक बटा तीन मिला एक-एक को। ऐसे पचास-सौ आदमियों के प्रेम में पड़ गए कि बस फैल गया सब। बहुत पतला हो जाएगा, गहराई न रह जाएगी।
फ्रायड बिल्कुल नासमझी की बात कह रहा है। फ्रायड यहूदी था। वह यहूदी कंजूसी उसके दिमाग में सवार है!
तुम जितना प्रेम करोगे, उतना ज्यादा तुम प्रेम पाओगे। उतना प्रेम करने की क्षमता बढ़ेगी। उतनी प्रेम की कुशलता बढ़ेगी। और जितना तुम प्रेम लुटाते रहोगे, उतना तुम पाओगे परमात्मा से नये-नये झरने फूट रहे हैं और प्रेम आता जाता है। दो, और तुम्हारे पास ज्यादा होगा। रोको, और तुम कृपण हो जाओगे और कंजूस हो जाओगे और सब मर जाएगा, सब सड़ जाएगा। और ध्यान रखना, जो चीज बड़ी आनंदपूर्ण है बांटने में, अगर रुक जाए, सड़ जाए, तो वही तुम्हारे लिए रोग का कारण बन जाती है। जिन लोगों ने प्रेम को रोक लिया है, उनका प्रेम ही रोग बन जाता है, कैंसर बन जाता है।
अब तुम आ गए हो यहां--भूल से आ गए। तुम गलत जगह आ गए। यहां मैं उलीचना सिखाता हूं। यहां मैं बांटना सिखाता हूं। यहां मैं खर्च करने का आनंद तुम्हें सिखाना चाहता हूं।
और तुम पूछते होः "जब कुंडलिनी या सक्रिय-ध्यान में ऊर्जा जाग्रत होती है तो उसे नाच कर क्यों खत्म कर दिया जाता है?"
नाचने से ऊर्जा खत्म नहीं होती। नाचने से ऊर्जा निखरती है। नाचने से ऊर्जा बंटती है। और जितनी बंटती है, उतनी तुम्हारे भीतर पैदा होती है। जितना सृजनात्मक व्यक्ति होता है, उतना शक्तिशाली व्यक्ति होता है। तुमने अगर एक गीत गाया, तो तुम दूसरा गीत गाने में समर्थ हो जाओगे। और दूसरा गीत पहले से ज्यादा गहरा होगा। फिर तुम तीसरा गीत गाने में समर्थ हो जाओगे, वह उससे भी ज्यादा गहरा होगा। जैसे-जैसे गीत गाते जाओगे वैसे तुम पाओगे--नई तलें उघड़ने लगीं, नई गहराइयां प्रकट होने लगीं, तुम्हारे भीतर नये आयाम छूने लगे।
लेकिन तुम डर से पहला ही गीत रोके बैठे हो कि कहीं गाया और कहीं गान की ऊर्जा खत्म हो गई, और कुंडलिनी फिर सो गई, तो मारे गए। तो तुमको सिखाया गया है कि शक्ति जगा कर और बस पकड़े रहना भीतर उसको!
पकड़े रख सकते हो, मगर वहीं अटके रह जाओगे। यह पकड़ने का भाव भी तो यही
कह रहा है कि मैं संसार से अलग, मैं अस्तित्व से अलग, मुझे अपनी फिकर करनी है। अलग हम हैं नहीं। त्वदीयं वस्तु गोविंद, तुभ्यमेव समर्पये। उसी से मिलता है, उसी को लौटा देते हैं।
अब तुम ऐसा समझो कि गंगा अपने पानी को रोक ले, कि ऐसे सागर में गिर जाऊंगी तो मारी गई! सब पानी खत्म हो जाएगा, ऐसे रोज-रोज गिरती रही सागर में। ये जो करोड़ों-करोड़ों गैलन पानी रोज सागर में डाल रही हूं, खत्म हो जाएगा तो बस सूख जाऊंगी बिल्कुल। रोक ले अपने पानी को। तो क्या परिणाम होगा? सड़ जाएगी। सागर में देने से सड़ती नहीं। सागर में पानी उतर जाता है, फिर मेघ बन जाते हैं, फिर हिमालय पर बरस जाते हैं, फिर गंगोत्री में बह आते हैं, एक वर्तुल है। गंगा सागर को देती है, सागर गंगा को दे देता है।
यहां तुम जितना दोगे उतना पाओगे। यहां देना पाने की कला है। नाचो, गाओ, सृजनात्मक होओ।
इस पीड़ा से भारत बहुत ज्यादा परेशान रहा है। यहां के तथाकथित योगी भी दुकानदार की भाषा बोलते हैं। खर्चा न हो जाए! अपनी ऊर्जा सम्हाल कर रखो।
नाचना तो दूर, तुम्हें सिखाया जाता है कि जब ध्यान करने बैठो तो शरीर हिले

भी नहीं। क्योंकि जरा ही हिले और छलक गई ऊर्जा, फिर! हिलना ही मत, पत्थर की तरह बैठ जाना।
मैं तुमसे कहता हूंः नाचो। मैं कहता हूंः तुम बांटो। उंडेल दो सागर में ऊर्जा को। जिसने दी है, वह और देगा। इतनी घबड़ाहट क्या? इतना भी भरोसा नहीं है परमात्मा पर कि जिसने अब तक दिया है वह आगे भी देगा! तुम इतने डरे हुए आदमी मालूम होते हो कि तुम अगर सांस भीतर ले लोगे तो बाहर न निकालोगे। क्योंकि अगर बाहर निकाल दी, फिर न आई तो! फिर न लौटी, फिर क्या करेंगे? शक्ति खत्म हो गई। अपने हाथ से चली गई। ले लो सांस और सम्हाल कर बैठ जाओ भीतर! बस मर जाओगे उसी सांस के साथ!
तुम देते रहो; जिसने दी है, वह देगा। इतने दिन तक दिया, अब तक दिया, सब रूप में दिया, इतने घबड़ाते क्यों हो? यह आस्था की कमी है। यह श्रद्धा की कमी है। श्रद्धालु तो कहेगा कि ले लो मेरा जो काम लेना हो। जितना लेना हो! और तुमने एक मजे की बात देखी? जितना सक्रिय आदमी होता है, उसके पास उतना ही समय होता है। और जितने काहिल और सुस्त होते हैं, उनके पास बिल्कुल समय नहीं होता। सुस्त और आलसी से पूछो, वह कहता है, भई, समय नहीं है। और सक्रिय आदमी से पूछो, जो बहुत कामों में लगा है, वह हमेशा समय निकाल लेता है।
पश्चिम के एक बड़े विचारक श्वीत्जर ने लिखा है कि मेरे जीवन का अनुभव
यह है कि जितने रचनात्मक, सृजनात्मक, सक्रिय लोग होते हैं, जितना ज्यादा करने वाले लोग होते हैं, उनके पास उतना ही ज्यादा समय होता है। और अगर कोई काम करवाना हो तो ऐसे आदमी से कहना जो बहुत काम कर रहा हो। वह समय निकाल लेगा। सुस्त और काहिल, जो बिस्तरों में पड़े रहते हैं, उनसे अगर तुम कहो कि भई, जरा कर देना यह काम। वे कहेंगे, भई, समय कहां है? वे अपनी शक्ति बचाए पड़े हैं बिस्तर में, अपनी रजाई ओढ़े--कि कहीं शक्ति खर्च न हो जाए! वहीं रजाई में मर जाओगे।
यह कंजूसी छोड़ो। इस कंजूसी से मेरी जरा भी सहमति नहीं है। मैं तुमसे कहता हूंः जीवन को उत्फुल्लता से जीओ। और यह अनेक अर्थों में समझ लेने की बात है। ब्रह्मचर्य आना चाहिए, थोपा नहीं जाना चाहिए। कंजूसी के कारण नहीं थोपा जाना चाहिए। ब्रह्मचर्य आना चाहिए प्रेम की विराटता से। तुम्हारा प्रेम इतना फैले, इतना फैले, इतना गहरा हो जाए कि उसमें से कामवासना समाप्त हो जाए--गहराई के कारण। तुम इतना प्रेम दो कि उसमें कामवासना शून्य हो जाए। इतने शुद्ध प्रेम की धाराएं बहने लगें कि उसमें कामवासना न रह जाए। तब एक ब्रह्मचर्य आता है। वही ब्रह्मचर्य है। वही ब्रह्मचर्य शब्द का ठीक-ठीक द्योतक है।
ब्रह्मचर्य का अर्थ होता हैः ईश्वर जैसी चर्या।
ईश्वर कंजूस है? तुम देखते ईश्वर की कंजूसी कहीं भी इस प्रकृति में?
एक बीज से करोड़ों बीज पैदा होते हैं। एक-एक वृक्ष में करोड़ों बीज पैदा होते हैं। उन करोड़ों बीज में से दस-पांच बीज शायद वृक्ष बन पाएंगे। अब जरा सोचो तुम, परमात्मा कितना फिजूलखर्च है! दस-पांच वृक्ष बन पाएंगे और करोड़ों बीज पैदा कर रहे हो? वैज्ञानिक कहते हैं, एक आदमी, सिर्फ एक आदमी, एक पुरुष के वीर्य में इतने जीवाणु होते हैं कि वह सारी पृथ्वी को भर सकता है आबादी से। एक पुरुष में। एक संभोग में कम से कम एक करोड़ जीवाणु तुम्हारे भीतर से विदा हो जाते हैं। बच्चे तो तुम्हारे कितने होंगे? इंदिरा का वक्त होता तो थोड़े कम, अभी मोरारजी का है, थोड़े ज्यादा हो सकते हैं, बाकी कितने? दर्जन, दो दर्जन, कितने? इस समय पृथ्वी की जितनी आबादी है, उतने जीवाणु एक पुरुष में होते हैं। उतने बच्चे पैदा हो सकते हैं। और फिजूलखर्ची देखोगे भगवान की? दस-पांच बच्चों के लिए इतना, इतने जीवाणु पैदा करना!
यह मामला क्या है?
भगवान कंजूस नहीं है। फिजूलखर्च है। आनंद है उसका, उल्लास है उसका। हिसाब-किताब से नहीं चलता, मस्ती से चलता है। अब ये सज्जन अगर कुंडलिनी जग रही होगी तो ये बड़े घबड़ाते होंगे कि अब थोड़ी सी ऊर्जा आ रही है, अब जल्दी से मार कर कब्जा इस पर बैठ जाओ; कहीं खर्चा न हो जाए। बस तुम्हारे कब्जा मार

कर बैठने में ही मर जाएगी। होने दो प्रकट। यह जो उठ रहा है फन तुम्हारी कुंडलिनी का, इसे फैलने दो। इसे बंटने दो। यह जाएगी कहां? कहीं कुछ जाता नहीं है, सब यहीं है, क्योंकि हम सब एक हैं। हम सब संयुक्त हैं। कुछ खोता नहीं है। कुछ मरता नहीं है। सब शाश्वत रूप से यहीं है। लेकिन जब तुम देने में कुशल होते हो, जब तुम्हारे भीतर बहाव होता है, तब तुम्हारे भीतर जीवन अपने परम रूप में प्रकट होता है। तुम्हारे भीतर ब्रह्मचर्य फलेगा। लेकिन ब्रह्मचर्य कंजूसी से नहीं फलेगा। ब्रह्मचर्य दान से फलेगा, प्रेम से फलेगा। और तुम्हारे भीतर विराट ऊर्जा आएगी। लेकिन वह तभी आएगी जब तुम उलीचते रहोगे, उलीचते रहोगे, उलीचते रहोगे। कबीर ने कहा हैः दोनों हाथ उलीचिए, यही सज्जन को काम। उलीचते रहो। रुकना ही मत उलीचने से।
तुम मेरा प्रयोग करके देख लो! कंजूस की तरह तुमने रह कर जी लिया है, अब तुम उलीच कर भी देख लो। और तुम चकित हो जाओगे, इतना आता है! मगर देने वाले के पास ही आता है। धन्य हैं वे, जो बांटने में शर्तें नहीं लगाते। जो दिए चले जाते हैं।

चौथा प्रश्नः आप मोरारजी देसाई की आलोचना क्यों करते हैं? क्या राजनीति अध्यात्म के विपरीत है?

कौन मोरारजी देसाई? कभी नाम सुना नहीं! आपका मतलब मगरूरजी भाई देसाई
से तो नहीं है? या एक नाम और मैंने सुना है--मॉरलजी भाई देसाई। एम ओ आर ए एल, मॉरल।
आलोचना मैंने उनकी कभी की नहीं, आलोचना करने योग्य उनमें कुछ है नहीं। आलोचना करने योग्य कुछ होना भी तो चाहिए। राजनीतिज्ञों में क्या हो सकता है आलोचना करने योग्य? उनके वक्तव्यों का मूल्य क्या है? दो कौड़ी मूल्य नहीं है। आलोचना मैंने उनकी कभी नहीं की। हां, कभी-कभी मजाक करता हूं। उससे ज्यादा मूल्य नहीं मानता। कभी-कभी तुम्हें हंसाने को! तो जब भी मैं उनकी मजाक करूं, भूल कर भी आलोचना मत समझना। और जब भी उनकी मजाक तुम सुनो, या पढ़ो, कोष्ठक में जोड़ लेना अपनी तरफ से--होली है, बुरा न मानो! लेकिन तुम्हें आलोचना लगती होगी। क्योंकि तुम आदी नहीं हो। तुम तो जिनके पास राजसत्ता है, उनकी प्रशंसा सुनने के ही आदी हो। प्रशंसा करने के आदी हो और प्रशंसा सुनने के आदी हो। तुम राजसत्ता से ऐसे मोहित हो गए हो कि जिन व्यक्तियों का कोई भी मूल्य नहीं है, वे पद पर बैठते से ही एकदम महामूल्य के हो जाते हैं। और मजा यह है कि पद से उतरते ही फिर निर्मूल्य हो जाते हैं। फिर कोई नहीं पूछता उन्हें। पद पर होते हैं तो एकदम आकाश में उठ जाते हैं। और पद गया कि फिर कोई नहीं पूछता उन्हें। फूलमालाएं तो दूर, लोग जूते इत्यादि भी नहीं फेंकते। बिल्कुल ही भुला देते हैं।
तुम्हें आदत नहीं है। शायद इसीलिए मैं बार-बार मजाक में उनके नाम ले लेता हूं जो सत्ता में हैं। मैं तुम्हें याद दिलाना चाहता हूं कि सत्ता एक मखौल है, एक झूठ है, जिससे आदमीयत मुक्त हो जाए तो अच्छा। राजनेताओं से आदमी मुक्त हो जाए तो अच्छा। राजनीति का इतना प्रभाव नहीं होना चाहिए। ठीक है, उसकी उपयोगिता है। मगर उसकी उपयोगिता इतनी नहीं है कि सारे अखबार उसी से भरे रहें। और सारे देश में उसी की चर्चा चलती रहे। जिंदगी में और भी काम की बातें हैं। जिंदगी में और भी बहुमूल्य कुछ है। राजनीति यानी महत्वाकांक्षा, पदलोलुपता।
लेकिन तुम्हारे मन पदलोलुप हैं। इसलिए जो पद पर पहुंच जाते हैं, उनके प्रति तुम्हारे मन में बड़ी प्रशंसा होती है। ध्यान रखना, क्यों होती है? तुम भी पदलोलुप हो। तुम भी चाहते थे कि पहुंच जाते, लेकिन नहीं पहुंच पाए, दूसरा पहुंच गया, तुम सम्मान में सिर झुकाते हो। तुम कहते हो, हम तो हार गए, लेकिन आप पहुंच गए। कोशिश हम अभी जारी रखेंगे, कि किसी दिन हम भी पहुंच जाएं। तुम ख्याल रखना, तुम उसी का सम्मान करते हो जो तुम होना चाहते हो। तुम्हारे सम्मान में कसौटी है।
वे दिन अदभुत दिन रहे होंगे, जब लोगों ने बुद्ध का सम्मान किया और राजाओं की फिकर न की।

बुद्ध एक गांव में आए। उस गांव के वजीर ने अपने राजा से कहा कि बुद्ध
का आगमन हो रहा है--वजीर बूढ़ा था, सत्तर साल की उम्र का था; राजा अभी जवान था, अपनी अकड़ में था, अभी-अभी उसने कुछ जीत भी की थी और राज्य को बढ़ा लिया था--वजीर ने कहा कि बुद्ध आ रहे हैं, आप स्वागत को चलें। उस राजा ने कहा, मैं क्यों जाऊं स्वागत को? आखिर बुद्ध एक भिखारी ही हैं न! एक संन्यासी ही हैं न! आना होगा मिलने तो मुझसे मिलने आ जाएंगे, मैं क्यों जाऊं मिलने को? उस वजीर ने यह सुना, इस्तीफा लिखने लगा। राजा ने पूछा, क्या लिख रहे हो? उसने कहा, यह मेरा इस्तीफा। अब तुम्हारे पास बैठना उचित नहीं। अब मैं इस महल में नहीं रुक सकता। क्यों? राजा ने पूछा। उस वजीर ने कहा, जिस राजा को यह ख्याल आ जाए कि वह बुद्धों को भिखारी कह सके, उसकी छाया में भी बैठना पाप है, गुनाह है। क्षमा करें मुझे। मुझे मुक्ति चाहिए।
राजा को बोध आया, बात तो ठीक थी। उसने पूछा, लेकिन तुम मुझे समझाओ तो।
उस वजीर ने कहा, समझाना क्या है? बुद्ध भी राजा थे, तुमसे बड़ी उनकी हैसियत थी, तुमसे बड़ा उनका राज्य था, और चाहते बढ़ाना तो बहुत बढ़ा सकते थे।
उस सबको छोड़ दिया, लात मार दी। तुम अभी पदलोलुप हो, तुम अभी धन के पीछे पागल हो। यह आदमी उस पागलपन के बाहर हो गया। यह तुमसे बहुत आगे है। इसका सम्मान तुम्हें करना ही चाहिए।
ऐसे दिन थे! राजा फकीरों का सम्मान करते थे।
मोहम्मद ने तो कुरान में कहा हैः कोई फकीर कभी किसी राजा के घर न जाए।
जब भी आना हो, राजा फकीर के घर आए।
तब ऋषियों का एक सम्मान था। क्योंकि लोग ऋषि ही होना चाहते थे। ध्यान रखना, तुम जो होना चाहते हो, उसी का सम्मान तुम्हारे मन में होता है। तब संन्यासियों का सम्मान था। अब नेताओं का और अभिनेताओं का सम्मान है। या तो नेता आए तो भीड़ इकट्ठी होती है, या अभिनेता आए तो भीड़ इकट्ठी होती है। बुद्ध आए तो तुम और अगर उस रास्ते जाते होते हो तो दूसरे रास्ते निकल जाते हो। कौन झंझट में पड़े? वहां क्या जाना? अभी तो जिंदगी बहुत पड़ी है। अभी प्रार्थना नहीं करनी है, अभी ध्यान नहीं करना है। अभी ये और ऊंची बातें हमें सुननी नहीं हैं। अभी तो नीची बातों का पूरा भोग कर लेना है। अभी तुम बुद्ध के पास नहीं जाते। अभी तुम नेता, राजनेता के पास जाते हो।
यह मनुष्य की बड़ी विकृत स्थिति हुई। क्यों जाते हो तुम अभिनेता के पास? तुम फर्क देख लेना। अभिनेता के पास तुम्हें युवक और युवतियों की भीड़ मिलेगी। क्यों? क्योंकि वे सब अभिनेता होना चाहते हैं। और राजनेताओं के पास तुम्हें उन लोगों की भीड़ मिलेगी जो राजनेता होना चाहते हैं। छोटे- मोटे सही! सरपंच हो जाएं, कि मेयर बन जाएं, कि मिनिस्टर हो जाएं, कि कुछ भी हो जाएं। चार आदमियों की गर्दन पर हाथ आ जाए अपना। कब्जे में आ जाएं। किसी ने आज मुझे अखबार की एक कटिंग भेज दी है, कि गणेशपुरी के मुक्तानंद मोरारजी देसाई का दर्शन करने पहुंचे।
अब मुक्तानंद को मोरारजी देसाई का दर्शन करने जाने की क्या जरूरत है?
और फिर जो बातचीत हुई, वह और भी बड़ी महत्वपूर्ण है।
मुक्तानंद ने कहा कि यह देश साधुओं का देश। साधुओं के कारण ही यहां की
सब उन्नति होती रही है। और हम बड़े सौभाग्यशाली हैं कि एक साधु ही आपके रूप में हमारा प्रधानमंत्री है।
इस तरह के खुशामदानंद इस देश को विकृत करते रहे हैं।
लेकिन तुम भी इस तरह की बातें सुनने के आदी हो गए हो, इसलिए जब मैं कभी किसी राजनेता की मजाक में कुछ कह देता हूं, तुम्हें भी बड़ी हैरानी होती है! तुम सोचते हो आलोचना कर रहा हूं। आलोचना नहीं कर रहा हूं, सिर्फ इतना ही कह रहा हूं कि ये बातें मजाक से ज्यादा मूल्य नहीं रखतीं। उपेक्षा चाहिए। जीवन किसी और बड़े सत्य की खोज के लिए है।
मगर यह चलता है। तुम्हारे साधु-संन्यासी सब दिल्ली की तरफ जाते हैं, राजनेताओं से मिलने पहुंचते हैं। राजनेता उनसे मिलने नहीं आते। राजनेताओं का दर्शन करने जाते हैं। ये किस तरह के साधु-संन्यासी हैं? क्या प्रयोजन तुम्हें? लेकिन साधु-संन्यासी नहीं हैं, साधु-संन्यासी के रूप में छिपे हुए राजनीतिज्ञ हैं। इसलिए तो राजनीतिज्ञ को भी साधु कह

पाते हैं। बात बिल्कुल ठीक कही मुक्तानंद ने। मुक्तानंद में कहीं राजनीति होगी। उसी राजनीति के कारण गए होंगे। नहीं तो जाने की कोई जरूरत न थी। मुक्तानंद ऊपर से साधु हैं, भीतर कहीं राजनीति पड़ी है। कहीं कुछ लाभ की दृष्टि होगी, खुशामद से कुछ पा लेने का इरादा होगा। और राजनेता को साधु कहना! तो फिर असाधु कौन होगा? फिर तो बड़ी मुश्किल हो जाएगी। फिर असाधु कोई हो ही नहीं सकता। राजनेता तो आखिरी दर्जे का असाधु है।
एक सज्जन मेरे पास आए। उन्होंने कहा कि मैं शराब पीता हूं, मांसाहार
भी करता हूं, और कभी दीवाली इत्यादि को जुआ भी खेल लेता हूं। और आप कहते हैं कि आप सबमें परमात्मा देखते हैं। क्या आप मुझमें भी परमात्मा देखते हैं? मैंने कहा, मैं मोरारजी देसाई तक में परमात्मा देखता हूं! तुम्हारी तो हैसियत ही क्या है? तुम तो हो किस गिनती में!
राजनेता तो आखिरी है। उसके कारण तो मनुष्य-जाति बड़े कष्टों में पड़ी है। सारे युद्ध, सारी हिंसाएं, सारी जालसाजियां, सारी चालबाजियां। पद का आकांक्षी और साधु? लेकिन खुशामद करनी है।
मैं किसी की स्तुति नहीं कर रहा हूं। आलोचना भी नहीं कर रहा हूं। मैं
तो जैसा है वैसा कह रहा हूं। मैं सिर्फ इसलिए यह कभी-कभी मजाक कर देता हूं ताकि तुम्हें ख्याल रहे कि राजनीति का मूल्य इससे ज्यादा नहीं है। लेकिन आलोचना करने योग्य मैं कुछ नहीं पाता हूं उनमें। साधारण मनोदशा है। वक्तव्य साधारण हैं। होंगे ही साधारण। पदलोलुप असाधारण कभी होता ही नहीं। पदलोलुपता साधारण रोग है। इस दुनिया में हर आदमी पद पर होना चाहता है। यह बड़ा साधारण रोग है। इसमें कुछ विशेषता नहीं है। विशेषता तो तब है जब कोई आदमी पद पर नहीं होना चाहता। तब कुछ असाधारणता घटती है।
और राजनीति, अध्यात्म बिल्कुल विपरीत हैं। राजनीति का अर्थ हैः दूसरों पर कैसे मेरा कब्जा हो जाए? मैं दूसरों का मालिक कैसे हो जाऊं? अध्यात्म का अर्थ हैः मैं अपना मालिक कैसे हो जाऊं? ये बड़ी विपरीत बातें हैं। इसलिए तो हम संन्यासी को स्वामी कहते हैं। स्वामी का मतलब, अपना मालिक। स्वयं का मालिक। ये दो अलग यात्राएं हैं। राजनीति बहिर्यात्रा है--दूसरों का मालिक कैसे हो जाऊं? कितने बड़े समूह का मालिक हो जाऊं? अध्यात्म का अर्थ होता हैः अपने जीवन में मेरी मालकियत कैसे हो जाए? मैं मन का गुलाम न रह जाऊं। मैं मन का मालिक हो जाऊं। मेरे भीतर अंतर्साम्राज्य पैदा हो।
ये बड़ी भिन्न बातें हो गईं।
राजनीति ले जाएगी भीड़ में, अध्यात्म ले जाएगा एकांत में। राजनीति उलझाएगी दूसरों से, अध्यात्म सुलझाएगा दूसरों से। अध्यात्म है आत्म-साक्षात्कार। राजनीति में तो सब उपद्रव करने ही पड़ेंगे। राजनीतिज्ञ तभी तक साधु मालूम पड़ते हैं जब तक सत्ता में होते हैं। सत्ता गई कि उनकी सब साधुता खुल जाती है। सत्ता चाहिए तो साधुता बनी रहती है, क्योंकि सब अखबार उनके हाथ में, ताकत उनके हाथ में, पुलिस उनके हाथ में, व्यवस्था उनके हाथ में, कौन पता लगाए कि वे क्या कर रहे हैं?
अब जुल्फिकार भुट्टो जब तक सत्ता में, तब तक साधु। अब पाया गया है कि
वे हत्यारे हैं। मगर मजा बड़ा जटिल है। अब कोई नहीं कह सकता कि वे सच में हत्यारे हैं या नहीं। क्योंकि अब जो सत्ता में हैं, वे चाहते हैं कि उनको हत्यारा सिद्ध करें। आज जो सत्ता में हैं पाकिस्तान में, कल अगर वे सत्ता से नीचे उतर गए, तो हो सकता है कोई अदालत फैसला दे कि उन्होंने भुट्टो की हत्या करवा दी।
अभी इंदिरा मुजरिम मालूम पड़ती है, क्योंकि सत्ता नहीं है। सत्ता में
थी तो मुजरिम मालूम नहीं पड़ती थी। लेकिन कोई नहीं कह सकता कि जो उसे मुजरिम सिद्ध करने की कोशिश कर रहे हैं, वे सत्ता में से उतर जाने के बाद सही साबित होंगे। वे खुद भी मुजरिम पाए जा सकते हैं। यहां सब चचेरे भाई-बहन हैं। मोरारजी भाई, कि इंदिरा बहन! सब चचेरे भाई-बहन हैं। कुछ भेद नहीं है। राजनीतिज्ञ भिन्न हो ही नहीं सकते। इसलिए तो तुम देखते हो, इतनी पार्टी अदल-बदल होती रहती है। क्योंकि राजनीतिज्ञ भिन्न होते ही नहीं। इस पार्टी या उस पार्टी में फर्क कुछ नहीं पड़ता; राजनीतिज्ञ को एक ही

आकांक्षा है--पद पर कैसे हो? पार्टी कौन हो, इससे क्या लेना? झंडा कौन हो, इससे क्या लेना? डंडा अपना होना चाहिए। झंडा कोई भी लगा लेंगे। बस डंडा अपने हाथ में होना चाहिए।
तो राजनीतिज्ञ तो अवसरवादी होगा ही। उसको तो एक ही जोड़-तोड़ बिठानी है। और जोड़-तोड़ में वह अकेला नहीं है, बड़ी प्रतिस्पर्धा है। इसलिए बेईमानी भी होगी, धोखाधड़ी भी होगी, लोगों के पैर भी काटे जाएंगे, लोगों को गिराया भी जाएगा, लोगों को हटाया भी जाएगा, यह सब होगा।
और इस सबके लिए तुम जिम्मेवार हो, ध्यान रखना! क्योंकि तुम इस तरह के लोगों को मूल्य देते हो। इस मूल्य के कारण ये लोग पागल की तरह उस तरफ दौड़ते हैं। अब तुम यह मत सोचना कि अगर कोई आदमी प्रधानमंत्री होकर दूसरों को परेशान कर डालता है, रिश्वत ले लेता है, लोगों की टांगें तोड़ देता है, लोगों की गर्दनें गिरवा देता है, लोगों को जेलों में डाल देता है, तो वह जिम्मेवार है। तुम भी जिम्मेवार हो। तुम्हीं असली जिम्मेवार हो। तुम इतना मूल्य देते हो पद को कि एक आदमी को लगता है कि इस पद को पाने के लिए कुछ भी करना योग्य है।
पद को मूल्य देना कम करो! ताकि लोगों को ऐसा साफ होने लगे कि इस सड़े पद
के लिए, जिस पर लोग सिर्फ हंसते हैं, मजाक करते हैं, इसके लिए इतना पाप करना उचित भी है?
मेरी बात समझ में आ रही है तुम्हें?
राजनीति से मूल्य को खींच लो। राजनीति को मूल्यहीन कर दो। मूल्यहीन
हो जाए राजनीति, तो इतना उपद्रव नहीं होगा। कौन फिकर करेगा फिर? अगर रोज अखबार में प्रधानमंत्री की तस्वीर न छपती हो और रोज व्याख्यान न छपता हो और सारा अखबार उन्हीं से न भरा रहता हो, तो आदमी सोचेगा कि सार क्या है? इतने से पद के लिए इतनी मेहनत, इतनी परेशानी, और लोग कोई मूल्य ही नहीं देते! रास्ते से निकल जाते हैं और लोग नमस्कार भी नहीं करते। तो सार क्या है?
राजनीति को अति मूल्य दोगे तो फिर सभी चीज सार्थक हो जाती है--एकाध की हत्या भी करनी पड़े तो चलता है, करने योग्य मालूम होता है। और फिर पद पर पहुंच गए तो सब छिप जाएगा।
इसलिए जो पद पर पहुंच जाता है, फिर पद नहीं छोड़ना चाहता। क्योंकि छोड़ते से ही फिर सारा पाखंड खुलेगा, सारी धोखाधड़ी खुलेगी। पद जब तक है तब तक सुरक्षा है। एक दफा जो पद पर पहुंच गया वह फिर ऐसा जोर से पकड़ता है कि वह चाहता है पद पर रहते हुए ही मर जाऊं, तो ही बचाव है। नहीं तो पद पर सब उपद्रव वही के वही होते हैं। वही का वही खेल, जरा भी फर्क नहीं पड़ता। इंदिरा चली जाती है, उनके साथ ही संजय गांधी चले जाते हैं। मोरारजी आ गए, उनके पीछे ही कांति देसाई आ गए। कुछ फर्क नहीं पड़ता। सब वही खेल है। सिक्के बदल जाते हैं, रंग बदल जाता है, मगर भीतर की असलियत वही की वही। वही जाल चलता रहता है।
मैं आलोचना करने योग्य नहीं मानता राजनीतिज्ञों को, सिर्फ मजाक करने योग्य मानता हूं। तो जब कभी मुझे तुम्हें हंसाना होता है, तो मैं उनका नाम ले देता हूं। जब मैं देखता हूं तुम सोने लगे, या नींद आने लगी, या देखता हूं कोई जम्हाई ले रहा है, तब मैं सोचता हूं कि अब सिवाय मोरारजी देसाई के इन सज्जन की जम्हाई नहीं रुकने वाली! तो उनके खुले मुंह में मोरारजी देसाई को डाल देता हूं। उससे वे चौंक कर बैठ जाते हैं। सोचने लगते हैं--मोरारजी देसाई की बात आई, कुछ मतलब की बात आई होगी। जैसे ही वे जाग जाते हैं, मैं मोरारजी को भूल जाता हूं, फिर अपनी बात पर आ जाता हूं।
इससे ज्यादा मूल्य नहीं है।

पांचवां प्रश्नः पहली ही बार आपके सान्निध्य में, आजोल शिविर में ध्यान करते ही चेतना में ऐसी चिनगारी प्रकट हुई कि मेरे पूर्व-व्यक्तित्व का विस्फोट हो गया। मेरी चेतना में कई महीनों तक भूकंप आते रहे और पागल सी स्थिति में मैं कांपता रहा। उन दिनों मैं दो रोज तक अपनी मातृभाषा गुजराती भी न बोल सका, और बोलने में हिंदी या अंग्रेजी आती रही। पेड़ को

स्पर्श करते ही विद्युत का झटका लगता। आंख बंद होने पर भी परवश होकर शरीर आपके चरणों में आ गिरता। सूरज से भी शक्ति-संचार का अनुभव होता। बिना सोचे हाथ भारी हो जाते और प्रभु-चिकित्सा अपने आप होने लगती।
बताने की कृपा करें कि यह सब क्या हो रहा था? अब मैं ज्यादा शांत और आनंदित हूं। और आपके साथ होने पर अपने को कृतकृत्य अनुभव करता हूं।

पूछा है स्वामी कृष्ण सरस्वती ने।
मुझे भलीभांति याद है आजोल में उन्हें जो हुआ था। कोई महत्वपूर्ण घटना घटी थी। उनका अहंकार विदा हो गया था कुछ दिनों के लिए। विराट ने उन्हें पूरी तरह आपूरित कर लिया था। समझ के बाहर स्वभावतः ऐसी घटना होती है। पूछना उचित है कि क्या हुआ था?
झरोखा खुला था, एक द्वार खुला था। और उस द्वार के खुलने के बाद फिर कृष्ण सरस्वती दुबारा वही व्यक्ति नहीं हो सके जो पहले थे। वह व्यक्तित्व गया। एक नये व्यक्ति का आविर्भाव हुआ। मगर अभी यात्रा पूरी नहीं हो गई है, ऐसा और बहुत बार होगा। कम से कम ऐसा सात बार होगा।
मनुष्य के भीतर सात केंद्र हैं। और जब भी एक केंद्र से ऊर्जा दूसरे केंद्र पर जाती है तो ऐसा होता है। फिर दूसरे से तीसरे पर जाती है तो फिर ऐसा होता है। हर केंद्र पर यह विस्फोट घटित होगा। घबड़ाना मत। और हर विस्फोट के बाद शांति बहुत गहरी हो जाएगी। फिर और विस्फोट होगा और और भी शांति गहरी हो जाएगी। और अंतिम विस्फोट के बाद शांति ही रह जाती है; कोई व्यक्ति भीतर शांत है, ऐसा नहीं बचता, सिर्फ शांति बचती है। मुक्त कोई नहीं बचता, मुक्ति बचती है। कोई व्यक्ति ज्ञान को उपलब्ध हो गया है, ऐसा नहीं, बस ज्ञान ही शेष रह जाता है। रोशनी रह जाती है। शुद्ध प्रकाश रह जाता है।
शुभ घटना घटी थी। और-और घटेगी। लेकिन घटाने की अपनी तरफ से चेष्टा मत करना, अन्यथा नकली होगी। प्रतीक्षा करना धैर्यपूर्वक। ध्यान जारी रखो और धैर्यपूर्वक प्रतीक्षा करो। और जब भी ऐसा घटे तो रुकावट मत डालना, उसे घट जाने देना। दो-चार दिन में फिर सब शांत हो जाएगा। और हर घटना तुम्हारे जीवन को नई रोशनी, नया अर्थ, नई संजीवनी दे जाएगी।

और दूसरा प्रश्न भी कृष्ण सरस्वती का है।

बंबई में आपके साथ रहने पर आपसे इतना लगाव हो गया था कि आप कहीं भी दूर भेजते थे तो बस इतना दुख होता था कि बहाना बना कर आपके सान्निध्य में आ जाने की इच्छा होती थी। जब नैरोबी (अफ्रीका) भेजा तो निरुपाय होकर चेतना ने आपसे दूर रहना स्वीकार कर लिया। फिर जब अमरीका भेज दिया, तब वहां रहने पर आपसे लगाव कम हो गया, ऐसा अनुभव हुआ, और मैं इतने दिनों तक आपसे दूर रह सका। मुझे भय लग रहा है कि क्या आपके प्रति मेरा प्रेम भी साथ में कम नहीं होता जा रहा है? प्रभु, कृपया बताइए क्या मैं सही दिशा में जा रहा हूं? मेरा आपसे और आश्रम से दूर रहने में राज क्या है? क्योंकि मैं ध्यान तो कर लेता हूं, किंतु आपसे दूर रहने से ऐसा भय है कि मैं सत्संग से वंचित हो जाता हूं।

मैं कृष्ण सरस्वती को दूर-दूर भेजता रहा हूं और वे भाग-भाग कर वापस भी आते रहे हैं। नैरोबी भेजा था तो कुछ ज्यादा देर रुके। फिर अमरीका भेजा तो कोई दो साल रुके।
जान कर ही ऐसा कर रहा हूं। यह तुम्हारे हित में है, इसलिए ऐसा कर रहा हूं। मेरे पास रहोगे तो वह जो विस्फोट घटा है, वह इतनी शीघ्रता से घटेगा, इतनी बार-बार घटेगा कि विक्षिप्त हो जाने का डर है। उसके लिए समय चाहिए। अंतराल से घटना चाहिए।
भटक नहीं रहे हो, किसी गलत दिशा में नहीं जा रहे हो। मैं भेज रहा हूं, इसलिए जा रहे हो। और जब मैं पाऊंगा कि अब आवश्यकता नहीं है भेजने की, तब यहां रोक लूंगा। अभी वैसी घड़ी नहीं आई है। और तुम सौभाग्यशाली हो, क्योंकि

ऐसे बहुत कम लोग हैं जिनको इतनी तीव्रता से घटना घट सकती है कि मुझे ख्याल रहे कि कहीं वे पागल न हो जाएं! तुम जितना समा सकते हो, जितना पचा सकते हो, उतना ही घटना उचित है। तुम अगर जरूरत से ज्यादा खुल जाओ, तो टूट जाओगे, बिखर जाओगे। पागलपन भी हो सकता है, मृत्यु भी हो सकती है।
इसलिए जान कर तुम्हें थोड़े दिन यहां रहने देता हूं; फिर वापस भेज देता हूं। अब फिर तुम्हें अमरीका वापस भेजता हूं। फिर अमरीका चले जाओ। मेरे काम में लगे रहो। मुझे ख्याल है। ध्यान भर न छूटे, सत्संग की जब जरूरत होगी, तुम बुला लिए जाओगे। जितनी जरूरत होगी, उतना तुम्हें मिल जाएगा। जिसकी जितनी जरूरत है, उतना मैं दूंगा ही। जरूरत से ज्यादा कभी कोई ले ले तो नुकसान हो सकता है।
और कभी-कभी आध्यात्मिक अनुभव का लोभ ऐसा पकड़ता है कि जरूरत से ज्यादा
ले लेने का मन हो जाता है। मुझे ख्याल रखना पड़ेगा कि तुम्हें जरूरत से ज्यादा न मिल जाए। नहीं तो अपच होगा।
और इसका भय मत करो; लगाव कम हो रहा है, यह अच्छा है। लगाव कम हो, आसक्ति
कम हो, तो ही प्रेम शुद्ध होता है। प्रेम के मार्ग में लगाव ही बाधा है, आसक्ति ही बाधा है। आसक्ति और प्रेम विपरीत हैं। इसलिए आसक्ति के कम होने को तुम प्रेम का कम होना मत समझना।
आमतौर से ऐसा ही हम समझते हैं कि आसक्ति प्रेम है। तो आसक्ति कम हो रही है तो कहीं प्रेम तो कम नहीं हो रहा है? चिंता समझ में आने जैसी है। पर भय मत करना। प्रेम बात ही और है। आसक्ति के परिपूर्ण चले जाने पर उदय होता है प्रेम का। आसक्ति अशुद्धि है प्रेम में। जब आसक्ति बिल्कुल नहीं रह जाती, तब प्रेम परिपूर्ण शुद्ध होता है, तब प्रेम प्रार्थना हो जाता है। अच्छा है, आसक्ति कम होती चली जाए। आसक्ति कम होनी ही चाहिए।

आखिरी प्रश्नः आपको सुन-सुन कर भक्ति का यह रोग लगता है मुझे भी लग गया है। अब धैर्य नहीं रखा जाता है। आकांक्षा होती है बस सब अभी हो जाए।

रोग तो अच्छा हुआ लग गया। लगने दो। सौभाग्य है यह। इस रोग को महारोग बनने दो। यह रोग इतना बड़ा हो कि इसमें ही तुम लीन हो जाओ। इस रोग के ही द्वार से परमात्मा तुममें प्रवेश करेगा।
तुम्हारा मन परमात्मा में अटक रहा है, उलझ रहा है, यह अच्छी बात है। पीड़ा भी बहुत होगी। संताप भी बहुत होगा। क्योंकि जिनको परमात्मा का कुछ पता नहीं है, उन्हें गहरी पीड़ा का भी पता नहीं है। उनके सुख भी उथले हैं, उनके दुख भी उथले हैं। अब जिसको धन मिलने से सुख मिलता हो, उसका सुख भी उथला है; उसको धन न मिलने से दुख मिलेगा, उसका दुख भी उथला है। इस संसार के सुख-दुख, दोनों ही उथले हैं। परमात्मा के साथ सुख भी गहरा होता है, दुख भी गहरा होता है। विरह भी गहरा होता है, तभी तो मिलन गहरा हो पाता है। अच्छा हुआ। तुम अब अटके हो, इससे पीड़ा होगी।

झुरमुट में अटका चांद, कहीं अटका मन मेरा भी।
दिन डूबा, दिन के साथ
जगत का कोलाहल डूबा,
कुछ मतलब रखता है
अब तो मेरा भी मंसूबा,
तारे मेरे मन की गलियों
में दीप जलाते हैं।
मेरे भावों में रंग भरता गोधूलि अंधेरा भी।
झुरमुट में अटका चांद, कहीं अटका मन मेरा भी।

जैसे झुरमुट में चांद अटक जाता है, ऐसे ही मन आकाश में अटकने लगता है।
तब अड़चन होती है। तब बेचैनी होती है। क्योंकि कैसे पहुंचें उस दूर परमात्मा तक जिसमें मन उलझ गया है? कैसे पहुंचें उस चांद तक जो झुरमुट में अटका मालूम होता है? मालूम तो होता है पास है, पर बहुत दूर है। और दूरी

खलती है। तब स्वाभाविक आकांक्षा उठनी शुरू होती है--जल्दी हो जाए! अभी हो जाए! अब देर न करो! अब देर न लगाओ!
मगर जब जो होना है तभी होता है। और जब जो होना चाहिए तभी होना चाहिए। कच्चा फल गिर जाए तो सड़ जाएगा। पकना चाहिए। कच्ची कली तोड़ लो, फूल न बन पाएगी। फूल बनना चाहिए। हर चीज की प्रौढ़ता है। हर चीज के पकने का एक क्षण है। और हर चीज का एक मौसम है। इस प्रतीक्षा को आनंदपूर्ण बनाओ। आकांक्षा छोड़ो, प्रतीक्षा करो।
प्रार्थना का रोग लग गया, अच्छा हुआ। अब एक रोग और लगाओ, प्रतीक्षा का। क्योंकि प्रार्थना अगर अकेली हो और प्रतीक्षा न हो, धैर्य न हो, तो फिर बड़ी बेचैनी हो जाती है। उस बेचैनी को सम्हालना असंभव हो जाता है। प्रार्थना के साथ-साथ प्रतीक्षा की कला भी सीखो। वह रोग भी लग जाएगा, यहां आते रहो।

मधुर प्रतीक्षा ही जब इतनी, प्रिय, तुम आते तब क्या होता!

मौन रात इस भांति कि जैसे
कोई गत वीणा पर बज कर
अभी-अभी सोई-खोई-सी
सपनों में तारों पर सिर धर
और दिशाओं से प्रतिध्वनियां
जाग्रत सुधियों-सी आती हैं,
कान तुम्हारी तान कहीं से यदि सुन पाते, तब क्या होता! मधुर प्रतीक्षा ही जब इतनी, प्रिय, तुम आते तब क्या होता!

बैठ कल्पना करता हूं पग-
चाप तुम्हारी मग से आती,
रग-रग से चेतनता खुल कर
आंसू के कण-सी झर जाती
नमक डली-सा गल अपनापन
सागर में घुल-मिल-सा जाता,
अपनी बांहों में भर कर, प्रिय, कंठ लगाते तब क्या होता!
मधुर प्रतीक्षा ही जब इतनी, प्रिय, तुम आते तब क्या होता!

प्रतीक्षा को मधुर बनाओ। प्रतीक्षा का माधुर्य समझो। इंतजार का मजा है। परमात्मा की याद है। परमात्मा की प्रतीक्षा है। पुकारो, रोओ, राह देखो। राह भी मधुर है। विरह भी प्यारा है। इस भाव को संजोओ। इस भाव को जगाओ। इस भाव में रचो-पचो। और जितनी गहरी प्रतीक्षा होगी, उतनी जल्दी घटना घट जाती है। और जितना अधैर्य होगा, उतनी देर लग जाती है।
इस सूत्र को स्मरण रखना। जितना अधैर्य, उतनी देर। जितना धैर्य, उतनी जल्दी। अगर अनंत प्रतीक्षा हो कि अनंतकाल में भी आओगे तो मैं राह देखूंगा, तो इसी क्षण भी आना हो सकता है। मगर अनंत धैर्य हृदय में जब खिलता है तो फिर परमात्मा को और देर करने का कोई कारण नहीं रह जाता। अनंत धैर्य खबर है कि पक गए तुम।
कहते होः "आपको सुन-सुन कर भक्ति का यह रोग लग गया, अब धैर्य नहीं रखा जाता। आकांक्षा होती है बस सब अभी हो जाए।"
मैं समझता हूं, ऐसा ही होता है। लेकिन समझ को और निखारो। ऐसा होना स्वाभाविक तो है, लेकिन यही स्वाभाविक बाधा बन जाएगा।
फिर क्या होता है आदमी जब बहुत अधीर हो जाता है?
तो दो ही बातें हैं। या तो एक सीमा आ जाती है, अधैर्य को सहना मुश्किल
हो जाता है, वह सोचता हैः छोड़ो, यह सब होता-जाता नहीं; न कोई परमात्मा है, न कोई प्रार्थना है, मैं भी कहां की झंझट में पड़ गया! या तो यह होता है। और या फिर अधैर्य इतना हो जाता है कि आदमी टूट जाता है, बिखर जाता है, विक्षिप्त हो जाता है। दोनों हालत में बात चूक जाती है।

शक्ति को प्रार्थना में लगाओ, और कब आना, यह उस पर छोड़ दो। इसको ही मैंने कल उत्क्रांति कहा। तुम प्रार्थना करो--उतना प्रयत्न--और फिर परमात्मा पर छोड़ दो, जब जो होना हो! फलाकांक्षा न करो। उतना प्रसाद। प्रार्थना, प्रयास; और फिर प्रतीक्षा, फिर उसका प्रसाद। जब देगा। जब योग्य समझेगा तब देगा। शिकायत मत करो।
ऐसा कभी नहीं हुआ है कि जब भी कोई व्यक्ति योग्य हुआ हो और क्षण भर की
भी देरी हुई हो। तुमने कहावत सुनी हैः उसके घर देर है, अंधेर नहीं। मैं तुमसे कहता हूंः न अंधेर है, न देर है। जिसने यह कहावत रची होगी, वह अधैर्य में पड़ गया होगा। तो उसने कहा होगा--बड़ी देर हो रही है। अभी आस्था नहीं खोई है, तो कहता है--अंधेर नहीं है; अभी आशा है, कहता है--कभी न कभी मिलेगा, लेकिन बड़ी देर हो रही है! मगर देर में सिर्फ तुम्हारा अधैर्य प्रकट हो रहा है। कभी देर नहीं होती। सब समय पर घट जाता है। इस भाव को गहरा होने दो।
एक रोग लग गया, अब दूसरा और लगा लो। वे दोनों रोग एक-दूसरे को संतुलित
कर देंगे। और तुम्हारी शांति खंडित न होगी। और तुम्हारी प्रार्थना निरंतर बढ़ती रहेगी। और तुम्हारी प्रार्थना विक्षिप्त न होगी। तुम्हारी प्रार्थना एक दिन विमुक्ति बन जाए, उसके लिए यह जरूरी है कि तुम धैर्य का पाठ भी सीखो।
आज इतना ही।

अथातो भक्ति जिज्ञासा, भाग 2 पैंतीसवां प्रवचन

सदगुरु शास्त्रों का पुनर्जन्म है

सूत्र

तत्छक्तिर्मांया जड़सामान्यात्।। 86।।
व्यापकत्वाद्वयाप्यानाम्।। 87।।
न प्राणिबुद्धिभ्योऽसम्भवात्।। 88।।
निर्मायोच्चावचं श्रुतीश्च निर्मिमीते पितृवत्।। 89।।
मिश्रोपदेशान्नेति चेन्न स्वल्पत्वात्।। 90

स्मरण करें पूर्वसूत्र का।
"यह संपूर्ण विश्व भजनीय है; भगवान से अभिन्न है; क्योंकि सब कुछ उसका
ही स्वरूप है।"
भजनीयेन अद्वितीयम इदं कृत्स्नस्य तत स्वरूपत्वात्।
यहां जो भी है, वही है। यहां प्रत्येक वस्तु आराध्य है। यहां और मूर्तियां बनाने की जरूरत नहीं है, सभी मूर्तियां उसकी हैं। यहां और मंदिर खड़े करना व्यर्थ है, सारा अस्तित्व उसका मंदिर है।
मनुष्य अधार्मिक हुआ इसी भ्रांति के कारण कि उसने मंदिर खड़े किए, मस्जिदें बनाईं, गिरजे बनाए। गिरजों-मंदिर-मस्जिदों ने एक भ्रम पैदा किया कि भगवान मंदिर में है।
भगवान सब जगह है, मंदिर के बाहर भी है, मंदिर में भी है। मंदिर भगवान में है। और सारा अस्तित्व भगवान में है।
पूजा का ख्याल उठता है जब तुम मंदिर जाते हो। और यह शेष सब कौन है? इस शेष सबको तुम झुकते नहीं। इस शेष सबके आनंद से तुम भरते नहीं। फिर मंदिर कितने होंगे? यह सारा जीवन वंचित हो गया तुम्हारे मंदिरों के कारण। परमात्मा सिकुड़ गया, छोटा हो गया। तुमने उसकी मूर्तियां बना लीं, तुमने पवित्र तीर्थस्थल बना लिए। यह सारा स्थान ही तीर्थ है। यह सारा आकाश तीर्थ है। सब नदियां गंगाएं हैं। और सारी पृथ्वी पवित्र है। सब रूपों में वही है। इस पूर्व सूत्र का स्मरण करें। यह सूत्र अपूर्व है--
भजनीयेन अद्वितीयम इदं...
अब दूसरे और किसका भजन करने जाते हो? भजन करने और कहीं जाने की जरूरत कहां है? तुम जहां हो, आंख खोलो। जिस पर आंख पड़ जाए, वही भजनीय है। तुम जहां हो, सुनो। जो सुनाई पड़ जाए, वही ओंकार का नाद है। छुओ किसी को, जो छूने में आ जाए, वह वही है। जिसे तुम अछूत कहते हो, उसमें भी तुम उसी को छूते हो। अस्पृश्य में भी उसी का स्पर्श होता है। जिसको तुम जड़ कहते हो, उसमें भी वही सोया है। जिसको तुम चेतन कहते हो, उसमें वही जागा है। इस विराट की प्रतीति जितनी सघन हो जाए, उतना शुभ।
और देखो, तुम्हारे मंदिर-मस्जिद ने न केवल परमात्मा को सिकोड़ कर छोटा
कर दिया, तुम्हें भी सिकोड़ कर छोटा कर दिया। मंदिर जाने वाला हिंदू हो गया। मस्जिद जाने वाला मुसलमान हो गया। काश, हमने परमात्मा को ऐसा देखा होता जैसा शांडिल्य देखते हैं, तो कोई हिंदू न होता, कोई मुसलमान न होता। अगर तुम प्रत्येक वस्तु में परमात्मा को देखते, तो कैसे हिंदू होते? कैसे मुसलमान होते? कैसे एक-दूसरे की हत्याएं करते? धर्म के नाम पर अधर्म फैला। मंदिरों-मस्जिदों के नाम पर कितना खून बहा! परमात्मा को संकीर्ण किया, इतना ही नहीं, तुम भी संकीर्ण हो गए। होना ही था। जितना परमात्मा तुम्हारा संकीर्ण होगा, उतने ही संकीर्ण तुम हो जाओगे।
तुम्हारा परमात्मा तुम्हारे हृदय की खबर देता है। तुम्हारा परमात्मा मंदिर में बंद है। तो तुम भी किसी कारागृह में बंद हो गए। हिंदू हो उस कारागृह का नाम, जैन हो, ईसाई हो, यहूदी हो, इससे फर्क नहीं पड़ता--ये कारागृहों के अलग-अलग नाम हैं। लेकिन जिस दिन तुम्हारा परमात्मा मुक्त होकर विचरण करेगा आकाश में, सूरज की किरणों में बहेगा, चांद-तारों में

झलकेगा, लोगों की आंखों में दिखाई पड़ेगा, उस दिन तुम्हारी सारी सीमाएं टूट जाएंगी। असीम परमात्मा को जो जानेगा, पहचानेगा, वह स्वयं भी असीम हो जाएगा।
तुम्हारा परमात्मा तुम्हारे होने की कीमिया है। इसलिए परमात्मा की धारणा क्षुद्र मत कर लेना। वह धारणा साधारण धारणा नहीं है, उस पर तुम्हारा सारा भविष्य निर्भर है। उस पर तुम्हारा सारा जीवन बदलेगा, बनेगा, मिटेगा। छोटे-छोटे घरघूले बना लिए लोगों ने!
इन पक्षियों की आवाज में वही है। सुनो! वृक्षों की हरियाली में वही है। आंख साफ करो और देखो! तुम्हारी पत्नी में, तुम्हारे पति में, तुम्हारे बेटे में, तुम्हारे पिता में वही है। फिर से तलाशो। अगर नहीं मिला है, तो कहीं तलाश में भूल हो गई है। तुमने पत्नी को पत्नी मान लिया, उसी में भूल हो गई। पत्नी मान लिया, अब तो तुम सोच ही कैसे सकते हो कि उसमें परमात्मा हो सकता है। और तुम सोचोगे भी तो पत्नी राजी न होगी--कि मैं तुम्हारी पत्नी हूं, यह तुम क्या कर रहे हो?
मेरे पास एक सज्जन आते थे। थोड़े झक्की स्वभाव के थे। ऐसे एक दिन चर्चा
चल रही थी, और मैंने शांडिल्य का यह सूत्र उल्लेख किया और मैंने कहा कि यहां सभी परमात्मा हैं। पति में भी वही, पत्नी में भी वही। वे कुछ भाव में आ गए--झक्की थोड़े थे--भाव में आ गए, घर जाकर एकदम साष्टांग दंडवत, उन्होंने झुक कर पत्नी के चरण छू लिए।
पत्नी ने तो चीख मार दी कि ये पागल हो गए! घर के लोग इकट्ठे हो गए, पास-पड़ोस के लोग इकट्ठे हो गए कि तुम्हें हो क्या गया? और वे खूब हंसें। उन्हें आनंद बहुत आया। और लोगों का यह पागलपन देख कर उन्हें और भी बहुत हंसी आई। उन्होंने कहा, इसमें भूल क्या है? सारे शास्त्र यही कहते हैं कि सबमें परमात्मा है। तो मेरी पत्नी में नहीं है?
लोगों ने कहा, वे शास्त्र ठीक कहते हैं, मगर यह व्यावहारिक नहीं है।
और शास्त्रों को बीच में मत लाओ। तुम गृहस्थ आदमी हो! तुम कहां की इन ऊंची बातों में पड़ गए!
मगर वे मानें नहीं। दूसरे दिन उन्हें मेरे पास लाया गया। और लोगों ने कहा, आप समझाइए इनको। मैंने कहा, इनको समझ आ गई है। नहीं, उन्होंने कहा... उनकी पत्नी रोने लगी मेरे पैर पकड़ कर कि आप किसी तरह इनको समझाइए, मेरे पैर न पड़ें! और सबके पड़ें। मैं इनकी पत्नी हूं!
हमने एक धारणा मान ली है। किसी को तुम पत्नी बना लिए हो, किसी को पति बना लिए हो! जरा कुरेदो, जरा राख के भीतर प्रवेश करो और तुम अंगारा पाओगे उसी का जलता हुआ। उसके अतिरिक्त और कोई भी नहीं है। तुम्हारे बेटे में वह तुम्हारे घर मेहमान हुआ है। तुम्हारी बेटी में फिर तुम्हारे घर आया है। अतिथि है तुम्हारा। लेकिन तुमने मान लिया है कि मेरा बेटा है, बस वहीं भूल हो गई। अब परमात्मा दिखना मुश्किल हो जाता है।
इसलिए ज्ञानियों ने कहा हैः मेरे-तेरे को गिरा दो। क्योंकि मेरे-तेरे
के गिरते ही जो पीछे छिपा है वह प्रकट हो जाएगा। मेरे-तेरे की राख ने उसके अंगार को बहुत बुरी तरह ढंक लिया है। जरा सोचो! मेरा-तेरा हटने दो। मेरे- तेरे को छोड़ कर देखो। मेरे-तेरे के वस्त्र अलग कर दो, नग्न सत्य को देखो।
फिर कौन पत्नी है? कौन पति है? कौन बेटा है? कौन मां है? एक का ही खेल है। शांडिल्य कहते हैंः वह संपूर्ण में छाया हुआ है। भगवान सबमें है। इसलिए विश्व भजनीय है। भजन करो विश्व का।
अब विश्व का भजन क्या करना होगा? तुम जहां तल्लीन हो जाओगे, वहीं भजन
हो जाएगा। आई हवा, गिरने लगे वृक्षों से पत्ते, सरसराती हवा बह गई वृक्षों से, तुम मग्न होकर उसे सुन लेना; और तुम पाओगे--वह आया, उसके पदचाप सुनाई पड़े। उसने वृक्षों से ही पुराने पत्ते नहीं गिरा दिए, तुम्हारे पुराने पत्ते भी गिरा दिए। वह तुम्हें भी झकझोर गया, निखार गया, साफ कर गया। तुम्हारी धूल झाड़ गया। तुम्हें निर्मल कर गया। मेघ घिरें आकाश में, देखना उसे--कितने रूपों में घिरता है? कितने रूपों में तुम्हारी प्यास को तृप्त करता है? यह भजन।

इसलिए मैं कहता हूंः यह सूत्र बड़ा अदभुत है। ऐसी भजन की परिभाषा किसी
ने भी नहीं की जैसी शांडिल्य ने की है। और सब भजन छोटे पड़ जाते हैं। कोई बैठा है, राम-राम, राम-राम जप रहा है। और राम चारों तरफ खड़े हैं। और तुम राम-राम, राम-राम जप रहे हो! अगर राम भी आ जाएं, खुद राम सामने आकर खड़े हो जाएं, तो तुम उनसे कहोगेः बाधा न दो। अभी मैं राम-राम जप रहा हूं। अभी आगे जाओ!
राम आए ही हुए हैं। लेकिन हमने एक आकार में सीमा बना ली है। हमने पकड़ लिया है कि धनुर्धारी राम! तो जब तुम्हारे सामने एक छोटा बच्चा किलकारी करता आ जाता है, तो तुम नहीं पहचान पाते। किलकारी करते राम तुम्हारे ख्याल में नहीं हैं। जब एक पक्षी तुम्हारे सामने से उड़ जाता है तो तुम्हें ख्याल नहीं आता, क्योंकि पक्षी धनुर्धारी नहीं होता। न मोरमुकुट बांधता है। लेकिन पक्षियों को बांसुरी की जरूरत क्या है? उनके कंठ उनकी बांसुरी हैं। और उनके कंठ परमात्मा को समर्पित हैं। और वृक्षों को मोरमुकुट बांधने की जरूरत क्या है? उनके फूल उनके मोरमुकुट हैं। कीमती से कीमती ताज फीके हैं एक छोटे से फूल के सामने। तुम जरा फिर से देखना शुरू करो। तुमने अब तक जो सीख लिया है, उसे अनसीखा करो। और तुम फिर से तलाश शुरू करो। अ ब स से शुरू करनी पड़ेगी खोज।
भगवान से अभिन्न है यह विश्व। सब कुछ उसका स्वरूप है। तत स्वरूपत्वात्। इसी सूत्र को और आगे आज के सूत्रों में शांडिल्य ने बढ़ाया है।
पहला सूत्र--
तत्छक्तिः माया जड़ सामान्यात्।
"भागवत्-शक्ति का नाम ही माया है; वह चैतन्य-शून्य होने पर जड़वत है।" बार-बार तुमसे कहा गया हैः माया असत्य है। माया से छूटो। माया से मुक्त होओ। माया पाप है। माया बंधन है। माया ही आवागमन है। जितनी गालियां दी जा सकती थीं, माया को दी गई हैं। सुनो शांडिल्य क्या कहते हैं? शांडिल्य कहते हैंः भागवत्-शक्ति का नाम ही माया है। वह झूठ नहीं है। वह झूठ कैसे हो सकती है? भगवान की ऊर्जा का नाम माया है। भगवान से जो निष्पन्न हो रही है वह असत्य नहीं हो सकती। हमारे शब्दकोशों में तो माया का अर्थ ही झूठ हो गया है--असत्य, मिथ्या, जो नहीं है और दिखाई पड़ता है। माया को हम सोचने ही लगे--भ्रम का पर्यायवाची। इतनी बार हमें समझाया गया है कि माया, माया, माया, झूठ है; यह संसार सब माया है।
कुछ भी माया नहीं है। शांडिल्य का क्रांतिकारी उदघोष सुनो। वे कहते हैंः माया परमात्मा की ऊर्जा है। उसकी शक्ति है। इसलिए परमात्मा से उद्भूत है; असत्य तो कैसे हो सकती है? और यह बात समझ में पड़ती है, सीधी-साफ है। यह सारा जगत असत्य है? लाख शंकराचार्य समझाएं कि यह सारा जगत असत्य है, शंकराचार्य को भी मान कर यही जीना पड़ता है कि यह जगत सत्य है।
एक शूद्र ने उनको छू लिया था काशी में, तो चौंक कर खड़े हो गए थे। और चिल्ला कर कहा था कि तुझे समझ नहीं है? मैं स्नान करके गंगा से आ रहा हूं और तूने मुझे छू लिया? अब मुझे फिर स्नान करना पड़ेगा!
उस शूद्र ने पता है क्या शंकर को कहा? उस सुबह बड़ी अदभुत वार्ता हुई।
एक अज्ञानी ने ज्ञानी को चेताया! अज्ञानी अज्ञानी नहीं था। और ज्ञानी ज्ञानी नहीं था--तब तक।
उस शूद्र ने कहा, यह तो बड़ी ऊंची बात कह दी। तुम तो कहते होः सब माया है। तो मैं सत्य हूं? और अगर माया तुम्हें छू गई, तो अपवित्र कैसे हो जाओगे? झूठ छू गया, तो अपवित्र कैसे हो जाओगे? किस गंगा में नहा कर आ रहे हो? सब तो माया है। झूठी गंगा में नहा कर आ रहे हो। और अब फिर उसमें नहाने जाना चाहते हो? फिर कौन सी चीज तुम्हें छू गई? मेरी देह ने तुम्हें छुआ है कि मेरी आत्मा ने? देह तो तुम कहते हो झूठ है, असत्य है। तो असत्य तो कैसे छुएगा? फिर मेरी देह हो कि तुम्हारी, दोनों असत्य हैं। दो असत्यों ने एक-दूसरे को छुआ तो कौन पवित्र हो जाएगा, कौन अपवित्र हो जाएगा? असत्य तो असत्य होते हैं। क्या पवित्र, क्या अपवित्र? तुम कहते होः आत्मा सत्य है, आत्मा ब्रह्म है। तो मेरे ब्रह्म ने अगर तुम्हारे ब्रह्म को छुआ तो इसमें

कौन सा पवित्र और अपवित्र होने वाला है? ब्रह्म तो ब्रह्म है। ब्रह्म तो सदा पवित्र है।
कहते हैं शंकर झुक गए थे लाज से। सिर झुका लिया था। और कहा, धन्यवाद कि मुझे चेताया। मैं दर्शनशास्त्र में ही उलझा हुआ हूं। बात तो ठीक है। शब्दों के जाल घेर लेते हैं। लोगों ने तोतों की तरह सीख लिया है कि संसार माया है, इसमें क्या पड़े हो? लेकिन संसार माया है? ये वृक्ष झूठ हैं? ये लोग झूठ हैं? यह जो दिखाई पड़ रहा है सारा विस्तार, यह झूठ है? यह झूठ तो नहीं है। यह हो सकता है कि तुम्हारी इसके संबंध में धारणाएं गलत हैं, मगर इससे यह झूठ नहीं है। रस्सी पड़ी है, तुमने सांप समझ लिया। शंकर ने इसका उल्लेख बार-बार किया है, कि रस्सी पड़ी है और तुमने सांप समझ लिया, बस ऐसा ही यह संसार है। लेकिन रस्सी तो सच है न? सांप की समझ तुम्हारी है। सांप नहीं है वहां, ठीक। मगर समझझूठ हुई, रस्सी तो झूठ नहीं हुई! रस्सी तो वहां है ही। उस रस्सी पर ही तुमने अपने झूठ को आरोपित कर दिया है।
तुमने अपनी पत्नी को मान लिया कि मेरी पत्नी है, यह झूठ होगा, लेकिन पत्नी में जो परमात्मा पड़ा है, जो उसकी किरण उतरी है, वह तो झूठ नहीं है? रस्सी तो है न? तुमने जिसको पत्नी मान लिया है, वह तो है न? तुम्हारा पत्नी मानना झूठ होगा।
तुमने जिस जमीन के टुकड़े को मान लिया है--मेरा, वह टुकड़ा झूठ नहीं है, तुम्हारा मेरा मानना झूठ है। क्योंकि तुम नहीं थे, तब भी टुकड़ा था। तुम नहीं होओगे, तब भी टुकड़ा रहेगा। तुम्हारा क्या है? तुम क्या ले आए और क्या ले जाओगे? सब यहीं था, सब यहीं रह जाएगा। तुम आए और तुम चले जाओगे। मेरा है, यह मान लेना झूठ था। लेकिन जमीन का टुकड़ा तो झूठ नहीं है। वह तो सत्य है। संसार सत्य है। संसार के संबंध में हम जो ओछी धारणाएं बना लेते हैं,
वे झूठ हैं। जिस दिन हमारी धारणाएं गिर जाती हैं और हम निर्धारणा होकर जगत को देखते हैं, उस दिन ब्रह्म का दर्शन हो जाता है। ब्रह्म ही है, हमारी धारणाओं के कारण हमें कुछ का कुछ दिखाई पड़ रहा है। सांप तुमने देख लिया है, सांप वहां है नहीं। मगर रस्सी है।
शंकर ने अपने उदाहरण में, रस्सी है, इसकी बात ही नहीं की। सांप नहीं है, इसकी चर्चा को इतना फैलाया कि किसी ने पूछा ही नहीं कि रस्सी का क्या हुआ? रस्सी सत्य है।
शांडिल्य ज्यादा व्यावहारिक बात कह रहे हैं। ज्यादा तर्कयुक्त, ज्यादा सीधी-साफ, तथ्यगत, कि यह सारा विस्तार उस परमात्मा की ऊर्जा का विस्तार है। माया उसकी छाया है।
माया... ऐसा समझें हम कि माया और ब्रह्म का जोड़ा है। इसलिए भक्तों ने राधा और कृष्ण का जोड़ा बनाया है। सीता और राम का जोड़ा बनाया है। ये जोड़े प्रतीक हैं। भक्तों को महावीर अकेले खड़े अधूरे मालूम पड़ते हैं। कुछ कमी है। ब्रह्म तो जरूर हैं, लेकिन माया कहां है? ऊर्जा कहां है? शिव तो हैं, लेकिन शक्ति कहां है? यह आकस्मिक नहीं है कि भक्तों ने जोड़े पूजे हैं। भक्तों ने भगवान को जोड़े में पूजा है। वह प्रतीक है जोड़ा। पुरुष और नारी। ऐसे ब्रह्म और माया।
सीता झूठ है? जितने सच राम हैं, उतनी ही सीता सच है। और इस बात को बहुत प्रगाढ़ता से घोषणा करने के लिए भक्तों ने क्या किया देखते हो? सीता को पहले रखा। सीताराम। राधाकृष्ण। इस बात को प्रगाढ़ता से प्रकट करने के लिए कि माया न केवल सत्य है, बल्कि ब्रह्म के भी आगे है। क्योंकि पहले तो उसकी ऊर्जा का अनुभव होता है। पहले तो संसार का अनुभव होता है, फिर ब्रह्म का अनुभव होता है। इसलिए राधा पहले, कृष्ण पीछे। राधा में ही कहीं कृष्ण छिपे हैं। राधा के पीछे ही कहीं छिपे हैं। राधा की ही खोज में तुम निकल जाओगे तो कृष्ण को एक दिन पा लोगे। राधा कृष्ण की परिधि है।
वह देखा न, रास का चित्र देखा? कृष्ण बीच में हैं और गोपियां चारों तरफ नाच रही हैं। यह सारा अस्तित्व कृष्ण--या जो भी नाम तुम देना पसंद करो, ब्रह्म--के केंद्र पर नाच रहा है। यह सारा जगत एक नृत्य है। चांद नाच रहे, तारे नाच रहे, सूरज नाच रहे, पृथ्वी नाच रही; वृक्ष, पशु-पक्षी, मनुष्य, सारा जीवन, सारा अस्तित्व नाच में मग्न है। यह रासलीला है। बीच में कहीं

केंद्र पर जो खड़ा है, जिसके सहारे यह सब सम्हला है--यह सारा रास उजड़ जाएगा, कृष्ण न हों तो सारा रास उजड़ जाएगा। लेकिन गोपियां न हों तो भी रास उजड़ जाएगा। ये दोनों अनिवार्य हैं। ये दोनों इतने अनिवार्य हैं कि दोनों को अलग-अलग करके देखने में ही भ्रांति हो जाती है। हम दोनों को एक ही सिक्के के दो पहलू समझें।
और यह सब जगह सत्य है।
तुम हो, तो तुम्हारी देह है और देह के भीतर तुम्हारी चेतना है। देह परिधि पर है--राधा पहले। इसलिए स्त्री को हमने प्रकृति कहा है। परमात्मा को पुरुष कहा है, स्त्री को प्रकृति कहा है। तुम्हारी देह तुम्हारे चारों तरफ नाच रही है। और तुम्हारे देह के केंद्र पर कहीं विराजमान है ब्रह्म। लेकिन तुमने कहीं आत्मा देखी? देह के बिना आत्मा खो जाती है। और आत्मा के बिना देह बिखर जाती है। यह रास दोनों साथ होते हैं तो चलता है। दोनों जुड़े होते हैं तो चलता है। दोनों के आलिंगन में चलता है। दोनों की ऊर्जा चाहिए ही। और यह ऊर्जा का सत्य जीवन के सब पहलुओं पर सत्य है।
तुम पूछो वैज्ञानिक से! वह कहेगा, विद्युत तभी हो सकती है जब पाजिटिव
और निगेटिव साथ हों। नहीं तो बिजली खो जाएगी। वही शिव-शक्ति, वही राधा- कृष्ण। विज्ञान की भाषा में वह पाजिटिव-निगेटिव। जरा सोचो, पृथ्वी पर पुरुष ही पुरुष हों, स्त्रियां न हों, कितनी देर पृथ्वी बचेगी? असंभव है। या स्त्रियां ही स्त्रियां हों और पुरुष न हों, तो कितनी देर बचेगी?
इससे एक बात साफ होती है कि स्त्री और पुरुष दो हैं, ऐसा मानने में ही कहीं भ्रांति हो रही है। किसी एक ही वर्तुल के दो हिस्से हैं। चीनियों के पास ठीक प्रतीक है--यिन-यांग। किसी एक ही वर्तुल के दो हिस्से हैं। या हमारे पास जो मूर्ति है अर्धनारीश्वर की, वह ठीक प्रतीक है।
देखी है शिव की मूर्ति जिसमें शिव आधे स्त्री हैं, आधे पुरुष? वह अस्तित्व की सूचना है। वह खबर है इस बात की कि यह अस्तित्व आधा स्त्रैण है, आधा पुरुष। आधी प्रकृति, आधा परमात्मा। और दोनों से मिल कर एक निर्मित हो रहा है। दोनों का जहां मिलन है, वहीं अद्वैत है।
"भागवत्-शक्ति का नाम ही माया है; वह चैतन्य-शून्य होने पर जड़वत है।"
इसे हम ऐसा समझें। जैसे तुम ठंडा और गर्म को समझते हो। सापेक्ष। रिलेटिविटी की बात है। किसी चीज को गरम कहें या ठंडा, यह सापेक्ष पर निर्भर है।
कभी एक छोटा सा प्रयोग करो। एक हाथ को बर्फ पर रख लो और एक हाथ को सिगड़ी पर आंच दे दो, और फिर दोनों हाथों को सामने रखी बाल्टी में भरे पानी में डुबा दो। और तुमसे कोई पूछे कि पानी गरम है कि ठंडा? तुम बड़ी मुश्किल में पड़ जाओगे। एक हाथ कहेगा ठंडा और एक हाथ कहेगा गरम। सापेक्ष है। जिस हाथ को तुमने अंगीठी पर गरम कर लिया है, वह कहेगा पानी ठंडा। उसकी तुलना में पानी ठंडा है। हाथ गरम है। और जो हाथ तुमने बर्फ पर ठंडा कर लिया है, उसको तुम पानी में डालोगे, उसको पानी कुनकुना मालूम पड़ेगा। क्योंकि हाथ ठंडा हो गया है, उसकी तुलना में पानी कुनकुना है। पानी फिर क्या है? ठंडा है या गरम है?
पानी दोनों है। तुम कहां से देखते हो, वैसा दिखाई पड़ जाता है।
तुम अगर बेहोशी से देखोगे तो माया दिखाई पड़ती है, होश से देखोगे तो ब्रह्म दिखाई पड़ता है, बस! तुम्हारे देखने के ढंग पर सब निर्भर करता है। जिन्होंने जाग कर देखा, उनको ब्रह्म दिखाई पड़ा।
भजनीयेन अद्वितीयम इदं कृत्स्नस्य तत स्वरूपत्वात्।
उस एक का ही सब विस्तार है--जिन्होंने जाग कर देखा। जिन्होंने सोकर देखा, उन्हें वह एक नहीं दिखाई पड़ा--कृष्ण नहीं दिखाई पड़ा, गोपियां नाचती हुई दिखाई पड़ती हैं। उन्हें संसार दिखाई पड़ता है।
इसको ऐसा समझो कि चट्टान है और मनुष्य है... उदाहरण के लिए। चट्टान को तुम जड़ कहते हो। क्यों? मनुष्य को तुम चेतन कहते हो। क्यों? भेद केवल मात्रा का है। वैज्ञानिक खोज कर रहे हैं, वे कहते हैंः चट्टान को भी कुछ-कुछ अनुभव होते हैं, संवेदना होती है। वैज्ञानिक खोज कर रहे हैं, वे कहते

हैंः वृक्षों को भी संवेदना होती है, अनुभव होता है। चेतना वहां भी है। लेकिन कुछ धूमिल है। कुछ सोई हुई है।
ऐसा समझो, तुम रात सो गए हो, एक मच्छर काटता है, तो ऐसा नहीं कि तुम्हें पता नहीं चलता। बड़ा धुंधला-धुंधला पता चलता है। नींद में ही तुम हाथ से मच्छर को हटा देते हो। शायद सुबह तुमसे पूछा जाए तो तुम याद भी न कर सको कि रात मच्छर ने काटा। लेकिन तुमने मच्छर हटाया था रात। एक कीड़ा तुम्हारे पैर पर चढ़ रहा है, पैर झटक देते हो। तुम्हें पता भी नहीं है। लेकिन कुछ तो पता हो ही रहा होगा। तुम नींद में हो। इसलिए बोध साफ नहीं है, साफ-सुथरा नहीं है, नींद से भरा हुआ है।
शांडिल्य कहते हैंः परमात्मा में और प्रकृति में इतना ही फर्क है-- प्रकृति सोया हुआ परमात्मा है और परमात्मा जागी हुई प्रकृति है। बस भेद जागने और सोने का है। चेतना धूमिल होती जाती है, तो जड़; और चेतना प्रगाढ़ होती जाती है, उज्ज्वल होती जाती है, तो चैतन्य। चैतन्य का आखिरी शिखर परमात्मा है और चैतन्य की आखिरी मूर्च्छा पदार्थ है। मगर दोनों अलग-अलग नहीं हैं। दोनों एक ही हैं। एक ही तारतम्य है। चट्टान सोई हुई चेतना है, आदमी जाग गई चट्टान है।
पूरा नहीं जाग गया है, अधूरा-अधूरा जागा है। क्योंकि जब कोई बुद्धपुरुष होता है, तो वह हमसे बहुत जागा हुआ है, उसके सामने हम चट्टान जैसे हो जाते हैं। इसलिए बुद्धों को भगवान कहा है। सिर्फ इसी प्रतीक के अर्थ में कि वहां चेतना पूरी हो गई है। बुद्ध को भगवान कहने का यह अर्थ नहीं होता कि उन्होंने दुनिया बनाई है। इतना ही अर्थ होता है कि भगवत्ता का जो लक्षण है--चैतन्य--वह उनमें पूरा हो गया है। वे पूरी तरह जाग गए हैं। उसका अंतस्तल रोशन हो गया है। अब वहां कोई भी अंधेरे का टुकड़ा नहीं बचा है। जरा सा भी द्वीप अंधेरे का नहीं बचा है। कोई कोना-कांतर अंधेरे से भरा हुआ नहीं है, रोशनी पूरी तरह व्याप्त हो गई है। सब रोशन हो गया है। इसलिए बुद्ध को, महावीर को भगवान कहा है। इसलिए नहीं कि उन्होंने दुनिया बनाई। सिर्फ इसीलिए कि भगवत्ता का जो परम लक्षण है--चैतन्य--वह उनमें प्रकट हुआ है। उसका प्राकट्य हुआ है।
शांडिल्य के हिसाब से चैतन्य और जड़ सापेक्ष हैं। चैतन्यशून्य होने पर जड़ता रह जाती है। और जड़ता के खो जाने पर चैतन्य का आविर्भाव हो जाता है। इसे इस भांति देखोगे, तो फिर संसार से विरोध छूट जाएगा। तब संसार से भागने की भी कोई जरूरत नहीं है। जागने की जरूरत है, भागने की जरूरत नहीं है। भागने से कैसे जागोगे? संसार का उपयोग कर लेने की जरूरत है। यहीं कहीं घूंघट में छिपा परमात्मा खड़ा है। घूंघट उठाओ। भाग कर कहां जाते हो? पहाड़ पर जाकर बैठ जाओगे, वहां क्या करोगे? वहां भी घूंघट उठाना पड़ेगा। वहां चट्टानों का घूंघट उठाना पड़ेगा, जो कि ज्यादा कठिन है। क्योंकि चट्टानों में परमात्मा बहुत गहरा सोया हुआ है। यहां पत्नी में काफी जागा हुआ था, बेटे में काफी जागा हुआ था, पति में काफी जागा हुआ था। यहां तुमसे घूंघट न उठ सका, तुम चट्टानों पर घूंघट उठा पाओगे? तुम चट्टानों में देख पाओगे परमात्मा को?
लेकिन अक्सर ऐसा हो जाता है कि चट्टानों में लोग आसानी से देख लेते हैं। मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैंः यह बहुत आसान है चट्टान में देख लेना, आदमी में देखना बहुत कठिन है। क्यों? क्योंकि चट्टान में तुम अकेले ही होते हो, अपनी कल्पना का फैलाव कर सकते हो। चट्टान कुछ बाधा नहीं डालती। तुम कहते होः हे चट्टान, तू ब्रह्म स्वरूप है। चट्टान नहीं कहती, मैं नहीं हूं। चट्टान कहती है, तुम्हारी मर्जी! चट्टान कुछ बोलती ही नहीं। तुम्हें जो मर्जी हो, तुम मान लो। चट्टान को तुम्हारी चिंता नहीं है। लेकिन अगर पत्नी से तुम कहते हो, तो वह जवाब देती है। झगड़ा खड़ा हो जाता है, विवाद खड़ा हो जाता है। हर छोटी बात में विवाद हो जाता है। तुम अपने बेटे से कुछ कहते हो, वह कहता है, नहीं करेंगे। या यह हमें जंचता नहीं है। यह बात ठीक नहीं है।
यहां संसार में तुम्हारी अड़चन क्या है? तुम्हारी अड़चन यह है कि तुम अपनी कल्पना करने को पूरी तरह स्वतंत्र नहीं मालूम होते। बस इतनी ही अड़चन

है। तुम जो कल्पना करते हो, दूसरे लोग उसको तोड़ देते हैं, उसे खंडित कर देते हैं। जंगल में तुम अकेले बैठ जाते हो गुफा में जाकर, वहां तुम्हारी कल्पना को खंडित करने वाला कोई नहीं होता। तुम जो कल्पना करो! तुम कहो, कृष्ण कन्हैया खड़े हैं। तो कृष्ण कन्हैया खड़े कर लो। तुम्हारी कल्पना है। तुम जो बात करना चाहो, कर लो। फिर अगर ज्यादा दिन रह गए पहाड़ पर, तो धीरे- धीरे तुम्हीं बात नहीं करते, तुम्हीं कृष्ण कन्हैया की तरफ से जवाब भी देने लगते हो। फिर पागलपन पूरा हो गया। फिर विक्षिप्तता पूरी हो गई। यही तो पागल का लक्षण है। अब वह अपनी तरफ से भी बोल लेता है, उस तरफ से भी बोल लेता है।
वैज्ञानिक कहते हैं--मनोवैज्ञानिक--कि अगर एक व्यक्ति को तीन सप्ताह
तक एकांत में रखा जाए, तो वह अपने से ही बात करना शुरू कर देता है। और अगर तीन महीने तक रखा जाए तो विक्षिप्त हो जाता है।
तो तुम्हारे साधु-संन्यासी जो पहाड़ों पर भाग गए थे, वे कर क्या रहे थे?
मनोविज्ञान की सारी शोध यह कहती है कि वे विक्षिप्त हो रहे थे। अपने सपने फैला रहे थे। अपने सपनों में रस ले रहे थे। कोई सपने तोड़ने वाला नहीं था। जो मानना था, मान लेते थे। मान कर जी लेते थे। और अगर तुमने बहुत देर तक कोई बात मानी, तो वह सच हो जाती है।
बुद्ध ने कहा है अपने शिष्यों को कि अगर तुम्हारी समाधि में मैं तुम्हें दिखाई पडूं, तो समझना कि अभी समाधि पूरी नहीं हुई। क्योंकि मैं फिर तुम्हारी कल्पना ही रहूंगा।
झेन फकीर कहते हैं कि जब तक कृष्ण, बुद्ध, महावीर, कोई भी दिखाई पड़े, तब
तक समझना कि अभी संसार जारी है। जब कोई भी दिखाई न पड़े और परमशून्य हो जाए, जब कोई विचार न रह जाए, तभी जानना कि तुम घर आ गए हो। नहीं तो सोचना कि अभी भटकाव कायम है।
इसी भटकाव के लिए लोग जंगल भाग जाते हैं। जंगल में सुविधा है कल्पना में उतरने की और कल्पना को मजबूत करने की, संसार में सुविधा नहीं है। संसार में जगह-जगह लोग तुम्हारी कल्पना को तोड़ देते हैं। तुम तो मान रहे थे कि यह आदमी... चले, शांडिल्य का सूत्र पढ़ लिया सुबह ही सुबह कि सबमें भगवान है, और कोई ने तुम्हारा जेब काट लिया। अब इसमें कैसे भगवान देखो? चले तो थे सुबह से यही मान कर कि भगवान ही देखेंगे, और एक आदमी तुम्हें गालियां देने लगा। इसमें कैसे भगवान देखो? भूल गए, शांडिल्य एक क्षण में भूल जाएंगे। जब कोई जेब काट लेगा, तुम कहोगे, अब फिर पीछे देखेंगे शांडिल्य को, पहले इस आदमी को देखें!
मैंने सुना है, एक ईसाई पादरी को एक आदमी ने चांटा मार दिया। उस पादरी
ने बाइबिल में पढ़ा था--पढ़ा ही नहीं था, रोज लोगों को भी पढ़ाता था--कि जब तुम्हारे गाल पर कोई एक चांटा मारे, तो दूसरा उसके सामने कर देना। दिल तो हुआ कि इसका सिर तोड़ दो, मगर अब गांव में प्रतिष्ठा थी! मजबूरी में उसने दूसरा गाल उसके सामने कर दिया। वह आदमी भी खूब था। उस आदमी ने भी सोचा, यह भी ठीक है, यह मौका भी क्यों चूको? उसने दूसरे गाल पर और एक जोर का चांटा जड़ दिया। पुरोहित ने सोचा था कि अब दूसरे गाल पर यह चांटा नहीं मारेगा। इतनी भलमनसाहत तो करेगा। लेकिन आदमी जैसे आदमी होते हैं, वह भी था, उसने दूसरे पर भी और जोर से लगा दिया। उसने कहा यह मौका अच्छा है, अपने आप तुम मौका दे रहे हो, मैं क्यों छोडूं? वह प्रसन्न ही हो रहा था दूसरा चांटा मार कर कि वह पुरोहित उसके ऊपर झपटा, उसकी गर्दन दबाने लगा। उसने कहा, भई, यह क्या करते हो? उसने कहा कि बाइबिल में इतना ही लिखा है कि एक गाल पर कोई चांटा मारे, दूसरा कर देना; उसके आगे फिर हम स्वतंत्र हैं। इसके आगे बाइबिल में कोई निर्देश नहीं है।
और ऐसा नहीं है कि जीसस के सामने ऐसे सवाल नहीं उठे थे। एक शिष्य ने पूछा है। जीसस ने कहा कि कोई तुम्हें चोट करे, अपमान करे, क्रोध करे, निंदा करे, क्षमा कर देना। एक शिष्य ने पूछा, कितनी बार? स्वाभाविक। क्योंकि आखिर एक सीमा होनी चाहिए। जीसस ने कहा, सात बार। उस आदमी ने कहा, ठीक है! मगर उसने इस ढंग से कहा कि ठीक है, कि जीसस को लगा कि वह आठवीं बार सातों का

इकट्ठा बदला ले लेगा। उसने जिस ढंग से कहा कि अच्छा ठीक है, देख लेंगे, कोई बात नहीं; सात बार का ही मामला है न! तो जीसस ने बदला और कहा कि नहीं, सतहत्तर बार।
लेकिन मैं तुमसे कहता हूं, सतहत्तर बार के बाद भी तो अठहत्तर बार आएगा।
शास्त्र काम नहीं पड़ेंगे, जब तक कि तुम्हारी अपनी अंतःप्रज्ञा न जगी हो। शांडिल्य काम नहीं पड़ेंगे, जीसस काम नहीं पड़ेंगे, मैं काम नहीं पडूंगा, जब तक कि तुम्हारी अंतःप्रज्ञा जाग्रत न हो। जब तक कि तुम्हारे भीतर से ही सूत्र का आविर्भाव न हो, तब तक कोई काम नहीं पड़ेगा। तब तक छोटी- मोटी चीजें तोड़ देंगी। जरा सी बात सब खराब कर देगी।
जरा-जरा सी तो बातें ही हैं जीवन में, बड़ी-बड़ी बातें कहां हैं?
तुम घर आए दिन भर के थके-मांदे और पत्नी ने चाय की प्याली इस ढंग से रखी कि बस सब शांडिल्य इत्यादि भूल गए! कुछ किया नहीं उसने, सिर्फ प्याली इस ढंग से रखी, इस बेरुखी से रखी! और जब तुमने चाय चखी तो वह ठंडी है। अब तुम उस वक्त याद न कर सकोगे कि पत्नी में परमात्मा है। उस वक्त सब भूल जाओगे। इससे लोग भागे हैं। इससे भागे हैं। क्योंकि यहां प्रतिपल तुम्हारे सूत्रों की परीक्षा हो रही है, अग्निपरीक्षा हो रही है। तुम्हारे सिद्धांतों की यहां प्रतिपल परीक्षा है। ऐसा नहीं है कि कभी साल में एकाध बार परीक्षा होती है, रोज हो रही है, प्रतिपल हो रही है, उठते-बैठते, सोते- जागते परीक्षा चल रही है। इस परीक्षा से लोग भागे हैं। मैं उनको कमजोर कहता हूं। उनको मैं भगोड़ा कहता हूं।
संसार से भागना नहीं है, न संसार को माया कह कर गाली देनी है। संसार परमात्मा की ऊर्जा है। परमात्मा की ऊर्जा का यह जो विस्तार है, इसी में तलाशो। इसी में तलाशते-तलाशते मिला है, और मिलेगा। क्योंकि इसी में है। और यहां पा लोगे तो हिमालय पर भी पा सकते हो। अगर यहां नहीं पाया, तो हिमालय पर भी नहीं पा सकोगे। फिर हिमालय पर इतना ही होगा कि तुम कल्पना कर लोगे। कल्पना में कोई बाधा देने वाला नहीं होगा। कल्पना में तुम मुक्त-भाव से बहते रहोगे। कल्पना करते-करते तुम विक्षिप्त हो जाओगे। कल्पना से कोई सत्य को उपलब्ध नहीं होता। कल्पना छोड़ कर आदमी सत्य को उपलब्ध होता है। सारी कल्पनाओं का विसर्जन करने से सत्य को उपलब्ध होता है। संसार नहीं छोड़ना है, कल्पना छोड़नी है।
बड़ा मजा है लेकिन, लोग संसार छोड़ते हैं, कल्पना नहीं छोड़ते। मेरा-तेरा छोड़ना है, पत्नी नहीं छोड़नी है, पति नहीं छोड़ना है, बच्चे नहीं छोड़ना है, मेरा-तेरा छोड़ना है। किसी के प्रति पत्नी-भाव, पति-भाव छोड़ना है। परमात्म-भाव का उदय होने देना है। इससे सुंदर अवसर और कहीं नहीं हो सकता है जैसा जगत में है। माया में ही परमात्मा छिपा है।
"भागवत्-शक्ति का नाम माया है।"
इसलिए शांडिल्य ने कहाः सेवनीय है, भजनीय है। इसका सेवन करो, इसका भजन करो। इस ऊर्जा को पीओ। इस ऊर्जा को पचाओ। इस ऊर्जा से संबंध जोड़ो, सेतु बनाओ। इस ऊर्जा में और तुम्हारे बीच विरोध न रह जाए। संगति बिठाओ। इस ऊर्जा के साथ नाचो और गाओ। इसको इन्होंने भजन कहा है। बड़ी अनूठी परिभाषा की भजन की। इस ऊर्जा के साथ तल्लीन होने का नाम भजन है।
इधर वृक्ष नाच रहा है हवाओं में, हवाएं आई हैं और वृक्ष को एक नर्तकी बना दिया है, तुम भी नाचो वृक्ष के साथ। दोनों का नाच कहीं एक तल पर जुड़ जाएगा। एक ऐसी घड़ी आती है जब तुम्हारे और वृक्ष के बीच नाच इतना एकात्म हो जाएगा, ऐसा अनन्यभाव पैदा हो जाएगा कि तुम भूल ही जाओगे कि कौन वृक्ष है, कौन तुम हो। तब तुम्हें पहली दफे घूंघट उठेगा। वृक्ष में तुम्हें परमात्मा छिपा हुआ दिखाई पड़ेगा।
और यह कहीं भी घट सकता है। तुम अपनी हर जीवन-दशा में इस भजन को खोज ले सकते हो। सेवन की कला आनी चाहिए। भोगने की कला आनी चाहिए। लोग भोग से भागते हैं। शांडिल्य कहते हैंः भोग की कला सीखो। ठीक से भोगो। जिन्होंने ठीक से भोगा है, उन्होंने परमात्मा को यहीं पा लिया है।

और जो ठीक से भोग ही नहीं सकते, वे ठीक से त्यागेंगे क्या खाक! जो भोग
भी न सके, जो भोग में भी हार गए, वे त्याग में कैसे जीतेंगे? त्याग तो भोग के आगे की कला है। सच पूछो तो त्याग भोग के ही अनुभव से पैदा होता है। तेन त्यक्तेन भुंजीथाः। उन्होंने ही त्यागा, जिन्होंने भोगा। जिन्होंने इतना भोगा कि भोग में ही त्याग फलित हो गया।
जरा जटिल सूत्र है। और तुम्हारे ऊपर जो सिद्धांतों के हजारों-हजारों पर्दे पड़े हैं, उनके कारण और कठिन हो गया है समझना। अगर किसी ने ठीक से भोगना सीख लिया, तो उसी भोगने में त्याग छिपा है। जैसे माया में ब्रह्म छिपा है, वैसे भोग में त्याग छिपा है। वैसे बाह्य में आंतरिक छिपा है। वैसे लहर में सागर छिपा है। वैसे सतह में गहराई छिपी है। ये सब जुड़े हैं। सेवन करो। अनेक-अनेक रूपों में परमात्मा का सेवन करो। सुबह तुम जाते हो, तुम कहते हो--वायु सेवन को जा रहे हैं। शांडिल्य कहेंगे कि वायु सेवन जरूर करो, लेकिन याद रखो कि वायु में वही है। उसको भगवान का सेवन होने दो। यह कहो कि वायु के रूप में भगवान का सेवन करने जा रहे हैं। कहो ही मत, ऐसा जानो भी, ऐसा जीओ भी। जब तुम्हारे नासापुट सुबह की ताजी हवाओं को भरें, तो ऐसा ही अनुभव करो--परमात्मा को तुम पी रहे हो नासापुटों से। वायु में छिपा है प्राण--प्राणतत्व। वायु में छिपी है संजीवनी। वायु के बिना तुम जरा देर भी न जी सकोगे।
इसलिए समस्त भाषाओं में वायु के जो नाम हैं अलग-अलग, वे सोचने जैसे हैं। योगी उसको कहते हैंः प्राणायाम। प्राण का आगमन। हिबू्र में उसके लिए जो नाम है, उसका अर्थ होता हैः आत्मा। अंग्रेजी में तुम देखते हो, भीतर जब हम वायु को ले जाते हैं, उसको कहते हैं, इंस्पिरेशन। वह स्प्रिट से बना है शब्द। प्राण को भीतर ले जा रहे हैं। उससे हम पुनरुज्जीवित हो रहे हैं। उससे फिर जीवन में लौ आ रही है। फिर दीये में तेल पड़ रहा है। आदमी भी एक ज्योति है। वैज्ञानिक से पूछो, तो वैज्ञानिक कहता है, ज्योति नहीं जलेगी अगर वायु न हो। ज्योति वायुरिक्त स्थान में नहीं जल सकती।
तुम प्रयोग करके देखो। एक मोमबत्ती के ऊपर कांच का एक बर्तन ढांक दो।
बस थोड़ी देर मोमबत्ती जलेगी। जितनी देर भीतर की वायु जलने के लिए उपलब्ध रहेगी। जैसे ही भीतर की वायु खत्म हुई, मोमबत्ती बुझ जाएगी।
जीवन को भी प्रतिपल वायु की जरूरत है। बिना भोजन के आदमी तीन महीने तक
रह सकता है। बिना पानी के कुछ दिन रह सकता है। लेकिन बिना श्वास के कुछ सेकेंड या कुछ मिनट। और जितनी देर बिना श्वास के रहता है, उतनी देर भी उसके भीतर की जो श्वास है, वह काम देती है, इसलिए रहता है। अगर सारी श्वास बाहर निकाल ली जाए तो उतनी देर भी नहीं रह सकता।
परमात्मा आ रहा है श्वास में। सुबह जब वायु बहती हो ताजी और तुम घूमने निकले होओ, तो स्मरण रखना, प्रति श्वास में परमात्मा को भीतर बुलाना, निमंत्रण देना। और तुम चकित हो जाओगे। तुम चकित हो जाओगे, प्रार्थना करके लौटे। और ऐसी प्रार्थना इसके पहले कभी न हुई थी। तुम्हारी मुर्दा प्रार्थनाएं मंदिरों में तुम जो करते हो, उनका दो का.ैडी मूल्य नहीं है। मैं तुम्हें जीवंत प्रार्थना के लिए कह रहा हूं। तुम एक घड़ी भर सुबह टहल आना; सुबह की ताजगी में, रोशनी में, पक्षियों के गीत में, नई हवाओं को परमात्मा की तरह सेवन कर लेना। तुम घर लौटना। तुम पाओगे, तुम्हारे पैर जमीन पर नहीं पड़ रहे हैं। तुम हलके हो गए, निर्भार हो गए। जमीन की कशिश का प्रभाव तुम पर कम है। तुम्हारे भीतर बड़ा उत्फुल्लित भाव होगा। जैसे फूल खिल गया हो। तुम्हारे भीतर बड़ी कोमलता होगी, सदयता होगी। तुम कठोरता का उपयोग न कर सकोगे। इतना परमात्मा सेवन किया हो, तो कैसे कठोर हो सकोगे? तुमसे सहज ही सुंदर होगा, शुभ होगा।
और ऐसा ही जीवन के प्रत्येक पहलू पर अगर तुम फैला दो, तब तुम समझे शांडिल्य का अर्थ। भोजन करते वक्त स्मरण रखना, परमात्मा का ही भोजन कर रहे हो। तब भोजन का सार बदल जाएगा। क्योंकि भोजन का मनोविज्ञान बदल जाएगा। तुम्हें यह पता है कि अगर कोई तुमसे कह दे कि माफ मरना भाई, तुमने जो भोजन कर लिया उसमें एक मक्खी गिर गई थी। झूठ कह दे। मनोविज्ञान बदल गया। अब तुम्हें उबकाई आने लगेगी। तुम्हें उलटी हो जाएगी। मक्खी गिरी हो कि न

गिरी हो, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। मक्खी गिर गई थी और तुम्हें किसी ने न बताया, तुम भोजन कर गए, शायद मक्खी को भी ले गए भोजन के साथ अपने भीतर, तो भी उलटी नहीं होगी। उलटी मक्खी से नहीं होती, मनोविज्ञान से होती है। मक्खी नहीं भी गिरी थी और किसी ने कह दिया कि क्षमा करना, बड़ी भूल हो गई, एक मक्खी गिर गई थी। बस, तुम अचानक पाओगे कि सारा शरीर भोजन को बाहर फेंक देना चाहता है। अब तुम बेचैन हो जाओगे। अस्तव्यस्त हो जाओगे। और जब तक वमन न हो जाएगा, तब तक तुम्हें राहत न मिलेगी।
हुआ क्या? भोजन वही था, मजे से बैठे थे।
मैं एक घर में मेहमान था। जिनके घर मेहमान था, रात को उनको एक चूहा काट गया। वे एकदम घबड़ा गए। एक ही कमरे में हम दोनों सोए थे। मैंने उनका पैर देखा, मैंने उनसे कहा, कुछ घबड़ाने की बात नहीं है, चूहा चोंच मार गया है! और चूहे यहां काफी हैं तुम्हारे घर में! कोई बात नहीं है! वे सो गए मजे से। कोई अड़चन न थी, कोई बात न थी। दूसरे दिन सुबह हो गई, मेरे साथ घूमने गए, हम नदी पर स्नान करने गए, लौट कर हम आए, सब ठीक था। घर आकर पत्नी ने कहा कि तुम्हारे कमरे में एक सांप निकला है। बस उनका चेहरा मैंने देखा एकदम फक हो गया। उन्होंने कहा, सांप! कहीं वही न काट गया हो? वे वहीं बैठ गए सीढ़ियों पर! मैंने उनसे कहा कि इतनी देर हो गई, रात बारह बजे काटा था, अगर सांप ने काटा होता तो अब बारह बज गए, बारह घंटे बीत गए, परिणाम अब तक हो गया होता! मगर परिणाम शुरू हो गया! वे तो लेट गए। उनका चेहरा एकदम काला पड़ने लगा। उनके मुंह से फसूकर आने लगा। डाक्टरों को बुलाया। डाक्टरों ने कहा कि कोई खराबी नहीं मालूम पड़ती।
मनोविज्ञान बदल गया! कई बार मौत भी हो जाती है, सिर्फ मनोविज्ञान के बदल जाने से। और कई बार मरता हुआ आदमी बच जाता है, सिर्फ मनोविज्ञान के बदल जाने से।
मनोविज्ञान का तुम ठीक से अर्थ समझो। एक सूफी कहानी है।
एक फकीर गांव के बाहर बैठा था। उसने एक काली सी छाया को अंदर आते देखा--फकीर था, अंतर्दृष्टि का आदमी होगा--उसने कहा, रुक, कहां जाती है? कौन है?
उस छाया ने कहा कि मैं प्लेग हूं। और भगवान की आज्ञा हुई है कि इस गांव
से पांच सौ आदमी मार कर ले जाने हैं।
उसने कहा, कोई बात नहीं, जा, आज्ञा हुई है तो पूरा कर।
पंद्रह दिन बाद वह लौटती थी। फकीर ने उसको पकड़ा और कहा कि तू झूठ बोली। पांच हजार आदमी मर गए। और तूने कहा था, पांच सौ।
उसने कहा, मैं क्या करूं? मैंने पांच सौ ही मारे, साढ़े चार हजार घबड़ाहट में मर गए! उनमें मेरा हाथ ही नहीं है। वे क्यों मरे, मैं खुद चमत्कृत हूं। मनोविज्ञान!
एक आदमी को मेरे पास लाया गया। उसको वहम हो गया था कि रात सोए हुए दो मक्खियां उसके भीतर घुस गई हैं। कुछ दिमाग उसका खराब था! अब वह बताए कि वे अभी हाथ में चल रही हैं अंदर, अब इधर छाती में आ गईं, अब इधर पैर में आ गईं। उसका कई डाक्टरों ने इलाज किया, उसका कुछ इलाज नहीं था। एक्सरे लिए गए, कोई मक्खी नहीं--और कहीं मक्खी हो भी तो ऐसे चल सकती है! मगर वह कहे, चल रही है, यह जा रही है! हाथ पकड़ कर बताए चमड़ी को कि यह अंदर जा रही है।
मैंने उससे कहा, तू लेट। उसे मैंने लिटाया। और मैं भागा मक्खी पकड़ने को! पहले कभी पकड़ी नहीं थी। कोई मुश्किल से दो मक्खी पकड़ पाया। उनको एक बोतल में बंद करके--उसकी आंख पर पट्टी बांध कर उसको लिटा दिया था, कि मैं मंत्र-तंत्र करता हूं, तेरी मक्खी को पकड़ने की कोशिश करें! जब उसने दो मक्खियां देखीं, एकदम खुश हो गया। और उसने कहा कि मैं कितना उन लोगों को कहता था, डाक्टरों को, वैद्यों को, मगर कोई मेरी माने न! अब यह बोतल मुझे दो! मैं उनको दिखाता हूं जाकर! वह घूमा, सब डाक्टरों के, वैद्यों के पास गया। और ठीक हो गया। अब मैं खुद चमत्कृत था कि हुआ क्या? क्योंकि वे मक्खियां तो उसके भीतर थीं नहीं।
इलाज से काम नहीं हो सका। उसका मनोविज्ञान बदलना पड़ा।

तुम्हारी जिंदगी में तुम्हारी नब्बे प्रतिशत बीमारियां तुम्हारे मन
के कारण होती हैं। और तुम्हारे इलाज भी नब्बे प्रतिशत तुम्हारे मन के कारण होते हैं। दवा से ज्यादा तुम्हारा डाक्टर सार्थक होता है। अगर तुम्हारा डाक्टर पर भरोसा है, तो दवा काम कर जाती है। अगर डाक्टर पर भरोसा नहीं है, तो दवा काम नहीं करती। जिसका जिस पर भरोसा है। किसी को होम्योपैथी पर भरोसा है, तो होम्योपैथी काम कर जाती है, हालांकि होती सिर्फ शक्कर की गोलियां हैं, और कुछ भी नहीं। मगर काम करती है। क्योंकि मनोविज्ञान बदलना है असली बात। होम्योपैथी शुद्ध मनोवैज्ञानिक इलाज है। महत्वपूर्ण है लेकिन, काम तो करता है! सच नहीं है, लेकिन काम करता है।
अभी पश्चिम में इस पर बहुत प्रयोग चल रहे हैं। दस मरीज एक अस्पताल में
एक ही बीमारी के होते हैं। पांच को दवा दी जाती है, पांच को शुद्ध पानी दिया जाता है। और वे बड़े हैरान हैं कि दोनों का परिणाम बराबर होता है। पानी से भी उतनी ही संख्या में लोग ठीक हो जाते हैं। और दवा से भी उतनी ही संख्या में ठीक हो जाते हैं। और एक और हैरानी की बात है कि दवा का कभी-कभी दुष्परिणाम भी होता है, पानी का कोई दुष्परिणाम नहीं होता। ठीक हो गए तो ठीक, नहीं हुए तो कोई हर्जा नहीं। पानी ही पीया।
लेकिन मरीज को बताना नहीं पड़ता है कि तुम पानी पी रहे हो। मरीज को ही नहीं, डाक्टर भी जो उसको देता है दवा, उसको भी पता नहीं होना चाहिए कि वह पानी दे रहा है। नहीं तो उसके भाव, उसका ढंग, उसकी झिझक, उसकी आंखें, वह सब मरीज पकड़ रहा है। दवा से ज्यादा वह महत्वपूर्ण है। इसलिए जो आदमी यह विभाजन करता है कि पांच को पानी देना, पांच को दवा देना, उसको पता होता है, लेकिन वह स्वयं दवा देने नहीं जाता। वह डाक्टर को दवा दे देता है, दवा डाक्टर पहुंचाता है; जिसको कुछ पता नहीं है कि कौन सा पानी है और कौन सी दवा है। दोनों पर एक से लेबल लगे हैं। कोई भेद करना संभव नहीं है। तब परिणाम बड़े सार्थक होते हैं। मरीज को भरोसा आ जाना चाहिए।
शांडिल्य जो कह रहे हैं, भगवान का सेवन, वह बड़ा अदभुत मनोवैज्ञानिक प्रयोग है। भोजन करते वक्त सोचना--अन्नं ब्रह्म। यह मैं ब्रह्म का भोजन कर रहा हूं। आदर से, समादर से। एक-एक कौर में ब्रह्म को ही चबाना। और तुम पाओगे कि तुम्हारे भोजन की गुणवत्ता बदल गई। भोजन वही है, लेकिन तुमने उसमें महिमा डाल दी। तुमने उसमें प्रार्थना सम्मिलित कर दी।
स्नान कर रहे हो, स्मरण रखना कि यह परमात्मा की ही जलधार तुम पर पड़ रही है। यह फव्वारे के नीचे खड़े हो, यह उसी का फव्वारा है। और तुम पाओगे, बूंदों की ठंडक और है। और बूंदों का रस और है। वे तुम्हें प्राण दे जाएंगी। तुम्हें ताजा कर जाएंगी। जैसा उन्होंने कभी भी न किया था। ऐसे कोई चौबीस घंटे भगवान का सेवन करता रहे, तो इस सारी प्रक्रिया का नाम भजन है।
जगत सेवनीय है, भजनीय है। परमात्मा और प्रकृति एक ही ऊर्जा के दो नाम हैं। चैतन्य के आधिक्य के कारण परमात्मा कहते हैं, मूर्च्छा के आधिक्य के कारण प्रकृति। भेद इतना ही है, जागृति और निद्रा का। भगवान की शक्ति का नाम माया अर्थात वह उनका स्त्रैण रूप है।
अर्धनारीश्वर को फिर स्मरण करो। वह मूर्ति घर-घर में रखने जैसी है। ताकि तुम्हें सदा यह याद रहे कि जगत विपरीत छोरों से मिल कर बना है।
विपरीतता जगत में अपरिहार्य है। नहीं तो जगत बिखर जाता है। एक ने अपने को दो विपरीत में बांट लिया है। उन्हीं के बीच सारी लीला चल रही है।
लेकिन माया का इतना विरोध किया गया है कि तुम्हें बड़ी कठिनाई होगी स्वीकार करने में कि संसार भी ब्रह्म का ही रूप है; कि दुकान भी मंदिर है। दुकान भी मंदिर है। क्योंकि ग्राहक में जो आता है, वह प्रभु ही है। और दुकान इस ढंग से की जा सकती है कि वह मंदिर हो जाए। और जिस दिन दुकान इस ढंग से होगी, उसी दिन दुनिया का रूपांतरण होगा। जिस दिन दुकानदार कबीर की तरह होगा।
कबीर बैठते थे अपना कपड़ा बेचने काशी के बाजार में--बुनते थे, फिर बेचने जाते थे। जुलाहे थे। जो भी आता उसको खूब समझाते, उसको ओढ़ा कर कपड़ा दिखाते। और पता है उसे संबोधन क्या करते थे? कहते थे--राम। राम, यह देखो!

इसको जरा ओढ़ कर देखो। यह बड़ी मेहनत से बुना है। इसमें बड़ा भजन भरा है। इसका एक-एक ताना-बाना बुनते वक्त मैं भजन ही गुनगुनाता रहा हूं। तुम्हारे लिए ही बुना है, राम! यह खूब टिकेगा। जितनी मेहनत-मजूरी होती, वह मांग लेते--कि इस पर चार पैसे मजूरी मुझे मिल जाए, इतना इस पर खर्च हुआ है।
लोग प्रतीक्षा करते थे कि कबीर का कपड़ा मिल जाए। वह कपड़ा कपड़ा नहीं था--झीनी झीनी बीनी रे चदरिया, राम रस भीनी रे चदरिया! कबीर गुनगुनाते, गीत गाते, भजन करते, बुनते रहते। राम-नाम भी कहीं न कहीं उन धागों के साथ बुन जाता था। उस चादर का गुणधर्म बदल जाता था। उस चादर में भजन सम्मिलित हो जाता था। भजन करने वाला व्यक्ति जो भी करता है उसमें भजन सम्मिलित हो जाता है।
तुमने भी यह फर्क देखा है, लेकिन ख्याल नहीं करते हो। जिंदगी में सब चीजें उपलब्ध हैं, लेकिन तुम ख्याल नहीं करते, अवलोकन नहीं करते। जब तुम्हारे प्रति कोई बहुत प्रेम से भर कर भोजन तैयार करता है, तुमने भोजन में कुछ फर्क देखा या नहीं देखा? भोजन का कुछ गुणधर्म बदल जाता है या नहीं बदल जाता है? मनोवैज्ञानिक अब स्पष्ट रूप से इस बात को स्वीकार करते हैं कि क्रोध में कोई भोजन न बनाए। और अक्सर ऐसा होता है, स्त्रियां क्रोध में भोजन बनाती हैं। और जब पति बीमार पड़ जाता है तो वे परेशान होती हैं। लेकिन क्रोध में भोजन बनाती हैं। बच्चे को भी पीटे जा रही हैं, पति के खिलाफ भी विचार किए जा रही हैं, और किसी तरह बना रही हैं। बर्तन भी फेंके जा रही हैं, प्लेटें भी तोड़े जा रही हैं, किसी तरह भोजन बना रही हैं। अत्यंत क्रोध में! यह क्रोध सम्मिलित हो जाएगा भोजन में। इस क्रोध की तरंग भोजन को पकड़ जाएगी। यह क्रोध वास्तविक घटना है, इस स्त्री के चारों तरफ क्रोध की हवा है, यह भोजन में प्रवेश हो ही जाएगा। भोजन इससे अछूता न रह सकेगा। यह भोजन विषाक्त हो गया। इस भोजन का गुणधर्म विकृत हो गया। इस भोजन को करने का मतलब बीमारी है। मगर यही हो रहा है।
जब कोई प्रेम से नाचता हुआ, गीत गाता हुआ, आनंदमग्न--मेरा बेटा आता है,
कि मेरा पति आता है, कि मेरा भाई आता है, कि मेरे पिता आते हैं--भोजन को तैयार करता है, उस भोजन की गुणवत्ता और है। फिर वह रूखा-सूखा भी बहुत स्वादिष्ट है। और यह मैं केवल कविता की बात नहीं कह रहा हूं, इसके पीछे पूरे मनोविज्ञान का सहारा है। प्राचीन मनोविज्ञान तो सदा से यह कहता रहा है, लेकिन आधुनिक मनोविज्ञान भी इसके साथ संयुक्त हो गया है।
इस देश में हम स्त्रियों को मासिक धर्म के समय भोजन नहीं बनाने देते थे। अब तो जरा मुश्किल हो गया, अब तो धीरे-धीरे चलने लगा, कम से कम शिक्षित घरों में तो चलने ही लगा है; सुसंस्कृत, आधुनिक घरों में तो चलने ही लगा है; लेकिन सदियों से हमने इस देश में स्त्रियों को मासिक धर्म के समय भोजन नहीं बनाने दिया। उसका कारण? उसका कारण यह नहीं था कि मासिक धर्म में जो खून बहता है वह अपवित्र है। नहीं, वह तो गौण बात है। वह कोई खास बात नहीं है। वह तो खून ही, खून जैसा खून है, उसमें कुछ अपवित्रता नहीं है। लेकिन मासिक धर्म के समय स्त्री का चित्त तनावपूर्ण होता है, उद्विग्न होता है, परेशान होता है; प्रफुल्लित नहीं होता। वह असली बात है। वह चार दिन स्त्री थोड़ी बेचैन होती है, पीड़ित होती है, उसका पूरा अस्तित्व एक तरह की उद्विग्न दशा में होता है, एक तरह की ज्वरग्रस्तता उसके भीतर होती है, स्वाभाविक नहीं होता उसका उन चार दिनों का अस्तित्व। उसका भोजन बनाना घातक है।
अभी इस पर कुछ प्रयोग किए गए हैं दुनिया की अनेक प्रयोगशालाओं में।
और यह बात पाई गई कि इसमें सच्चाई है। और कोई काम स्त्री करे भला, लेकिन भोजन उन चार दिनों में न बनाए। क्योंकि भोजन साधारण बात नहीं है। उससे पूरे परिवार का जीवन जुड़ा है। मगर मूल बात इतनी ही है कि आनंदमग्न का परिणाम होता है।
तुम भी दुकान पर मंदिर ला सकते हो। और मैं उसी पक्ष में हूं। मंदिर अलग नहीं होना चाहिए, दुकान से संयुक्त होना चाहिए। मंदिर अलग नहीं होना चाहिए, तुम्हारे घर में ही होना चाहिए। तुम्हारा घर मंदिर होना चाहिए।

माया का इतना विरोध किया गया है, वह वस्तुतः माया का विरोध नहीं है, हमारी धारणाओं का, हमारे मेरे-तेरे का विरोध है। इस मेरे-तेरे के कारण हम उलझ गए हैं और जो है वह हमें दिखाई नहीं पड़ता। हमारा मेरा इतना बड़ा हो जाता है कि उसमें सब छिप जाता है।

कौन हंसिनियां लुभाएं हैं तुझे ऐसा कि तुझको मानसर भूला हुआ है?

कभी-कभी हंस भी आ जाता है और उलझ जाता है डबरों में। कीचड़ के डबरों में।

कौन हंसिनियां लुभाएं हैं तुझे ऐसा कि तुझको मानसर भूला हुआ है?

कौन लहरें हैं कि जो दबती-उभरती
छातियों पर हैं तुझे झूला झुलातीं?
कौन लहरें हैं कि तुझ पर फेन का कर
लेप, तेरे पंख सहला कर सुलातीं?
कौन-सी मधुगंध बहती है पवन में
सांस के जो साथ अंतर में समाती?
कौन हंसिनियां लुभाएं हैं तुझे ऐसा कि तुझको मानसर भूला हुआ है?

कौन श्यामल, श्वेत औ" रतनार नीरज
के निकुंजों ने तुझे भरमा लिया है?
कौन हालाहल, अमीरस और मदिरा
से भरे लबरेज प्यालों को पिया है
इस कदर तूने कि तुझको आज मरना
और जीना और झुक-झुक झूमना सब
एक-सा है? किस कमल के नाल की
जादू-छड़ी ने आज तेरा मन छुआ है?
कौन हंसिनियां लुभाएं हैं तुझे ऐसा कि तुझको मानसर भूला हुआ है?

किसने लुभाया है? तुम्हारे पुराने साधु-संन्यासी कहते हैंः स्त्रियों ने लुभा लिया है पुरुषों को; धन ने लुभा लिया है पुरुषों को। वह बात व्यर्थ है। वह बीमारी को न पकड़ना, लक्षण को पकड़ लेना है। मेरे-तेरे ने लुभा लिया है, मैं तुमसे कहता हूं। मेरा-तेरा चला जाए और सारा जीवन रूपांतरित हो जाता है। तुम मेरे-तेरे की भाषा भर भूल जाओ कि तत्क्षण तुम पाओगे, कोई यहां लुभा नहीं रहा है, यहां लुभाने वाला एक ही है, वह परमात्मा है। स्त्री से भी वही झांका है।
जब तुमने किसी सुंदर स्त्री में आकर्षण अनुभव किया है, तो दो उपाय हैं। या तो तुम समझो कि यह देह सुंदर है, इसको भोग लूं, इसको अपना बना लूं, यह स्त्री मेरी हो, या यह पुरुष मेरा हो--इस पर मैं कब्जा कर लूं, कहीं कोई और कब्जा न कर ले, इसके हाथों में मैं सोने की जंजीरें डाल दूं। इसको घर ले आऊं, इसको एक कठघरे में बिठा दूं। तुम जिसको घर कहते हो, वह कठघरा है, वह पिंजड़ा है, फिर उसमें चाहे सोने के ही सींखचे क्यों न लगे हों। और तुमने जिनको आभूषण समझ कर स्त्रियों को भेंट किया है, वे सिर्फ जंजीरें हैं। कीमती हैं, बहुमूल्य हैं, इसलिए उनसे इनकार भी नहीं किया जा सकता।
एक और ढंग है। सुंदर स्त्री दिखाई पड़े तो तुम्हें उसमें परमात्मा के सौंदर्य की झलक मालूम पड़े। तुम समझो कि यह स्त्री भी एक दर्पण है जिसमें परमात्मा झलका है। और अनंत दर्पण हैं, उनमें यह भी एक प्यारा दर्पण है। लेकिन मालकियत का कोई सवाल नहीं है। यहां मालिक कौन किसका? यहां मालिक तो सिर्फ एक है। याऽऽमालिक! यहां मालिक तो बस एक है। उस मालिक की याद करो। तुम मालिक बन बैठे हो, यहीं भूल हो गई है। तुम मालिक बन बैठे, बस वहीं तुमसे चूक हो गई। तुम अपनी मालकियत छोड़ दो। कहीं जाना नहीं है, सिर्फ मालकियत छोड़ देनी है, मेरे का भाव छोड़ देना है।

वह मेरे का परिग्रह गया कि जीवन में एक क्रांति हो जाती है। सब ऐसा ही होता है, लेकिन फिर भी सब बदल जाता है। तब फूल में सिर्फ फूल नहीं दिखाई पड़ता; फूल की देह होती है, परमात्मा का प्राण होता है। सुंदर स्त्री में सुंदर स्त्री नहीं दिखाई पड़ती; सुंदर स्त्री में सिर्फ परमात्मा का प्रतिबिंब होता है, उसकी झलक होती है। तब चारों तरफ हर सौंदर्य में, हर संगीत में, हर रस में उसी की याद आने लगती है। हर घड़ी उसी की याद आने लगती है। तब हर तरफ से उसी का इशारा आने लगता है। और हर इशारा उसका ही तीर बन कर हृदय में चुभने लगता है। उस स्थिति को शांडिल्य ने भजन कहा है। व्यापकत्वात व्याप्यानाम्।
"व्यापक की सत्यता के कारण व्याप्य भी सत्य है।"
परमात्मा समाया है सबमें, ऐसा शास्त्र, सभी शास्त्र कहते हैं। कहते हैं, कण-कण में परमात्मा है। तो जिसमें परमात्मा समाया है, वह झूठ नहीं हो सकता। झूठ में सत्य कैसे समाएगा? तुम सत्य पानी को झूठे घड़े में कैसे भरोगे? या भर सकते हो?
मैंने सुना है, मुल्ला नसरुद्दीन एक पिटारी अपने सिर पर लिए चला आ रहा था। रास्ते में कोई साथ हो लिया, उसने पूछा कि यह पिटारी बड़ी अजीब है! उसमें कई छेद भी बने हैं, क्या ले जा रहे हो, नसरुद्दीन? नसरुद्दीन ने कहा, इसमें एक नेवला पकड़ लाया हूं। नेवला, उस आदमी ने पूछा, नेवला क्या करोगे? सुना नहीं कभी कि लोग नेवला पकड़ कर घर ले जाते हैं। उसने कहा, मामला ऐसा है, तुम जानते हो कि मैं कभी-कभी रात ज्यादा पी जाता हूं। जब ज्यादा पी जाता हूं तो मुझे सांप दिखाई पड़ते हैं। मैंने सुना है कि नेवला रखो घर में, सांपों को पकड़ कर खा जाता है, टुकड़े-टुकड़े कर देता है। इसलिए नेवला ले जा रहा हूं। पर उस आदमी ने कहा कि तुमने मुझे और उलझन में डाल दिया। वे सांप जो तुम्हें दिखाई पड़ते हैं जब तुम ज्यादा पी जाते हो, वे सब झूठे होते हैं, कल्पना के होते हैं। तो मुल्ला ने कहा, यह नेवला कौन सच है? सिर्फ टोकरी सच है, भीतर कुछ नहीं है।
झूठ को काटना हो तो झूठ से काटा जा सकता है। सत्य को मिटाने के लिए झूठ
से नहीं काटा जा सकता। सत्य और झूठ का कहीं मिलन ही नहीं हो सकता। अगर सच्चा पानी है, तो नकली घड़े में कैसे भरोगे? झूठे घड़े में कैसे भरोगे? जो घड़ा है ही नहीं, उसमें कैसे भरोगे?
यह सूत्र ख्याल में रखने जैसा है।
"व्यापक की सत्यता के कारण व्याप्य भी सत्य है।"
शांडिल्य कहते हैंः सारे शास्त्र कहते हैं परमात्मा कण-कण में समाया हुआ है, सबमें समाया हुआ है, तो जिसमें समाया हुआ है वह भी सत्य हो गया उसके कारण जो समाया हुआ है।
अगर संसार झूठ है तो फिर परमात्मा भी झूठ हो जाएगा! शंकराचार्य की बात अगर सच है कि संसार माया है तो तुम्हारा ब्रह्म भी माया हो गया। और यही बौद्ध दार्शनिकों ने प्रश्न उठाया है। नागार्जुन ने यही प्रश्न उठाया है कि संसार माया है--इसको स्वीकार कर लिया और बड़ा अनूठा निष्कर्ष निकाला-- अगर संसार माया है तो इसमें जो समाया है, ब्रह्म, वह भी माया हो गया। शांडिल्य ने एक निष्कर्ष निकाला, ठीक उससे दूसरा निष्कर्ष नागार्जुन ने निकाला है, लेकिन दोनों का तर्क एक है। तर्क का आधार एक है। शांडिल्य कहते हैं, अगर परमात्मा सच है तो संसार भी सच हो गया। दूसरी तरफ से नागार्जुन चलते हैं, वे कहते हैं, हम मान लेते हैं कि संसार झूठ है, जैसा वेदांती कहते हैं, अगर संसार झूठ है तो उस झूठ को बनाने वाला भी झूठ हो गया। उस झूठ में समाया भी झूठ हो गया। इसलिए ब्रह्म भी झूठ है। संसार भी माया, ब्रह्म भी माया। मगर तर्क का आधार एक ही है।
लेकिन मुझे लगता है कि शांडिल्य का चुनाव नागार्जुन से ज्यादा बेहतर है। क्योंकि नागार्जुन भी विवाद में पड़े हैं। किससे विवाद कर रहे हो? किसको समझा रहे हो कि संसार भी झूठ, ब्रह्म भी झूठ? किसको समझा रहे हो? यहां कोई है ही नहीं। और जब यहां कोई भी नहीं है, जब सब दृश्य झूठ हैं तो द्रष्टा भी झूठ हो जाएगा। फिर ये शास्त्र किसके लिए लिखे जा रहे हैं? यह विवाद किससे किया जा रहा है? इसका उत्तर नागार्जुन के पास नहीं है।

शांडिल्य की बात ज्यादा व्यावहारिक, ज्यादा वैज्ञानिक मालूम पड़ती है। परमात्मा सबमें छिपा है, इसलिए जिसमें छिपा है वह भी सत्य है। दोनों सत्य हैं। और ध्यान रखो, दुनिया में दो सत्य नहीं हो सकते। सत्य तो एक ही हो सकता है। सत्य कैसे दो हो सकते हैं? क्योंकि अगर दो होंगे तो एक-दूसरे की सीमा बना देंगे। दो होंगे तो बीच में एक रेखा खींचनी पड़ेगी। दो सत्यों के बीच कैसे रेखा खींचोगे? दो सत्य नहीं हो सकते। सत्य तो एक ही हो सकता है। तो फिर सत्य के दो ढंग हैं, सत्य के प्रकट होने के दो ढंग हैं। कभी बीज की तरह प्रकट होता है, कभी वृक्ष की तरह प्रकट होता है, पर एक ही सत्य है। वही संसार की तरह प्रकट है--जब परमात्मा सोया होता है।
तुम्हारी अमुक्त-दशा क्या है? परमात्मा तुम्हारे भीतर सोया हुआ है।
तुम्हारी मुक्त-दशा क्या है? परमात्मा उठ गया, जाग आया। इतना ही भेद है।
तुममें और बुद्धपुरुषों में कोई बुनियादी भेद नहीं है। इतना ही भेद है-- तुम जाग रहे हो, तुम्हारे पास में कोई सोया हुआ है। वह भी जाग सकता है, तुम भी कभी सोए थे। बुद्ध ने कहा है, मैं भी कभी अज्ञानी था, अब ज्ञानी हो गया। तुम अभी अज्ञानी हो, कभी भी ज्ञानी हो सकते हो। मेरे और तुम्हारे बीच कोई मौलिक भेद नहीं है। मेरे पास एक क्षमता थी जिसका मैंने उपयोग कर लिया है, तुम्हारे पास एक क्षमता पड़ी है जिसका तुमने उपयोग नहीं किया है। तुम कभी भी कर सकते हो। किसी भी क्षण कर सकते हो। अभी कर सकते हो। इसी क्षण कर सकते हो।
सोए और जागे आदमी में फर्क ही क्या है?
जरा सा फर्क है। उतना ही फर्क है बुद्ध और अबुद्धों में।
न प्राणि बुद्धिभ्यः असम्भवात्।
"यह कोई मनुष्य की बुद्धि से कल्पित भी नहीं है।"
फिर शांडिल्य कहते हैं, शायद कुछ लोग कहें--कुछ लोग कहते हैं कि यह सारा संसार मनुष्य की बुद्धि की कल्पना है। शांडिल्य कहते हैं, यह बात सच नहीं हो सकती।
क्यों सच नहीं हो सकती? क्योंकि इस संसार में इतना विराट फैला हुआ है, मनुष्य की बुद्धि इतनी क्षुद्र है! इस सारे संसार का फैलाव मनुष्य की बुद्धि से तो असंभव ही है, मनुष्य की बुद्धि से तो इस पूरे फैलाव को जानना भी संभव नहीं है। अभी हमें पता भी नहीं है कि यह अस्तित्व कितना बड़ा है। यह पृथ्वी इतनी बड़ी मालूम पड़ती है! यह कुछ बड़ी नहीं है, यह बहुत छोटी है। सूरज इससे साठ हजार गुना बड़ा है। और सूरज कुछ खास बड़ा सूरज नहीं है, यह बड़ा छोटा सूरज है। महासूर्य हैं। जिनको रात में तुम तारों की तरह देखते हो, वे सब महासूर्य हैं। वे इस सूरज से करोड़ों गुने बड़े हैं।
इस पृथ्वी से सूरज तक फासला काफी है! सूरज की किरण को आने में साढ़े नौ मिनट लग जाते हैं। और सूरज की किरण बड़ी रफ्तार से चलती है--उससे बड़ी कोई रफ्तार नहीं है। एक सेकेंड में एक लाख छियासी हजार मील चलती है। साढ़े नौ मिनट लगते हैं सूरज से पृथ्वी तक आने में। मगर यह कोई बड़ा फासला नहीं है। क्योंकि सबसे करीब का जो तारा है, उससे किरण आने में हमको चार साल लग जाते हैं। और सबसे दूर का जो तारा है, उससे हमारे तक किरण आने में अस्सी करोड़ वर्ष लग जाते हैं। और उसके पार भी तारे हैं, जिनका हमें कुछ पता नहीं, क्योंकि उनकी किरण आई ही नहीं कभी। कभी आएगी भी, इसका भी कुछ पक्का नहीं है। और भी आगे तारे होंगे, जिनकी किरण कभी भी नहीं आएगी। उनका हमें पता ही नहीं चलेगा! हमें पता ही तब चलता है जब कोई किरण आ जाती है। नहीं तो हमें पता नहीं चलता।
इतना विस्तीर्ण लोक है यह!
अभी तारों की पूरी गिनती भी नहीं हो सकी। रोज गिनती होती जाती है, रोज तारे बढ़ते जाते हैं, और अब तो वैज्ञानिक कहने लगे हैं, गिनती कभी पूरी नहीं हो पाएगी, अनगिन तारे हैं। एक-एक तारा एक-एक सूरज है। एक-एक सूरज के पास बहुत सी पृथ्वियां हैं, चांद हैं, ग्रह-उपग्रह हैं। यह हमारी पृथ्वी तो एक छोटा-मोटा तिनका है, एक छोटा सा कण, जिसका कहीं कोई पता नहीं है। इतने विस्तीर्ण जगत की कल्पना मनुष्य से हो सकती है? यह मनुष्य की बुद्धि का

विस्तार हो सकता है? मनुष्य की छोटी सी बुद्धि! नहीं, इस विराट के आयोजन का कारण नहीं हो सकती। इसको तो समझना भी मुश्किल है।
इसलिए जो दार्शनिक कहते हैं कि यह सब मनुष्य की बुद्धि का ही फैलाव है, गलत समझते हैं। पर इसके पीछे बुद्धि है, इतना निश्चित है। मनुष्य की बुद्धि तो नहीं है, मगर कोई बुद्धि इसके पीछे है। क्योंकि इतनी व्यवस्था है। इतना सुसंयोजित है सब। इतना तारतम्य बंधा है। इतनी संगति है। कहीं कोई दुर्घटना नहीं हो रही। इतना विराट विस्तार और इतनी सुगमता से चल रहा है। इतनी शालीनता से चल रहा है। इतनी सहजता से चल रहा है। इसके पीछे कोई महाबुद्धि होनी चाहिए। परम बुद्धि होनी चाहिए। उस महाबुद्धि के तत्व का नाम ही परमात्मा है। इस अस्तित्व के पीछे छिपा हुआ जो बुद्धि का चरम रूप है, कॉस्मिक इंटेलिजेंस, जो ब्रह्मबुद्धि है, वही परमात्मा है।
हमारी बुद्धि उस परमात्मा की ही बुद्धि की एक छोटी सी किरण है। हम सूरज नहीं हैं, हम किरणें हैं। लेकिन अगर किरण हमारी पकड़ में आ जाए तो हम सूरज तक पहुंच सकते हैं। उसी किरण के धागे को पकड़ कर हम सूरज तक जा सकते हैं। उसी किरण के सहारे हम सूरज में लीन हो सकते हैं।
ऐसे लोग हुए जो सूरज में लीन हो गए हैं। राम हैं, कृष्ण हैं, क्राइस्ट हैं, मोहम्मद हैं, जरथुस्त्र हैं, लाओत्सु हैं; ऐसे लोग हुए जो इसी किरण के सहारे को पकड़ कर धीरे-धीरे-धीरे आदमी की बुद्धि को जगा कर धीरे-धीरे परम बुद्धि तक पहुंच गए हैं। उस परम समाधिस्थ अवस्था में लीन हो गए हैं, जहां उनका और ब्रह्मांड का भेद समाप्त हो जाता है।
निर्माय उच्चावचं श्रुतिः च निर्मिमीते पितृवत्।
"समस्त भूत-रचना की भांति वेद भी प्रकाशित हुआ है। जैसे पिता संतान को जन्म देकर शिक्षा का उपाय करता है।"
और शांडिल्य कहते हैं, उस परमात्मा से यह सारा जगत ही नहीं आया है, इस जगत को जीने के ढंग भी उस परमात्मा से आए हैं। इस जगत को कैसे हम सेवन करें, उसकी प्रक्रिया भी उसने दी है। कैसे हम भजन करें, उसका विज्ञान भी दिया है। उस विज्ञान का नाम ही वेद है।
याद रखना, वेद से सिर्फ हिंदुओं के वेद का संबंध नहीं है। मूल में जो शब्द है, वह है श्रुति। वह प्यारा शब्द है। लेकिन हिंदू जब इसका अनुवाद करने बैठते हैं, वे हमेशा श्रुति का अनुवाद वेद से कर देते हैं। उसमें हिंदू-बुद्धि आ जाती है। श्रुति बड़ा प्यारा शब्द है। श्रुति का अर्थ हैः सुना गया उनसे जिन्होंने जाना। श्रुति का अर्थ हैः जिन्होंने जाना, उनसे हमने सुना। कुरान भी श्रुति है, बाइबिल भी श्रुति है, धम्मपद भी श्रुति है। वेद पर ही वेद समाप्त नहीं हो गया है। वेद आता रहा है। आते रहे हैं। आते रहेंगे। क्योंकि जैसे-जैसे आदमी बदलता है, वैसे-वैसे आदमी को नये वेदों की जरूरत हो जाती है।
वैसे वेद शब्द प्यारा है। अगर ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद पर
हम उसको खत्म न कर दें तो वेद शब्द प्यारा है। वेद शब्द बनता है विद से। विद का अर्थ होता है--ज्ञान, जानना। जिन्होंने जाना, उनके वचन संगृहीत किए गए हैं। परमात्मा उतरता रहा है। परमात्मा की महाप्रतिभा मनुष्य की प्रतिभा में झलक मारती रही है, कौंधती रही है। सदा से। यह स्वाभाविक है। क्योंकि जिससे हम उत्पन्न हुए हैं, जिससे हम आए हैं, वह हमें जीवन-निर्देश भी दे, यह वैसा ही स्वाभाविक है, शांडिल्य कहते हैं, जैसे पिता संतान को जन्म देकर शिक्षा का उपाय करता है।
"समस्त भूत-रचना की भांति वेद भी प्रकाशित हुआ है।"
तो वेद से मेरा अर्थ ख्याल में ले लेनाः जब भी कहीं कुछ जाना गया है, तभी वेद जन्मा है। अनंत वेद हैं। हिंदुओं के वेद पर वेद समाप्त नहीं हो जाते। वह वेद का एक ढंग है। और-और वेद हैं। और-और भाषाओं में प्रकट हुए हैं। श्रुति शब्द ज्यादा बेहतर है। हमने सुना। बौद्धों के सब शास्त्र शुरू होते हैं--दस हैव आई हर्ड। ऐसा मैंने सुना है। क्योंकि बुद्ध ने कहा है, बुद्ध जानते हैं, लेकिन जिन्होंने लिखा है, उन्होंने तो सिर्फ सुना है। उन्होंने बुद्ध को कहते सुना है। उन्होंने स्वयं नहीं जाना है। जिन्होंने जाना है, उन्होंने कहा है। जिन्होंने जाना नहीं, उन्होंने लिख

लिया है, संगृहीत कर लिया है, ताकि काम आ सके उन सबके जो शायद अभी जानने में समर्थ नहीं हैं, शायद अभी जानने की जिनमें क्षमता नहीं है, पात्रता नहीं है। शायद जानने का अभी साहस भी नहीं है। शायद जानना घट जाए तो झेल भी न सकेंगे। उनके लिए संगृहीत कर लिए हैं। उनके लिए शिलालेख आबद्ध कर लिए हैं।
श्रुति प्यारा शब्द है। मैं तुमसे कुछ कह रहा हूं, तुम्हारे लिए श्रुति है। तुम्हें प्रीतिकर लगे, सम्हाल लेना। और ध्यान रखना, श्रुति पर रुकना नहीं है। एक दिन तुम्हारे लिए, जो तुमने सुना है, वह तुम्हारी अपनी आंख का देखा हुआ हो जाना चाहिए। श्रुति का अर्थ हैः सत्य कान से आया है। जो कान से आया है, वह पराया है। आंख से आना चाहिए। जब आंख से आता है तो अपना होता है। सत्य में और झूठ में फर्क ही इतना है। कान और आंख का फर्क है। इसलिए तो हम सुनी बात को नहीं मानते। अदालत भी कहती है--चश्मदीद गवाह। जिसने देखा हो आंख से।
मुल्ला नसरुद्दीन को अदालत में ले जाया गया, एक मुकदमा था। उससे मजिस्ट्रेट ने पूछा कि तुम कितने दूर थे इस स्थान से जहां यह हत्या की गई? मुल्ला ने कहा, कोई दो-तीन फर्लांग दूर।
और अमावस की रात थी और अंधेरा था और तुमने देख लिया कि हत्या की गई? तुम्हें कितनी दूर तक अंधेरे में दिखाई पड़ता है?
मुल्ला ने कहा, अब यह मत पूछो। ऐसे तो हमें चांद-तारे भी दिखाई पड़ते हैं। दूरी की मत पूछो।
चश्मदीद। आंख से जिसने देखा है।
रोशनी में ही दिखाई पड़ सकता है, अंधेरे में दिखाई नहीं पड़ सकता। भीतर
जब परम रोशनी फैल जाती है ध्यान की, तब दिखाई पड़ता है। इसलिए कहा है-- प्रकाशित होता है। तब उसके वचन उतरते हैं। तब उसकी वाणी उतरती है। इसको मुसलमान इल्हाम कहते हैं। ठीक शब्द है। इल्हाम का मतलब होता हैः तुम सिर्फ ग्राहक होते हो, कोई चीज उतरती है। हिंदू इसको अवतरण कहते हैं। तुम सिर्फ ग्राहक होते हो, तुम पात्र होते हो, कोई चीज उतरती है आकाश से और तुममें भर जाती है। ईसाई इसको रिविलेशन कहते हैं। ठीक शब्द है रिविलेशन। तुम्हारे किए कुछ नहीं होता, तुम जब शांत होते हो, तब प्रकट होता है। प्राकट्य होता है, रिवील होता है, तुम्हारे सामने खड़ा हो जाता है। शायद सदा से खड़ा ही था, तुम्हारी आंख बंद थी, तुमने आंख खोल ली है। सत्य का अनावरण हो गया। सत्य नग्न खड़ा हो गया। घूंघट गिर गया।
"समस्त भूत-रचना की भांति वेद भी प्रकाशित हुआ है। जैसे पिता संतान को जन्म देकर शिक्षा का उपाय करता है।"
परमात्मा ने तुम्हें छोड़ नहीं दिया है, परमात्मा तुम्हें विस्मृत नहीं कर गया है, परमात्मा तुम्हें भूल नहीं गया है, भेजता रहा है अपने संदेशवाहक, अपने पैगंबर, अपने तीर्थंकर, अपने अवतार। मगर मतलब क्या है अवतार भेजने का, तीर्थंकर भेजने का, पैगंबर भेजने का? इतना ही अर्थ हैः जो व्यक्ति भी समर्थ हुआ है ध्यान में, उसके भीतर परमात्मा उतर आया है। उसके माध्यम से उसने फिर तुम्हारी तलाश शुरू कर दी, तुम्हें फिर पुकारने लगा है--कि तुम कहां खो गए हो? कि तुम कहां छिप गए हो? कि जागो, तुम कितनी देर सो लिए! सुबह हो गई, उठो। उन्हीं सारे वचनों के संकलन किए गए हैं--वेद, धम्मपद, कुरान, बाइबिल, ताओ-तेह-किंग--वे सब वेद हैं। वेद पहले भी आते रहे, अभी भी आ रहे हैं, आगे भी आते रहेंगे। क्योंकि परमात्मा ने तुम्हें कभी छोड़ नहीं दिया है। तुम्हारे ऊपर आशा समाप्त नहीं हो गई है परमात्मा की। रवींद्रनाथ ने अपने एक गीत में लिखा है कि जब भी कोई बच्चा पैदा होता
है तब मैं परमात्मा को धन्यवाद देता हूं, क्योंकि हर बच्चे की पैदाइश से मुझे खबर मिलती है कि परमात्मा अभी आदमी से ऊब नहीं गया है। अभी फिर आदमी पैदा करता है। अभी आदमी में भरोसा है। अभी आशा उसने छोड़ नहीं दी है। हालांकि आदमी ने सब किया है कि आशा छोड़ दे। आदमी ने जो किया है, वह ऐसा है कि कोई भी पिता आशा छोड़ दे। भूल ही जाए सुपुत्र को! लेकिन रवींद्रनाथ कहते हैं, उसने अभी आशा नहीं छोड़ी, अभी वह आदमी बनाए जाता है। वह सोचता है, अभी भी कुछ बिगड़ा नहीं है, सुबह का भूला शायद सांझ को घर आ जाए।

आशा का कारण क्या हो सकता है?
आशा का कारण कुछ थोड़े से लोग हैं। क्योंकि कुछ लोग शाम तक आ गए हैं। कोई बुद्ध किसी दिन आ जाता है। करोड़ों नहीं आते, मगर एक आ जाता है। मगर एक के आने से खबर मिलती है कि बाकी करोड़ भी इस जैसे ही तो हैं, शायद वे भी किसी दिन आ जाएंगे। इसलिए आशा नहीं टूटती। कोई कृष्ण एक दिन जाग जाता है, फिर आशा सघन हो जाती है। अगर एक बीज में वृक्ष आ गया है, फूल खिल गए हैं, तो सब बीज भी तो परमात्मा ने ऐसे ही बनाए हैं। उनमें जरा भी भेद नहीं है। उनकी भी इतनी ही क्षमता है। उनकी भी इतनी ही शक्ति है। आज नहीं कल, कल नहीं परसों, किसी न किसी दिन उनमें भी बीज फूटेगा, पल्लव निकलेंगे, फूल खिलेंगे, उनकी सुवास भी लुटेगी।
मिश्रोपदेशात न इति चेत न स्वल्पत्वात्।
"उसमें मिश्रित उपदेश हैं, इस कारण आशंका मत करो। और वे थोड़े ही हैं।"
इस सूत्र को समझना!
शांडिल्य कहते हैंः अगर हम इस बात को मान लें कि हिंदुओं के वेद की ही तरफ उल्लेख है, तो वेद में बड़े विपरीत वक्तव्य हैं, मिश्रित वक्तव्य हैं, उनका क्या किया जाए? वेद एक ही बात नहीं बोलते, अनेक बातें बोलते हैं, एक-दूसरे से विपरीत बातें भी बोलते हैं। अब जैसे, वेद में हिंसक यज्ञ इत्यादि का स्वीकार है कि यज्ञ में हिंसा की जा सकती है। और वेद में यह अपूर्व वचन भी है--मा हिंस्यात सर्वभूतानि। किसी प्राणी की कभी हिंसा न करें। और दूसरी तरफ अश्वमेध यज्ञ में घोड़े की हत्या करनी पड़े। और नरमेध यज्ञ भी होते थे, जिसमें मनुष्य की हत्या करनी पड़े। तो सवाल यह उठता है कि वेद में तो बड़े विपरीत वचन हैं, ये एक ही परमात्मा से कैसे आ सकते हैं? और अगर एक ही पिता ने दिए हैं, तो इतने विपरीत वचन कैसे हो सकते हैं?
और जैसा अर्थ मैं कर रहा हूं अगर वैसा अर्थ है, तब तो और भी अड़चन हो जाएगी। क्योंकि फिर वेद और कुरान और बाइबिल और धम्मपद एक ही से उतरे हैं। फिर कृष्ण, बुद्ध, महावीर एक ही से उतरे हैं। फिर इनके वचनों में तो बड़ा विरोध है! वेद में ही बड़ा विरोध है, फिर वेद और धम्मपद में तो बहुत विरोध है। फिर बाइबिल और कुरान में तो बहुत विरोध है। वेद के ऋषि भी एक-दूसरे से सहमत नहीं हैं। तो फिर वेद के ऋषियों और बुद्ध और लाओत्सु में तो जमीन-असमान का फर्क है। फिर क्या होगा?
शांडिल्य कहते हैंः "उसमें मिश्रित उपदेश हैं, इस कारण आशंका मत करो।"
किस तरह शांडिल्य समझाते हैं। कुछ बातें ख्याल में ले लेनी चाहिए।
एक, निश्चित ही मिश्रित उपदेश हैं वेद में। क्योंकि एक ही पुत्र के लिए दिए गए उपदेश नहीं हैं। इतने पुत्र हैं परमात्मा के! और पुत्रों में बड़ा भेद है। जो एक के लिए उपदेश लागू है, वह दूसरे के लिए लागू नहीं है। और जो एक के लिए औषधि है वह दूसरे के लिए जहर हो जाएगा। किसी की बीमारी कुछ है, किसी की बीमारी कुछ और है। औषधि भिन्न होगी। तुम डाक्टर के पास जाते हो तो डाक्टर सभी मरीजों को एक से ही प्रिस्क्रिप्शन नहीं देता जाता। नहीं तो डाक्टर की कोई जरूरत ही नहीं है। डाक्टर की जरूरत क्या है? डाक्टर की जरूरत यही है कि वह बीमारी को परखे, निदान करे, डायग्नोसिस करे और फिर उपचार की व्यवस्था दे।
इसलिए वेद अकेले सार्थक नहीं हैं। बिना गुरु के सहारे तुम वेद में जाओगे, झंझट में पड़ जाओगे। वह वैसे ही है जैसे अकेले ही केमिस्ट की दुकान पर पहुंच गए, अपनी दवा तैयार करने लगे। केमिस्ट की दुकान पर तो लाखों दवाएं रखी हैं। उसमें टी.बी. की दवा है, उसमें कैंसर की दवा है, उसमें दवाएं ही दवाएं हैं। अब तुम अपने हाथ से ही पहुंच कर अगर दवाएं तैयार करने लगे, तो तुम दवाएं कैसे तैयार करोगे? तुम्हारे दवाएं तैयार करने के सब कारण गलत होंगे। शायद सबसे सुंदर शीशियों में से चुन लो। या सबसे ज्यादा रंगीन दवाएं चुन लो। या सबसे मीठी दवाएं चुन लो। कुछ इस तरह के तुम्हारे चुनाव होंगे। तुम्हारे चुनाव सब गलत होंगे। तुम ठीक चुन ही नहीं सकते। क्योंकि पहले तो तुम्हें यही पता नहीं कि तुम्हारी बीमारी क्या है? बीमारी का भी शायद पता हो तो तुम्हें यह पता नहीं कि इस बीमारी पर दवा क्या है? एक गुरु

चाहिए, सदगुरु चाहिए। जो वेद के हजारों-हजारों उपचारों में से, तुम्हारे लिए क्या उपचार है, तुम्हें दे सके।
इसलिए शास्त्र सदगुरु के बिना किसी मूल्य का नहीं है। और लोग शास्त्रों को पकड़े बैठे हैं। इसलिए फिर शास्त्र का कोई उपयोग नहीं कर सकते, वे सिर्फ पूजा कर सकते हैं। रख ली दवा की बोतल और उसकी पूजा कर ली। फूल चढ़ा दिए, मंत्र पढ़ दिया, घंटा बजा दिया, आरती उतार दी। मगर दवा पीना मत, नहीं तो खतरा हो जाएगा। पूजा ही हो सकती है। फिर लोग वेद की पूजा कर रहे हैं। और वेद में अगर उलट-पलट कर देखेंगे तो बेचैनी बढ़ जाएगी, क्योंकि वहां जरूर विपरीत वक्तव्य हैं। अलग-अलग लोगों के लिए दिए गए वक्तव्य हैं।
अब थोड़ा सोचो! जिससे कहा होगा वेद के ऋषि ने--मा हिंस्यात सर्वभूतानि। किसी भी प्राणी की हिंसा न करें। यह कोई बड़ा शुद्ध व्यक्ति रहा होगा। आखिरी घड़ी में आ गया होगा, जहां से सब तरह की हिंसा छोड़ी जा सकती है। फिर किसी को कहा कि सिर्फ यज्ञ में हिंसा करें। यह बड़ा हिंसक आदमी रहा होगा। इससे कहा कि सिर्फ यज्ञ में हिंसा कर लेना। इसकी हिंसा को सीमा दे दी। अब यज्ञ रोज नहीं किए जा सकते--खर्चीला यज्ञ है, रोज तो कर नहीं सकते। कभी जन्म में एकाध-दो बार कर पाओगे, तो जन्म में एकाध-दो बार हिंसा होगी, बाकी शेष जन्म छुटकारा हो गया। यह हिंसक व्यक्ति के लिए इतनी सुविधा बनाई होगी। फिर धीरे-धीरे जैसे-जैसे हिंसा छूटती जाएगी, वैसे-वैसे दूसरा उपदेश काम में आता जाएगा। आज जो दवा काम की है, शायद कल जब बीमारी कम हो जाए, तो बदलनी पड़े। दूसरी दवा देनी पड़े, जिसमें कम मात्रा हो। फिर और बीमारी कम हो जाए, तो तीसरी दवा देनी पड़े, जिसमें और कम मात्रा हो।
शांडिल्य कहते हैं कि वेद में जो विपरीतता है, वह पात्रों की भिन्नता
के कारण है। और यही मैं तुमसे कहना चाहता हूं, उसी कारण विपरीतता वेद में और कुरान में है। कुरान के पात्र तो और भी बड़े दूर थे--अलग सदी, अलग देश, अलग रीति-रिवाज, अलग लोग। कुरान वेद जैसा नहीं हो सकता। बाइबिल वेद जैसी नहीं हो सकती। बुद्ध के वचन वेद जैसे नहीं हो सकते। क्योंकि बुद्ध और वेद के बीच कोई पांच हजार साल का फासला है। मैं तुमसे जो कह रहा हूं, वह वेद जैसा कैसे हो सकता है? कोई दस हजार साल का फासला है। दस हजार साल में आदमी एकदम बैठा नहीं रहा है मुर्दे की तरह। आदमी चट्टान नहीं है, बहती हुई धारा है। बहुत कुछ बदला है। बहुत कुछ रूपांतरित हुआ है। आज के आदमी की जरूरत अलग है। तब के आदमी की जरूरत अलग थी। आज के आदमी का इलाज भी अलग होगा।
इसलिए बहुत बार जब तुम्हें मेरे वचनों में कुछ ऐसा लगे जो तुम्हारे शास्त्र के विपरीत जा रहा है, तो उसको सिर्फ इसलिए मत छोड़ देना कि वह शास्त्र के विपरीत जा रहा है। जब भी तुम्हें मेरे वचनों में कोई चीज शास्त्र के विपरीत जाती मालूम पड़े, तब ख्याल रखना कि जरूर उस चीज पर ध्यान देने का है। नहीं तो मैं भी शास्त्र के विपरीत जाने की कोई आकांक्षा नहीं रखता हूं। जहां तक बनता है, वही कहना चाहता हूं जो शास्त्र ने कहा है। लेकिन जब देखता हूं कि अब शास्त्र का कहा हुआ अगर कहता हूं तो तुम्हारी फांसी लगेगी, तभी उसे बदलता हूं। और अक्सर ऐसा हो जाता है, तुम उन्हीं बातों को मेरी मान लेते हो जो शास्त्र के अनुकूल हैं और उन बातों को छोड़ देते हो जो शास्त्र के अनुकूल नहीं हैं।
मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं कि हम आपकी उतनी बातें मानते हैं जितनी हमारे शास्त्र के अनुकूल हैं। जितनी अनुकूल नहीं हैं, वे हम नहीं मानते। और वही असली बातें हैं, जो तुम्हारे काम की हैं। जो शास्त्र के अनुकूल नहीं हैं, वही तुम्हारे लिए कही गई हैं, विशिष्ट तुम्हारी दशा के लिए संगत हैं।
तो भेद है शास्त्रों में। लेकिन शत्रुता नहीं है। भिन्नता है, विपरीतता नहीं है।
और फिर शांडिल्य कहते हैंः "उसमें मिश्रित उपदेश हैं, इस कारण आशंका
मत करो। और वे थोड़े ही हैं।"
और वे जो मिश्रित उपदेश हैं, वे बहुत थोड़े हैं, क्योंकि मनुष्य कितना
ही अलग-अलग देशों में हो, अलग-अलग समय में हो, उसका अधिक हिस्सा तो एक जैसा ही है। फिर अरब में पैदा हो, कि चीन में, कि हिंदुस्तान में; थोड़े-थोड़े फर्क

होंगे; रीति-रिवाज और होंगे, संस्कार और होंगे, हवा और होगी, प्रकृति और होगी; लेकिन मौलिक भेद तो क्या होंगे? मौलिक रूप से तो आदमी आदमी है। मौलिक वृत्ति तो वही की वही है। इसलिए शांडिल्य कहते हैंः भेद बड़े थोड़े से हैं। वे भेद लड़ने जैसे नहीं हैं। उन भेदों के संबंध में सदगुरुओं से पूछ लेना कि तुम्हारे लिए क्या लागू है। तुम उसके अनुकूल चल पड़ना।
बिना सदगुरु के शास्त्र खतरनाक है। सदगुरु के साथ शास्त्र का मूल्य परम है। सदगुरु के जीवन से अगर शास्त्र की ध्वनि तुम्हें फिर सुनाई पड़ जाए तो सदगुरु के माध्यम से शास्त्र पुनरुज्जीवित होता है। और उस ढंग से पुनरुज्जीवित होता है जो तुम्हारे काम का है। तुम्हारे योग्य, तुम्हारे अनुकूल, तुम्हारी परिस्थिति की संगति में शास्त्र का पुनर्जन्म होता है। सदगुरु का अर्थ ही यही है--शास्त्र का फिर-फिर जन्म, दुबारा-दुबारा, बार-बार।
लोग अत्यंत विवाद में पड़े हुए हैं कि गीता में ऐसा कहा हुआ है और कुरान में ऐसा कहा हुआ है, हम किसको मानें? इसी भय के कारण गीता पढ़ने वाला कुरान नहीं पढ़ता। वह गीता से ही काफी परेशान है। वह कहता है, गीता में ही इतनी बातें कही हुई हैं--कहीं भक्ति का वर्णन, कहीं कर्म का वर्णन, कहीं ज्ञान का वर्णन--गीता ही हमें उलझाने को काफी है! कौन ठीक है? फिर कुरान को और पढ़ो तो और झंझट हो जाती है। इसलिए तथाकथित धार्मिक लोगों ने निर्णय कर रखा है कि दूसरे के शास्त्र को पढ़ना ही मत, नहीं तो तुम और बिगूचन में पड़ जाओगे।
मैं तुमसे कहता हूंः सब शास्त्र पढ़ो। क्योंकि तुम ठीक से बिगूचन में
पड़ जाओ और शास्त्रों से तुम्हें मार्ग न मिले, तो तुम सदगुरु को खोजोगे; अन्यथा तुम सदगुरु को नहीं खोजने वाले हो। इसीलिए इतने शास्त्रों पर बोल रहा हूं कि तुम्हारी सारी भ्रांति तुमसे छीन लूं कि तुम्हें पता है। तुम्हें बिल्कुल स्पष्ट हो जाए कि हमें कुछ भी पता नहीं है, तुम्हारे पास पकड़ने को कुछ भी न रह जाए, न वेद, न कुरान, न बाइबिल। मैं सारे शास्त्र तुम्हारे सामने खड़े कर दे रहा हूं, तुम्हारे भीतर यह बात बिल्कुल साफ हो जानी चाहिए कि अब मैं क्या पकडूं? अब मैं कहां जाऊं? अब मुझे कोई मार्ग नहीं सूझता! जब तुम्हें यह स्पष्ट हो जाएगा कि मुझे कोई मार्ग नहीं सूझता, तभी तुम किन्हीं चरणों में झुकोगे और कहोगे कि मुझे मार्ग दो। अन्यथा तुम न झुकोगे। किताब से काम चल जाता हो तो सदगुरु के पास कोई जाए क्यों? किताब सस्ती चीज है।
फिर किताब के तुम मालिक होते हो। सदगुरु तुम्हारा मालिक हो जाता है। किताब के सामने समर्पण करने में कोई हर्जा नहीं है। एकांत में सिर झुका लेते हो। सदगुरु के सामने झुकने में दूसरा आदमी सामने मौजूद है, जिसके सामने तुम झुक रहे हो, वहां अहंकार को बाधा पड़ती है। इसलिए मुर्दा गुरुओं को लोग पूजते हैं, जिंदा गुरुओं की हत्या करते हैं। जिंदा गुरु तुम्हारे अहंकार का दुश्मन है। मुर्दा गुरु से तुम्हारे अहंकार की कोई दुश्मनी नहीं है।
पढ़ो सारे शास्त्र! वही रास्ता है शास्त्रों से मुक्त होने का। और वही रास्ता है सदगुरु की तलाश का। और धन्यभागी हैं वे, जिन्हें सदगुरु मिल जाता है।
आज इतना ही।

अथातो भक्ति जिज्ञासा, भाग 2 छत्तीसवां प्रवचन

मौजूदगी ही उसकी है

पहला प्रश्नः आप कहते हैं संसार में ही परमात्मा छिपा है। इसका प्रमाण क्या है?

संसार में परमात्मा छिपा है, ऐसा मैंने कभी कहा नहीं। संसार परमात्मा है!
छिपे का तो अर्थ हुआ, संसार से कुछ भिन्न है, संसार से कुछ अलग है, संसार की ओट में है, संसार की आड़ में है। कोई आड़ ही नहीं है। संसार ही परमात्मा है। सिर्फ तुम्हारी आंखें अंधी हैं। परमात्मा नहीं छिपा है, परमात्मा प्रकट है। सिर्फ तुम आंखें बंद किए हो। परमात्मा का नाद गूंज रहा है, लेकिन तुम बहरे हो। तुम्हारा हृदय धड़क नहीं रहा, इसलिए उसके छंद को तुम अनुभव नहीं कर पाते हो। सूरज निकला हो तो भी आंख बंद किए खड़े रहो, तो क्या कहोगे सूरज छिपा है? सिर्फ तुमने आंख अपनी छिपा रखी है, परमात्मा नहीं छिपा है। परमात्मा पर ओट नहीं, सिर्फ तुम्हारी आंख पर ओट है। आंख पर पर्दा है, परमात्मा पर पर्दा नहीं है। आंख खोलो। ये जो आंखें तुम्हारी हैं, ये केवल क्षुद्र को देख सकती हैं। एक और भी आंख है तुम्हारे भीतर, जो विराट को देखने में समर्थ है। ये जो आंखें हैं, सतह को छू सकती हैं। एक और आंख है तुम्हारे भीतर, जो गहराई में प्रवेश कर सकती है। परमात्मा उस गहराई का नाम है। प्रेम की आंख खोलो। भजन में उतरो। नाचो। आनंद में डूबो। परमात्मा की तलाश में जाने की जरूरत नहीं, परमात्मा तुम्हारी तलाश करता आएगा। पुकारो! प्रार्थना करो!
तुम पूछते होः "प्रमाण क्या है?"
क्या नहीं है जो प्रमाण नहीं है? हर चीज उसका प्रमाण है। ये पक्षियों
का गान, ये वृक्षों का सन्नाटा, ये सूरज की नाचती किरणें, ये हरियाली, ये लोग, तुम--सब प्रमाण हैं। इतना रहस्यपूर्ण जीवन है और तुम पूछते होः परमात्मा कहां है? प्रमाण क्या है? इतना अनंत उत्सव चल रहा है और तुम पूछते होः प्रमाण क्या है?

यह रसीली सहर, यह भीगी फजा
यह धुंधलका, ये मस्त नजारे
मय में गल्तां है डूबता महताब
रस में डूबे हैं मलगजे तारे
बेतकल्लुफ समां यह जंगल का
हूर देखे तो खुल्द को वारे
ये घने नख्ल, ये हरे पौधे जिनमें टांके हैं ओस ने तारे हाय, ये सुर्ख-सुर्ख ढाक के फूल ठंडे-ठंडे दहकते अंगारे

मुस्कुराया वह तिफ्लके-मशरिक जगमगाए वह दश्तोदर सारे
ली शुजाओं ने तन के अंगड़ाई
रेंग कर नूर के बहे धारे
किरनें लचकीं, वह रंग-सा बरसा
वह छूटे सुर्ख व जर्द फव्वारे वह गुलों की धड़क उठी छाती
वह खुश-अल्हान बाग चहकारे

और तुम पूछते होः प्रमाण क्या है?

कहां नहीं है प्रमाण? प्रत्येक घटना पर, प्रत्येक वस्तु पर उसके हस्ताक्षर हैं। पढ़ना आना चाहिए। गीता सामने रखी है, गान चल रहा है, लेकिन तुम्हें पढ़ना नहीं आता। तुम्हें गीत की समझ नहीं है। लेकिन समझ नहीं है, ऐसा मानना तुम्हारे अहंकार के विपरीत पड़ता है। तुम तो मान कर चलते हो--समझ है, मैं आंख वाला हूं। अब परमात्मा कहां है?
मैं तुम्हें याद दिलाना चाहता हूं--परमात्मा है, समझ नहीं है। इसलिए परमात्मा मत खोजो, समझ खोजो। निखारो अपने को। थोड़े ध्यान की दिशा में कदम उठाओ। प्रेम और ध्यान के दो पंख तुम्हारे ऊग आएं, फिर परमात्मा का आकाश ही आकाश है। उड़ना तुम्हें आ जाए, आकाश सदा से है। कुछ करना है तुम्हारे भीतर, बाहर कुछ नहीं करना है।
रामकृष्ण से किसी ने पूछा, परमात्मा का प्रमाण क्या है? रामकृष्ण ने कहा, मैं हूं।
मैं भी तुमसे कहता हूंः मैं हूं प्रमाण। और मैं तुमसे यह भी कहता हूंः तुम भी हो प्रमाण। प्रमाण ही प्रमाण हैं। कण-कण पर प्रमाण हैं और क्षण-क्षण प्रमाण हैं।
मगर प्रमाण को समझने की कला तुम्हें आती है? हम उतना ही समझ पाते हैं जितना हमारी समझने की पात्रता होती है। छोटा बच्चा है। अभी तुम उसके सामने कामशास्त्र की कीमती से कीमती किताब रख दो, तो भी रस उसे नहीं आएगा। तुम वात्स्यायन के कामसूत्र रख दो, वह सरका देगा। उसे अभी परियों की कहानियों में रस है। अभी भूत-प्रेतों की कहानियों में रस है। अभी तुम उसे कोहिनूर हीरा दे दो, वह एक तरफ कर देगा, और दो पैसे के खिलौने को, घुनघुने को बजाने लगेगा। क्या कोहिनूर कोहिनूर नहीं है? लेकिन बच्चे की समझ अभी खिलौने की समझ है। छोटे बच्चे के सामने तुम सौ रुपये का नोट करो और एक चमकता हुआ तांबे का पैसा, बच्चा तांबे के पैसे को चुन लेगा। सौ रुपये का नोट कागज है, उसका कोई मूल्य नहीं है उसके सामने। चमकदार सिक्का उसे लुभा लेगा।
हम अपनी समझ के अनुकूल देख पाते हैं।
यदि तुम्हें परमात्मा नहीं दिखाई पड़ता, तो एक बात सुनिश्चित है कि तुम्हारे भीतर अभी परमात्मा को देखने की क्षमता और पात्रता नहीं है। उस पात्रता को जगाओ।
लेकिन लोग उलटा काम करते हैं, वे कहते हैं, परमात्मा का प्रमाण चाहिए! लोग उलटी बात पूछते हैं, वे कहते हैं, परमात्मा कहां है, हमें दिखला दें! मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं, आप हमें परमात्मा दिखला दें तो हम मान लें। उन्होंने एक बात स्वीकार ही कर ली है कि उनके पास आंखें तो हैं ही; बस परमात्मा मौजूद हो जाए तो वे देख ही लेंगे।
परमात्मा मौजूद ही है। परमात्मा कभी गैर-मौजूद नहीं होता। जो गैर-मौजूद हो जाए वह परमात्मा नहीं है। मौजूदगी ही उसकी है। सारा अस्तित्व उसका है। अस्तित्व और परमात्मा दो नहीं हैं।
इसलिए मैं तुम्हें फिर याद दिला दूं, मैंने कभी नहीं कहा कि संसार में परमात्मा छिपा है। मैं कह रहा हूं यही कि संसार परमात्मा है। तुम्हारे लिए छिपा है, क्योंकि तुम्हारी आंख छिपी है, ओट में है।

दूसरा प्रश्नः प्रश्न पूछने का दुस्साहस किया, इसके लिए क्षमा करें। आपकी ही कृपा-अनुग्रह से हम लोग नेपाल से आए हैं। मधुर उपदेश सुनने को मिला, यह हमारा अहोभाग्य! कल के प्रवचन के दौरान आपने कहा कि एक ही क्षण में पूर्ण पाप कट जाते हैं। लेकिन मैंने सुना है कि पूर्वजन्म का पाप, या कहें प्रारब्ध भोगना पड़ता है। कृपया शंका दूर करें।

भोगना चाहो, तो भोगना पड़ता है। भोगना न चाहो, तो कट सकता है। सब तुम पर निर्भर है। अगर हिसाबी-किताबी हो तो भोगना पड़ेगा। तुमने हिसाब-किताब रखा तो अस्तित्व भी हिसाब-किताब रखता है। तुमने हिसाब-किताब जला दिया, अस्तित्व भी जला देता है। अस्तित्व तो दर्पण है। तुम जैसे हो वैसा ही झलका

देता है। अब बंदर अगर दर्पण में झांकेगा तो तुम यह मत समझना कि देवता की तस्वीर दिखाई पड़ेगी। बंदर दर्पण में झांकेगा तो बंदर ही दिखाई पड़ेगा। निश्चित तुमने जो सुना है, ठीक सुना है। लोग कहते रहे हैं--हिसाबी- किताबी लोग, गणित की लकीर से चलने वाले लोग। हिसाब-किताब में यह बात समझ में आती है कि बुरा किया है, तो भला करके बुरे को मिटाना पड़ेगा। तभी न्याय हो पाएगा। तभी हिसाब-किताब पूरा होगा। इसलिए उनको लगता है कि जन्मों- जन्मों तक बुरा किया, अब जन्मों-जन्मों तक भला करेंगे, तब कहीं चुकतारा हो पाएगा। यह हिसाबी-किताबी की दुनिया है।
मैंने सुना है, मुल्ला नसरुद्दीन का दादा मर रहा था। तो दादा ने अपने पोते को समझाते हुए कहा, नसरुद्दीन, बेटा काम करो, बेकार फिरना अच्छा नहीं है। जब मैं तुम्हारी उम्र का था तब मैंने एक फर्म में छह रुपये महीने की नौकरी की थी और फिर पांच साल के बाद उतनी ही बड़ी फर्म का मालिक बन गया था।
मुल्ला नसरुद्दीन ने हाथ मटका कर कहा, दादा जी, वे जमाने लद गए। अब ऐसी धांधली नहीं चलती। हर जगह कायदे से हिसाब रखा जाता है।
हिसाबी-किताबी मन एक ढंग से सोचता है। प्रेमी दूसरे ढंग से सोचता है।
वे ढंग अलग हैं।
अगर तुम ज्ञान के मार्ग पर चलोगे तो तुमने जो सुना है वह ठीक ही सुना
है कि पूर्वजन्म के पाप कहें, या प्रारब्ध, उन्हें भोगना पड़ेगा। भोगना ही नहीं पड़ेगा, उनके प्रतिकार के लिए उतने ही शुभ कर्म करने पड़ेंगे। और यह तो अंतहीन प्रक्रिया होगी। इसमें से छूटोगे कैसे? कितने जन्मों तक तुमने पाप किए हैं! उतने ही जन्म लग जाएंगे उन्हें भोगने में। और इस बीच भी तुम खाली तो नहीं बैठे रहोगे। इस बीच भी कुछ तो करोगे। कुछ भी करोगे तो पाप होता रहेगा।
तुम यह मत सोचना कि पाप करने से ही पाप होता है। जीने मात्र से पाप हो जाता है। सांस लेने से पाप हो रहा है। देखते नहीं, तेरापंथी जैन मुनि नाक पर मुंहपट्टी बांधे रखता है। किसलिए? क्योंकि सांस की गर्म हवा हवा में तैरते छोटे-छोटे कीटाणुओं को मार डालती है। सांस ही लेने में पाप हो रहा है। एक सांस में करीब एक लाख जीवाणुओं की हत्या हो जाती है। अब तुम क्या करोगे? सांस तो लोगे कम से कम! अपनी खाट पर ही पड़े रहोगे, मगर सांस तो लोगे? भोजन तो करोगे? पानी तो पीओगे? जीओगे तो कुछ? चलोगे-फिरोगे? हिलने-डुलने में पाप हो रहा है। जीने का अर्थ, कहीं न कहीं कुछ न कुछ होगा।
तो ये इतने जन्म तुम्हें पुराने पाप काटने में लग जाएंगे, और इस बीच तुम बैठे नहीं रहोगे, गोबरगणेश बन कर बैठे नहीं रहोगे, कुछ न कुछ करोगे, उस करने से फिर नया पाप होता रहेगा। फिर इसशृंखला का अंत कहां होगा? यह गणित बड़ा लंबा है। इस लंबे गणित में से बाहर आने का उपाय नहीं है। लेकिन जो बाहर आना ही नहीं चाहते, उनको यह गणित बड़ा सहारे का है। वे कहते हैं, हम करें भी क्या? प्रारब्ध तो भोगना पड़ेगा। यह प्रारब्ध को भोगने की बात उनकी तरकीब है। वे बाहर निकलना नहीं चाहते।
मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं, हम संन्यास तो लेना चाहते हैं, मगर अभी प्रारब्ध! जैसे उन्हें पता है कि प्रारब्ध क्या है। जैसे उन्हें पता है कि प्रारब्ध रोक रहा है। वे कहते हैं, अभी तो प्रारब्ध ऐसा है कि अभी तो संसार में रहना पड़ेगा।
संसार में रहना चाहते हो, सीधा क्यों नहीं कहते? प्रारब्ध की आड़ क्यों लेते हो? यह चालबाजी क्यों? यह बेईमानी क्यों? यह होशियारी क्यों? इतना ही कहो न सीधा कि अभी संसार में रहना है। अभी धंधा करना है, अभी चोरी, बेईमानी करनी है। प्रारब्ध! ऊंचा शब्द उपयोग कर लिया। उसके पीछे तुम छिप गए। उससे तुम्हें सहारा मिल गया। अब तुम्हें यह कहने का भी कारण नहीं रहा कि मैं अपनी वजह से रुका हूं। प्रारब्ध रोक रहा है! तुम्हें जो करना है वह तुम करते हो, तुम्हें जो नहीं करना है वह तुम नहीं करते हो। लेकिन प्रारब्ध के बहाने तुम अपने को बचा लेते हो। स्थगित कर रहे हो तुम जीवन को। तुम कहते हो, पहले सब भोग लेंगे, फिर कहीं मुक्ति होगी। तुम असल में मुक्ति चाहते नहीं।

भक्ति का शास्त्र छलांग में भरोसा करता है। भक्ति का शास्त्र कहता है, तुम परमात्मा पर छोड़ दो इसी क्षण--और तुम मुक्त हो गए।
भक्ति के शास्त्र की कीमिया समझो। भक्ति का शास्त्र कहता है कि तुमने कुछ कभी किया है, यह बात ही भ्रांत है। कर्म का सिद्धांत ही भ्रांत है कि तुमने कुछ किया है। जो परमात्मा ने करवाया है, हुआ है। जिस दिन तुम इस बात को परिपूर्ण रूप से स्वीकार कर लोगे... बड़ी कठिन है बात, क्योंकि फिर अहंकार को कोई जगह नहीं बचती। जब सभी वह करवा रहा है तो अहंकार को कोई स्थान नहीं बचा। पाप भी उसके, पुण्य भी उसके; अच्छा भी उसका, बुरा भी उसका। जिलाए तो वह, मारे तो वह। फिर तुम्हारे अहंकार को कहीं कोई जगह नहीं है। वह अहंकार कहता है, ऐसा कैसे हो सकता है? मैं कर्ता हूं! अहंकार राजी है, अगर बुरे कर्म का भी बोझ हो ढोने को तो भी राजी है, मगर कर्म होना चाहिए। अहंकार कहता है, मैं चोर हूं--यह भी राजी हूं--मुझे ऐसी साधुता नहीं चाहिए जिसमें मैं ही न रहूं। और मैं के बिना गए साधुता फलती नहीं। साधुता का एक ही अर्थ है कि मैं समाप्त हुआ।
भक्त का अर्थ होता है कि उसने सब परमात्मा पर छोड़ दिया--कि तूने जो करवाया, हुआ; तू जो करवा रहा है, होगा; जो आगे भी तू करवाता रहेगा, होता रहेगा। मैं अपने को विदा करता हूं। मैं अपने को नमस्कार करता हूं। भक्त अपने अहंकार को अलविदा कह देता है। यही समर्पण है। इस समर्पण में ही क्रांति घट जाती है। फिर कौन कर्ता? जब कर्ता ही न बचा तो कर्म कैसे? कैसा प्रारब्ध?
तो तुम पूछते हो कि क्या प्रारब्ध भोगना ही पड़ता है?
भोगना चाहो, तो भोगना पड़ता है। भोगना चाहो, तो कर्म का सिद्धांत मानो। अगर न भोगना चाहो, तो भक्ति की ऊर्जा में उतर जाओ।
कर्म का सिद्धांत संकल्प पर आधारित है, भक्ति की क्रांति समर्पण पर। कर्म के सिद्धांत में अहंकार केंद्र पर है। भक्ति के सिद्धांत में कोई अहंकार नहीं। एक ही परमात्मा सब चला रहा है। हम उसके ही हाथ में कठपुतलियां हैं। उसने जो करवाया, वह हुआ है। फिर कोई दंश नहीं है, कोई ग्लानि नहीं, कोई अपराध नहीं।
जरा सोचते हो इस अपूर्व भाव-दशा को, जब चित्त में कोई अपराध नहीं रह जाता, कोई ग्लानि नहीं रह जाती, कोई रोना-धोना नहीं रह जाता--कि ऐसा क्यों किया, वैसा क्यों नहीं किया? ऐसा हो जाता तो अच्छा था, वैसा हो जाता तो अच्छा था। आगे ऐसा कर लूं, आगे यह भूल न हो; यह ठीक हो जाए, वह ठीक हो जाए। सारी चिंता गई। सारी चिंता भक्त एक ही गठरी में उतार कर रख देता है परमात्मा के चरणों में। वह कहता है, यह लो, तुम जानो। अब जो भी तुम्हें मुझसे करवाना हो, करवा लो। चोर बनाना हो तो चोर बन जाऊंगा--अपराध अपने ऊपर न लूंगा। और साधु बनाना हो तो साधु बन जाऊंगा--और पुण्य का अहंकार अपने ऊपर न लूंगा। तुम्हारी जो मौज! तुम्हें जो खेल खेलना हो, मुझसे खेल लो। यह भक्ति की अपूर्व क्रांति है--उत्क्रांति है।
तो मैंने निश्चित कहा तुमसे, क्योंकि शांडिल्य को समझा रहा हूं। वे भक्ति के परम उपदेष्टा हैं। जैसे पतंजलि योग के, ऐसे शांडिल्य भक्ति के। जैसे महावीर कर्म के, ऐसे शांडिल्य भक्ति के। जिनको हिम्मत हो--और बड़ी हिम्मत चाहिए; मैं को छोड़ना ही सबसे बड़ी हिम्मत है। बुरे का भी सहारा मैं ले लेता है; वह कहता है, कोई फिकर नहीं; चिंता रहे, बेचैनी रहे, मगर मैं रहूं! अब यह निश्चिंत आकाश तुम्हें उपलब्ध होता है।
तुमने अपने को पैदा तो नहीं किया है। या कि किया है? तुमने अपने को बनाया तो नहीं। या कि बनाया है? तुम अपने स्रष्टा तो नहीं। तुम उसकी ही मौज की एक लहर हो। उसने चाहा तो हुए। वह जिस दिन चाहेगा, उसी दिन नहीं हो जाओगे। फिर उसने तुमसे जो करवाया, करवाया।
तुम्हारे कृत्यों में तुम्हारापन क्या है? राह जाते थे, एक स्त्री के प्रेम में पड़ गए। प्रेम हुआ, तुमने किया नहीं। बचपन से ही तुम्हें एक धुन सवार थी कि गहरे संगीत में उतरना है। होश नहीं था तब से संगीत की धुन सवार थी। कहते हैं, मोझर्ट जब तीन साल का था, तब उसने बड़े-बड़े संगीतज्ञों को चकित कर दिया। तीन साल का बच्चा! यह संगीत की धुन खुद तो पैदा नहीं की

होगी। यह आई होगी। तुम जरा अपने जीवन को ठीक से पहचानने की कोशिश करो! तुमने जो किया है, सब हुआ है। करने की भ्रांति हो रही है। जिस दिन यह दिखाई पड़ जाएगा कि सब हो रहा है, निश्चिंत हुए, विश्राम आ गया। मैं उस परम विश्राम को ही भक्ति कहता हूं। फिर वैसी घड़ी में एक ही क्षण में पूर्ण पाप कट जाते हैं।
असल में यह कहना कि एक ही क्षण में पूर्ण पाप कट जाते हैं, कहना उचित नहीं है, क्योंकि उस क्षण में जाना जाता है--मैंने कुछ किया ही नहीं है, न पाप, न पुण्य; मेरा कुछ भी नहीं है। मेरा कर्तृत्व नहीं है। कर्ता कट जाता है। कर्ता का भाव गिर जाता है। कर्ता के भाव के गिरते ही कर्ता के साथ जुड़ी सारी धारणाएं विदा हो जाती हैं।
तुम्हारी मर्जी! धीरे-धीरे चलना हो; पहुंचना कभी न हो, चलते ही रहना हो, तो ठीक है, काटो पाप! प्रारब्ध भोगो! मगर वह जिम्मा प्रारब्ध पर मत छोड़ो। वह जिम्मा तुम्हारा है। प्रारब्ध तो तरकीब है, बहाना है। अगर मुक्त होना चाहो तो इसी क्षण मुक्ति के द्वार खुले हैं। द्वार मुक्ति के कभी बंद ही नहीं होते। किसी युग में बंद नहीं होते। कलियुग में भी नहीं। किसी काल में बंद नहीं होते, पंचमकाल में भी नहीं। किसी स्थल पर बंद नहीं होते--न नरक में, न पृथ्वी पर, कहीं बंद नहीं होते। मुक्ति के द्वार सदा खुले हैं। जिसकी भी हिम्मत हो, उतर जाए। बस हिम्मत की एक ही शर्त पूरी करनी है। भक्ति यह नहीं कहती है कि कर्म छोड़ो, भक्ति कहती है--कर्ता छोड़ो। एक ही आघात में जड़ कट जाती है। कर्ता ही कट गया तो कर्म कट गए।
कर्म तो पत्तों जैसे हैं, कर्ता जड़ जैसा है। तुम पत्ते काटते रहते हो, नये पत्ते निकलते आएंगे। जड़ में पानी डाल रहे हो, जड़ में खाद डाल रहे हो, जड़ जमीन में गड़ी है, रस पी रही है, और तुम पत्ते काट रहे हो। काटते रहो पत्ते जन्मों-जन्मों तक, नये पत्ते निकलते आएंगे और तुम काटते रहना। जड़ ही काट दो। ज्ञानमार्गी पत्ते काटता है, भक्त जड़ काट देता है। कर्म पत्ते हैं, कर्ता जड़ है। जड़ के काटते ही सब विलीन हो जाता है।
और स्वभावतः, जो पत्ते काटता रहा, उसकी समझ में नहीं आता। क्योंकि वह कहता है कि हम कितने दिन से काट रहे हैं! काटते हैं और नये निकल आते हैं। यह कोई इतना आसान थोड़े ही है। जो जड़ काटना जानता है, वह कहता है, एक क्षण में हो जाता है; एक कुल्हाड़ी, कि बात खत्म हो गई। ज्ञानी हंसता है, वह कहता है, तुम समझ क्या रहे हो अपने आप को? इधर मैं कैंची लिए बैठा हूं, काटता रहता हूं, काटता रहता हूं, नये पत्ते निकलते आते हैं। बड़ा प्रारब्ध का लंबा जाल है। कहीं एक चोट में कटी है? मगर वह कैंची लिए बैठा है, उसे कुल्हाड़ी का पता नहीं है। उसे जड़ का ही पता नहीं है। जड़ छिपी है। पत्ते प्रकट हैं, जड़ अप्रकट है। कर्म तो तुम्हारे दुनिया भर देख लेती है, कर्ता कोई नहीं देख पाता। तुम्हीं बहुत खोज करोगे अपने भीतर, खोदोगे, तो कर्ता पकड़ में आएगा। वह जड़ है। और वह छिपा है भीतर और रस ले रहा है। और वहीं से पल्लव निकल रहे हैं, पत्ते निकल रहे हैं, शाखाएं निकल रही हैं, फूल निकल रहे हैं, जिंदगी चल रही है।
जीवन कर्ता के भाव से फैल रहा है। आवागमन छूट जाए इसी क्षण, अगर तुम जड़ काट दो।

अथाह सागर में
डूबते जहाज
या
पूजा के अंजुरी भर जल में,
सोचो!
अथाह सागर में
डूबते जहाज
या
पूजा के अंजुरी भर जल में,
वह जो पूजा का अंजुलि भर जल है, उसमें बड़े-बड़े जहाज डूब जाते हैं। उसमें सब डूब जाता है, सारा संसार डूब जाता है।

[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible],
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]! [illegible]
[illegible]?

[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible],
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]! [illegible]
[illegible]?

[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible],
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible],
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]! [illegible]
[illegible]?

[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible],
[illegible]
[illegible]!
[illegible],
[illegible]
[illegible]
[illegible]

हे राम! तुम हो
या केवल मैं?
बस इतनी ही बात समझ लेने जैसी है। राम है अगर केवल, और तुम गए, तो अंजुलि भर पूजा के जल में बड़े-बड़े जहाज डूब जाते हैं। अगर तुम हो और राम नहीं है, तो अनंत-अनंत जन्मों तक तुम चेष्टा करो, नाव बनाओ, नाव कभी बनेगी नहीं। पार तुम कभी हो न पाओगे। डुबकी कभी लगेगी नहीं। तुम किनारे पर ही चलते रहोगे और चलते रहोगे। पूजा का अंजुलि भर जल पर्याप्त है। एक भाव समर्पण का पर्याप्त है। हजार उपाय--व्रत, उपवास, त्याग, तपश्चर्या--काम नहीं आते। एक उपाय--झुक जाना, माथा टेक देना उसके चरणों में--पर्याप्त है।

तीसरा प्रश्नः मैं पचपन वर्ष का हूं। जीवन में तीन बार विवाह हुआ और
हर बार पत्नी की मृत्यु हो गई। लेकिन अभी भी स्त्री के प्रति मन ललचाता है। मैं क्या करूं?

क्या चौथी स्त्री को मारने का विचार है? अब तो जागो! परमात्मा ने तीन-तीन बार इशारा किया, तुम्हारे कारण तीन स्त्रियां विदा हो गईं, और तुम अभी भी ललचा रहे हो! चौथी पर नजर खराब है!
एक समय है, तब सब सुंदर है। अब तुम पचपन के हुए! अब कुछ और भी करोगे या यही घरघूले बनाते रहोगे? और तुम सौभाग्यशाली हो! तुमने तो तीन-तीन बार झंझट ली, परमात्मा ने तुम्हें तीन-तीन बार झंझट से बाहर कर दिया। तुम स्वाभाविक संन्यासी हो, अब और क्यों झंझट में पड़ते हो? कहावत तुमने सुनी नहीं कि भगवान जब देता है, छप्पर फाड़ कर देता है! तुमको छप्पर फाड़ कर देता रहा। और क्या चाहते हो?
और तीन-तीन स्त्रियों से अनुभव पर्याप्त नहीं हुआ? क्या पाया? सुख पाया? सुख यहां कोई भी दूसरे से कभी पाता नहीं। न पति पत्नी से पाता है, न पत्नी पति से पाती है। दूसरे से सुख कभी मिला है? सुख अंतर्भाव है। भीतर से उमगता है। और जो अपने से पा लेता है, वह पत्नी से भी पा लेता है, बेटे से भी पा लेता है, पिता से भी पा लेता है, मां से भी पा लेता है। और कोई भी नहीं होता तो अकेले में भी पाता रहता है। उसके भीतर ही उमग रहा है। और जो अपने से नहीं पा सकता, वह किसी से भी नहीं पा सकता। जो तुम्हारे भीतर नहीं है उसे तुम किसी से भी पा न सकोगे।
जीसस का प्रसिद्ध वचन हैः जिनके पास है, उन्हें और दिया जाएगा; और जिनके पास नहीं है, उनसे वह भी छीन लिया जाएगा जो उनके पास है।
भीतर सुख चाहिए, भीतर शांति चाहिए, भीतर उल्लास चाहिए--बस फिर और बढ़ता जाता है। फिर हर हालत में बढ़ता है; साथ रहो, संग रहो, अकेले रहो, बाजार में रहो, भीड़ में रहो--कहीं भी रहो--घर में रहो, घर के बाहर रहो, मंदिर में रहो, जहां रहना हो रहो, भीतर सुख बढ़ता है तो बढ़ता चला जाता है। खोजना वहां है। जब तक तुम दूसरे में सुख खोज रहे हो, तब तक तुम भ्रांति में पड़े हो। दूसरा तुममें खोज रहा है, तुम दूसरे में खोज रहे हो, दोनों भिखमंगे हो। न उसके पास है। उसके ही पास होता तो तुममें खोजने आता? ये तीन स्त्रियां जो तुम्हें खोजती चली आईं और मारी गईं, इनके पास सुख होता तो तुमको खोजतीं? तुम किसमें खोज रहे थे? जो तुममें खोजने आया, उसमें तुम खोज रहे हो? जिसके हाथ तुम्हारे सामने भिक्षापात्र की तरह फैले हैं, उसके सामने तुम भी अपना भिक्षापात्र फैला रहे हो? भिखमंगे भिखमंगों के सामने खड़े हैं! फिर अगर जीवन में सुख नहीं मिलता, तो आश्चर्य क्या है?
मांगे से नहीं मिलता सुख, जागे से मिलता है। सुख का सृजन करना होता है। सुख तुम्हारे प्राणों का संगीत है। जैसे वीणा पर कोई तार छेड़ देता है, ऐसे ही जब तुम अपनी अंतर्वीणा को छेड़ते हो, जब उस कला को सीख लेते हो--उसी कला का नाम प्रार्थना है, उसी कला का नाम ध्यान, उसी कला का नाम भजन, उसी कला का नाम भक्ति, ये सब उसी के नाम हैं। वीणा तो मिली है जन्म के साथ, लेकिन कला सीखनी पड़ती है। वह किसी सदगुरु के पास सीखनी पड़ेगी। किसी ऐसे के पास सीखनी पड़ेगी जिसने अपनी वीणा बजा ली हो। बाहर की वीणा भी सीखने जाते हो, किसी उस्ताद के चरणों में बैठना पड़ता है। भीतर की वीणा तो तुम्हें

मिली है, वह परमात्मा की भेंट है। उसी वीणा का नाम जीवन है। मगर उस वीणा को कैसे बजाएं, यह पता नहीं है। और जब तक वह वीणा न बजे, तब तक तृप्ति नहीं है। अतृप्ति अनुभव होती है, तुम बाहर तड़फते हो, भागते हो; इससे मिल जाए, उससे मिल जाए, तुम दौड़ते रहते हो, दौड़ते रहते हो जिंदगी भर। और वीणा तुम्हारे भीतर पड़ी है, और संगीत वहां पैदा होना था, और वहीं संगीत पैदा हो जाता तो सब संतुष्टि हो जाती। मगर वहां तुम जाते नहीं। वहां तुम आंख भी ले जाने से डरते हो, क्योंकि वह नंगी पड़ी वीणा तुम्हें बड़ा बेचैन कर देती है। तुम समझ ही नहीं पाते कि क्या है। वे तार तुम्हारी समझ में नहीं आते। और अगर कभी तुम उन्हें छेड़ते हो तो सिर्फ बेसुरापन पैदा होता है, क्योंकि कला तुम्हें नहीं आती।
धर्म और क्या है? अंतर्वीणा को बजाने की कला है!
तीन-तीन बार तुमने प्रयास किया और तुम हार गए, अब तो उम्र भी हो गई। बयालीस साल की उम्र तक पुरुष का स्त्री में रस रहे, स्त्री का पुरुष में रस रहे, यह स्वाभाविक है। इसमें कुछ पाप नहीं है। जैसे चौदह साल की उम्र में रस पैदा होता है। जीवन में सारे परिवर्तन सात-सात साल के बिंदुओं पर होते हैं। पहला परिवर्तन तब होता है जब बच्चा सात साल से आठ साल का होता है। तब उसमें अहंकार का जन्म होता है। वह अपने मां-बाप से मुक्त होने की कोशिश करता है। इसलिए सात साल के बच्चे हर चीज में इनकार करने लगते हैं--नहीं करूंगा, नहीं जाऊंगा। और जो-जो उनसे कहो, वही इनकार करेंगे; और जो इनकार करो कि मत करना--सिगरेट मत पीना, सिनेमा मत जाना, वे पहुंच जाएंगे और सिगरेट भी पीएंगे। इनकार से अहंकार पैदा होने का उपाय बनता है। सात साल की उम्र में अहंकार पैदा होता है, व्यक्ति अपने को अलग करता है मां-बाप से। सात साल की उम्र में वस्तुतः मां-बाप के गर्भ से मुक्त होने की चेष्टा शुरू होती है। चौदह साल में चेष्टा पूरी हो जाती है।
इसलिए चौदह साल के बच्चे मां-बाप को भी जरा बेचैन करते हैं और बच्चों
को मां-बाप भी जरा बेचैन करते हैं। चौदह साल का बच्चा बाप के सामने खड़ा होता है तो बाप भी थोड़ी मुश्किल में पड़ता है। और चौदह साल का बच्चा भी अपने को हमेशा मुश्किल में अनुभव करता है। अब उसकी कामवासना जगनी शुरू होती है। दूसरे सात साल पूरे हो गए। अहंकार के बिना कामवासना नहीं जग सकती। पहले अहंकार जगे, तो ही कामवासना जग सकती है। पहले मैं जगे, तो तू की तलाश जग सकती है। नहीं तो तू की तलाश कैसे होगी? चौदह साल में वासना जगती है। अट्ठाइस साल में वासना अपने शिखर पर पहुंच जाती है। चौदह साल में जगती है, इक्कीस साल में परिपक्व होती है, अट्ठाइस साल में अपने शिखर पर पहुंच जाती है। पैंतीसवें साल में ढलान शुरू हो जाता है। पैंतीस साल में जिंदगी का आधा हिस्सा आ गया। पहाड़ी चढ़ गए तुम जितनी चढ़नी थी, पैंतीस के बाद उतार शुरू होता है। बयालीस में एकदम शिथिल होने लगती है। उनचास में समाप्त हो जाती है।
बयालीस के पहले तक स्त्री में पुरुष का रस, पुरुष में स्त्री का रस स्वाभाविक है। बयालीस के बाद शिथिलता आनी शुरू होती है। उनचास में समाप्त हो जानी चाहिए, अगर जीवन बिल्कुल स्वाभाविक चलता जाए। उनचास के बाद एक नया अस्तित्व का चरण उठता है। जैसे एक से सात तक अहंकार को पाला था, ऐसे ही उनचास से छप्पन तक अहंकार का विगलन शुरू होता है। ये ही क्षण हैं जब आदमी धार्मिक होने की चेष्टा में संलग्न होता है। छप्पन से लेकर तिरसठ तक अहंकार शून्य हो जाना चाहिए। और तिरसठ से सत्तर तक निर-अहंकार जीवन होना चाहिए।
अगर सत्तर वर्ष में हम जीवन को बांट दें, तो जैसे पहले से सात साल तक निर-अहंकार जीवन था, ऐसे ही फिर तिरसठ से सत्तर तक निर-अहंकार जीवन हो जाना चाहिए--समाधिस्थ का जीवन, मृत्यु की तैयारी, परमात्मा से मिलने का उपाय। अब तुम कहते हो कि तुम पचपन के हुए! अब समय गंवाने को नहीं है। ऐसे ही काफी समय गंवा चुके हो। और तीन बार संयोग की बात थी कि स्त्रियां उदारमना थीं, छोड़ कर चली गईं। अब चौथी भी इतनी उदारमना होगी, कुछ कहा नहीं जा सकता। अवसर भी एक सीमा तक दिए जाते हैं। बार-बार मिलते ही रहेंगे, इतना भी भाग्य पर भरोसा मत करो।

और ध्यान रखो, समझदार आदमी दूसरे के अनुभव से भी सीख लेता है। और नासमझ अपने अनुभव से भी नहीं सीख पाता। तुम्हें मिला क्या है? एक बार इसका निरीक्षण करो। जीवन में सिर्फ आशाएं हैं, अनुभूतियां कुछ भी नहीं। मिलेगा, ऐसी आशा रहती है। मिलता कभी कुछ नहीं। बुद्धिमान आदमी दूसरे के जीवन को भी देख कर समझ जाता है। अब समय आ गया है कि थोड़ी बुद्धिमानी बरतो। मैंने सुना है, एक अदालत में मुकदमा था। मुल्ला नसरुद्दीन गवाह की तरह मौजूद था। मजिस्ट्रेट ने उससे पूछा कि नसरुद्दीन, जब इस स्त्री की अपने पति के साथ लड़ाई हुई, तब तुम क्या वहां मौजूद थे? मुल्ला नसरुद्दीन ने कहा, जी हां! जज ने पूछा कि तुम उसके गवाह की हैसियत से क्या कहना चाहते हो? बोलो! मुल्ला नसरुद्दीन ने कहा, यही हुजूर कि मैं कभी शादी नहीं करूंगा।
आदमी दूसरे के अनुभव से भी सीख लेता है। तुम स्वयं तीन-तीन बार अनुभव
से गुजर चुके, तुम कब दूसरे से मुक्त होओगे? काफी हो गई देर। अब तो सांझ भी होने लगी। पचपन साल के हो गए, अब सांझ का वक्त आने लगा, अब रात की तैयारी करो। अब दूसरी यात्रा की तैयारी करो, अब आगे और भी पड़ाव हैं। इस शरीर के पार और भी मंजिलें हैं--इम्तहां अभी और भी हैं! अब यहीं मत उलझे रहो। अब यह जो चित्त बार-बार अभी भी स्त्री की तरफ जा रहा है, यह जाता रहेगा, अगर तुमने ध्यान में न लगाया। इसे कोई डेरा चाहिए, कोई पड़ाव चाहिए, कोई ठहरने की जगह चाहिए। यह जाता रहेगा स्त्री की तरफ, अगर तुमने इसे परमात्मा में न लगाया। अब तो परमात्मा को ही प्रेयसी बनाओ। अब तो उसी प्यारे की खोज करो। अब तो उसी से राग, उसी से रास रचाओ। अब तो उसी से भांवर डालो। अब तो उसी से फेरे पड़ जाएं। उससे पड़े फेरों का कभी फिर अंत नहीं होता। उससे ही साथ हो जाए। अब तो विवाह उसी से कर लो।
कबीर कहते हैंः मैं राम की दुल्हनिया।
अब तो कुछ ऐसा करो। इस संसार में तीन-तीन बार तुमने रास रचाना चाहा, नहीं रच पाया; तीन-तीन बार भांवरें पड़ीं और टूट-टूट गईं; तीन-तीन बार साथी खोजा और साथी खो-खो गया। अब तो उसे खोजो जो कभी खोता नहीं है। जो मिला सो मिला।
धन्यवाद दो तीन पत्नियों को! नहीं तो एक ही डुबाने को काफी थी। सौभाग्यशाली हो तुम! मगर अपने सौभाग्य को अब दुर्भाग्य में मत बदलो।
और ध्यान रखना कि मैं किसी को असमय में नहीं कहता कि कोई छोड़ कर भाग जाए। लेकिन तुमसे तो कहूंगा। अगर यही बात कोई और मुझसे पूछता... कल ही रात किसी युवक ने पूछी--अभी उम्र होगी कोई अट्ठाइस साल की--कि ब्रह्मचर्य का भी मन में बड़ा भाव उठता है और कामवासना भी उठती है, मैं क्या करूं? मैंने उससे निश्चिंत कहा कि तू अभी कामवासना में जा। अभी ब्रह्मचर्य को रहने दे। लेकिन तुमसे मैं यह न कह सकूंगा।
इसलिए ध्यान रखना, मेरे वक्तव्य विरोधाभासी होंगे बहुत बार। अब कल तुम कभी इसको किसी किताब में पढ़ोगे कि मैंने किसी को कहा है कि ब्रह्मचर्य की फिकर छोड़, अभी तू कामवासना में जा! तुम इसे अपने लिए मत समझ लेना! यह किससे कहा है, किसके संदर्भ में कहा है, वह स्मरण रखना। अगर यह युवक अभी भाग जाए--भागना चाहता है--तो पछताएगा। और पीछे जब कोई पछताता है तो बड़ी मुश्किल हो जाती है। जब समय है किसी जीवन की अनुभूति में उतरने का, तब उतर जाना उचित है। क्योंकि फिर पीछे उतर भी न सकोगे। और बिना उतरे अटके रह जाओगे।
मैंने सुना है, एक पहाड़ी की चोटी पर एक योगी रहता था। वह जवान था, स्वस्थ और सुंदर शरीर का मालिक था। मगर उसने शरीर का ख्याल त्याग दिया था। दुनिया को भी त्याग दिया था। ऐश-आराम को त्याग दिया था। पत्नी-बच्चों को छोड़ कर पहाड़ पर भाग आया था। वह दिन भर भगवान की लौ लगाए समाधि में बैठा रहता था, आंखें भी नहीं खोलता था। नीचे पहाड़ के पास बसे गांव से कुछ लोग भोजन लाकर रख जाते थे। जब कोई वहां न होता, चुपचाप भोजन कर लेता, फिर अपनी लौ में लग जाता। एक दिन एक जवान औरत उस पहाड़ी की चोटी पर आई। योगी ने उसे देखा। औरत कोई सुंदर नहीं थी, पर जवान थी। पूछा योगी ने, कहो, कैसे आना हुआ? उस स्त्री ने कहा, मैं योगी जी को देखने आई हूं। सुना है कि यहां बहुत बड़े

योगी रहते हैं, जो ब्रह्मचारी हैं। औरत सुंदर तो नहीं थी, लेकिन उसके शरीर में जवानी का खमीर था। उसकी आवाज में शहद और शराब घुले हुए थे। योगी ने उसकी तरफ ध्यान से देखा और उसकी आंखों से दो आंसू टपके और उसने जवाब दिया कि तुम थोड़ी देर करके आईं। पहले यहां एक योगी ब्रह्मचारी रहते थे, अब नहीं रहते। तुम क्या आईं, योगी ब्रह्मचारी जा चुके हैं!
एक उम्र है। असमय में कुछ भी न करो।
तुमसे तो मैं कहूंगा कि पचपन काफी समय हो गया। कौन जाने कितने थोड़े से दिन बचे हों जिंदगी के! अब उन्हें भजन में लगाओ।

हो चुका है चार दिन मेरा-तुम्हारा
प्रेम हंसिनी, हेम हंसिनी, और इतना भी यहां पर कम नहीं है।

एक आंधी है उठी गर्दोगुबारी
औ" इसी के साथ उड़ जाना मुझे है,
जानता मैं हूं नहीं, कोई नहीं है
कब तुम्हारे पास फिर आना मुझे है,
यह विदा का नाम ही होता बुरा है
डूबने लगती तबीयत, किंतु सोचो--
हो चुका है चार दिन मेरा-तुम्हारा,
प्रेम हंसिनी, हेम हंसिनी, और इतना भी यहां पर कम नहीं है।

पंख चांदी के मिले हों या कि सोने
के मिले हों, एक दिन झड़ते अचानक,
औ" सभी को देखनी पड़ती किसी दिन,
जड़ प्रकृति की एक सच्चाई भयानक,
किंतु उनके वास्ते रोएं उन्हें जो
बैठ सहलाते रहे हैं, किंतु उनसे जो वसंती
बात बहलाते बवंडर सात दहलाते
रहे हैं, जिंदगी उनके लिए मातम नहीं है।
हो चुका है चार दिन मेरा-तुम्हारा,
प्रेम हंसिनी, हेम हंसिनी, और इतना भी यहां पर कम नहीं है।

हो गया चार दिन का मेरा-तुम्हारा, हो गए चार दिन के राग-रंग, हो गए चार दिन सपने, देख लिए--जरूरी था देखना, जागने के लिए सपने देखना जरूरी है--भटक लिए, अब घर की तलाश हो।
हो चुका है चार दिन मेरा-तुम्हारा,
प्रेम हंसिनी, हेम हंसिनी, और इतना भी यहां पर कम नहीं है।
पचपन वर्ष लंबा समय है। बहुत तो गुजार आए, थोड़ी बची है। हाथी तो निकल गया, शायद पूंछ ही बची है। पूंछ भी निकल जाएगी जब हाथी निकल गया। हाथी तो व्यर्थ ही निकल गया, अब जरा पूंछ को थोड़ी सार्थकता दे लो। संसार की आपाधापी में, दौड़-धाप में, वासना में, इच्छा में, महत्वाकांक्षा में सिर्फ गंवाना ही गंवाना है, पाना कुछ भी नहीं है। और अगर कुछ पाना है तो इतना ही कि इस सारी व्यवस्था के प्रति कोई जाग कर देख ले कि यह सपना है, माया है, मेरी ही वासनाओं का वेग है। अब अपने को देखो, दूसरे से मुक्त होओ। अब भीतर की तरफ मुड़ो। अब घर लौटो।

चौथा प्रश्नः आपके सान्निध्य में मेरा जीवन इतना बदल रहा है कि मैं जन्मों-जन्मों तक भी इस ऋण से मुक्त नहीं हो सकती। मेरा मौन भी गहराता जा रहा है। लेकिन मेरे मौन से मेरे स्वजनों को मेरे ऊपर उदासी उतरती नजर आती है, क्योंकि मैं उनके साथ नहीं रहती। मुझे अपने लिए चिंता होने लगी है कि मैं शांत हो रही हूं या उदास? कृपया मार्ग बताएं।

शांति जब आती है तो बहुत कुछ उसका रंग-ढंग उदासी का होता है। उदासी से उसका थोड़ा तालमेल है। इसलिए अक्सर शांत व्यक्ति को बाहर से देखने वाले लोग समझ सकते हैं कि उदास हो गया। क्योंकि वे पुराने कहकहे अब न होंगे, वह राग-रंग अब न होगा, गपशप में उत्सुकता अब न होगी, परनिंदा में रस अब न होगा, रेडियो-टेलीविजन और फिल्म में जाने में आतुरता न होगी। शांत व्यक्ति में ये सारी बातें खो जाएंगी। उसके भीतर इतनी रसधार बहने लगी है कि अब बाहर उसकी तलाश नहीं है।
मनोरंजन की जरूरत किसको पड़ती है? जो उदास है। इस सत्य को समझने की कोशिश करो।
जितना उदास आदमी, उतने मनोरंजन की जरूरत पड़ती है। इसलिए अमरीका में सबसे ज्यादा मनोरंजन के साधन ईजाद किए जा रहे हैं, क्योंकि अमरीका बहुत उदास है। सब है, और कुछ भी मालूम नहीं होता कि सार्थक है। तो नई-नई तलाश की जाती है--नये उपाय खोजो, नये नशे खोजो, नई स्त्रियां खोजो, नये पुरुष खोजो। खोजते रहो कुछ भी, कहीं अपने को उलझाए रखने के लिए। सांड़ों को लड़ाओ, कबूतर लड़ाओ, तीतर लड़ाओ, या आदमियों को लड़ाओ। उत्तेजना का कोई उपाय खोजो। फिल्में भी बनानी होती हैं तो ऐसी जिनमें उत्तेजना हो। छुरे खिंचें, बंदूकें चलें, हत्याएं हों, आत्महत्याएं हों, जासूसी हो। किसी तरह इस मुर्दा होते आदमी को थोड़ी सी ललक आए। वह जरा रीढ़ को सीधा करके फिल्म देखते वक्त बैठ जाए और देखने लगे कि हां, कुछ हो रहा है! कि जिंदगी में कुछ हो रहा है!
एक स्त्री से थक गए, अब दूसरी स्त्री खोज लो। थोड़ी देर को तो ललक रहेगी। फिर से हनीमून हो जाए। दो-चार दिन फिर से ज्योति आ जाए, लगे कि हां, कुछ हो रहा है! जिंदगी बेकार नहीं है। एक धंधा करते-करते थक गए, धंधा बदल लो। जुआ खेल लो। दांव पर लगा दो रुपये। जब दांव पर आदमी रुपये लगाता है तो पता नहीं जीतेगा कि हारेगा। चित्त ठहर जाता है! एक क्षण को सब भूल जाता है--जिंदगी की उदासी, बेचैनी, बोरियत, सब भूल जाता है। एक क्षण को एकदम ताजा हो जाता है कि पता नहीं क्या होने जा रहा है! लोग खतरे उठाने जाते हैं-- पहाड़ चढ़ते हैं, सागर तैरते हैं--सिर्फ इसीलिए कि किसी तरह से यह जो बोरियत चारों तरफ लद गई है, इससे थोड़ी देर के लिए छुटकारा हो जाए।
मनोरंजन की तलाश दुखी और उदास आदमी करते हैं। जो आदमी दुखी नहीं है, उदास नहीं है, वह मनोरंजन की तलाश नहीं करता। यह बड़ी उलटी बात है। अब तुम बुद्ध को अगर कहोगे कि चलो, नाटक दिखा लाएं। तो वे कहेंगे कि भई, तुम्हीं देखो! मैंने सब नाटक देख लिए। तुम बुद्ध को कहोगे कि नर्तकी नाचने आई है, सारा गांव जा रहा है, आप भी चलें! तो बुद्ध कहेंगे कि तुम जाओ, मेरा आशीष, तुम्हारे कुछ क्षण आनंद से कटें। लेकिन मेरे भीतर ऐसा नृत्य हो रहा है कि उसके मुकाबले अब कोई नृत्य कोई अर्थ नहीं रखता। जैसे-जैसे बाहर की उदासी कट जाएगी, वैसे-वैसे बाहर के मनोरंजन का भी कोई अर्थ नहीं रह जाएगा। यही हो रहा होगा शांता को।
और ध्यान रखना, उसे मैंने नाम दिया है शांता। इसीलिए दिया है कि शांत होने की उसकी क्षमता है। शांति बढ़ रही है। मगर दूसरों को उदासी जैसी लगेगी, उससे चिंता मत लेना। चिंता पैदा होती है, क्योंकि हम दूसरों की बात मान कर सदा जीते रहे हैं। मां कहती है कि तू उदास दिखती है; पिता कहते हैं कि तू उदास दिखती है; पति कहते हैं कि तू उदास दिखती है; भाई, बहन, मित्र, सब कहते हैं उदास दिखती है। इतने लोग गलत तो नहीं होंगे!
ध्यान रखना, इतने लोग सही हो ही नहीं सकते। सही तो कभी कोई एकाध होता है। यहां गलत की ही भीड़ है। सत्य के संबंध में लोकतंत्र नहीं चलता। कोई मत से सत्य तय नहीं होता। नहीं तो बुद्ध कभी के हार जाएं, क्राइस्ट कभी के हार जाएं, कृष्ण कभी के हार जाएं। सत्य के संबंध में कोई मत का अर्थ नहीं है। जो जानता है, जानता है। जो नहीं जानता, वह नहीं जानता। फिर चाहे कितनी ही बड़ी भीड़ हो, इससे क्या फर्क पड़ता है? न तुम्हारी मां को पता है कि शांति क्या है, न तुम्हारे पिता को पता है, न तुम्हारे भाई को, न तुम्हारी बहन को। हां, उन्हें उत्तेजना पता है, मनोरंजन पता है। अब तुम्हारी उत्तेजना कम हो जाएगी। वे ताश लेकर बैठे हैं, वे कहते हैं, शांता आओ, ताश खेलो! और तुम कहती हो, मुझे ताश में कोई रस नहीं। तुम एक कोने में बैठ कर झाझेन करना चाहती

हो--कि आंख बंद करके बैठे भीतर का रस ले रहे हैं। वे कहेंगे, यह क्या हो गया? ताश जैसी चीज! इस समय कोई आंख बंद करके बैठता है? चार आदमी ताश खेलते हैं, बीस आदमी खड़े होकर देखते हैं, वे भी बड़े उत्तेजित हो जाते हैं। एक-एक आदमी के पीछे चार-चार आदमी खड़े हो जाते हैं। दांव कोई लगा रहा है, मगर वे भी उसमें हिस्सेदार हो जाते हैं। जैसे उनका भी दांव लगा हुआ है। वे भी सलाह-मशविरा देने लगते हैं।
फिल्म आ रही है टेलीविजन पर और तुम आंख बंद किए बैठे हो। तो स्वभावतः
घर के लोग सोचेंगे, यह क्या हो गया? भिन्नता के कारण उन्हें लगेगा, उदास हो गई शांता। उनकी चिंता मत करना। उनका प्रेम है, लगाव है, आसक्ति है--समझ उनमें नहीं है, आसक्ति उनकी है। और जब समझ नहीं होती तो आसक्ति बड़ी खतरनाक होती है। वे तुम्हें खींचने की कोशिश करेंगे। वे तुम्हें हर तरह से बाहर लाने की कोशिश करेंगे। शुभेच्छा से। उनकी इच्छा यही है कि उदासी टूट जाए। यह कहां की झंझट आ गई? यह भली-चंगी बेटी हंसती थी, नाचती थी, गाती थी, गहनों में रस था, घंटों दर्पण के सामने खड़ी रहती थी। अब इसने गैरिक वस्त्र पहन लिए! अब इसको वस्त्रों में रस नहीं है! नहीं तो रोज सांझ को जाती थी एम.जी.रोड। लोग शॉपिंग करें या न करें, फिर भी जाते हैं शॉपिंग को। ऐसा देखते ही निकलते जाते हैं। दुकानों में जो साड़ियां सजी हैं, उनको देख-देख कर भी बड़े मग्न होते हैं। अब यह एक रंग का कपड़ा दे दिया। अब इसमें कुछ उपाय न रहा बदलने का। घर के लोगों को लगेगा--यह क्या हो गया? अभी तो जवान हो, अभी तो उत्सुकता लेनी थी। अभी तो और-और रंग की नई साड़ियां बाजार में आ रही हैं। रोज-रोज नये ढंग के वस्त्र बन रहे हैं। बेटी को कुछ हो गया! वे चिंता करेंगे। वे खींचने की कोशिश करेंगे। उनसे सावधान रहना! उनकी आसक्ति खतरनाक है।
और तुम्हारी भी पुरानी आदतें पड़ी हैं जिंदगी भर की। वे भी तुमसे कहेंगी कि तुझे हो क्या गया? तेरा ही मन तुझसे कहेगा कि तुझे हो क्या गया? उदास क्यों हो गई? अब फिल्म क्यों नहीं? नाटक क्यों नहीं? तो न केवल बाहर से लोग कहेंगे, तुम्हारा मन भीतर से भी कहेगा कि कुछ गड़बड़ हो गई। क्योंकि जो नई घटना घट रही है, उसका मन को कुछ पता नहीं है।
संन्यास की क्रांति है--मनोभंजन। मनोरंजन नहीं, मनोभंजन।
इन दो शब्दों को याद रखना। मनोरंजन का अर्थ होता हैः किसी तरह मन को खिलौने देकर समझा दो। फिर एक तरह के खिलौने बासे पड़ जाएं, फिर दूसरे तरह के खिलौने दे दो। बस उलझाए रहो मन को। मनोरंजन यानी उलझाए रहो। मनोभंजन का अर्थ होता हैः देखो सत्य को और मन को विदा दे दो। मन को छोड़ ही दो। उस अ-मन की दशा में समाधि फलित होती है। उसके पहले कदम उठने शुरू हुए हैं। यह शांति ही है। इसमें जरा भी चिंता की जरूरत नहीं है।
जिंदगी को एक बहरे-बेकरां पाती हूं मैं
उनके हाथों मिट के उम्रे-जाविदां पाती हूं मैं
यह मिटने का रास्ता है। यहां परमात्मा के हाथ मिट जाता है व्यक्ति और मिट कर अमरत्व को पा लेता है।
जिंदगी को एक बहरे-बेकरां पाती हूं मैं
उनके हाथों मिट के उम्रे-जाविदां पाती हूं मैं
खुद-ब-खुद दिल हो गया दीनो-जहां से बेनियाज
अब जमीने-इश्क गोया आस्मां पाती हूं मैं
अपने आप इस जगत से एक तरह की उदासी आ जाएगी। क्यों? क्योंकि तुम्हारा सारा प्रेम आकाश की तरफ बहने लगेगा। तुम्हारी चेतनाधारा आकाश की तरफ उन्मुख हो जाएगी।
खुद-ब-खुद दिल हो गया दीनो-जहां से बेनियाज
अपने आप इस संसार से, इस तथाकथित शोरगुल, आपाधापी के संसार से, इस तथाकथित संबंधों के जगत से, इस सपनों के जाल से--खुद-ब-खुद दिल हो गया बेनियाज--उदास हो गया, उदासीन हो गया।
उदासीन शब्द बड़ा प्यारा है। उदास शब्द भी बड़ा प्यारा है। उसका वही अर्थ नहीं है जो शास्त्र में और भाषाकोश में लिखा हुआ है। उसका मौलिक अर्थ बड़ा अदभुत है! उदासीन का अर्थ होता हैः अपने भीतर बैठ जाना। उद-आसीन। आसीन

से आसन बनता है। अपने भीतर बैठ जाना। बड़ा अपूर्व अर्थ है उदासीन का। उसी से उदास बना है। उदासीन का अर्थ होता हैः बाहर में रस न रहा, अपने भीतर रस आने लगा, भीतर बैठ गए। आसन वहां जम गया। बाहर के लोगों को लगेगा--कुछ गलती हो गई। तुम्हारे मन को भी लगता रहेगा--कुछ गलती हो गई। इसलिए सदगुरु की जरूरत है कि वह तुम्हें कहता रहे--गलती नहीं हो गई। नहीं तो तुम्हारे बाहर के लोग तुम्हें खींच लेंगे। तुम्हारा मन तुम्हें खींच लेगा।
खुद-ब-खुद दिल हो गया दीनो-जहां से बेनियाज
अब जमीने-इश्क गोया आस्मां पाती हूं मैं
झुटपुटे से दिल बुझा रहता है तेरी याद में
चांदनी रातों में अश्कों को रवां पाती हूं मैं
और बहुत बार आंसू भी झरेंगे। और बाहर के लोग समझेंगे--आंसू! आंसू यानी दुख।
तुम्हें समझना पड़ेगा, आंसुओं का एक और गुणधर्म है। आंसू आनंद के भी होते हैं। मगर बाहर तो सदा आंसू दुख के ही पाए जाते हैं। लोग दुख में रोते हैं। लेकिन तुम जानोगे धीरे-धीरे कि सुख में तो और भी अदभुत आंसू बहते हैं, बड़े आंसू बहते हैं, मोतियों जैसे आंसू बहते हैं। प्रार्थना में भी आंसू बहते हैं। परमात्मा की याद में भी आंसू बहते हैं। उन आंसुओं में दुख की कोई छाया भी नहीं है। उनमें आनंद ही आनंद है।
चांदनी रातों में अश्कों को रवां पाती हूं मैं
झुटपुटे से दिल बुझा रहता है तेरी याद में
सैकड़ों सज्दे तड़पते हैं जबीने-शौक में
ऐ हकीकत तेरे नक्शे-पा कहां पाती हूं मैं
अब भी आंसू बह निकलते हैं किसी की याद मैं
अंदलीबे-जार को जब नौहाख्वां पाती हूं मैं
अपना ऐ "तस्नीम!" इस दुनिया से घबराता है दिल
बांकी हर शै को फकत वहमो-गुमां पाती हूं मैं
धीरे-धीरे बाहर की बातें तो व्यर्थ हो जाएंगी, भ्रम हो जाएंगी, उनमें कोई अर्थवत्ता न रह जाएगी, भीतर का एक नया जगत प्रकट होगा। संसार का असली रूप प्रकट होगा--परमात्मा प्रकट होगा।
शांता, तेरी आंख खुलनी शुरू हो रही है। मगर पुरानी आंखों का अभ्यास कहेगा कि तू अंधी हो रही है। और बाहर के लोग भी तुझसे कहेंगे कि तेरी आंखों को क्या हुआ? अब वे पुरानी जैसी नहीं मालूम होतीं! यह नये का जन्म हो रहा है। इस नये के जन्म का स्वागत करो, सम्मान करो। इस नये के जन्म का आलिंगन करो। अतिथि आ रहा है, आतिथेय बनो।

पांचवां प्रश्नः हमारे केंद्र में तीन साधक साक्षी के मार्ग पर गतिमान हैं। उनमें से एक मैं भी हूं। मैं इन लोगों से कहता हूं कि अब हमारे लिए कोई भी ध्यान करने की जरूरत नहीं है। अब तो होशपूर्वक सदा सब काम करना ही ध्यान है। लेकिन अन्य दो मित्रों का कहना है कि नटराज ध्यान करने से होश और भी बढ़ेगा। मैंने सब ध्यान बंद कर दिया है। कृपा कर इस दिशा में हमारा मार्गदर्शन करें।

पूछा है सागर के स्वामी सत्य भक्त ने।
सत्य भक्त! तुममें मैं मूढ़ता को रोज-रोज बढ़ते देख रहा हूं। तुम जितने प्रश्न पूछते हो... मैंने अब तक उनका कोई उत्तर नहीं दिया। जान कर ही नहीं दिया। कि तुम्हारे प्रश्न सिर्फ तुम्हारे अहंकार से आ रहे हैं, जिज्ञासा से नहीं। अभी तुमने ध्यान किया भी नहीं है, छोड़ने की तैयारी हो गई! सीढ़ी चढ़े ही नहीं हो अभी। मगर अहंकार बड़ा चालबाज है। वह कहता है, क्या करना है? साक्षी ठीक! अब साक्षी में तो कुछ करना ही नहीं होता। तुम्हारा साक्षी का सिर्फ बहाना है। अभी तुम साक्षी तो हो ही नहीं सकते। अभी तो ध्यान से निखार लाना होगा, तब तुम साक्षी हो सकोगे। अभी तुमने बीज नहीं बोए, तुम फसल काटने की बातें करने लगे हो।

तुमने ध्यान किया कब? और जो थोड़ा-बहुत तुमने पहले किया भी होगा, थोड़ा उछल-कूद, उससे कुछ हुआ नहीं है। उससे सिर्फ तुम्हारा अहंकार और अकड़ गया है। अब तुम यही समझने लगे कि तुम सिद्ध हो गए। और न केवल तुम समझने लगे हो, तुम वहां केंद्र पर सागर में दूसरों को भी समझा रहे हो कि तुम्हें भी कोई जरूरत नहीं है। अगर सच में ही तुम्हें साक्षी का भाव पैदा हो गया होता, तो तुम दूसरों को समझाते कि ध्यान से मेरा साक्षी पैदा हुआ है, तुम ध्यान करो। और अगर तुम्हें साक्षी का भाव पैदा हो गया होता, तो यह प्रश्न भी पैदा नहीं हो सकता था। क्योंकि जिसको साक्षी का भाव पैदा हो गया, उसके सब प्रश्न समाप्त हो गए। यहां जितने लोग हैं, सबसे ज्यादा प्रश्न तुम्हीं पूछते हो--हालांकि मैं उत्तर नहीं देता, यह पहली दफा उत्तर दे रहा हूं। तुम अपनी मूढ़ता में मत पड़ो। अभी ध्यान करना होगा! इतने जल्दी सिद्ध मत हो जाओ। साक्षीभाव आएगा। और साक्षी ध्यान के विपरीत थोड़े ही है। साक्षी के लिए ध्यान प्रक्रिया है। ध्यान की प्रक्रिया से ही अंतिम निखार साक्षी का पैदा होता है। वे एक ही क्रिया के अंग हैं।
लेकिन हमारे चालबाज मन हैं। वे कहते हैं, कुछ न किए अगर सिद्ध हो जाएं
तो सबसे अच्छा। फिर तुम सिद्ध हो गए हो, तो तुम्हारे केंद्र पर जो लोग आते होंगे उनको तुम जंचते नहीं होओगे सिद्ध। तो उनको भी समझा रहे हो कि तुम भी सिद्ध हो जाओ। तुम हानि पहुंचा रहे हो! तुम अपने को नुकसान पहुंचा रहे हो, दूसरों को नुकसान पहुंचा रहे हो। सहारा दो दूसरों को ध्यान में जाने के लिए। और खुद भी अभी ध्यान में उतरो। और जब तुम सिद्ध हो जाओगे तो मैं तुम्हें कहूंगा कि तुम सिद्ध हो गए, तुम्हें बार-बार लिख कर भेजने की जरूरत नहीं है।
तुम्हारे हर प्रश्न में यही होता है कि मैं घोषणा कर दूं। प्रश्न मुझे लिख कर भेजते हो तुम बार-बार कि आप कह दें कि मैं सिद्ध हो गया हूं। आप औरों को भी खबर कर दें कि मैं सिद्ध हो गया हूं।
मैं खुद ही खबर कर दूंगा, तुम्हें पूछने की जरूरत नहीं होगी। और जो सिद्ध हो गया है, वह कोई सर्टिफिकेट की तलाश करेगा! तुम चाहते हो, मैं कह दूं कि तुम सिद्ध हो गए हो, तो तुम जाकर घोषणा करने लगो और लोगों की छाती पर बैठ जाओ और तुम उनको परेशान करने लगो। फिर तुम अपना तो अहित करोगे ही, दूसरों का भी अहित करोगे।
अभी ध्यान करो। अभी बीज बोओ! अभी फसल को उगाओ! काटने के दिन भी जरूर आएंगे। और अगर कोई अत्यंत निष्ठा और ईमान से एक क्षण भी ध्यान में उतर जाए, तो एक ही क्षण में वह दिन आ जाता है। मगर इतनी बेईमानी से चलोगे तो कैसे आएगा? तुम करना ही नहीं चाहते।
अब इसको थोड़ा समझ में लेना, यह औरों के भी काम की बात है।
दुनिया में आलसी लोग हैं, काहिल लोग हैं, सुस्त लोग हैं, जो कुछ नहीं करना चाहते। उनके लिए भक्ति में बड़ा सहारा मिल जाता है। वे कहते हैं, करना ही क्या है? सब भगवान कर रहा है। इसलिए हमें कुछ करना नहीं है। दुनिया में कर्मठ लोग हैं, अत्यंत कर्म में लिप्त लोग हैं, अहंकारी लोग हैं, आक्रामक लोग हैं। उनको कर्म के मार्ग पर सहारा मिल जाता है। वे कहते हैं, करके दिखाना है।
भक्ति के मार्ग से सिर्फ उनको ही लाभ होगा जो करेंगे और जानेंगे कि हमारे किए कुछ भी नहीं होता। लेकिन करना तो हमें है; क्योंकि अभी तो हमारे पास कुछ भी नहीं है। हम जब कर-कर के हार जाएंगे, तब परमात्मा की कृपा अवतरित होती है। जब हम पूरा कर चुकेंगे, तब उसकी कृपा अवतरित होती है। वे तो ठीक उपयोग कर रहे हैं भक्ति का। और जिन्होंने कहा कि करना ही क्या है, अब बस ठीक है, हम तो हो गए, उनके लिए भक्ति जहर हो गई। कर्म के मार्ग पर जो इसलिए कर्म में लगा है कि उसके अहंकार को तृप्ति मिलती है, वह कर्म के मार्ग से हानि उठा रहा है। वह उसके लिए जहर हो गया। लेकिन इसलिए करता है कि अभी तो हमें परमात्मा का कुछ पता नहीं, कौन है, कहां है; अभी तो हम विधान करेंगे, विधि करेंगे, अपनी पूरी चेष्टा करेंगे, अपना पूरा संकल्प लगाएंगे; शायद संकल्प के अंतिम चरण में समर्पण का जन्म हो। समर्पण का जन्म संकल्प

के अंतिम चरण में ही होता है। क्रिया की पूर्ण निष्पत्ति में निष्क्रिया है। और ध्यान का आखिरी रूप साक्षी है।
तो तुम इतनी जल्दी न करो। और दूसरों को तो भूल कर मत समझाना! अभी तो तुम्हें ही बहुत समझना है।

छठवां प्रश्नः आपके संन्यासी धीरे-धीरे संसार में फैल रहे हैं। उनकी संख्या दिनों-दिन बढ़ रही है। यह संभावना भी तो है कि आपके जाने के बाद आपका संन्यास-धर्म एक वृहत संगठन का रूप लेगा जिसमें पद-शृंखला और राजनीति भी प्रविष्ट हो जाएगी। कृपा कर समझाएं कि क्या यह चक्र सदा-सदा चलता रहेगा?

पूछा है कृष्ण कुमार जाबाली ने।
तुम तो अभी संन्यासी भी नहीं हो। तुम्हें क्या चिंता?
फिर तुम कब तक यहां रहने का इरादा रखते हो? सदा! भविष्य में जो झंझटें आएंगी, उनको तुम्हें हल करना है? तुम अपनी झंझटें हल कर लो, इतना काफी है। भविष्य को भविष्य पर छोड़ो! आखिर भविष्य के लोगों को भी तो कुछ झंझटें हल करने को छोड़ोगे कि नहीं? कि तुम्हारा इरादा तुम्हारे साथ ही सृष्टि का अंत कर देने का है?
लोग बड़ी व्यर्थ के ऊहापोह में पड़ जाते हैं। लेकिन ये सब तरकीबें हैं
मन की। और इन तरकीबों का तुम उपयोग वहीं करते हो जहां तुम बचना चाहते हो। एक भी आदमी ने मुझसे अब तक नहीं पूछा, मैंने लाखों लोगों के सवालों के जवाब दिए हैं, एक भी आदमी ने मुझसे नहीं पूछा कि हम मरेंगे, तो हम बच्चे को पैदा करें कि नहीं, क्योंकि फिर इसको भी मरना पड़ेगा। एक आदमी ने नहीं पूछा यह! लोग बच्चे पैदा किए चले जाते हैं। कोई नहीं पूछता यह कि इसको भी झंझटें आएंगी जो हमको आईं, तो झंझटें हल ही क्यों न कर दें, इसको पैदा ही न करें। कोई भी नहीं पूछता कि जब मृत्यु होने ही वाली है आगे, क्या आगे भी मृत्यु होती ही रहेगी? अगर आगे भी मृत्यु होती रहेगी तो बच्चे को पैदा क्यों करना? क्योंकि फिर यह मरेगा। नहीं, बच्चे तुम्हें पैदा करने हैं, तुम यह प्रश्न नहीं पूछते। लेकिन संन्यास लेने में तुम्हें डर है। डर को छिपाने के लिए नये-नये बहाने खड़े करते हो।
अब यह भी खूब अदभुत प्रश्न है! यह प्रश्न यह है कि आपके चले जाने के बाद...
अभी मैं यहां हूं! कोई मैंने ठेका लिया है दुनिया का मेरे चले जाने के बाद कि दुनिया में कोई समस्या नहीं बचने देंगे! समस्याएं उठती रहेंगी। जन्म के साथ मृत्यु आती रहेगी। और जब भी धर्म की कोई नई अवधारणा पैदा होगी--संगठन पैदा होंगे, चर्च बनेगा, संप्रदाय बनेगा और सब रोग आएंगे जो सदा आते रहे हैं। लेकिन इस कारण धर्म की अवधारणा नहीं रोकी जा सकती। जितनों को लाभ हो जाए, उतनों को सही। मेरी मौजूदगी में जितनों को लाभ हो जाएगा, हो जाएगा। और फिर भी जो समझदार हैं पीछे, उनको पीछे भी लाभ होता रहेगा। और जो नासमझ हैं, तुम जैसे, उनको अभी भी लाभ नहीं हो रहा है। तो मेरे होने न होने से क्या फर्क पड़ता है? नासमझों को अभी लाभ नहीं हो रहा, समझदारों को फिर भी होता रहेगा। नासमझों को अभी भी लाभ नहीं हो रहा है, नासमझों को तब भी नहीं होगा।
कृष्ण कुमार! तुम्हें अपनी चिंता है या सारे जगत की चिंता है? इतनी बड़ी चिंता मत लो। छोटी सी चिंताएं तो हल नहीं हो रही हैं। क्रोध तो हल नहीं होता, दुख तो हल नहीं होता, चिंता तो हल नहीं होती, अहंकार तो हल नहीं होता, तुम इतनी बड़ी चिंताएं मत लो।
लेकिन अक्सर ऐसा हो जाता है, आदमी अपनी छोटी चिंताओं को छिपाने के लिए बड़ी-बड़ी चिंताएं ले लेता है--मनुष्यता का क्या होगा? तीसरा महायुद्ध होगा तो फिर क्या होगा? अभी तुम हल नहीं कर पाए अपनी पत्नी से जो रोज युद्ध होता है वह हल नहीं होता, तीसरा महायुद्ध होगा तो फिर क्या होगा? यह तुम अपने मन को भरमा रहे हो। यह तुम अपने मन को नये-नये उपाय दे रहे हो। ताकि तुम्हें यह झंझट न सोचनी पड़े कि घर जाना है और पत्नी तैयार हो रही होगी। और फिर

तुम्हें धूल चटाएगी। उस छोटी सी चिंता को हल नहीं कर पाते हो तो बड़ी चिंताएं खड़ी कर लेते हो।
मुल्ला नसरुद्दीन से मैंने एक दिन पूछा कि तेरी कभी अपनी पत्नी से कोई झंझट होती है? क्योंकि मैं झंझट देखता नहीं।
उसने कहा, कभी झंझट नहीं होती, क्योंकि जिस दिन मेरी शादी हुई उसी दिन हमने एक तय कर लिया कि बड़ी-बड़ी समस्याएं मैं हल करूंगा, छोटी-छोटी समस्याएं तू हल कर।
यह तो तूने बड़ा अच्छा उपाय किया; लेकिन कौन सी समस्याएं छोटी हैं, कौन
सी बड़ी?
मुल्ला ने कहा, यह आप न पूछें तो ठीक है। क्योंकि जैसे तीसरा महायुद्ध होगा कि नहीं, इसको मैं हल करता हूं। और बच्चे को किस स्कूल में पढ़ने भेजना है, इसको वह हल करती है। किस सिनेमा में जाना है आज, यह वह हल करती है। इजराइल किसके पास होना चाहिए, यह मैं हल करता हूं। मुझे किस डाक्टर के पास इलाज करवाना चाहिए, यह वह हल करती है। और परमात्मा है या नहीं, यह मैं हल करता हूं। बड़ी समस्याएं मैं हल करता हूं, छोटी समस्याएं वह हल करती है। झगड़ा होता नहीं।
पत्नियां बहुत होशियार हैं। वे कहती हैं, बड़ी समस्याएं तुम हल करो-- इजरायल, वियतनाम, इत्यादि-इत्यादि; तुम बैठे रहो, सोचते रहो। मगर जिंदगी की असली समस्याएं, उनको वे छोटी समस्याएं हैं, वे पत्नियां खुद हल कर लेती हैं।
तुमसे हल नहीं होतीं अपनी जिंदगी की समस्याएं, तुम अपने को झुठलाने
को बड़ी-बड़ी समस्याओं का जाल खड़ा कर लेते हो; उन बड़ी समस्याओं के कारण तुम्हें अपनी समस्याएं इतनी छोटी और ना-चीज मालूम होने लगती हैं कि लगता है, हल ही क्या करना!
तुमने सुनी है न कहानी, अकबर ने एक लकीर खींची दरबार में और अपने दरबारियों से कहाः बिना इस लकीर को छुए कोई इसे छोटा कर दे। कोई न कर सका, लेकिन बीरबल ने एक बड़ी लकीर उसके नीचे खींच दी। और बिना छुए उसको छोटा कर दिया।
यही तरकीब है तुम्हारे मन की। यह तुम्हारा मनुष्य का मनोविज्ञान है। तुम्हारे पास समस्याएं हैं, बड़ी हैं, हल नहीं होतीं, तुम उनके सामने और बड़ी-बड़ी समस्याएं खड़ी कर देते हो; इतनी बड़ी कि वे बिल्कुल छोटी हो जाती हैं, ना-चीज हो जाती हैं, खो जाती हैं। अब कौन फिकर करता है कि पत्नी से झंझट आज हुई, जब कि इजराइल में बड़ी भारी समस्या चल रही है! अब क्या फिकर करो कि घर में भोजन नहीं है! करोड़ों लोग प्रतिवर्ष बिना भोजन के मर रहे हैं। अब इसकी क्या चिंता करो कि चाय ठंडी पीनी पड़ रही है! जगत में बड़ी-बड़ी उलझनें हैं। मनुष्यता के बड़े-बड़े सवाल तुम लिए बैठे हो।
कृष्ण कुमार! तुम यहां आए हो, मैं यहां मौजूद हूं, मेरी मौजूदगी तुम्हारी मौजूदगी का मिलन होने दो! कुछ फल लगने दो इस मिलन में! तुम क्या फिकर कर रहे हो कि आगे क्या होगा? और आगे जो लोग हैं, उनके लिए हम आयोजन कर भी कैसे सकते हैं? हम उनके मालिक नहीं। हम किसी के मालिक नहीं। उनकी स्वतंत्रता का वे उपयोग करेंगे। अगर उनको दुख लेना होगा तो दुख लेंगे, और सुख लेना होगा तो सुख लेंगे। हर आदमी स्वतंत्र है अपना नरक और स्वर्ग बनाने को।
जीसस जिंदा थे, तो जिन लोगों ने लाभ लेना था, ले लिया। फिर पीछे जिन लोगों को चर्च बनाना था, उन्होंने चर्च बनाया। तुम क्या सोचते हो जीसस न होते तो चर्च न बनता? किसी और के नाम से बनता। चर्च बनाने वाले चर्च बनाते ही। वह उनकी जरूरत है। अगर बुद्ध न होते तो तुम क्या सोचते हो बुद्ध धर्म न होता? कोई और नाम होता! किसी और के बहाने बनता। किसी और के पीछे बनता। लेकिन जिनको बनाना था, वे बनाते। जिनको पूजा करनी है, वे पूजा करेंगे। तुम उनकी मूर्तियां तोड़ दो, वे पत्थरों की पूजा करेंगे।
मैंने सुना है, एक सूफी फकीर की एक आदमी ने बड़ी सेवा की। वह उस पर बड़ा खुश हो गया। जब जाने लगा तो अपना बड़ा कीमती गधा, जिस पर वह सवार होता था,

उसको दे गया। कहा, इसको तू सम्हाल। वह भक्त भी बड़ा प्रसन्न हुआ, वह भी उस गधे को प्रेम करने लगा था।
फिर दो साल बाद वह गधा मर गया। अब भक्त ने सोचा कि सूफी का गधा है, तो कुछ न कुछ सूफी तो है ही। इतने बड़े गुरु का गधा। कोई छोटा-मोटा गधा तो नहीं, कोई साधारण गधा तो नहीं! ऐसे अलौकिक पुरुष का गधा! तो उसने उसकी सम्मानपूर्वक अंत्येष्टि की, कब्र बनवाई। ज्यादा उसके पास था भी नहीं, लेकिन जो भी था, लगा कर, संगमरमर की कब्र बनवा दी।
कब्र बन कर तैयार हुई कि लोग जो रास्ते से निकलते थे, वे फूल चढ़ाने लगे, कोई पैसा चढ़ाने लगा। उस गरीब आदमी ने देखा कि यह भी बड़ा मजा है। मगर था फकीर, पहुंचा हुआ फकीर था गधा! अब पक्का हो गया। हम तो सोचते थे कि गधा ही है, कई दफे संदेह भी आता था कि गधा आखिर गधा ही है। फकीर का भी हो तो क्या होता है, कोई सूफी के बैठने से सूफी थोड़े ही हो गया। मगर अब पक्का हो गया कि सूफी था! पहुंचा हुआ सिद्ध था।
लोग रुपये भी चढ़ाने लगे, मनौतियां करने लगे। लोगों की मनौतियां भी फलने लगीं। किसी को बेटा नहीं होता था, बेटा हो गया। अब दस आदमियों को बेटा न होता हो, दस जाकर मनौती करेंगे, पांच को तो हो ही जाएगा। और यह कहानी पुराने जमाने की है, जब कोई संतति-नियमन इत्यादि भी नहीं था, तब दस को ही हो जाता। किसी की बीमारी थी। अब बीमारी कोई ज्यादा देर थोड़े ही रुकती है! अगर तुम दवा न लो तो भी जाती है एक दिन। दवा लो तो भी जाती है! बीमारियां ठीक होने लगीं, बच्चे पैदा होने लगे, नौकरियां लगने लगीं। वह गरीब आदमी तो धनी होने लगा। उसने पास ही एक अपना स्थान भी बना लिया। वह उस कब्र का रक्षक हो गया। कोई पूछता ही नहीं कि इस कब्र में है कौन? कोई चार-पांच साल बाद तो वहां बड़ा महल खड़ा हो गया। धन ही धन फैल गया।
वह फकीर यात्रा को निकला था, हज को, गुरु, जो गधा दे गया था। वह वहां आकर रुका। उसने तो देखा तो समझ में ही नहीं आया कि एकदम चमत्कार हो गया! उसने पूछा कि भई, यहां मैं एक आदमी छोड़ गया था, गरीब आदमी, मेरी सेवा किया करता था।
वह आदमी अब तो गरीब रहा ही नहीं था। वह तो सोने में मढ़ा बैठा था। हीरे- जवाहरातों के ढेर लगे थे। उसने कहा कि आप मुझे पहचाने नहीं? मैं ही वह गरीब आदमी हूं। एकदम उनके पैर में गिर पड़ा गुरु के और कहा, आपकी बड़ी कृपा! आपकी कृपा से सब हो रहा है, चमत्कार हो रहे हैं।

गुरु ने पूछा, मगर हुआ क्या? कैसे हुआ?
उसने कहा, अब आपको एकांत में बताएंगे। वह जो आप गधा दे गए थे, बड़ा पहुंचा हुआ फकीर था। वह मर गया। उसकी मैंने कब्र बनाई। उससे ये सब चमत्कार हो रहे हैं। होते ही जा रहे हैं चमत्कार! इनका कोई अंत ही नहीं है! लोग बढ़ते ही जाते हैं, भीड़ बढ़ती ही जाती है! मेरे सम्हाले नहीं सम्हल रहा है। अब आप कहां जाते हैं? आप भी यहीं रहो!
वह फकीर हंसने लगा। उस गरीब आदमी ने पूछा, जो अब गरीब नहीं रहा था--कि
आप हंसते क्यों हैं? उसने कहा, मैं हंसता इसलिए हूं कि इसकी मां भी बड़ी पहुंची हुई फकीर थी। वह जब मरी तो मैंने उसकी कब्र अपने गांव में बना दी थी, उसी के सहारे मैं जी रहा हूं। यह पुश्तैनी गधा था! यह कोई साधारण गधा था ही नहीं! इसकी मां भी ऐसी पहुंची हुई थी! उसकी कब्र मैंने बनवा दी, वहां भी यही राग-रंग चल रहा है।
अब जिनको कब्र ही पूजनी है, वे गधों की भी पूजेंगे! उनके लिए कोई बुद्ध
की ही कब्र जरूरी नहीं है। वे किसी की भी कब्र पूज लेंगे। अब उनके लिए कोई बुद्ध हों, इसकी थोड़े ही आवश्यकता है। अब तुम सोचते हो गणेशजी कभी हुए होंगे? जरा सोचो तो, उनकी शक्ल-सूरत तो देखो! ये कभी हुए होंगे? मगर कोई चिंता नहीं, किसी को कोई चिंता नहीं कि ये हुए भी कि नहीं हुए? ये हो कैसे सकते हैं! मगर पूजा चल रही है। जिसको पूजा करनी है, वह गणेशजी की भी करेगा। कोई बुद्ध जी की ही आवश्यकता थोड़े ही है। लोग रास्ते के किनारे पत्थरों पर पोत देते हैं सिंदूर और फूल चढ़ा देते हैं, और पूजा शुरू हो जाती है। चर्च खड़ा हो जाता है, मंदिर खड़ा हो जाता है।

तुम इसकी चिंता में न पड़ो। जिन्हें मूढ़ता करनी है, वे सदा करते रहेंगे। और मूढ़ता अपने लिए सदा कारण खोज लेगी। कारणों की कमी नहीं है। लोग वृक्षों की पूजा करते हैं, नदियों की पूजा करते हैं। अब नदियां कोई बहना थोड़े ही छोड़ दें! अब गंगा क्या करे? रुक जाए, बहे न? लोग गंगा की ही पूजा कर रहे हैं। वृक्षों की पूजा चल रही है। वृक्ष क्या करें? रुक जाएं, बढ़ें न? जो सदा होता रहा है, वैसा होता रहेगा। मेरे पीछे भी वही होगा। उसकी चिंता में तुम न पड़ो। और उसको बचाने का कोई उपाय नहीं है! समझदार अभी भी लाभ ले लेंगे, नासमझ अभी भी वंचित रहेंगे। समझदार फिर भी लाभ लेते रहेंगे, नासमझ फिर भी वंचित रहेंगे। यह सवाल नासमझी और समझदारी का है। अब तुम इतना ही तय कर लो कि तुम्हें नासमझों के साथ रहना है कि समझदारों के साथ रहना है, बस! इससे ज्यादा तुम्हारे लिए कोई चिंता का कारण नहीं है।
यह संसार चलता रहेगा। चलता ही रहना चाहिए। और प्रत्येक व्यक्ति स्वतंत्र है। कोई गधे को ही पूजना चाहे, तो यह उसकी स्वतंत्रता है, यह उसका जन्मसिद्ध अधिकार है। इसको तुम रोक कैसे सकते हो? कोई गणेशजी को ही मानना चाहता है, तो माने। यह किसके हाथ में है कि रोके? और क्यों रोके?
मनुष्य की स्वतंत्रता ऐसी अपरिसीम है कि यह सब होता रहेगा। होता ही रहना चाहिए। हम दीये जलाएं। लेकिन तुम पूछते होः जब दीया बुझ जाएगा, फिर क्या होगा? फिर क्या होगा! जब तक दीया है, तब तक उसकी रोशनी में कुछ पढ़ लो। तुम पूछते होः जब दीया बुझ जाएगा, फिर क्या होगा? फिर लोग अंधेरे में कैसे पढ़ेंगे? तुम अभी उजाले में नहीं पढ़ रहे हो, और तुम चिंता कर रहे हो कि अंधेरे में लोग कैसे पढ़ेंगे! अब अंधेरे में पढ़ने वाले अंधेरे की बात सोचें।
और दीये हमेशा जलते रहेंगे। यह दीया बुझ जाएगा, कोई और दीया जलेगा। दीये सदा जलते रहे हैं। जिनको पढ़ना है दीये की रोशनी में, वे सदा खोज लेते हैं। वे दूर-दूर से चले आते हैं। तुम देखते हो, यहां कहां-कहां से लोग आए हुए हैं? उन तक दीये की कोई खबर पहुंच गई। यहां जमीन के हर देश से लोग हैं। चले आ रहे हैं। जिसको तलाश है, वह खोज लेगा। अब तुम भी नेपाल से चले आए हो! खाली हाथ मत लौट जाना! यहां प्रभु लुटाया जा रहा है, लूट लो! यहां कुछ रंग जाओ इस रंग में! कुछ जी लो जीवन! यह संगीत कुछ तुम्हारे प्राणों में उतर जाने दो। यह मिश्री तुम्हारे प्राणों में घुल जाने दो। तुम व्यर्थ की चिंताएं मत लो। उनसे तुम्हारा कुछ लेना-देना नहीं है।

रंग में, धर्म में, देश में,
बंट रहा आज तक आदमी
रेख भूगोल पर खींच दी--
वो हमारे वतन हो गए।

खून आदम की औलाद का,
मंत्र से पूत जल बन गया,
धर्म, जो प्रेम के गीत थे-- आदमी का कफन हो गए।

नापता अपनी नहीं दूरियां, नापता चांद को आदमी,
और इंसान के फासले--
अजनबी सी घुटन हो गए।

बंट गया नीलवर्णी गगन,
बंट गई ये धरा श्यामला,
और बारूद-गंधी पवन--
भोगते ही जनम हो गए।

आदमी ब्रह्म का अंश है,

आदमी देव का वंश है,
ये विशेषण हमारे लिए--
आत्मभोगी अहम हो गए।

करोगे क्या? उपनिषद के ऋषि ने घोषणा कीः अहं ब्रह्मास्मि। अज्ञानियों ने सुनी, उन्होंने कहाः अहं ब्रह्मास्मि। उपनिषद के ऋषि का जोर था ब्रह्म पर, अज्ञानी ने जोर दिया अहं पर। उपनिषद के ऋषि ने कहा थाः मैं ब्रह्म हूं। वह यह कह रहा था--मैं नहीं हूं, ब्रह्म है। अज्ञानी ने जोर दिया कि मैं ब्रह्म हूं। ब्रह्म-व्रह्म कहां, मैं हूं। दोनों एक ही वचन का उपयोग कर रहे हैं; लेकिन दोनों का जोर बदल गया।
अब क्या करोगे? क्या तुम यह कहोगे कि उपनिषद के ऋषि को चुप ही रहना था, ताकि अज्ञानी यह अहं ब्रह्मास्मि की घोषणा न कर सके? तो क्या तुम सोचते हो यह अज्ञानी कोई और रास्ता अहंकार का न खोज लेता? कोई कमी थी? जिन देशों में उपनिषद नहीं पैदा हुए, वहां अहंकारी नहीं हैं? लेकिन उपनिषद के ऋषि ने तो घोषणा कर दी, अब जो पी ले, पी ले; जो लाभ ले ले, ले ले। समझदार जहर को भी औषधि बना लेते हैं और नासमझ के लिए औषधि भी जहर हो जाती है। करोगे क्या!
मुझे जो कहना है, मैं कह रहा हूं। तुम्हारे मन में बैठ जाए तो सुन लो
और सम्हाल लो, भविष्य की तुम चिंता न करो। उसे परमात्मा पर छोड़ो। इतना तो करो कम से कम! और कुछ मत छोड़ो, भविष्य को परमात्मा पर छोड़ो। फिर जो होगा, होगा। जैसा होगा, होगा। हम जितनी देर यहां हैं, हम से जो बन पड़े, हम से जो हो पड़े, वह हम कर लें। उतने से ज्यादा आदमी का वश नहीं है। उससे ज्यादा सिर्फ अहंकार है।

सातवां प्रश्नः प्रभु! प्रतिदिन जब ध्यान में बैठता हूं तो अति प्रसन्नता, आनंद से भर जाता हूं। और फिर सारा दिन ध्यान के समय की प्रतीक्षा में रहता हूं। फिर भी दूसरे व्यक्ति की उपस्थिति के समय, भोजन के समय, इत्यादि-इत्यादि, ध्यान भूल-भूल जाता है। अगर ध्यान में इतना आनंद, इतनी प्रतीक्षा रहती है, तो पूरा समय ध्यान की परिस्थिति क्यों नहीं बनी रहती?
ओशो, हमारे पास प्रश्न ही प्रश्न हैं और आपके पास उत्तर ही उत्तर। क्षमाप्रार्थी हूं!

पूछा है ईश्वर समर्पण ने।
समझना।
जीवन में हमेशा अतियां हैं। और अतियों के बीच एक समन्वय चाहिए। दिन
भर तुमने श्रम किया, रात तुमने विश्राम किया और सो गए। असल में जितना गहरा श्रम करोगे, उतनी ही रात गहरी नींद आ जाएगी। यह बड़ा अतर्क्य है। तर्क तो यह होता कि दिन भर आराम करते, अभ्यास करते आराम का, तो रात गहरी नींद आनी चाहिए थी। क्योंकि जिसने दिन भर अभ्यास किया विश्राम का, करवटें बदलता रहा बिस्तर पर पड़ा हुआ, बहाने करता रहा सोने का, उसको गहरी नींद आनी चाहिए रात में। तार्किक तो यही होता। क्योंकि दिन भर बिचारे ने अभ्यास किया सोने का, इसके अभ्यास का फल तो मिलना चाहिए। मगर जो दिन भर बिस्तर पर पड़ा रहा, वह रात सो न सकेगा। सोने की जरूरत ही पैदा नहीं हुई।
विपरीत से जीवन चलता है। दिन भर श्रम किया, वह रात सोएगा। इसलिए अमीर आदमी अगर अनिद्रा से बीमार रहने लगते हैं तो कुछ आश्चर्य नहीं। निद्रा का कारण ही नहीं रह जाता। तुमने देखा, बंबई की सड़क पर भी मजदूर सो जाते हैं। भरी दुपहरी में! बंबई का शोरगुल, रास्ता, और कोई अपनी ठेलागाड़ी के ही नीचे पड़ा है और सो रहा है, मस्त घुर्रा रहा है! और उसी के पास खड़े महल में कोई वातानुकूलित भवन में सुंदर-सुंदर शय्याओं पर रात भर करवट बदलता है। कुछ नींद नहीं आती। गरीब को अनिद्रा कभी नहीं सताती। गरीब और अनिद्रा, इसका मेल नहीं है। और अमीर को अगर अनिद्रा न हो तो समझना कि अमीरी में अभी कुछ कमी है। अभी अमीर हुए नहीं। अभी और बैंक-बैलेंस चाहिए। अभी गरीब ही हैं, तभी तो सो रहे हैं, नहीं तो सोते कैसे!

दिन में जो श्रम करता है, वह रात विश्राम करता है। श्रम और विश्राम का तालमेल है। दिन भर रोशनी, रात अंधेरा हो जाता है। रात और दिन का तालमेल है। जीवन और मृत्यु, दोनों साथ-साथ हैं। एक श्वास भीतर गई, तो एक श्वास बाहर जाती है। एक श्वास बाहर गई, तो फिर एक श्वास भीतर आती है। तुम अगर कहोगे कि मैं भीतर ही रखूं श्वास को, तो मुश्किल हो जाएगी। तुम कहो बाहर ही रखूं, तो मुश्किल हो जाएगी।
ऐसा ही स्मरण और विस्मरण का मेल है। ऐसे ही ध्यान और प्रेम का मेल है। ध्यान और प्रेम दो प्रक्रियाएं हैं। प्रेम में दूसरे का स्मरण रहता है, ध्यान में स्वयं का। तुम चौबीस घंटे स्वयं का स्मरण करोगे तो थक जाओगे। थोड़ी-थोड़ी देर को दूसरे का स्मरण भी आ जाना चाहिए। उतनी देर विश्राम मिल जाता है। फिर से स्वयं का स्मरण आएगा।
इसलिए ईश्वर भाई का प्रश्न महत्वपूर्ण है। वे कहते हैंः किसी से बात करते समय, किसी की उपस्थिति में, भोजन करते समय ध्यान भूल-भूल जाता है।
यह बिल्कुल स्वाभाविक है। भूलना ही चाहिए। अगर तुम दूसरे की उपस्थिति में ध्यान का स्मरण रखोगे, तो तुम दूसरे का अपमान करोगे। क्योंकि उसका मतलब होगा, तुम दूसरे पर ध्यान दे ही नहीं रहे। वह तो ऐसे ही हुआ कि दूसरा आदमी सामने खड़ा है और तुम भीतर कह रहेः राम-राम, राम-राम, राम-राम! अब यह जो राम सामने खड़े हैं, इनका अपमान हो रहा है। तुम भीतर कुछ चला रहे हो! तुम कह रहे हो--होश रखना है! देखता रहूं! जागा रहूं! तुम एक काम में उलझे हो, यह बिचारा सामने खड़ा है, यह देखेगा कि मुझसे तो कुछ लेना ही देना नहीं है। यह अपमान हो जाएगा। यह राम का अपमान हो जाएगा।
जब कोई सामने मौजूद है, भूलो अपने को, पूरी तरह इसमें डूब जाओ! यह घड़ी प्रेम की है। ध्यान को प्रेम में डुबा दो। जब कोई नहीं है, अकेले बैठे हैं, तब फिर प्रेम को ध्यान में उठा दो, फिर ध्यान को पकड़ लो। एकांत में ध्यान, संग-साथ में प्रेम, दोनों के बीच डोलते रहो। इन दोनों के बीच जितनी यात्रा होगी, और जितनी सुगमता से यात्रा होगी, उतना ही आत्मविकास होगा। ये दोनों ऐसे ही हैं जैसे घड़ी का पेंडुलम बाएं जाता, दाएं जाता, बाएं जाता, दाएं जाता। घड़ी के पेंडुलम को बीच में पकड़ लो जोर से--घड़ी ठप्प! फिर घड़ी नहीं चलेगी। यह पेंडुलम जो जाता है दाएं-बाएं, इसके सहारे घड़ी चलती है। और जीवन का पेंडुलम हमेशा बाएं-दाएं जा रहा है। इसी के सहारे जीवन चलता है।
सब तलों पर, सब आयामों में, रात हो कि दिन, काम हो कि विश्राम, भीतर जाती श्वास हो कि बाहर जाती श्वास, ध्यान हो कि प्रेम, हर चीज में इन दो अतियों के बीच एक तालमेल है। संगीत पैदा होता है ध्वनि से और शून्य के मिलन से।
ऐसे ही जीवन का संगीत पैदा होता है प्रेम और ध्यान से। दोनों को सम्हालो! जब अकेले तब ध्यान में, जब कोई मौजूद हो तब प्रेम में। जब प्रेम में, तो अपने को बिल्कुल भूल जाओ। और जब ध्यान में, तो दूसरे को बिल्कुल भूल जाओ। और यह रूपांतरण इतना सहज होना चाहिए, इतना तरल होना चाहिए, कि इसमें जरा भी अड़चन न हो। यह सहज रूप से हो जाए। जैसे तुम घर के बाहर आते, भीतर जाते; जैसे श्वास लेते, श्वास छोड़ते; इतना ही सहज होना चाहिए।
मैं तुम्हें ध्यान और प्रेम, दोनों की अति एक साथ सिखाता हूं। जो अकेला ध्यान करेगा, उसके व्यक्तित्व में थोड़ी कमी रहेगी। वह रूखा रहेगा। इसलिए अगर जैन मुनि तुम्हें रूखे मालूम पड़ते हैं, बौद्ध भिक्षु रूखे मालूम पड़ते हैं, तो कुछ आश्चर्य नहीं! रूखेपन का कारण है--अकेला ध्यान। एक अंग चुन लिया। एकांगी हैं। अगर तुम्हें सूफी फकीर और भक्त रसपूर्ण मालूम पड़ते हैं, लेकिन होशपूर्ण नहीं मालूम पड़ते, तो वह दूसरी अति हो गई। उन्होंने प्रेम तो चुन लिया, मगर होश खो दिया। प्रेम में बेहोशी आ जाती है। ध्यान में रुक्षता आ जाती है। मैं चाहता हूं कि तुम पूरे मनुष्य हो जाओ।
पृथ्वी पर अब तक जितने धर्म रहे हैं, उन्होंने मनुष्य की समग्रता पर जोर नहीं दिया। अंग-अंग चुन लिए हैं। अंग-अंग चुनने में सरलता है। एक कोई चुन लिया तो बात हल हो गई। एक टांग तोड़ दी, एक ही टांग बचाई। मगर फिर चलना बंद हो जाता है। एक पंख काट दिया, एक ही पंख बचा लिया। मगर फिर उड़ना बंद हो

जाता है। यह पृथ्वी बहुत धन्यभागी हो सकती है, अगर दोनों पंख हों। उन पंखों का मेरा नाम है--ध्यान और प्रेम।
दोनों को सम्हालो! दोनों के बीच एक तारतम्य, एक छंद पैदा करो। दोनों
के बीच लयबद्धता को आने दो। उन दोनों के बीच तुम तीसरे को पाओगे, वही साक्षी है। उन दोनों के बीच जितना डूब जाओगे, जितनी सरलता से, स्वस्फूर्ति से लीन हो जाओगे, उतनी ही जल्दी तुम पाओगे--तीसरा पैदा हो गया। तीसरा पैदा ही तब हो सकता है जब दो की पूरी सरगम बैठ जाए।
उस तीसरे का नाम साक्षी है। वह पराकाष्ठा है। वही समाधि है। वही ब्रह्म-अनुभव है। वही बुद्धत्व है। वही जिनत्व है।
आज इतना ही।

अथातो भक्ति जिज्ञासा, भाग 2 सैतीसवां प्रवचन

ऊर्ध्वगति का आयाम है परमात्मा

सूत्र

फलस्माद्वादरायणो दृष्टत्वात्।। 91।।
व्युत्क्रमदप्ययस्तथा दृष्टम्।। 92।।
तदैक्यं नानात्वकैत्वमुपाधियोगहानादादित्यवत्।। 93।।
पृथगिति चेन्नापरेणासम्बन्धात प्रकाशानाम्।। 94।।
न विकारिणस्तु कारणविकारात्।। 95।।
फलम अस्मात बादरायणः दृष्टत्वात्।
"बादरायण कहते हैं कि कर्म स्वयं फलदाता नहीं है; ईश्वर ही कर्मों के फलदाता हैं। ऐसा देखने में भी आता है।"
कर्म का सिद्धांत अगर अपनी तार्किक निष्पत्ति तक खींचा जाए, तो ईश्वर
का हंता हो जाता है। फिर ईश्वर की कोई आवश्यकता नहीं रह जाती। ऐसा ही हुआ जैन और बौद्ध दर्शन में। कर्म के सिद्धांत को उसकी तार्किक निष्पत्ति तक ले जाया गया। ईश्वर व्यर्थ हो गया। ईश्वर की कोई आवश्यकता न रही। कर्म का नियम ही पर्याप्त हो गया, किसी नियंता की कोई जरूरत न रही। कर्म का सिद्धांत स्वचालित हो गया। उसके लिए किसी चालक की जरूरत न रही। पाप करोगे, उसका अनिवार्य परिणाम बुरा होगा। अनिवार्य, स्मरण रखना! पुण्य करोगे, उसका अनिवार्य परिणाम शुभ होगा। अनिवार्य, स्मरण रखना! कर्म अपना फल स्वयं दे जाता है, ऐसी जैन और बौद्धों की दृष्टि है। इस दृष्टि का ही परिणाम हुआ कि दोनों ने ईश्वर-तत्व को इनकार कर दिया।
ईश्वर-तत्व को इनकार करने के कारण जैन और बौद्ध दर्शन ध्यान की तो बड़ी ऊंचाइयों पर उठे, लेकिन प्रार्थना खो गई। क्योंकि परमात्मा के बिना प्रार्थना कहां? ध्यान रूखी-सूखी बात है। उसमें रसधार नहीं है। और ध्यान अकेला अपंग भी है। और ध्यान अकेला, अगर अति बुद्धिमत्तापूर्वक ध्यान की यात्रा न की जाए, तो अहंकार को बलिष्ठ करने का कारण हो सकता है। क्योंकि अहंकार को समर्पित करने के लिए कोई चरण ही न रहे।
इसलिए जैन मुनि जितना अहंकारी होता है, उतना पृथ्वी पर कोई दूसरा साधु नहीं होता। हो नहीं सकता। कारण?
जैन मुनि को समर्पित होने के लिए कोई स्थल नहीं है, जहां वह माथा टेक दे। जहां सज्दा करे, ऐसे कोई चरण नहीं हैं। परमात्मा ही नहीं है अस्तित्व में, तो प्रार्थना कैसे हो सकेगी? और परमात्मा ही नहीं है अस्तित्व में, तो तुम अकेले रह गए--द्वीप की भांति। अपने में बंद। अपने से बाहर जाने का उपाय न रहा। अपने से पार जाने का उपाय भी न रहा। और जीवन की सारी महिमा अपने से पार जाने में है। परमात्मा तो निमित्त मात्र है कि तुम अपने से पार जा सको--सीढ़ी है, कि तुम धीरे-धीरे अपने को भी अतिक्रमण कर जाओ। मनुष्य की गरिमा यही है कि वह अपना अतिक्रमण कर ले।
फ्रेड्रिक नीत्शे का प्रसिद्ध वचन हैः अभागे होंगे वे दिन जब मनुष्य अपना अतिक्रमण करना बंद कर देंगे। अभागे होंगे वे दिन जब मनुष्य अपने होने से तृप्त हो जाएंगे; जब उनके भीतर आग न जलेगी अपने से पार जाने की, अपने से ऊपर उठने की।
मनुष्य की यही महिमा है। इस जगत में कोई और पशु-पक्षी, कोई पौधा, कोई पत्थर-पहाड़ अपने से पार जाने के लिए आकांक्षा नहीं करता। और सब आकांक्षाएं समान हैं, सिर्फ एक आकांक्षा मनुष्य में विशिष्ट है। नीम का वृक्ष नीम का वृक्ष ही रहना चाहता है। इसके पार जाने की उसकी कोई अभीप्सा नहीं है। सिंह सिंह रहना चाहता है। सिंह होने से परितृप्त है। कुछ और होने की आवश्यकता नहीं है, न आकांक्षा है, न स्वप्न है। मनुष्य अकेला प्राणी है जो स्वप्न देखता है--अपने से ऊपर जाने के, अपने से भिन्न होने के। अपने को ही सीढ़ी बना कर अपने ऊपर चढ़ जाने की अपूर्व आकांक्षा मनुष्य के प्राणों को झकझोर देती है। इसी आकांक्षा का नाम संन्यास है।

लेकिन ऊपर जाने को कोई लक्ष्य होना चाहिए। ऊपर जाने के लिए कोई आयाम होना चाहिए। परमात्मा उसी आयाम का नाम है।
अगर परमात्मा नहीं है, तो फिर आदमी बचा। उपनिषद का प्रसिद्ध वचन हैः अहं ब्रह्मास्मि। अगर ब्रह्म नहीं है, तो अहं बचा। और अहं को मिटाने का कोई उपाय भी न बचा। ब्रह्म में ही डूब कर मिट सकता था। अब डूबेगा कहां? अब इससे उबरोगे कैसे? अब इतना ही हो सकता है कि यह पाप की जगह पुण्य में लग जाए। बस इतना ही उपाय रहा। इतना ही उपाय रहा कि सोने की जंजीरें आ जाएं, लोहे की जंजीरें चली जाएं। इतना ही उपाय रहा--धन की अकड़ मिट जाए, त्याग की अकड़ आ जाए। वही जैन मुनि में उपलब्ध हो जाती है। धन की अकड़ चली जाती है, त्याग की अकड़ पकड़ जाती है। कृत्य पर बहुत भरोसा आ जाता है। संकल्प सब कुछ हो जाता है। समर्पण की कोई संभावना नहीं रह जाती। और भक्ति तो समर्पण के बिना हो न सकेगी। और भक्ति के बिना आदमी अपने अहंकार से मुक्त नहीं हो सकता।
इसलिए बादरायण कहते हैं... और बादरायण का सूत्र शांडिल्य ने यहां उल्लेख किया है। बादरायण उन थोड़े से मनीषियों में से एक हैं जिन्होंने जाना। जिन्होंने जाग कर देखा, उन थोड़े से बुद्धपुरुषों में एक हैं।
फलम अस्मात बादरायणः दृष्टत्वात्।
"कर्म स्वयं फलदाता नहीं है। ईश्वर ही कर्मों का फलदाता है। ऐसा देखने में भी आता है।"
ईश्वर को स्वीकार करने का क्या अर्थ होता है? उसे ठीक से समझ लेना, अन्यथा तुम्हारी ईश्वर के प्रति बड़ी बचकानी धारणाएं हैं। उन्हीं धारणाओं को जैनों और बौद्धों ने आसानी से तोड़ दिया और खंडित कर दिया। इस जगत में एक बड़ा अदभुत खेल चलता है। तर्क का जो जाल है, वह उस पर ही आधारित है। वह खेल यह है। जो लोक सामान्य में, पृथकजनों में, सामान्य लोगों में जो धारणाएं प्रचलित होती हैं, उनका खंडन बड़ी आसानी से किया जा सकता है। क्योंकि उनके पीछे न तो कोई अनुभव होता है, न कोई दृष्टि होती है। उनके पीछे मनुष्य की सामान्य बुद्धि होती है। जरा सी असामान्य बुद्धि तुम्हारे पास हो, उनका खंडन किया जा सकता है। लेकिन उनके खंडन से धारणा का वास्तविक रूप खंडित नहीं होता।
जैसे कि तुमने सोच रखा है कि ईश्वर कहीं आकाश में बैठा कोई व्यक्ति!
तो तुम्हारी धारणा बचकानी है। ईश्वर कहीं कोई व्यक्ति की तरह नहीं बैठा हुआ है। और अगर तुमने ईश्वर को व्यक्ति माना, तो तुम नास्तिकों या अनीश्वरवादियों के किसी न किसी तर्कजाल से तोड़ दिए जाओगे। तुम बच न सकोगे।
ईश्वर व्यक्ति नहीं है, ईश्वर ऊर्जा है। वह जो बुद्धि की ऊर्जा है, उसका नाम ईश्वर है। इस जगत में जो बुद्धिमत्ता दिखाई पड़ती है, उसका नाम ईश्वर है। इंटेलिजेंस। इस जगत में जो प्रतिभा का आभास होता है, उसका नाम भगवत्ता है। भगवान कोई व्यक्ति नहीं है। व्यक्ति को खोजने निकलोगे, तो कहीं भी न पाओगे। जिन्होंने भगवान का अनुभव किया है, उन्होंने भी नहीं कहा कि भगवान व्यक्ति है। उन्होंने भी कहा कि भगवान एक अनुभूति है। तुम्हारी चैतन्यदशा जब इतनी निखार को उपलब्ध हो जाती है कि उस पर कोई सीमा के बंधन नहीं रह जाते, सब उपाधियां जब गिर जाती हैं, जब तुम निर-उपाधि हो जाते हो, जब तुम्हारी चैतन्य की दशा इतनी शांत और इतनी आनंदमग्न हो जाती है कि विचार की एक तरंग नहीं उठती, झील परिपूर्ण शांत होती है, तब तुम्हें अनुभव होता है कि तुम्हारी झील कहीं भी समाप्त नहीं होती; तुम्हारी झील किसी विराट झील का हिस्सा है; तुम्हारा यह छोटा सा चैतन्य का दीया किसी विराट महासूर्य की किरणों का हिस्सा है। उस विराट चैतन्य का नाम परमात्मा है। तुम्हारे भीतर उसकी ही एक किरण है। तुम उसके ही एक रूप हो। तुम तक वह आया हुआ है।
परमात्मा व्यक्ति नहीं है, बल्कि समष्टि में छिपी हुई चैतन्य की शक्ति का नाम है। जड़ में भी वही है। क्योंकि जड़ भी चैतन्य की ही एक अवस्था है--सोई हुई अवस्था। तुम्हारे शरीर में भी वही है। वह उसकी सोई हुई अवस्था है। और तुम्हारे बोध में भी वही है, वह उसकी थोड़ी सी जागती हुई अवस्था है।

और जिस दिन तुम बुद्धत्व को उपलब्ध हो जाओगे, परम जाग्रत हो जाओगे, उस दिन भी वही होगा। वह उसकी परिपूर्ण जाग्रत अवस्था है। जिसके पार फिर और जागना शेष नहीं रह जाता।
संक्षिप्त में, परमात्मा व्यक्ति नहीं, इस जगत में छिपी हुई बुद्धिमत्ता है। और बुद्धिमत्ता के प्रमाणों की कमी नहीं है। यहां हर चीज इतनी बुद्धिमत्ता से चल रही है कि क्या उसके लिए प्रमाण देना पड़ेगा? तुम एक बीज बोते हो, बीज में निश्चित ही कोई बुद्धिमत्ता है, क्योंकि बीज भलीभांति जानता है उसे क्या होना है--आम होना है कि नीम होना है। बीज भलीभांति जानता है कि किन पत्तों को उगाना है--वे हरे होंगे, कि लाल होंगे, कि पीले होंगे। बीज भलीभांति जानता है, आकाश में कितने ऊपर तक शाखाओं को भेजना है। बीज भलीभांति जानता है कि जड़ें कितनी दूर गहराई में जलस्रोत की तलाश में जानी चाहिए तब मैं जीवित रह सकूंगा। तुम वृक्ष की एक शाखा काट दो, तत्क्षण वृक्ष दूसरी शाखा पैदा कर देता है। कमी हो गई, उसे पूरी कर लेता है। रात वृक्ष भी सो जाता है, दिन जागता है। और अब तो वैज्ञानिक कहते हैं कि वृक्ष की संवेदना भी है। अब तो वैज्ञानिकों के पास इस बात के प्रमाण हैं। जो सर जगदीशचंद्र बसु ने सबसे पहली दफे प्रमाणित किया था, वह धीरे- धीरे इन पचास वर्षों में रोज-रोज सघनता से प्रमाणित होता गया है। आज अगर जगदीशचंद्र बसु होते, तो उनके आनंद का पार न होता, पारावार न होता! क्योंकि पश्चिम में बहुत सी खोजें इस बीच हुई हैं। उन खोजों को देख कर चमत्कार होता है।
वैज्ञानिक कहते हैं कि जब कुल्हाड़ी लेकर कोई वृक्ष को काटने आता है,
तो कुल्हाड़ी लाने वाले व्यक्ति को दूर से ही देख कर और वृक्ष में तरंगें भय की पैदा हो जाती हैं। अभी काटा नहीं गया है, अभी यह भी पक्का नहीं है कि इसी को काटेगा। लेकिन वृक्ष की तरफ आ रहा है कुल्हाड़ी लेकर। दूर से! अभी आ भी नहीं गया है, अभी कुल्हाड़ी की चोट भी नहीं पड़ी है, और वृक्ष भय से कंपने लगता है, जैसे तुम भय से कंपने लगोगे कोई अगर तलवार लेकर तुम्हारी तरफ आने लगे। हो सकता है सिर्फ मजाक कर रहा हो, तुम्हें मारने न आया हो, लेकिन तुम्हारे भीतर भय समा जाएगा।
अब वृक्षों के भीतर किस तरह के कंपन होते हैं, उनको नापने के यंत्र बन
गए हैं। जैसे कॉर्डियोग्राम होता है और तुम्हारे हृदय की धड़कन नापी जाती है और तुम्हारे हृदय की तरंगें नापी जाती हैं, ठीक वैसे ही सूक्ष्म यंत्र बन गए हैं जो वृक्षों के हृदय की धड़कन को मापते हैं। कुल्हाड़ी लेकर आते हुए लकड़हारे को देखते ही वृक्ष के प्राण कंप जाते हैं। यंत्र तत्क्षण घबड़ाहट की खबरें देता है, कि वृक्ष घबड़ा रहा है। माली को आते देख कर वृक्ष प्रफुल्लित हो जाता है, यंत्र खबर देता है कि वृक्ष प्रफुल्लित हो रहा है, माली आ रहा है, पानी आ रहा है, प्रेम करने वाला पास आ रहा है।
तुम अगर किसी वृक्ष के पास रोज-रोज जाकर बैठते हो, उसको सहलाते हो, उससे दो बातें करते हो, तो वैज्ञानिक कहते हैं कि वह वृक्ष तुम्हारी प्रतीक्षा करने लगता है। वह रोज उतने वक्त राह देखता है। उसकी आंखें--जो हमें दिखाई नहीं पड़तीं ऊपर से, लेकिन यंत्र बताता है कि उसकी आंखें तुम्हारी प्रतीक्षा करती हैं। उसके कान--जो हमें दिखाई नहीं पड़ते, यंत्र बताता है--तुम्हारी पगध्वनि को सुनते हैं। आते हो कि आज नहीं? नहीं आते हो तो उदास हो जाता है। आ जाते हो तो अपूर्व आनंद से भर जाता है। तुम्हें देख कर झूलने लगता है, मस्ती में डोलने लगता है।
अभी तक हमने ठीक से अस्तित्व के प्राणों में उतरना शुरू भी नहीं किया
है, लेकिन इतने प्रमाण अभी भी मिल गए हैं कि सारा अस्तित्व बुद्धिमत्ता से भरा हुआ है। संवेदना है, चेतना है। और जो आज वृक्ष में सच हो गया है, वही कल चट्टान में भी सच होने को है। और सूक्ष्म यंत्र चाहिए होंगे, जो चट्टान के भीतर भी उठती हुई तरंग-धाराओं को माप सकें।
परमात्मा का इतना ही अर्थ है कि यह पूरा जगत संवेदनशील है। यह जगत संवेदनशून्य नहीं है। और इस जगत के पीछे एक बुद्धिमत्ता है, जो चीजों का नियोजन कर रही है।

बादरायण कहते हैं--और शांडिल्य बादरायण का उल्लेख कर रहे हैं अपनी बात के पक्ष में--कि कर्म अपने आप में फलदायी नहीं हैं। कोई कर्म अपने आप में कैसे फलदायी हो सकता है? इस जगत की बुद्धिमत्ता फल देती है। यह जगत प्रतिसंवेदन करता है। यह जगत, तुम जो इसके साथ करते हो, वही तुम्हारे साथ करता है। कर्म अपने आप में फलदायी नहीं हो सकते। कर्म फलदायी हैं, क्योंकि जगत में एक बुद्धिमत्ता छिपी है, जो प्रत्येक कर्म के लिए पुरस्कार देती है और दंड देती है।
चार बातें समझ लेनी जरूरी हैं।
पहली बात, कि तुम जब भला करते हो, तो भला करने के कारण ही तुम्हें अच्छे परिणाम नहीं आते। तुम भला करते हो, इससे परमात्मा, इससे छिपी हुई जगत की बुद्धिमत्ता तुम्हारे साथ भला करती है। अगर जगत बुद्धिहीन होता, तो तुम करते रहते भला, कुछ परिणाम नहीं हो सकता था।
और तुम इसे अनुभव से भी देख सकते हो। तुम किसी बुद्धू के साथ भला करो,
और तुम उतना ही भला किसी बुद्धिमान के साथ करो, तुम पाओगे कि दोनों में फल का भेद पड़ गया। क्योंकि बुद्धू शायद समझे ही नहीं कि तुमने भला किया। या कभी यह भी हो सकता है कि बुद्धू तुम्हारे भले को बुरा समझ ले और तुम्हें नुकसान पहुंचा दे। बुद्धिमान समझेगा। बुद्धुओं को देख कर ही समझदारों ने कहा होगा--नेकी कर और कुएं में डाल। फिकर ही मत करना। इन बुद्धुओं के साथ अगर अच्छा भी किया है तो अच्छे की अपेक्षा मत करना। इनसे अच्छा शायद ही हो। अक्सर ऐसा हो जाता है कि बुद्धू, बुद्धिहीन आदमी से अगर तुम अच्छा व्यवहार करो, तो वह निश्चित तुमसे बुरा व्यवहार करेगा।
क्यों ऐसा हो जाता है? तुम जब अच्छा व्यवहार करते हो किसी बुद्धिहीन से, तो उसके अहंकार को चोट लगती है कि अच्छा! तो तुम बड़े अच्छे होने की कोशिश कर रहे हो? तो तुमने अपने को समझा क्या है? बड़े साधु होना प्रमाणित कर रहे हो! वह तुम्हारी साधुता को बिखेरने के लिए उत्सुक हो जाएगा। वह तुम्हें नीचा दिखाने को उत्सुक हो जाएगा। अगर तुम बुद्धिमान के साथ अच्छा व्यवहार करोगे, तो अनंत गुना परिणाम होगा। यह तो रोज देखने में आता है। बादरायण कहते हैंः "ऐसा देखने में भी आता है।"
तुम जितनी जड़ स्थिति में अपनी भलाई डालोगे, उतना ही छोटा परिणाम होगा। जैसे-जैसे तुम ज्यादा समझदार व्यक्ति के साथ व्यवहार करोगे, उतने ज्यादा परिणाम होने लगेंगे।
तो इस जगत में बुरे का फल बुरा होता है, ऐसा देखा गया; भले का फल भला होता है, ऐसा देखा गया; लेकिन इससे यह मत समझ लेना कि कर्म अपना ही फल खुद को दे लेते हैं। कर्मों की क्या क्षमता? कर्मों के फल होते हैं, क्योंकि यहां छिपी हुई बुद्धिमत्ता प्रत्येक कर्म के उत्तर में संवेदित होती है, झंकृत होती है। वही झंकार तुम तक आती है--शुभ की तरह, या अशुभ की तरह।
अगर अस्तित्व जड़ हो और अस्तित्व में कोई परमात्मा न हो और अस्तित्व
को बिल्कुल उपेक्षा हो तुम्हारे प्रति--जड़ ही हो तो उपेक्षा होगी ही--फिर तुम अच्छा करो या बुरा, परिणाम केवल सांयोगिक होंगे। उनमें कोई अपरिहार्यता नहीं रह जाएगी। क्योंकि दूसरी तरफ कोई बुद्धिमत्ता नहीं है जो कि परिणामों को सुनिश्चितता दे सके।
बादरायण की बात में बड़ा बल है। जिन्होंने देखा है, उन्होंने ऐसा ही देखा है। इतना ही देख कर मत रुक जाना कि अच्छे कर्म का अच्छा फल हुआ और बुरे कर्म का बुरा फल हुआ। जरा और गहरे खोजना! तो तुम पाओगे कि अच्छे कर्म के पीछे अच्छा फल आया है, क्योंकि कोई बुद्धिमान शक्ति चारों तरफ से उस अच्छे फल को सराही है। उस अच्छे फल का स्वागत, उस अच्छे कर्म का स्वागत हुआ है।
फिर ऐसा भी हो जाता है कि तुम कभी अच्छा करते, सोचते हो कि तुम अच्छा
कर रहे हो, लेकिन परिणाम बुरे होते हैं। तुम्हें तुम्हारे शुभ कर्म का शुभ फल मिलता हुआ नहीं दिखाई पड़ता। लोग बड़े चिंतित भी हो जाते हैं। मेरे पास लोग आकर कहते हैं कि हमने अच्छा किया, कहते हैं कि अच्छे का फल अच्छा होगा, लेकिन हुआ नहीं। तो मैं उनसे कहता हूंः तुम अपनी अच्छाई को खोजना। तुम सोचते थे तुमने अच्छा किया, लेकिन वह अच्छा था नहीं। इसलिए अस्तित्व ने

तुम्हें जो प्रतिकार दिया है, वह अच्छा नहीं है। तुम जरा अपनी अच्छाई में और गौर से उतरना। तुम्हारी अच्छाई में कोई गहरी बुराई छिपी होगी। तुम इस जगत की बुद्धिमत्ता को धोखा नहीं दे सकते!
जैसे तुमने दान दिया किसी को। अब दान दो कारणों से दिया जा सकता है--या अनेक कारणों से भी दिया जा सकता है--लेकिन मौलिक रूप से दो कारण हो सकते हैं। एक, कि तुमने दया के कारण दिया। तुम्हें दूसरे के दुख की बात छू गई। तुम्हारी आंखों में आंसू आ गए। तुम्हें लगा कि कुछ करना जरूरी है। तुम्हें दूसरे का दुख छुआ। तुमने दूसरे का दुख हरने को कुछ किया। या यह भी हो सकता है कि दूसरे को दुखी देख कर तुम्हारे अहंकार को आनंद आया और तुमने अहंकार के कारण कुछ किया--कि ले भई! तू दुखी है, देख, हम दानी हैं! हमारी तरफ देख, याद रखना कि जब तू दुखी था तो हमने तेरी सहायता की थी। दान या तो दूसरे के दुख के कारण सहजस्फूर्त हुआ, या अहंकार से जन्मा कि तुम्हें दानी होने का मौका मिला। कुछ लोग हैं जो दानी होने की तलाश में होते हैं। उनकी आकांक्षा यही है कि कोई न कोई कहीं न कहीं दुखी हो।
एक ईसाई मिशनरी ने मुझसे कहा कि आपके देश में सेवा को कोई मूल्य नहीं दिया गया है। न महावीर ने, न बुद्ध ने, न कृष्ण ने, सेवा को कोई मूल्य नहीं दिया है। उपनिषदों में, वेदों में सेवा की कोई चर्चा नहीं है। जैसा कि ईसाइयत में है। सेवा धर्म है। सेवा के बिना कोई मोक्ष जा ही नहीं सकता, मुक्त हो ही नहीं सकता।
मैंने उससे पूछा कि अगर दुनिया में सब सुखी हो जाएं, फिर तुम क्या करोगे? फिर तुम कैसे मोक्ष जाओगे? कोई दुखी ही न होगा, किसी को सेवा की जरूरत न होगी--थोड़ी देर कल्पना कर लो, दुनिया में सारे लोग सुखी हो गए--फिर तो मोक्ष का द्वार बंद हो जाएगा!
वह थोड़ा चौंका। इस तरह उसने कभी सोचा नहीं था। कहने लगा, नहीं, ऐसा हो
ही नहीं सकता कि दुनिया में सब सुखी हो जाएं।
मैंने कहा, सिर्फ इसीलिए नहीं हो सकता क्योंकि तुम्हें मोक्ष जाने का उपाय टूट जाएगा? तब तो तुम दूसरे का दुख भी शोषण कर रहे हो। तुम्हारी सेवा में नजर स्वार्थ की है। तुम दूसरे की सेवा कर रहे हो ताकि स्वर्ग मिल जाए। तुम्हें दूसरे के दुख पर दया नहीं है, तुम्हें अपने सुख की चाह है, अपने स्वर्ग की चाह है। अगर स्वर्ग दूसरे के दुख में सेवा करने से ही मिलता है, तो निश्चित ही सेवक चाहेगा कि दुनिया में दुख बना रहे। यह तो बड़ी अजीब बात हो गई, कि सेवक चाहे कि दुनिया में दुख बना रहे। नहीं तो उसकी सेवा टूट जाएगी। यह तो बड़ा विरोधाभास हो गया। लेकिन यही हालत है।
अगर तुमने सेवा इसलिए की है कि तुम्हें स्वर्ग जाना है, और तुमने दान इसलिए दिया है कि इससे प्रतिष्ठा मिलती है, अखबार में नाम छपता है, समाज में आदर मिलता है, पुण्य अर्जित होता है, स्वर्ग में उसका प्रतिकार मिलेगा, प्रतिफल मिलेगा, तो तुमने शुभ कर्म नहीं किया। गहरे में तो तुम्हारा स्वार्थ है, परार्थ जरा भी नहीं है। गहरे में तो तुम्हारा अहंकार है। इसमें दूसरे के दुख से कुछ लेना-देना नहीं है। तब निश्चित तुम इस जगत की बुद्धिमत्ता को धोखा न दे पाओगे।
अगर जड़ नियम होता जगत में तो शायद तुम्हें इससे पुण्यफल भी मिल जाता। लेकिन जड़ता नहीं है, यहां जगत में छिपी बुद्धिमत्ता है। तुम क्या करते हो, उसको ही नहीं देखती; तुम्हारे करने के भीतर छिपी हुई अभीप्सा को देखती है। तुम क्या करते हो, उसको ही नहीं देखती; तुम क्यों करते हो, उसको भी देखती है। तुम्हारा कृत्य और तुम्हारा कर्म क्या है, यह बात गौण है; तुम क्या हो, यह बात महत्वपूर्ण है। इस बुद्धिमत्ता को तुम धोखा नहीं दे पाते।
इसलिए तुम पाओगे, और अक्सर तुमने देखा होगा कि कभी-कभी भला आदमी, जो सब तरह से भला करता है, और बड़ा दुख पाता है। और कभी-कभी ऐसा भी हो जाता है कि एक बुरा आदमी, जिसके संबंध में तुम्हें कुछ भी पता नहीं कि उसने कभी भला किया है, वह भी कभी बड़े आनंद में पाया जाता है। ये भेद इसीलिए पड़ जाते हैं। ये भेद इसीलिए पड़ जाते हैं कि जगत में बुद्धिमत्ता काम कर रही है। परमात्मा विराजमान है। उन आंखों को तुम धोखा न दे पाओगे। उस बोध के साथ तुम चालाकी न

कर पाओगे। तुम्हारी सब चालाकियां पड़ी रह जाएंगी। तुम्हारी सब होशियारियां दो कौड़ी की हैं।
इसलिए ख्याल रखना, पुण्य के पीछे भी पाप का भाव हो सकता है। और कभी-कभी ऊपर से दिखाई पड़ने वाले पाप के पीछे भी पुण्य की ऊर्जा हो सकती है। असली बात अभिप्राय की है।
अब ऐसा समझो कि एक आदमी के सिर में वर्षों से दर्द था। तुम्हारा उससे झगड़ा हो गया, तुमने एक पत्थर उठा कर उसके सिर में मार दिया। पत्थर की क्या चोट लगी, उसका दर्द ठीक हो गया। तुम बुरा करने चले थे, हो गया भला। क्या तुम सोचते हो इससे तुम्हें पुण्यफल मिलेगा? तुम्हारा अभिप्राय तो भले का नहीं था। और यह उदाहरण तुम ऐसा मत समझना कि सिर्फ काल्पनिक है। ऐसा कई दफे हो गया है। चीन में आक्यूपंक्चर नाम का पूरा शास्त्र खोजा गया इसी तरह। एक आदमी को पक्षाघात लग गया था, पैरालिसिस हो गई थी, और वह एक रास्ते से अपने पैर को घसीटता चल रहा था कि उसके दुश्मन ने उसको एक तीर मारा। वह उसके पैर में लगा। उसके पैर में लगते ही उसका पक्षाघात चला गया। फिर इस पर बड़ी खोज-बीन करनी पड़ी कि मामला क्या हुआ? इलाज काम नहीं किए, औषधि काम नहीं की, और तीर के लगने से हुआ क्या? खोज से पता चला कि तीर संयोगवशात ऐसी जगह लगा जहां विद्युत का मार्ग है, शरीर की विद्युत जहां से बहती है। उस तीर के लगने से विद्युत का मार्ग बदल गया। मार्ग के बदलने से उसका पक्षाघात बदल गया। इसी आधार पर आक्यूपंक्चर की खोज हुई।
इसलिए तुम अगर आक्यूपंक्चरिस्ट के पास जाओगे, तुम कहते हो सिर में दर्द है, वह हो सकता है कि तुम्हारे हाथ में सुई गड़ाए, कि तुम्हारे पैर में सुई गड़ाए। तुम सोचोगे भी कि यह मामला क्या है? यह होश में है? मेरे सिर में दर्द है और यह पैर में सुई गड़ा रहा है! लेकिन चमत्कार होता है। पैर में सुई गड़ती है, सिर का दर्द खो जाता है। क्योंकि पैर से जो विद्युत की ऊर्जा सिर की तरफ बह रही है, उसको रूपांतरित करने के लिए सुई काफी है। सुई की चोट से विद्युत का प्रवाह बदल जाता है। फिर कहां-कहां बिंदु हैं विद्युत के प्रवाह को बदलने के, इनकी खोज की गई। सात सौ बिंदु पाए गए। मनुष्य के शरीर में सात सौ बिंदु हैं। उन बिंदुओं से सारी बीमारियों का इलाज हो सकता है। मगर आविष्कार तो हुआ था एक आकस्मिक घटना से। जिसने तीर मारा था, वह कोई आक्यूपंक्चर को जन्म देने की इच्छा नहीं रखता था, उसे कुछ पता भी नहीं था। वह तो मार डालना चाहता था इस आदमी को। क्या तुम सोचते हो उसको पुण्य हुआ? हालांकि उसके कृत्य का परिणाम तो बहुत अच्छा हुआ। आदमी बचा। एक आदमी नहीं बचा, पांच हजार साल में लाखों लोग उसके तीर की वजह से स्वास्थ्य लाभ किए। लेकिन उसका अभिप्राय तो बुरा था। फल तो बुरा ही होगा।
कभी-कभी तुम्हारा अभिप्राय अच्छा होता है और कृत्य ऊपर से दिखाई पड़ता
है बुरा है। तो भी तुम्हें पुण्य का अर्जन होता है। कृत्य नहीं देखे जाते, कृत्य ऊपर हैं, देखे अभिप्राय जाते हैं। अभिप्राय कौन देखता होगा? उसके लिए बड़ी ही गहन प्रतिभा चाहिए जगत में छिपी हुई, जो तुम्हारे अभिप्रायों को भी परख लेती हो। शायद तुम्हें भी अपने अभिप्राय का पता न हो। तुमसे बड़ी कोई बुद्धिमत्ता चाहिए, जो तुम्हारे सामने भी छिपे अभिप्रायों को पता कर लेती हो। जो तुम्हारे अंतस्तल में पैठ जाती हो। जो तुम्हारे केंद्र में प्रवेश कर जाती हो। जो तुम्हारे भीतर से भीतर को पकड़ लेती हो और पहचान लेती हो। और ऐसा ही हो रहा है।
जब तुम्हें अपने किसी अच्छे काम के लिए बुरा फल मिले, तो नाराज मत होना और शिकायत मत करना; इतना ही समझना कि कृत्य तो अच्छा था, लेकिन अभिप्राय भीतर बुरा था। इससे तुम यह मत समझ लेना कि जगत में कोई अन्याय हो रहा है। और कभी तुम किसी व्यक्ति को बुरा कृत्य करते देखो और फल अच्छा होते देखो, तो भी यह मत सोच लेना कि जगत में बड़ी बेईमानी चल रही है, परमात्मा तक अन्यायी हो गया है। वह कृत्य ऊपर से बुरा दिखाई पड़ रहा है, लेकिन भीतर उसका अभिप्राय अच्छा होगा। अभिप्राय तुम्हें दिखाई नहीं पड़ता, हो सकता है स्वयं उसे भी दिखाई न पड़ता हो। लेकिन जो हमें भी नहीं दिखाई पड़ता, उसे भी देखने वाली आंखें इस जगत में छिपी हैं। उन आंखों का नाम

परमात्मा है। वे आंखें सदा तुम्हारा पीछा कर रही हैं। वे हर घड़ी तुम्हें देख रही हैं। यह तो एक अर्थ।
दूसरा यह भी अर्थ, जो इसी से निष्पन्न होता है और और भी गहरा हो जाता हैः कर्म करो, फल की चिंता न करो। कृष्ण ने गीता में कहा है कि तुम सिर्फ कर्म करो, फल की चिंता मत करो। फल तुम्हारे हाथ में नहीं है, फल परमात्मा के हाथ में है।
और मजा ऐसा है कि हम कर्म तो कम करते हैं, फल की चिंता बहुत करते हैं।
हम चाहते हैं कि कर्म तो करना ही न पड़े और फल हो जाए। या कर्म कम से कम करना पड़े और फल बड़ा से बड़ा हो जाए। कोई शॉर्टकट मिल जाए। कोई तंत्र-मंत्र हो जाए। कोई जादू का उपाय हो जाए। कर्म तो करना न पड़े और फल पूरा मिल जाए। हमारी यही बेईमानी है। ऐसा नहीं हो सकता।
फल उसी अनुपात में मिलता है, जिस अनुपात में कर्म किया जाता है। कर्म करके ही तुम जगत में छिपी बुद्धिमत्ता को उत्प्रेरित करते हो फल देने के लिए। तुम्हारा कर्म तुम्हारी पात्रता है। लेकिन फल तुम्हारे हाथ में नहीं है। इसलिए फल की चिंता व्यर्थ है। और फल की ही चिंता होती है, और कोई चिंता नहीं है जगत में। जिसने यह समझ लिया कि फल परमात्मा के हाथ में है, वह चिंतित नहीं रह जाता, वह निश्चिंत हो जाता है। उसकी मनोदशा बड़ी शांत हो जाती है। कर्म करता रहता है, फल की कोई चिंता ही नहीं--जो होगा। जो होना चाहिए, वह होगा। जब होना चाहिए, तब होगा। उसे इस विश्व की सत्ता पर भरोसा है, श्रद्धा है। वह जानता है, अन्याय नहीं होता। और अगर देर लग रही है, तो वह भी मेरे हित में ही होगी। और अगर कभी बुरा परिणाम भी होता है उसके अच्छे कृत्य का, तो भी उसकी श्रद्धा इतनी गहरी है कि वह मानता है कि मेरे कृत्य में जरूर कोई बुराई रही होगी जो मुझे दिखाई नहीं पड़ती, लेकिन उन आंखों को दिखाई पड़ती है। अब मैं अपने कृत्य को बदल लूं। और कभी अगर उसे बहुत दुख भी मिलता है, तो भी वह जानता है, यह भी मेरी परीक्षा होगी, अग्नि-परीक्षा होगी। तो भी वह जानता है, इस दुख के पीछे भी उस बुद्धिमत्ता के ही हाथ हैं, इसलिए निश्चित ही इस दुख से भी कुछ लाभ होने को होगा--मैं मांजा जाऊंगा, निखारा जाऊंगा, मेरी अशुद्धियां जलाई जाएंगी।
भूल के भी न दर्द को दिल से कभी जुदा समझ
शाहिदे-दिलनवाज की यह भी कोई अता समझ
भूल के भी न दर्द को दिल से कभी जुदा समझ
शाहिदे-दिलनवाज की यह भी कोई अता समझ
उस परम प्रेमी की यह भी कोई कृपा है अगर दर्द हो, अगर पीड़ा हो। यह पीड़ा
भी निखारने का ही उपाय है। यह पीड़ा भी परिष्कार का ही उपाय है। मंजिले-हस्रो-बूद में तेरा मुकाम है बुलंद
महरो-महो-नजूम को अपने निशाने-पा समझ
चिंता जरा भी न करो। उस विराट के हृदय में तुम्हारी जगह है। और जो भी
हो रहा है, ठीक ही हो रहा होगा। गलत होता ही नहीं है। गलत हो ही नहीं सकता। जब परमात्मा कण-कण में व्याप्त है, तो गलत कैसे हो सकता है? अगर हमें गलत दिखाई पड़ता है तो हमारी आंख की कहीं भूल होगी। इस गहन आस्था का नाम धर्म है। जहां गलत भी हमें दिखाई पड़ता है, जहां हमारा तर्क कहता है गलत हो रहा है, वहां भी श्रद्धा जानती है--हमारी ही कोई भूल है। देखने में, दृष्टि में कोई दोष है। हमारी आंख में ही कंकरी पड़ी है। हमारा दर्पण ही गलत झलका रहा है। गलत तो हो ही नहीं सकता। कैसे गलत हो सकता है?
जगत तुम जैसे बुद्धिमान व्यक्तियों को पैदा किया है! निश्चित ही, जिससे तुम आए हो, वह तुमसे ज्यादा बुद्धिमान होना चाहिए। तुम्हारी बुद्धि तो छोटी सी है। एक बूंद समझो। और इस जगत की बुद्धिमत्ता सागर जैसी है। जब एक बूंद को कुछ भूल दिखाई पड़ रही है, तो सागर को तो कभी की दिखाई पड़ जाती। भूल नहीं होगी। बूंद होने के कारण ही शायद दिखाई पड़ रही है, क्योंकि हमारी सीमा है। हमारी समझ की सीमा कितनी! हमारी समझ क्षुद्र है। हम विराट को ठीक से नहीं झलका पाते।
जौहरे-दर्द है अगर गौहरे-अश्क में तेरे
दामने-कायनात को मोतियों से भरा समझ

जौहरे-दर्द है अगर गौहरे-अश्क में तेरे
अगर तेरे आंसू-रूपी मोती में दर्द का अंश है!
जौहरे-दर्द है अगर गौहरे-अश्क में तेरे
दामने-कायनात को मोतियों से भरा समझ
फिर चिंता मत करो। फिर इस संसार का दामन, इस संसार का आंचल मोतियों ही मोतियों से भरा है। सिर्फ एक बात की फिकर कर लो कि तुम्हारा आंसू मोती बन जाए। दर्द में भी गिरा हुआ आंसू श्रद्धा में गिरे। पीड़ा में गिरा हुआ आंसू भी प्रार्थना में गिरे। बस तुम्हारे दर्द के आंसू में मोती की झलक आ जाए। तुम्हारे भाव में श्रद्धा की झलक आ जाए। फिर सारा जगत, इस जगत का आंचल मोतियों ही मोतियों से भरा है।
कर्म करो, फल की चिंता मत करो। वह चिंता अकारण है। उसके कारण तुम व्यर्थ टूट जाते हो। और उस चिंता में तुम इतनी शक्ति लगा देते हो कि कर्म में लगाने को शक्ति बचती ही नहीं। वह सारी शक्ति अगर कर्म में लग जाए, तो इस जगत में प्रत्येक व्यक्ति अपूर्व आनंद को उपलब्ध हो। और अपूर्व विजय की यात्रा हो जाए जीवन में। सफलता ही सफलता है फिर।
मगर निन्यानबे प्रतिशत तो फल की चिंता में जाती है और एक प्रतिशत कर्म में लगती है। बीज तो तुम एक प्रतिशत बोते हो और निन्यानबे प्रतिशत तुम अपेक्षा करते हो फसल काटने की। फिर फसल नहीं काट पाते तो कौन जिम्मेवार है?
जिन्होंने देखा है उन्होंने ऐसा ही देखा है, इसके दो अर्थ हो सकते हैं। एक तो साधारण अर्थ है, जो अब तक टीकाएं की गई हैं उनमें लिखा हुआ है। वह साधारण अर्थ है--"ऐसा देखने में भी आता है।" कैसा देखने में आता है? जो साधारण टीकाएं लिखी गई हैं अब तक शांडिल्य के सूत्रों पर, उन सभी टीकाओं में यह लिखा है कि जैसे तुम कोई अच्छा काम करते हो तो राजा तुम्हें पुरस्कार देता है। तुम कोई बुरा काम करते हो तो राजा तुम्हें दंड देता है। राजा के बिना कौन पुरस्कार देगा? कौन दंड देगा? मजिस्ट्रेट के बिना कौन तुम्हें सजा देगा? कौन तुम्हें सजा से छुटकारा देगा? कृत्य अपने आप में निर्णायक नहीं हो सकता, कृत्य का निर्णय करने को पीछे कोई चेतना चाहिए। यह तो बड़ी साधारण व्याख्या हुई। यह मेरे मनपसंद व्याख्या नहीं। इस व्याख्या में भूलें भी बहुत हैं। क्योंकि जिन्होंने कर्म के सिद्धांत को माना है, वे इतनी आसानी से राजी नहीं हो जाएंगे। वे कहते हैंः हम आग में हाथ डालते हैं, कौन हमारा हाथ जलाता है? आग में हाथ डालना, यह हमारा कृत्य; और हाथ का जल जाना, यह उस कृत्य का फल। न कोई राजा है बीच में और न कोई मजिस्ट्रेट है बीच में। आग में हाथ डाला कि जलोगे। कर्म ही अपना फल ले आएगा। तो ऐसे उदाहरण दिए जा सकते हैं जहां कर्म अपना फल खुद ही ले आता है। तुमने जहर पीया, मरोगे। अगर जहर पीने से मृत्यु हो जाती है और आग में हाथ डालने से हाथ जल जाता है, तो कर्म का सिद्धांत मानने वाले लोग कहते हैं, इसी तरह प्रेम करने से प्रेम मिलता है और घृणा करने से घृणा मिलती है। बुद्ध ने कहा हैः वैर से वैर बढ़ता है, और प्रेम से प्रेम बढ़ता है। नहीं, कोई राजा इत्यादि की बात सार्थक नहीं है।
फिर मैं क्या अर्थ करता हूं?
फलम अस्मात बादरायणः दृष्टत्वात्।
"ऐसा देखने में भी आता है।"
मैं यही अर्थ करता हूंः जिन्होंने देखा। बादरायण ने देखा। शांडिल्य
ने देखा। मैं तुमसे कहता हूंः मैं भी देख रहा हूं। तुम भी देख सकते हो। जिनकी भीतर की आंख खुलती है और जो यह देखना शुरू करते हैं कि जगत जड़ नहीं है, जड़ता सिर्फ हमारी धारणा है; हर जड़ता में चैतन्य सुप्त पड़ा है, और सारा जगत चैतन्य से आप्लावित है, उसकी बाढ़ आई हुई है; जिन्होंने ऐसा देखा है वे कहते हैं कि हमारे कर्मों का जो फल मिलता है वह कर्मों के कारण नहीं मिलता, न हमारे कारण मिलता है, वरन इस चैतन्य के सागर के कारण मिलता है जो हमें सब तरफ से घेरे हुए है।
तुम भी खोलो आंख और देखो। यह दिखाई पड़ सकता है। यह कोई सिद्धांत मात्र नहीं है। यह कोई दर्शनशास्त्र मात्र नहीं है। भक्तों को दर्शनशास्त्र

में बहुत जिज्ञासा नहीं रही है। उनका सारा रस भाव में है, विचार में नहीं।
लेकिन आज के सूत्र बड़े विचार के सूत्र भी हैं। जो भाव को नहीं समझ सकते और अभी विचार के जगत में जी रहे हैं, उनके लिए कहे गए सूत्र हैं। समझ में आ जाएंगे तो वे भी भाव की यात्रा पर निकलेंगे।
व्युत्क्रमात आप्ययः तथा दृष्टम्।
"विलोम रीति से लय हुआ करता है।"
यह सूत्र बड़ा अपूर्व है। इसे खूब गहरे हृदय में बिठा लेना। इस सूत्र
का अर्थ समझो।
दो क्रम शास्त्रों में कहे गए हैं--अनुलोम और विलोम। अनुलोम का अर्थ होता हैः विस्तार। जैसे बीज से वृक्ष होता है। बीज तो बिल्कुल छोटा है, जरा सा है। फिर टूटता है, पल्लव फूटते हैं, अंकुर निकलते हैं, शाखाएं फैलती हैं, बड़ा वृक्ष खड़ा हो जाता है--सैकड़ों लोग उसकी छाया में बैठ सकें, हजारों पक्षी उस पर सांझ बसेरा करें, राहगीर अपनी बैलगाड़ियां खोल दें, विश्राम करें--बड़ा हो जाता है। कोई सोच भी नहीं सकता था कि इस छोटे से बीज में इतना बड़ा वृक्ष छिपा होगा। इस प्रक्रिया का नाम--अनुलोम, एवोल्यूशन, विकास, फैलाव, विस्तार।
दूसरा क्रम कहलाता है--विलोम। विलोम का अर्थ होता हैः वृक्ष फिर बीज
बन गया। फिर वृक्ष ने बीज पैदा कर दिए। संकोच, सिकुड़ाव। अगर अनुलोम को हम कहें एवोल्यूशन, फैलाव, विस्तार, तो विलोम को कहना होगा इनवोल्यूशन, सिकुड़ाव, संक्षिप्त हो जाना। और यही लयबद्धता है।
बीज वृक्ष बनता है, वृक्ष फिर बीज बन जाते हैं। परमात्मा संसार बनता है, संसार फिर परमात्मा बन जाता है। संसार परमात्मा का विस्तार है। परमात्मा सूक्ष्म बीज की भांति है और संसार उसका फैलाव है। ब्रह्म शब्द का अर्थ ही होता है--फैलता है जो, विस्तीर्ण होता है जो। ब्रह्म और ब्रह्मांड एक ही ऊर्जा की दो दशाएं हैं। ब्रह्म, बीज और ब्रह्मांड, वृक्ष। दुनिया के किसी धर्म ने विलोम-क्रम का विचार नहीं किया। इसलिए दुनिया
का कोई धर्म पूरा धर्म नहीं कहा जा सकता। अनुलोम-क्रम का विचार तो बहुत हुआ है; ईसाई, मुसलमान, यहूदी, सभी अनुलोम-क्रम की बात कहते हैं कि परमात्मा ने सृष्टि की; लेकिन प्रलय की बात नहीं, कि परमात्मा सृष्टि को मिटा भी देगा। सृजन हुआ तो अंत भी होगा। जन्म हुआ तो मृत्यु भी होगी। जो चीज फैली, वह कब तक फैलेगी?
अभी वैज्ञानिक कहते हैं कि जगत फैलता जा रहा है, एक्सपैंडिंग यूनिवर्स, फैलता ही जा रहा है। लेकिन कब तक फैलेगा? तुम गुब्बारे में हवा भरते हो, वह फैलता जाता है, फैलता जाता है, फैलता जाता है। लेकिन कब तक? एक सीमा आएगी, उसके आगे फैलाओगे, गुब्बारा फूट जाएगा--फिर सिकुड़ जाएगा। यह विस्तार फैलता जा रहा है, फैलता जा रहा है, फैलता जा रहा है। इसकी एक सीमा है। उस सीमा के बाद सिकुड़ाव शुरू होता है।
बच्चा जवान होता है, फिर जवानी के बाद बुढ़ापा आता है। फिर सिकुड़ाव होने लगा। बच्चा आया था किसी अज्ञात लोक से एक दिन, जन्मा था। फिर एक दिन मृत्यु घटेगी, फिर अज्ञात लोक में प्रवेश कर जाएगा। पैंतीस वर्ष की उम्र तक अनुलोम और पैंतीस वर्ष के बाद विलोम।
जिन लोगों ने जीवन को सिर्फ एक ही आधार पर खड़ा किया है--अनुलोम--वे पागल हैं, वे विक्षिप्त हैं। यही आज के जगत की बड़ी से बड़ी भूल है, आधुनिक मनुष्य की बड़ी से बड़ी भूल है, उसका सारा जीवन एक ही क्रम पर बना है--अनुलोम-क्रम। फैलते जाओ--और धन, और पद, और प्रतिष्ठा, और मकान, और, और, और... । यह जो और है, यह अनुलोम-क्रम है। यह संसार।
संन्यास कब? संन्यास की धारणा ही खो गई है। संन्यास की बात ही घबड़ाती है। संन्यास का हम विचार ही नहीं करते। तो बीज वृक्ष हो गया, फिर बीज कब होगा? संन्यास विलोम-क्रम है।
अनुलोम कहता हैः यह भी मेरा हो जाए, वह भी मेरा हो जाए--सब मेरा हो जाए।
विलोम कहता हैः न यह मेरा है, न वह मेरा है--कुछ भी मेरा नहीं। सिकुड़ता है, शांत होता है।

अनुलोम के साथ अशांति स्वाभाविक है। छीना-झपटी होगी, प्रतिस्पर्धा होगी, मार-काट होगी, युद्ध होगा। विलोम के साथ शांति होती चली जाती है। व्यक्ति अपने भीतर बैठने लगा, अपने भीतर ठहरने लगा। बीज में रुकने लगा। संसार को मैं कहता हूं--अनुलोम, संन्यास को कहता हूं--विलोम। और जिसने दोनों साध लिए, वही पूरा मनुष्य है। जो एक को ही साधता रहा, वह पागल है। और ध्यान रखना, अगर विस्तार नहीं साधा, तो संकोच कैसे साधोगे? अगर संसार नहीं साधा, तो संन्यास कैसे साधोगे?
इसलिए मैं तुमसे कहता हूंः संसार से भागो मत। संसार को साधते रहो-- फैलने दो! लेकिन जब तुम्हारी समझ में बात आ जाए कि अब फैलना काफी हो गया, अब फैलने में कोई अर्थ न रहा, तब अपने भीतर से फैलने का भाव चले जाने देना। रहना यहीं! जाना कहां है? जाओगे कहां? जहां जाओ वहीं संसार है। नये-नये ढंग से संसार फैलने लगता है। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि तुम किस ढंग से फैलाओगे। जब तक और की आकांक्षा है, संसार फैलता रहेगा। पहाड़ पर बैठ जाओगे एकांत में जाकर, तो मन कहेगा--और लगे ध्यान, और लगे समाधि, और हो पुण्य, और हो त्याग, और हो उपवास। मन कहेगा कि और मिले स्वर्ग, और मिले आनंद। मगर "और" तो जारी रहा! कुछ फर्क न पड़ा। जिस दिन और से तुम ऊब जाते हो, उस दिन संन्यास! कहीं जाने की जरूरत नहीं। और से परिपूर्ण रूप से ऊब जाने में संन्यास का जन्म हो जाता है। फिर तुम जहां हो वहीं रहते हो, सब चलता रहता है--संसार चलता ही रहेगा--लेकिन तुम्हारे भीतर संन्यास फलित हो जाता है। अनुलोम का अर्थ हैः होऊं, बहुत होऊं। शास्त्रों में कथाएं हैं कि परमात्मा अकेला था और उसने सोचा कि मैं अनेक होऊं। फिर जब परमात्मा सोचने लगता हैः अब बहुत अनेक हो गया, अब मैं फिर एक होऊं--तो विलोम। व्युत्क्रमात आप्ययः तथा दृष्टम्।
यह सूत्र क्यों शांडिल्य ने दिया?
"विलोम रीति से लय हुआ करता है।"
क्योंकि इसमें सारा संन्यास का सूत्र आ जाता है। तुम्हें ऊपर से इस सूत्र में कुछ दिखाई न पड़ेगा। सूत्र का अर्थ ही यह होता है कि उसमें बड़ी संक्षिप्त में बात कह दी गई है। जो समझेंगे, वही समझेंगे। जो समझ सकते हैं, वही समझ सकते हैं। इसलिए सूत्रों की व्याख्या करनी जरूरी होती है, अन्यथा सूत्र अपने आप में बिल्कुल बेबूझ होते हैं।
जैसे, मैं होऊं, और होऊं, ज्यादा से ज्यादा होता जाऊं; धन मेरे पास बहुत हो, राज्य मेरे पास बड़ा हो, प्रतिष्ठा मेरी फैले--यश, नाम, कीर्ति--यह संसार। फिर एक दिन यह दिखाई पड़ता है--यह सब तो व्यर्थ है। न कीर्ति में कुछ सार है--पानी के बबूले इकट्ठे कर रहा हूं। न नाम में कुछ अर्थ है--क्योंकि मैं बिना नाम का हूं, बिना नाम का आया था और बिना नाम के जाऊंगा। न धन में कोई अर्थ है--सब यहीं का यहीं पड़ा रह जाएगा। साथ में कुछ भी न ले जा सकूंगा। मौत आएगी, तो मैं क्या साथ ले जा सकूंगा? जिसको तुम मौत में साथ ले जा सकोगे, बस संन्यासी उतना ही हो जाता है, उसी का नाम संन्यास है। मरने के पहले मर जाने का नाम संन्यास है।
मरते सभी हैं, धन्यभागी हैं वे जो मरने के पहले मर जाते हैं। जो समझ लेते हैं कि जो अपना नहीं है वही मौत छीन लेगी। जो अपना है उसे कोई भी नहीं छीन सकता। नैनं छिंदन्ति शस्त्राणि! मुझे शस्त्र नहीं छेद सकते। नैनं दहति पावकः! न मुझे आग जला सकती है। तो मैं यह कौन हूं जिसको आग नहीं जला सकती और जिसे शस्त्र नहीं छेद सकते? यह अमृतधर्मा मैं कौन हूं? बस उतना ही मैं हूं। उससे ज्यादा की कोई जरूरत नहीं है।
तो संसार का अर्थ होता हैः यह भी, यह भी। और संन्यास का अर्थ होता हैः नेति-नेति; न यह, न वह। छोड़ता जाता है भाव, और धीरे-धीरे वहीं आ जाता है जहां शाश्वत अमृत तुम्हारे भीतर बीज की तरह पड़ा है। जहां से सब विकास हुआ था। वापस अपने घर लौट आना हो जाता है।
यह दशा ही मोक्ष है। इस दशा का नाम ही निर्वाण है।
बच्चे का विकास देखने की कोशिश करो। जो-जो बच्चे में आता है, वही-वही
एक दिन छोड़ना पड़ता है। इसलिए ज्ञानियों ने कहा है कि अंतिम अवस्था में सिद्ध पुरुष छोटे बच्चे की भांति फिर से हो जाता है। छोटा बच्चा पैदा हुआ।

अभी इसके पास कोई ज्ञान नहीं है, इसे कुछ पता नहीं है। परम अवस्था में फिर यही हो जाएगा। छोटे बच्चे जैसी सरलता हो जाएगी। छोटा बच्चा पैदा हुआ है, इसमें संदेह नहीं है, इसमें श्रद्धा ही श्रद्धा है, यह हर बात मान लेता है। मां जो कहती है वह मान लेता है; पिता जो कहता है वह मान लेता है। इसकी श्रद्धा अछूती है, कुंवारी है। अभी संदेह का कांटा नहीं ऊगा, अभी श्रद्धा का ही फूल है। जल्दी ही संदेह का कांटा ऊगेगा, यह संदेह करना शुरू करेगा। इसको शक आना शुरू होगा कि पिता जो मेरे कहते हैं, ठीक कहते हैं? इसे संदेह आना शुरू होगा कि मेरी मां हर हालत में ठीक है? और धीरे-धीरे इसे अश्रद्धा पैदा होगी, क्योंकि यह पाएगा कि पिता में भी कमियां हैं, पिता में भी सीमाएं हैं, मां से भी भूलें होती हैं। इसकी श्रद्धा क्षीण होती जाएगी। यह संदेह से भर जाएगा। यह अनुलोम चल रहा है। संदेह आ गया। संदेह के पीछे-पीछे अहंकार आएगा। संदेह के साथ-साथ इनकार का भाव आएगा, नास्तिकता आएगी--नहीं। हर बच्चा अपने मां-बाप से एक दिन कहता है कि नहीं करूंगा ऐसा। तुमने देखा है, कभी छोटा बच्चा जिद्द करके खड़ा हो जाता है कि नहीं करूंगा! नहीं जाऊंगा स्कूल! यह इतने जोर का नहीं कैसे उठता है इतने छोटे से बच्चे में? और जब कोई छोटा बच्चा नहीं कहता है, तो उसका बल देखो! जैसे सब दांव पर लगा देने को तैयार है। रहे कि न रहे, लेकिन नहीं का मतलब नहीं है। जब जिद्द पकड़ लेता है कि यह खिलौना लेकर रहूंगा, तो नाक में दम कर देता है, जब तक कि ले ही न ले। और सब बच्चे समझ जाते हैं कि कितनी सीमा है मां-बाप के सहने की। वे लगे ही रहते हैं, चोट ही किए चले जाते हैं। एक दफा बाप न कहता है, दो दफा, तीन दफा, फिर देखता है कि यह महंगा पड़ा जा रहा है सौदा, अब यह काम करने ही नहीं देगा, मजबूरी में हां कहना पड़ता है।
बच्चे समझ जाते हैं कि तुम्हारी एक सीमा है, उस सीमा तक खींचना जरूरी है।
इस नहीं के आधार से बच्चा अपनी अस्मिता को पैदा करता है, अहंकार को पैदा करता है। यह अनुलोम चल रहा है। अहंकार आएगा, फिर अहंकार कहेगाः अब धन चाहिए, पद चाहिए, प्रतिष्ठा चाहिए, यश चाहिए--दौड़ शुरू हुई। जिस दिन तुम्हें यह दिखाई पड़ जाएगा कि यह सब व्यर्थ, उस दिन विलोम का क्रम तुम्हें सीखना होगा। फिर उसी क्रम से छोड़ना होगा, एक-एक करके।
इसलिए आस्तिकता का अर्थ होता हैः जिसमें हां कहने की क्षमता फिर से आ गई। आस्तिक का अर्थ हैः हां का भाव। नास्तिक का अर्थ हैः नहीं का भाव, नकार का भाव। इसलिए सारी आस्तिक परंपराएं कहती हैंः अहंकार छोड़ना होगा।
क्योंकि अहंकार अनुलोम का आधार है, फैलाव का आधार है। अहंकार छोड़ना होगा।
अहंकार छोड़ते ही विलोम घट जाता है। संदेह छोड़ना होगा, संघर्ष छोड़ना होगा। समर्पण सीखना होगा। संसार की पूरी यात्रा जैसी तुमने की है, बचपन से लेकर जवानी तक, उससे ठीक विपरीत तुम्हें जाना होगा। एक-एक चीज छोड़ते जानी होगी। फिर उस जगह पहुंच जाना होगा जहां मां के पेट से जन्मे थे पहले दिन--जैसे सरल थे, निर्दोष थे; न कोई पक्ष था, न विपक्ष था; न हिंदू थे, न मुसलमान थे; न चीनी थे, न पाकिस्तानी थे; न काले थे, न गोरे थे; न सुंदर थे, न असुंदर थे; न स्त्री थे, न पुरुष थे; कोई भाव ही न था। एक निर्भाव दशा थी। और एक परम स्वीकार था। कोई इनकार न था। मैं की कोई धारणा ही पैदा न हुई थी। अभी मैं जन्मा नहीं था। दर्पण कोरा था। कोई विचार पैदा नहीं हुआ था। अभी निर्विचार था। फिर से ऐसा ही हो जाए तो विलोम। और विलोम ही मोक्ष का मार्ग है।
इसलिए ये शब्द बड़े बहुमूल्य हैं, इनको याद रखना। अनुलोम यानी संसार। विलोम यानी संन्यास। कहीं जाना नहीं है, कुछ बाहर से रूपांतरित नहीं करना है, लेकिन भीतर से यह क्रांति घट जानी चाहिए।
शामे-गम है, करार किसको है
दर्द पर इख्तियार किसको है
मेरी किस्मत में आग है वरना
चांदनी नागवार किसको है
दर्द ही जिंदगी का हासिल है
मौत का इंतजार किसको है

अपनी आंखों से प्यार करती हूं
तेरे जल्वे से प्यार किसको है
देखें "शबनम" को गुल में चुन-चुन कर
देता गुलशन ये हार किसको है

अपनी आंखों से प्यार करती हूं
तुमने ख्याल किया? अहंकार न तो धन से प्यार करता है, न पद से प्यार करता है; अहंकार का प्यार तो अपने से है। लेकिन धन हो तो अहंकार की शोभा बढ़ती है। पद हो तो ऊंचाई बढ़ती है। अहंकार सौंदर्य से भी प्रेम नहीं करता, लेकिन अहंकारी एक सुंदर स्त्री को अपने साथ सजावट की तरह लेकर चलना चाहता है। अहंकारी सब तरह से अपने अहंकार को भरने का आयोजन खोजता है।
अपनी आंखों से प्यार करती हूं
तेरे जल्वे से प्यार किसको है
और किसी चीज का रस नहीं है इस संसार में--एक ही बात का रस है कि मैं सिद्ध कर दूं कि विशिष्ट हूं। मेरी विशिष्टता प्रमाणित हो जाए। और मजा ऐसा है कि जितना तुम अपनी विशिष्टता प्रमाणित करने चलते हो, उतने ही छेद निकल आते हैं। उतनी ही विशिष्टता टूटने लगती है। दया योग्य स्थिति हो जाती है उनकी, जो अपनी विशिष्टता सिद्ध करने चलते हैं। उसी सिद्ध करने से सब असिद्ध हो जाता है। जो लड़ते हैं यहां, हार जाते हैं। जो यहां साम्राज्य बनाते हैं, भिखारी की तरह मरते हैं। सिकंदरों से पूछो! जीवन भर की दा.ैड-धूप, आपाधापी, हाथ लगता क्या है? सब गंवा कर जाते हैं।
जो अनुलोम को पकड़ कर चलता रहता है, वह गंवा कर जाएगा। उसने जिंदगी का राज नहीं समझा। उसने जिंदगी की पूरी लयबद्धता नहीं समझी। वह एकांगी है, अधूरा है। जिसने विलोम भी समझ लिया, उसका जीवन पूर्ण हो गया। अनुलोम आधा जीवन रहे और आधा जीवन विलोम हो जाए। मरते समय तुम उसी जगह पहुंच जाने चाहिए जहां से तुम आए थे। उसी जगह जहां तुम पैदा हुए थे। ठीक उसी क्षण में-- जन्म का क्षण जैसा पवित्र और कुंवारा था, वैसा ही मृत्यु का क्षण भी कुंवारा और पवित्र हो जाए। वर्तुल पूरा हो गया। और जिसने इस वर्तुल को पूरा कर लिया, वही पूर्ण पुरुष है।
और ऐसा नहीं है कि तुम्हें याद नहीं आती। ऐसा भी नहीं है कि तुम्हें दिखाई नहीं पड़ता कि जो तुम कर रहे हो वह व्यर्थ है। मगर आदतें! भीड़-भाड़! सारे लोग वही कर रहे हैं। इसलिए ऐसा भ्रम बना रहता है कि ठीक ही होगा, जब इतने लोग कर रहे हैं तो जरूर ठीक ही होगा। एक भीड़ का सम्मोहन है जो तुम्हें चलाए जाता है। तुम्हें भी कई दफे दिखाई पड़ गया है कि अब कब तक धन इकट्ठा करता रहूंगा? सार क्या है? लेकिन और सब लोग इकट्ठा कर रहे हैं। तुम न इकट्ठा करोगे, इससे सब लोग तो रुक न जाएंगे। पड़ोसी तो इकट्ठा करते ही रहेंगे। तुम नई कार न खरीदोगे, पड़ोसी तो खरीदते ही रहेंगे; तुम नया मकान न बनाओगे, पड़ोसी तो बनाते ही रहेंगे। फिर उसमें दीनता मालूम होगी कि मैं पिछड़ गया। तो दौड़े जाओ! जब सभी दौड़ रहे हैं तो दौड़े जाओ! जो सब कर रहे हैं वही किए चले जाओ। आदमी नकल की तरह जीता है। आदमी अनुकरण करता रहता है। जिस दिन भी तुम समझोगे कि अनुकरण करना व्यर्थ है, मैं यहां किसी और का जीवन जीने को पैदा नहीं हुआ हूं, अपना जीवन जीने को पैदा हुआ हूं, उसी दिन क्रांति घट जाती है। उसी क्षण को मैं जीवन का सबसे बहुमूल्य क्षण कहता हूं। क्योंकि उसी दिन एक सीमा खिंच जाती है--उसके पहले का जीवन अनुलोम, उसके बाद का जीवन विलोम हो जाता है।

इक वक्त फिर आता है कि मर जाती है उम्मीद
फुर्सत नहीं मिलती कि सिएं चाके-गरेबां
होती नहीं मानूस किसी शै से तबीयत
खातिर भी परेशान, तखय्युल भी परीशां
बढ़ जाती है अफकारे-मईशत की कशायश
दोजख-सी नजर आती है यह जन्नते-दौरां छुट जाता है जौके-अमनो-जोशे-तमन्ना

बढ़ जाती है मायूसिए-दिल ताजदे-इमकां

एक ऐसी घड़ी आती है जब सब उम्मीदें टूट जाती हैं। सबके जीवन में यह घड़ी आती है।
इक वक्त फिर आता है कि मर जाती है उम्मीद
आशा टूट जाती है। मगर तुम किसी तरह अपनी आशा को फिर खींचतान कर खड़ा कर लेते हो--कोड़े मार कर अपनी आशा को फिर खड़ा कर लेते हो। फिर दौड़ने लगते हो। तुमने लोगों को देखा, कोई घोड़ागाड़ी चला रहा है, घोड़ा ठिठक गया है और वह कोड़े मार रहा है! और जितना घोड़ा ठिठकता है, वह उतने ही कोड़े मारता है। और किसी तरह घोड़े को घसीट ले जाता है। यही तुम जिंदगी में कर रहे हो। बहुत बार तुम्हारी आशा का घोड़ा ठिठका है, बहुत बार तुम्हारी उम्मीद मर गई है, बहुत बार तुम्हें लगा है कि सब व्यर्थ है, मगर फिर तुमने कोड़े फटकारे हैं। तुमने फटकारे, तुम्हारे संगी-साथियों ने फटकारे। तुम अगर पति हो तो तुम्हारी पत्नी ने धक्का दिया, तुम्हारे बेटों ने धक्के दिए।
यहां रोज ऐसी घटना घट जाती है। कोई संन्यासी हो जाता है, उसकी पत्नी रोती आ जाती है, कि नहीं-नहीं, अभी नहीं! कोई बेटा संन्यासी हो जाता है, बाप घबड़ा कर आ जाता है, कि यह क्या हो गया? कोई बाप संन्यासी हो जाता है, बेटा घबड़ा कर आ जाता है, कि हमारे पिता को आपने क्या कर दिया? सम्मोहित कर लिया? अगर खुद तुम बचो तो तुम्हारे संगी-साथी, परिवार, प्रियजन, वे कोड़े मारते हैं, वे आर चुभाते हैं। वे कहते हैंः चलते रहो! चलते रहो! अभी सारी दुनिया चल रही है, तुम क्यों रुक गए? वे कहते हैंः चलते रहो, जब तक कि मौत ही तुम्हें न गिरा दे। मगर तब मिट्टी पड़ी रह जाएगी तुम्हारे मुंह में, कब्र में दबे रह जाओगे, और जीवन अकारथ गया। पानी पर लकीरें खींचते गया। इक वक्त फिर आता है कि मर जाती है उम्मीद
फुर्सत नहीं मिलती कि सिएं चाके-गरीबां
ऐसा वक्त आ जाता है, सबकी जिंदगी में आ जाता है, जब होश जगता है। और ऐसा बार-बार होता है, लेकिन तुम उस होश को झुठला देते हो। तुम अपने मन को और कहीं उलझा लेते हो। तुम हजार बहाने खोज लेते हो। तुम कहीं न कहीं अपने मन को लगा देते हो--कि चलो आज सिनेमा देख आएं; कि चलो आज शराब पी लें; कि चलो आज नाच होता है कहीं, नाच देख आएं। मन जरा बेचैन है, उम्मीद जरा टूटी-टूटी है, आशा जरा उखड़ी-उखड़ी है, फिर से पैर जमा लें।
फिर तुम्हारा मन कहता है कि अभी तक नहीं हुआ, माना, लेकिन कल हो सकता है। अभी रुको मत, अभी बढ़े चले जाओ।
कभी नहीं होता। कभी नहीं हुआ है। इस संसार में जिसने सिर्फ अनुलोम जाना, उसने शांति नहीं जानी, आनंद नहीं जाना, उपलब्धि नहीं जानी, संतुष्टि नहीं जानी, समाधि नहीं जानी। और समाधि नहीं तो समाधान कहां? जिसने विलोम भी सीख लिया, उसी ने समाधि जानी, समाधान जाना। और जितनी जल्दी विलोम की कला आ जाए, तुम प्रमाण दोगे कि तुम उतने ही बुद्धिमान हो।
बुद्ध अट्ठाइस वर्ष के थे तब अनुलोम छोड़ दिया, विलोम में लग गए। अट्ठाइस वर्ष की उम्र कोई बहुत बड़ी उम्र नहीं होती। बड़े बुद्धिमान रहे होंगे। क्योंकि यहां तो अठहत्तर-अठहत्तर साल हो जाते हैं और विलोम नहीं आता। शंकराचार्य अदभुत बुद्धि के धनी रहे होंगे! नौ साल की उम्र में विलोम आ गया! संन्यास लेना चाहा। मां रोने लगी। स्वाभाविक। नौ साल का बच्चा संन्यास लेना चाहे! यह कोई बात हुई! सुना है कभी! नौ साल का बच्चा और संन्यास लेना चाहे! अपूर्व प्रतिभा रही होगी। नब्बे साल में लोग इतना अनुभव नहीं कर पाते जितना नौ साल में अनुभव कर लिया। इसको प्रतिभा कहते हैं। जड़ता नहीं रही होगी। देख ली बात! देखने की क्षमता हो तो नौ साल में भी देखी जा सकती है। मोझर्ट ने तीन साल में ऐसा संगीत बजाया जो लोग नब्बे साल की उम्र में नहीं बजा सकते। प्रतिभा।
शंकर की कहानी बड़ी प्यारी है। लेकिन मां तो रोने लगी, उसने कहा कि यह नहीं हो सकता। कहानी ऐसी है कि शंकर नदी पर स्नान करने गए और एक मगर ने उनका पैर पकड़ लिया है। और मां किनारे पर खड़ी चिल्ला रही है--कि बचाओ मेरे लड़के को! लेकिन कौन बचाए? शंकर ने कहा, अब एक ही उपाय है, मां! तू कह दे कि

अगर मैं बच जाऊंगा तो संन्यास। तो मैं परमात्मा से प्रार्थना करूं! तो बचने में कुछ सार है। अगर संन्यास होना ही नहीं है, तो मौत बराबर। जिंदगी में क्या रखा है! फिर मौत में हर्ज क्या है? जब जिंदगी में कुछ है ही नहीं तो मौत में कुछ खो नहीं रहा है। अगर तू कह दे कि संन्यास लेने की आज्ञा देती है, अगर बच गया तो संन्यास लेने देगी, तो मैं प्रार्थना करूं भगवान से।
अब ऐसी घड़ी में कौन आज्ञा नहीं देगा? कम से कम बचेगा तो, संन्यासी ही सही! जिंदा तो रहेगा! मौत और संन्यास, ऐसा विकल्प। और ध्यान रखना, यह कहानी चाहे सच हो चाहे न हो, मगर यही विकल्प सबके सामने है--मौत या संन्यास। या तो तुम सिर्फ मरोगे, या तुम संन्यासी होओगे। बस दो ही विकल्प हैं। और कहानी मधुर है, प्रीतिकर है, कि शंकर ने प्रार्थना की और मगर ने उनका पैर छोड़ दिया। फिर तो मजबूरी थी! संन्यास की आज्ञा देनी पड़ी।
मगर तुम्हारा भी पैर पकड़े हुए है। जरा गौर से अपने पैर को देखना! मगरें बहुत तरह की हैं, कोई नदियों में ही नहीं पाई जाती हैं। सच तो यह है कि नदियों में तो कभी-कभी पाई जाती हैं, सड़कों पर पाई जाती हैं, घरों में पाई जाती हैं, दुकानों में पाई जाती हैं, बाजारों में पाई जाती हैं--तरह-तरह की मगरें हैं। किसी के पैर को राजनीति की मगर ने पकड़ा है, किसी के पैर को धन की मगर ने पकड़ा है, किसी के पैर को किसी और मगर ने पकड़ा है, मगर सब मगरें हैं। और तुम्हारा पैर छूट सकता है, एक ही प्रार्थना तुम्हारे जीवन में उठ आए अगर--विलोम की प्रक्रिया। नहीं तो यह मगर तुम्हें चबा जाएगी। यह धीरे-धीरे चबा ही रही है। अंश-अंश तुम मरते जा रहे हो रोज। जब से पैदा हुए हो, मरने के सिवाय और किया क्या है? रोज-रोज मर रहे हो, रोज-रोज मर रहे हो, मरते जा रहे हो। एक दिन यह प्रक्रिया पूरी हो जाएगी। यह मगर तुम्हें पूरा चबा जाएगी। यह समय की मगर है।
विलोम की प्रक्रिया को समझ लो। विस्तार एक सीमा तक ठीक। समझने के लिए ठीक, अनुभव के लिए ठीक। मगर फिर लौटना है, फिर अपने घर जाना है।
तदैक्यं नानात्वैकत्वम उपाधियोगहानात आदित्यवत्।
"वह एक ही है; क्योंकि उपाधि के नाश होने पर सूर्य की भांति नानारूप एक
हो जाते हैं।"
जब तक अनुलोम चलता है, संसार चलता है। तब तक अनेक दिखाई पड़ता है। जैसे
ही विलोम की प्रक्रिया शुरू हुई कि एक दिखाई पड़ना शुरू हो जाता है। एक ही है। वस्तुतः एक ही है। तरंगें कितनी ही अनेक दिखाई पड़ रही हों, सागर एक है। और यहां जीव कितने ही दिखाई पड़ रहे हों, जीवन एक है। यहां रूप कितने ही दिखाई पड़ रहे हों, सब रूप के भीतर ऊर्जा एक है। मगर जब तक तुम अपने मैं से भरे हो और मैं के फैलाव में उत्सुक हो, जब तक यह मैं का विस्तारवाद चल रहा है, तब तक तुम्हें इस एक का अनुभव न हो पाएगा। और उस एक में ही विश्राम है। और उस एक में ही आनंद है।
अनेक में दुख है, पीड़ा है, संताप है। क्योंकि अनेक में झूठ है, अनेक में मिथ्या है। तुम अपने भवन को रेत पर खड़ा कर रहे हो। यह गिरेगा। अनेक की रेत पर खड़ा कर रहे हो। जिस तरह तुमने सोचा है, जब भी तुमने सोचा है मैं अलग हूं... और संसार में अलग सोचना ही पड़ेगा। यहां प्रतिस्पर्धा नहीं हो सकेगी नहीं तो। मैं अलग हूं, पृथक हूं, मुझे सिद्ध करना है, मुझे लड़ना है, सब यहां बाकी मेरे दुश्मन हैं और प्रतियोगी हैं।
संसार का अर्थ क्या होता है? मैं भर मेरे लिए हूं, और सब मेरे दुश्मन हैं। संन्यास का क्या अर्थ होता है? मैं हूं ही नहीं, और सब मेरे मित्र हैं। जब मैं हूं ही नहीं तो दुश्मन कैसा? मैं से दुश्मन पैदा होता है। मैं दुश्मन पैदा करता है। मैं सूत्र है सारी शत्रुता का। जब मैं ही गया, तो मैत्री का उदय हो जाता है। फिर कोई दूसरा नहीं, पराया नहीं, अन्य नहीं; लड़ना किससे? जूझना किससे? फिर दुख कैसा? पीड़ा कैसी? हार कैसी? जीत कैसी? सफलता कैसी? असफलता कैसी? सब गया। सब द्वंद्व गए। एक बचा। वही सच्चिदानंद है।
अनेक अर्थात संसार, माया, श्रम, उपाधि। जैसे घड़े में जल भर लिया। कभी नदी गए? या कुएं के घाट पर गए? मिट्टी का एक घड़ा ले गए और नदी में भरा। जब

तुम नदी में घड़े को भर लिए हो--अभी घड़ा नदी में ही है--पानी भर गया, लेकिन घड़े की पतली सी मिट्टी की दीवाल ने नदी के जल से घड़े के जल को तोड़ दिया। क्षण भर पहले तक नदी का जल और घड़े का जल एक था। अब एक नहीं है। मिट्टी की दीवाल बीच में आ गई। उस दीवाल का नाम उपाधि।
मगर लोग उपाधियां बड़ी उत्सुकता से खोजते हैं। लोगों की जिंदगी भर उपाधि की ही तलाश चलती है। धन एक उपाधि है, पद एक उपाधि है, प्रतिष्ठा एक उपाधि है। नाम, यश, कीर्ति उपाधियां हैं। इन सबसे तुम्हारा घड़ा मोटा होता जाता है, मजबूत होता जाता है। मिट्टी का ही नहीं, लोहे का होता जाता है। और वह जो बाहर का जल है, जिसके तुम एक अंग हो, उससे तुम टूटते चले जाते हो। घड़े को फोड़ दो, फिर भीतर का जल बाहर का जल एक हो गया।
तो अनेक का अर्थः संसार, उपाधि, घड़े में जल। एक का अर्थः ब्रह्म, मोक्ष, विश्राम, निरुपाधि; घड़े फूट गए, जल से जल जा मिला। बीच में कोई बाधा, कोई सीमा न रही।
सीमाओं में रस लेना बंद करो! हम बड़ा ही सीमाओं में रस लेते हैं। हिंदू अलग, मुसलमान अलग--सीमा बना ली। फिर हिंदू को भी चैन नहीं है इतने से। फिर ब्राह्मण अलग, क्षत्रिय अलग, वैश्य अलग, शूद्र अलग--और सीमाएं बना लीं। उतने से भी हल नहीं होता! फिर ब्राह्मण में भी कान्यकुब्ज ब्राह्मण अलग, और चितपावन, और न मालूम क्या-क्या! उसमें भी सीमा बना ली। सीमा पर सीमाएं बनाते चले जाते हो! उपाधि पर उपाधियां खड़ी करते चले जाते हो! फिर अगर अकेले रह जाते हो और सारे अस्तित्व से टूट जाते हो और उखड़े-उखड़े अनुभव करते हो और जड़ें नहीं मिलतीं और अर्थ खो जाता है और जीवन में कोई संगीत नहीं झरता है, तो कुछ आश्चर्य है? यह तुम्हारे ही श्रम का फल है! सीमाएं तोड़ो!
जो अपने को कहता है, मैं ब्राह्मण हूं, वह तो ब्राह्मण हो ही नहीं सकता। ब्राह्मण का अर्थ ही होता हैः जिसने ब्रह्म को जाना, असीम को जाना, जिसने सारी सीमा छोड़ी। जो कहता है, मैं हिंदू हूं, उसे धर्म का कुछ पता ही नहीं है। क्योंकि वह मुसलमान से, ईसाई से, जैन से, बौद्ध से अपने को अलग कर रहा है। धार्मिक व्यक्ति का न कोई देश होता है, न कोई जाति होती है, न कोई धर्म होता है। धार्मिक व्यक्ति की सीमा ही नहीं होती। धार्मिक व्यक्ति ने घड़ा तोड़ दिया। भीतर का जल बाहर से मिल गया। घटाकाश आकाश से मिल गया। उस एक में विश्राम है। उस निरुपाधि की तलाश संन्यास है। वही विलोम की प्रक्रिया है। वहीं से हम आए हैं, वहीं हमें वापस लौट जाना है। मूलस्रोत में वापस लौट जाना ही लक्ष्य है। लक्ष्य स्रोत से भिन्न नहीं है।
मिट्टी का तुमने एक घड़ा बना लिया। फिर जब घड़ा टूटेगा तो क्या होगा? वापस मिट्टी में गिर जाएगा और मिल जाएगा। हर चीज अपने स्रोत में वापस लौट जाती है। हम भी अपने स्रोत में वापस लौटने लगे, तो बस जीवन में धुन आनी शुरू हो जाती है।

मोहब्बत के तराने गा रही हूं
फजा में आग-सी भड़का रही हूं
यह मैं, यह हादसाते-जिंदगानी
किसी तूफां में बहती जा रही हूं
किसी की याद में नग्मे लुटा कर दिले-कौनोमकां धड़का रही हूं खिरद मुझे जितना समझा रही है
मैं उतनी और खोई जा रही हूं
मसाइब घूरते हैं हर तरफ से
मगर मैं कहकहे बरसा रही हूं
न मंजिल है न कोई राहे-मंजिल
मगर मैं एक धुन में जा रही हूं

एक बार तुम्हें यह ख्याल में आ जाए कि मूलस्रोत ही अंतिम लक्ष्य है, प्रथम ही अंतिम है, बस उसी दिन से जीवन में एक धुन आ जाएगी। फिर जीवन में एक संगीत सुना जाएगा।

भक्तों में वही मस्ती दिखाई पड़ती है। अगर भक्त में मस्ती न हो, तो भक्त ही नहीं। अगर धुन पैदा न हो रही हो, अगर उसके पास जाकर तुम्हें संगीत का अनुभव न हो, अगर उसके पास जाकर तुम भी किसी लय में न बंध जाओ और तुम्हारे भीतर भी नृत्य शुरू न हो जाए, तो भक्त भक्त ही नहीं है। जिसके पास जाकर तुम्हें भी पैरों में घूंघर बांध लेने की आकांक्षा जगने लगे, जिसके पास बैठ कर तुम्हारे भीतर भी छिपा हुआ गीत प्रकट होने के लिए आतुर हो उठे, जिसके पास बैठ कर, जिसकी हवा में तुम्हारे फूल भी, जो कभी नहीं खिले थे, खिलने लगें, तुम्हारी कलियां भी फूल बनने के लिए अभीप्सु हो जाएं, वही भक्त है।
"वह एक ही है; क्योंकि उपाधि के नाश होने पर सूर्य की भांति नानारूप एक
हो जाते हैं।"
उसके प्रतिबिंब अलग-अलग हैं, सूर्य की भांति। आदित्यवत्! जैसे सूरज निकला, आज सूरज निकला, कितनी पृथ्वी पर नदियां हैं, सबमें उसकी झलक बनेगी; और कितने तालाब हैं, सबमें उसकी झलक बनेगी; और कितने सागर हैं, सबमें उसकी झलक बनेगी; और छोटे-छोटे डबरे जो रास्तों के किनारे भर गए होंगे वर्षा के जल से, उनमें उसकी झलक बनेगी; और मटकों में, मटकियों में, सबमें उसकी झलक बनेगी--और सूरज एक है, और झलकें बहुत बनेंगी।
ऐसे ही सत्य एक है, परमात्मा एक है, झलकें भर भिन्न हैं। झलकों में सत्य कहां? झलकों से इशारा ले लो असली का और असली की तरफ चल पड़ो।
मैंने सुना है कि एक कुत्ता एक राजमहल में प्रवेश कर गया। भूल-चूक से रात वहीं बंद रह गया। सुबह मरा हुआ पाया गया। क्योंकि राजमहल के जिस कमरे में वह बंद रह गया था, वह दर्पणों से बना था; उस कमरे में दर्पण ही दर्पण लगे थे। सारी दीवालें दर्पणों से ढंकी थीं; जब उस कुत्ते ने आंख खोली और चारों तरफ देखा तो वह घबड़ा गया। इतने कुत्ते उसने अपने जीवन में कभी देखे नहीं थे। स्वभावतः, घबड़ाहट में भौंका। कुत्ता था और करता भी क्या? सारे कुत्ते भौंके! फिर तो उसने होश खो दिया। फिर तो वह इस कुत्ते की तरफ झपटे कि सारे कुत्ते उसकी तरफ झपटें। वह रात भर भौंकता रहा और दर्पणों से लड़ता रहा। सुबह लहूलुहान, दर्पणों पर भी उसके खून के चिह्न थे और उसकी लाश पड़ी थी कमरे में।
तुम किससे लड़ रहे हो? कौन यहां दुश्मन है? तुम किससे भौंक रहे हो? किसके लिए भौंक रहे हो? यहां दर्पण ही दर्पण हैं। एक ही बहुत रूपों में झलक रहा है। और वह एक तुम्हारे भीतर विराजमान है। तुम्हारे बाहर भी, तुम्हारे भीतर भी। जरा उपाधि से मुक्त हो जाओ और उसे देखो। और उपाधि से मुक्त होने में क्या अड़चन है? क्योंकि उपाधि सिर्फ थोपी हुई है। जैसे तुमने वस्त्र पहन रखे हैं, फिर भी भीतर तो तुम नंगे ही हो न! कितने ही वस्त्र पहन लो, नंगापन मिट नहीं जाता वस्त्रों से, सिर्फ अंदर छिप जाता है। ऐसे ही उपाधियां ऊपर-ऊपर होती हैं, भीतर तो तुम नग्न ही हो। भीतर तो तुम दिगंबर ही हो। उपाधियों के पार तुम अभी भी निरुपाधि हो। मनुष्य के भीतर भी अभी तुम परमात्मा हो। स्त्री के भीतर, पुरुष के भीतर, हिंदू- मुसलमान के भीतर तुम वही एक हो। आदित्यवत्!
जैसे सूर्य अलग-अलग जल सरोवरों में झलकता है, ऐसे ही वह एक अलग-अलग उपाधियों के दर्पण में झलका है। उस एक को पहचानो। उस एक को पहचानते ही युद्ध मिट जाता है, हिंसा मिट जाती है, वैमनस्य मिट जाता है, वैर, क्रोध, सब मिट जाता है। उस एक की पहचान के साथ फिर आनंद के सिवाय और बचता क्या? फिर रास ही रास है। फिर रंग ही रंग है। रस ही रस है। रसो वै सः। उसका रस तुम्हें तभी अनुभव होगा। और जब तक उसका रस अनुभव न हो, तब तक सारे अनुभव व्यर्थ हैं।
पृथक इति चेत न परेण असम्बन्धात प्रकाशानाम्।
"पृथक भी नहीं कह सकते, क्योंकि वैसा कहने में प्रकाश की भांति ईश्वर
से असंबंध होगा।"
उस परमात्मा को तुमसे पृथक तो कहा ही नहीं जा सकता। पृथक होते ही हमारा असंबंध हो जाएगा। फिर तो जुड़ने का कोई उपाय न रह जाएगा। तुम अभी भी जुड़े हुए हो, इसीलिए जुड़ सकते हो। सेतु टूटा नहीं है, सिर्फ भूल गया है,

विस्मरण हुआ है। उस परमात्मा को खोजने कहीं जाना नहीं है, सिर्फ स्मरण करना है। प्रत्यभिज्ञा करनी है। याद करनी है। याद ही से हो जाएगा। क्योंकि हम उससे टूटे नहीं हैं। उससे कभी नहीं टूटे हैं। जैसे वृक्ष का पत्ता वृक्ष से नहीं टूटा है, अहंकार से भर गया है और वृक्ष को भूल गया है, मगर अभी भी जुड़ा है वृक्ष से। अभी भी रसधार वृक्ष से ही बह रही है। तुम कैसे जी सकोगे परमात्मा के बिना? उसके बिना कहां श्वास होगी? कहां हृदय की धड़कन होगी? उसके बिना कैसा जीवन? वही जीवन है।
टूटे तो तुम नहीं हो। असंबंधित नहीं हुए हो। फिर क्या हो गया है? भूल
गए हो, विस्मरण हुआ है। इसलिए सारे भक्तों ने स्मरण को इतना जोर दिया है। स्मरण का अर्थ होता हैः याद करो! याद करो फिर--कौन तुम्हारे भीतर बैठा है? याद करो फिर, खोजो अपने भीतर--किससे तुम जुड़े हो? कौन तुम्हें जीवन दे रहा है? कहां से तुम्हारी चेतना प्रवाहित हो रही है? अगर कुआं खोज में लग जाए कि जलस्रोत कहां से आ रहे हैं, सागर तक पहुंच जाएगा। अगर तुम भी अपनी चेतना के कुएं में थोड़े उतरो, तो तुम सागर को पा लोगे--झरने अब भी जुड़े हैं; वहीं से धार बह रही है।
"पृथक भी नहीं कह सकते, क्योंकि वैसा कहने में प्रकाश की भांति ईश्वर
से असंबंध होगा।"
तुमने सुना है? झेन गुरुओं के वचन तुम्हें याद हैं? झेन गुरु कहते हैंः संसार और निर्वाण एक। चोट करती है बात! थोड़ा घबड़ाती भी है--कि संसार और निर्वाण एक? झेन गुरु कहते हैंः ज्ञान और अज्ञान एक। चोट करती है बात! घबड़ाती है। क्योंकि हमने सदा सोचा, ज्ञान अलग, अज्ञान अलग--विपरीत; संसार अलग, निर्वाण अलग--विपरीत। ये झेन गुरु क्या कह रहे हैं? ये ठीक कह रहे हैं। यह परम स्थिति से देखी गई बात है। संसार निर्वाण से अलग हो कैसे सकता है? यहां अलग कुछ भी नहीं हो सकता। यहां सब इकट्ठा है, सब जुड़ा है।
एक झेन गुरु से एक साधक ने आकर पूछा कि बुद्ध यानी क्या? बुद्ध यानी कौन? बुद्धत्व का क्या अर्थ है?
सामने ही एक वृक्ष की तरफ सदगुरु ने इशारा किया और कहा, यह वृक्ष देखते हो? यही बुद्ध।
साधक तो चौंका होगा--वृक्ष और बुद्ध? मगर झेन गुरु इशारा कर रहा है, संसार और निर्वाण एक। पदार्थ और परमात्मा एक। सोया हुआ और जागा हुआ एक। फर्क क्या है सोए हुए और जागे हुए में? जरा से होश का फर्क है, और तो कुछ फर्क नहीं है। पतंजलि ने योग-सूत्रों में कहा हैः समाधि और सुषुप्ति में कोई ज्यादा फर्क नहीं है, जरा सा फर्क है। सुषुप्ति में तुम सोए होते हो, समाधि में तुम जागे होते हो, बस इतना ही फर्क है। अन्यथा विश्राम एक जैसा, विराम एक जैसा, आह्लाद एक जैसा, आनंद एक जैसा।
न विकारिणः तु कारणविकारात्।
"विकार भी नहीं कह सकते; क्योंकि ऐसा कहने से मूल कारण में विकार होने
का डर पैदा हो जाएगा।"
संसार को परमात्मा से भिन्न नहीं कह सकते हैं, यह शांडिल्य बड़े जोर से
कह रहे हैं। यह उदघोषणा बड़ी क्रांतिकारी है। विकार भी नहीं कह सकते हैं। कुछ दार्शनिकों ने यह समझाने की कोशिश की है कि भिन्न तो नहीं, लेकिन विकार है। कुछ बात गड़बड़ हो गई है। जैसे दूध का विकार दही। भिन्न तो नहीं है, दूध का ही रूप है, लेकिन विकृत हो गया। लेकिन शांडिल्य कहते हैं, विकार भी नहीं कह सकते। क्योंकि उस निर्विकार परमात्मा में विकार कैसे पैदा होगा? उस परम में विकार की कल्पना ही असंभव है। यह संसार परमात्मा ही है। विकार नहीं है, भिन्न नहीं है। तुम भी उसके विकार नहीं हो, तुम भी उससे भिन्न नहीं हो। फिर क्या भेद है दोनों में?
इतना ही भेद है कि तुम सो गए हो और सपने देख रहे हो। यहां हम पांच सौ लोग हैं, हम सब सो जाएं, हम सब अलग-अलग सपने देखेंगे। जाग कर तो हम जो देखते हैं वह एक दुनिया है। तुम भी इन्हीं वृक्षों को देख रहे हो, जिनको मैं देख रहा हूं। और तुम भी इन्हीं पक्षियों को सुन रहे हो, जिनको मैं सुन रहा हूं। लेकिन अगर हम सब सो जाएं, तो यहां पांच सौ जगत होंगे, एक जगत नहीं रहेगा। फिर तुम्हारे सपने के वृक्ष तुम्हारे होंगे और मेरे सपने के वृक्ष मेरे

होंगे। तुम्हारे सपनों के वृक्षों को मैं न देख सकूंगा, तुम मेरे सपनों के वृक्षों को न देख सकोगे। तुम्हें मेरी याद न रहेगी, मुझे तुम्हारी याद न रहेगी। यहां पांच सौ जगत पैदा हो जाएंगे, अगर ये पांच सौ लोग सो जाएं। जागे थे तो एक था, सो गए तो पांच सौ हो गए। और सब अपने सपने देखेंगे; कोई साधु हो जाएगा, कोई चोर हो जाएगा, कोई हत्यारा हो जाएगा, कोई दुकानदार हो जाएगा, कोई कुछ हो जाएगा, कोई कुछ हो जाएगा, सबके सपने अपने-अपने होंगे। अपनी मौज होगी। और फिर जब सुबह हम जागेंगे, तो हम सब सपनों पर हंसेंगे। क्या हम यह कहेंगे कि तुम चोर हो गए थे सपने में, मैं साधु हो गया था, तो हम और तुम भिन्न हो गए थे? कि तुम सच में ही चोर हो गए थे, मैं सच में ही साधु हो गया था?
न तो कोई साधु हुआ था, न कोई चोर हुआ था। कल्पनाएं जगी थीं। कल्पनाओं
का खेल हुआ था। सपने पैदा हुए थे। सबने अपना-अपना नाटक रचा था। रचने वाले भी तुम्हीं थे, नाटक में अभिनय करने वाले भी तुम्हीं थे, निर्देशक भी तुम्हीं थे--और दर्शक भी तुम्हीं थे। बिल्कुल नाटक पूरा का पूरा तुम्हारा था, सभी तुम्हीं थे। मंच पर भी तुम्हीं और बैठे हुए दर्शक भी तुम्हीं। देखने वाले भी तुम्हीं और दृश्य भी तुम्हीं। कहानी भी तुमने लिखी थी, गीत भी तुमने बनाए थे, संगीत भी तुमने डाला था, सब तुम्हारा ही था। सपने में तुम बड़े स्रष्टा हो गए थे! बड़ी कल्पना को विस्तार मिल गया था।
यह जगत परमात्मा से भिन्न नहीं है, सिर्फ हम सोए हैं। सोए हैं तो हमने अपने-अपने जगत निर्माण कर लिए हैं। अपना-अपना सपना देख रहे हैं।
सपने निजी होते हैं। सत्य निजी नहीं होता। सत्य सार्वभौम होता है, युनिवर्सल होता है। सत्य मेरा अलग और तुम्हारा अलग, ऐसा नहीं होता। सत्य में तो मैं और तुम भी अलग नहीं होते, सत्य कैसे अलग होगा? सत्य बस एक होता है। जहां अनेकता है, वहां असत्य है। जहां भेद है, वहां असत्य है।
करें फिर क्या? शांडिल्य कहना क्या चाहते हैं?
इतनी ही बात याद दिलाना चाहते हैं--जागो! कैसे जागोगे? स्मरण करो, पुकारो! रोओ, गाओ, गुनगुनाओ, भजन करो! वही भजन जिस दिन प्रगाढ़ हो जाएगा, उसकी चोट से ही तुम जग जाओगे। वही प्रार्थना जिस दिन प्राणों की चीख की तरह उठेगी, उसी चीख से तुम जग जाओगे। आंसू अगर गहन होते गए, गहन होते गए, तो वे आंसू ही तुम्हारी आंखों से सपनों को भी बहा ले जाएंगे। तुम स्वच्छ हो जाओगे।
लेकिन लोग सपनों में खूब खोए हैं। अपने-अपने मधुर सपने देख रहे हैं।

हर रात तुम्हारे पास चला मैं आता हूं।

जब घन अंधियाला तारों से ढल
धरती पर आ जाता है,
जब दर-परदा-दीवारों पर भी
नींद-नशा छा जाता है,
तब यंत्र-सदृश अपने बिस्तर से
हो बाहर चुपके-चुपके
हर रात तुम्हारे पास चला मैं आता हूं।

समतल भूतल, बत्ती की पांतों के
पहरे में सुप्त नगर,
अंबर को दर्पण दिखलाते
सरवर, सागर, मधुबन, बंजर,
हिम-तरु-मंडित, नंगी पर्वतमाला, मरुथल, जंगल, दलदल--
सबकी दुर्गमता के ऊपर मुसकाता हूं। हर रात तुम्हारे पास चला मैं आता हूं।

पर कभी-कभी क्या निद्रा को

हो जाता है, रूठा करती,
तुमको पाने के मेरे सारे
यत्नों को झूठा करती,
तब भाव-जलद पर इंद्रधनुष-रूपक
धर कर, छंदों से कस
तुम तक गीतों के सौ-सौ सेतु बनाता हूं।
हर रात तुम्हारे पास चला मैं आता हूं।

सपने देख रहे हैं लोग, मधुर सपने देख रहे हैं। तुमने जो अब तक किया है,
वह स्वप्न है। स्वप्न यानी अनुलोम प्रक्रिया। स्वप्न का फैलाव हो रहा है। स्वप्न की माया फैलती चली जा रही है।
जागो! विलोम करो अब, स्वप्न को सिकोड़ो! सांझ हो गई, बाजार उठाने का वक्त हो गया। खूब पसारा किया था दुकान का। अब समेटो, द्वार-दरवाजे बंद करो, सांझ हो गई!
और ध्यान रखना, सुबह का भूला सांझ भी घर आ जाए तो भूला नहीं कहाता है।
आज इतना ही।

अथातो भक्ति जिज्ञासा, भाग 2 अड़तीसवां प्रवचन

जगत की सबसे बड़ी बुद्धिमत्ता: प्रेम

पहला प्रश्नः वेदों में होमापक्षी की कथा है। यह चिड़िया आकाश में बहुत ऊंचे पर रहती है। वहीं पर अंडे देती है। अंडा देते ही वह गिरने लगता है। परंतु इतने ऊंचे से गिरता है कि गिरते-गिरते बीच में ही फूट जाता है। तब बच्चा गिरने लगता है। गिरते-गिरते ही उसकी आंखें खुलती हैं और पंख निकल आते हैं। आंखें खुलने से जब वह बच्चा देखता है कि मैं गिर रहा हूं और जमीन पर गिर कर चूर-चूर हो जाऊंगा, तब वह एकदम अपनी मां की ओर फिर ऊंचे चढ़ जाता है। इस कथा का आशय समझाने की अनुकंपा करें।

नरेंद्र! यह कथा किसी पक्षी की कथा नहीं, मनुष्य की कथा है। मनुष्य के पतन, मनुष्य के बोध की कथा है। ऐसा ही मनुष्य है। आकाश में हमारा घर है, ऊंचाइयों पर हमारा घर है, लेकिन जन्म के साथ ही हम गिरना शुरू हो जाते हैं। गिरने का कोई अंत नहीं है। क्योंकि खाई अतल है, कोई तल नहीं है खाई का। हम गिरते जा सकते हैं, और गिरते जा सकते हैं। ऐसी कोई सीमा नहीं है जहां अनुभव में आए कि बस इसके आगे गिरना और नहीं हो सकता। और भी हो सकता है, और भी हो सकता है।
अंतिम पापी अभी हुआ नहीं। कभी होगा नहीं। क्योंकि पाप में और परिष्कार हो सकते हैं। पाप में और नई ईजाद हो सकती है। पाप में और नई कलाएं जोड़ी जा सकती हैं।
गिरने का कोई अंत नहीं है। गिरते ही गिरते किसी दिन आंख खुलती है। गिरने की चोट से ही आंख खुलती है। गिरने की पीड़ा से ही आंख खुलती है। और उसी आंख के खुलने में मनुष्य को अपने घर की याद आनी शुरू होती है।
उस आंख का खुलना है--दर्शन, दृष्टि। नहीं तो हम अंधे हैं। ये बाहर की आंखें खुली हैं, इससे यह मत सोच लेना कि तुम्हारे पास आंखें हैं। अगर तुम्हारे पास आंखें हैं तो फिर बुद्ध के पास क्या था? तुम्हारे पास आंखें हैं तो फिर महावीर के पास क्या था? तुम्हारे पास आंखें हैं तो फिर जिनको हमने द्रष्टा कहा है, उनके पास क्या था? नहीं, तुम्हारे पास आंख नहीं है। तुम्हारे पास सिर्फ आंख की भ्रांति है।
हमारी आंखें वैसी ही हैं जैसे तुमने मोर के पंख पर बनी आंखें देखी हों। उनसे दिखाई कुछ नहीं पड़ता, आंखें भर हैं। हमारी आंखें मोरपंखी हैं।
चित्रित हैं। दिखता कुछ नहीं है, सूझता कुछ नहीं है, बूझता कुछ नहीं है।
टटोल-टटोल कर गिरते-उठते हम चलते रहते हैं।
आंख तो तब है जब तुम्हें अपने घर की याद आ जाए। आंख तो तब है जब तुम्हें ऊंचाई का स्मरण आ जाए। तुम कहां से आए हो, किस स्रोत से आए हो, जब उसकी प्रतीति सघन हो जाए, तो समझना कि आंख खुली। और उसी क्षण क्रांति शुरू हो जाती है। उसी क्षण अनुलोम समाप्त हुआ, विलोम प्रारंभ हुआ। उसी क्षण अदम क्राइस्ट बन जाता है। उसी क्षण हम परमात्मा से दूर जाने की बजाय उसके पास आने शुरू हो जाते हैं। और पंख हमारे पास हैं, आंख हमारे पास नहीं है। आंख हो तो हम पंखों का सम्यक उपयोग कर लें। शक्ति हमारे पास है, दृष्टि हमारे पास नहीं है। इसलिए हमारी शक्ति आत्मघाती हो जाती है। हम अपनी ही तलवार से अपने को ही छिन्न-भिन्न कर लेते हैं। किसी और ने तुम्हें थोड़े ही काटा है, किसी और ने तुम्हें खंडित थोड़े ही किया है; तुमने ही अपने को खंडित किया है, तुमने ही अपने को काटा है। कोई और तुम्हें नहीं मार रहा है, तुम्हीं अपने को मार रहे हो। महावीर ने कहा हैः मनुष्य ही अपना मित्र और मनुष्य ही अपना शत्रु है। शत्रु तब तक जब तक आंख नहीं। तब तक हाथ में आई हुई ऊर्जा भी आत्मघाती सिद्ध होती है। और मित्र उस दिन से जिस दिन आंख खुली।
आंख बंद और आंख खुलने के बीच जो घटना है, उसको मैं संन्यास कह रहा हूं। आंख खुले, इसकी आकांक्षा संन्यास है। आंख बंद है, इसकी प्रतीति होने लगे, तो आंख खुल जाए, इसकी आकांक्षा भी पैदा होने लगती है। यहां पूरी चेष्टा यही है कि तुम्हें यह स्मरण आ जाए कि तुम्हारे पास आंख अभी है नहीं।

तुम्हें स्मरण आ जाए कि तुम्हारा जो ज्ञान है, थोथा है, झूठा है। तुम्हें यह स्मरण आ जाए कि जिसे तुमने जीवन समझा है, वह सपने से ज्यादा नहीं है और इससे तुम कुछ निकाल न पाओगे। जैसे कोई रेत से तेल निकालने की कोशिश कर रहा है, ऐसे ही जीवन में हारोगे, विषाद में मरोगे। ये आशाएं जो तुमने संजो रखी हैं, कोई भी काम आने वाली नहीं हैं। क्योंकि इन आशाओं का अस्तित्व से कोई सामंजस्य नहीं है। ये तुम्हारे निजी सपने हैं। ये सपने पूरे नहीं हो सकते। अस्तित्व का सहयोग मिले तो ही कोई चीज पूरी हो सकती है। और अस्तित्व का सहयोग तभी मिलता है जब तुम्हारा अहंकार मरता है। अहंकार गिराता है, निर-अहंकार उठाता है। अहंकार अंधापन है, निर-अहंकार आंख है।
यह होमापक्षी की कथा मनुष्य की अंतर-कथा है। अंतर-व्यथा भी। और इसे तुम ठीक से समझ लो तो मनुष्य का पूरा यात्रापथ समझ में आ जाए।
फिर से सुनो--
"यह होमा बहुत ऊंचे आकाश में रहता है।"
यह तो प्रतीक है। हम ऊंचाई से आते हैं।
चार्ल्स डार्विन ने पश्चिम में एक विचार प्रतिपादित किया--विकासवाद का। वह विचार समस्त धर्मों के विपरीत है। विकासवाद का अर्थ होता हैः हम नीचाई से ऊपर की तरफ आ रहे हैं। पतन नहीं हो रहा है, विकास हो रहा है। समस्त बुद्धों ने इससे भिन्न बात कही है। उन्होंने कहा हैः मनुष्य का पतन हुआ है, हम ऊंचाई से नीचाई की तरफ आ रहे हैं। बुद्धों ने कहा है कि हम परमात्मा से नीचे गिरे हैं! यह हमारा पतन है। डार्विन ने कहाः हम बंदरों से ऊपर उठे हैं। यह हमारा विकास है। बुद्धों ने कहाः परमात्मा हमारा पिता है। और चार्ल्स डार्विन कहता हैः बंदर हमारे पिता हैं।
चार्ल्स डार्विन की बात के पीछे भी थोड़ा बल है; नहीं तो जीतती नहीं बात। ऊपर से देखने में ऐसा ही लगता है कि डार्विन ही ठीक है, विकास हो रहा है। देखो, बैलगाड़ी की जगह हवाई जहाज, तो विकास हो गया। यह जीवन को एक तरह से देखने का ढंग हुआ। तलवार की जगह एटम बम, यह विकास हो गया। लेकिन बुद्धों से पूछो। बुद्ध कहते हैंः तलवार जिसने खोजी थी और जिसने एटम बम खोजा है, इनमें विकास नहीं हुआ, पतन हो गया। क्योंकि तलवार छोटी-मोटी हिंसा की खबर देती थी, एटम बम विराट हिंसा की खबर देता है। जिन्होंने तलवार से काम चला लिया था, वे बहुत बड़े हिंसक नहीं थे। हमारा तो एटम बम से भी काम नहीं चलता है। तो हाइड्रोजन बम! और अब और आगे बात चल रही है कि हम और भी नये बम खोज लें। हमारी चेष्टा यह है कि एक ही बम सारी पृथ्वी को डुबाने में समर्थ हो जाए। यह विकास है?
एक तरफ से देखो तो विकास है--तलवार से एटम बम, बड़ा विकास मालूम होता है। तलवार एकाध को मार सकती थी, एटम बम लाखों को मार सकता है। हाइड्रोजन बम करोड़ों को मार सकता है। मारने की कला में बड़ा विकास हो गया। लेकिन मारने वाला आदमी विकसित हुआ? हिंसा विकास है? हिंसा तो पतन है। आदमी और विकृत हो गया।
जिंदगी को देखने के ढंग पर सब निर्भर करता है, तुम कैसे देखते हो।
आज लोग ज्यादा पढ़े-लिखे हैं, निश्चित। आज से दस हजार साल पहले गैर पढ़े- लिखे लोग थे। कोई लिखना नहीं जानता था, कोई पढ़ना नहीं जानता था। इस हिसाब से देखो तो आज का आदमी विकसित है। किताब पढ़ लेता है, अखबार पढ़ लेता है। लेकिन दस हजार साल पहले जो आदमी था, वह ज्यादा शांत था, ज्यादा आनंदित था, ज्यादा प्रफुल्लित था। उसके जीवन में एक राग था, एक छंद था। वह सब छंद खो गया। उस छंद को देखो तो पतन हो गया है। अखबार की कतरनें बढ़ती चली गई हैं, छंद खोता चला गया है। पढ़ाई-लिखाई हो गई बहुत, मस्तिष्क में बहुत सी सूचनाएं संगृहीत हो गईं और हृदय बिल्कुल सिकुड़ गया है। अगर मस्तिष्क को देखो, तो मात्रा बढ़ी है, मात्रा का विकास हुआ है। लेकिन अगर हृदय को देखो, तो गुण गिरा है, गुण का पतन हुआ है।
मूल्यवान क्या है--गुण या मात्रा? क्वांटिटी या क्वालिटी?
अगर आदमी को देखो तो कभी झोपड़े में रहता था, फिर अच्छे मकानों में रहा,
अब महलों में रह रहा है। आज गरीब से गरीब आदमी जो कपड़े पहने हुए है, वे सम्राटों को उपलब्ध नहीं थे। अशोक और अकबर के पास तुम जैसे अच्छे कपड़े

नहीं थे। बिजली का पंखा नहीं था। न रेडियो था, न टेलीविजन था। आज गरीब से गरीब आदमी भी एक अर्थ में अशोक और अकबर से ज्यादा आगे है--विकसित है। चीजें बढ़ गईं। आदमी के पास परिग्रह का विस्तार बढ़ गया। लेकिन परिग्रह के विस्तार को बढ़ाने वाला आदमी विकसित आदमी है? यह सवाल है। क्योंकि जितना परिग्रह बढ़ता है, उतनी चिंता बढ़ती है, उतनी अशांति बढ़ती है, उतनी बेचैनी बढ़ती है, उतनी विक्षिप्तता बढ़ती है। चीजों की गिनती कर रहे हो, तो विकास मालूम होता है। लेकिन चीजों का विकास क्या आदमी का विकास है?
लोग कहते हैं, जीवन-स्तर बढ़ गया। स्टैंडर्ड ऑफ लाइफ। अच्छा मकान है, अच्छी सड़कें हैं, अच्छे कपड़े हैं, अच्छी दवाइयां हैं--जीवन-स्तर बढ़ गया। इसको जीवन-स्तर कहते हो? बस, इतने पर जीवन समाप्त हो जाता है? जीवन गुण
की बात है। क्या इसीलिए तुम बुद्ध का जीवन-स्तर नीचा कहोगे, क्योंकि वे भिक्षापात्र लेकर सड़क पर भीख मांगते हैं? तुम्हारे बड़े से बड़े अरबपति-- तुम्हारे रॉकफेलर, तुम्हारे मॉर्गन, तुम्हारे फोर्ड--सोचते हो कि बुद्ध से उनके पास बड़ा जीवन-स्तर है? महावीर नग्न खड़े हैं, इसलिए क्या उनका जीवन-स्तर तुमसे नीचा है? उनके पास वस्त्र नहीं हैं; आत्मा है, गुणवत्ता है, भगवत्ता है।
डार्विन की बात अगर हम केवल मात्रा को सोचें तो ठीक मालूम होती है।
अगर भीतर के गुणों को सोचें तो ठीक नहीं मालूम होती।
यह होमा की कथा मनुष्य की चेतना के निरंतर पतन की कथा है।
इसलिए इस देश में हमने जो विभाजन किया है, वह देखते हो? चार कालों में समय को बांटा है। पहला काल, सतयुग। फिर द्वापर। फिर त्रेता। फिर कलि।
श्रेष्ठतम युग पहले। फिर प्रतिक्षण पतन होता जाता है। फिर एक-एक टांग टूटती जाती है। आदमी अपंग होकर गिर पड़ता है कलि में। दोनों हाथ, दोनों पैर, सब टूट गए। इसके पीछे बड़ा गहरा मनोविज्ञान है। इसे तुम एक-एक आदमी की जिंदगी में भी देख सकते हो।
बच्चा पैदा होता है, तब वह सतयुग में होता है। बच्चे के जीवन में श्रद्धा होती है, सरलता होती है, निर्दोष भाव होता है। सौंदर्य होता है। आह्लाद होता है। आश्चर्य-विमुग्ध बच्चा जीता है। छोटे बच्चे को देखो, अभी- अभी ताजे पैदा हुए बच्चे को देखो! वह सतयुग में है। सतयुग के लिए तुम्हें दार्शनिक सिद्धांतों में जाने की जरूरत नहीं है, छोटे बच्चे को देखो, वह सतयुग में है। फिर धीरे-धीरे पतन शुरू होता है। अहंकार पैदा होगा। पतन शुरू हुआ। फिर परिग्रह बढ़ेगा। पतन और शुरू हुआ। और आखिर में तुम एक आदमी को देखो, बुढ़ापे में, वह कलियुग है। सब यंत्रवत हो जाता है। जिंदगी बोझ हो जाती है। बूढ़ा आदमी मशीन की तरह हो जाता है। जीता है किसी तरह, सांस लेता किसी तरह, अब मरने की तैयारी है, मरने के सिवाय और कोई भविष्य नहीं है। इसलिए इस देश में हमने कहा है कि कलियुग के बाद प्रलय हो जाएगी। मृत्यु! कलियुग के बाद फिर कोई और समय नहीं बचता, मृत्यु ही बचती है। यह आदमी के, सामान्य प्रत्येक व्यक्ति के जीवन की कहानी है। और जो प्रत्येक व्यक्ति के जीवन की कहानी है, वही मनुष्य-जाति की भी कहानी है।
होमापक्षी गिरना शुरू होता है ऊंचाई से, परमात्मा के घर से। पहले अंडे में छिपा होता है। फिर अंडा भी टूट जाता है--गिरते-गिरते-गिरते। फिर पंख भी निकल आते हैं--गिरते-गिरते-गिरते। फिर आंख भी खुल जाती है--गिरते- गिरते। और जब आंख खुलती है तब उसे समझ में आता है कि क्या हो रहा है! जब तक आंख नहीं खुली थी, तब तक शायद वह सपना देखता हो कि मैं ऊंचाइयों पर जा रहा हूं, विकास हो रहा है। कि मैं अपनी मां को कितना पीछे छोड़ आया! हर बच्चा ऐसा ही सोचता है कि मैं अपने मां-बाप को कितना पीछे छोड़ आया!
पश्चिम के बहुत हंसोड़ लेखक मार्क ट्वेन ने लिखा है कि जब मैं सत्रह साल का था और विश्वविद्यालय से पहली दफा घर आया, तो मुझे लगा--अरे, मेरे माता-पिता कितने गंवार हैं! फिर जब मैं चौबीस वर्ष का हो गया और विश्वविद्यालय से सारी शिक्षाएं पूरी करके लौटा, तब मैं बड़ा चकित हुआ कि इन सात-आठ सालों में मेरे मां-बाप ने बड़ा विकास कर लिया, ये बड़े बुद्धिमान हो गए। जैसे-जैसे समझ बढ़ी, वैसे-वैसे माता-पिता में बुद्धिमत्ता दिखाई

पड़ी। जितनी समझ कम थी, उतने माता-पिता बुद्धू मालूम होते थे। जवानी में हर युवक सोचता है कि मां-बाप मेरे मूढ़ हैं।
क्यों?
सोचता हैः मैं विकास कर रहा हूं। मैं आगे जा रहा हूं। मेरे मां-बाप को पता क्या है? ये अभी भी पुराने ढर्रे के लोग, अभी भी पुरानी रूढ़ि में चल रहे हैं और जी रहे हैं। इन्हें कुछ पता नहीं है। जिंदगी कहां से कहां चली गई, इन्हें कुछ पता नहीं है। जवानी में हर आदमी क्रांतिकारी होता है और सोचता है कि मैं जिंदगी को बड़े आगे ले जा रहा हूं। वह सिर्फ जवानी का भ्रम है।
पक्षी, जब तक उसकी आंखें बंद हैं, यही सोचता होगा कि मैं आगे बढ़ता जा रहा हूं। कितना आगे बढ़ता जा रहा हूं! कितना दूर निकल आया! मां-बाप को कितने पीछे छोड़ आया! बेचारी मां, वहीं के वहीं है। जब आंख खुलती है, तब उसे पता चलता है कि मैं दूर तो निकल आया, लेकिन आगे नहीं निकल आया हूं। दूर निकल आना अनिवार्य रूप से आगे निकल जाना नहीं है। दूर निकल जाना गिरना भी हो सकता है, उठना भी हो सकता है। और उठना तो आंख खुलने के बाद ही संभव है। क्योंकि आंख खुली हो तभी पंखों का सदुपयोग हो सकता है।
तुम हो होमापक्षी! प्रत्येक व्यक्ति होमापक्षी है।
वेदों में दो शब्द बड़े बहुमूल्य हैं--होमा और सोमा। दोनों समझने जैसे हैं। दोनों प्रतीक हैं। शायद दोनों का जन्म एक ही शब्द से हुआ होगा।
क्योंकि कुछ लोग स को ह उच्चारण करते हैं। तो होमा और सोमा हो सकता है एक ही शब्द से आए हों, सिर्फ उच्चारण-भेद हो गया है। इस स और ह के कारण ही तो हिंदुस्तान का नाम पड़ा। जब आर्य भारत में आकर बसे तो उनका ही एक हिस्सा ईरान में बसा। उनका एक कबीला ईरान में बसा। ईरान का पुराना नाम है--आयरान। आयरान से ही ईरान बना। आर्यों का एक कबीला ईरान में बस गया और एक कबीला भारत में आकर बसा। भारत का पुराना नाम है--आर्यावर्त। और ईरान का पुराना नाम है--आयरान। ईरान में जो आर्य बसे, वे स का उच्चारण ह की तरह करते थे। इसलिए जब उन्होंने पहली दफा भारत की यात्राएं कीं--अपने मित्रों से मिलने आए होंगे, अपने सगे-संबंधियों से मिलने आए होंगे--तो सिंधु नदी को उन्होंने हिंदू नदी कहा। उसी से हिंदू शब्द पैदा हुआ। उसी से हिंदुस्तान शब्द पैदा हुआ। और उसी से इंडिया शब्द पैदा हुआ। उन्होंने इसको हिंदू कहा और जब इसे वे वापस ले गए और उनके द्वारा यह शब्द जाकर पश्चिम की तरफ यात्रा पर निकला, तो कुछ जातियां थीं, जो ह का उच्चारण इ की तरह करती हैं, तो उन्होंने हिंदू को इंदू उच्चारण करना शुरू किया। इंदू से इंडस। इसलिए अंग्रेजी में सिंधु नदी का नाम है--इंडस। और फिर इंडस से इंडिया। भारत का नाम इंडिया हो गया। यह सारी बात पैदा हुई सिर्फ इसी बात से कि कुछ लोग ह की तरह उच्चारण करते थे स का।
होमा और सोमा एक ही शब्द होंगे, सिर्फ उच्चारण-भेद हो गया है। सोमा का अर्थ होता हैः वह परम मादक द्रव्य, जिसे पीकर आदमी सदा के लिए मस्त हो जाता है। वह आखिरी शराब, जिसे पी लेने पर फिर नशा नहीं उतरता। वेदों में सोमा की बड़ी प्रशंसा है। और यह मान कर कि सोमा नाम की कोई जड़ी-बूटी होती होगी--जैसे भंग और गांजा होता है--क्योंकि नशे की बात है, न मालूम कितने लोग सोमा की तलाश करते रहे हैं सदियों से। अभी भी तलाश जारी है। अभी पश्चिम के एक बहुत बड़े वैज्ञानिक ने कोई बीस वर्ष हिमालय में तलाश करके किताब लिखी--बड़ी किताब लिखी कि मैंने खोज ली वह जड़ी-बूटी।
वह जड़ी-बूटी है ही नहीं, खोजोगे कैसे? सोमा तो सिर्फ प्रतीक है, जैसे होमा एक प्रतीक है। अब तुम होमापक्षी को खोजने मत निकल जाना! नहीं तो कहीं नहीं मिलेगा। यह बात हो ही नहीं सकती कि इतनी ऊंचाई पर मां अंडा दे। ऊंचाई पर रहेगी कैसे? घोंसला कहां बनाएगी? अंडे को रखेगी कहां? इतनी ऊंचाई तो कोई भी नहीं है जहां से अंडा गिरे और गिरते ही गिरते, गिरते ही गिरते पक्षी निकल आए; और गिरते ही गिरते, गिरते ही गिरते पंख निकल आएं; और गिरते ही गिरते, गिरते ही गिरते आंखें खुल जाएं, ऐसी तो कोई ऊंचाई नहीं है। यह प्रतीक कथा है। सोमा भी कोई जड़ी-बूटी नहीं है, वह परमात्मा को पी जाने का नाम है। वह परम औषधि को पी जाने का नाम है। ये प्रतीक हैं। जब कोई व्यक्ति

सोमरस पी लेता है--सोमरस यानी प्रभु-रस; रसो वै सः--जब प्रभु के रस को कोई पी लेता है, तो फिर जो मस्ती आती है, वह कभी टूटती नहीं।
यहां तो जितने भी रस उपलब्ध हैं, सबकी मस्ती टूट ही जाती है। क्षणभंगुर है। अभी है, अभी समाप्त हो जाएगी। कीमती से कीमती शराब भी कितनी देर काम आएगी? थोड़ी देर विस्मरण हो जाता है। फिर? फिर सब वही जाल शुरू हो जाता है। मगर भक्ति का एक ऐसा रस है, एक ऐसी मधुशाला है, जहां अगर तुमने पी लिया, तो बस पी लिया। उसको पीते ही तुम मिट जाते हो--विस्मरण नहीं होते, मिट ही जाते हो, गल ही जाते हो, खो ही जाते हो।
तो सोमा प्रतीक है परम रस का। और होमा प्रतीक है उस परम गृह का, उस मातृगृह का, उस मातृभूमि का जहां से हम आए हैं। हम बड़ी ऊंचाइयों से आ रहे हैं। हम अगम्य ऊंचाइयों से आ रहे हैं। हमारे तथाकथित गौरीशंकर इत्यादि कुछ भी नहीं हैं, बच्चों के खिलौने हैं, जिन ऊंचाइयों से हम आ रहे हैं। हम परमात्मा से आ रहे हैं। कोई अभी अंडे में ही है। जो अंडे में ही है, उसे धर्म शब्द अर्थहीन मालूम होता है। उसे हैरानी होती है लोग जब धर्म-चर्चा के लिए जाते हैं, या सत्संग के लिए जाते हैं। वह कहता हैः क्या करते हो? मैं सिनेमा जा रहा हूं, चलो वहां! वहां कुछ रस है, कुछ आनंद; तुम जाते कहां हो? धर्म में रखा क्या है? अभी वह अंडे में है। जो अंडे में है, उसे अंडे के बाहर क्या है, यह पता नहीं हो सकता। अभी वह कहता हैः धन कमाओ, राजनीति में उतरो, चुनाव लड़ो, पद-प्रतिष्ठा बनाओ, इसमें कुछ सार है। यह तुम किस धुन में पड़ गए हो? तुम गलत रास्ते पर जा रहे हो। जिंदगी में कुछ कर जाओ, कुछ निशान छोड़ जाओ, हस्ताक्षर छोड़ जाओ--कि तुम्हारी लोग याद करें, इतिहास में तुम्हारी याद रह जाए। यह धर्म इत्यादि में लग कर तो तुम खो जाओगे। और धर्म इत्यादि सब झूठ हैं।
मार्क्स ने कहा है कि धर्म अफीम का नशा है। मार्क्स अंडे में ही रहा होगा। जो अंडे में है, अगर उससे तुम आकाश की बात करोगे, चांद-तारों की बात करोगे, वह कहेगाः पागल हो तुम? सपने देख रहे हो। तुम कोई नशे में हो। कहां का आकाश? मुझे तो कुछ दिखाई नहीं पड़ता। जो मुझे नहीं दिखाई पड़ता, वह हो कैसे सकता है?
इस दुनिया में अधिक लोग अंडे में हैं। अभी अंडा भी नहीं टूटा, वे गिरते ही जा रहे हैं, वे गिरते ही जा रहे हैं। कुछ लोग अंडे में ही रह कर मर जाते हैं। अंडा भी तभी टूट सकता है जब तुम थोड़े पंख फड़फड़ाओ। तुम जरा भीतर से चोंच मारो! तुम अंडे से राजी मत हो जाओ! तुम अपनी सुरक्षा से राजी मत हो जाओ! तुम थोड़े से अभियान करो, थोड़ी खोज-बीन करो, थोड़ी जिज्ञासा करो--अथातो भक्ति जिज्ञासा! अंडा टूटेगा, मगर तुम कुछ भीतर से करोगे तो टूटेगा। बाहर से तो कोई तोड़ नहीं सकता। बाहर से यह अंडा तोड़ा नहीं जा सकता, इसकी कुंजी भीतर से ही तोड़ी जा सकती है। बाहर से तो कोई तोड़ेगा तो और कठिन हो जाता है, क्योंकि तुम भीतर से रक्षा करने लगते हो। तुम आत्मरक्षा में लग जाते हो। तुम भयभीत हो जाते हो। तुम्हीं साहस जुटाओगे तो अंडा टूटेगा।
कुछ का अंडा टूट जाता है, मगर उनकी आंखें नहीं खुलतीं। फिर वे बंद आंखों से गिरना शुरू हो जाते हैं। ऐसे लोग धर्म के संबंध में विचार तो करते हैं, लेकिन धर्म का आचरण नहीं करते। सोचते हैं। कहते हैं, धर्म अच्छी बात है, ईश्वर इत्यादि की सैद्धांतिक चर्चा करते हैं, गीता इत्यादि पढ़ते हैं, कुरान पढ़ते हैं, शब्द कंठस्थ कर लेते हैं, लेकिन उनके जीवन में कोई रंग नहीं होता। जीवन को नहीं रंगते। बातचीत ही होता है धर्म। बकवास होता है धर्म। बहुत लोग ऐसे ही बकवास करते समाप्त हो जाते हैं।
बहुत थोड़े से सौभाग्यशाली लोग हैं जो आंख खोलने की चेष्टा में संलग्न होते हैं। भजन से खुलती है आंख। भजन की ऊर्जा में ही आंख के खुलने की संभावना है। या ध्यान से खुलती है आंख। एक ही बात को कहने के दो ढंग। ध्यान से या भजन से आंख खुलती है। भजन के संबंध में मत सोचते रहो, भजन करो। धर्म तुम्हारा कृत्य हो तो आंख खुलेगी। और आंख खुलते ही क्रांति घट जाती है। आंख खुलते ही दिखाई पड़ता है--तुम गिर रहे हो। रोज-रोज गिरते जा रहे हो। हम सब मृत्यु के मुंह में गिरते जा रहे हैं। वही है जमीन से टकरा कर टूट जाना। देखते नहीं, कितने लोग टूट कर गिर गए हैं और अपनी कब्रों में पड़े हैं? तुम

भी कितनी देर चलोगे? जल्दी ही टकरा जाओगे, टूटोगे और कब्र में समा जाओगे। कोई भी खो गई घड़ी वापस नहीं मिलती। जो समय गया, गया। आंख खुलते ही दिखाई पड़ता है कि बहुत मैं गंवा चुका हूं। अब और गंवाने की जरूरत नहीं। तत्क्षण दिशा रूपांतरित हो जाती है।
पंख तो तुम्हारे पास ही हैं। आंख न हो तो अपने पंख भी नहीं दिखाई पड़ते। आंख न हो तो मैं कितनी संपदा लेकर पैदा हुआ हूं, यह भी दिखाई नहीं पड़ता। आंख न हो तो पता ही नहीं चलता कि मेरे भीतर हीरे-जवाहरातों की खदानें हैं। प्रभु का राज्य मेरे भीतर है। परमात्मा ने पूरा पाथेय देकर भेजा है। मगर आंख तो चाहिए ही चाहिए। कहते रहते हैं बुद्ध और क्राइस्ट और कृष्ण कि परमात्मा का राज्य तुम्हारे भीतर है, तुम सुन भी लेते हो, फिर अपनी दुकान पर बैठ जाते हो। सुन लेते हो और अनसुना कर देते हो।
क्राइस्ट ने बहुत बार अपने शिष्यों से कहा है कि अगर आंखें हों तो देख लो, मैं तुम्हारे सामने खड़ा हूं! कान हों तो सुन लो, मैं चिल्ला रहा हूं! जिनसे कहा था, उनके पास तुम जैसी ही आंखें थीं, तुम जैसे ही कान थे। अंधों से बात नहीं कर रहे थे। लेकिन साधारण आदमी अंधा ही तो है, बहरा ही तो है, लंगड़ा ही तो है। सोचता ही है, करता नहीं। और कृत्य से जीवन रूपांतरित होता है।
कुछ लोग सौभाग्यशाली हैं, जिनकी आंख खुलती है। बस आंख खुलने का क्षण संन्यास का क्षण है। फिर उसके बाद रूपांतरण हो जाता है। विलोम शुरू हुआ, वापसी की यात्रा शुरू हुई। बेटा बाप की तरफ वापस लौटने लगा। जो अदम प्रभु के राज्य से निष्कासित हो गया था, वह फिर प्रभु की तलाश में चल पड़ा। अपने घर की खोज।
इस होमापक्षी की कथा को कथा मान कर तुम पढ़ लोगे तो चूक जाओगे इसका रस। इसमें पूरी प्रक्रिया छिपी हुई है।

चंचला के बाहु का अभिसार बादल जानते हों,
किंतु वज्राघात केवल प्राण मेरे, पंख मेरे।

कब किसी से भी कहा मैंने कि उसके रूप-मधु की
एक नन्ही बूंद से भी आंख अपनी सार आया,
कब किसी से भी कहा मैंने कि उसके पंथरज का
एक लघु कण भी उठा कर शीश पर मैंने चढ़ाया,
कम नहीं जाना अगर जाना कि इसका देखने को
स्वप्न भी क्या मूल्य पड़ता है चुकाना जिंदगी को,
चंचला के बाहु का अभिसार बादल जानते हों,
किंतु वज्राघात केवल प्राण मेरे, पंख मेरे।

जब भरे-भूरे घनों के बीच में दामिनी दमकती
तब अचानक एक बिजली दौड़ जाती है परों में,

धन्यभागी हैं वे, बिजली की चमक जब आकाश में गूंज जाती है तो जिनके पर फड़फड़ा उठते हैं। बुद्ध में और कृष्ण में और क्राइस्ट में हुआ क्या? बिजली चमकी! जिनमें थोड़ा भी प्राण था, जो थोड़े भी जीवंत थे, उनके पंख फड़फड़ा गए। जो मुर्दा थे, उनको कुछ भी न हुआ। वे जैसे थे वैसे ही बैठे रहे।

जब भरे-भूरे घनों के बीच में दामिनी दमकती
तब अचानक एक बिजली दौड़ जाती है परों में,
और जब नभ है गरजता इस तरह लगता कि कोई
दुर्निवार पुकारता अधिकार, आज्ञा के स्वरों में,

पुकारे तुम गए हो बहुत बार, पुकारे तुम जा रहे हो, पुकारे तुम अभी भी
जा रहे हो, मैं तुम्हें पुकार रहा हूं। लेकिन तुम सिकुड़े बैठे हो। तुम अपना छोटा-मोटा संसार बना लिए हो। तुम उसी संसार में जकड़े बैठे हो। तुमने

दो कौड़ी की चीजें इकट्ठी कर ली हैं, उनको संपदा मान ली है, वहीं अटके हो, और गिर रहे हो रोज, और गिर रहे हो हर पल, और जल्दी ही टकराओगे भूमि से और चूर-चूर हो जाओगे।

और जब नभ है गरजता इस तरह लगता कि कोई
दुर्निवार पुकारता अधिकार, आज्ञा के स्वरों में,
कब धरा छूटी, हवा में कब उठा, पैठा गगन में,
धंस गया कितना, किधर को, कुछ नहीं मालूम होता,
मैं स्वयं खिंचता कि मुझको खींचता आकाश, इससे सर्वथा अनजान बेकल प्राण मेरे, पंख मेरे
चंचला के बाहु का अभिसार बादल जानते हों,
किंतु वज्राघात केवल प्राण मेरे, पंख मेरे।
सुनते हो?
और जब नभ है गरजता इस तरह लगता कि कोई
दुर्निवार पुकारता अधिकार, आज्ञा के स्वरों में
जब भी सत्य उतरता है तो दुर्निवार आज्ञा के स्वरों में उतरता है। बुद्धों के वचन अधिकारपूर्ण वचन हैं। दार्शनिकों के वचनों में झिझक होती है। दार्शनिक कहते हैंः शायद ऐसा हो! बुद्धपुरुष कहते हैंः ऐसा है! मैं रहा प्रमाण। और तुम चलो, आओ मेरे साथ और तुम भी बन जाओगे प्रमाण। दार्शनिक कहता हैः मैं सोचता हूं, अनुमान करता हूं, शायद ऐसा हो, शायद ईश्वर हो, होना चाहिए, होगा ही। दार्शनिक जीवन को नहीं बदल पाता। दार्शनिकों में और द्रष्टाओं में यही फर्क है। दार्शनिक अंधे आदमी की तरह है जो रोशनी के संबंध में वक्तव्य दे रहा है। जो कह रहा है कि होनी चाहिए। इतने लोग कहते हैं तो ठीक ही कहते होंगे। रोशनी जरूर होनी चाहिए। बिना रोशनी के कैसे जीवन होगा? अनुमान लगाता है, तर्क करता है, विचार करता है, शास्त्र उल्लेख करता है।
द्रष्टा में क्या फर्क है? जिसने रोशनी देखी। बुद्धपुरुष और उनके वक्तव्य अधिकार के वक्तव्य होते हैं। वहां झिझक नहीं होती। वहां जैसा है उसको वैसा ही कहा जाता है।
जब भरे-भूरे घनों के बीच में दामिनी दमकती
तब अचानक एक बिजली दौड़ जाती है परों में,
और जब नभ है गरजता इस तरह लगता कि कोई
दुर्निवार पुकारता अधिकार, आज्ञा के स्वरों में,
कब धरा छूटी, हवा में कब उठा, पैठा गगन में,
धंस गया कितना, किधर को, कुछ नहीं मालूम होता,
और तब जिनके पास थोड़ा भी साहस है, थोड़ी भी आत्मा है, जिनके भीतर सब मर
ही नहीं गया है, सब सड़ ही नहीं गया है, वे उठ चल पड़ते हैं। वे पंख फैला देते हैं। वे अज्ञात की यात्रा पर निकल जाते हैं।
कब धरा छूटी, हवा में कब उठा, पैठा गगन में,
धंस गया कितना, किधर को, कुछ नहीं मालूम होता
एक दुर्निवार आकांक्षा का जन्म होता है। एक अभीप्सा पैदा होती है, जिस पर सब दांव लगा देने का मन हो जाता है।
मैं स्वयं खिंचता कि मुझको खींचता आकाश,
और तब यह भी पता नहीं चलता कि मैं खिंच रहा हूं आकाश की तरफ कि आकाश मुझे खींच रहा है। इतनी तल्लीनता होती है उस खिंचाव में, इतना एकात्म होता है, कि तय करना मुश्किल हो जाता है। जो मेरे पास आकर सच में ही संन्यास की यात्रा पर निकल गए हैं, उनको तय करना निश्चित ही मुश्किल है कि उन्होंने संन्यास लिया है, या मैंने उन्हें संन्यास दिया है।
कब धरा छूटी, हवा में कब उठा, पैठा गगन में,
धंस गया कितना, किधर को, कुछ नहीं मालूम होता,
मैं स्वयं खिंचता कि मुझको खींचता आकाश, इससे
सर्वथा अनजान बेकल प्राण मेरे, पंख मेरे।

इसका कुछ पता नहीं चलता, मगर यात्रा शुरू हो जाती है। यहां ऐसे लोग हैं जिनको सब पता है और यात्रा नहीं करते। और यहां ऐसे लोग हैं जिन्हें कुछ पता नहीं और यात्रा कर लेते हैं। जो यात्रा कर लेंगे, वे ही वस्तुतः जानेंगे। जो अपनी सड़ी-गली सूचनाओं को, उधार और बासी सूचनाओं को लिए बैठे रहेंगे, वे कितना ही बड़ा पांडित्य इकट्ठा कर लें, उनका पांडित्य उनके अज्ञान को छिपाने के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है।
मैं स्वयं खिंचता कि मुझको खींचता आकाश, इससे
सर्वथा अनजान बेकल प्राण मेरे, पंख मेरे।
चंचला के बाहु का अभिसार बादल जानते हों,
किंतु वज्राघात केवल प्राण मेरे, पंख मेरे।
जीवन का आघात, वज्राघात अनुभव करो! खोलो आंख! अगर अपने अंडे में बंद हो
अब तक सुरक्षा के, तो तोड़ो अपने अंडे को, खोलो आंख, देखो अपने पंख! तुम्हारा पंख ही आकाश का प्रमाण है। पंख हैं तो आकाश जरूर होगा। और पंख हैं तो ऊंचाइयां जरूर होंगी, नहीं तो पंख होते किसलिए? पंख होते कैसे? इस जगत में कुछ भी अकारण नहीं है! तुम्हारे भीतर अगर ईश्वर को खोजने की आकांक्षा है तो ईश्वर होना ही चाहिए। नहीं तो आकांक्षा न होती। पंख ही न होते अगर आकाश न होता। कैसे पंख होते? किसलिए पंख होते? कहां से पंख होते? उनका प्रयोजन क्या होता? निष्प्रयोजन तो कुछ भी नहीं है। तुम्हारा पंख इस बात का प्रमाण है कि आकाश है, ऊंचाइयां हैं, जो जाननी हैं। और जिन्हें बिना जाने कोई तृप्ति नहीं हो सकती।
बनो होमापक्षी! और तुम होमापक्षी बनो तो एक दिन सोमा का पान होगा। तुम होमापक्षी बनो तो एक दिन सोमरस तुम्हारे कंठ से उतरेगा। तुम उस परमात्मा को पी सकोगे। उसे बिना पीए तृप्ति नहीं। इस जगत का जल कितना ही पीओ, फिर-फिर प्यास लग आती है। उस जगत का एक बूंद भी कंठ से उतर जाए, तो प्यास सदा को समाप्त हो जाती है।

दूसरा प्रश्नः भंते! सात जुलाई उन्नीस सौ सतहत्तर को दिन की दोपहरी में पहली बार पता लगा कि बिना आंखों के भी देखा जा सकता है। आंखें बंद थीं, होश में था, पूरी विश्रांति में था, देखा कि एकाएक अदभुत प्रकाश ही प्रकाश है चारों ओर, और उस प्रकाश में पीठ के पीछे की चीजें भी दिखाई दे रही थीं। उस समय न ही मैंने कोई तर्क उठाया कि यह क्या हो रहा है, जो हो रहा था उसका मैं सिर्फ साक्षी था। क्या कैवल्य में साक्षी भी प्रकाश के साथ समाहित हो जाता है?

पूछा है शुभकरण पुंगलिया ने।
शुभ हुआ, शुभकरण! सत्य हुआ। और यह जो भाव, यह जो प्रश्न मन में उठा कि क्या कैवल्य में साक्षी भी प्रकाश के साथ समाहित हो जाता है, यह बहुमूल्य है।
उस अंतिम घड़ी में द्वैत नहीं रह जाता। कौन साक्षी? किसका साक्षी? उस अंतिम घड़ी में भक्त और भगवान नहीं रह जाता। कौन भक्त? कौन भगवान? कौन दृश्य? कौन द्रष्टा? वहां एक ही बचता है। न दृश्य रह जाता है, न द्रष्टा रह जाता है, सिर्फ दर्शन रह जाता है। न ज्ञाता रह जाता, न ज्ञेय रह जाता, सिर्फ ज्ञान-ऊर्जा रह जाती। प्रकाश मात्र ही रह जाता है, साक्षी नहीं बचता।
जब तक साक्षी है, तब तक कितना ही गहरा अनुभव हो, अंतिम अनुभव नहीं हुआ।
जब तक तुम देखने वाले मौजूद हो, तब तक तुम जो देख रहे हो, वह तुमसे अलग है, तुमसे भिन्न है। वह आत्म-अनुभव नहीं है। तुम द्रष्टा हो और तुम्हारे पास कोई चीज घट रही है। फिर वह कितनी ही सूक्ष्म हो! एक मोमबत्ती जल रही है तुम्हारे कमरे में, उसकी रोशनी तुम देख रहे हो, यह साधारण, स्थूल रोशनी है। फिर तुम्हारे भीतर कोई दीया जल उठा--बिन बाती बिन तेल; न तेल है, न बाती है, लेकिन दीया जल उठा--लेकिन तुम देखने वाले अभी भी हो, तो बहुत भेद नहीं है। पहला दीया स्थूल था, दूसरा दीया सूक्ष्म है। पहला दीया शरीर के बाहर था, दूसरा दीया शरीर के भीतर है, लेकिन अभी भी तुम इससे अलग खड़े हो। क्योंकि तुम द्रष्टा हो। तुम देख रहे हो कि रोशनी है। रोशनी दिखाई पड़ रही है।

स्मरण रखना, आध्यात्मिक अनुभव अनुभव जैसा होता ही नहीं। इसलिए सभी अनुभव या तो शारीरिक होते हैं या मानसिक होते हैं। यह बहुत गहरा मानसिक अनुभव हुआ। प्यारा अनुभव हुआ, मगर उस पर रुक नहीं जाना है। पहुंचना तो वहां है जहां अनुभव और अनुभोक्ता एक हो जाएं, जहां दृश्य और द्रष्टा एक हो जाएं। उस आखिरी घड़ी को ही कैवल्य कहा है। कैवल्य का अर्थ ही यही होता है-- केवल एक बचा, केवल बचा। प्यारा शब्द है, जैनों का, कैवल्य। वह एक की ही सूचना देता है। मात्र एक बचा। शुद्ध एक बचा। वहां फिर कोई अनुभव नहीं रह जाते। इसलिए अंतिम अनुभव अनुभव जैसा नहीं होता।
और बिना आंखों के देखा जा सकता है। क्योंकि आंखों से देखा ही क्या है? आंखों से किसने कब क्या देखा है? ये चमड़े की आंखें देखने की भ्रांति भर देती हैं। इनसे काम चल जाता है बाहर के जगत में, तुम एक-दूसरे से टकराते नहीं हो, रास्ते से गुजर कर अपने घर आ जाते हो, दीवाल से नहीं निकलते, दरवाजे से निकल जाते हो, ऐसा इनका उपयोग है। लेकिन और क्या दिखाई पड़ता है? ऊपर की टकराहट बच जाती है, भीतर की टकराहट तो नहीं बचती इन आंखों से। ऊपर से तुम देख कर निकल जाते हो, भई, यहां एक आदमी खड़ा है, इससे बच कर निकल जाएं। लेकिन भीतर? भीतर तो आदमी-आदमी में टकराहट चलती है। महत्वाकांक्षा, गलाघोंट टकराहट चलती है। पत्नी-पति में, बाप-बेटे में, भाई-भाई में टकराहट चल रही है। भीतर की आंख आती है तो यह टकराहट भी चली जाती है। टकराहट ही नहीं बचती। कोई वैमनस्य नहीं बचता, कोई वैर नहीं बचता। प्रेम ही प्रेम शेष रह जाता है।
और अभी इस आंख से तुम्हें दूसरे तो थोड़े-बहुत दिखाई पड़ जाते हैं, थोड़े- बहुत ही, क्योंकि उनका भी वास्तविक अंग दिखाई नहीं पड़ता। तुम्हें जब कोई आदमी दिखाई पड़ता है तो उसकी देह ही दिखाई पड़ती है, उसकी आत्मा दिखाई नहीं पड़ती। वही उसका असली अंग है। देह तो ऊपर की खोल है। जैसे किसी ने किताब का कवर भर देखा हो, किताब के भीतर क्या है वह कुछ दिखाई नहीं पड़ता। और असली चीज तो किताब के भीतर है, कवर में तो नहीं। कवर कैसा ही प्यारा हो तो भी असली चीज तो किताब के भीतर है। विषय-वस्तु तो भीतर है। देह तो केवल ढक्कन है। आवरण है। आत्मा तो भीतर है। वह तो इन आंखों से दिखाई नहीं पड़ती। अपनी ही आत्मा नहीं दिखाई पड़ती इन आंखों से, तो दूसरे की तो कैसे दिखाई पड़ेगी? इसलिए सम्यक-दृष्टि, ठीक आंख आत्म-अनुभव का नाम है। जब तुम्हें भीतर स्वयं का भाव समझ में आ जाए कि मैं कौन हूं, उस भाव के साथ तुम्हें औरों के भीतर भी दिखाई पड़ने लगेगा कि वे भी कौन हैं। और तब तुम पाओगे कि एक ही फैला हुआ है। कैवल्य का विस्तार है।

दूसरा प्रश्न पूछा है शुभकरण पुंगलिया ने ही--

पंद्रह वर्षों से आपके चरण स्पर्श करने की उत्कट इच्छा है। और अभी मैं आपके पास हूं। मैंने आपके चरण स्पर्श के लिए मा शीला से प्रार्थना भी की। मा शीला ने कहा कि भाव उठेगा तो भगवान से मिलवा दूंगी। हे भंते! मा शीला के मन में भाव उठा दीजिए न! ताकि मेरा अंतराय-कर्म टूटे और आपके चरणों में गिर कर समुद्घात चैतन्य का समस्त अस्तित्व में फैलाव कर सकूं।

शीला में भाव उठाने से कुछ भी न होगा! और शीला का मतलब भी यही था। उसका मतलब यह नहीं था कि शीला में जब भाव उठेगा, तब। उसका मतलब यही था कि जब तुममें भाव उठेगा, तब। तुम्हारे भीतर इच्छा तो है पैर छूने की, भाव अभी नहीं उठा है।
इच्छा और भाव में बड़ा फर्क है।
भाव का अर्थ होगा कि तुम सच में ही झुकने को तैयार हो गए। लेकिन तुमने अभी संन्यास भी नहीं लिया है। भाव तो नहीं उठा है, इच्छा है, एक वासना है। और बाहर के चरण छूकर होगा भी क्या? जब तक कि तुम्हारे भीतर झुक जाने की ऐसी भाव-दशा न आ जाए कि समर्पित हो जाऊं, तब तक असली समर्पण, असली झुकाव नहीं घटा। शीला का मतलब वही था। शीला बड़ी रहस्यवादी है। उसने ठीक बात कही कि जब भाव उठेगा! उसने इतना ही कहा कि तुम्हारी इच्छा तो है, जाहिर है, पंद्रह

साल से तुम कहते हो तो झूठ न कहते होओगे, ठीक ही कहते हो। लेकिन भाव, भाव बड़ी और बात है। भाव का मतलब है कि अब ऊपर ही ऊपर से क्या झुकना, ऊपर के चरण क्या छूने, अब भीतर से ही एकता बना लें। संन्यास का और क्या अर्थ होता है? इतना ही अर्थ। और अब तो तुम्हारे जीवन में थोड़े भीतर के अनुभव भी लगने लगे। अब तो संन्यास की घड़ी आ गई। पंद्रह वर्ष बाहर के चरण छूने का ही विचार करते रहे, क्या पंद्र्रह जन्म भीतर के चरण छूने का विचार करोगे? ऐसा समय मत गंवाओ।

बहारे-जांफिजा जाकर चमन से फिर भी आती है
घटा काली बरस कर एक दफा फिर भी तो छाती है
सितारे दिन को बुझ जाते हैं फिर शब को चमकते हैं
फलक पर रात भर शोखी से हंस-हंस कर दमकते हैं
सफक की झील में खुर्शीद शब को डूब जाता है
दरे कसरे उफक से झांक कर फिर मुस्कुराते हैं अगर मुरझा गए हैं फूल और गुंचे तो क्या परवा, खिजां के बाद ये फूल और गुंचे फिर भी महकेंगे बहार आते ही तायर डालियों पे फिर भी चहकेंगे अगर तारीक रात आती है ऐ हमदम तो आने दे
अगर जंगल की नद्दी खुश्क होती है तो हो जाए
कभी तो चांदनी रात आकर यह जुल्मत मिटाएगी
यह नदी के फिर सुरीले और शीरीं गीत गाएगी
निशां गुजरी हुई घड़ियों का लेकिन फिर नहीं मिलता
कमल मुरझा के दिल का एक दफे फिर से नहीं खिलता

इतना ख्याल रखो! सब लौट आता है, सब वापस आ जाता है।
निशां गुजरी हुई घड़ियों का लेकिन फिर नहीं मिलता
लेकिन जो समय बीत गया, फिर उसका निशान भी नहीं मिलता। तुम यहां हो, तुम इतने से ही राजी हो जाओगे कि मेरे चरण छूकर चले जाओ? इतने से हल हो जाएगा? इतने से हल होता है तो शीला को मैं कहे देता हूं कि शुभकरण को आज भेज देना। इतने से क्या होगा? और जब मैं तुम्हें सब देने को राजी हूं, तब तुम इतना सा लेने को क्यों? मैं कृपण देने में नहीं हूं, तुम लेने में कृपण हो रहे हो! हद हो गई कंजूसी की भी!
निशां गुजरी हुई घड़ियों का लेकिन फिर नहीं मिलता
कल की कौन जाने? मैं होऊं, तुम न होओ; तुम होओ, मैं न होऊं; हम दोनों हों
और फिर मिलना न हो सके।
चीन की एक बड़ी पुरानी कथा है। एक वजीर को सम्राट ने फांसी की सजा दे दी। नाराज हो गया था, कुछ बात ऐसी हो गई। ऐसे वजीर से प्रेम भी बहुत था। लेकिन राजा तो राजा थे। जरा सी बात हो गई और इतना नाराज हो गया कि नाराजगी में कह दिया कि फांसी लगा दो। सात दिन बाद फांसी लग जाए। लेकिन नियम था उस राज्य का कि फांसी के एक दिन पहले सम्राट, जिसको भी फांसी होती थी, उससे मिलने जाता था। फिर यह तो उसका वजीर था। तो वह गया मिलने। वजीर बहादुर आदमी था, अनेक युद्धों में लड़ा था, छाती पर बड़े घाव थे उसके। कभी उसकी आंख में आंसू नहीं देखा गया था। राजा को देखते ही उसकी आंख से आंसू झर-झर गिरने लगे। राजा ने कहा, आश्चर्य! क्या तुम मृत्यु से डर गए हो? मैं तुम्हें जन्म भर से जानता हूं। तुम जैसा हिम्मतवर आदमी इस राज्य में दूसरा नहीं। तुम्हें मैंने कभी रोते नहीं देखा। तुम रो क्यों रहे हो? बात क्या है? तुम कहो मुझसे, बात क्या है?
उसने कहा, कुछ भी बात नहीं, अब कहने से कुछ सार नहीं। अब जो हो गया, हो गया। लेकिन मैं मौत के कारण नहीं रो रहा हूं, मैं तुम्हारे घोड़े के कारण रो रहा हूं।
वह जो घोड़ा सम्राट चढ़ कर आया है, बाहर बांध दिया है, सींखचों से दिखाई
पड़ रहा है। सम्राट ने कहा, घोड़े के कारण? घोड़े के कारण क्यों रोओगे तुम? पहेली मत बूझो, मुझे बात सीधी-सीधी कहो।

वजीर ने कहा, अब आप नहीं मानते तो कहे देता हूं। मैंने जिंदगी भर एक कला सीखी, बड़ी मेहनत से कला सीखी कि मैं घोड़े को आकाश में उड़ना सिखा सकता हूं। मगर एक खास जाति के घोड़े को ही वह उड़ना सिखाया जा सकता है। और वह घोड़ा मुझे न मिला सो न मिला। आज जब कि मरने का दिन आ गया, यह घोड़ा सामने खड़ा है! आप जिस घोड़े पर बैठ कर आए हैं, इसकी मैं तलाश में जिंदगी भर से था। इस जाति का घोड़ा उड़ना सीख सकता है।
सम्राट को तो आकांक्षा जगी कि अगर घोड़ा उड़ना सीख जाए! तो उन दिनों तो घोड़ा सबसे बड़ी ताकत थी। और अगर घोड़ा उड़ता हो, तब तो कहना क्या! तब तो यह सम्राट का साम्राज्य सारे जगत में फैल जाएगा। उसने कहा, तू फिकर मत कर। कितना समय लगेगा घोड़े को उड़ना सीखने में?
वजीर ने कहा, एक साल लगेगा।
सम्राट ने कहा, तो एक साल के लिए तुझे हम जेल से बाहर निकाल लेते हैं। अगर घोड़ा उड़ना सीख गया तो आधा राज्य भी तुझे दूंगा और अपनी बेटी से विवाह भी कर दूंगा। और अगर घोड़ा उड़ना नहीं सीखा, तो ठीक है, अभी सूली लगती है, साल भर बाद लग जाएगी।
वजीर तो उस घोड़े पर बैठ कर अपने घर लौट आया। घर तो पत्नी रो रही थी, बच्चे रो रहे थे, मां रो रही थी, बाप रो रहा था, कि आखिरी दिन आ गया और अभी तक कुछ आसार नहीं हैं क्षमा के। बेटे को लौटा देख कर बाप तो समझ ही नहीं सका। पत्नी तो एकदम दीवानी हो गई खुशी में। सबने घेर लिया कि कैसे बचे? क्या हुआ? वह हंसा और उसने कहा कि ऐसे बचा, यह घटना घटी।
पत्नी और जोर से रोने लगी। मां और छाती पीटने लगी। उसने कहा, तुमने यह क्या किया? हमें सब पता है कि तुम्हें कुछ पता नहीं, तुम घोड़ा उड़ाना कुछ सिखा नहीं सकते हो घोड़े को। तुमने कब सीखा? कहां सीखा? इसकी तो तुमने कभी बात ही नहीं की।
उस वजीर ने कहा, मैं कुछ जानता नहीं घोड़े उड़ने इत्यादि के संबंध में,
यह तो एक कहानी गढ़ी है।
तो उन्होंने कहा, अब हमें और मुसीबत में डाल दिया। ये सात दिन हमारे इतने कष्ट से कटे हैं, अब यह साल और कष्ट से कटेगा। इससे तो बेहतर था तुम मर ही जाते। हमें लटका दिया फांसी पर साल भर के लिए और। और अगर मांगा ही था तो कम से कम दस साल तो मांगते।
उस वजीर ने कहा, पागल हो गए हो! एक साल का क्या भरोसा? राजा मर सकता है, मैं मर सकता हूं, और कम से कम घोड़ा तो मर ही सकता है। एक साल का भरोसा क्या है? कुछ भी हो सकता है। फिकर न करो!
और आश्चर्य की बात यह है कि ऐसा हुआ कि तीनों ही मर गए। राजा भी मर गया, वजीर भी मर गया और घोड़ा भी मर गया।
निशां गुजरी हुई घड़ियों का लेकिन फिर नहीं मिलता
तुम्हारे भीतर फूल खिलने शुरू हुए हैं। अवसर मत चूको! झुकने की आकांक्षा है तो झुक ही जाओ! फिर झुके तो उठना क्या? संन्यास का इतना ही तो अर्थ है, झुके तो झुके, फिर उठना क्या? फिर लाख अड़चनें हों, फिर लाख झंझटें आएं, फिर लाख बदनामी हो, लाख लोग पागल समझें! बस शुभकरण को वही अड़चन होगी, कलकत्ता में रहते हैं, वहां लोग पागल समझेंगे। फिकर क्या है? यही कलकत्ते के लोग कल-परसों तुम्हें अरथी सजा कर मरघट पहुंचा आएंगे। इनकी चिंता क्या है? इनके पागल समझने से हर्ज क्या है?
शुभकरण जैन मालूम होते हैं, उनकी भाषा से। जैनों से डर रहे होंगे। मुनि, साधु इत्यादि पीछा करेंगे कि यह तुम्हें क्या हो गया? भ्रष्ट हो गए! स्वीकार कर लेना कि भ्रष्ट हो गए, पागल हो गए, अब करें क्या? कुछ पता नहीं। जब भरे-भूरे घनों के बीच में दामिनी दमकती
तब अचानक एक बिजली दौड़ जाती है परों में,
और जब नभ है गरजता इस तरह लगता कि कोई
दुर्निवार पुकारता अधिकार, आज्ञा के स्वरों में,
मैं तुम्हें पुकार रहा हूं--दुर्निवार अधिकार, आज्ञा के स्वरों में।
कब धरा छूटी, हवा में कब उठा, पैठा गगन में,
धंस गया कितना, किधर को, कुछ नहीं मालूम होता,

मैं स्वयं खिंचता कि मुझको खींचता आकाश, इससे
सर्वथा अनजान बेकल प्राण मेरे, पंख मेरे।
चंचला के बाहु का अभिसार बादल जानते हों,
किंतु वज्राघात केवल प्राण मेरे, पंख मेरे।
कह देना, पागल हो गया हूं। कह देना, मैं क्या करूं? मैं खिंचा कि आकाश
ने खींचा, क्या हुआ, कुछ पता नहीं है। कह देना, मैं करता क्या, बिजली ऐसी चमकी कि मेरे पंख फड़के, कि उड़े बिना नहीं रहा जा सका। लोगों के मंतव्यों के कारण लोग रुके हैं। लोगों का मूल्य क्या? उनके मंतव्यों का मूल्य क्या? उनके मंतव्यों से तुम्हें मिलेगा क्या? उनके मंतव्यों से किसको कब कुछ मिला है? साहस करो! शीला को तो मैं भाव उठा देता हूं, मगर उससे कुछ भी न होगा, तुम्हीं भाव उठाओ! समय आ गया। ठीक घड़ी है, उसे चूको मत।
कभी तो बीच से उट्ठेगा शर्म का पर्दा
कभी तो उनकी मेरी बेतकल्लुफी होगी
घड़ी आ गई। बेतकल्लुफी हो सकती है। मेरा निमंत्रण। पर्दा उठ सकता है। लेकिन पर्दा मैंने नहीं डाला है। न पर्दा शीला ने डाला है। पर्दा तुम्हीं डाले हो। तुम्हीं उठाओगे तो उठेगा।
मैंने सुना है, एक नाटककार के परिश्रम से लिखे गए अनेक नाटक मंच पर असफल हो गए। वह बहुत चिंतित रहने लगा। एक दिन उसने अपनी प्रेमिका से कहा कि मैं आत्महत्या की सोचता हूं। अब जीने में कुछ सार नहीं। मैंने जितने नाटक लिखे, जितने नाटक रचे, सब असफल हो गए। मेरी असफलता बड़ी गहरी है। मैं बिल्कुल विजड़ित हो गया हूं, मैं टूट गया हूं।
उसकी प्रेमिका ने कहा, आशा न छोड़ो! अब तुम नाटक लिखना बंद करो, हम-तुम दोनों मंच पर नाटक खेलेंगे।
कैसे? नाटककार ने पूछा।
उसकी प्रेमिका ने कहा, पहले दृश्य में मैं गीत गाऊंगी, फिर पर्दा उठेगा।
फिर? नाटककार ने पूछा।
दूसरे दृश्य में मैं नृत्य करूंगी।
फिर? नाटककार ने पूछा।
उसने कहा, फिर, फिर पर्दा उठेगा और तीसरे दृश्य में...
तब नाटककार ने पूछा, तू ही तू ही दृश्य दिखा रही है, और मैं क्या करूंगा?
तो उसकी प्रेयसी ने कहा, आप क्या समझते हैं पर्दा अपने आप उठ जाएगा? तुम पर्दा उठाना!
पर्दा अपने आप नहीं उठता, यह तो सच है। मगर शीला के उठाए भी न उठेगा, शुभकरण! तुम्हीं को उठाना पड़ेगा, तुम्हीं ने डाला है।
मैं तो तैयार हूं कि पर्दा उठे। और तुम्हारी आत्मा भी भीतर तैयार हो
गई है, और तुम्हारी आकांक्षा भी जगी है। लेकिन तुम कुछ भयभीत हो, कुछ संकोच से भरे हो--कुछ छोटे-मोटे डर। जाने दो अब उन छोटे-मोटे डरों को। इस जगत में कुछ भी चिंता योग्य नहीं है। जहां सभी खो जाना है, वहां क्या चिंता!

तीसरा प्रश्नः
हां, नाम तो धर चुकी मोहब्बत तेरी
बदनाम तो कर चुकी मोहब्बत तेरी
कहते हैं जो लोग हम समझते भी नहीं
अब हद से गुजर चुकी मोहब्बत तेरी

पूछा है स्वामी शिरीष भारती ने।
अभी हद से गुजरी नहीं होगी! अभी थोड़ी-थोड़ी कमी होगी। अन्यथा पूछने को कौन बचता? कहने को कौन बचता? ऐसी घड़ी आती है जरूर जब हद से मोहब्बत गुजर जाती है। तब तो पता ही नहीं चलता। पता करने वाला ही डूब जाता है। तुम प्रेम में तो हो, लेकिन कुछ-कुछ अपने को बचा रहे होओगे। अपने को समझा भी रहे होओगे कि प्रेम अब हद से आगे गुजर गया।

प्रेम बड़ी अनूठी घटना है। इस जगत में प्रेम सबसे बड़ा पागलपन है। मगर सबसे बड़ी बुद्धिमत्ता भी। प्रेम बड़ा विरोधाभास है। प्रेम की बड़ी पीड़ा भी है और बड़ा आनंद भी। पीड़ा है कि अहंकार को मरना पड़ता है। और आनंद है, क्योंकि निर-अहंकार में ही आनंद अवतरित होता है।
फिर जिसको हमने अब तक प्रेम समझा है इस दुनिया में, वह तो क्षणभंगुर
का प्रेम होता है। वह तो जैसे प्याली में तूफान। जो प्रेम मैं तुम्हें सिखा रहा हूं, वह क्षणभंगुर का प्रेम नहीं है, वह शाश्वत का प्रेम है। उसकी कहां हद है? तुम अपनी हद से गुजर जाओगे, मगर उस प्रेम की कहां हद है? वह प्रेम बेहद है। अनहद उसका नाम है। उसकी कोई सीमा नहीं है। जिस प्रेम की सीमा होती है, वह प्रेम सांसारिक। जिस प्रेम की कोई सीमा नहीं होती, वही प्रेम आध्यात्मिक।
मगर, तुम्हारी अड़चनें मैं समझता हूं। तुमने इन पंक्तियों में अपनी अड़चन की तरफ ही इशारा किया है।
आखिर हमें कहना ही पड़ा हाले-दिल अपना
अच्छे हैं वही लोग जो उल्फत नहीं करते
तुमने निवेदन किया है कुछ इन पंक्तियों में। पीड़ा तो है प्रेम की। बड़ी पीड़ा तो यही है कि तुम मिटते जाते हो। तुम धीरे-धीरे गलते जाते हो। तुम मेरे पास आते हो तब तुम्हें यह पता भी नहीं होता। तुम तो मेरे पास आते हो और सबल होने को, तुम तो मेरे पास आते हो अपने अहंकार को और भर लेने को। कि थोड़ा ज्ञान बढ़े, थोड़ा ध्यान बढ़े, संसार में तो थोड़ा कब्जा है ही, थोड़ा परलोक में भी कब्जा हो जाए। थोड़ा पुण्य बढ़े। यहां तो सब ठीक-ठाक जमा लिया है, स्वर्ग में भी इंतजाम कर लूं--जाने के पहले तैयारी कर लूं--आरक्षण करवा लूं। इधर तो जीत की काफी पताकाएं फहरा दी हैं, अब वहां स्वर्ग में भी बड़ा झंडा गाड़ दूं। तुम आते इस तरह की आकांक्षाओं से। और मैं धीरे-धीरे तुम्हारे झंडे गिराने लगता हूं। और मैं धीरे-धीरे तुम्हारी धारणाओं को बदलने लगता हूं। एक बार तुम मेरे प्रेम में पड़ गए तो फिर धीरे-धीरे-धीरे- धीरे तुम राजी होते जाते हो। एक दिन तुम्हारा सारा अहंकार खो जाता है। मगर अहंकार बिना जद्दोजहद के नहीं जाता। बड़ी पीड़ा देता है। लेकिन अगर प्रेम लग गया तो जाना ही पड़ता है चाहे कितना ही लड़े। उसकी हार फिर सुनिश्चित है। प्रेम का एक छोटा सा बीज भी अहंकार के पहाड़ को मिटा देने को काफी है। प्रेम की एक छोटी बूंद भी अहंकार के समुद्रों को हरा देने के लिए पर्याप्त है। आह वह बात कि जिस बात पे दिल दे बैठे
याद करने पर भी आती नहीं याद मुझे
ऐसा भी हो जाएगा एक दिन कि जब अहंकार बिल्कुल चला जाएगा, यह पहाड़ टूट जाएगा, तब तुम्हें याद भी न आएगा कि कौन सी बूंद गिरी थी? कौन सी बूंद इस पहाड़ को गला गई? किस बात पर दिल दे बैठे थे? शायद उसका पता भी न चले, वह इतनी सूक्ष्म रही हो, इतनी छोटी रही हो।
पीड़ा उठती होगी अहंकार के गलने से। और पीड़ा उठती होगी, लोग चारों तरफ तुम्हारे संबंध में न मालूम क्या-क्या कहने लगे होंगे! हंसना उनकी बातों पर। क्योंकि सच पूछो तो वे ही पागल हैं। वे क्षुद्र के साथ प्रेम किए बैठे हैं। आज नहीं कल जब नींद टूटेगी, बहुत पछताएंगे। तुमने विराट से दोस्ती बांधी। आज तुम कितने ही पागल लगते हो, आखिर में तुम्हीं विजेता सिद्ध होओगे। अंततः विजय तुम्हारी है। सत्यमेव जयते! छोटी-मोटी जीतें झूठ भी कर लेता है, लेकिन आखिरी विजय सत्य की है। भय मत करना।
तू रह न सकी फूलों में ऐ फूल की खुशबू
कांटों में रहे और परेशां न हुए हम
प्रेम के कांटे चुभेंगे, पीड़ा भी देंगे, मगर भयभीत मत होना, घबड़ाना मत।
तू रह न सकी फूलों में ऐ फूल की खुशबू
कांटों में रहे और परेशां न हुए हम
परेशान मत होना। ये कांटे जो अभी कांटे जैसे लग रहे हैं, यही फूलों में रूपांतरित हो जाते हैं। जीवन की बड़ी अपूर्व कीमिया है। बड़ी

रहस्यपूर्ण रसायन है। यहां दुख सुख हो जाते हैं। यहां नरक स्वर्ग हो जाते हैं। यहां मृत्यु महाजीवन का द्वार बन जाती है।
और कठिनाइयां बढ़ेंगी, तुम्हारा प्रेम जैसे-जैसे लगेगा परमात्मा की तरफ, जैसे-जैसे तुम उस रस में विभोर होओगे, वैसे-वैसे तुम संसार में बहुत अर्थों में बेकाम होने लगोगे। तुम्हारा रस वहां कम होगा। दौड़-धूप कम हो जाएगी। यह बिल्कुल स्वाभाविक है। जितने से काम चल जाए, उतने से तृप्ति हो जाएगी। दूसरों को लगेगा, तुम हार गए। दूसरों को लगेगा, तुमने पराजय स्वीकार कर ली। दूसरों को लगेगा, तुम उदास हो गए। दूसरों की कही गई बातों पर बहुत ध्यान मत देना। तुम तो अपने भीतर देखना, और देखना कि क्या तुम हार गए हो? या जीत अब शुरू हुई?
मोहब्बत में वही है काम का दिल
जिसे नाकाम समझा जा रहा है
यहां जगत में जो नाकाम होता जाता है, वही परमात्मा में सफल होता है।
और यह कोई साधारण प्रेम नहीं है। साधारण प्रेम भी बड़ी पीड़ाएं देता है,
तो असाधारण प्रेम तो असाधारण पीड़ाएं देगा। लेकिन साधारण प्रेम के सुख भी साधारण हैं, असाधारण प्रेम के सुख भी असाधारण हैं।
प्रेम का राग न गाना पगले
प्रेम नगर मत जाना पगले
राह यह है पुरखार, पगले
प्रेम बड़ा आजार!

कंटकाकीर्ण रास्ता है प्रेम का। और प्रेम बड़ा दुखदायी है।

प्रेम का राग न गाना पगले
प्रेम नगर मत जाना पगले
राह यह है पुरखार, पगले
प्रेम बड़ा आजार!

प्रेम में रोना ही होता है
जीवन खोना ही होता है
जीत हो या कि हार, पगले
प्रेम बड़ा आजार!

इस संसार में प्रीति नहीं है कोई किसी का मीत नहीं है
झूठा जग का प्यार, पगले
प्रेम बड़ा आजार!

तू ही बता क्या पाया आखिर
प्रीति किए पछताया आखिर
अब रोना बेकार, पगले
प्रेम बड़ा आजार!

इस जगत का प्रेम, साधारण प्रेम भी बड़ा पीड़ादायी है। सुख की तो थोड़ी सी झलक है, कहीं, कभी। एक सुगंध आती और खो जाती। दुर्गंध ज्यादा है। एक अंश में कभी कहीं कोई आनंद का भाव उठता है, निन्यानबे प्रतिशत तो अंधेरा ही अंधेरा है। एक किरण कभी फूटती है। मगर उस एक किरण के लिए भी लोग कितना दुख झेल लेते हैं!
मैं तुम्हें जिस प्रेम की तरफ ले जा रहा हूं, वहां शत-प्रतिशत प्रकाश
की संभावना है, सौ प्रतिशत किरणें तुम पर बरसेंगी। स्वभावतः बहुत निखरना होगा, बहुत जलना होगा, बहुत आग से गुजरना होगा। हिम्मत चाहिए, पागल की हिम्मत चाहिए। हिम्मत चाहिए, जुआरी की हिम्मत चाहिए।

लेकिन यह आधी बात है, कि प्रेम दुख है, कि प्रेम पीड़ा है। प्रेम आनंद
भी है, प्रेम मस्ती भी है। वह दूसरा हिस्सा है प्रेम का। और जितनी बड़ी पीड़ा, उतने ही बड़े आनंद की संभावना है। पीड़ा ही पीड़ा का हिसाब रखोगे तो जल्दी ही घबड़ा जाओगे, आनंद का भी हिसाब रखना।

आगाजे-मोहब्बत में वह इक सुबह खरामां
आंखों में समेटे हुए सौ रंग के तूफां
अब तक है तसव्वुर में वह बेदार नजारा
वह मस्त समां अब भी आंखों में है रक्सां
दुजदीदा निगाहों में वो दुजदीदा तबस्सुम
वो बर्क मुजस्सिम कभी पिन्हां कभी उरियां
अंगड़ाई-सी लेकर हुई बेदार मोहब्बत
जज्बात की मस्ती हुई खुर्शीदे-गुलिस्तां

खूब फूल खिल रहे हैं। नजर कांटों पर ही मत अटका लेना। कांटों की ही गिनती मत करते रहना। और ध्यान रखना, हजार कांटों में भी एक फूल खिले, तो एक फूल की कीमत हजार कांटों की पीड़ा से बहुत ज्यादा है! फिर मैं तुमसे कहता हूं--हजारों फूल खिल रहे हैं। इसलिए नकारात्मक दृष्टि को छोड़ो। कुछ लोग ऐसे हैं जो नकार की ही गिनती करते रहते हैं। वे रास्ते के कंकड़-पत्थर गिनते रहते हैं। और रास्ते पर जो आनंद की वर्षा होती है, उसकी उन्हें चिंता ही नहीं है। वे क्षुद्र अड़चनों का हिसाब-किताब रखते हैं। और विराट का प्रसाद बरसता है, उसको ऐसे स्वीकार कर लेते हैं जैसे वह उनका जन्मसिद्ध अधिकार था।
इस भ्रांति से बचना। तो जल्दी ही तुम्हें साफ हो जाएगा कि मोहब्बत एक तरफ से मारती है, दूसरी तरफ से जिलाती है। एक तरफ से मिटाती है, दूसरी तरफ से बनाती है। अहंकार को गला देती है और आत्मा को जन्मा देती है। मृत्यु जैसा है प्रेम, और जन्म जैसा भी। सूली पर चढ़ना है, और सिंहासन पर विराजमान होना भी। सिंहासन को देखो, सूली को तो सीढ़ी बनाओ। सूली सीढ़ी है सिंहासन की। और मृत्यु द्वार है नये जन्म का!

चौथा प्रश्नः आपने यह क्या गोलमाल कर दिया है? रविवार के प्रश्नोत्तर में आपने मेरे प्रश्न के उत्तर में कहा कि पूरे रंग जाओ। उसके एक दिन पहले मैं संन्यास में दीक्षित हुआ था। प्रार्थना है कि अब रंग चढ़ा दें!

पूछा है स्वामी कृष्ण वेदांत ने।
संन्यास रंगे जाने की शुरुआत है, अंत नहीं। कपड़ों को रंगने से शुरू करते हैं, क्योंकि उसकी भी हिम्मत नहीं रह गई है लोगों में, फिर देह को रंगेंगे, फिर मन को रंगेंगे, फिर आत्मा को रंगेंगे। जैसे-जैसे तुम्हारी हिम्मत बढ़ती जाएगी, वैसे-वैसे रंग फैलता जाएगा। रंगरेज के हाथ में पड़ गए हो। घबड़ाओ मत। कपड़े से तो सिर्फ शुरुआत है। अंगुली पकड़ में आ गई है तो पहुंचा बहुत दूर नहीं है। एक बार तुमने इशारा दे दिया कि मैं रंगे जाने को तैयार हूं--और तुमने तो शायद इसीलिए दिया हो इशारा कि कपड़े ही तो रंगने हैं, और क्या होना है--मगर तुम्हारी तरफ से इशारा क्या मिल जाता है मुझे कि रंगने के लिए तुम तैयार हो, फिर मैं तुमसे दुबारा नहीं पूछता! फिर तो मैं रंगता ही चला जाता हूं।
फिर यह लंबी यात्रा है। बहुत डुबकियां देनी होंगी तुम्हें रंग की गागर में। डुबकी पर डुबकियां देनी होंगी। क्योंकि जन्मों-जन्मों से तुम्हारे रंग उड़ गए हैं। तुम्हें परमात्मा की कोई याद ही नहीं रही है। तुम कहां छोड़ दिए हो परमात्मा को, तुम्हें स्मरण भी नहीं है। डुबकी पर डुबकियां, बार-बार चोट पर चोट, हर तरह से तुम्हें जगाने का उपाय--ध्यान से, भक्ति से, प्रेम से, भजन से, गीत से, नृत्य से, शब्द से, शून्य से, शास्त्र से, सत्संग से--हर तरह के उपाय किए जा रहे हैं। परेशान न होओ। रंगने की

अंतिम घड़ी भी करीब आ जाएगी। तुमने पहले की हिम्मत की है, तो तुम आखिरी के अधिकारी भी हो गए।
तुम्हारे प्रश्न के उत्तर में जो मैंने कहा कि पूरे रंग जाओ, कपड़े का रंग जाना पूरा रंग जाना तो नहीं है। कपड़े के रंग जाने से तो सिर्फ तुम्हारी तरफ से एक भाव-भंगिमा सूचित हुई कि मैं तैयार हूं।
फिर तुम्हारी आत्मा को एकदम रंगा जाए तो शायद तुम झेल भी न पाओ। झेलने
की क्षमता धीरे-धीरे विकसित होती है। एकदम से आकाश टूट पड़े तो तुम शायद दब ही जाओ। आहिस्ता-आहिस्ता। शनैः-शनैः। तुम्हारी हिम्मत बढ़ती जाती है और प्रसाद बढ़ता जाता है। क्रमिक। जल्दबाजी कुछ आवश्यक भी नहीं है। और पूरा रंगना, तो उसका अर्थ होता है--सिद्ध हो जाना। जब रंगने को कुछ न बचा तो उसका अर्थ हुआ कि तुम परमात्मा हो गए। लंबी यात्रा है।
लेकिन ध्यान रखना, लाओत्सु का प्रसिद्ध वचन है कि हजारों मील की यात्रा एक-एक कदम चल कर पूरी हो जाती है। और दो कदम तो कोई भी एक साथ नहीं चल सकता, एक कदम ही एक बार में चलना पड़ता है। और हजारों मील की यात्रा एक-एक कदम चल कर पूरी हो जाती है।
तो कृष्ण वेदांत, तुमने पहला कदम उठा लिया। अगर तुम मुझसे पूछो तो मैं पहले कदम को आधी यात्रा कहता हूं। सबसे कठिन पहला कदम है। फिर दूसरा कदम तो सहज होता है, क्योंकि वह भी पहले जैसा होता है। फिर तीसरा भी सहज होता है, क्योंकि वह भी पहले जैसा होता है। एक कदम उठा लिया तो कला आ गई। अब तुम रंगरेज के हाथ में पड़ ही गए हो, पूरे रंग दिए जाओगे।
गोलमाल इसलिए हुआ कि तुमने अपने संन्यास का नाम नहीं लिखा था प्रश्न में। तो दो ही कारण हो सकते थे। एक कारण तो हो सकता था कि तुमने प्रश्न संन्यास लेने के पहले लिखा हो। तो प्रश्न गैर-संन्यासी मन से उठा था, इसलिए मुझे कहना पड़ा कि रंगो। प्रश्न गैर-संन्यासी मन से उठा था, इसलिए कहना पड़ा कि संन्यासी बनो। या दूसरी संभावना यह है कि तुमने प्रश्न तो संन्यास लेने के बाद ही लिखा हो, लेकिन पुरानी आदतवश पुराना नाम लिख गए हो। तो भी जरूरी है कि तुम्हें याद दिलाया जाए कि पुराने को अब छोड़ो, नहीं तो रंग में बाधा पड़ेगी। अब पुराने को जाने दो; अब पुराने को विदा, अलविदा। अब पुराने से नाता तोड़ लो।
नये नाम का यही तो अर्थ है कि तुम्हारा नया जन्म हो। अतीत तुम जीए हो तीस साल, चालीस साल, पचास साल, उसकी बड़ी धूल जम गई है। एक खंडहर पड़ा है पचास साल का। कुछ लोग तो उसी खंडहर में सुधार करते रहते हैं, रिनोवेशन करते रहते हैं। वे उसी में इधर-उधर सहारे लगाते रहते हैं, ईंटें चुनते रहते हैं, कहीं पलस्तर गिर गया है तो पलस्तर कर दिया, कहीं रंग उड़ गया है तो रंग कर दिया, कहीं छप्पर टूट गया है तो छप्पर नया बिठा दिया। वे उसी पुराने में सारा करते रहते हैं। मगर पुराना पुराना है, खंडहर खंडहर है। मैं खंडहरों के पुनरुद्धार में विश्वास नहीं करता। मैं कहता हूं--गिरा दो जमीन तक, हटा दो इसे बिल्कुल, नया ही बना लेंगे।
और पुराने में छोटे-छोटे फर्क करते रहो तो कभी हो नहीं पाते फर्क, क्योंकि पुराने की ताकत बड़ी होती है। सौ चीजें पुरानी, उसमें एक तुम नई डाल देते हो, वे निन्यानबे पुरानी उस एक को भी पुरानी कर लेती हैं। उनका बल ज्यादा होता है। इसलिए उचित यही है कि पुराना अध्याय बंद! इसलिए नया नाम देता हूं ताकि तुम संन्यास के क्षण से सोचने लगो कि यह तुम्हारा जन्म हुआ। बुद्ध ने अपने भिक्षुओं को कहा थाः संन्यास के बाद अपनी उम्र संन्यास
के दिन से गिनना। वह ठीक बात थी। एक दिन बहुत मजा हो गया। एक बूढ़ा संन्यासी बुद्ध के चरणों में सिर झुकाने आया। कोई होगा सत्तर साल का आदमी। और बुद्ध अक्सर पूछते थे कि हे भिक्षु, तेरी उम्र कितनी है? सम्राट प्रसेनजित बुद्ध से मिलने आया था, वह उनके पास ही बैठा हुआ था। जब बुद्ध ने उस भिक्षु से पूछा, हे भिक्षु, तेरी उम्र कितनी है? तो उसने कहा, चार वर्ष। प्रसेनजित तो बड़ा चौंका। सत्तर साल, अस्सी साल का बूढ़ा, कह रहा है चार वर्ष! कहीं मेरे सुनने में भूल तो नहीं हो गई? उसने बुद्ध को फिर कहा कि जरा फिर से पूछिए, मैं जरा सुनने में चूक गया; यह कितना कह रहा है? बुद्ध ने कहा, यह कहता है चार वर्ष। और आप इसमें कोई प्रश्न नहीं उठा रहे हैं, प्रसेनजित ने कहा, यह

चार वर्ष कह रहा है! यह कम से कम सत्तर का तो है ही। अस्सी का भी हो सकता है। बुद्ध हंसे, उन्होंने कहा, तुम्हें पता नहीं, हम इस तरह ही गणना करते हैं। यह चार वर्ष पहले संन्यासी हुआ। उसके पहले जो छियासठ वर्ष जीया, उनकी क्या गिनती है! वे तो सपने में गए, उनको क्या गिनना है!
सपने के कृत्यों का तुम हिसाब तो नहीं रखते हो। कोई तुमसे पूछे कि तुम्हारे पास कितना धन है? तो तुम उतना ही बताते हो जितना जागने में तुम्हारे पास है। तुम उसमें वह नहीं जोड़ते जो तुम सपनों में भी होते हो। सपने में तुम्हारे पास करोड़ों होते हैं। और तुम यह नहीं कहते कि भाई, जागने में तो बस ये सौ रुपये हैं, मगर सपने में करोड़ भी होते हैं, तो सौ धन करोड़। सपने का धन तुम नहीं जोड़ते।
क्यों नहीं जोड़ते?
सपने का धन धन ही नहीं है। मूर्च्छा का धन धन ही नहीं है। मूर्च्छा का जीवन भी जीवन नहीं है।
जाने दो अतीत को। और मैं जानता हूं कि आदत आदत है, छूटते-छूटते ही छूटती है। जाते-जाते ही जाती है। देर लगती है। अचानक कोई तुमसे तुम्हारा नाम पूछेगा संन्यास के बाद, तुम्हें फिर पुराना नाम याद आ जाएगा। कुछ दिन तक आता रहेगा। संन्यास के बाद भी कोई पूछेगा--तुम्हारी जाति? तुम्हारा धर्म? तुम्हें फिर पुराना याद आ जाएगा, कि मैं जैन हूं, कि मैं हिंदू हूं, कि मैं बौद्ध हूं। भूलते-भूलते भूलेगा। इसलिए भी कहा कि पूरे रंग जाओ, संन्यस्त हो जाओ।
संन्यास लेने से ही संन्यास नहीं हो जाता है। कोई संन्यास लेकर भी संन्यास से वंचित रह सकता है; संन्यास को अगर ऐसे ही औपचारिकता के ढंग से ले लिया हो। कुछ लोग ले लेते हैं, मैं बड़ा चकित हूं, विशेषकर भारतीय, झूठा संन्यास ले लेते हैं! विदेश से आने वाले लोग झूठा नहीं लेते। उसका कारण है। उन्हें संन्यास का कुछ पता ही नहीं है। समझते हैं, समझने की चेष्टा करते हैं, सोचते-विचारते हैं, पूछते हैं कि संन्यास क्या है? क्यों लेना? क्या होगा? विचार करते, मंथन करते। लेकिन भारतीय को तो पता ही है कि संन्यास अच्छी चीज है। और उस अच्छे संन्यास में कुछ थोड़े कांटे थे, वे भी मैंने अलग कर दिए हैं। न घर छोड़ना है, न द्वार छोड़ना है, न पत्नी, न बच्चा। तो मन कहता है, फिर संन्यासी होने का मजा भी क्यों न ले लिया जाए? कुछ खोना भी नहीं है और संन्यास भी मिलता हो, इतनी सुगमता से मिलता हो तो ले ही लो। तो एक तो भारतीय मन को पता है कि संन्यास क्या है। संन्यास की महिमा पता है। और फिर मैंने संन्यास के बीच की सारी बाधाएं अलग कर दी हैं। तो सोचता है, लेने में हर्ज क्या है? ले लेता है।
या किन्हीं और कारणों से भी ले लेता है। ऐसे अक्सर मौके आ जाते हैं। कोई संन्यास ले लेता है, मैं कहता हूं उससे कि ध्यान करो! वह कहता है, ध्यान तो अभी मैं क्या करूं, असली में इसलिए मैंने संन्यास लिया है कि मेरी तबीयत ठीक नहीं रहती। मैंने सोचा कि आपसे जुड़ जाऊं तो शायद तबीयत ठीक हो जाए। इसलिए संन्यास लिया है। सब इलाज करवा चुका। तो संन्यास एक इलाज है! सोचा कि अब सब करवा चुका, अब यह आखिरी भी करके देख लेना चाहिए।
एक महिला एक बच्चे को लेकर आ गई। वह बच्चा आ ही नहीं रहा है, वह उसको घसीट रही है, कि इसको संन्यास दे दें! इसका दिमाग खराब है, और हम सब इलाज करवा कर देख लिए, अब सोचा कि चलो संन्यास ही दिलवा दें।
अब यह तो संन्यास नहीं होगा! यह तो कैसा संन्यास होगा? भारतीय मन धर्म
के साथ इतने दिन रहा है कि धर्म के साथ भी बेईमानी करने में कुशल हो गया है।
फिर ऐसे भी लोग हैं जो यहां आकर संन्यास ले लेते हैं... एक भाव में आ गए, यहां सब गैरिक लोगों को देख कर तरंग आ गई, आंसू बहे, मग्न हुए, सुना, समझा... मगर जब ट्रेन में बैठते हैं वापस, तो घबड़ाहट शुरू होती है कि अब घर वापस जा रहे हैं! कुछ ऐसे भी हैं जो रास्ते में ही कपड़ा अपना पेटी में छिपा लेते हैं। घर जाकर खबर ही नहीं देते। मुझे पत्र लिखते हैं कि हम बड़े अपराधी हैं, लेकिन क्या करें, हिम्मत नहीं जुटा पा रहे हैं कि पत्नी को बता दें, कि दफ्तर में बता दें, कि लोगों को पता चल जाए कि संन्यासी हो गए हैं। मुझसे

लोग संन्यास लेते वक्त पूछते हैं कि अगर माला को भीतर छिपाए रखें तो कुछ हर्ज तो नहीं है?
माला बाहर और भीतर का सवाल नहीं है, मगर भीतर छिपाने का भाव! वहां हर्ज है। किसी को पता न चले। एक सज्जन संन्यास लेकर गए, जब वे कोई दो-तीन महीने बाद वापस आए तो मैंने उनसे पूछा, गैरिक वस्त्रों का क्या हुआ? और मेरी आंखें खराब नहीं हैं। उन्होंने कहा, आप देखते नहीं, यह गैरिक वस्त्र तो पहने हुए हूं। तब मैंने बहुत गौर से देखा, तो पता चला--हां, सफेद रंग में थोड़ी सी झलक है! तो कोई खोजे बहुत, चश्मा लगा कर, तो शायद समझ में आए कि हां, थोड़ी सी झलक है।
ऐसा धोखा चलता! वे कपड़े बिल्कुल सफेद मालूम पड़ रहे हैं; थोड़ा सा रंग,
एक रत्ती भर रंग बाल्टी भर पानी में डाल कर और कपड़े उन्होंने हिला लिए होंगे! जब मैंने बहुत गौर से देखा, मैंने कहा, जरा करीब आओ, मैं जरा और गौर से देखूं--हालांकि मेरी आंखें खराब नहीं हैं--तब मैंने कहा कि हां, मालूम तो होता है। मैं तो समझा कि कपड़े दो-चार दिन से धोए नहीं हैं, यात्रा में थोड़ी सफेदी खो गई है।
इसलिए संन्यास ले लेने से ही संन्यास हो गया, ऐसा मत मान लेना। शुरुआत हुई। फिर बहुत कुछ करना है। बुनियाद रखी गई, फिर भवन उठाना है।

आखिरी प्रश्नः संसार क्या है?

सोए-सोए देखा गया परमात्मा। मूर्च्छित अवस्था में देखा गया परमात्मा। मन के माध्यम से देखा गया परमात्मा संसार है। और चूंकि मन क्षणभंगुर है, इसलिए मन में बनते प्रतिबिंब भी क्षणभंगुर होते हैं। तुमने देखा, रात पूर्णिमा का चांद निकला हो, झील शांत हो, तो झील पर पूर्णिमा का चांद बनता है, प्रतिबिंब बनता है। जरा सी एक कंकड़ी फेंकना, जरा सी कंकड़ी और झील कंप गई, और झील डोल गई, और लहरें उठ गईं, तरंगें उठ गईं, और चांद हजार टुकड़ों में टूट गया। चांद नहीं टूटता है हजार टुकड़ों में, ध्यान रखना, सिर्फ लहर में जो प्रतिबिंब बनता था वही टूटता है। झील का बना प्रतिबिंब टूटता है हजार टुकड़ों में, चांद नहीं टूटता। प्रतिबिंब क्षणभंगुर है, चांद तो क्षणभंगुर नहीं है।
हम मन की झील के द्वारा परमात्मा को देखते हैं, तो जो प्रतिबिंब बनता है--और वह प्रतिबिंब क्षणभंगुर होगा, क्योंकि मन में हजारों विचार की तरंगें चल रही हैं--इसलिए टूट-टूट जाता है, खंड-खंड हो जाता है। इसलिए संसार में कभी सुख संभव नहीं है, क्योंकि सुख बन भी नहीं पाता और उखड़ जाता है। यहां झील में कंकड़ पड़ते ही जाते हैं। तुम बड़े प्रसन्न जा रहे थे रास्ते पर, आज बड़े खुश थे, सुबह से ही ताजे थे, घर में भी कोई झंझट नहीं हुई थी, घर से मस्ती से निकले थे और एक आदमी तुम्हारे पास से गुजर गया--उसने कुछ खास नहीं किया, सिर्फ नमस्कार नहीं की, रोज नमस्कार करता था, आज नहीं की-- बस, एक कंकड़ पड़ गया। कंकड़ डाला भी नहीं और पड़ गया। उसने कुछ किया नहीं, सिर्फ कुछ करता था जो आज उसने नहीं किया, मुंह फेर कर निकल गया, बस चिंता पैदा हो गई, लहरें उठने लगीं, बदला लेने का भाव होने लगा कि यह आदमी, इसके साथ मैंने कितना भला किया--सारी झील लहरों से पट गई! खो गया सब सुख, तरंग भूल गई। जरा सी बात तुम्हारे मन को डांवाडोल कर जाती है।
इसलिए इस मन के द्वारा कभी सुख तो मिल नहीं सकता। सुख तो शाश्वत में है। मन को हटा कर जगत को देख लेते ही परमात्मा मिल जाता है। झील में मत देखो चांद को, झील से आंखें हटाओ, चांद को ही देखो। परमात्मा और संसार दो नहीं हैं, संसार परमात्मा की ही छाया है। इसलिए उसे माया कहते हैं।
मैं हसीन कलियों से आगोश सजा लूं तो क्या
अपने गमखानों में इक शमअ जला लूं तो क्या
मुस्कुरा लूं भी तो क्या, साज बजा लूं तो क्या
वक्त की तल्खिए-गुफ्तार तो मिटने से रही
यह समय की जो कड़वाहट है, यह तो मिटती ही नहीं है।
मैं हसीन कलियों से आगोश सजा लूं तो क्या

मैं अपनी गोदी में फूल ही फूल भर लूं तो भी क्या होगा? फूल जल्दी ही कुम्हला जाएंगे।
अपने गमखानों में इक शमअ जला लूं तो क्या
और अपनी दुख से भरी जिंदगी में एक दीया भी जला लूं तो क्या? दीया जल्दी
ही बुझ जाएगा, तेल चुक जाएगा, बाती मिट जाएगी।
मुस्कुरा लूं भी तो क्या...
कितनी देर मुस्कुराओगे? मुस्कुराहट आई और गई।
... साज बजा लूं तो क्या
और कितनी वीणा छेड़ोगे? गीत उठेंगे, संगीत के स्वर उठेंगे और खो जाएंगे।
वक्त की तल्खिए-गुफ्तार तो मिटने से रही
यह जो समय का उपद्रव है--और समय यानी मन। ख्याल करना, मन के कारण ही समय पैदा हुआ है। जैसे ही मन चला जाता है, समय चला जाता है।
जीसस से उनके एक शिष्य ने पूछा कि तुम्हारे प्रभु के राज्य में सबसे खास बात क्या होगी?
जीसस ने कहाः देयर शैल बी टाइम नो लांगर। वहां समय नहीं होगा।
महावीर कहते हैंः समाधि में समय नहीं होता; समयातीत, कालातीत। सारे ज्ञानियों ने कहा हैः काल मिट जाता है, समय मिट जाता है। और जहां काल मिट जाता है, समय मिट जाता है, वहां मृत्यु भी मिट जाती है। इसलिए तो हमने काल के दोनों अर्थ किए हैं--समय और मृत्यु। दोनों मिट जाते हैं। अमृत का अनुभव हो जाता है। शाश्वत जहां मिल गया वहां समय भी नहीं रहा, मृत्यु भी नहीं रही। मिटने वाली कोई चीज ही न रही तो मृत्यु कैसे रहेगी? अमिट से मिलन हो गया, नित्य से मिलन हो गया।

मैं हसीन कलियों से आगोश सजा लूं तो क्या
अपने गमखानों में इक शमअ जला लूं तो क्या
मुस्कुरा लूं भी तो क्या, साज बजा लूं तो क्या
वक्त की तल्खिए-गुफ्तार तो मिटने से रही

चूम लूं चांद के शफ्फाक किनारे भी अगर
तोड़ लूं उड़ कर यह रंगीन सितारे भी अगर
मोड़ दूं जीस्त के बहते हुए धारे भी अगर
वक्त की तल्खिए-गुफ्तार तो मिटने से रही

पी भी लूं मस्त निगाहों के इशारों से अगर तल्खिए-जीस्त मिटा भी दूं उठा कर सागर मंजरे-गम को बना भी लूं जो फिरदौसे-नजर वक्त की तल्खिए-गुफ्तार तो मिटने से रही

यह रविश और यह हालात बदल भी जाएं
यह तसव्वुर यह ख्यालात बदल भी जाएं
यह शऊर और यह जज्बात बदल भी जाएं
वक्त की तल्खिए-गुफ्तार तो मिटने से रही

घुट के रह जाएगी इक दिन यह सिसकती आवाज
मुंतसिर टूट के हो जाएगा शीराजए-राज
जल्वाए-नाज से भर जाएगी आगोशे-नियाज
वक्त की तल्खिए-गुफ्तार तो मिटने से रही

सब छिन्न-भिन्न हो जाएगा। कितना ही गोद भरो फूलों से, सब छिन्न-भिन्न
हो जाएगा। कितने ही दीये जलाओ, सब बुझ जाएंगे। आकाश के तारे भी तोड़ लाओ, सब व्यर्थ हो जाएगा।
घुट के रह जाएगी इक दिन यह सिसकती आवाज

और कितने ही गीत गाओ, और कितनी ही वीणा बजाओ...
घुट के रह जाएगी इक दिन यह सिसकती आवाज
मुंतसिर टूट के हो जाएगा शीराजए-राज
सब टूट जाएगा, सब बिखर जाएगा।
जल्वाए-नाज से भर जाएगी आगोशे-नियाज
वक्त की तल्खिए-गुफ्तार तो मिटने से रही
कितने ही सुख यहां बना लो, सब उजड़ जाएंगे। और कितने ही घर यहां बना लो,
सब गिर जाएंगे। यहां सब रेत पर बनाए हुए घर हैं, और पानी में चलाई गई कागज की नावें हैं। और समय की तल्खी, समय की कड़वाहट, समय का जहर कायम रहता है। संसार का अर्थ हैः समय। समय अर्थात मन। मन और समय एक ही ऊर्जा के दो नाम हैं। इधर मन गया... तुम जरा देखना! अगर किसी समय में ऐसा हो जाए कि मन में कोई विचार न हों, तो उसी के साथ तुम पाओगे--समय भी न रहा। घड़ी चलती रहेगी, तुम्हारे भीतर की घड़ी ठहर जाएगी। ध्यान में घंटों बीत जाते हैं और पता नहीं चलता कि कितना समय बीत गया। ध्यान में कुछ बीतता ही नहीं। ध्यान में उसका पता चलता है जो सदा है और कभी बीतता नहीं। बीतना सिर्फ मन में होता है।
संसार सत्य की झलक है। और झलक मन की झील में। और मन की झील जरा से कंकड़ों से डोल जाती है। इसलिए मन के सहारे तुम जो भी बसाओगे, टूट जाएगा, उखड़ जाएगा, बिगड़ जाएगा, छिन्न-भिन्न हो जाएगा।
मन से हटो। मन से मुक्त हो जाओ। अ-मन की दशा खोजो। नो माइंड। उस अ-मन की दशा में मुक्ति है, मोक्ष है, ब्रह्म है। और फिर से तुम्हें दोहरा दूं कि संसार और परमात्मा दो नहीं हैं। एक ही है। लेकिन परमात्मा को ही मन के द्वारा देखने से संसार की भ्रांति पैदा होती है। और बिना मन के देखने से सारी भ्रांतियां मिट जाती हैं। सत्य का अनुभव हो जाता है। सत्य का साक्षात्कार हो जाता है।
आज इतना ही।

अथातो भक्ति जिज्ञासा, भाग 2
उन्चालीसवां प्रवचन

प्रेम ही मंदिर है

सूत्र

अनन्यभक्त्या तद्बुद्धिर्बुद्धिलयादत्यन्तम्।। 96।।
आयुश्चिरयितरेषां तु हानिनास्पदत्वात्।। 97।।
संसृतिरेषामभक्तिः स्यान्नाज्ञानात कारणसिद्धेः।। 98।।
त्रीण्येषां नेत्राणि शब्दलिंगाक्षभेदाद्रुद्रवत्।। 99।।
आविस्तिरोभावाविकाराः स्युः क्रियाफलसंयोगात्।। 100।।
अथातोभक्तिजिज्ञासा!
अब भक्ति की जिज्ञासा!
ऐसे इन अपूर्व सूत्रों का आज अंतिम दिन आ गया। सोचा, विचारा, पर उससे जिज्ञासा पूरी नहीं होती। जिज्ञासा तो तभी पूरी होती है जब रोम-रोम में समा जाए, धड़कन-धड़कन में धड़के, श्वास-प्रश्वास में डोले। इन सूत्रों पर विचार और मनन करके ही जो रुक गया, वह जल सरोवर के पास पहुंचा और प्यासा रह गया। ये सूत्र ऐसे हैं कि तुम्हारे जीवन को सदा-सदा के लिए तृप्त कर दें। इनकी महिमा अपार है। पर इनके हाथ में भी नहीं है कि यदि तुम सहयोग न करो तो तुम्हें तृप्त कर सकें। तुम्हारे सहयोग के बिना कुछ भी न हो सकेगा। तुम्हारी स्वतंत्रता परम है। तुम पीओगे, तो सरोवर काम आ जाएगा। तुम अकड़े खड़े रहे, किनारे पर ही खड़े रहे, तो भी सरोवर के बस में नहीं है कि तुम्हारे कंठ में उतर जाए।
बहुत लोग शास्त्रों से केवल शब्द ही ले पाते हैं। तो उन्होंने कुछ भी नहीं लिया। तो यात्रा व्यर्थ हो गई। वे चले ही नहीं। उन्होंने सिर्फ सोचा, सपना देखा चलने का। चलने के सपने से कोई यात्रा पूरी नहीं होती। चलना होता है, वस्तुतः चलना होता है।
और जीवन में चलने का क्या अर्थ होगा?
यही अर्थ होगा कि जो ठीक लगा, वह केवल बुद्धि में न रह जाए, परिव्याप्त
हो जाए समग्र जीवन पर। उसका स्वाद फैल जाए तन-मन-आत्मा में। उसका स्वाद तुम्हारे प्राणों को संगृहीत कर दे, तुम्हारे बिखरे टुकड़ों को जोड़ दे। उसके स्वाद का धागा तुम्हें माला बना दे--अनस्यूत हो जाए।
सूत्रों पर विचार करने का तो अंतिम दिन आ गया, लेकिन यह जिज्ञासा तो, शांडिल्य ने जो जिज्ञासा चाही थी, वह जिज्ञासा नहीं है। मैं जो जिज्ञासा चाहता हूं, वह जिज्ञासा नहीं है। यह तो दार्शनिक मनोमंथन हुआ। यह तो ऊहापोह हुआ। यह ऊहापोह शुभ है, यदि चला दे। अगर चलाए न, तो किसी काम का नहीं है। यह पुकार जो दूर से सुनाई पड़ी है, सदियों को पार करके आई है, इसे मैंने फिर से पुनरुज्जीवित किया। शांडिल्य को मौका दिया कि मुझसे फिर तुमसे बोल लें। शांडिल्य के शब्दों को फिर से जन्माया, निखारा, सदियों की धूल झाड़ी। लेकिन उससे काम पूरा नहीं हो गया। ऐसा मत समझ लेना कि तुम शांडिल्य को समझ गए। समझ से ही अगर काम पूरा होता तो विश्वविद्यालयों में ज्ञानियों का जन्म हो जाता। फिर पंडित प्रज्ञावान हो जाते। फिर बुद्धों में और पंडितों में भेद क्या होता?
पंडित तो तोते ही रह जाते हैं। तोता कितना ही राम-राम जपे, उसका हृदय
उस जपन में नहीं होता है। जप देता है, यंत्रवत। मगर उसे तुम भजन तो न कहोगे! प्रसिद्ध कथा है कि शंकराचार्य उस समय के प्रकांड पंडित मंडन मिश्र
से विवाद करने गए। मंडन मिश्र रहते थे मंडला में। मंडला का नाम ही मंडन के नाम पर पड़ा। जब शंकर वहां पहुंचे... शंकर तो युवा थे, मंडन की बड़ी ख्याति थी, शंकर को कोई जानता भी नहीं था... नगर के बाहर ही घाट पर पानी भरती स्त्रियों से उन्होंने पूछा कि मैं महापंडित मंडन मिश्र की तलाश में आया हूं, उनके घर का पता क्या है?
वे स्त्रियां हंसने लगीं, और उन्होंने कहा, मंडन मिश्र का घर भी पूछने
की कोई जरूरत है! तुम चले जाओ नगर में, जिस द्वार पर बैठे हुए तोते और

मैनाएं उपनिषदों के, वेदों के वचन दोहराते हों, समझ लेना कि वही मंडन मिश्र का घर है।
चमत्कृत शंकर गांव में प्रवेश किए। और निश्चित ही मंडन मिश्र के द्वार पर पक्षी शुद्धतम रूप में वेदों के वचन उद्धृत करते थे, उपनिषद दोहराते थे, गीता का गान करते थे। सैकड़ों विद्यार्थी आ-जा रहे थे। मंडन की ख्याति दूर-दिगंत तक थी। दूर-दूर देशों से विद्यार्थी उनके पास सीखने आते थे।
बहुत चकित हुए शंकर! और जब मंडन से मिले तो और भी चकित हुए। और उन्होंने मंडन से कहा, तुम्हारे द्वार पर ही तोते उपनिषद और वेद का पाठ नहीं करते, मैं तुम्हें भी देखता हूं कि तुम भी एक तोते हो। कंठ तक ही बात पहुंची है। बुद्धि तक बात पहुंची है, तुम्हारा हृदय अछूता है। तुम्हारा हृदय, तुम जो कह रहे हो, उसके पीछे नहीं है। यह तुम्हारे प्राणों का आविर्भाव नहीं है।
ऐसा ही समझो न, बाजार से एक प्लास्टिक का फूल लाकर तुम किसी वृक्ष पर टांग दो। शायद दूर से धोखा दे जाए कि असली फूल है, भ्रांति हो जाए। लेकिन पास आओगे तो समझ न पाओगे कि इस फूल में वृक्षों के प्राणों का संयोग नहीं है? वृक्ष की रसधार इस फूल में बहती नहीं है? वृक्ष की जड़ से यह फूल जुड़ा नहीं है?
ज्ञान अगर प्लास्टिक के फूल जैसा वृक्ष पर लटका हो, तो आदमी पंडित होता है। और जब असली फूल की भांति वृक्ष की ऊर्जा से जन्मता है, वृक्ष की रसधार उसमें बहती है, तब प्रज्ञावान होता है, तब बुद्धपुरुष होता है। शांडिल्य को तोतों की तरह याद मत रख लेना, अन्यथा इतनी अपूर्व यात्रा
की और कहीं न पहुंचे--सिर्फ सपना देखा। इतने महिमापूर्ण वचनों में गहरे गए, मगर कुछ गहराई न मिली, सिर्फ थोड़ा सा कूड़ा-कर्कट शब्दों का, सिद्धांतों का इकट्ठा हो गया। थोड़ा अहंकार और भर गया कि मैं जानता हूं। लेकिन जाना तो कुछ भी नहीं। इतना सस्ता तो जानना नहीं है। जानने में प्राण जोड़ने पड़ते हैं। अंतिम सूत्रों में प्राण जोड़ने की बात ही शांडिल्य ने कही है।
पहला सूत्र--
अनन्यभक्त्या तद्बुद्धिः बुद्धिलयात अत्यन्तम्।
"अनन्य अर्थात पराभक्ति से बुद्धि के अत्यंत लय होने से तन्मयी बुद्धि का उदय होता है।"
तन्मयी बुद्धि। बड़ा प्यारा शब्द उपयोग किया है! तुम जो जानते हो, जब तन्मय होकर जानोगे, जब वह तुम्हारा जानना होगा, निजी, जब तुम उसके गवाह हो सकोगे, जब तुम गवाही दे सकोगे कि हां, ऐसा है। अगर तुम कहते हो कि परमात्मा है, क्योंकि वेद कहते हैं, तो तुम तोते हो। अगर तुम कहते हो कि परमात्मा है, क्योंकि शांडिल्य कहते हैं, या मैं कहता हूं, तो तुम यंत्रवत हो। खोज करो उस दिन की, तलाशो उस क्षण को, जब तुम कह सकोगे कि मैं कहता हूं कि परमात्मा है, क्योंकि मैं कहता हूं! क्योंकि मैंने जाना! क्योंकि मैंने देखा! देखने से कम पर भरोसा मत कर लेना! सुनी बात दो कौड़ी की, देखी बात में ही सचाई होती है।
किसी ने कहा है, अब पता नहीं जान कर कहा हो, या उसने भी सुन कर कहा हो! कैसे निर्णय करोगे? फिर उसने जान कर ही कहा हो, तो जैसे ही जानने वाला कहता है, वैसे ही सुनने वाले के पास वही सत्य नहीं आता जो जानने वाला कहता है। सुनने वाले के पास शब्द आते हैं, सत्य नहीं आता।
मैंने प्रेम किया, मैंने प्रेम जाना, और मैं तुमसे प्रेम की बातें कहूंगा। तुम्हारे पास प्रेम नहीं पहुंचेगा, प्रेम नाम का शब्द भर पहुंचेगा। और तुम मुझे लाख सुनो, लाख समझो, और लाख सम्हाल कर रख लो, तो भी तुम प्रेम क्या है, यह न जान सकोगे। प्रेम के संबंध में जानना और प्रेम को जानना अलग-अलग बातें हैं। संबंध में जानना जानना है ही नहीं। संबंध का मतलब ही यह होता है कि तुमने जाना नहीं, ऐसे बाहर-बाहर घूमे, भीतर प्रवेश न किया, डरे-डरे रहे, जानने का साहस ही न किया।
अब प्रेम के संबंध में एक तो जानने का ढंग है कि किसी के प्रेम में पड़ जाओ। और एक ढंग है कि किसी ग्रंथालय में जाकर बैठ जाओ और प्रेम के संबंध

में जितने शास्त्र लिखे गए हैं उन सबको पढ़ डालो। उन शास्त्रों को पढ़ कर तुम भी शास्त्र रच सकते हो। उन शास्त्रों को पढ़ कर तुम भी पीएचड़ी. की थीसिस लिख सकते हो। लेकिन फिर भी तुमने प्रेम को नहीं जाना। प्रेम को जानने के लिए प्रेम करना जरूरी है। और जो तुम जानते हो, जब तन्मय होते हो, उसके साथ एकरस होते हो, एक भाव होते हो, जब तुम्हारा तादात्म्य होता है, जब जानने वाला और जानने में भेद नहीं होता--जब जानने वाला ही जानना हो जाता है--जब दोनों के बीच की सब सीमा, सब अंतराल खो जाता है, जब दोनों एक ही हो जाते हैं--अनन्यभाव हो जाता है--जब प्रेम और प्रेमी में जरा भी भेद नहीं होता, जब तुम प्रेमरूप होते हो, तब जानते हो। तब तुम्हारे भीतर प्रकट होता है जो छिपा था।
इन सूत्रों को सुना, सुन कर रुक मत जाना। इसलिए कहा भी नहीं था। इसलिए शांडिल्य ने भी इन्हें लिखा नहीं था। इसलिए मैंने भी इन्हें तुम्हारे सामने पुनः नहीं कहा है। सिर्फ इसीलिए कहा है कि इससे तुम्हारी प्यास प्रज्वलित हो। इससे तुम्हें एक याद आए कि ऐसा भी संभव है। बस इतना याद आ जाए कि ऐसा भी संभव है, सिर्फ तुम्हारे भीतर एक जिज्ञासा उमग आए। तुम्हारे भीतर एक बुझी हुई प्यास पड़ी है, सदियों से बुझी पड़ी है। तुमने उसे ढांक दिया है, क्योंकि वह प्यास खतरनाक है। उस प्यास के लिए दांव लगाना पड़ता है। तुमने उसे छिपा रखा है। तुमने उसकी जगह छोटी-छोटी प्यासें पैदा कर ली हैं।
विराट प्यास तो एक ही है मनुष्य के भीतर कि मैं जान लूं--सत्य क्या है?
या कहो परमात्मा, या कहो इस प्रकृति का रहस्य, कुछ भी नाम दो। गहनतम में, अंतर्तम में पड़ी तो एक ही जिज्ञासा है और एक ही खोज है, हर आदमी की, हर प्राण की, कि मैं जान लूं कि यह अस्तित्व क्या है? मैं आया कहां से? मैं जाता कहां हूं? मैं हूं कौन? मेरे होने का प्रयोजन क्या है? मेरे सारे जीवन की दौड़-धूप की निष्पत्ति क्या है? यह जन्म और मृत्यु के बीच जो फैला है जीवन, इसका प्रयोजन क्या है? इसकी अर्थवत्ता क्या है? मैं इस अर्थ को जान लूं। क्योंकि इस अर्थ को बिना जाने मैं जीऊंगा, तो मेरा जीना छिछला- छिछला होगा। इस अर्थ को बिना जाने मैं जो भी करूंगा, वह गलत ही होगा। क्योंकि जिसे अपने ही होने का पता नहीं, और अस्तित्व क्यों चल रहा है इसका पता नहीं, वह कैसे ठीक कर पाएगा? वह जो भी करेगा, वह अंधे के द्वारा अंधेरे में टटोलने जैसा होगा। भूल-चूक से शायद सत्य पर हाथ पड़ जाए, तो भी सत्य तुम्हारे हाथ नहीं आ पाएगा। हाथ पड़ भी जाएगा तो भी छूट जाएगा। तुम पहचान ही न पाओगे कि यह सत्य है। जिसको प्यास ही नहीं है, वह जल को कैसे पहचानेगा? और जो हीरों की खोज में नहीं गया है, वह हो सकता है हीरों की खदान पर भी पहुंच जाए, तो भी खाली हाथ ही आएगा, भिखमंगा ही लौट आएगा। जो खोजने गया है, जिसने बहुत सपने देखे हैं, बहुत गहन विचार किया है, जो तड़पा है रातों में, जो सोया नहीं, दिन हो कि रात जिसे एक धुन सवार रही है--कि जान लूं हीरे-जवाहरात कहां हैं? वह अगर पहुंच जाए तो शायद पहचान ले। इतनी प्रगाढ़ता से जिसने सपना देखा हो, उसे धीरे-धीरे पहचान की कला आ जाती है। तो इन सूत्रों को तुमने सुना है, बड़े प्रेम से सुना है, बड़े आह्लाद से सुना है, मगर उतने पर बात पूरी नहीं हो जाती, उतने पर शुरू होती है। तो हमने शुरू किया था अथातो जिज्ञासा से कि अब हम जिज्ञासा करें। और मैं चाहूंगा कि हम अंत भी इसी पर करें। क्योंकि अब एक दूसरे तल पर जिज्ञासा होगी, अस्तित्व के तल पर। एक जिज्ञासा होती है बौद्धिक, इंटलेक्चुअल; और एक जिज्ञासा होती है अस्तित्वगत, एक्झिस्टेंशियल। बुद्धि की जिज्ञासा आज पूरी होगी, अब अस्तित्व की जिज्ञासा शुरू करनी होगी।
पहला सूत्र कहता हैः "अनन्य अर्थात पराभक्ति से बुद्धि के अत्यंत लय होने से तन्मयी बुद्धि का उदय होता है।"
एक-एक शब्द समझना।
अनन्य! जब तक तुम्हारे और अस्तित्व के बीच जरा सा भी द्वेष है, जरा सी
भी दुविधा है, जरा सा भी द्वैत है, तब तक तुम जान न सकोगे। क्योंकि जानना अद्वैत में घटता है। जानने का एकमात्र ढंग प्रेम है। प्रेम के बिना कोई जानना नहीं होता। जानकारी होती है, जानना नहीं होता।

ऐसा समझो कि एक वनस्पतिशास्त्री इस बगीचे में आए, वृक्षों को देखे। जरूर बहुत उसकी जानकारी है, वह हर वृक्ष पर लेबल लगा सकता है कि इसका नाम क्या है, किस जाति का है, कितनी उम्र इसकी होती है, कब फूल लगेंगे, कब फल लगेंगे, लगेंगे कि नहीं लगेंगे, कितना ऊंचा जाएगा, यह सब बता सकता है। मगर यह सब जानकारी है। इस वृक्ष के साथ इसकी कोई अनन्य भाव-दशा नहीं है। इसने किताबों में पढ़ा है, यह पहचान लेता है कि जो किताबों में लिखा है वह इसी वृक्ष के बाबत लिखा है, इस वृक्ष के संबंध में दोहरा देता है।
एक कवि आए, एक प्रेमी आए, एक चित्रकार आए, उसके देखने का ढंग और है। वह
इस वृक्ष को देखे, वह इस वृक्ष को गले लगा ले, आलिंगन करे। वह इस वृक्ष के साथ मस्त हो जाए। इस वृक्ष की हरियाली में डूब जाए, इस वृक्ष की हरियाली को अपने में आमंत्रित कर ले। वह वृक्ष के पास बैठे, उठे, वह वृक्ष के साथ दोस्ती करे, मैत्री बनाए; कभी सुबह सूरज के ऊगते क्षण में वृक्ष को देखे, कभी सांझ सूरज के डूबते क्षण में वृक्ष को देखे, कभी चांदनी से भरी रात में, कभी तारों से भरी रात में; कभी अंधेरी अमावस में, कभी पूर्णिमा में; कभी वृक्ष मस्त है और कभी वृक्ष उदास है; और कभी वृक्ष आह्लाद में है और कभी वृक्ष बड़े विषाद में है; और कभी वृक्ष पर फूल खिले हैं और कभी वृक्ष के पत्ते भी गिर गए हैं और वृक्ष नंगा खड़ा है। कभी शीत है और कभी गर्मी है। वृक्ष की अनेक-अनेक भाव-भंगिमाओं को पहचाने, अनेक-अनेक मुद्राओं को पहचाने, वृक्ष के साथ मैत्री करे, वृक्ष से बतियाए, बातचीत करे, बोले, संवाद करे, तो एक और ढंग का जानना होता है, जिसको प्रेम के द्वारा जानना कहते हैं।
चीन के एक सम्राट ने एक बहुत बड़े झेन चित्रकार को कहा कि मुझे राजचिह्न के लिए एक मुर्गे की तस्वीर चाहिए। मगर तस्वीर ऐसी हो कि जैसी कभी किसी मुर्गे की न हुई हो। तो तुम यह तस्वीर बना लाओ। प्रसिद्ध चित्रकार था। उसने कहा, कोशिश करूंगा। सम्राट ने कहा, समय कितना लगेगा? उसने कहा कि कम से कम तीन वर्ष तो लग ही जाएंगे। सम्राट ने कहा, पागल हुए हो, एक मुर्गे की तस्वीर! उस चित्रकार ने कहा कि तस्वीर तो सेकेंडों में बन जाएगी, मगर तस्वीर बनाने के पहले मुझे मुर्गा बनना होगा। नहीं तो मैं मुर्गे को भीतर से कैसे पहचानूंगा? बाहर से तो अभी बना दूं। जिंदगी मेरी चित्र बनाते बीती है, अभी बना दूं। लेकिन वे लकीरें ही होंगी, उनमें मुर्गा नहीं होगा। ऊपर की रूपरेखा होगी।
यही तो फर्क है एक फोटोग्राफ में और एक चित्रकार के द्वारा बनाए गए चित्र में। कैमरा ऊपर की रूपरेखा पकड़ता है। बहुत लोग सोचते थे, जब कैमरा बन गया तो अब चित्रकार की कोई जरूरत न रह जाएगी। तुम चकित होओगे, जब से कैमरा बना है तब से चित्रकार की कीमत बहुत बढ़ गई। क्योंकि पहली दफे फर्क साफ हो गया कि कैमरा सिर्फ लकीरें खींचता है, बाहर की रूपरेखा। लेकिन अंतस्तल रह जाता है।
उस चित्रकार ने कहा कि तीन वर्ष तो मुझे लग ही जाएंगे। मुर्गों के साथ रहूंगा, मुर्गा बनूंगा, मुर्गे को भीतर से जानूंगा। जब मुर्गा सुबह बांग देता है, जब तक मैं भी वैसी बांग न दे सकूं, जब तक बांग मेरे भीतर से न उठ सके, तब तक मैं कैसे जानूंगा कि मुर्गे की शान क्या है, गरिमा क्या है, महिमा क्या है?
सम्राट कुछ राजी तो नहीं हुआ, तीन साल बहुत वक्त होता है। लेकिन उसने कहा, अच्छा ठीक है, तीन वर्ष सही!
एक वर्ष बाद उसने अपने आदमी भेजे कि पता लगाओ, उस पागल का क्या हुआ?
वे गए, उन्होंने देखा कि वह जंगल में सरक गया है। खोज-बीन की तो पता चला कि वह जंगली मुर्गों के साथ रह रहा है। वे गए भी तो उस चित्रकार ने उन्हें पहचाना भी नहीं। वह तो वैसे ही मुर्गों के बीच मुर्गा बन कर बैठा था, बांग दे रहा था। उन्होंने लौट कर कहा कि वह आदमी पागल हो गया है, अब आप प्रतीक्षा मत करो। अब वह आएगा नहीं। मुर्गा बनाने को कहा था उसे, वह खुद मुर्गा बन गया है। अब उससे क्या आशा है कि वह चित्र बनाएगा!
लेकिन तीन साल बाद चित्रकार लौटा। आकर उसने सम्राट के सामने ही मुर्गे की तस्वीर बना दी, सेकेंड लगे। कहते हैं, वैसी तस्वीर कभी नहीं

बनाई गई। तस्वीर सुरक्षित है अभी भी। और उस तस्वीर की सबसे बड़ी खूबी यह है कि मुर्गे भी उसे पहचान लेते हैं। और कोई तस्वीर तुम रख दो कमरे में, मुर्गा आएगा, ऐसे निकल जाएगा। मुर्गों को तस्वीर से क्या लेना-देना! लेकिन वह जो तस्वीर है, जो तीन साल चित्रकार ने मुर्गा बन कर बनाई है, मुर्गा आता है तो दरवाजे पर ठिठक जाता है। देखता है उसको, जीवंत है--डर भी जाता है, क्योंकि जंगली मुर्गे की तस्वीर है, जैसे अब बांग दी, तब बांग दी, बस अब बांग देने को ही है, जैसे सुबह होने को ही है।
यह एक और ढंग है जानने का। यह अस्तित्वगत ढंग है। जानकारी बाहर से मिल जाती है, जानना भीतर से करना होता है, एक तादात्म्य, एक अनन्यभाव। परमात्मा को कैसे जानोगे? शांडिल्य कहते हैंः अनन्यभाव से। परमात्मा
के साथ एकरूप हो जाना होगा। भक्त को भगवान और अपने बीच जरा सा भी फासला न रखना होगा। न जरा सी लाज, न जरा सा संकोच, न जरा सी लज्जा। मीरा जो कहती है, सब लोकलाज खोई, वह किसलिए? क्योंकि जरा सी ही लोकलाज रह जाए, तो उतना ही अंतराल रह जाता है, उतना ही फासला रह जाता है। प्रेम में हम सब फासले गिरा देते हैं। प्रेम में हम नग्न हो जाते हैं। प्रेम में वस्त्रों की जरूरत नहीं रह जाती। वस्त्र तो उनके लिए हैं जिनसे हमारा फासला है। वस्त्र तो उनके लिए हैं जिनसे हम कुछ छिपाना चाहते हैं। वस्त्र तो उनके लिए हैं जिनके सामने हम पूरे नहीं खुलना चाहते। परमात्मा के सामने तो भक्त को पूरा खुलना होगा, नग्न होना होगा। बुरा-भला जैसा है, सुंदर-कुरूप जैसा है, साधु-असाधु जैसा है, सब खोल कर रख देना है। सारे हृदय को खोल देना है।
सब तरह से अपनी अस्मिता को छोड़ देगा जो, वही अनन्यभाव को उपलब्ध होता है। जब तक अहंकार है, तब तक अनन्यभाव नहीं, तब तक अन्य भाव है।
इस पूरे दर्शन को ख्याल से समझ लो।
जब तक मुझे ख्याल है कि मैं हूं, तब तक मेरे और परमात्मा के बीच दूरी रहेगी।
जलालुद्दीन रूमी की प्रसिद्ध कविता है! एक प्रेमी ने अपनी प्रेयसी के द्वार पर दस्तक दी। प्रेयसी ने भीतर से पूछा, कौन है? और प्रेमी ने कहा, मैं हूं। क्या मेरे पगचाप तुझे सुनाई नहीं पड़े? क्या मेरे हाथ की दस्तक तू पहचान नहीं पाई? सन्नाटा हो गया भीतर। प्रेमी ने फिर द्वार खटखटाया कि बात क्या है? मैं आया हूं, तेरा प्रेमी। और प्रेयसी ने भीतर से कहा, इस घर में दो के रहने के लिए जगह नहीं। यह प्रेम का घर है, यहां एक ही हो सकता है, दो नहीं हो सकते।
कबीर ने कहा है न--स्मरण करो--प्रेम गली अति सांकरी, तामें दो न समाएं। वहां एक ही बन सकता है प्रेम की गली में। वहां दो का उपाय नहीं है, गली बड़ी संकरी है। जीसस का भी प्रसिद्ध वचन हैः स्ट्रेट इ.ज माई वे, बट इट इ.ज नैरो। सीधा है मेरा मार्ग, पर बड़ा संकीर्ण। और ईसाई सदियों से इसकी व्याख्या करते रहे हैं, और अड़चन में रहे हैं, कि संकीर्ण क्यों? उन्हें कबीर का वचन समझ में आ जाए तो जीसस के वचन का अर्थ समझ में आ जाए। संकीर्ण क्यों? सीधा है मेरा मार्ग और संकीर्ण। जीसस यह क्यों कहते हैं कि और संकीर्ण? बस इतने पर ही बात उन्होंने छोड़ दी है, आगे कुछ कहा नहीं।
कबीर के वचन में उसकी व्याख्या हैः प्रेम गली अति सांकरी, तामें दो न समाएं। संकीर्ण है मार्ग, क्योंकि वहां दो नहीं बन सकते, बस एक ही बन सकता है। एक के ही गुजरने का उपाय है। दो एक साथ नहीं गुजर सकते।
प्रेमी चला गया। वर्ष बीते। उसने अपने मैं को गलाया, फिर लौटा। द्वार
पर दस्तक दी। भीतर से फिर वही सवालः कौन? और इस बार उसने कहा, तू ही है। फिर द्वार खुले।
जिस दिन तुम कह सकोगे समग्र मन से कि तू ही है, उस दिन अनन्यभाव। उस दिन प्रेम का द्वार खुलता है। और प्रेम ही मंदिर है। और प्रेम के मंदिर में जो गया, वही परमात्मा में गया। और सब मंदिर थोथे हैं। और सब मंदिर तुम्हारे बनाए हुए हैं। और सब मंदिर खेल-खिलौने हैं। हिंदू का, मुसलमान का, ईसाई का, जैन का, बौद्ध का--वे सब राजनीतियां हैं, उनका कोई मूल्य नहीं। उनका धर्म की दृष्टि से कोई अर्थ नहीं है। धर्म की दृष्टि से तो एक ही मंदिर है, वह मंदिर प्रेम का है, अनन्यभाव का। फिर तुम कहां बैठ कर उसके

साथ एक हो गए, इससे कुछ फर्क नहीं पड़ता--काबा में, कि काशी में, कि कैलाश में। कहां बैठ कर तुमने अनन्यभाव को जगा लिया, कहां बैठ कर तुम उसके साथ डोलने लगे, मस्त हो गए, मदमस्त हो गए, कहां बैठ कर तुमने उसकी शराब पी ली, कहां बैठ कर तुमने अपने को खोल दिया, उसकी धार को बरस जाने दिया, उसके साथ नाच उठे--कोई फर्क नहीं पड़ता। किसी पवित्र स्थल पर जाने की कोई जरूरत नहीं है। जिस जगह अनन्यभाव हो जाएगा, वहीं तीर्थ बन जाते हैं। जिस व्यक्ति का अनन्यभाव हो जाता है, उसके पैर जहां पड़ते हैं, वहां तीर्थ बन जाते हैं। वह जहां बैठता है, वहां मंदिर उठ आते हैं।
अनन्यभाव। मैं अन्य नहीं हूं। तू अन्य नहीं है। मैं तेरी ही तरंग; मैं तेरा ही पत्ता, तू मेरा वृक्ष; मैं तेरी लहर, तू मेरा सागर; मैं तेरी एक अभिव्यक्ति, एक भाव-भंगिमा, एक मुद्रा। अनन्यभाव हो जाए तो बुद्धि अत्यंत लय हो जाती है। और तब तन्मयी बुद्धि का जन्म होता है।
जब तक तुम सोचते हो मैं अलग हूं, तब तक एक अहंकारी बुद्धि है। यह अहंकार ही तुम्हारी बुद्धि को छोटा बनाए हुए है। अन्यथा तुम्हारे पास जो बुद्धि है, वह उतनी ही विराट है जितनी परमात्मा की बुद्धि। तुम्हारे भीतर जो प्रतिभा है, वह परमात्मा की प्रतिभा है। लेकिन तुमने उसे बड़ा छोटा बना रखा है। तुमने उस पर बड़ी बागुड़ लगा दी है। तुमने बड़ी दीवाल उठा दी है। तुम दीवाल पर दीवाल उठाने में कुशल हो गए हो। हिंदू की दीवाल, मुसलमान की दीवाल, ब्राह्मण की दीवाल, शूद्र की दीवाल, और दीवाल पर दीवाल हैं। दीवालें ही उठाते गए हो। तुम कितनी हजारों दीवालों के पीछे दब गए हो! कितने सिकुड़ गए हो! फैलो! मगर फैलाव उसके साथ है। अहंकार तो छोटा ही होगा। ब्रह्म शब्द का अर्थ जानते हो? ब्रह्म शब्द का अर्थ हैः जो विस्तीर्ण है, जो फैला हुआ है। विस्तार शब्द भी, ब्रह्म जिस धातु से आता है, उसी से आता है। इसीलिए तो हम इस विश्व को ब्रह्मांड कहते हैं--जो फैला हुआ है। यह फैलता ही चला गया है। और यह हमारे रहस्यवादियों की जो अनुभूति थी, आधुनिक भौतिकशास्त्र इसके साथ सहानुभूति में है। पांच हजार साल पहले रहस्यवादी संतों ने कहा थाः यह ब्रह्मांड है। अर्थात यह फैलता हुआ विश्व है। और अभी इस सदी में अलबर्ट आइंस्टीन ने सिद्ध किया कि यह जगत जो है, थिर नहीं है। दिस इ.ज एन एक्सपैंडिंग यूनिवर्स। यह फैलता हुआ जगत है। यह रोज फैल रहा है, बड़ी गति से फैल रहा है। यहां सब चीज फैल रही हैं। बीज वृक्ष हो रहे हैं। बूंद सागर बन रही है। इस फैलते हुए जगत में तुम यह छोटा सा क्षुद्र अहंकार लिए बैठे हो! वही तुम्हारी अड़चन है, वही तुम्हारा नरक, वही तुम्हारी पीड़ा, वही तुम्हारा बंधन। उसी में तुम जकड़े हो।
तोड़ दो ये जंजीरें। और ये जंजीरें सिवाय दुख के और कुछ भी नहीं दे रही हैं। इनके तोड़ते ही तुम अचानक पाओगे, तुम्हारे भीतर प्रतिभा जन्मी। ऐसी प्रतिभा जो परमात्मा की प्रतिभा है। फिर तुम पर कोई सीमा नहीं है। और मैं तुम्हें तभी ब्राह्मण कहूंगा, जब तुम पर कोई सीमा न रह जाए। ब्राह्मण का अर्थ भी वही होता है, जिसने ब्रह्म को जाना। बुद्ध ने कहा है कि जो ब्राह्मण के घर में पैदा हुआ, उसको मैं ब्राह्मण नहीं कहता हूं। मैं उसे ब्राह्मण कहता हूं जो ब्रह्म को जाना।
ठीक परिभाषा की है।
किसी घर में पैदा होने से कोई कैसे ब्राह्मण होता है! पैदा तो सभी शूद्र की तरह होते हैं--ब्राह्मण भी। पैदा तो सभी शूद्र की तरह होते हैं।
शूद्र का अर्थ होता हैः क्षुद्र, सीमित, संकीर्ण। अहंकार शूद्रता की जड़ है। जो भी अहंकारी है, वह शूद्र है। और जो निर-अहंकारी है, वह ब्राह्मण है। निर-अहंकार अनन्यभाव है। अनन्यभाव में ब्राह्मणत्व है। तब तन्मयी बुद्धि पैदा होती है।
क्या है तन्मयी बुद्धि?
तन्मयी बुद्धि का अर्थ होता हैः अब मेरी बुद्धि तो गई, अब उसकी बुद्धि मेरे भीतर काम करना शुरू कर दी। जब बुद्ध बोलते हैं तो बुद्ध थोड़े ही बोलते हैं, ब्रह्म बोलता है। इसलिए तो हमने वेदों को अपौरुषेय कहा है-- पुरुष ने उन्हें नहीं रचा। पुरुष के द्वारा रचे गए हैं, लेकिन पुरुष उनका रचयिता नहीं है, सिर्फ लेखक है, माध्यम है।

इसलिए तो कुरान को हम इलहाम कहते हैं। उतरा। मोहम्मद पर उतरा, तो मोहम्मद माध्यम हैं, मीडियम हैं। मगर उतरा किसी अज्ञात लोक से। मोहम्मद ने सिर्फ हम तक उसे पहुंचा दिया। इसलिए मुसलमान मोहम्मद को पैगंबर कहते हैं--पैगाम पहुंचाने वाला; संदेशवाहक; पोस्टमैन। चिट्ठी परमात्मा की लिखी हुई है, पाती उसके घर से आई है, मोहम्मद उस पाती को हम तक पहुंचा दिए हैं, सिर्फ माध्यम हैं। जैसे बांसुरी से कोई ने गाया। बांसुरी नहीं गाती-- बांसुरी क्या गाएगी? बांसुरी तो बस पोला बांस है, उसमें कहां गान, कहां गीत? बांसुरी तो जड़ है। लेकिन किसी के ओंठों पर रख जाती है, बस फिर उससे गीत बहने लगता है।
ऐसे ही वेद के ऋषि हैं, ऐसे ही कुरान है, ऐसे ही बाइबिल है, ऐसे ही दुनिया के सारे अपूर्व धर्मशास्त्र हैं। बांस की पोंगरी। उनमें से परमात्मा बोला है।
तन्मयी बुद्धि का अर्थ होता हैः तुम गए, परमात्मा प्रविष्ट हुआ। तुमने जगह खाली कर दी। अहंकार से भरी बुद्धि विदा हो गई, अब विराट बुद्धि का अवतरण हुआ। तुमने अपने आंगन के चारों तरफ जो दीवाल खींच दी थी, वह गिरा दी। अब तुम्हारा आंगन आकाश हो गया। तन्मयी बुद्धि का वही अर्थ हैः आंगन को आकाश बना लेना है। और आंगन आकाश है, मगर तुमने एक छोटी सी दीवाल खींच रखी है। तुमने कुछ ईंट-पत्थर जोड़ कर एक दीवाल बना दी है। तुमने आकाश को खंड में तोड़ लिया है--जरा सा कर दिया, छोटा कर दिया। इतना विराट आकाश तुम्हारा हो सकता था।
स्वामी रामतीर्थ जब अमरीका गए, उनकी मस्ती लोगों की समझ में न आई। अपूर्व थी उनकी मस्ती--एक फकीर की मस्ती! पश्चिम से फकीर खो गया है। यहां भी खोता जा रहा है। क्योंकि मस्ती ही खोती जा रही है, क्योंकि तन्मयी बुद्धि खोती जा रही है। बांस की पोंगरियां रह गई हैं, गीत तो दिखाई नहीं पड़ता। रामतीर्थ की बांस की पोंगरी बांस की पोंगरी नहीं थी, बांसुरी थी, वेणु थी। उसमें से गीत उतर रहा था। जो भी उनके पास आते, देखते कि कुछ हो रहा है, कुछ घट रहा है--कुछ ऊर्जा, कुछ आभा! अंधों को भी दिखाई पड़ जाती। और बहरों को भी कुछ सुनाई पड़ जाती। और जो उनके पास आने की हिम्मत कर लेते, उनको थोड़ा रस भी लग जाता।
पूछा लोगों ने उनसे कि आपके पास कुछ दिखाई नहीं पड़ता, फिर आप इतने मस्त क्यों हैं? क्योंकि अमरीका तो एक ही भाषा समझता है--क्या तुम्हारे पास है? वही भाषा है। धन है तुम्हारे पास, तो तुम मस्त होने के अधिकारी हो। बड़ा मकान है, बड़ा पद है, प्रतिष्ठा है, तो तुम मस्त होने के अधिकारी हो। इस आदमी के पास कुछ भी नहीं है। ऐसा आदमी तो आत्महत्या कर लेता है। इतनी मस्ती किस कारण? तुम्हारे पास कुछ नहीं--मकान नहीं, पत्नी नहीं, धन-दौलत नहीं, कुछ भी नहीं--तुम मस्त क्यों हो रहे हो?
रामतीर्थ ने कहा, जो मेरे पास था, बहुत छोटा था। छोटे के कारण मैंने उसे छोड़ दिया। एक आंगन क्या छोड़ा, पूरा आकाश मेरा हो गया। एक घर क्या छोड़ा, सारे घर मेरे हो गए। इधर छोड़ना था कि उधर साम्राज्य हो गया मेरा। तब से मैं बादशाह हो गया हूं। लोग कहते हैं फकीर, और मैं हंसता हूं, क्योंकि मैं तब से बादशाह हो गया हूं।
वे अपने को बादशाह राम कहते थे। उनकी बड़ी प्रसिद्ध किताब हैः बादशाह राम के छह हुक्मनामे। बादशाह ही हुक्मनामे लिख सकता है। आज्ञाएं! थे भी बादशाह!
हर एक बादशाह होने को पैदा हुआ है, मगर फकीर, भिखमंगा रह कर हम मर जाते हैं। मांगते-मांगते ही जिंदगी चुक जाती है। तन्मयी बुद्धि हो जाए, तो बादशाहत मिल जाती है। तुम्हारी बुद्धि तुम्हारी दरिद्रता है। तुम दरिद्र ही रहोगे, याद रखना! तुम्हारे पास कितना ही धन हो, और कितना ही पद हो, और कितनी ही प्रतिष्ठा हो, तुम दरिद्र ही रहोगे। तुम्हारे होने में दरिद्रता छिपी है। तुम दरिद्रता का मूल कारण हो, मूल जड़ हो। तुम जाओ, तुम विदा हो जाओ। तुम अपने को नमस्कार कर लो। तुम अपने से हाथ जोड़ लो। जाओ नदी में सिरा दो अपने को, जैसे कभी-कभी तुम गणेशजी को सिरा आते हो। उस सिराने से कुछ भी न होगा। ये जो भीतर गणेशजी बैठे हैं--सूंड़ अहंकार की--इनको सिरा आओ। और उसी

दिन तुम पाओगेः तन्मयी बुद्धि का जन्म हुआ। आकाश मिला, विराट मिला, जिसकी कोई सीमा नहीं--अनंत और असीम।
"अनन्य अर्थात पराभक्ति से बुद्धि के अत्यंत लय होने से तन्मयी बुद्धि का जन्म होता है।"
और तन्मयी बुद्धि यानी बुद्धत्व।
कृष्ण का आश्वासन है गीता मेंः
दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया।
मामेकं ये प्रपद्यंते मायामेतां तरंति ते।।
"मेरी माया में बंधे हो तुम, किंतु मुझमें शरण लेते ही, अनन्य भक्ति के जन्मते ही माया से मुक्त हो जाओगे।"
दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया।
तुम मेरी माया की शक्ति में उलझ गए हो। तुमने मुझे देखा ही नहीं। तुम मेरे सेवकों में उलझ गए हो। तुमने मालिक नहीं देखा। तुम्हारी हालत ऐसी है जैसे तुम राजमहल गए और द्वारपाल को ही सम्राट समझ कर उसके पैर पकड़ लिए। द्वारपाल भी शानदार होता है, गर्वीला होता है, हाथ में उसके तलवार होती है, सुंदर उसकी वेशभूषा होती है, चमकदार बटन होते हैं उसके कोट पर, पालिश किए हुए जूते होते हैं--उसकी अकड़ देखते बनती है। सच तो यह है कि जमाना कुछ ऐसा बदला कि सम्राट तो सीधे-सादे वेशभूषा में रहने लगे हैं, द्वारपाल के पास ही चमकदार वेशभूषाएं रह गई हैं। अब सम्राट इतने बुद्धू नहीं हैं। अब तो द्वारपाल ही चमकदार बटनें लगाता है। मगर तुम एकदम झुक जाओगे। तुम उसके पैर पकड़ लोगे। और शायद समझोगे यही सम्राट है। तो तुम चूक गए। तो तुम दरवाजे पर ही अटक गए। इस जगत में तुमने अगर कोई भी चीज पकड़ ली है--धन, पद, प्रतिष्ठा--तो तुम द्वारपालों में उलझ गए।
दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया।
तुम मेरी दुष्परिहार्य माया में उलझ गए हो। तुमने मुझे देखा ही नहीं।
जो मेरी शरण आ जाता है।
मामेकं ये प्रपद्यंते मायामेतां तरंति ते।।
वह इस माया से तर जाता है। तुम जरा मेरी तरफ देखो, कृष्ण कहते हैं।
मालिक की तरफ देखो।
तुम उसकी साधारण शक्तियों में उलझ गए हो। शक्तियों के मूलस्रोत की तरफ देखो। उसकी शरण आ जाओ। तुम ऐश्वर्य में उलझ गए हो, ईश्वर की तरफ देखो, जो सारे ऐश्वर्य का मूलस्रोत है। उसके चरणों में गिर जाओ। उसके चरण में गिर जाने का नाम अनन्यभक्ति।
लेकिन हम क्षुद्र में उलझे हैं। हमारा प्रेम भी देह में उलझा है। हमारा प्रेम भी नाक-नक्शों में उलझा है। हमारा प्रेम भी बड़ा दयनीय है। मगर हम वहीं अपना गुणगान किए रहते हैं। सुनो--

अब तो नाकामी ही तकदीर बनी जाती है
जिंदगी दर्द की तसवीर बनी जाती है
तेरा मिलना ही था मेराजे-मोहब्बत लेकिन
तुझसे दूरी मेरी तकदीर बनी जाती है

है करिश्मा यह अनोखा शबे-महजूरी का
तीरगी सुबह की तनवीर बनी जाती है राहें मसदूद हैं, महदूद है दुनिया मेरी जिंदगी हल्काए-जंजीर बनी जाती है

महफिले-हुस्न की थी जहन में हलकी सी झलक वही फिरदौस की तस्वीर बनी जाती है कौन-सा राज है दिल का जो नहीं उन पे अयां खामोशी ही मेरी तकरीर बनी जाती है

आह की बे-असरी का भी मुझे होश नहीं

बे-खुदी जल्वाए-तासीर बनी जाती है
राजे-गम कैसे छुपाऊं कि खामोशी भी मेरी
मेरे एहसास की तफसीर बनी जाती है

साधारण प्रेम का लोग इतना गुणगान करते हैं कि उतना गुणगान अगर परमात्मा का करें, तो सब मिल जाए। कोई किसी की आंखों का दीवाना हो गया है, कोई किसी के नाक-नक्श का, कोई किसी के बालों के ढंग का, कोई किसी के बोलने की शैली का, कोई किसी की आवाज का, कोई किसी के चलने का, उठने का, बैठने का, कोई किसी के रंग का। तुम्हारी दीवानगी भी बड़ी अजीब है! तुम बड़ी छोटी बातों में उलझ जाते हो। और नाक कितनी ही सुंदर हो और ओंठ कितने ही रस भरे मालूम होते हों, सब मिट्टी है, और सब मिट्टी में ही गिरेगा और मिल जाएगा। सब मिट्टी से ही उठा है और सब मिट्टी में गिर जाने वाला है। और इस सारी मिट्टी के खेल के बीच परमात्मा भी छिपा है, मगर तुम बाहर-बाहर ही भटक जाते हो। तुम द्वारपाल में ही उलझ जाते हो।
तुमने जब किसी सुंदर स्त्री के मोह में अपने को बंधा पाया या सुंदर पुरुष के मोह में बंधा पाया, तब तुमने याद भी किया है कि तुमने उसके भीतर छिपे परमात्मा को देखा या नहीं? फिर अगर तुम दुखी होते हो तो आश्चर्य नहीं है। और अगर तुम्हारा प्रेम जंजीरें ढाल देता है तुम्हारे लिए तो आश्चर्य नहीं है। और अगर तुम्हारा प्रेम तुम्हारे लिए दुख के न मालूम कितने-कितने उपाय ले आता है तो आश्चर्य नहीं है! मूल भूल हो गई। तुमने मालिक को नहीं पहचाना। तुम केवल मालिक के कपड़ों से उलझ गए। परमात्मा का यह सारा जगत उसके वस्त्र हैं, उसकी अभिव्यक्ति है। तुम इसी में मत खो जाना। यह अभिव्यक्ति सुंदर है, मगर उसके मुकाबले क्या जो इसका मालिक है!
सूफी फकीर स्त्री राबिया अपने झोपड़े में बैठी सुबह ध्यान करती थी। मस्त थी! होगी अनन्यभक्ति में। जगी होगी तन्मयी बुद्धि। उसके घर एक फकीर और ठहरा हुआ था--हसन नाम का फकीर। वह उठा, वह बाहर आया। सूरज निकलता था, सूरज की लाली पूरब पर फैली थी, पक्षी उड़ते थे, गीत गाते थे, वृक्ष जाग रहे थे; सुंदर सुबह थी, सुहानी सुबह थी, बड़ी मदमाती सुबह थी। हसन ने जोर से पुकारा कि राबिया, तू भीतर कोठरी में बैठी क्या करती है? बाहर आ! बड़ी सुंदर सुबह पैदा हो रही है। बड़ा प्यारा सूरज निकल रहा है। पक्षी गीत गा रहे हैं, वृक्ष जागे हैं, फूल खिले हैं। हवाओं में बड़ी मदमाती गंध है। तू बाहर आ! हसन ने सोचा भी नहीं था, राबिया तो बाहर न आई, भीतर से खिलखिलाने की आवाज आई। और राबिया ने कहा, हसन, तुम कब तक बाहर भटकते रहोगे? सुबह सुंदर है, मगर मैं सुबह बनाने वाले को भीतर देख रही हूं; तुम्हीं भीतर आ जाओ। बाहर सुंदर होगा, जरूर सुंदर है--क्योंकि जिसने बनाया वह सुंदर है। मूर्ति जब इतनी सुंदर है तो मूर्तिकार कितना सुंदर न होगा! फूल जब इतने सुंदर हैं तो वह चितेरा कितना सुंदर न होगा जिसने फूल रचे! चांद-तारे जब इतने सुंदर हैं तो जरा हस्ताक्षर तो खोजो, किसके हस्ताक्षर हैं इनके ऊपर? उस मालिक की तलाश करो।
माया में मत उलझो, जागो! माया के भीतर कौन खड़ा है? इस जादू में मत पड़ जाओ, जादूगर को तलाशो। मगर नहीं, हम उलझे ही रहते हैं। एक आशा टूटती है, हम दूसरी बना लेते हैं। उम्मीद पर उम्मीद जन्माते चले जाते हैं।

शमएं बुझीं, फलक से सितारे चले गए
उनसे बिछुड़ के सारे सहारे चले गए
मौजे-बलाओ-शोरिशे-तूफां का क्या गिला
पास आके और दूर किनारे चले गए
कैसी बहार, कैसा चमन और कहां के फूल
तुम क्या गए ये सारे नजारे चले गए
तुम यूं गए कि मुड़के भी देखा न एक बार
हम अश्कबार तुमको पुकारे चले गए
मामूर कर दिया था जिन्हें तुमने हुस्न से रातें गईं, वो चांद-सितारे चले गए

बे-आसरा खुदा न करे यूं भी कोई हो
एक-एक करके सारे सहारे चले गए
"नुद्रत" कभी तो आएगा दौरे-बहार भी
इस आरजू में वक्त गुजारे चले गए

बस लोग गुजार रहे हैं वक्त इसी आरजू में कि आता ही होगा वह क्षण तृप्ति का, आनंद का। इस स्त्री से नहीं मिला, किसी और स्त्री से मिलेगा। इस पद पर नहीं मिला, किसी और पद पर मिलेगा। इस गांव में नहीं तो किसी और गांव में, इस घर में नहीं तो किसी और घर में--मिलेगा जरूर।
"नुद्रत" कभी तो आएगा दौरे-बहार भी
बसंत कभी तो आएगी।
इस आरजू में वक्त गुजारे चले गए
इसी उम्मीद में, इसी आशा में लोग समय गुजार रहे हैं। मौत आती है, और कुछ भी नहीं आता। आखिर हाथ में मिट्टी आती है, और कुछ भी नहीं आता। सभी अंततः कब्रों में गिर जाते हैं। हम जिंदगी भर अपनी कब्र खुद ही खोदते हैं। और अगर हमने मालिक को देखा होता तो सारी बात बदल जाती।
अनन्य भक्ति से बुद्धि का आत्यंतिक लय हो जाता है। और बुद्धि के आत्यंतिक लय से परमात्मा का साक्षात्कार हो जाता है। भक्त उसी साक्षात्कार को मोक्ष कहते हैं। वही निर्वाण है। मैं का मिट जाना निर्वाण है। परमात्मा परिपूर्ण रूप से तुम्हारे भीतर रह जाए और तुम न रहो, तुम सारी तरह से हट जाओ, तुम्हारी छाया भी न बचे--वही मोक्ष है।
आयुः चिरम इतरेषां तु हानिः अनास्पदत्वात्।
"साधारण जीवों की आयु प्रारब्ध भोग करने के अर्थ ही है, परंतु भक्तों
की आयु भोग के कारण न होने से उनके संचित कर्म आप ही नष्ट हो जाते हैं।" दूसरा सूत्र। महत्वपूर्ण सवाल है और अंत में उठाने जैसा भी है। जब कोई भक्त अनन्यभाव को उपलब्ध हो जाता है, तन्मयी बुद्धि का जन्म हो जाता है--तो शांडिल्य से पूछा होगा किसी शिष्य ने, उसी के उत्तर में कह रहे हैं-- फिर भी शरीर में रहता क्यों है? क्योंकि शरीर तो है ही इसीलिए कि हमारी वासनाएं हैं। शरीर तो है ही इसीलिए कि हमारा अहंकार है। बुद्ध को ज्ञान हुआ, उसके बाद भी चालीस वर्ष शरीर में रहे, क्यों रहे? यह भी प्रश्न उठता रहा है। हम शरीर में इसलिए हैं कि हमारी वासनाएं हैं। हम शरीर में इसलिए हैं कि हमने क्षुद्र के साथ अपना संबंध बनाया है। लेकिन जिसका क्षुद्र से संबंध टूट गया, उसका शरीर से संबंध क्यों नहीं टूट जाता? वह विराट में लीन क्यों नहीं हो जाता है? फिर रुका क्यों रहता है? फिर कौन सी बात रोकती है? सब वासना गई, अहंकार गया, अपनी बुद्धि गई; आंगन आकाश हो गया, बूंद सागर हो गई, व्यक्ति समष्टि हो गया; फिर अब कौन उसे रोके हुए है? भक्त फिर क्यों जीता है? फिर भक्त जीवन-मुक्त की तरह कुछ देर रुकता है--कुछ वर्ष रुक सकता है--यह कैसे होता होगा?
शांडिल्य कहते हैंः साधारणतः हम शरीर में इसीलिए होते हैं कि हमारी वासनाएं हैं। वासना के कारण ही जन्म है। वासना न हो तो शरीर में होने का कोई कारण नहीं। लेकिन भक्त जब अनन्य बुद्धि को उपलब्ध होता है, तो उसके सारे कर्म क्षय हो जाते हैं, उसका अहंकार समाप्त हो जाता है, लेकिन उसकी शरीर की आयु तो इस अनन्यभाव के पहले ही निर्धारित हो चुकी थी। जिस दिन तुम पैदा हुए, उस दिन तुम्हारे शरीर की आयु निर्धारित हो गई। इस निर्धारण का अर्थ इतना ही होता है, तुम्हारी मां, तुम्हारे पिता, उनके बीजाणु, उनके माध्यम से तुम्हें जो शरीर मिला है, उसकी उम्र तय हो गई कि तुम सत्तर साल जीओगे, कि अस्सी साल जीओगे! फिर समझो चालीस साल की उम्र में या तीस साल की उम्र में या पचास साल की उम्र में तुम ज्ञान को उपलब्ध हो गए। तुम्हारे सारे कर्म झड़ गए। शरीर में रहने का कोई कारण न रह गया। लेकिन शरीर की अपनी उम्र है। शरीर की उम्र समाप्त नहीं होती अनन्य बुद्धि से, अनन्यभाव से। शरीर का उससे कोई संबंध नहीं है।
तुम ऐसा ही समझो कि तुम साइकिल चला रहे हो। तुम पैडल मारते आ रहे हो कई मीलों से। फिर तुम्हारी इच्छा चली गई कि अब साइकिल नहीं चलानी है। तुमने

पैडल मारने बंद कर दिए। लेकिन साइकिल पुराने मोमेंटम के कारण थोड़ी दूर चली जाएगी। और अगर उतार होगा तो काफी दूर भी जा सकती है। चढ़ाव होगा तो शायद उतनी दूर न जा सके, उतार होगा तो ज्यादा दूर जा सकती है। लेकिन इतना तो तय है कि पैडल न मारते ही साइकिल नहीं रुकती। क्योंकि इतने जन्मों तक तुमने जो पैडल मारे हैं, उनकी एक अपनी ऊर्जा पैदा हो गई है। वह ऊर्जा साइकिल को कुछ देर तक खींचे ले जाएगी।
भक्त भी परमात्मा में पूरी तरह लीन होकर थोड़े दिन, थोड़े वर्षों शरीर में रुका रह जाता है। अब शरीर में रहता नहीं, अब शरीर में अपने को सीमित नहीं मानता, अब शरीर उसका अंत नहीं है, लेकिन फिर भी शरीर में होता है। भाव-दशा बदल गई, मैं-भाव न रहा। सच तो यह है कि अब यह शरीर मेरा है, यह भाव भी नहीं है। अब तो शरीर में परमात्मा ही रहता है।
एक बड़ी प्यारी घटना है। रामकृष्ण की किसी ने तस्वीर उतारी। और जब तस्वीर बन कर आई और रामकृष्ण के सामने रखी गई तो रामकृष्ण उस तस्वीर के पैर पड़ने लगे। उन्हीं की तस्वीर थी! उसे सिर से लगाने लगे। जो उनके विरोधी थे उन्होंने तो कहा कि हम जानते हैं कि यह आदमी पागल है। अपनी तस्वीर कोई सिर से लगाता है! अपने पैर कोई छूता है! जो उनके शिष्य थे उनको भी जरा पीड़ा हुई कि यह हमारा गुरु क्या कर रहा है? लोग क्या कहेंगे? किसी शिष्य ने कहा कि परमहंस देव, आप यह क्या कर रहे हैं, होश में हैं? यह आपकी ही तस्वीर है, इसके आप पैर छू रहे हैं! अपने पैर खुद छू रहे हैं!
रामकृष्ण ने कहा, अरे भली याद दिलाई! मैं तो भूल ही गया था कि यह मेरी तस्वीर है। क्योंकि अब तो उसकी ही तस्वीर सब तस्वीरों में है। मैं तो उसके ही चरण छू रहा था। मैं तो हूं कहां? अब तो जो भी है, वही है। और फिर यह बड़ी परम समाधि अवस्था की तस्वीर है, मैं तो बड़ा तल्लीन हो गया था। यह तस्वीर किसी की भी हो, मगर है समाधि की, अनन्यभाव की, तन्मयी बुद्धि की; मैं तो उसी तन्मयी बुद्धि को नमस्कार करने लगा।
ठीक कहते हैं रामकृष्ण।
अष्टावक्र ने कहा है कि जब कोई परम अनुभूति को उपलब्ध होता है तो बारंबार स्वयं को ही नमस्कार करता है।
क्यों स्वयं को नमस्कार करेगा? विक्षिप्तता है क्या यह? लेकिन स्वयं रहा नहीं है। अब तो सब जगह परमात्मा है, अपने भीतर भी। इसलिए भक्त अपनी देह को भी बड़ा सम्मान करता है। और अगर तुम्हारी भक्ति के अंत में देह का सम्मान न आए, अपमान आ जाए, तो समझना कहीं भूल हो गई, कहीं चूक हो गई। भक्त तो अपनी देह को भी परमात्मा की ही देह मानता है। यह उसी का मंदिर है। इस देह को सताता नहीं। इसलिए भक्तों ने देह को सताया नहीं है। और जिन्होंने देह को सताया है, वे विक्षिप्त हैं, वे रुग्ण हैं, मनोरोग से ग्रस्त हैं। जिसने सबके भीतर परमात्मा को देख लिया, क्या बस अपने भीतर नहीं देखेगा, और सबके भीतर देख लेगा? जिसने सबके भीतर देख लिया, उसने अपने भीतर भी देख लिया। वस्तुतः जिसने अपने भीतर देखा, उसी ने सबके भीतर देखा। पहले तो अपने भीतर ही देखना घटता है।
फिर जब तक शरीर की आयु है, तब तक शरीर चलता चला जाता है।
तुम्हें याद नहीं है कि तुम कितने जन्मों से शरीर की वासना करते रहे हो। उस वासना ने बड़ा मोमेंटम, बड़ी शक्ति संगृहीत कर ली है। तुम भूल ही गए हो। इसलिए जब ज्ञान को उपलब्ध होओगे तब भी कुछ वर्षों तक जीवन-मुक्त की दशा रहेगी। फिर परम मुक्ति। फिर देह विसर्जित हो जाएगी। फिर दुबारा देह में आना नहीं है। स्मरण तुम्हें नहीं है, यह सच है।
मैंने सुना है, पति-पत्नी को लड़ते-झगड़ते घंटों गुजर गए थे। तो एक महाशय ने उनसे जाकर पूछा, आखिर आपके झगड़े का कारण क्या है? पतिदेव ने अपनी पत्नी की तरफ इशारा करते हुए झल्ला कर कहा, यह तो देवी जी से ही पूछ लीजिए। देवी जी ने छाती पीट ली और कहा, तीन घंटे से अधिक हो गए हैं झगड़ते हुए, इतनी देर तक क्या मुझे याद रहेगा कि क्यों लड़ रही थी?
तीन घंटे पहले जो लड़ाई शुरू हुई थी--और लड़ाई अक्सर व्यर्थ बातों पर शुरू होती है। याद रखने योग्य बातें भी कहां होती हैं? बताने योग्य भी कहां होती हैं? मेरे पास पति-पत्नी कभी झगड़ कर आ जाते हैं--अक्सर रोज ही

कोई आ जाता है। तो मैं पूछता हूं, कारण क्या? तो वे एक-दूसरे की तरफ देखते हैं, क्योंकि कारण जो बताए वह बुद्धू मालूम होता है! कारण इतने क्षुद्र हैं, कारण जैसा कुछ है नहीं! शायद लड़ना था, यही कारण है; बाकी तो कोई भी बहाना खोज लिया है। बिना लड़े नहीं चलता है। लड़ने की एक सुगबुगाहट है। लड़ने की एक खुजलाहट है। बिना लड़े मजा नहीं आता है। बिना लड़े अपनी ताकत का पता नहीं चलता। पति-पत्नी तौलते रहते हैं, कौन ज्यादा ताकत में है! बहाना कोई भी होता है फिर--कि चाय जरा ठंडी थी, कि रोटी जरा जल गई थी, कि तुम इतनी देर से घर क्यों आए, कि दफ्तर में काम नहीं था, मैंने फोन करके पूछा था, कि दफ्तर में तुम थे भी नहीं।
मुल्ला नसरुद्दीन एक सांझ अपने घर आया। रोज आता था तो यही झगड़ा होता था। कुछ भी बहाना बताए, उसकी पत्नी कहती थी--तुम जरूर किसी स्त्री के पीछे पड़े हो। आज सोच कर आया कि अब झगड़े का कारण समाप्त ही कर दूंगा, मैं खुद ही कह दूंगा। आते से ही उसने कहा कि भई, इसके पहले कि तू कुछ शुरू करे, मैं रास्ते पर जा रहा था, एक स्त्री ने इशारा किया। सुंदर स्त्री थी। अब तू तो मुझे जानती ही है कि मेरी नजर तो खराब, मैं उसके पीछे हो लिया। उसकी पत्नी ने कहा कि बंद करो यह बकवास! तुम सरासर झूठ बोल रहे हो। मैं पता कर ली हूं सब कि तुम जुआघर से आ रहे हो, जुआ खेल कर आ रहे हो।
झगड़ा इस पर शुरू हुआ। अगर वह खुद ही कह रहा है कि किसी स्त्री के पीछे चला गया था, अब वह झगड़े की बात ही न रही, उसमें कोई सार ही न रहा। वह बेकार हो गई बात। जुआघर से आ रहे हो।
मैंने यह भी सुना है कि उसकी पत्नी रोज उसके कपड़े देखती है, उसमें खोजती है, एकाध बाल मिल जाए--जो कि मिल ही जाता है--तो बस झगड़ा शुरू हो जाता हैः कि तुम किस स्त्री के पीछे पड़े हो? यह किस स्त्री का बाल है? एक दिन वह घर आया और उसने सब तरह से बाहर घंटे भर खड़े होकर सब कपड़े झाड़े, पोंछे, बिल्कुल साफ-सुथरा होकर आया। पत्नी को कोई बाल न मिला, वह एकदम छाती पीट कर रोने लगी कि यह तो हद्द हो गई, पत्नी ने कहा, कि अब तुम गंजी स्त्रियों के पीछे भी जाने लगे!
बहाना कोई न कोई चाहिए। अब गंजी स्त्रियां साधारणतः होतीं नहीं, बहुत मुश्किल मामला है गंजी स्त्री खोजना। मगर खोजो तो मिल ही सकती है! हर चीज मिल सकती है खोजने से। गंजी स्त्री भी मिल सकती है। गंजी स्त्री के प्रेम में कौन पड़ेगा, यह भी जरा सोचने जैसा है! मगर यह सवाल नहीं है। बहाना कोई भी, निमित्त कोई भी, झगड़ा उठ आना चाहिए।
आदमी जन्मों-जन्मों से ऐसी क्षुद्र बातों से उलझा रहा है कि उसे याद
भी नहीं रहा है कि कहां-कहां हमने क्षुद्रता को कितना मूल्य देकर बहुमूल्य बना दिया है। देह को हमने इतना चाहा है! हमारे सारे सुख देह के सुख हैं, इसलिए हमने देह को चाहा है। जिसको भोजन में सुख है, बिना देह के भोजन का सुख तो नहीं मिल सकता। जिसको अच्छे सुंदर वस्त्र पहनने का सुख है, बिना देह के वस्त्र तो नहीं पहने जा सकते। जिसको रूप का सुख है, बिना आंख के रूप तो नहीं हो सकता। जिसे स्वर का सुख है, बिना कान के स्वर तो नहीं हो सकता। हमारे सारे सुख पांच इंद्रियों पर निर्भर हैं और पांचों इंद्रियां शरीर से जुड़ी हैं। इसलिए हमने जन्मों-जन्मों से कोई भी सुख चाहा हो, शरीर को चाहा है। शरीर बना रहे, इसकी चेष्टा की है, आकांक्षा की है। और जो हमने आकांक्षा की है, वह पूरी हो जाती है। जानने वाले इसलिए कहते हैंः आकांक्षा बहुत सोच कर करना, क्योंकि खतरा है, कहीं पूरी न हो जाए!
तो जन्मों-जन्मों तक हमने शरीर को पैडल मारा है। फिर एक दिन क्रांति
का क्षण आता है, सारे जीवन का विषाद सघन होते-होते, होते-होते एक ऐसी घड़ी आ जाती है जब फल पक जाता है और गिर जाता है, और हमें दिखाई पड़ता है--यह सब व्यर्थ था। एक क्षण में अहंकार टूटता है और हम अनन्यभाव को उपलब्ध हो जाते हैं। उस भाव-दशा में भी शरीर चलता रहेगा। शरीर को खबर जरा देर से लगती है। खबर लगते ही लगती है। शरीर बड़ा स्थूल है। उसकी बुद्धि भी बहुत बुद्धि नहीं है। बड़ी स्थूल और बड़ी अविकसित बुद्धि है शरीर के पास। उस तक खबर आते-आते वर्षों लग जाएंगे। और उतनी देर भक्त जीवित रहता है। लेकिन अब जीवन की चर्या और होती है। इस चर्या को ही ब्रह्मचर्य कहा है। ब्रह्मचर्य का अर्थ

हैः ईश्वर जैसी चर्या। अब वह ईश्वर होकर जीता है। अब भक्त नहीं रह जाता, अब भगवान होकर जीता है।
संसृतिः एषाम अभक्तिः स्यात न अज्ञानात कारणसिद्धेः।
"जीव अज्ञान के कारण संसार-बंधन में पड़ा है, यह धारणा ठीक नहीं है, क्योंकि इस कारण का अस्तित्व सिद्ध नहीं होता। जीव का संसार-बंधन भक्तिहीनता के कारण ही है।"
यह सूत्र अपूर्व है! अति बहुमूल्य है! खूब गहरे में ग्रहण करने योग्य है। बार-बार मनन करने योग्य, बार-बार सेवन और भजन करने योग्य है। इसे समझ लेना, इस पर पूरा भक्ति का शास्त्र खड़ा हुआ है। यह आधारभित्ति है। संसृतिः एषाम अभक्तिः स्यात न अज्ञानात कारणसिद्धेः।
लोग कहते हैं साधारणतः कि मनुष्य संसार में पड़ा हुआ है अज्ञान के कारण। शांडिल्य कहते हैंः यह बात सच नहीं है। यह बड़ी हिम्मत की बात कहते हैं वह। क्योंकि आमतौर से यही समझा जाता है, तुम्हारे साधु-संन्यासी तुम्हें यही समझाते रहते हैं कि अज्ञान के कारण आदमी संसार में पड़ा है। शांडिल्य कहते हैंः अज्ञान का तो अस्तित्व ही सिद्ध नहीं होता, उसके कारण कोई पड़ेगा कैसे? अज्ञान तो अंधेरे जैसा है। अंधेरे का कोई अस्तित्व है? अंधेरा दिखाई पड़ता है, मगर उसका कोई अस्तित्व नहीं है। इसीलिए तो तुम अंधेरे को धक्का देकर बाहर नहीं निकाल सकते। अगर अस्तित्व होता, तो गांव से गुंडों को इकट्ठा कर लेते, जैसा राजनीतिज्ञ कर लेते हैं, और धक्का दिलवा कर अंधेरे को बाहर कर देते। या तलवारें ले आते, अंधेरे को काट डालते। या बंदूकें ले आते और अंधेरे को डरा देते। कोई न कोई उपाय कर लेते। लेकिन अंधेरे को तुम धक्का देकर निकाल नहीं सकते। बड़े से बड़े पहलवानों को इकट्ठा कर लो तो भी तुम्हीं हारोगे और तुम्हारे पहलवान हारेंगे।
अंधेरा है ही नहीं, तुम किससे लड़ रहे हो? अभाव से लड़ रहे हो! अंधेरे का कोई भाव नहीं है। अंधेरे का कोई पाजिटिव एक्झिस्टेंस, कोई विधायक अवस्था नहीं है। अंधेरा तो केवल प्रकाश का अभाव है। इसलिए अंधेरे से लड़ने वाला मूढ़ है।
जो आदमी अज्ञान तोड़ने में लगा है, वह मूढ़ है। अज्ञान में जो उलझ गया,
कि अज्ञान से मुक्त होना है, वह पंडित हो जाएगा, बस और कुछ नहीं होगा। अज्ञान रहेगा, शब्दों के जाल में छिप जाएगा। अज्ञान वहां का वहां रहेगा। पांडित्य से अज्ञान अलग नहीं हो सकता। पांडित्य से अज्ञान अलग करने की कोशिश ऐसे ही है जैसे पहलवानों को और गुंडों को इकट्ठा करके अंधेरे को निकलवाने की कोशिश।
समझदार व्यक्ति अंधेरे से लड़ता नहीं, दीया जलाता है। अंधेरे की बात
ही नहीं करता, दीया जलाता है। दीया के जलते ही अंधेरा चला जाता है। प्रकाश का अस्तित्व है। इसलिए हम प्रकाश के साथ कुछ कर सकते हैं। अगर हमें अंधेरे के साथ भी कुछ करना हो, तो हमें प्रकाश के साथ ही कुछ करना पड़ेगा। अगर अंधेरा लाना हो तो भी ला नहीं सकते, पड़ोसियों से मांग नहीं सकते कि भाई, थोड़ा अंधेरा दे दो। आज हमारे घर में अंधेरा कम है और मुझे सोना है। हम पोटलियां बांध कर अंधेरा ला नहीं सकते, बाजार से खरीद नहीं सकते अंधेरा। कोई हमें अंधेरा दे नहीं सकता। क्यों? क्योंकि अंधेरा है ही नहीं, पोटलियों में बांधोगे क्या? पड़ोसी देना भी चाहें तो क्या देंगे? अंधेरे को लाना हो तो प्रकाश को बुझाना पड़ता है, बस, और कुछ नहीं कर सकते तुम। दीये को फूंक दो, अंधेरा आ गया। और अंधेरे को हटाना हो, दीये को जला दो, और अंधेरा गया। इस बात को ख्याल रख लेना, केवल विधायक के साथ कुछ किया जा सकता है। नकारात्मक के साथ कुछ भी नहीं किया जा सकता।
शांडिल्य कहते हैंः लोग कहते हैं कि जीव अज्ञान के कारण संसार-बंधन में पड़ा है, यह धारणा गलत है। क्योंकि अज्ञान का अस्तित्व ही सिद्ध नहीं होता। अज्ञान तो अंधेरा जैसा है। तो फिर आदमी क्यों संसार में पड़ा है? प्रकाश के अभाव के कारण। अंधेरे के भाव के कारण नहीं, प्रकाश के अभाव के कारण। प्रकाश नहीं है, इसलिए। और प्रकाश पैदा होता है अनन्यभाव से। तुम अंधेरे हो, तुम नकारात्मक हो, परमात्मा से जुड़ते ही तुम विधायक हो जाते हो।

"जीव का संसार-बंधन भक्तिहीनता के कारण है।"
इसलिए मैं कहता हूं, यह मूल आधारभित्ति है। शांडिल्य ने भी खूब अंत तक आधारभित्ति को नहीं कहा! अब तुम समझ सकोगे। इतने सारे सूत्रों को समझने के बाद यह गहरी बात कही जा सकती है। प्रतीक्षा की होगी इस बात को कहने के लिए, कि जब तुम तैयार हो जाओ, जब पूरी भूमिका बन जाए, तब यह घोषणा की जाए। यह घोषणा बहुमूल्य है। भक्ति का अभाव, अनन्यभाव का अभाव, तन्मयी बुद्धि का अभाव।
बुद्धि अंधकार है। मेरी बुद्धि अंधकार है। मैं गया, मेरी बुद्धि गई, उसकी बुद्धिमत्ता उतरी--वही प्रकाश है। तुम अज्ञान के कारण नहीं उलझे हो। और अगर तुम सोचते हो कि अज्ञान के कारण उलझे हो, तो फिर एक ही उपाय रह जाता है--ज्ञान इकट्ठा करो। ज्ञान का कचरा इकट्ठा करते रहो। वही लोग कर रहे हैं। बड़ा पांडित्य फैला हुआ है। और उस पांडित्य से जरा भी, इंच भर भी अंधेरा नहीं कटता। कट ही नहीं सकता। सिर्फ अनन्यभाव से कटता है, सिर्फ परमात्म-भाव से कटता है। परमात्मा की ज्योति के साथ अपने को जोड़ दो। उसकी ज्योति के साथ ही ज्योतिर्मय हो जाओगे।
त्रीणि एषां नेत्राणि शब्दलिंगाक्षभेदात रुद्रवत्।
"महादेव की भांति शब्द, लिंग और अक्ष, ये तीन नेत्रों द्वारा जीव जान लेता है।"
एक-एक सूत्र बहुमूल्य होता जा रहा है! यह निन्यानबेवां सूत्र है, अब
एक सूत्र ही और बचा। अट्ठानबेवां सूत्र आधारभूत। अब निन्यानबेवां सूत्र... अंतिम वक्तव्य दे रहे हैं शांडिल्य। जैसे कोई चित्रकार आखिरी टच चित्र को देता है। सब तरह पूरा हो गया, बस जरा सा कहीं एक रेखा, और जरा सा कहीं रंग, जरा सी गहराई कहीं, जरा सा इशारा कहीं--आखिरी स्पर्श तूलिका का! "महादेव की भांति... "
तुमने कहानी सुनी है महादेव के तीन नेत्रों की। वह तुम्हारी ही कहानी है, वह प्रत्येक व्यक्ति की कहानी है। तुम्हें पता नहीं कि तुम महादेव हो। तुम्हें पता नहीं कि तुम्हारे भीतर भगवान विराजा है।
वे तीन आंखें क्या हैं?
शांडिल्य कहते हैंः वे तीन आंखें हैं--शब्द, लिंग और अक्ष।
ये तीनों बातें समझने जैसी हैं।
शब्द का अर्थ होता हैः शास्त्र, शास्ता। दूसरे से जो मिले, वह शब्द। शब्द "पर" से आता है। स्वभावतः खोज "पर" से शुरू होती है। तुमने पढ़ी गीता और तुम्हारे भीतर एक उमंग आई। कि तुमने सुना किसी को कुरान की आयातों को दोहराते और तुम्हारे भीतर कोई चोट पड़ी, तरंग उठी। कि तुम निकले किसी बुद्धपुरुष के पास से, या किसी भक्त से तुम्हारा मिलना हो गया और तुमने पहली दफा जाना कि जीवन का ऐसा ढंग भी संभव है! ऐसे लोग भी हैं! फूलों जैसी जिनकी सुगंध है। दीयों से झरता जैसा जिनका प्रकाश है। और जिनके भीतर अनाहत का नाद हो रहा है। तुम्हारे भीतर कोई बड़ी दूर... देर से दबी हुई आकांक्षा सुगबुगाई! तुम्हारे भीतर आकांक्षा का सूत्रपात हुआ। बीज टूटा, अंकुर आया। तो शुरुआत तो "पर" से होगी, दूसरे से होगी। इसलिए पहली आंख पर-निर्भर होती है--शब्द, शास्त्र, शास्ता।
दूसरी आंखः लिंग। लिंग का अर्थ होता हैः अनुमान, विचार, मनन, चिंतन। पहली आंख "पर" से उपलब्ध होती है, दूसरी आंख "स्व" से। सुना दूसरे से, मगर सुनने से क्या होगा? गुनोगे तो कुछ होगा। मनन करोगे तो कुछ होगा। चिंतन करोगे तो कुछ होगा। विचारोगे तो कुछ होगा। सदगुरु से सुनी कोई बात, उसे हृदय में धारोगे, उसे बार-बार उलटाओगे-पलटाओगे, एकांत में बैठ कर उस पर गूढ़ मंथन करोगे, तो कुछ होगा। पहली से दूसरी बात ज्यादा गहरी जाएगी। क्योंकि पहली बात दूसरे से आई थी, दूसरी बात तुम्हारी निज की प्रक्रिया होगी, आत्म-चिंतन पैदा होगा।
तो पहला "पर", दूसरा "स्व"। और फिर तीसराः अक्ष। अक्ष यानी प्रत्यक्ष; साक्षात्कार, अनुभव, सिद्धि। सिद्धि "स्व" और "पर" दोनों से मुक्त है।
द्वंद्वातीत है। वहां न तो मैं बचता, न तू बचता। वहां परमात्मा बचता है।
तो ये तीन आंखें हैं।

एक आंख, जो सदगुरु से मिलती है। कहो, श्रवण से मिलती है।
दूसरी आंख, जो मनन से मिलती है, स्वयं से मिलती है।
और तीसरी आंख, जो निदिध्यासन, ध्यान से मिलती है, समाधि से मिलती है।
इनमें योग के तीन सूत्र पूरे हो जाते हैंः श्रवण, मनन, निदिध्यासन।
सदगुरु जगाता है। सदगुरु को भीतर आने दो। शास्त्र के शब्दों को गूंजने दो। लेकिन उतने पर रुक मत जाना। नहीं तो पंडित होकर समाप्त हो जाओगे। तोता-रटंत तुम्हारा जीवन हो जाएगा। उससे आगे बढ़ना। चिंतन करना, मनन करना, विचार करना; अवगाहन करना; अवलोकन करना। खुद डुबकी मारना अब उस विचार में।
लेकिन दूसरे पर भी रुक मत जाना, अन्यथा दार्शनिक होकर समाप्त हो जाओगे; विचारक होकर मर जाओगे। पंडित से विचारक ज्यादा बहुमूल्य है। क्योंकि पंडित सिर्फ दोहराता है, विचारक कम से कम कुछ सोचता है। मगर विचारक भी अभी अनुभव को उपलब्ध नहीं हुआ है। इसलिए उसके सोचने में स्वयं गवाह नहीं हो सकता। अनुमान कर सकता है। कहता हैः लगता है कि ईश्वर होना चाहिए। होना ही चाहिए, ऐसा मालूम पड़ता है। सब तरह से अनुमान होता है कि ईश्वर के बिना जगत नहीं हो सकता। आखिर जब इतना बड़ा विराट जगत है तो कोई चलाने वाला होगा। मगर ये गवाहियां नहीं हैं, वह सिर्फ अनुमान कर रहा है। इनसे विवाद किया जा सकता है। इनको खंडित भी किया जा सकता है। इनके विपरीत तर्क दिए जा सकते हैं।
पंडित तो कुछ जवाब भी नहीं दे सकता, पंडित तो केवल दोहरा सकता है। उससे तुम कहो उपनिषद, तो वह उपनिषद दोहरा दे; गीता, तो गीता दोहरा दे; कुरान, तो कुरान दोहरा दे। तुम उससे यह मत पूछना कि इस बात का क्या अर्थ है? अर्थ उसे पता ही नहीं। उसने कभी सोचा ही नहीं। पंडित तो कंप्यूटर की मशीन है। उसे जो भर दिया गया है... ग्रामोफोन का रिकार्ड है, तुम जब भी बजाओ, बजा लेना। जो भी भर दिया गया है, वह फिर दोहरा देगा। तुम ग्रामोफोन के रिकार्ड से अर्थ मत पूछना, कि भई, इस पंक्ति का अर्थ क्या है? ग्रामोफोन के पास कोई अर्थ नहीं होता। पंडित के पास कोई अर्थ नहीं होता।
पंडित से दार्शनिक बेहतर है। मगर दार्शनिक भी कुछ बहुत बेहतर नहीं है, क्योंकि उसके पास कुछ थोड़े अर्थ तो होंगे, मगर वे सब अनुमान होंगे। अनुमान खंडित किए जा सकते हैं। दार्शनिकों में विवाद चलते रहे हैं। आस्तिक और नास्तिक दार्शनिक में होते हैं। आस्तिक कहता हैः इतना बड़ा जगत है, इसको जरूर किसी ने बनाया होगा। छोटा सा घड़ा बनता है तो बिना कुम्हार के नहीं बनता। एक छोटा सा घड़ा भी संयोग से नहीं बनता, एक बनाने वाला चाहिए। ऐसा समझो कि तुम एक रेगिस्तान में गए और वहां तुम्हें एक घड़ी पड़ी मिल जाए, तो क्या तुम यह मान सकोगे कि घड़ी संयोग से बन गई होगी? अपने आप, अपने आप, हजारों-हजारों साल में यह यंत्र अपने आप बन गया होगा? कितने ही हजार साल बीते हों, घड़ी अपने से नहीं बन सकती। कैसे बन जाएगी अपने से? घड़ी के भीतर साफ प्रयोजन मालूम पड़ता है। यह संयोग नहीं हो सकती। यह सिर्फ घटनाओं के घटते-घटते अपने आप घट गई हो, ऐसा नहीं हो सकता।
नास्तिक यही कहता है कि यह सारा जगत घटते-घटते घट गया है। नास्तिक यही कहता है कि अगर एक बंदर को टाइपराइटर पर बिठाल दिया जाए और कई करोड़ों वर्ष तक वह टाइप करता ही रहे--बिना कुछ जाने--तो भी गीता पैदा हो जाएगी एक न एक दिन, संयोगवशात।
मगर यह बात जंचती नहीं कि गीता पैदा हो जाएगी। कितने ही करोड़ वर्ष तक बंदर बैठ कर टाइप करता रहे, ऐसा संयोग शायद ही आए। छोटा-मोटा संयोग आ भी सकता है कि टाइप करता ही रहे तो राम बन जाए--यह हो सकता है। संयोग की बात है--र पर हाथ मार दे, आ की मात्रा पर हाथ मार दे, म पर हाथ मार दे। यह संयोग की बात हो सकती है कि राम बन जाए। लेकिन पूरी गीता संयोग से बन जाए, इसकी संभावना न के बराबर है। घड़ी संयोग से नहीं बन सकती।
तो आस्तिक दार्शनिक कहता हैः इतना विराट विश्व, इतना सूक्ष्म प्रक्रियाओं में जड़ा हुआ विश्व, जरूर कोई बनाने वाला होगा।
नास्तिक मजे से जवाब दे सकता है। नास्तिक कहता हैः अगर तुम कहते हो कि इतने बड़े विराट विश्व को बनाने वाला कोई होगा, तो फिर तुम्हारे परमात्मा

को किसने बनाया? क्योंकि वह तो और भी जटिल है! और अगर तुम कहते हो कि परमात्मा को किसी ने नहीं बनाया, तो तुम्हारी बात ही फिजूल हो गई। जब घड़ा भी बिना बनाए नहीं बनता, तो परमात्मा कैसे बना होगा? जब घड़ी ही बिना बनाए नहीं बनती, तो घड़ी को बनाने वाला कैसे बिना बनाए बना होगा?
फिर तो झंझट शुरू हो गई! फिर परमात्मा को किसी और बड़े परमात्मा ने बनाया, और उसको किसी और बड़े परमात्मा ने बनाया, फिर इसका कोई अंत न होगा। फिर यह अंतहीन तर्क हो गया। और इसी अंतहीन तर्क में दार्शनिक पड़े हुए हैं। न नास्तिक हारता है, न आस्तिक जीतता है। न आस्तिक हारता है, न नास्तिक जीतता है। विवाद जारी है। सदियां बीत गई हैं, विवाद होता रहता है।
अनुमान से कभी भी कोई निर्णय नहीं हो सकता। अनुमान में बल ही नहीं है, अनुमान नपुंसक है। पंडित से तो बेहतर है। चलो कम से कम अनुमान है, अपना तो है। पंडित के पास तो अनुमान भी अपना नहीं है, अनुमान भी दूसरों के हैं। दार्शनिक के पास अनुमान अपना है। एक कदम आगे बढ़ा। एक कदम और उठाना जरूरी है। "पर" से तो छूट गया, अब "स्व" से भी छूट जाए, तब तन्मयी बुद्धि पैदा हो जाएगी। उस तीसरी अवस्था का नाम अक्ष। आंख, असली आंख, प्रत्यक्ष। वही तीसरा नेत्र है।
उसी तीसरे नेत्र से जाना जाता है। फिर स्वयं गवाही हो जाता है व्यक्ति। फिर ऐसा नहीं कहता कि अनुमान है, कि होना चाहिए, कि शायद हो, कि जरूर ही होगा, बिना हुए नहीं चल सकता। तब स्वयं गवाह होता है--चश्मदीद गवाह। कहता है, मैं स्वयं देखा हूं।
इसलिए तो बुद्ध के वचनों में जो बल है, या रामकृष्ण के वचनों में जो बल है, या जीसस के, या मोहम्मद के वचनों में जो बल है, या कबीर या शांडिल्य के वचनों में, या मीरा और चैतन्य के वचनों में, वह बल क्या है? वह बल तर्क का नहीं है, वह बल अनुभव का है। उपनिषदों में तर्क है ही नहीं, उपनिषद सिर्फ घोषणाएं करते हैं।
जब पहली दफा उपनिषदों का पश्चिम की भाषाओं में अनुवाद हुआ, तो पश्चिम
के विचारक बड़े हैरान थे कि इनमें कोई तर्क तो है ही नहीं। बस ऋषि कह देता हैः अहं ब्रह्मास्मि! मैं ब्रह्म हूं। या कह देता हैः तत्त्वमसि श्वेतकेतु! श्वेतकेतु, तू भी वही है। सिर्फ निष्कर्ष! इसका प्रमाण क्या है? तर्क क्या है? विधि क्या है? कैसे इस निष्कर्ष पर पहुंचा गया कि हे श्वेतकेतु, तू भी वही है, वह तो कुछ है ही नहीं।
ये वचन दार्शनिकों के नहीं हैं, उपनिषदों के वचन सिद्धपुरुषों के वचन हैं। सिद्धपुरुष जो कहता है वह अनुमान नहीं है, उसे दिखाई पड़ता है। वह देखता है श्वेतकेतु में, और कहता हैः श्वेतकेतु, तू वही है। जिसको तू खोज रहा है, वह तेरे भीतर बैठा है, मैं देख रहा हूं।
अंधा आदमी अनुमान करता है कि प्रकाश होना चाहिए, या होगा, या बिना हुए कैसे चलेगा! आंख वाला आदमी कहता हैः प्रकाश है! अब तुमसे कोई पूछे कि प्रमाण? तुम कहोगेः प्रमाण का सवाल ही नहीं है, मुझे दिखाई पड़ रहा है कि प्रकाश है। इसमें मुझे संदेह ही नहीं पैदा हो रहा है। असंदिग्ध मुझे दिखाई पड़ रहा है कि प्रकाश है। मेरे पास आंख है, बस यही प्रमाण है।
इसलिए अक्ष। अक्ष यानी आंख। असली आंख तीसरी आंख है। असली आंख अनुभव
की आंख है--साक्षात्कार।
श्रवण से मनन की तरफ चलो, मनन से ध्यान की तरफ चलो। "पर" से अभीप्सा को जगने दो, जिज्ञासा पैदा होने दो, "स्व" से अभीप्सा को आत्मसात करो, रोएं- रोएं में व्याप्त करो। और फिर परमात्मा से तृप्ति है, संतुष्टि है। मैंने सुना है एक प्रसिद्ध दार्शनिक के संबंध में। एक आदमी उस दार्शनिक को मिला और कहा, अरे, आप तो जिंदा हैं! हमने सोचा कि आप दुर्घटनाग्रस्त हो गए। उस दार्शनिक ने पूछा, आपने यह अंदाजा कैसे लगाया? यह अनुमान कैसे लगाया? दार्शनिक हमेशा अनुमान की बात पूछता है। अंदाज कैसे लगाया? किस हिसाब से तुमने सोचा? उस आदमी ने कहा, बिल्कुल आपके जैसा चेहरा, आपके जैसे कपड़े--काली पैंट--एक आदमी कार के नीचे दब कर मर गया है। उस दार्शनिक ने कहा, क्या उसने सफेद कमीज भी पहनी हुई थी? उस व्यक्ति ने कहा, जी हां। दार्शनिक ने कहा, क्या कमीज के बटन टूटे और कालर फटा हुआ था? उस

व्यक्ति ने कहा, नहीं। दार्शनिक ने कहा, तब मैं वह नहीं हो सकता। वह कोई और आदमी रहा होगा।
दार्शनिक अपने संबंध में भी अनुमान ही करता है। उसकी सारी प्रक्रिया अनुमान की है। सोचता रहता, सोचता रहता, लेकिन निष्पत्ति कभी नहीं आती। पंडित तो बनना मत, नहीं तो तोते हो जाओगे। दार्शनिक पर रुकना मत, अन्यथा केवल जिंदगी तुम्हारी अनुमान रह जाएगी। अनुभव चाहिए। अनुभव आंख है।
अंतिम सूत्र--
आविस्तिरोभावाः विकाराः स्युः क्रियाफलसंयोगात्।
"लय और उत्पत्ति रूप क्रियाफल के संयोग से विकार रूप दिखाई पड़ता है।" तथाकथित पंडित तुमसे कहते रहे हैंः यह संसार विकार है--परमात्मा का विकार। या तुम्हारे अज्ञान का विकार। शांडिल्य कहते हैंः विकार तो हो ही नहीं सकता। पहली बात, अज्ञान तो है ही नहीं कहीं, इसलिए अज्ञान के कारण विकार नहीं हो सकता। और दूसरी बात, परमात्मा निर्विकार है, उसमें विकार की संभावना नहीं है।
फिर यह जगत क्या है?
इसे समझने के लिए शांडिल्य का एक अपूर्व सिद्धांत स्मरण करो। शांडिल्य कहते हैंः यह जगत विपरीत के बीच लयबद्धता है। दिन है, बिना रात के नहीं हो सकता। जीवन बिना मृत्यु के नहीं हो सकता। पुरुष बिना स्त्री के नहीं हो सकता। उष्णता बिना शीतलता के नहीं हो सकती। सुख बिना दुख के नहीं हो सकता। यहां विपरीत में एक लयबद्धता है। विपरीत से जगत निर्माण हुआ है। सब चीजें अपने विपरीत पर ठहरी हुई हैं। संगीत में स्वर और शून्य का मेल है।
मैं तुमसे बोल रहा हूं, लेकिन अगर मैं शब्द ही शब्द बोलूं, तो तुम कुछ
भी न समझ पाओगे। हर दो शब्दों के बीच में थोड़ा मौन भी चाहिए। बोलने में भी शब्द और मौन का संयोग है। बीच-बीच में शून्य है, फिर शब्द, फिर शून्य, फिर शब्द, फिर शून्य। कोई वीणा बजाता है--स्वर, फिर शून्य, स्वर, फिर शून्य। अगर तार को ठोंकता ही रहे और बीच में जरा भी गुंजाइश न दे, तो संगीत पैदा नहीं होगा। संगीत पैदा ही होता है स्वर और शून्य के मेल से।
ऐसा ही परमात्मा और जगत। इन दोनों का मेल ही लय पैदा कर रहा है।
शांडिल्य के हिसाब से परमात्मा बीज है, जगत वृक्ष। हर बीज वृक्ष बन जाता है और हर वृक्ष अंततः फिर बीज बन जाता है। परमात्मा है अनभिव्यक्त और जगत है उसी का व्यक्त रूप। परमात्मा है अनगाया गीत और जगत है गाया हुआ गीत। जगत है स्वर, परमात्मा है शून्य। जगत है दृश्य, परमात्मा है अदृश्य। जगत है श्रम, परमात्मा है विश्राम। जगत है दिन, परमात्मा है रात्रि। दोनों संयुक्त हैं। ये दोनों पंख अस्तित्व के हैं। इनमें कोई विपरीतता नहीं है। जगत विकार नहीं है और न जगत झूठ है। जगत उतना ही सच है जितना परमात्मा सच है। और जगत उतना ही निर्विकार है जितना परमात्मा निर्विकार है। क्योंकि निर्विकार से जो पैदा हुआ, वह निर्विकार होगा। यह जगत उसी की अभिव्यक्ति है।
फिर भ्रांति कहां हो रही है?
भ्रांति सिर्फ इस बात से हो रही है कि हम जगत को ही देखते हैं और परमात्मा को भूल जाते हैं। हमारे विस्मरण में भ्रांति है। कोई विकार नहीं है, सिर्फ विस्मरण। हमने एक चीज को इतने जोर से देखा है, हम दूसरे को भूल गए हैं। हमने सारी आंख एकाग्र कर दी है जगत पर। और उसके पीछे कारण है। क्योंकि जगत दिखाई पड़ता है, दृश्य है, तो आंख उस पर एकाग्र हो जाती है। और परमात्मा अदृश्य है। उसके लिए आंख एकाग्र नहीं करनी होती, अनेकाग्र करनी होती है। जगत को देखना है तो आंख खोलने से हो जाता है, परमात्मा को देखना है तो आंख बंद करनी होती है। खुली आंख से देखा गया परमात्मा जगत, और बंद आंख से देखा गया जगत परमात्मा, बस इतना ही फर्क है। जगत परमात्मा का बहिर्रूप है, परमात्मा जगत की अंतरात्मा है। जैसे देह और आत्मा, ऐसे ब्रह्म और माया।

यहां विकार नहीं है। ये जो विपरीत हैं, ये जो पोलेरिटीज हैं--दिन की और रात की, श्रम और विश्राम की, वसंत और पतझड़ की, जीवन और मृत्यु की, इनको विपरीतता हम इसलिए कहते हैं कि एक-दूसरे के विपरीत दिखाई पड़ती हैं। लेकिन बहुत गहरे खोजने पर पता चलता है कि ये विपरीत नहीं हैं, एक-दूसरे की परिपूरक हैं, कांप्लीमेंटरी हैं।
विज्ञान इसके समर्थन में अब खड़ा हो गया है। इस सदी की बड़ी से बड़ी खोजों में एक खोज हैः दि थिअरी ऑफ कांप्लीमेंटरिटी। सब चीजें परिपूरक हैं। पुरुष अकेला नहीं हो सकता। बिना स्त्री के तुम सोच सकते हो पुरुष हो सकता है पृथ्वी पर? या स्त्री हो सकती है बिना पुरुष के पृथ्वी पर? ये दोनों परिपूरक हैं। इन दोनों से मिल कर वर्तुल पूरा होता है। ये दोनों एक-दूसरे के अपरिहार्य अंग हैं।
ऐसा ही माया और ब्रह्म।
माया विकार नहीं है, विवर्त नहीं है। माया ब्रह्म की संगिनी है। शिव
और शक्ति। राधा और कृष्ण। सीता और राम। ऐसी माया है। ब्रह्म और माया। वह परम रूप है। यह जगत ब्रह्म और माया का युगल है। और इस युगल के बीच विपरीतता दिखाई पड़ती है, वस्तुतः नहीं है। वस्तुतः तो परिपूरकता है।
इस अंतिम सूत्र पर शांडिल्य भक्ति की जिज्ञासा को पूरा करते हैं। क्यों इस अंतिम सूत्र पर पूरा करते हैं? इसलिए ताकि तुम्हें अंततः फिर याद दिला दी जाए--बार-बार याद दिलाई गई है, फिर भी डर है कि तुम भूल न जाओ, इसलिए अंततः फिर याद दिलाते हैं--भक्ति संसार-विपरीत नहीं है। भक्त संसार को छोड़ कर नहीं भागता है। भक्त भगोड़ा नहीं है। भक्त अंगीकार करता है संसार को। भक्त संसार में ही रहता है। और संसार में ही इस ढंग से जीता है कि संसार को भी जी लेता है और परमात्मा को भी जी लेता है। आंख खोल कर संसार को देख लेता है, आंख बंद करके परमात्मा को देख लेता है।
मुझसे लोग आकर पूछते हैं कि मैं अपने संन्यासियों को संसार में ही रहने को क्यों कहता हूं? इसीलिए कहता हूं कि संसार में परमात्मा छिपा है। इसे छोड़ कर गए, तो ध्यान रखना, तुम परमात्मा को ही छोड़ कर भाग गए हो। इसी में सब तरफ से मौजूद है--यहीं मौजूद है, अभी मौजूद है। मुझमें, तुममें, इन वृक्षों में, इन चहकते पक्षियों में, सूरज की किरणों में, हवा के झोंके में, सबमें मौजूद है, क्योंकि सब उसी का विस्तार है। इस सबके बीच वही एक निनादित हो रहा है।
माया को परमात्मा से विपरीत मत समझ लेना, दुश्मन मत समझ लेना। दुश्मन समझे, तो अड़चन खड़ी होगी। तब तुम्हारे जीवन में बड़ी अड़चनें आ जाएंगी। और इसके बजाय कि तुम मुक्त होओ, तुम विक्षिप्त हो जाओगे। तुम पलायनवादी हो जाओगे, भगोड़े हो जाओगे--तुम पत्नी, बच्चों, परिवार को छोड़ कर जंगल की तरफ जाने लगोगे।
कहीं जाने की जरूरत नहीं है। जितना परमात्मा जंगल में है, उतना ही बाजार में भी है। और जितना महात्माओं में है, उतना ही तुम्हारी पत्नी में भी है। जितना राम और कृष्ण में है, उतना ही तुम्हारे बेटे में भी है; तुम्हारी बेटी में भी है; तुम्हारे मित्र में भी है, तुम्हारे शत्रु में भी है। इस दृष्टि को उपलब्ध होओ। तब तुम्हारा पूरा जीवन भजन हो जाता है। शांडिल्य के सारे सूत्रों का सार एक हैः जीवन भजन हो जाए। जीवन और भजन में विरोध न रह जाए। उठो-बैठो तो भजन, उठो-बैठो तो परिक्रमा। खाओ-पीओ सो सेवा। छोटा-छोटा जीवन का काम, छोटे-छोटे कृत्य उसकी महिमा से भर जाएं। शांडिल्य तुम्हें किसी तरह के संघर्ष में नहीं डालना चाहते। क्योंकि सब संघर्ष अंततः अहंकार को पैदा करता है। और भक्ति का सूत्र संकल्प नहीं है, समर्पण है। तुम डुबकी लो! तुम डूबो! तुम उसके चरण गहो! इस संसार में उसके ही चरण प्रकट हुए हैं। और इसी संसार में तलाशते-तलाशते, गहरे उतरते-उतरते तुम उसे पा लोगे। ये जो लहरें हैं संसार की, इन्हीं में ही उसकी गहराई, उसका सागर भी छिपा हुआ है।
कृष्ण का आश्वासन अंत में हम फिर दोहरा लें--
दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया।
मामेकं ये प्रपद्यंते मायामेतां तरंति ते।।

जो तरना चाहें, जो उतर जाना चाहें, वे शरण गह लें।
माया से मत लड़ो, माया में ब्रह्म की शरण गह लो--और जीवन भजन हो जाएगा।
जीवन ही धर्म हो जाए, ऐसी ही शांडिल्य की अभीप्सा है और आशीर्वाद है! अथातोभक्तिजिज्ञासा!
आज इतना ही।

अथातो भक्ति जिज्ञासा, भाग 2 चालीसवां प्रवचन

मिलन होता है

पहला प्रश्नः प्रार्थना क्या है? और क्या प्रार्थना केवल अपने ही लिए है?

प्रार्थना बेबूझ घटना है। ध्यान समझा जा सकता है, समझाया जा सकता है। प्रार्थना न तो समझाई जा सकती है, न समझी जा सकती है। समझ के हाथ प्रार्थना तक नहीं पहुंचते। विचार के पंख प्रार्थना के आकाश तक उड़ान नहीं भरते। बोली जा सके, कही जा सके, ऐसी प्रार्थना वस्तु नहीं है। प्रार्थना है प्रेम। और प्रेम सदा से बेबूझ रहा है। प्रार्थना है हृदय का उदगार। और हृदय के पास कोई तर्क नहीं। हृदय के पास वस्तुतः कोई भाषा भी नहीं। हृदय के पास मौन ही भाषा है। बोले कि प्रार्थना झूठ हुई। जिसे तुमने आज तक प्रार्थना समझा है, वह प्रार्थना नहीं है, वह तो वासना का ही रूप है। तुमने कुछ कहा, तुमने कुछ मांगा--वासना हुई। प्रार्थना चुप्पी के अतिरिक्त और कोई भाषा नहीं जानती। प्रार्थना है मौन में झुक जाना। प्रार्थना है समर्पण। प्रार्थना है इस बात की घोषणा कि मैं नहीं हूं, तू है। मैं नहीं हूं, परमात्मा है।
प्रार्थना परमात्मा से कुछ मांग नहीं है। क्योंकि मांग में तो मैं मौजूद ही होता है। मैं न हो तो मांग किसकी? मांग कैसी? मैं ही मांगता है। मैं भिखारी है, भिखमंगा है। उसकी मांगों का कोई अंत नहीं है। जितना मिले उतना ही ज्यादा मांगता है। मांगता ही जीता है, मांगता ही मरता है। जहां मैं नहीं, मैं की मांग नहीं, वहीं तुम सम्राट हो गए।
प्रार्थना सम्राट के हृदय से उठा हुआ स्वर है--मौन का स्वर, संगीत का स्वर। प्रार्थना एक लयबद्धता है, जो तुम्हारे भीतर घटती है। उसी लयबद्धता में तुम झुक जाते हो और विराट की लयबद्धता के साथ एक हो जाते हो। तुम्हारी वीणा विराट की वीणा के संग-साथ संगत देने लगती है। जुगलबंदी हो जाती है। तुममें और विराट की वीणा में जरा भी फासला नहीं रह जाता, भेद नहीं रह जाता, अंतराल नहीं रह जाता। तुम्हारे पैर परमात्मा के साथ पड़ने लगते हैं। तुम उसके साथ नाचते हो, तुम उसके साथ मस्त होते हो, तुम उसके रस में डूबते हो। इसलिए मंदिरों में जो प्रार्थनाएं की जा रही हैं, और मस्जिदों में, और गिरजाघरों में, उन्हें मैं प्रार्थना नहीं कहता हूं। वे केवल प्रार्थना की प्रवंचनाएं हैं। प्रार्थना के नाम पर धोखा हैं। प्रार्थना के झूठे सिक्के हैं वे। असली सिक्का चुप होता है। कभी ऐसे क्षण तुम्हें आ जाते हैं, जब तुम अवाक होते हो--वे प्रार्थना के क्षण हैं। उन अवाक क्षणों में तुम हिंदू नहीं होते और मुसलमान नहीं होते और ईसाई नहीं होते--सिर्फ अवाक होते हो। अवाकता कहीं हिंदू होती है, मुसलमान होती है, ईसाई होती है? सुबह ऊगते हुए सूरज को देख कर, या सफेद बगुलों की कतार को उड़ते देख कर, या हवा में तैरती हुई फूलों की गंध को अनुभव करके, या रात आकाश को तारों से भरा देख कर अवाक नहीं हुए हो? वही प्रार्थना है। क्षण भर को निस्तब्ध नहीं हुए हो? वही प्रार्थना है। कोयल कुहू-कुहू करके गीत गाने लगी है भर दोपहरी में, एक क्षण को तुम्हारे विचारों कीशृंखला नहीं टूट गई है? एक क्षण को तुम्हारी धड़कन नहीं रुक गई है? उस कुहू-कुहू ने एक क्षण को तुम्हें भर नहीं दिया है--आपूर, आकंठ? तुम्हें डुबा नहीं दिया है--जैसे बाढ़ आ गई हो किसी अज्ञात लोक से? वही प्रार्थना है। या किसी मनुष्य की आंखों में झांक कर और क्षण भर को देह भूल गई हो--अपनी भी और उसकी भी। किसी मित्र का हाथ हाथ में लेकर बैठे हो और वाणी खो गई हो, बोलने को शब्द न मिलते हों, आंख से आंसू झरते हों--वही प्रार्थना है।
तुम शायद सोचते होओगे मैं तुम्हें कहूंगा कि रघुपति राघव राजाराम, यह प्रार्थना है। कि अल्लाह ईश्वर तेरे नाम, यह प्रार्थना है। ये सब राजनीतियां हैं। इन सबके पीछे खेल हैं। और गंदे खेल हैं। मस्जिद से उठती अजान और मंदिर से उठते घंटियों के स्वर, ये सब खेल हैं, क्रियाकांड हैं। वह

पुजारी जो मंदिर में घंटा बजा रहा है, उसके भीतर कुछ भी नहीं बज रहा है। और जिसने मस्जिद में जाकर अजान की है, उसके भीतर परमात्मा की कोई स्मृति नहीं, कोई स्मरण नहीं है। एक कृत्य दोहरा रहा है। सदियों से दोहराया गया है। संस्कार है उसे दोहराने का, दोहरा लेता है। मूर्ति देखता है, झुक जाता है, क्योंकि बचपन से झुकता रहा है। एक तरह की संस्कारबद्ध गुलामी पैदा हो गई है। यह प्रार्थना नहीं है। चुप्पी के क्षण, मौन के क्षण, सौंदर्य भाव-बोध के क्षण, प्रीति की अनुभूति, मैत्री का भाव, तन्मयता, विमुग्धता--इन शब्दों से मैं कहना चाहता हूं कि प्रार्थना क्या है। इन सारे शब्दों में भी पूरी नहीं हो जाती, बस इन शब्दों में थोड़े से इशारे मिलते हैं।
तुम जान कर चकित होओगे, हिब्रू भाषा में प्रार्थना के लिए कोई शब्द नहीं है। रोओ, हंसो, गाओ, नाचो, पुकारो, पर प्रार्थना के लिए कोई शब्द नहीं। क्योंकि प्रार्थना शब्दातीत है। हिब्रू भाषा ने सदव्यवहार किया, प्रार्थना को कोई शब्द नहीं दिया। प्रार्थना क्या-क्या हो सकती है, उसकी तरफ इशारे किए। रोओ, गाओ, नाचो, हंसो, आनंदमग्न हो पुकारो, झुको, गिरो, असहाय हो जाओ, अवाक हो जाओ, विमुग्ध बनो, तन्मय हो जाओ, पर प्रार्थना के लिए कोई शब्द नहीं। इन सबमें प्रार्थना चुक नहीं जाती, इन सबसे सिर्फ इशारे होते हैं। प्रार्थना इन सबसे बड़ी है।
प्रार्थना इतनी विराट है जितना विराट आकाश है। प्रार्थना उतनी ही बड़ी
है जितना बड़ा परमात्मा है। प्रार्थना परमात्मा से छोटी नहीं है, क्योंकि प्रार्थना के क्षण में तुम परमात्मा के साथ एक हो जाते हो। प्रार्थना का क्षण सेतु है। जोड़ता है। तुम खो गए। भक्त नहीं बचता। जब भक्ति परिपूर्ण होती है, भक्त नहीं बचता। और जब तक भक्त बचता है, तब तक भक्ति परिपूर्ण नहीं है।
शांडिल्य ने इसी को भक्ति के दो रूप कहा। एक को गौणी-भक्ति कहा और एक
को पराभक्ति कहा। जब तक भक्त बचता है, तब तक गौणी-भक्ति। नाममात्र को भक्ति। वस्तुतः नहीं, कहने मात्र को भक्ति। भक्ति जैसी लगती है, इसलिए भक्ति कहा, मगर भक्ति है नहीं। अभी भक्त मौजूद है, भक्ति कहां? जब भक्त खो गया, तब पराभक्ति। तब असली भक्ति, भगवान ही बचा!
तो प्रार्थना उतनी ही बड़ी है जितना परमात्मा है। और तुम अगर प्रार्थना को समझना ही चाहो, तो प्रार्थना करनी पड़ेगी, प्रार्थना होना पड़ेगा। मेरे समझाने से नहीं होगी बात। जब भी मन को तरंगित पाओ--और ऐसे क्षण सभी को आते हैं, मगर हम चूक-चूक जाते हैं। अब प्रार्थना के लिए कोई समय तय मत कर लेना। ऐसा मत कर लेना कि रोज सुबह स्नान करके प्रार्थना करेंगे। जरूरी नहीं है कि स्नान के बाद तुम्हारे मन में प्रार्थना की तरंग हो ही। प्रार्थना को निर्धारित मत कर लेना। प्रार्थना कब आ जाएगी, कब अचानक बादल फट जाएंगे और आकाश खुलेगा, कोई नहीं जानता--सुबह कि सांझ, कि भर दुपहर, कि आधी रात! जब भी ऐसा हो जाए कि मन तन्मय हो, जब भी ऐसा हो जाए कि मन में कोई विचार न हों, जब भी ऐसा हो जाए कि मन में कोई ऊहापोह न चलता हो, बवंडर न उठते हों, आंधियां न हों, तरंगें न हों, लहरें न आती हों--और ऐसे क्षण सबको आते हैं, मैं फिर दोहरा दूं--जब ऐसे क्षण आएं, तब झुक जाना। तब तुम क्या बोलोगे, इसकी बताने की जरूरत नहीं। कुछ बोलने जैसा आ जाए तो बोल लेना, कुछ कहने का मन हो जाए तो कह देना, कोई शब्द भीतर दोहरने लगे तो दोहरा लेना, कोई गीत की कड़ी गूंजने लगे तो गूंज जाने देना, मगर चेष्टा करके मत करना ऐसा। ऐसा मत करना कि अब राम-राम दोहराऊं। उसी दोहराने में मर जाएगी प्रार्थना। प्रार्थना बड़ी कोमल है, तन्वंगी है। यह राम-राम का पत्थर तुमने पटका कि मर जाएगी। तुम कोशिश मत करना। हां, भीतर से उठने लगे राम-राम, अनायास हो जाए, तो हो जाने देना। फिर ठीक है। अपने से जो हो, ठीक है; किया जाए, वही गलत है। प्रार्थना के जगत में यह नियम है--अपने से जो हो जाए।
कभी-कभी अनर्गल शब्द उठ सकते हैं। बच्चे, जैसे छोटे-छोटे बच्चे कुछ भी शब्द पकड़ लेते हैं, दोहराए चले जाते हैं--कभी वैसा हो सकता है। प्रार्थना में तो निर्दोष बच्चे जैसा हो जाना है। या जैसे तुमने कभी शास्त्रीय संगीतज्ञों को आलाप भरते देखा है, वैसा आलाप पैदा हो सकता है--जिसमें कोई शब्द भी नहीं है, सिर्फ स्वर है। या सब सन्नाटा हो सकता है। प्रार्थना बड़ी

है, सबको समा लेती है, किसी एक घटना में सीमित नहीं है। कभी सन्नाटा हो जाएगा इतना कि हाथ-पैर भी न हिलेंगे। और कभी ऐसा हो जाएगा कि ऐसी ऊर्जा उतरेगी कि नाचे बिना नहीं चलेगा। फिर जैसा हो! कभी बुद्ध की तरह बैठना हो जाए, तो बैठ जाना; कभी मीरा की तरह नाचना हो जाए, तो नाच लेना। चेष्टा करके नाचना भी मत, चेष्टा करके बैठना भी मत। जब तक कृत्य है तब तक प्रार्थना नहीं, क्योंकि कृत्य में कर्ता है। और कर्ता में अहंकार है। तुम सिर्फ खुल जाना। जैसे सुबह की हवा आती है और फूल को नचा जाती है, और सुबह का सूरज उगता है और फूल की पंखुड़ियां खिल जाती हैं--बस ऐसे! तुम उपलब्ध रहना। तुम, परमात्मा कुछ करना चाहे तो होने देना, कुछ न करना चाहे तो चुपचाप जैसे हो वैसे ही रह जाना।
जल्दी ही तुम्हें प्रार्थना का स्वाद लगने लगेगा। प्रार्थना स्वाद है। शब्द नहीं, विचार नहीं, प्रत्यय नहीं, सिद्धांत नहीं, प्रार्थना स्वाद है। तुम्हारे भीतर एक मिठास भर जाएगी। जैसे भीतर कोई मधुकलश फूट गया, रोएं-रोएं में मस्ती आ गई। आंखें गुलाबी हो जाएंगी, जैसे नशे में हो जाती हैं। पैर कहीं के कहीं पड़ेंगे, जैसे शराबी के पड़ते हैं। इन क्षणों की प्रतीक्षा करो। ये क्षण आते हैं। ये छोटे-छोटे क्षण हैं। और अगर तुम पकड़ लो क्षण को, तो क्षण बड़ा हो जाएगा। जैसे वसंत में सारे वृक्ष खिल जाते हैं, ऐसे ही इन प्रार्थनाओं के क्षणों में हृदय के फूल खिलते हैं।
कठिनाई क्या हो गई है, हमने नियम बना लिए हैं, हमने उपचार बना लिया है। रोज उठेंगे, स्नान करके प्रार्थना कर लेंगे। जैसे और कृत्य हैं--स्नान है, भोजन है, नाश्ता है, ऐसा प्रार्थना भी एक कृत्य है।
प्रार्थना ऐसी छोटी बात नहीं। प्रार्थना को तुम मुट्ठी में बंद न कर सकोगे। आधी रात उठ सकती है। बिस्तर पर पड़े थे और उठ आई। तो बैठ जाना! या पड़े रहना। सोचने-विचारने में भी पड़ने की जरूरत नहीं है कि अब मैं क्या करूं? जो हो, होने देना--सहजस्फूर्त। और तुम पराभक्ति को जल्दी ही जान लोगे। ऐसा मत सोचो कि परमात्मा ने तुम्हें छोड़ दिया है। परमात्मा अभी भी तुम्हारे द्वार पर दस्तक देता है। परमात्मा निराश नहीं हुआ है। परमात्मा अब भी तुम्हें तलाशता आता है, टटोलता आता है, मगर तुम्हें कभी घर पाता ही नहीं। तुम सदा कहीं गए होते हो। तुम वहां होते ही नहीं। परमात्मा के आने के क्षण प्रार्थना के क्षण हैं। और परमात्मा सहज ही आता है। मगर वे क्षण बड़े छोटे-छोटे हैं। पकड़ लो उन्हें तो लंबे हो जाएंगे, जिंदगी पर फैल जाएंगे, धीरे-धीरे बड़े होने लगेंगे। और एक घड़ी ऐसी आती है कि चौबीस घंटे प्रार्थना में डूब जाते हैं। उसी क्षण भक्त भगवान हो जाता है। मगर सहजस्फूर्तता पर, स्पांटेनिटी पर मेरा जोर है। किसी धर्म की बंधी-बंधाई प्रार्थना मत करना।
जीसस से उनके शिष्यों ने एक दिन पूछा कि हमें समझाएं कि प्रार्थना क्या है--जैसा आज तुमने पूछा है। जीसस ने क्या किया पता है? जीसस वहीं घुटने टेक कर जमीन पर झुक गए। शिष्य तो खड़े रह गए कि यह क्या हो रहा है? और जीसस प्रार्थना करने लगे। वे भूल ही गए उन शिष्यों को, और भूल गए उस नगर को, भूल गए सड़क पर लोगों की भीड़ को। भीड़ खड़ी हो गई और जीसस भावमुग्ध, आकाश की तरफ देख कर न मालूम किससे बातें करने लगे।
प्रार्थना है उससे बातचीत, जो दिखाई नहीं पड़ता। प्रार्थना है उससे बातचीत, जिससे उत्तर कभी आता मालूम नहीं पड़ता। प्रार्थना है उससे बातचीत, जो पता नहीं है भी या नहीं है।
पागल मालूम पड़े होंगे जीसस। मगर उनकी आंख से आंसू बहे जा रहे हैं! उनकी मस्ती देखते बनती है! उनके आस-पास खड़े हुए लोगों पर भी थोड़ा रस छलका है। उन्हें भी कुछ द्वार खुलता सा दिखाई पड़ा है। एक सन्नाटा छा गया। बाजार में एक शून्य उतर आया। इसीलिए तो मैं कहता हूं बाजार को छोड़ कर मत भागो, बाजार में हिमालय को ले आना है। चुप्पी हो गई। और जब जीसस उठे तो रूपांतरित थे। उनके चेहरे पर एक आभा थी, जो इस पृथ्वी की नहीं है। और उन्होंने पूछा अपने शिष्यों से--समझे?
शिष्यों ने कहा, क्या खाक समझे! हमने पूछा था प्रार्थना क्या है, आप तो प्रार्थना करने लगे! इससे हम क्या समझेंगे? समझाइए।

जीसस ने कहा, और कोई उपाय नहीं है। मैंने प्रार्थना में होकर बता दिया।
तुम भी ऐसे ही प्रार्थना में हो जाओ। जानोगे तो ही जानोगे, कोई और न जना सकेगा।
इस परिवार में, इस गैरिक परिवार में हम यही कोशिश कर रहे हैं। यहां प्रार्थना चल रही है। नाच-गान चल रहा है। इसमें सम्मिलित हो जाओ। पूछा- पाछी छोड़ो, कि प्रार्थना क्या है? प्रार्थना चल रही है, उस रौ में बहो, उस धारे के साथ हो लो। जल्दी ही तुम डुबकी खाओगे। डुबकी खाओगे तो जानोगे। रस में भीगोगे तो जानोगे।
और तुमने यह भी पूछा है कि क्या प्रार्थना केवल अपने ही लिए है? प्रार्थना तो होती ही तब है जब तुम नहीं होते, तो अपने लिए ही तो कैसे
हो सकती है? बुद्ध ने कहा हैः जो ध्यान, जो प्रार्थना अपने लिए हो, वह झूठ हो गई, गलत हो गई, विकृत हो गई, जहरीली हो गई। प्रार्थना सदा समग्र के लिए है। वहीं तो भूल हो रही है। तुम जब जाते हो मंदिर में, अपने लिए कुछ मांग लेते हो। वहीं चूक हो रही है।
एक प्रसिद्ध झेन फकीर हुआ, नानइन। उसके पास एक व्यक्ति आता था, नानइन उसे प्रार्थना सिखाता था। प्रार्थना, बौद्धों की प्रार्थना में यह अनिवार्य हिस्सा है कि पहले प्रार्थना--भाव गदगद हो जाओ, और फिर कहो कि जो भी इस प्रार्थना में मुझे आनंद मिला है, वह समस्त पृथ्वी पर फैल जाए, सभी दुखीजनों को मिल जाए। मेरे पास रुके नहीं, सब पर फैल जाए। यह बौद्ध प्रार्थना का अनिवार्य हिस्सा है। क्योंकि बुद्ध ने कहाः ध्यान हो और करुणा में संपूर्ण न हो, करुणा में पूर्ण न हो, तो ध्यान हुआ ही नहीं।
इस आदमी ने, जो नानइन के पास आता था, इसने कहाः और सब तो ठीक है, सारी पृथ्वी पर मैं अपने ध्यान की संपदा को बांट सकता हूं, लेकिन एक थोड़ी आज्ञा चाहता हूं, कि मेरा पड़ोसी! यह मैं प्रार्थना नहीं कर सकता कि इसको मेरा आनंद मिल जाए! यह पड़ोसी को मैं बर्दाश्त नहीं कर सकता हूं। और मैं प्रार्थना करूं और मेरा आनंद इसको मिले? इसको छोड़ कर सारी पृथ्वी को मिल जाए, यह मैं कह सकता हूं।
नानइन हंसने लगा और उसने कहा, पागल, यह सवाल पृथ्वी का नहीं है, यह सवाल मैं-तू को छोड़ने का है। तू प्रार्थना में भी ऐसी कंजूसी करेगा, कि इस पड़ोसी को छोड़ कर और सबको मिल जाए! तो तू समझा ही नहीं कि प्रार्थना क्या है।
प्रार्थना में मैं ही नहीं बचता, इसलिए प्रार्थना केवल अपने लिए ही नहीं हो सकती।
सुनो इन शब्दों को--

कौन सी रात थी जो अश्क बहाते न कटी
कौन सा दिन गमे-फर्दा में गुजारा न गया
कब तबस्सुम मेरा अश्कों से संवारा न गया
अब्रे-रहमत से भी किस्मत की सियाही न छुटी

आसमां चांद-सितारों से संवरता ही रहा धुल सका फिर भी न तारीक खलाओं का गुबार बन न पाई कोई तसवीर हसीन-ओ-जरकार
नूर हर जर्राए-आलम पे बिखरता ही रहा

छीन भी लेता है तू मुझसे अगर गम अपना
तेरे गम के सिवा गम हाय दिगर और भी हैं
मंजरे-दर्द अभी मोहताजे-नजर और भी हैं
इतनी महदूद नहीं मेरे दुखों की दुनिया

अगर तुम्हारा दुख छिन भी जाए--निश्चित छिन जाएगा, प्रार्थना में कभी कोई दुखी हुआ नहीं। प्रार्थना में कहां दुख? जैसे रोशनी में कहां अंधेरा?

प्रार्थना में तुम्हारा दुख तो छिन ही जाएगा। उस घड़ी को चूकना मत, उस घड़ी को बांटने की घड़ी समझना। अब एक छलांग और भरना और यह सारे आनंद को बिखेर देना। यह सारी सुवास को बिखेर देना। फूल जब खिलता है, तो गंध को बांध कर थोड़े ही रखता है। फिर गंध बंट जाती है। वही तो फूल का खिलना है, वही तो उसका सौभाग्य है। और जब आषाढ़ के बादल घिरते हैं तो बरसते हैं। वही उनका सौभाग्य है। खाली हो जाने में ही उनकी पूर्णता है। जब ज्ञान जन्मता है तो ज्ञान बंटता है। जब आनंद जन्मे तो आनंद बंटे। हम अलग-अलग नहीं हैं, हम संयुक्त हैं, हम सब जुड़े हैं। मैं-तू के सारे भेद कल्पित हैं, झूठे हैं। मंजरे-दर्द अभी मोहताजे-नजर और भी हैं
अभी और भी दुखों के बहुत दृश्य हैं। और अभी बहुत हैं जो तेरे दर्शन के लिए दुखी हैं और प्यासे हैं और पीड़ित हैं।
मंजरे-दर्द अभी मोहताजे-नजर और भी हैं
इतनी महदूद नहीं मेरे दुखों की दुनिया
मेरे दुखों की दुनिया मुझ तक ही सीमित नहीं है, इतनी छोटी नहीं है, इतनी कृपण नहीं है। सबके दुख मेरे दुख हैं।
प्रार्थना के क्षण में यह भाव तो उठेगा ही। मेरा दुख मिटा, क्योंकि मैं मिटा। हे प्रभु, सबके दुख मिटें! सब मिट जाएं। सबके अहंकार गलें। सब पिघल जाएं। जब तुममें स्वर वह उतरने लगे, तो तुम कंजूसी मत कर लेना। अगर कंजूसी की, स्वर्ग का गला घुट जाएगा। स्वर्ग बांटने से बढ़ता है, बचाने से घट जाता है। आनंद बांटने से बढ़ता है, रोक लेने से मर जाता है। आनंद को उड़ने देना, फैलने देना सुगंध की भांति। जाने देना दूर-दिगंत तक। और तुम्हारी प्रार्थना रोज-रोज घनी होगी, और रोज-रोज गहरी होगी। और जल्दी ही तुम पाओगे, तुम्हारे बीच और परमात्मा के बीच जरा भी अंतराल नहीं रहा, जरा भी दूरी नहीं रही। तुम उसके हृदय के अंग हो गए, वह तुम्हारे हृदय का अंग हो गया है।

दूसरा प्रश्नः अहंकार के पास भी कोई संजीवनी है क्या? जो कि मरते-मरते
भी जी-जी जाता है--जाने कहां से, जाने कैसे, जाने क्यों?

प्रताप! अहंकार के पास कोई संजीवनी नहीं है। न तो अहंकार जी सकता है, न
मर सकता है। जीने-मरने की भाषा अहंकार पर लगाना ही मत। अंधेरा कहीं जीता है? अंधेरा कहीं मरता है? अंधेरा होता ही नहीं, तो जीएगा कैसे? मरेगा कैसे? अंधेरा अभाव है। ऐसे ही अहंकार अभाव है। तुमने परमात्मा को नहीं जाना, यही तुम्हें अहंकार को पैदा करने का कारण बन गया है।
अहंकार प्रतीति है परमात्मा की गैर-मौजूदगी की। परमात्मा नहीं है, इसलिए मैं हूं। यह मैं उठता रहेगा, अगर तुम इसको गिराने की कोशिश करोगे-- क्योंकि गिराने में भ्रांति बनी ही हुई है। तुमने यह बात नहीं देखी अभी तक कि अहंकार है ही नहीं। जब कोई पूछता है, अहंकार को कैसे मिटाऊं? तो गलत प्रश्न पूछता है। पूछना चाहिए, अहंकार को कैसे जानूं कि यह क्या है? गिराना, मिटाना, तो लड़ना शुरू हो गया। और जो नहीं है, उससे लड़ोगे तो हारोगे। अपनी छाया से कोई लड़ने लगेगा तो जीतेगा क्या कभी?
मैंने सुना है, एक आदमी अपनी छाया से बहुत डर गया था। रात अंधेरे में चलता होगा, रास्ते के किनारे, लैंपपोस्ट के नीचे अपनी छाया देखी। एकांत था, अंधेरा था, बहुत घबड़ा गया, कि कौन मेरा पीछा कर रहा है? भागने लगा। पागल ही रहा होगा--जैसे आदमी पागल होते हैं! भागने लगा तो अपने ही पैरों की आवाज पीछे से आती हुई मालूम होने लगी। कभी एकांत में मरघट पर भागे हो? तो अपने ही पैरों की आवाज ऐसी लगती है कि कोई पीछे आ रहा है, किसी के पैरों की आवाज आ रही है। और जब पीछे कोई आ रहा है तो लौट कर देखना भी मुश्किल हो गया--कि पता नहीं कौन हो? भूत हो कि प्रेत हो? कि चोर हो कि हत्यारा हो? वह और जोर से भागा, प्राण छोड़ कर भागा। जितना भागने लगा, उतने ही जोर से पीछे की आवाज भी बढ़ने लगी--कोई पीछा भी करने लगा।
इसी तरह तो तुम मुश्किल में पड़े हो। जरा लौट कर देखो, पीछे कोई भी नहीं है। अपनी ही छाया से भयभीत हो गए हो। और जिसे तुम मिटाने चले हो, पहले यह तो जान लो कि वह है भी या नहीं? नहीं तो तलवारें उठा कर अगर छायाओं से लड़ने

लगे, तो खतरा यही है कि आज नहीं कल तलवारों से अपने ही हाथ-पैर काट लोगे। छाया तो कटने से रही! और यह हो सकता है कि अपने हाथ-पैर काट कर तुम्हें यह भी आनंद आए कि देखो, छाया का एक हाथ काट दिया! कि देखो, छाया का एक पैर काट दिया! लंगड़ी कर दी छाया! मगर छाया लंगड़ी नहीं हो रही है, तुम लंगड़े हो गए हो।
तुम्हारे त्यागी, व्रती और मुनि इसी तरह लंगड़े होकर बैठ गए हैं। अपने
को ही काट लिया है, काटने अहंकार को चले थे! खुद को ही मुर्दा बना लिया है। जड़ हो गए हैं। जीवन की तरंग दिखाई पड़ती है तुम्हें तुम्हारे मुनियों में? तुम्हारे तपस्वियों में? मौत छाई हुई मालूम होती है। क्या हो गया है इन्हें? मस्ती कहां है? और जो ज्ञान नाचता न हो, वह ज्ञान कैसा? अज्ञानी दुखी है, समझ में आता है। ज्ञानी क्यों दुखी है? अज्ञानी पीड़ित है, परेशान है, नरक में जी रहा है, समझ में आता है। मगर ये तुम्हारे ज्ञानी, ये अज्ञानी से भी ज्यादा पीड़ित और दुखी मालूम पड़ते हैं। अज्ञानी कभी हंसता भी है, ये तो हंसते भी नहीं। अज्ञानी कभी थोड़ी मस्त चाल भी चल लेता है, क्षणभंगुर ही सही, लेकिन ये तो क्षण भर के लिए भी मस्त चाल नहीं चलते। ये पहाड़ ढो रहे हैं। और ये लंगड़े हो गए हैं। पक्षाघात इन्हें लग गया है। इन्होंने अपने ही हाथ-पैर काट लिए हैं। मगर ये मजा ले रहे हैं कि हाथ-पैर काट कर इन्होंने अहंकार को काट दिया है, छाया को काट दिया है। भूल कर इस भ्रांति में मत पड़ना। छाया को काटने की जरूरत ही नहीं। इतना समझ लेना पर्याप्त है कि छाया छाया है। बस, इस समझ में ही छाया का अंत हो गया। इस समझ में ही छाया की तुम पर जकड़ खो गई।
तुम पूछते होः "अहंकार के पास कोई संजीवनी है क्या?"
अहंकार के पास कोई संजीवनी नहीं है। लेकिन तुमने अहंकार को कभी आमने- सामने करके देखा नहीं, बस यही उसका बल है। मूर्च्छा, तुम्हारी मूर्च्छा अहंकार का बल है, और तुम्हारी जागृति अहंकार की मृत्यु हो जाएगी। जाग कर जरा देखो भी कि किसे तुम अहंकार कह रहे हो? कभी आंख खोल कर भीतर तलाशो कि अहंकार कहां है? और तुम नहीं पाओगे। कभी किसी ने नहीं पाया। मैंने खोजा और नहीं पाया; और जिन्होंने भी खोजा उन्होंने नहीं पाया। भीतर जाओगे, जरा तलाश करोगे, तुम चकित हो जाओगे--किससे भयभीत थे? किससे लड़ते थे? दुश्मन तो कहीं दिखाई नहीं पड़ता!
लेकिन तुमने अहंकार तो खोजा नहीं है, तुमने संतों की बातें सुन ली हैं। साधु-सत्संग तुमने कर लिया है। तुमने वेद-उपनिषद-गीता-कुरान पढ़ लिए हैं। और उन सबमें कहा गया हैः जब तक अहंकार समाप्त न हो, तब तक परमात्मा का अनुभव न होगा। इन बातों को सुन कर तुम्हें लोभ पकड़ा कि अहंकार को समाप्त करें। और ध्यान रखना, शास्त्रों में जो कहा है, गलत नहीं कहा है, बिल्कुल ठीक कहा है, कि जब तक अहंकार समाप्त न हो, तब तक परमात्मा का अनुभव नहीं होगा। लेकिन तुम जो समझ रहे हो, वह नहीं कहा है। यह नहीं कहा है कि अहंकार को काटो, मारो, अहंकार को नष्ट करो, तब परमात्मा मिलेगा। इतना ही कहा है कि जानो तो अहंकार समाप्त हो जाता है। जानने में समाप्ति है। दीया जला लो जरा ध्यान का, या प्रार्थना का, जरा नाच होने दो, उसी रोशनी में अहंकार नहीं हो जाता है, समाप्त हो जाता है। काटने से नहीं कटता, देखने से कट जाता है। और जहां अहंकार कट गया, वहां परमात्मा विराजमान हो जाता है।
ठीक कहा है शास्त्रों ने, लेकिन तुम शास्त्रों को समझते वक्त भी तो अपने ढंग से ही समझोगे न! तुम व्याख्या अपनी ही थोपोगे न! तुम्हारा शास्त्र, तुम्हारे ही भीतर जो पड़ा हुआ है, उसकी ही गूंज बन जाता है। तुम्हारा शास्त्र वह नहीं कह पाता जो कहना चाहता है, वही तुम समझ लेते हो जो तुम समझ सकते हो।
एक स्कूल में एक शिक्षिका ने एक बच्चे से पूछा... समझाया बहुत उसने हाथी के संबंध में, कि हाथी सबसे विशालकाय जानवर है। हाथी की कई कहानियां बताईं। पंचतंत्र की पुरानी कहानी बताई कि एक बार सिंह को यह सनक सवार हुई कि जाकर लोगों से पूछ लूं कि जंगल का राजा कौन है? शायद चुनाव हो रहा होगा आदमियों में कहीं! गांव से खबरें आ गई होंगी कि वहां चुनाव हो रहा है। उसको भी वहम पकड़ा होगा कि पता नहीं मुझे लोग राजा मानते हैं या नहीं मानते हैं?

जमाने बदल गए, अब राजा रहे नहीं। पूछ लूं एक बार, मत ले लूं जंगल के जानवरों का। उसने लोमड़ी से पूछा कि मैं राजा हूं या नहीं? कौन है राजा? लोमड़ी ने कहा, आपको भी शक होने की बात है क्या? आप राजा हैं, सदा से राजा हैं, सदा राजा रहेंगे। यह पागल आदमियों की फिकर छोड़ो, हम इस झंझट में नहीं पड़ते, हम लोकतंत्र इत्यादि में नहीं मानते। तुम राजाधिराज, तुम महाराजा हो! और किसी से पूछा, और किसी से पूछा, और फिर हाथी से जाकर पूछा, कि गजराज, तुम्हारा क्या ख्याल है? इस जंगल का सम्राट कौन है? हाथी ने सिंह को अपनी सूंड़ में फंसाया और कोई तीस फीट दूर उठा कर फेंक दिया। एक चट्टान से उसका सिर टकराया, जमीन से उठ कर उसने धूल झाड़ी और हाथी से कहा कि यह भी खूब रही, अगर तुम्हें ठीक उत्तर मालूम नहीं, तो कह देते! इतना नाराज हो जाने की क्या जरूरत थी?
यह कहानी शिक्षिका ने बच्चों को सुनाई और फिर बच्चों से पूछा--और भी कहानियां सुनाईं, यह बात उनके मन में बिठाने को कि हाथी बड़ा शक्तिशाली है-- फिर एक छोटे से बच्चे से पूछा कि तू बता लालू, कि सिंह किससे डरता है? उस बच्चे ने खड़े होकर कहा, सिंहिनी से।
बच्चों की अपनी समझ है। वह देखता है कि हर आदमी स्त्री से डरता है। पिता मां से डरते हैं, भाई भाभी से डरते हैं, हर आदमी स्त्री से डरता है! उसने अपना एक निष्कर्ष लिया हुआ है कि सिंह और किससे डरेगा? वे सब कहानियां वगैरह जो सुनाई थीं हाथी की, व्यर्थ गईं। उसकी अपनी समझ है। वह अपनी समझ से डगमग नहीं होता। उसने अपना एक निर्णय कर लिया है।
तुम जब शास्त्र पढ़ते हो, तुम अपनी समझ से डगमग नहीं होते। तुम शास्त्र में अपनी समझ थोप देते हो।
और शास्त्र को पढ़ कर तुम्हें ज्ञान तो हो ही नहीं सकता। शास्त्र को पढ़
कर कहीं किसी को ज्ञान हुआ है? लेकिन लोभ होता है। लोभ से झंझट खड़ी हो जाती है। शास्त्र में सुना, या सदगुरु से सुना, शास्ता से सुना कि अहंकार छूट जाए तो परमात्मा मिल जाए। परमात्मा मिलने का लोभ तुम्हारे भीतर पकड़ता है, कि किसी तरह परमात्मा पा लूं। परमात्मा पाने के लोभ में अब तुम इस कोशिश में लग जाते हो--अहंकार को छोड़ना पड़ेगा! अहंकार कैसे छोडूं? कैसे मिटाऊं? कैसे लडूं? कैसे झगडूं? उपवास करके मार डालूं अहंकार को? घर छोड़ दूं? त्याग करके मार डालूं अहंकार को? क्या करूं? बस, उपद्रव शुरू हो गया। समझ तो पैदा नहीं हुई, लोभ ने और नासमझी खड़ी कर दी।
अहंकार मिटता है, मिटाने से नहीं, देखने से, साक्षात्कार से, बोध से, समझ से। अहंकार को समझो। और समझने के लिए जरूरी है कि तुम अहंकार से भागो भी मत। क्योंकि भागने वाला समझ नहीं सकता। भयभीत आदमी कभी नहीं समझ सकता। जिससे तुम भयभीत हो गए, उसे तुम कभी आंख भर कर देख भी न पाओगे। जिससे तुम भयभीत हो, उससे तुम आंखें बचाने लगते हो। जिससे तुम डर गए, उससे तुम भागने लगते हो, छिपने लगते हो, बचने लगते हो।
तो मैं तुमसे यह कहना चाहता हूं कि अहंकार से भागो भी मत, अहंकार को जीओ। है अभी, तो जीओ! क्योंकि जीने से ही देखा जा सकेगा। छिपाओ मत, अनुभव करो। जहां-जहां अहंकार सिर उठाता है, उस सिर उठाने को जीओ। झुठलाओ मत। ऊपर-ऊपर से झुको मत। यह मत कहो कि मैं तो विनम्र आदमी हूं। भीतर अहंकार सिर उठा रहा है, उसकी तरफ पीठ किए खड़े हो, ताकि दिखाई नहीं पड़ेगा; न दिखाई पड़ेगा, न पता चलेगा; इस तरह भूल-भूल कर एक दिन समाप्त हो जाएगा। यह शुतुरमुर्गी- न्याय काम नहीं करेगा।
कहते हैं, शुतुरमुर्ग का दुश्मन जब उस पर हमला करता है, तो वह रेत में सिर गपा कर खड़ा हो जाता है। उसका तर्क यह है कि न दिखाई पड़ेगा दुश्मन, न होगा। जो दिखाई पड़ता है, वही है। जो दिखाई नहीं पड़ता है, वह कैसे हो सकता है?
यही तो नास्तिक कहते हैं। वे कहते हैंः ईश्वर दिखाई नहीं पड़ता, तो होगा कैसे? दिखा दो, तो मान लें। उनका तर्क भी शुतुरमुर्ग का तर्क है। शुतुरमुर्ग सिर को रेत में गड़ा लिया है, अब वह कहता है कि दिखाई ही नहीं पड़ता दुश्मन, तो हो ही नहीं सकता।

लेकिन दिखाई पड़ने से होने की कोई अनिवार्यता नहीं है। तुमने आंख बंद
कर ली है, इसलिए दिखाई नहीं पड़ता है। जिनको तुम विनम्र कहते हो, निर-अहंकारी कहते हो, साधु कहते हो, अक्सर ऐसे ही लोग हैं, जिन्होंने शुतुरमुर्ग की तरह रेत में सिर गड़ा लिया है।
मैं तुमसे यह नहीं कहूंगा। शुतुरमुर्ग होने से बचना! शुतुरमुर्ग काफी हैं इस समाज में। इस देश में तो बहुत! इस देश में तो शुतुरमुर्ग इस तरह फैल गए हैं कि हर जगह उन्होंने अड्डा जमा लिया है। वे हमेशा हाथ जोड़े खड़े हैं, हमेशा झुके खड़े हैं, और भीतर भयंकर अहंकार की ज्वाला जल रही है। इनसे बचना। और ऐसे बनने से बचना।
मैं तुमसे कहता हूं, अहंकार को जीओ। अहंकार पीड़ा लाएगा, शुभ है; क्योंकि पीड़ा से ही कोई जागता है। अहंकार तुम्हें जलाएगा, शुभ है; दग्ध करेगा, शुभ है। अहंकार तुम्हारे भीतर घाव बनाएगा, शुभ है। क्योंकि यही सारे घाव, ये सारी पीड़ाएं, ये सारे नरक झेल-झेल कर ही एक दिन तुम्हें अहंकार की समझ आएगी कि अहंकार है क्या! उस समझ में ही अहंकार तिरोहित हो जाता है।
व्योम पर छाया हुआ तम तोम, हे हिम हंस, तू जाता कहां है?

नील-नीलम नभ निमंत्रण दे
किसी को, तो करे इनकार कैसे
आंख जिनके, हो न उनको
चांद-सूरज की किरण से प्यार कैसे,
ठीक है, दिल पास रखता हूं,
समझता हूं सभी कुछ, आज लेकिन,
व्योम पर छाया हुआ तम तोम, हे हिम हंस, तू जाता कहां है?

आसमानी स्वप्न ललचाते उसे हैं
भूमि जिसकी जन्म-गोदी,
आग से खिलवाड़ करने को
तरसता ही सदा है जल-विनोदी,
और फिर डैने मिले, इनको थका आ,
तोड़ आ, चाहे जला आ,
बेदिए कीमत यहां वरदान कोई मुफ्त में पाता कहां है? व्योम पर छाया हुआ तम तोम, हे हिम हंस, तू जाता कहां है?

है ठहर तब तक फलक पर
जब तलक है जोर बाजू का सलामत,
बिजलियों की हर लहर, जैसे जमीं
की ओर गिरने की अलामत,
दग्ध पर की, दग्ध स्वर की कद्र
केवल एक धरती जानती है,
लाख आकर्षित किसी को भी करे आकाश अपनाता कहां है?
व्योम पर छाया हुआ तम तोम, हे हिम हंस, तू जाता कहां है?

अहंकार से मुक्त होने के लिए पहले अहंकार को जी लेना जरूरी है। अहंकार को फैलाने दो डैने, खोलने दो पंख, उड़ने दो आकाश में। अहंकार को अपनी यात्रा कर लेने दो--धन की, पद की, सब तरह की। जल्दी न करो। अहंकार जो करना चाहता है, उसे करने दो। उसी करने में ही तो तुम अहंकार को पहचानोगे। उसी करने में ही तो अहंकार से तुम्हारी समझ का नाता जुड़ेगा।
आसमानी स्वप्न ललचाते उसे हैं
भूमि जिसकी जन्म-गोदी,
चुनौतियां हैं! हम जमीन पर जन्मे हैं, आकाश का निमंत्रण और चुनौती हमें मिलती है। हम वही तो पाना चाहते हैं जो हम नहीं हैं। यही तो सारा संसार है--हम वही पाना चाहते हैं जो हम नहीं हैं। और हम पा केवल वही सकते

हैं जो हम हैं। यही तो उपद्रव है। यही तो सारा गणित है। जो हमारा नहीं है, उसे हम पाना चाहते हैं। और उसे हम कभी पा न सकेंगे। जो हमारा है, वह मिला ही हुआ है। उसे पाने की कोई जरूरत नहीं है।
मगर जो हमारा नहीं है और उसे पाने की आकांक्षा है अभी, उसके पीछे दौड़ना होगा, दौड़ना होगा और गिरना होगा, फिर उठना होगा और दौड़ना होगा। दौड़-दौड़ कर गिरना होगा। हर बार आशा करनी होगी, हर बार विषाद से भरना होगा। बहुत बार चोट खा-खा कर एक दिन यह बोध जगेगा--चोट पर चोट, चोट पर चोट--एक दिन यह बोध पैदा होगा, तुम्हारे भीतर, कि जो मेरा नहीं है, वह मेरा कभी नहीं हो सकेगा। वह हो ही नहीं सकता। वह प्रकृति का नियम नहीं है। तो अब मैं उसकी तरफ मुडूं जो मेरा है। उसी दिन अंतर्यात्रा शुरू होती है। उसी दिन संन्यास।
व्योम पर छाया हुआ तम तोम, हे हिम हंस, तू जाता कहां है?
नील-नीलम नभ निमंत्रण दे
किसी को, तो करे इनकार कैसे
आंख जिनके, हो न उनको
चांद-सूरज की किरण से प्यार कैसे,
ठीक है, दिल पास रखता हूं,
समझता हूं सभी कुछ, आज लेकिन,
व्योम पर छाया हुआ तम तोम, हे हिम हंस, तू जाता कहां है?
लेकिन जितना अंधेरा छाया होता है आकाश में, उतनी ही चुनौती! जितना शिखर ऊंचा होता है, उतनी चुनौती! जितना पाना मुश्किल होता है, उतनी चुनौती! समझ लेना इस तर्क को। अहंकार असंभव में उत्सुक होता है, संभव में नहीं। संभव में अहंकार को रस ही नहीं होता है। पूना की छोटी सी पहाड़ी है, उस पर चढ़ जाओ, इसमें अहंकार को कोई रस नहीं। उस पर जाकर तिरंगा झंडा गाड़ दो, कोई अखबार वगैरह में तुम्हारी खबर न छपेगी। यह भला हो सकता है कि कोई जो सुबह-सुबह घूमने चले आए हों पहाड़ी पर, वे पुलिस में खबर करें कि इस आदमी का दिमाग खराब हो गया है। एवरेस्ट पर चढ़ कर अगर झंडा गाड़ो, तो तुम जगत-विख्यात हो जाते हो। और एवरेस्ट में और पूना के छोटे से टीले में फर्क गुण का नहीं है, केवल परिमाण का है। यह जरा छोटा है, वह जरा बड़ा है। लेकिन हिमालय के एवरेस्ट शिखर पर झंडा गाड़ देता है जब कोई आदमी, हिलेरी या तेनसिंग, सारे जगत में ख्याति हो जाती है। इतिहास में नाम ठहर जाता है। और मजा यह है कि वहां कुछ और पाने को नहीं है। बस झंडा ही गाड़ने की जगह है, वहां ज्यादा जगह भी नहीं है। वहां रुकने का भी कुछ नहीं है, पाने का भी कुछ नहीं है। लेकिन फिर मामला क्या है? हिलेरी से किसी ने पूछा, जब वह एवरेस्ट शिखर की विजय करके लौटा--कि वहां था क्या पाने का, आप इतने परेशान क्यों हुए?
उसने कहा, परेशान! एवरेस्ट की मौजूदगी बेचैनी का कारण थी। मनुष्य ने उसको भी जीत लिया, हमने एवरेस्ट को भी हरा दिया। पाया क्या? पाने का कोई सवाल ही नहीं है। इतना ही काफी था कि एवरेस्ट है और अनजीता पड़ा है। इसको जीतना ही होगा!
अहंकार असंभव में रस लेता है--जो नहीं हो सकता। और क्या नहीं हो सकता?
इस दुनिया में सबसे असंभव बात एक है, वह है--पद से तृप्ति, धन से तृप्ति; न कभी हुई है, न कभी हो सकती है। सारे बुद्धों का जीवन कह रहा है--नहीं हुई; और सारे सिकंदरों का जीवन भी कह रहा है कि नहीं हुई। साधु-असाधु सब एक बात में सहमत हैं कि धन से और पद से किसी की तृप्ति नहीं हुई। बाहर की यात्रा से कभी कोई शांत नहीं हुआ, आनंदित नहीं हुआ। बाहर की यात्रा का कोई अंत ही नहीं है। चलो, और चलो, और गिरो, और गिरो--और मर जाओ। बाहर के सब रास्ते कब्र पर समाप्त होते हैं, अमृत तक बाहर का कोई रास्ता नहीं जाता। अमृत तुम्हारे भीतर मौजूद है, लेकिन जो मौजूद है उसमें रस नहीं है। अहंकार का मजा ही यह है कि जो मेरे पास नहीं, वह पाकर रहूं।
तुमने देखा नहीं, तुम एक कार खरीद लेते हो। जब तक नहीं थी, तब तक उसके सपने देखे, विचार किया। जब रास्ते पर गुजरती दिख जाती थी, एक बिजली कौंध जाती थी, तड़प जाते थे। फिर तुम्हारे पोर्च में आकर खड़ी हो गई। एकाध दिन झाड़ा-पोंछा, एकाध दिन उसके आस-पास बड़ी शान से घूमे, बाजार गए। फिर दो-चार

दिन में सब शांत हो गई बात, खत्म हो गई। रस ही असल में कार में नहीं था। रस था--जो तुम्हारे पास नहीं है। अब तुम्हारे पास है तो रस कैसे हो सकता है? तुमने देखा नहीं कि जिस स्त्री के प्रेम में तुम पड़ जाते हो, उसे पाने में जितनी कठिनाई लग जाए, उतना ही प्रेम बढ़ता जाता है। मजनू को अगर लैला मिल गई होती, तो मजनू का नाम भी तुमको पता नहीं होता। वह तो लैला नहीं मिली। यही मजनू की कहानी का सारा सार है। और बहुत संभव है कि लैला मिल गई होती तो तलाक भी हुआ होता। कहानियां बड़े अजीब ढंग से चलती हैं। असली कहानियों का ढंग और है। नहीं मिली तो मजनू रोता ही रहा, तड़फता ही रहा, जंगलों-जंगलों, पहाड़ों, लैला-लैला पुकारता रहा! तुमने किसी पति को ऐसा करते देखा है? अगर किसी पति से पूछो तो शायद उसने बीस साल से पत्नी का चेहरा ठीक से देखा भी नहीं है।
तुम भी पति हो, तुम भी पत्नी हो, कभी आंख बंद करके अपने पति का या पत्नी
का चेहरा याद करने की कोशिश करना। तुम मुश्किल में पड़ जाओगे। फिल्म अभिनेत्रियों के चेहरे याद आएंगे, मगर अपनी पत्नी का चेहरा याद नहीं आएगा कि कैसा है। अगर जरा ज्यादा गौर से देखा तो जो थोड़ी धुंधली-धुंधली सी याद आती थी, वह भी खो जाएगी।
जो मिल जाता है उसमें रस खो जाता है। रस ही हमारा उसमें है जो हमारे पास नहीं है। इसका मतलब हुआ कि अहंकार तो कभी भी तुम्हें, कहीं भी आनंदित नहीं होने देगा। उसका रस ही उसमें है जो तुम्हारे पास नहीं है--और वही दुख है। अहंकार का रस ही तुम्हारे जीवन का दुख है।
आसमानी स्वप्न ललचाते उसे हैं
भूमि जिसकी जन्म-गोदी,
भूमि को कौन देखता है? उस पर तो हम पैदा हुए, चलते, रहते--भूल ही जाते हैं। आकाश की तरफ हम देखते हैं! आकाश में हमारा दिल भरमाता है!
आग से खिलवाड़ करने को
तरसता ही सदा है जल-विनोदी,
जो पानी में पैदा हुआ है, वह आग से खिलवाड़ करने का रस रखता है। यही अहंकार है। तुम जो नहीं हो, वह होने की आकांक्षा अहंकार है। और यह हो नहीं सकता, इसलिए अहंकार विषाद में ले जाता है। जिस दिन विषाद का अनुभव कर-कर के तुम सजग हो जाओगे और यह आकांक्षा व्यर्थ हो जाएगी, इसका तुम मूल सूत्र देख लोगे, उस दिन कुछ करना नहीं पड़ेगा अहंकार मिटाने को, बात खत्म हो गई। उस दृष्टि में ही रूपांतरण है।
और फिर डैने मिले, इनको थका आ,
तोड़ आ, चाहे जला आ,
बेदिए कीमत यहां वरदान कोई मुफ्त में पाता कहां है?
व्योम पर छाया हुआ तम तोम, हे हिम हंस, तू जाता कहां है?
स्मरण रखो--
बेदिए कीमत यहां वरदान कोई मुफ्त में पाता कहां है?
और यही अड़चन हो जाती है। उपनिषद पढ़ लेते होः छोड़ो अहंकार! बाइबिल पढ़ लेते होः छोड़ो अहंकार! मुझे सुन लेते होः छोड़ो अहंकार! और तुम सोचते हो, तो छोड़ ही दें न! मगर वह छूटता नहीं। क्यों?
बेदिए कीमत यहां वरदान कोई मुफ्त में पाता कहां है?
तुमने अभी कीमत नहीं चुकाई। अभी अहंकार की पीड़ा ही तुमने नहीं भोगी। अभी अहंकार का जहर तुमने नहीं पीया। अभी अहंकार ने तुम्हें इतना नहीं सता दिया है कि तुम छोड़ सको।
इसीलिए प्रताप, तुम दबा-दबू कर बैठ जाते हो--सरका दिया जरा, कपड़े में छिपा दिया जरा--फिर अहंकार निकल आता है। अहंकार के पास कोई संजीवनी नहीं है, सिर्फ तुम्हारा अनुभव अभी अहंकार का कच्चा है, अपरिपक्व है।
है ठहर तब तक फलक पर
जब तलक है जोर बाजू का सलामत,
तुम देखते हो, कितने ही बड़े डैने हों और कितने ही बलशाली पंख हों, आकाश
पर कितनी देर रुक सकोगे?
है ठहर तब तक फलक पर

जब तलक है जोर बाजू का सलामत,
जल्दी ही थकोगे। थकोगे और गिरोगे। जोर बाजू का सीमित है। तुम देखते हो, पदों पर लोग रुक जाते हैं थोड़ी देर तक--जब तक जोर बाजू का सलामत--फिर जरा सुस्त हुए, ढीले हुए कि किसी ने टांग खींची! क्योंकि दूसरे भी मौजूद हैं, जो पूरे वक्त उत्सुक हैं कि वे सिंहासन पर बैठें। तुमने एक मजा देखा, राजनीति में दुश्मन तो दुश्मन होते ही हैं, मित्र भी दुश्मन होते हैं। धर्म में मित्र तो मित्र होते ही हैं, दुश्मन भी मित्र होते हैं! और राजनीति में ठीक उलटा है। जो राजनैतिक पद पर पहुंच जाता है, उसका कोई मित्र नहीं बचता, उसके सब शत्रु होते हैं। क्योंकि अब उसकी ही वजह से मित्र आगे नहीं बढ़ पा रहे हैं, अटक गए हैं। वह जब तक सिंहासन पर बैठा है, तब तक वे अटके हुए हैं। वे सब प्रार्थना कर रहे हैं कि हे प्रभु, अब इनको उठाओ! कि अब बहुत देर हुई जा रही है! कि अब इनको राजघाट पहुंचाओ! कि हम शाही जलसा करेंगे, सैन्य-विदाई देंगे--सब करेंगे--मगर जल्दी करो, बहुत देर हुई जा रही है!
राजनीति में कोई मित्र हो नहीं सकता। वहां तो गलाघोंट प्रतियोगिता है। और यह सारा जगत राजनीति है। मेरे देखे अहंकार का फैलाव राजनीति है। और अहंकार की समझ से जो मुक्ति फलित होती है, वही धर्म है। बस, दुनिया में दो ही खेल हैं। एक अहंकार का खेल है और एक बोध का। अहंकार का खेल राजनीति है, बोध का खेल धर्म है। अहंकार का खेल सिर्फ दुख में ले जाता है, पीड़ा में-- तुम्हें भी और दूसरों को भी। और धर्म का खेल तुम्हें भी आनंद में ले जाता है और दूसरों को भी।
है ठहर तब तक फलक पर
जब तलक है जोर बाजू का सलामत,
बिजलियों की हर लहर, जैसे जमीं
की ओर गिरने की अलामत,
और जल्दी ही बिजली की हर लहर कहेगी कि--अब गिरा, अब गिरा, तब गिरा!
दग्ध पर की, दग्ध स्वर की कद्र
केवल एक धरती जानती है,
अपनी भूमि में वापस लौट आना होगा। अपने में ही गिर जाना होगा।
लाख आकर्षित किसी को भी करे आकाश अपनाता कहां है?
व्योम पर छाया हुआ तम तोम, हे हिम हंस, तू जाता कहां है?
लेकिन जाना पड़ेगा! दूसरों से यह ज्ञान उधार नहीं लिया जा सकता है। कहते हैं न, दूध का जला छाछ भी फूंक-फूंक कर पीता है। लेकिन दूध से जले तब न! तुम दूध से अभी जले नहीं हो! यही तुम्हारी अड़चन है। तुम अपने अहंकार को छिपाओ मत, दबाओ मत--जीओ! भयभीत मत होओ। इस जगत में कुछ भी मुफ्त नहीं मिलता है। इस जगत में हर चीज के लिए कीमत चुकानी ही पड़ती है। और अहंकार से मुक्त होने की एक ही कीमत हैः अहंकार का नरक जीना पड़ेगा।
और तब तुम अचानक पाओगे कि न कोई संजीवनी है अहंकार के पास, न कोई जीवन-ऊर्जा है। अहंकार है ही नहीं। परिपक्व बोध में, अनुभव में, अहंकार अपने आप गिर जाता है।

आके पत्थर तो मेरे सेहन में दो-चार गिरे,
जितने उस पेड़ के फल थे, पसे-दीवार गिरे।
मुझे गिरना है तो मैं अपने ही कदमों में गिरूं,
जिस तरह साया-ए-दीवार पे दीवार गिरे।
तीरगी छोड़ गए दिल में, उजाले के खतूत,
ये सितारे मेरे घर टूट के बेकार गिरे।
देख कर अपने दरोबाम लरज जाता हूं,
मेरे हमसाये में जब भी कोई दीवार गिरे।
वक्त की डोर खुदा जाने कहां से टूटे,
किस घड़ी सर पे ये लटकी हुई तलवार गिरे।
क्या कहूं दीदा-ए-तर, यह तो मेरा चेहरा है, संग कट जाते हैं बारिश की जहां धार गिरे।

हाथ आया नहीं कुछ रात की दलदल के सिवा,
हाय किस मोड़ पे ख्वाबों के परस्तार गिरे।

अहंकार में चलो। चलना पड़ेगा! यद्यपि हाथ कुछ नहीं आएगा। वही हाथ आना है। अहंकार में चल कर जब तुम पाते हो--हाथ कुछ नहीं आया, तो एक बात कम से कम हाथ आ गई, एक अनुभव हाथ आ गया कि अहंकार की यात्रा व्यर्थ है।
हाथ आया नहीं कुछ रात की दलदल के सिवा,
हाय किस मोड़ पे ख्वाबों के परस्तार गिरे।
अहंकार सिर्फ सपने देखना जानता है। और आज नहीं कल सब सपने गिर जाते हैं। जिस दिन तुम्हारे सपने सब गिर जाते हैं--मेरे कहने से नहीं, तुम्हारे जीवंत अनुभव से--उसी दिन अहंकार से मुक्ति है।

तीसरा प्रश्नः विदा की इस पूर्व-संध्या में काठमांडू के एक मित्र डा. दुर्गा प्रसाद भंडारी, अंग्रेजी विभाग अध्यक्ष, टी.यू. की बहुत याद आती है। पूना से किसी नये मित्र के संन्यास लेकर लौटने पर वे आनंद से नाचते हैं। आपके विरोध में बोलने वाले से हाथापाई पर उतर आते हैं। पर जब कभी आपके पास आने का अवसर आता है, तो उन्हें बड़ी घबड़ाहट होने लगती है। उसी प्रकार शिवपुरी बाबा के कुछ शिष्य भी आपके प्रेम-दीवाने हैं। पर उनकी ऐसी मान्यता है कि उनके आपके पास आकर संन्यास लेने से अपने पूर्व गुरु के प्रति अवज्ञा होगी। ऐसे अनेक मित्र नेपाल में हैं जो आपके प्रति गहरे भाव से भरे हैं, पर आपके पास आने से बचते रहते हैं। प्रेम के साथ इतना गहरा भय क्यों जुड़ा होता है?

प्रेम का अर्थ ही होता हैः तुम्हें अपना अहंकार छोड़ना होगा। वही भय है। प्रेम का अर्थ होता है कि तुम्हें मरना होगा। वही भय है। प्रेम मृत्यु है और पुनर्जन्म भी। लेकिन मृत्यु पहले है, पुनर्जन्म पीछे। सूली पहले है, सिंहासन पीछे है। सूली की आड़ में सिंहासन छिपा है।
तो जो भी मेरे प्रति प्रेम से भरेंगे, वे भयभीत भी होंगे, वे आने से डरेंगे भी। क्योंकि अगर आए तो फिर लौटना नहीं होगा। आए तो फिर लौटना नहीं हो सकता है; फिर मेरे साथ डुबकी लेनी ही पड़ेगी। फिर जिंदगी का क्या रंग होगा, क्या ढंग होगा, कौन जाने?
सबने एक तरह की जिंदगी बना ली है। एक तरह की व्यवस्था खड़ी कर ली है। एक तरह की सुरक्षा! मुझसे संबंध जुड़ा तो सब अस्तव्यस्त होगा, अराजकता हो जाएगी। इससे भय होता है। भय स्वाभाविक है। भय इसी बात का सबूत है कि सच में ही मेरे प्रति प्रेम जगा है। जो मेरे पास बिना भय के आ जाता है, वह इसीलिए आ पाता है कि या तो इतना साहसी है कि भय के बावजूद आ जाता है, या प्रेम ही नहीं है, इसलिए भय का कोई कारण ही नहीं है। मजे से आ जाता है। जैसे और जगह जाता है, ऐसे यहां भी आ जाता है।
तुम पूछते होः डा. दुर्गा प्रसाद भंडारी आने में डरते क्यों हैं? और इतना प्रेम उन्हें है कि जब कोई संन्यास लेकर लौटता है काठमांडू तो वे नाचते हैं आनंद में। और मेरे खिलाफ कोई कुछ बोलता है तो हाथापाई पर उतर आते हैं। पर यहां आने का अवसर आता है तो घबड़ा जाते हैं और आने से बच जाते हैं।
उनसे जाकर कहना कि अब बचने का कोई उपाय नहीं है। वे यहां नहीं आए, लेकिन मैं वहां पहुंच गया हूं। थोड़ी देर-अबेर कर सकते हो। मुझे चुनने में वे देर लगा रहे हैं और मैंने उन्हें चुन लिया है। थोड़ी-बहुत देर से कुछ फर्क नहीं पड़ेगा। अच्छा यही होगा, अब देर करना व्यर्थ है। यह संन्यास का पागलपन होकर ही रहेगा। उनसे कहना, मन तो रंग ही गया है, अब तन भी रंग डालो। और भय स्वाभाविक है। मगर एक बार आ जाएंगे तो भय चला जाएगा। सूली की आड़ में सिंहासन है, उनको कह देना।
संन्यास में पहले तो मृत्यु घटती है, शिष्य अपने मिटने की घोषणा करता है। संन्यास और क्या है? इस बात की घोषणा है शिष्य की तरफ से कि अब से मैं नहीं। अब से गुरु की आज्ञा आज्ञा होगी। अब से गुरु के चरणचिह्न मार्ग के

सूचक होंगे। अब अगर मेरा मन कुछ कहेगा तो मैं नहीं सुनूंगा, अगर वह गुरु के विपरीत जाता होगा। अब एक ही सुनने का उपाय रह गया, वह गुरु है। अपने से ज्यादा मूल्यवान किसी को बना लेने का अर्थ होता है गुरु की तलाश। अपने को इनकार किया जा सकता है, लेकिन गुरु को इनकार नहीं किया जा सकता। इसलिए हिम्मतवर, साहसी और जुआरी ही शिष्य हो पाते हैं।
उनसे कहना, एक बार आ जाओ! मैं राह देखता हूं। आना तो पड़ेगा ही! जितनी देर करोगे, उतना समय व्यर्थ गया। उतना पीछे पछताओगे। क्योंकि जो यहां आकर डुबकी लगा लेते हैं, वे फिर मुझसे कहते हैं कि अब हमें भरोसा नहीं आता कि हम इतनी देर तक आए क्यों नहीं? इतनी देर तक हम डूबे क्यों नहीं? इतनी देर तक हम अपने आप को रोके कैसे रहे? बस इतना उनसे कह देना।
और उनसे कहना कि तुम्हें सिंहासन भी पीछे छिपा दिखाई पड़ रहा है, थोड़ी हिम्मत जुटाओ। बस यहां आ जाओ, बाकी काम अपने से हो जाएगा।
और जो मित्र सोचते हैं कि शिवपुरी बाबा के शिष्य हैं और मेरे प्रेम में भी दीवाने हो रहे हैं, अब उन्हें भय है कि संन्यास लेने से कहीं पूर्व गुरु के प्रति अवज्ञा न हो जाए। मैं जो काम कर रहा हूं, वह वही है जो शिवपुरी बाबा का काम था। वे अगर मेरे प्रेम में दीवाने हो सके हैं तो सिर्फ इसीलिए कि जो उन्होंने शिवपुरी बाबा में पाया था, वह फिर उन्हें मुझमें दिखाई पड़ा है। किसी भी सदगुरु का काम किसी अन्य सदगुरु के विपरीत नहीं है--असदगुरुओं के विपरीत है, सदगुरुओं के विपरीत नहीं है। शिवपुरी बाबा से मेरा लगाव है। इस सदी के वे उन थोड़े से लोगों में एक थे, जिन्होंने पाया। तो उनको कहना कि वे मुझमें शिवपुरी बाबा को ही पाएंगे। जरा भी चिंता न करें। अवज्ञा नहीं होगी। अगर वे न आए तो अवज्ञा होगी। थोड़ा पहचानें, थोड़ा खोजें। उनके गुरु प्रसन्न होंगे जहां भी होंगे। संभावना तो यही है कि शिवपुरी बाबा ने ही उनके भीतर इशारा किया होगा।
यहां बहुत लोग हैं, जो इस तरह के इशारे से आए हैं। गुरजिएफ के बहुत से शिष्य यहां आए हैं। वे गुरजिएफ के इशारे से आ रहे हैं। झेन परंपरा को मानने वाले बहुत से लोग आ रहे हैं, वे भी ऐसे ही इशारों से आ रहे हैं। जिनका इस जन्म में या किसी और जन्म में कभी किसी सदगुरु से साथ रहा है, वे आ ही जाएंगे।
उनका रुकना तर्कयुक्त मालूम होता है, लेकिन उसमें बहुत गहरी समझ नहीं है। वे शिवपुरी बाबा से ही पूछ लें अपनी प्रार्थना में! और मैं उनसे कहता हूं कि शिवपुरी बाबा को स्वीकार होगा। न केवल स्वीकार होगा, बल्कि शिवपुरी बाबा आनंदित होंगे। यहां जो मैं काम कर रहा हूं, वही काम है--और बड़े विराट पैमाने पर--जो शिवपुरी बाबा करना चाहते थे और नहीं संभव हो सका। समय पका नहीं था। अब समय पक गया है।
कहना उनसे कि मुझसे जो प्रेम लग रहा है, वह सूचक है।
पड़ता है पांव ठीक जो तारीक राह में
ऐ चश्म, रोशनी यह किसी नक्शे-पा की है
वह जो मेरी बात में पगे जा रहे हैं, रसविमुग्ध हो रहे हैं, वह सिर्फ इसीलिए कि उन्होंने पहले किसी और रोशन व्यक्ति को जाना और देखा था। नेपाल का धन्यभाग था कि शिवपुरी बाबा वहां रहे। अभी लोग जिंदा हैं नेपाल में जो शिवपुरी बाबा के चरणों में बैठे हैं। अगर उन्हें मुझसे रस लगा जा रहा है, तो उसका और कोई कारण नहीं है। जो उन्होंने शिवपुरी बाबा में पाया था, उसकी भनक फिर उन्हें सुनाई पड़ी है। फिर वही वीणा छेड़ी गई है।
उनसे कहना, मैं प्रतीक्षा करता हूं। कहना उनसे--

अब हेमंत-अंत नियराया, लौट न आ तू, गगन-विहारी

खोल ऊषा का द्वार झांकती
बाहर फिर किरणों की जाली,
अंबर की ड्योढ़ी पर अटकी
रहती फिर संध्या की लाली
राह तुझे देने को कटते,

छंटते, हटते नभ के बादल,
अब हेमंत-अंत नियराया, लौट न आ तू, गगन-विहारी

जिन सूनी, सूखी शाखों में
होता तू दिन एक गया था,
मुझको था मालूम कि उनको
मिलने को पहराव नया था,
नई-नई कोमल कोंपल से
लदी खड़ी हैं तरु-मालाएं
फूट कहीं से पड़ने को है सहसा कोयल की किलकारी अब हेमंत-अंत नियराया, लौट न आ तू, गगन-विहारी

हिम की चादर फाड़ उभरती
धरती फिर से तिनकों वाली
करती है अभिसार कुसुम के
रंगों से मधुबन की डाली,
जलज निकल कर जल के तल पर
जोह रहे हैं बाट किसी की,
कानों में कुछ भेद भरी-सी कह जाती है बात बहारी
अब हेमंत-अंत नियराया, लौट न आ तू, गगन-विहारी

नीड़ तैयार हो गया है। और जिन्हें भी इस नीड़ में निवास करना हो, वे आ जाएं, और देर न करें। जिन्हें भी खोज है, वे आ जाएं, और प्रतीक्षा न करें। प्रतीक्षा महंगी पड़ सकती है!

चौथा प्रश्नः अब तैयार हूं। तारीख तेरह अप्रैल को मेरा इकसठवां जन्मदिन है। आपके चरणों में संन्यस्त होने के लिए आ गिरूंगा। एक साल से करीब दफ्तर भी नहीं जाता; बच्चों को कारोबार सौंप दिया है। गत वर्ष में ही ले लेता था संन्यास, लेकिन रुक गया इस भय से कि बच्चे ठीक से कारोबार चलाएंगे या नहीं? आपकी कृपा से सब ठीक चल रहा है। अब आपके सान्निध्य में पूना में ही ठहरना चाहता हूं। आप ही मेरे शेष जीवन के एकमात्र आधार, सदगुरु और इष्टदेव हो।
मेरी ध्यान में कोई गति हो रही है, ऐसा महसूस नहीं होता। लगता है कि चिदाकाश में कोई रंगों की मिलावट होती है और मिटती है। कुछ विचार के बादल आते हैं और जाते हैं। और कुछ भी नहीं होता। समर्पण तो आपको कर चुका हूं, आप जो कहें वही मेरा कर्तव्य, वही मेरा काम। आज्ञा की प्रतीक्षा में!

पूछा है साधु आनंद चित्त ने।
मैं तो रोज ही प्रतीक्षा कर रहा था कि कब आओ! ध्यान की गति की चिंता न करो, संन्यास के होते ही अपूर्व गति होगी। संन्यास में जो बात बाधा थी, वही बात ध्यान में भी बाधा थी। उसमें भेद नहीं है। वही चिंता कि बच्चे सम्हाल पाएंगे कारोबार या नहीं? बच्चे घर-द्वार सम्हाल पाएंगे या नहीं? वही चिंता संन्यास में बाधा थी, वही चिंता ध्यान में भी बाधा थी। ध्यान और संन्यास भिन्न-भिन्न थोड़े ही हैं। संन्यास बाहर का ध्यान है, ध्यान भीतर का संन्यास है। वे एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। जिस दिन तुम संन्यास में डूबोगे, उसी दिन ध्यान में गति शुरू हो जाएगी।
संन्यास की तैयारी इस बात की सूचना है कि अब इस जगत की चिंताओं में और पड़े रहने की आकांक्षा नहीं रही। समय आ गया है--समय बहुत देर से आया हुआ है-- तुम्हीं देर कर रहे थे। फिकर न लो! और मन में यह जो रंगों की मिलावट होती मालूम होती है, और मन में ये जो विचार के बादल आते-जाते हैं, इनके केवल साक्षी बन जाना है। इन्हें सिर्फ देखना है और जानना है कि मैं इनसे पृथक हूं, इनसे अन्य हूं। जो व्यक्ति विचारों से अपने को अन्य जान लेगा, वह एक

दिन परमात्मा से अपने को अनन्य जान लेगा। विचार से अपने को अन्य जानना, परमात्मा से अनन्य जानने का उपाय है।
इन रंगों में खोना मत, कभी-कभी रंग बड़े सुहावने भी हो सकते हैं, कभी- कभी बड़े प्यारे भी हो सकते हैं, कभी बड़े मनमोहक। और ऐसी मूढ़ताएं प्रचलित हैं लोगों में कि शायद ये सब रंग और रोशनियां बड़े आध्यात्मिक अनुभव हैं! इनमें कुछ आध्यात्मिक नहीं है। ये सब मानसिक जगत के खेल हैं। ये सिर्फ सपने हैं, जिनका कोई मूल्य नहीं है। इनमें उलझना मत। इनमें कोई उलझे, तो इनके रंग निखरते जाते हैं। और-और मीठी-मीठी अनुभूतियां होने लगेंगी। और-और सुंदर दृश्य खुलने लगेंगे। उनमें खो मत जाना। द्रष्टा की याद करो! कोई दृश्य काम का नहीं है। बाहर के दृश्य व्यर्थ हैं, भीतर के दृश्य व्यर्थ हैं। बाहर के अनुभव व्यर्थ हैं, भीतर के अनुभव व्यर्थ हैं। मैं तुमसे कहना चाहता हूं--आध्यात्मिक अनुभव जैसी कोई चीज होती ही नहीं। सब अनुभव सांसारिक हैं। अध्यात्म का अर्थ ही हैः अनुभव के पार आ गए। अध्यात्म का अर्थ ही है कि अब अनुभव में रस नहीं रहा। अब तो अनुभव जिसको हो रहा है, उस द्रष्टा में ही रस है। जिस दिन सब दृश्य खो जाते हैं, सब अनुभव खो जाते हैं, और द्रष्टा अकेला रह जाता है, उस दशा को कैवल्य कहा है। वही दशा समाधि की है। यहां संन्यास के माध्यम से उसी दशा की यात्रा चल रही है।
बस ऐसा करो कि जल्दी तेरह अप्रैल आ जाए! ऐसे तेरह अप्रैल के लिए भी रुकने की कोई जरूरत नहीं है। हम कुछ न कुछ बहाने खोज कर टालते रहते हैं। आज का दिन उतना ही शुभ है जितना तेरह अप्रैल का होगा। अब और पंद्रह दिन क्यों सरकाते हो? और फिर किसको पता है, पंद्रह दिन में क्या हो जाए! जब शुभ करने की आकांक्षा हो तो क्षण भर मत टालना। और जब अशुभ करने की आकांक्षा हो तो जितना टाल सको, टालना। लेकिन हम ऐसा करते नहीं, इससे उलटा ही करते हैं। क्रोध होता है तो हम अभी करते हैं; प्रेम होता है तो हम कहते हैं--कल। किसी को गाली देनी हो तो हम अभी दे देते हैं और किसी से क्षमा मांगनी हो तो हम कहते हैं--विचार करेंगे।
बुरा करना हो तो रुकना। क्योंकि जिस चीज को भी करने के लिए तुम रुक जाओगे, शायद होगी ही नहीं। जैसे-जैसे समय बीतेगा, वैसे-वैसे उसका प्रभाव कम होता जाएगा। शुभ को करना हो तो तत्क्षण कर लेना। क्योंकि कौन जाने रुकने से उसका प्रभाव कम हो जाए।
अभी आनंद चित्त यहां आए हुए हैं, एक भाव-रंग में डूब गए हैं, अब घर लौटेंगे... अब वे कहते हैं कि आपकी कृपा से सब ठीक चल रहा है। मेरी कृपा का कोई हाथ नहीं है, क्योंकि मैं किसी का कारोबार नहीं चलाता हूं! ... अब पंद्रह दिन में कारोबार ठीक न चले, कुछ अड़चन आ आए, कोई बैंक का दीवाला निकल जाए, कोई आदमी उधार ले जाए और लौटाए न--हजार झंझटें हो सकती हैं। अब तुम मुझ पर छोड़ रहे हो! इन झंझटों से मैं तुम्हें निकालना चाहता हूं, तुम मुझे इन झंझटों में खींचना चाहते हो!
पंद्रह दिन में बहुत कुछ हो सकता है। सब कुछ हो सकता है। पंद्रह दिन में सारी दुनिया उलटी-सीधी हो सकती है। पंद्रह सेकेंड का भरोसा मत करो। और अब पुराने जन्मदिन से क्या लेना-देना? संन्यास नया जन्मदिन होगा! असली जन्मदिन होगा। इकसठ साल पहले तुम्हारी देह जन्मी थी, मैं तुम्हारी आत्मा को जन्म देने को तैयार हूं। तुम कहते हो, पंद्रह दिन रुको!
शुभ को जब भी करने का भाव आ जाए, तत्क्षण कर लेना। आदमी का मन बड़ा कमजोर है।
मार्क ट्वेन ने अपने संस्मरणों में लिखा है कि मैं एक दिन चर्च में गया। और चर्च के पुरोहित ने जो प्रवचन दिया, अदभुत था। दस मिनट सुनने के बाद मुझे ऐसा लगा, ऐसा मैंने कभी सुना नहीं। जेब में मैंने टटोल कर देखा तो सौ डालर का नोट था। मन में भाव आया कि सौ ही डालर आज दान कर जाऊंगा। कभी चर्च को दान भी नहीं दिया था, मगर उस दिन बड़ा भाव उठा, वह वाणी ऐसी थी!
फिर आधा घंटा सुनने के बाद उसे लगा कि इतना, सौ डालर देने जैसा नहीं है। सौ डालर बहुत होते हैं। कोई मुफ्त नहीं आते! हजार तरह के विचार उठे। असल में सौ डालर देने के ख्याल के कारण प्रवचन सुनना बंद ही हो गया। वह दूसरी बातों में लग गया कि ये सौ डालर! मजाक है? समझा क्या है? इसीलिए वह

प्रवचन से उसका तारतम्य भी टूट गया। आधे में उसने सोचा कि नहीं, सौ बहुत हैं, दस डालर से काम चल जाएगा। थोड़ी निश्चिंतता आई, थोड़ी हलकी सांस ली। मगर फिर और दस मिनट सुना, उसने सोचा कि दस डालर! सप्ताह भर मेहनत करो
तब दस डालर मिलते हैं। और यह आदमी कर ही क्या रहा है? लफ्फाजी कर रहा है! शब्द-शब्द-शब्द--और है क्या? जरा गौर से देखा कि आदमी है भी कुछ? कुछ दिखाई नहीं पड़ा। वह दस डालर के कारण दिखाई भी न पड़े। क्योंकि अगर दिखाई पड़े तो दस डालर देना पड़ेंगे। तो उसने सोचा कि एक डालर बहुत है। दुनिया में कोई ऐसा देता है! यहां इतने लोग बैठे हैं, एक डालर भी कोई पूरा नहीं देगा। कोई आठ आने देगा, कोई चार आने देगा, इस तरह लोग देंगे। चर्च की थाली जब फिरती है तो कौन पूरा सिक्का देता है! एक से काम चल जाएगा। तब जरा चित्त और निश्चिंत हुआ।
लेकिन जो चित्त सौ से दस पर लाया, दस से एक पर लाया, वह इतनी जल्दी राजी
तो नहीं हो जाता! प्रवचन पूरा होते-होते उसने सोचा कि मैंने किसी से कहा तो है नहीं कि एक दूंगा ही! यह तो मेरे भीतर की बात है। यह तो मेरी तरंग थी। कोई जबर्दस्ती है कि देना ही पड़ेगा? और तब उसने कहा कि नहीं देंगे, कुछ देने की आवश्यकता नहीं है। ये मुफ्तखोर! ये चर्च और ये सब--यह सब शोषण है! बड़ी बातें आने लगीं ख्याल में कि सब शोषण है। मार्क्स ने कहा है कि धर्म अफीम का नशा है। और जितने नास्तिकों के वचन मालूम थे, सब उसने दोहरा लिए-- वह एक डालर की वजह से दोहराने पड़े, नहीं तो एक डालर हाथ से जाता है! और तब उसने अपने संस्मरणों में लिखा है कि मैं प्रवचन पूरा होने के पहले ही उठ आया, क्योंकि मुझे यह डर लगा कि जब तक थाली मेरे सामने आएगी, कहीं मैं उसमें से कुछ उठा न लूं। कि बहती गंगा, हाथ धो लो!
ऐसा आदमी का मन है। ऐसा हम सबका मन है। मन का यह स्वभाव है। मन तुम्हें
उन सब बातों की तरफ जाने से रोकता है जहां मन को खतरा है। संन्यास में खतरा है, ध्यान में खतरा है। क्योंकि ये मन की आत्महत्याएं हैं। ये मन के पार जाने के उपाय हैं।
तो मैं तो कहूंगा आनंद चित्त, रुको मत। कहां की तेरह अप्रैल! एक अप्रैल के बाद लोग बुद्धू होना शुरू हो जाते हैं। एक अप्रैल को हालत खराब हो जाती है, तेरह तक तो तेरह गुनी हो जाती है। तुम अप्रैल के पहले ही निपटा लो!

अंतिम प्रश्नः क्या इस प्यास का कभी अंत होगा, जिसने मुझे दीवाना बना दिया है? जिसने प्राणों को शूल की भांति छेद दिया है? प्रतिक्षण जो एक ज्वाला की भांति सीने में धधकती रहती है? आह! किसे मैं अपने हृदय की बात बताऊं! इस भीड़ भरी दुनिया में मैं एकदम अजनबी और नितांत अकेला हूं। कब उठेगा उस अज्ञात रहस्य के द्वार से वह पर्दा?

उस द्वार पर कोई पर्दा नहीं है, पर्दा तुम्हारी आंख पर है। उस द्वार
पर पर्दा है, यह तुम्हारे मन की भ्रांति है और मन की तरकीब है। क्योंकि फिर तुम्हारे हाथ के बाहर बात हो गई--उसके द्वार पर पर्दा है। अब जब वह उठाएगा, तब उठेगा। तुम्हारे किए तो कुछ हो नहीं सकता। इस भांति तुमने अपने को बचा लिया।
मैं तुमसे कहना चाहता हूं, मैं तुम्हें बचने की कोई जगह नहीं देना चाहता, तुम्हें बचने का कोई उपाय नहीं बचने देना चाहता। मैं तुमसे कहता हूं, तुम्हारी आंख पर पर्दा है। सूरज तो निकला है, तुम आंख बंद किए खड़े हो। अब तुम कहते हो कि हे प्रभु, कब सूरज पर से पर्दा उठेगा?
पर्दा ही नहीं है तो उठेगा कैसे? और चूंकि पर्दा है ही नहीं, उठेगा नहीं, तुम बैठे राह देखते रहोगे कि पर्दा उठे तो हम सूरज को देखें। और जरा सी पलक उठाने की बात है, पर्दा-वर्दा कहीं भी नहीं है। पलक ही पर्दा है। यह तुम्हारी आंख पर जो पलक है, यही पर्दा है।
तो पहले तो यह स्मरण कर लो कि परमात्मा छिपा नहीं है, परमात्मा प्रकट है। तुम छिपे हो! तुम घूंघट डाले बैठे हो! हटाओ घूंघट। घूंघट के पट खोल! कल मैं एक कवि की पंक्तियां पढ़ रहा था--

वहां परदे को जुंबिश तक नहीं है
यहां पहलू में दिल बस थर्रा रहा है
थर्राते रहो! वहां कोई पर्दा ही नहीं है, जुंबिश कहां से होगी?
पर्दा हमारी आंख पर है। परमात्मा मौजूद है। उसने तुम्हें घेरा है इस वक्त सब तरफ से। ये पक्षियों के गीत सुनते हो? इसमें उसी ने पुकारा है। यह वृक्षों का सन्नाटा सुनते हो? इसमें वही चुप होकर खड़ा है। ये सूरज की किरणें देखते हो? यह तुम्हारे पास बैठे हुए इतने शांत, आनंदमग्न लोग देखते हो? इसमें वही बैठा है। सब तरफ वही है। पर्दा आंख पर है। और पर्दा कुछ बड़ा नहीं, दो पलकों का है। जरा आंख खोलो।
तुम पूछते होः "क्या इस प्यास का कभी अंत होगा... "
जब तक तुम न मिटोगे, तब तक नहीं अंत होगा। भक्त न मिटे, तब तक प्यास का अंत नहीं। भक्त मिटे, कि बस प्यास का भी अंत हो गया। भक्त मिटा कि तृप्ति। भक्त मिटा कि भगवान--पराभक्ति। तुम अगर चाहो कि मैं बना रहूं और परमात्मा को जान लूं, तो अंत कभी भी होने वाला नहीं है। आज तक किसी मनुष्य ने अपने को बचा कर परमात्मा को नहीं जाना है। अपने को गंवा कर जानना होता है। यही कीमत है जो चुकानी पड़ती है।
हालांकि समझदारी हमारी कहती है कि अपने को बचा कर जानने की कोई तरकीब
हो तो अच्छा रहे--खुद भी बच जाएं, उसे भी जान लें। हम दोनों हाथ लड्डू चाहते हैं। यह नहीं हो सकता। यह नियम के अनुकूल नहीं है। तुम मिटो, तो परमात्मा हो। प्यास तो तुम जरूर मिटाना चाहते हो, मगर प्यासे को नहीं मिटाना चाहते। तुम कहते हो, प्यासा ही मिट गया, फिर सार क्या? फिर प्यास मिटी कि नहीं मिटी, हमें पता कैसे चलेगा? हम ही मिट गए, फिर परमात्मा मिला तो मिलने में मजा ही क्या? तुम कहते हो, हम भी रहें और तू भी रहे--कुछ ऐसा कर। फिर नहीं हो पाता। प्रेम गली अति सांकरी, तामें दो न समाएं।
"क्या इस प्यास का कभी अंत होगा... "
तुम जिस दिन समाप्त होओगे, उसी दिन इसका अंत हो जाएगा।
"... जिसने मुझे दीवाना बना दिया है? जिसने प्राणों को शूल की भांति छेद दिया है? प्रतिक्षण जो एक ज्वाला की भांति सीने में धधकती रहती है? क्या इस प्यास का कभी अंत होगा?"
तुम्हारे अंत के साथ ही! यह बीमारी ऐसी है कि बीमार मरेगा तो मिटेगी।
इस संबंध में ठीक से समझ लेना। आमतौर से जब हमारी बीमारी होती है, तो हम बीमार को बचाते हैं और बीमारी को मिटाते हैं। यह बीमारी साधारण बीमारी नहीं है। यह तो बीमार ही मरेगा, तो ही जाएगी। यह तो ठीक से समझो तो बीमार का होना ही बीमारी है। यह बीमार से अलग बीमारी नहीं है, बीमार ही बीमारी है। तुम जाओ, तुम विदा हो जाओ। तुम अस्त हो जाओ। तुम्हारे अस्त होते ही परमात्मा प्रकट हो जाएगा। सूर्योदय हो जाएगा। तुम जब तक रहोगे, तब तक पीड़ा। तब तक यह कांटा चुभेगा, बुरी तरह चुभेगा।
और इतना पक्का है कि तुम्हारे भीतर प्यास गहरी हो रही है। और अग्नि भभकेगी! और ज्वाला लपटेगी! और तुम जलोगे! और मेरा सारा उपाय यहां यही है कि तुम्हारी प्यास को भड़का दूं--इतना भड़का दूं कि प्यास में प्यासा डूब जाए और समाप्त हो जाए। तुम्हारी आग को इतना भड़का दूं, तुम्हारी विरह की अग्नि को ऐसा जला दूं कि विरही उसी अग्नि में जल जाए और राख हो जाए। तुम्हारी राख पर ही परमात्मा का मंदिर उठता है।
यह प्यास बुझ सकती है। यह ज्वाला भी शांत हो सकती। है। इस विरह का अंत है। मिलन होता है। और मिलन के लिए ही हम सब तलाश कर रहे हैं--कोई ठीक ढंग से, कोई गलत ढंग से।
और जो अंतिम भूल है, वह तुम्हें स्मरण दिला दूं। अंतिम भूल यही है कि खोजी अपने को बचाना चाहता है। कबीर ने कहा हैः
हेरत हेरत हे सखी, रह्या कबीर हिराई।
जब कबीर खोजते-खोजते खो गया...
बुंद समानी समुंद में, सो कत हेरी जाई।।
फिर बूंद सागर में गिर गई। अब उसे वापस कहां पाया जा सकता है! जिस दिन तुम परमात्मा को पा लोगे, फिर अपने को वापस न पा सकोगे।

बुंद समानी समुंद में, सो कत हेरी जाई।।
इतना ही नहीं, कबीर ने बाद में इस वचन में थोड़ा सुधार भी किया, जो बहुत
अपूर्व है। बाद में उन्होंने इसमें सुधार किया--
हेरत हेरत हे सखी, रह्या कबीर हिराई।
समुंद समाना बुंद में, सो कत हेरी जाई।।
पहले तो ऐसा ही लगता है कि बूंद सागर में गिर गई, अब कैसे खोजा जाए? मगर उससे भी बड़ी घटना बाद में पता चलती है कि सागर बूंद में गिर गया। अब तो और मुश्किल हो गई। विराट क्षुद्र में समा गया। सागर बूंद में समा गया। अब तो खोजने की कोई जगह न रही। सच तो यह है कि न तो बूंद सागर में गिरती है और न सागर बूंद में गिरता है, दोनों एक-दूसरे में गिर जाते हैं। न तो सागर बचता है फिर, न बूंद बचती है। कुछ बचता है जो अगोचर है, अदृश्य है, अवक्तव्य, अव्याख्य है।
उसी अव्याख्य की जिज्ञासा में हम गए। उसी अगोचर की, उसी अदृश्य की हमने तलाश की।
एक तलाश पूरी हुई--एक बौद्धिक तलाश। अब दूसरी तलाश तुम शुरू करो-- अस्तित्वगत। वहां मिटना होगा, चलना होगा, समाप्त होना होगा। मरने को जो राजी हैं, बस धर्म उन्हीं का है। मिटने को जो राजी हैं, परमात्मा उन्हीं को मिलता है।
अथातोभक्तिजिज्ञासा!
आज इतना ही।